श्रीमती लज्जा देई जी जैन
(धर्मपत्नी श्री नद्दा मल जी जैन लाहौर वाले)

प्रकाशकीय

जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के प्रस्तुत भाग का प्रकाशन व्यय लाला लद्देशाह की धर्मपत्नी श्रीमती लब्बादेवीजी ने वहन किया है। इसके लिए समिति आपका हार्दिक आभार मानती है।

श्रीमती लब्बादेवी का जन्म किला दिदारसिंह में एक माननीय परिवार के लाला उत्तमचन्दजी के घर हुआ। आपका लालन-पालन आपकी माता बसन्तीदेवी ने किया।

युवावस्था में आते ही आपका पाणिग्रहण लाहौर में लाला लद्देशाह साबुनवाले के साथ हुआ।

आप प्रसन्नमुख, मधुरभाषी, परमस्नेही, उदार महिला हैं। आपके जीवन का अधिकांश भाग सामायिक, पौषध, व्रत-पच्चक्खाण आदि में व्यतीत होता है।

समाज-सेवा आपका मुख्य कर्तव्य है। महिला-समाज में आपका मुख्य स्थान है। सदर महिला-समाज की आप प्रधान है तथा उच्च सलाहकार हैं। जो गुण एक गृहस्थ महिला में होने चाहिए वे सब आपमें पूर्णरूप से विद्यमान हैं। आप समाज में एक सुलझी हुई महिला हैं। समाज की सेवा तन, मन, धन से कर रही हैं। साधुओं तथा महासतियों की सेवा आपका मुख्य ध्येय है। आपके कर-कमलों से कई संस्थाओं के उद्घाटन हो चुके हैं। आपका आदर्श जीवन समाज के सामने है। समाज आपको आदर की दृष्टि से देखता है।

रूपमहल
फरीदाबाद
६-८-७२

हरजसराय जैन
मन्त्री,
श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

प्राक्कथन

जैन साहित्य के बृहद् इतिहास का यह छठा भाग है। इसमें विशाल जैन काव्य-साहित्य का परिचय दिया गया है। इसके लेखक हैं प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली, के निदेशक डा० गुलाबचन्द्र चौधरी। आपने पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के तत्त्वावधान में ही अपना पी-एच० डी० का शोध-प्रबन्ध तैयार किया था जो पुस्तकरूप में प्रकाशित हो चुका है। आप कई वर्षों तक नालन्दा पालि संस्थान तथा दरभंगा संस्कृत संस्थान में शोध-प्राध्यापक के रूप में रहे तथा आपने अनेक शोध-छात्रों को समुचित निर्देशन देकर शोध-प्रबन्ध तैयार करवाये। आपका संस्कृत, प्राकृत, पालि आदि भाषाओं पर समान अधिकार है। इतिहास तो आपका प्रिय विषय है ही। प्रस्तुत ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह प्रसन्नता की बात है कि इस भाग से पूर्व प्रकाशित पाँचों भागों का विद्वद्वर्ग एवं सामान्य पाठकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया है। आगमिक व्याख्याओं से सम्बन्धित तृतीय भाग तो उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुआ है। प्रस्तुत भाग भी विद्वानों एवं अन्य पाठकों को उसी तरह पसंद आएगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

ग्रन्थ के विद्वान् लेखक डा० गुलाबचन्द्र चौधरी तथा सम्मान्य सम्पादक पूज्य पं० दलसुखभाई का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। प्रूफ-संशोधन के लिए संस्थान के शोध-सहायक श्री हरिहर सिंह का तथा अनुक्रमणिका तैयार करने के लिए कु० मधूलिका मेहता का आभार मानता हूँ।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-५
१०. ७. ७३

मोहनलाल मेहता
अध्यक्ष

प्रस्तुत ग्रन्थ में

काव्य साहित्य

प्रकरण १

प्रास्ताविक

जैन काव्य-साहित्य से हमारा तात्पर्य उस विशाल साहित्य से है जो काव्य-शास्त्रसम्मत विधि-विधान को यथासम्भव मानकर महाकाव्य, कथा (प्राकृत में काव्य को कथा नाम से कहते हैं) तथा काव्य की अनेक विधाओं में अर्थात् दृश्य-काव्य एवं श्रव्यकाव्य—शास्त्रीयकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य, दूतकाव्य, गीति-काव्य आदि के रूप मे लिखा गया हो। इसे हम प्रमुख तीन खण्डों में विभक्त कर विवेचन करेंगे। पहले खण्ड में पौराणिक महाकाव्य और सभी प्रकार की कथाएँ रहेंगी। द्वितीय खण्ड मे ऐतिहासिक साहित्य यथा ऐतिहासिक काव्य, प्रबन्ध-साहित्य, प्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, प्रतिमा-लेख, अन्य अभिलेख, तीर्थमालाएँ, विज्ञप्तिपत्रादि का विवेचन होगा। तृतीय खण्ड में ललित वाङ्मय अर्थात् शास्त्रीय महाकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पू, नाटक आदि अलकार तथा रस-शैली पर लिखा हुआ साहित्य समाविष्ट होगा। यह विशाल साहित्य अनेक भाषाओं में लिखा गया है पर प्रस्तुत भाग में भाषा की दृष्टि से हमने प्राकृत तथा संस्कृत में उपलब्ध को ही ग्रहण किया है। अपभ्रंश या अन्य भाषाओं मे उपलब्ध इस प्रकार का साहित्य अगले भागों का विषय होगा।

सर्वप्रथम जैनों के परम्परा सम्मत वाङ्मय में 'काव्यसाहित्य' की क्या स्थिति है यह जान लेना परमावश्यक है।

भगवान् महावीर के समय से लेकर विक्रम की २० वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग २५०० वर्षों के दीर्घकाल में जैन मनीषियों ने प्राकृत और सस्कृत के जिस विपुल वाङ्मय का निर्माण किया है उसे सुविधा की दृष्टि से, आधुनिक विद्वानों ने, पुरानी परिभाषाओं का ध्यान रखकर प्रमुख तीन भागों में बाँटा है: पहला आगमिक, दूसरा अनुआगमिक और तीसरा आगमेतर। आगमिक साहित्य आज हमें आचाराग आदि ४५ आगमों तथा उनपर लिखे विशाल टीकासाहित्य—निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकाओं के रूप में उपलब्ध है। अनुआगम साहित्य दिगम्बरमान्य शौरसेनी आगमों—कसायपाहुड, षट्खण्डागम तथा कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के रूप मे पाया जाता है। इन दोनों प्रकार का साहित्य इस बृहद् इतिहास के पूर्व भागों में प्रकाशित हो चुका है।

आगमेतर साहित्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो जैनागमों की, विषय और शैली की दृष्टि से, अनुयोग नामक एक विशेष व्याख्यान पद्धति के रूप मे ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से लिखा जाने लगा था। इसके आविष्कारक आचार्य आर्यरक्षित माने जाते हैं। अनुयोग पद्धति चार प्रकार से बतलायी गई है: १. चरणकरणानुयोग, २. धर्मकथानुयोग, ३. गणितानुयोग, ४. द्रव्यानुयोग। इनके विशेष विवेचन मे न जाकर केवल इतना सूचित करना है कि चरणकरणानुयोगविषयक साहित्य औपदेशिक प्रकरणों के रूप मे और गणितानुयोग और द्रव्यानुयोगविषयक साहित्य आगमिक प्रकरणों के रूप मे जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के पूर्व भागों मे निरूपित हो चुका है। यहाँ धर्मकथानुयोग के सम्बन्ध मे ही कुछ कहना आवश्यक है।

'धर्मकथानुयोग' का विषय विशुद्ध आचरण करनेवाले महापुरुषों की जीवनियाँ है। इसमें समाविष्ट विषयवस्तु एक समय जैन आगम के १२वें अग दृष्टिवाद के चतुर्थ विभाग अनुयोग की विषयवस्तु[1] थी। वह भी दो उपविभागों में विभक्त थी: १. मूल प्रथमानुयोग और २. गण्डिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोग मे अरहन्तों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्माण-सम्बन्धी इतिवृत्त तथा शिष्य समुदाय का वर्णन समाविष्ट किया गया था और गण्डिकानुयोग मे कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि अन्य महापुरुषों का चरित्र था। मान्यतानुसार दृष्टिवाद अग का विच्छेद हो गया था अतः उसका एक विभाग अनुयोग भी विच्छिन्न माना गया। आर्यरक्षित ने उसका उद्धार 'धर्मकथानुयोग' के अन्तर्गत किया, पर ईस्वी सन् के प्रारम्भ होते-होते वह भी विशीर्ण हो गया।

पचकल्पभाष्य[2] के अनुसार शालिवाहन नृप के समकालीन आचार्य कालक (वीर० नि० ६०५ के लगभग) ने जैन परम्परागत कथाओं के सग्रहरूप में प्रथमानुयोग नाम से इस विशीर्ण साहित्य का पुनरुद्धार किया। वसुदेवहिंडी[3],

---

१. समवायांग, सू० १४७, नन्दिसूत्र, सू० ५६.

२. गा० १५४५–४९.

३. तत्थ ताव सुहम्मसामिणा जंबूनामस्स पढमाणुओगे तित्थयरचक्कवट्टिदसारवंसपरूवणागयं वसुदेवचरियं कहियं ति।

—वसुदेवहिंडी, प्रथम खण्ड, पृ० २.

आवश्यकचूर्णि[1], आवश्यकसूत्र[2] और अनुयोगद्वार की हारिभद्रीया[3] वृत्ति तथा आवश्यकनिर्युक्ति[4] में प्रथमानुयोग नाम से जिस साहित्य का उल्लेख है वह पुनरुद्धरित प्रथमानुयोग को लक्ष्य करके है। दिगम्बर परम्परा मे अनुयोग या धर्मकथानुयोग का सामान्य नाम प्रथमानुयोग दिया गया है। सम्भवतः इसकी विशालता, उपादेयता और लोकप्रियता के कारण इसे प्रथम-अनुयोग कहा गया है। कुछ विद्वानों का अनुमान[5] है कि इस साहित्य का वास्तविक नाम तो प्रथमानुयोग था क्योंकि इस नाम से इसके अनेक उल्लेख हैं। पर उसके लुप्त होने के कारण आचार्य कालक द्वारा पुनरुद्धरित प्रथमानुयोग से भेद प्रकट करने के लिए आगमसूत्रों—समवायाग और नन्दिसूत्र मे समागत प्रथमानुयोग को 'मूलप्रथमानुयोग' नाम दिया गया है। यद्यपि उक्त आगमसूत्रों के अनुसार मूल-प्रथमानुयोग का विषय केवल तीर्थंकर और उनके शिष्यसमुदाय का चरित्र-चित्रण है पर भाष्य, चूर्णि एव वृत्ति साहित्य के अनुसार प्रथमानुयोग मे तीर्थंकरों के चरित के साथ चक्रवर्ती, नारायण आदि के चरितों के वर्णन होने की बात भी लिखी है। इसका भाव यही समझना चाहिए कि तीर्थंकरों के चरितों के साथ अनिवार्य रीति से सम्बन्ध रखनेवाले चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के चरित्र भी प्रथमानुयोग के विषय हैं। यदि यह भाव न होता तो आगमसूत्रो की व्याख्या करनेवाले साहित्य मे ऐसी बात न लिखी होती। आर्य कालक द्वारा पुनरुद्धार किये गये प्रथमानुयोग में गण्डिकानुयोग की बातें भी सम्मिलित समझनी चाहिए। उक्त आगमसूत्रों और पचकल्पभाष्य में उल्लिखित 'गण्डिकानुयोग' की वर्ण्यवस्तु को देखते हुए यह निर्धारण करना कठिन है कि उसका विषय वास्तव मे क्या था?

---

१. एते सव्वं गाहाहिं जहा पढमाणुओगे तहेव इहइपि वन्निज्जति वित्थरतो।
—आवश्यकचूर्णि, भा० १, पृ० १६०.

२. पूर्वभवाः खल्वमीषां प्रथमानुयोगतोऽवसेयाः।
—आवश्यकहारिभद्रीयवृत्ति, पृ० १११-२.

३. अनुयोगद्वारहारिभद्रीयवृत्ति, पृ० ८०.

४. परिआओ पव्वज्जा भावाओ नत्थि वासुदेवाणं।
होइ बलाणं सो पुण पढमाणुओगाओ णायव्वो॥
—आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ४१२

५. विजयवल्लभसूरि-स्मारक-ग्रन्थ, पृ० ५२. प्रथमानुयोगशास्त्र अने तेना प्रणेता स्थविर आर्यकालक (मुनि पुण्यविजयजी).

पंचकल्पभाष्य के अनुसार आर्य कालक प्रथमानुयोग, लोकानुयोग और संग्रहणियों के प्रणेता थे। लोकानुयोग अष्टाग निमित्तविद्या का ग्रन्थ था। उसके नष्ट हो जाने पर गण्डिकानुयोग की रचना की गई[1]। तथ्य जो हो पर आज प्रथमानुयोग हमारे सामने नहीं है और न गण्डिकानुयोग। इसलिए प्रथमानुयोग की भाषा-शैली, वर्णनपद्धति, विषयवस्तु, छन्द आदि में क्या-क्या विशेषताएँ थीं, यह जानने के हमारे पास अब कोई साधन नहीं।

प्रथमानुयोग-विषयक हमें जो प्रतिनिधि रचनाएँ मिलती हैं—यथा विमलसूरि का पउमचरिय, जिनसेन का हरिवंशपुराण, जिनसेन का महापुराण, शीलाक का चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, भद्रेश्वरकृत कहावलि और हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—उन सबमें उन्हें प्रथमानुयोग विभाग की रचना कहा गया है और प्रथमानुयोग के आधार से रची गई अनेक प्राचीन रचनाओं (जिनमें से अनेक अनुपलब्ध हैं) को अपना स्रोत माना[2] गया है। प्रथमानुयोग और उसके आधार पर रची गई प्राचीन कृतियाँ (जोकि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में रची गई थीं) भले न मिलती हों, पर प्रथमानुयोग और एतद्विषयक पश्चात्कालीन सैकड़ों रचनाएँ, तथा अन्य अनुयोगों (चरणकरण, गणित और द्रव्यानुयोग) की भी रचनाएँ आगमेतर साहित्य की विशालता, व्यापकता और लोकप्रियता की अवश्य द्योतक हैं।

चूँकि आगमिक साहित्य बहुत पीछे (ई० सन् ४५३–४६६ में) लिपिबद्ध हुआ था इसलिए आगमिक और आगमेतर साहित्य के बीच निश्चित भेदक रेखा खींचना संभव नहीं। फिर भी आगमिक साहित्य के पूर्ण होने के पहले ही आगमेतर साहित्य की रचना प्रारम्भ[3] हो गई थी और तब से अब तक जारी है। हमने ऊपर यह भी बतलाया है कि आगमेतर साहित्य आगमिक साहित्य

---

१. पच्छा तेण सुत्ते णट्ठे गंडियानुयोगा कया।

२. विमलसूरि ने पूर्वगत में से नारायण और बलदेव का चरित्र सुनकर पउमचरियं की रचना की। चउपन्नमहापुरिसचरिय निबद्ध नामावलियों (समवायांग, सूत्र १३२) के आधार पर लिखा गया और पद्मचरित अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर की रचना के आधार पर तथा जिनसेन के आदिपुराण का आधार कवि परिमेष्ठीकृत वागर्थसंग्रह बतलाया गया है।

३. पादलिप्तसूरिकृत तरंगलोला (ई० दूसरी शताब्दी), भद्रबाहुकृत वासुदेवचरित आदि।

से एकदम स्वतन्त्र नहीं। उसने प्राचीन आगमों से ही बीजसूत्रों को लिया है और बाहरी उपादानों तथा नवीन शैलियों द्वारा उन्हें पल्लवित कर एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया है।

आगमेतर साहित्य की प्रथमानुयोग-विषयक सामग्री का नवीन काव्य-शैलियों मे प्रस्तुतीकरण ही हमारा 'जैन काव्य-साहित्य' है।

जैन काव्य-साहित्य :

जैन विद्वान् नूतन काव्य शैली में, ईस्वी तीसरी-चौथी शताब्दी से ही रचनाएँ लिखने लगे थे। इस शैली में रचित कृतियों में काव्य की अनेक विधाओं और कथाओं के बहुरंगी रूपों के दर्शन होते हैं। उन्होंने विशालकाय पौराणिक महाकाव्यों, सामान्य काव्यों, शास्त्रीय महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, गद्यकाव्यों, नाटक, चम्पू आदि विविध काव्यविधाओं की तथा रमन्यास, उपन्यास, दृष्टान्त-कथा, नीतिकथा, पुराणकथा, लौकिककथा, परीकथा और नानाविध कौतुक-वर्धक अद्भुत कथाओं की रचना की है।

जैन काव्य-साहित्य की विषय वस्तु वस्तुतः विशाल है। उसमें ऋषभादि २४ तीर्थंकरों के समुदित तथा पृथक्-पृथक् अनेक नूतन चरित, भरत, सनत्कुमार, ब्रह्मदत्त, राम, कृष्ण, पाण्डव, नल आदि एव चक्रवर्ती जैसी प्रसिद्धि पानेवाले अनेकों नरेशों के विविध प्रकार के आख्यान, नाना प्रकार के साधु और साध्वियों और राजा-रानियों के, ब्राह्मणों और श्रमणों के, सेठ और सेठानियों के, धनिक तथा दरिद्रों के, चोर और जुआड़ियों के, धूर्त और गणिकाओं के, धर्मी और अधर्मियों के, पुण्यात्मा और पापात्माओं एव नाना प्रकार के मानवों को उद्देश कर लिखे गए कथा-ग्रन्थ हैं।

जैन काव्य-साहित्य की, ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से पाँचवी तक कतिपय कृतियाँ उल्लेख रूप में ही मिलती हैं। पाँचवीं से दसवीं तक सर्वाङ्गपूर्ण, विकसित एव आकर-ग्रन्थों के रूप में ऐसी विशाल रचनाएँ मिलती हैं जिन्हें हम प्रतिनिधि रचनाएँ कह सकते हैं किन्तु वे हैं अगुलियों पर गिनने लायक। परन्तु ग्यारहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक एतद्विषयक रचनाएँ विशाल गगा की धारा के समान प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध होती हैं, और अब भी मन्द एव क्षीण धारा के रूप मे प्रवाहित है।

भाषा के क्षेत्र में जैन काव्यसाहित्य किसी एक भाषा में कभी नहीं बद्ध रहा। एक ओर उन्होंने प्राजल, प्रौढ़, उदात्त संस्कृत में तो दूसरी ओर सर्व-

बोध संस्कृत में तथा प्राकृत, अपभ्रंश एवं नाना जनपदीय भाषाओं-तमिल, कन्नड, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी में विशाल काव्य साहित्य की रचना की है।

प्रस्तुत भाग में हम प्राकृत और संस्कृत में लिखे गये एतद्विषयक साहित्य का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

तत्कालीन परिस्थितियाँ:

किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के विशिष्ट साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करना समीचीन होगा।

जैनो के काव्य साहित्य की उपलब्ध सामग्री के आधार से हम कह सकते हैं कि उसका निर्माण ईसा की पाँचवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। राजनीतिक दृष्टि से यह गुप्तवंशी राज्यसत्ता के अस्त का काल था। उत्तर भारत में सन् ४५० के लगभग हूणों का आक्रमण हुआ था। भारत में केन्द्रीय शासन का अभाव हो गया था और वह अनेक स्वतन्त्र संघर्षरत राज्यवंशों में विभक्त हो गया था, और यह स्थिति प्रायः अंग्रेजी शासन स्थापित होने के पूर्व तक बराबर बनी रही।

(अ) राजनीतिक परिस्थितियाँ—जैनधर्म ने गुप्तकाल के समय या उससे कुछ पूर्व पश्चिम और दक्षिण भारत को अपने विशिष्ट कार्य-कलापों का केन्द्र बनाया था। वैसे जैनधर्मानुयायी मध्यकाल में बंगाल, उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश के कतिपय स्थानों में बराबर बने रहे पर उनकी तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का हमें कोई पता नहीं। मध्यकाल में मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात तथा दक्षिण भारत के कर्नाटक आदि प्रान्तों में जैनधर्म का अच्छा समादर रहा और अपने साहित्यिक कार्यकलापों में उन्हें जैन जनता के अतिरिक्त राज्यवर्ग से संरक्षण और प्रेरणा मिलती रही। दक्षिण के पूर्वमध्यकालीन राज्यवंशों जैसे गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूटों ने और उनके अधीन अनेक सामन्तों, मन्त्रियों और सेनापतियों ने जैनधर्म को आश्रय ही नहीं दिया बल्कि वे जैन विधि से चलने के लिए प्रवृत्त भी हुए थे। मान्यकूट के कुछ राष्ट्रकूट नरेश तो पक्के जैन थे और उनके संरक्षण में कला और

---

१. विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' (५३० वि० सं०) तथा संघदास-धर्मदास-गणिकृत 'वसुदेवहिंडी' (६ ठी शताब्दी के पूर्व).

साहित्य के निर्माण में जैनों का योगदान बडे महत्त्व का है। इस युग से सम्बद्ध प्रमुख कवियों और ग्रन्थकारों की एक मण्डली थी जिनकी साहित्यिक रचनाएँ महान् पाण्डित्य के उदाहरण है। वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, शाकटायन, महावीराचार्य, स्वयभू, पुष्पदन्त, मल्लिषेण, सोमदेव, पम्प आदि इसी युग के हैं। उनकी सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और कन्नड साहित्य में कृतियाँ एवं लाक्षणिक साहित्य—गणित, व्याकरण, राजनीति आदि पर रचनाएँ स्थायी महत्त्ववाली है। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (लग० सन् ८१५–७७ ई०) जिनसेन का भक्त था और अपने जीवन के अन्तिम भाग मे उसने जैनधर्म स्वीकार किया था तथा कतिपय जैन ग्रन्थो को रचा था। दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य (१४–१५ वीं शताब्दी) के पतन के बाद भी कई जैन सामन्त राजा थे जो कि अंग्रेजी शासन के आगमन के समय बने रहे। उत्तरमध्यकाल मे जैनों की साहित्यिक प्रवृत्ति के केन्द्र गुजरात में अणहिल्पुर, खंभात और भड़ौच, राजस्थान में भिन्नमाल, जाबालिपुर, नागपुर, अजयमेरु, चित्रकूट और आघाटपुर तथा मालवा में उज्जैन, ग्वालियर और धारानगर थे। उस समय गुजरात में चौलुक्य और बघेल, राजस्थान में चाहमान[1], परमार वश की शाखाएँ और गुहिलौत तथा मालवा और पडोस में परमार, चन्देल और कल्चुरि राजा राज्य करते थे। इन शासक वशो ने जैनधर्म और जैन समाज के साथ बहुत सहानुभूति और समादर का व्यवहार किया, इससे जैन साधुओं और गृहस्थों को निर्विघ्न साहित्यिक सेवा और जीवनयापन में बड़ी प्रगति और सफलता मिली। गुजरात के चौलुक्य नरेशों, विशेषकर सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के आश्रय मे जैनधर्म ने अपने प्रतापी दिन देखे और उस युग में कला और साहित्य के निर्माण में जैनों के योगदान ने गुजरात को महान् बना दिया, जो आज भी है। इस समय से गुजरात में साहित्यिक क्रिया-कलाप का एक युग प्रारम्भ हुआ और इसका श्रेय हेमचन्द्र और उनके बाद होनेवाले अनेक जैन कवियों को है। राज दरबारो मे जैनाचार्यों और विद्वानों के त्यागी जीवन और उसके साथ विद्योपासना की भी बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी और अनेक राजवंशी लोग भी उनके भक्त और उपासक होने मे अपना कल्याण समझते थे।

मुस्लिम शासन काल में यद्यपि जैनो के मन्दिर यत्र-तत्र नष्ट किये गये पर सभवतः उतने अधिक परिमाण मे नहीं। उस काल में भी जैनाचार्यों और जैन

१. डा० दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २२७–२२८.

गृहस्थों की प्रतिष्ठा कायम थी। दिल्ली का बादशाह मुहम्मद तुगलक जिनप्रभसूरि का बड़ा समादर करता था। मुगल सम्राट् अकबर और जहांगीर ने आचार्य हीरविजय, शान्तिचन्द्र और भानुचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित हो जीवरक्षा के लिए फरमान निकाले थे। अकबर ने आचार्य हीरविजय जी को जगद्गुरु की उपाधि दी थी और उनके अनुरोध पर पज्जूसण के जैन वार्षिकोत्सव के समय उन स्थानों में प्राणिहिंसा की मनाही कर दी थी जहाँ कि जैन लोग रहते थे।

इस राजनीतिक स्थिति का प्रभाव जैन काव्य साहित्य पर विविध रूप से पड़ा और पाँचवीं शती ईस्वी से अनवरत जैन काव्य-साहित्य का निर्माण होता रहा।

(आ) धार्मिक परिस्थितियाँ—गुप्तकाल से अब तक भारत में धार्मिक परिस्थिति ने अनेक करवटें बदली हैं। गुप्तयुग में एक नवीन ब्राह्मणधर्म का उदय हो रहा था जिसका आधार वेदों की अपेक्षा पुराण अधिक माने जाते थे। ब्राह्मणधर्म में नाना अवतारों की पूजा और भक्ति की प्रधानता थी। गुप्त नरेश स्वयं भागवत धर्मानुयायी अर्थात् विष्णुपूजक थे परन्तु वे बड़े ही धर्मसहिष्णु और अन्य धर्मों को संरक्षण देनेवाले थे। बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय का गुप्त राज्यों के संरक्षण में अच्छा प्रचार था। नालन्दा और पश्चिम में वलभी बौद्धधर्म के नये केन्द्रों के रूप में विकसित हो रहे थे। जैनधर्म भी विकसित स्थिति में था। वलभी में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जैनागमों का पाँचवीं शताब्दी में संकलन किया था। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विभिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान और संमिश्रण अधिक मात्रा में बढ़ने लगा था। जैन तीर्थंकर ऋषभदेव और भगवान् बुद्ध हिन्दू अवतारों में गिने जाने लगे थे। उस समय के अनेक धार्मिक विश्वासों में उलट-पलट हो रही थी, धार्मिक जीवन में विधर्मी तत्त्वों का प्रवेश होने लगा था और एक ही कुटुम्ब और राज्यवंश में विभिन्न धर्मों की एक साथ उपासना होने लगी थी। तान्त्रिक धर्म का विस्तार बढ़ने लगा था। हिन्दूधर्म के भागवत, शाक्त और शैव सम्प्रदायों में तथा बौद्धधर्म में तान्त्रिक धर्म प्रविष्ट हो चुका था। जैनधर्म में वह मन्त्रवाद के रूप में प्रविष्ट हो रहा था। तान्त्रिक देवी-देवताओं के रूप में चमत्कार-प्रदर्शन के लिए या वाद-विवाद में पराजय के लिए कुछ देवियों—जैसे ज्वालामालिनी, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि का आविष्कार होने लगा था। उनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ व मन्दिरों का निर्माण भी होने लगा था तथा उनके लिए स्तोत्र-पूजाएँ भी रची जाने लगी थीं। शैव और वैष्णव धर्मों के प्रभाव के कारण तीर्थंकरों को कर्त्ता-हर्त्ता मानकर उनके भक्तिपरक स्तोत्र बनने लगे।

जैनाचार्यों ने ऐसे लौकिक धर्मों को भी अपने धर्म में शामिल कर लिया जो धर्म-सम्मत न होते हुए भी लोक में अपना विशेष प्रभाव रखते थे। नाना प्रकार के पर्व, तीर्थ, मंत्र आदि का माहात्म्य माना जाने लगा और उसके निमित्त नाना प्रकार का कथा-साहित्य लिखा जाने लगा था। इस युग में सर्वत्र तीर्थयात्रा को महत्त्व भी दिया जाने लगा।

जैन श्रमणसंघ की व्यवस्था में भी अनेकों परिवर्तन होने लगे थे। महावीर-निर्वाण के लगभग ६ सौ वर्ष बाद जैन मुनिगण वन-उद्यान और पर्वतोपत्यका का निवास छोड़ ग्रामों-नगरों में ठहरना उचित समझने लगे थे। इसे 'वसति-वास' कहते हैं। गृहस्थवर्ग जो पहले 'उपासक' नाम से संबोधित होता था वह धीरे-धीरे नियत रूप से धर्मश्रवण करने लगा और अब वह उपासक-उपासिका की जगह श्रावक श्राविका कहलाने लगा। वसतिवास के कारण मुनियों और गृहस्थ श्रावकों के बीच निकट सम्पर्क होने से जैन संघ में अनेक मतभेद और आचार-विषयक शिथिलताएँ आने लगीं। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में मूर्ति तथा मन्दिरों का निर्माण श्रावक का प्रधान धर्म बन गया। मुनियों का ध्यान भी ज्ञानाराधना से हटकर मन्दिरों और मूर्तियों की देखभाल में लगने लगा था। वे पूजा और मरम्मत के लिए दानादि ग्रहण करने लगे थे। फलतः सातवीं शताब्दी के बाद से जिनप्रतिमा, जिनालयनिर्माण और जिनपूजा के माहात्म्य पर विशेष रूप से साहित्य निर्माण होने लगा।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में मुनियों के समुदाय कुल, गण और शाखाओं में विभक्त थे जिनमें मुनियों का ही प्राबल्य था पर धीरे-धीरे गृहस्थ श्रावकों के प्रभाव के कारण नये नाम वाले संघ, गण, गच्छ एवं अन्वयों का उदय होने लगा तथा कई गच्छ परम्पराएँ चल पड़ी थीं। पहले जैन आगम-सूत्रों का पठन-पाठन जैन साधुओं के लिए ही नियत था पर देशकाल के परिवर्तन के साथ श्रावकों के पठन-पाठन के लिए उनकी रुचि का ध्यान रख आगमिक प्रकरण और औपदेशिक प्रकरणों के साथ नूतन काव्यशैली में पौराणिक महाकाव्य, बहुविध कथा-साहित्य और स्तोत्रों तथा पूजा-पाठों की रचना होने लगी। पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक जैन मनीषियों द्वारा ऐसी अनेक विशाल एवं प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गईं जो आगे की कृतियों का आधार मानी जा सकती हैं।

ईसा की ११वीं और १२वीं शताब्दी में देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ जैनसंघ के उभय सम्प्रदायों—

दिगम्बर और श्वेताम्बर के आन्तरिक संगठनों में नवीन परिवर्तन हुए जिससे जैन साहित्य के क्षेत्र में एक नूतन जागरण हुआ। दिग० सम्प्रदाय में अब तक अनेक संघ, गण और गच्छ बन चुके थे और उनके अनेक साधु [illegible] मठाधीश होकर बन गये थे और धीरे धीरे एक नवीन संगठन भट्टारक [illegible] वर्ग के रूप में उदय हो रहा था जो प्रायः चैत्यवासी कहे जाने लगा था। इसी तरह श्वेताम्बर सम्प्रदाय चैत्यवास और वसतिवास में विभक्त हो अनेक गणों और गच्छों में विभक्त होने लगा था और विभिन्न गच्छ परम्पराएँ चलने लगी थीं। गण गच्छनायकों ने अपने अपने गच्छों की प्रतिष्ठा एवं उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रदेशों और नगरों में विहार रूप से परिभ्रमण किया। इन लोगों ने अपनी विद्वत्ता एवं प्रभावशाली चरित्र सामर्थ्य से राजकीय वर्ग और धनिक वर्ग का आश्रय प्राप्त किया और बढ़ते हुए शिष्यवर्ग को कार्यक्षम और ज्ञानसमृद्ध बनाने के लिए नाना प्रकार की व्यवस्था की। इसके फलस्वरूप दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक स्थानों में ज्ञानसत्र और ज्ञानभण्डार स्थापित हुए। जहाँ आगम, न्याय, साहित्य और व्याकरण आदि विषयों के ज्ञाता विद्वानों की व्यवस्था की गई, पाठशालाएँ खोले गये और अध्यापक और अध्ययनार्थियों के लिए आवश्यक और उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी गई। 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इस सूक्ति से प्रेरणा लेकर जैन साधु और गृहस्थ वर्ग अपनी विद्या-विषयक मर्यादा बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान देने लगे। जैन सिद्धान्त के अध्ययन के साथ अन्य दार्शनिक साहित्य का तथा व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्दशास्त्र और ज्योतिःशास्त्र आदि सार्वजनिक साहित्य का भी विशेष रूप से अध्ययन होने लगा और इस विषय के नवीन ग्रन्थ रचे जाने लगे।

(इ) सामाजिक परिस्थितियाँ—हमारे इस आलोच्य युग के पूर्वभाग काल में सामाजिक स्तब्धता धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी। भारतीय समाज जाति-प्रथा में जकड़ता जा रहा था और धार्मिक तथा रीति-रिवाज के बंधन दृढ होते जा रहे थे। उत्तरमध्यकाल (११-१२वीं शताब्दी) आते-आते समाज अनेकों जातियों और उपजातियों में विभाजित होने लगा था। धीरे-धीरे प्रगतिशील और समन्वय एवं सहिष्णुता के स्थान पर स्थिर रूढ़िवाद और कठोरता ने पैर जमा लिये थे। समाज में तन्त्र-मन्त्र, टोना टोटका, शकुन-मुहूर्त आदि अंधविश्वास अशिक्षित और शिक्षित दोनों में घर कर गये थे। धार्मिक क्षेत्र तथा सामाजिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर भेदभाव बढ़ता जा रहा था। क्रिया-

काण्ड और शुद्धि-अशुद्धि के कारण ब्राह्मण वर्ग में छूताछूत का विचार बढ़ रहा था। जातियों के उपजातियों में विभक्त होने से उनमें खान पान, रोटी-बेटी का सम्बन्ध बन्द हो रहा था। क्षत्रिय और वैश्य वर्ग में भी इन नये परिवर्तनों का प्रभाव पड़ने लगा था। क्षत्रिय वर्ग के राजवंशों से शासन कार्य प्रायः छिन रहा था। इस काल के अनेक राजवंश प्रायः अक्षत्रिय वर्ग के थे। उत्तर भारत में थानेश्वर के पुष्यभूति वैश्य थे। मौखरी और पश्चात् कालीन गुप्तराजा अक्षत्रिय ही थे। बंगाल के पाल और सेन शूद्र थे। कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार विदेशी थे जो पीछे क्षत्रिय बनाये गये थे। इसी तरह परमार और चौहान भी थे। तात्पर्य यह कि क्षत्रियवर्ग में अनेक तत्त्वों का समिश्रण हो रहा था। सामान्य क्षत्रिय व्यापार कर वैश्यवृत्ति धारण कर रहे थे और धार्मिक दृष्टि से वे किसी एक धर्म के माननेवाले न थे तथा पश्चिम और दक्षिण भारत में बहुसंख्यक जैनधर्मावलम्बी भी हो गये थे।

इस काल में वैश्यवर्ग में भी नूतन रक्त सचार हुआ। ६ठी शताब्दी के लगभग वे जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण कृषि कर्म छोड चुके थे क्योंकि उत्तर भारत में उस समय कृषकों की अपेक्षा व्यापारिक वर्ग सम्माननीय समझा जाता था। इस काल में अनेक क्षत्रिय वैश्यवृत्ति स्वीकार करने लगे थे। कई जैन स्रोतों से मालूम होता है कि कुछ क्षत्रिय अहिंसा के प्रभाव से शस्त्र-जीविका बदलकर व्यापार और लेन-देन वृत्ति करने लगे थे। हमारे युग में वैश्य लोग अनेक जातियों और उप-जातियों में बँट गये थे। इस काल का जैनधर्म अधिकांशतः व्यापारिक वर्ग के हाथ में था। दक्षिण भारत में जैनधर्मानुयायियों में अब भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं पर प्रायः सभी व्यापार वृत्ति करते हैं। दक्षिण और पश्चिम भारत में धनिक व्यापारिक वर्ग के सरक्षण में जैनधर्म बड़ा ही फला-फूला। अनेक जैन वैश्यों को राज्य कार्यों में सक्रिय सहयोग देने का अवसर मिला था और वे राज्य के छोटे-बड़े अधिकार-पदों पर सुशोभित हुए थे। अनेक जैन विभिन्न राज्यों के महामात्य और महादण्डनायक जैसे पदों पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक शिलालेख उनकी अमर गाथाओं को गाते हुए पाये गये हैं। मुस्लिम काल में भी जैन गृहस्थों के कारण जैनाचार्यों की प्रतिष्ठा कायम थी। दिल्ली, आगरा और अहमदाबाद के कई जैन परिवारों का, उनके व्यापारिक सम्बन्धों एव विशाल धनराशि के कारण, मुगल दरबारों में बड़ा प्रभाव था। राजपूत राज्यों में भी अनेक जैन सेनापति और मन्त्रियों के महत्त्वपूर्ण पदों पर थे। मुगलों से दृढ़ता-

आदि प्रसिद्ध हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में जगत्सेठ, सिंघी आदि विशिष्ट परिवार थे जो राजसेठ माने जाते थे और राज्यशासन में उनका बड़ा प्रभाव था।

राजकीय प्रतिष्ठा के साथ-साथ इस काल में जैन वैश्य बड़ा ही सुपठित और प्रबुद्ध था। जैनाचार्यों के समान ही वह भी साहित्यसेवा में रत था। इस काल में जैन गृहस्थों ने अनेकों ग्रन्थों की रचना भी की है। अपभ्रंश महाकाव्य पद्मचरित के रचयिता स्वयम्भू, तिलकमंजरी जैसे पुष्ट गद्यकाव्य के प्रणेता धनपाल, कन्नड चामुण्डरायपुराण के लेखक चामुण्डराय, नरनारायणानन्द महाकाव्य के रचयिता वस्तुपाल, धर्मशर्माभ्युदयकार हरिश्चन्द्र, पण्डित आशाधर, अर्हद्दास, कवि मंडन आदि अनेक जैन गृहस्थ ही थे। जैनाचार्यों द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रणयन कराने, उनकी प्रतियों को लिखाकर वितरण करने तथा अनेक शास्त्रभण्डारों के निर्माण कराने में जैन वैश्य वर्ग का प्रमुख हाथ रहा है।

(ई) साहित्यिक अवस्था—आलोच्य युग के पूर्व गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। उस समय तक वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, अश्वघोष के काव्य बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द तथा कालिदास के रघुवंश, कुमार-संभव आदि एवं प्राकृत के गाथासप्तशती एव सेतुबंध आदि बन चुके थे और एक विशिष्ट काव्यात्मक शैली का प्रादुर्भाव हो चुका था तथा संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में उत्तरोत्तर उच्चकोटि की रचनाएँ होने लगी थीं। तब तक ब्राह्मणों के मुख्य पुराण भी अन्तिम रूप धारण कर रहे थे। इस युग में काव्यों को शास्त्रीय पद्धति पर बाँधने के लिए भामह, दण्डि, रुद्रट प्रभृति विद्वानों के काव्यालंकार, काव्यादर्श आदि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। रीतिबद्ध शैली पर इस युग मे अनेक काव्यों की सृष्टि होने लगी थी जिनमें भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, श्रीहर्षकृत नैषधीय-चरित बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। शास्त्रीय पद्धति पर काव्य की अनेक विधाओं जैसे गद्य-काव्य, चम्पू, दूतकाव्य, अनेकार्थकाव्य, नाटक आदि की सृष्टि इस युग में हुई।

जैन विद्वानों ने भी इस युग की माँग को देखा। उनका धर्म वैसे तो त्याग और वैराग्य पर प्रधान रूप से बल देता है। उनके शुष्क उपदेशों को बिना प्रभावोत्पादक ललित शैली के कौन सुनने को तैयार था? जैन मुनियों को शृङ्गार आदि कथाओं को सुनने और सुनाने का निषेध था पर श्रावक वर्ग को साधारणतया इस प्रकार की कथाओं मे विशेष रसोपलब्धि होती थी। युग की

माँग के अनुरूप जैन विद्वद्वर्ग ने न केवल संस्कृत में बल्कि प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेकविध रचनाएँ लिखीं। जैन विद्वान् स्वभावतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के विद्वान् थे। प्राकृत उनके धर्म-ग्रन्थों की भाषा थी और सामान्य वर्ग तक पहुँचने के लिए वे अपभ्रंश में रचनाएँ लिखकर उसका विकास कर रहे थे तथा पण्डित एवं अभिजात वर्ग से सम्पर्क के लिए संस्कृत में भी परम निष्णात थे। संस्कृत यथार्थतः उस काल तक पाण्डित्यपूर्ण विवेचनों और रचनाओं की भाषा बन गई थी। एतन्निमित्त जैनों ने न्याय, व्याकरण, गणित, राजनीति एवं धार्मिक उपदेशप्रद विषयों के अतिरिक्त आलंकारिक शैली में पुराण, चरित एवं कथाओं पर गद्य एवं पद्य काव्यरूप में संस्कृत रचनाएँ निर्मित कीं। साहित्य-निर्माण के क्षेत्र में जैनों का सर्वप्रथम ध्यान लोकरुचि की ओर रहा है इसलिए उन्होंने सामान्य जन भोग्य प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय भाषाओं—कन्नड, गुजराती, राजस्थानी एवं हिन्दी आदि में ग्रन्थों का प्रचुर राशि मे प्रणयन किया। जैनों के साहित्य-निर्माण कार्य मे राजवर्ग और धनिकवर्ग की ओर से बड़ा प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली थी। उसकी चर्चा हम कर चुके हैं।

(उ) लेखनकार्य में सुविधा—जैन विद्वानों को लेखनकार्य में साधुवर्ग और समाज की ओर से भी अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। जब कोई विद्वान् नवीन ग्रन्थ रचने का प्रयास करता था तो वह एतन्निमित्त लकड़ी की पाटी या कपड़े पर शब्दों को लिखा करता था और उन शब्दों की व्युत्पत्ति पर एक-दूसरे से विचार-विमर्श करता था। शब्दों के उपयुक्त प्रयोगों के लिए प्राचीन कवियों के ग्रन्थों से नमूने लिए जाते थे और भावानुकूल रचना का निर्माण कर संशोधन-कर्ताओं से उसका संशोधन करा लिया जाता था। इस प्रकार ग्रन्थ के संशोधित रूप को पत्थर-पाटी-स्लेट अथवा लकड़ी की पाटी आदि पर लिखकर उसे सुलिपिकों द्वारा ग्रन्थरूप मे लिखा लिया जाता था। ग्रन्थ-रचना करते समय विशेष-विशेष सूचना देने के लिए विद्वान् शिष्य और साधु-गण सहायक रहते थे। कितनी बार विद्वान् उपासक भी इस प्रकार की सहायता करते थे।[१]

जैन काव्य-साहित्य के निर्माण में मूल प्रेरणाएँ :

(अ) धार्मिक भावना—पूर्व और उत्तर मध्यकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों तथा लेखन कार्य की सुविधाओं का

१. प्रभावकचरित—हेमचन्द्राचार्यचरितम्.

प्रभाव हमारे आलोच्य युग के जैन काव्य साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा। जैन-काव्यकारों का दृष्टिकोण, इस साहित्य को देखने से स्पष्ट झलकता है कि धार्मिक था। जैनधर्म के आचार और विचारों को रमणीय पद्धति से एवं रोचक शैली से प्रस्तुत कर धार्मिक चेतना और भक्तिभावना को जाग्रत करना उनका मुख्य उद्देश्य था। जैन कवियों ने जैन काव्यों की रचना एक ओर स्वान्तः सुखाय की है तो दूसरी ओर कोमलमति जनसमूह तक जैनधर्म के उपदेशों को पहुँचाने के लिए की है। इसके लिए उन्होंने धर्मकथानुयोग या प्रथमानुयोग का सहारा लिया है। जन-सामान्य को सुगम रीति से धार्मिक नियम समझाने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ़कर अधिक प्रभावशाली साधन दूसरा नहीं है। उनकी कुछ रचनाओं को छोड़कर अधिकांश कृतियाँ विद्वद्वर्ग के लिए नहीं अपितु सामान्य कोटि के जनसमूह के लिए हैं। इस कारण से ही उनकी भाषा अधिक सरल रखी गई है। जनता को प्रभावित करने के लिए अनेक प्रकार की जीवन-घटनाओं पर आधारित कथाओं और उपकथाओं की योजना इन काव्यग्रंथों की विशेषता है। इन विद्वानों ने चाहे प्रेमाख्यानक काव्य रचा हो अथवा चरितात्मक, सभी में धार्मिक भावना का प्रदर्शन अवश्य किया है। इस धार्मिक भावना को प्रकट करने में उन्होंने जैनधर्म के जटिल सिद्धान्तों और मुनिधर्म-सम्बन्धी नियमों को उतना अधिक व्यक्त नहीं किया जितना कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सामान्य विवेचन के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहस्वरूप सार्वजनिक व्रतों, दान, शील, तप, भाव, पूजा, स्वाध्याय आदि आचरणीय धर्मों को प्रतिपादित किया है।

(आ) विभिन्न वर्गों के अनुयायियों की प्रेरणा—त्यागी वर्ग—चैत्यवासी, वसतिवासी, यति, भट्टारक—में क्रियाकाण्डविषयक भेदों को लेकर नये-नये गण-गच्छों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके नायकों ने अपने-अपने गण की प्रतिष्ठा के लिए और अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का विशेष रूप से भ्रमण करना शुरू किया। उन लोगों ने अपने उच्च-चारित्र्य, पाण्डित्य तथा ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्रादि से तथा अन्य चमत्कारों से राजवर्ग और धनिक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया तथा विभिन्न स्थलों पर चैत्य, उपाश्रय आदि धर्मायतनों की स्थापना करने लगे और अपने बढ़ते हुए शिष्य-समुदाय की प्रेरणा से अपने आश्रयदाताओं के अनुरोध से व्रत, पर्व, तीर्थादि माहात्म्य तथा विशिष्ट पुरुषों का चरित्र वर्णन करने के लिए कथात्मक ग्रंथों की रचना की ओर विशेष ध्यान दिया। इस युग के अनेक जैन कवियों को या तो राज्याश्रय प्राप्त था या वे मठाधीश थे। राष्ट्रकूट अमोघवर्ष और उसके उत्तरा-

धिकारियो के सरक्षण में जिनसेन और गुणभद्र ने महापुराण, उत्तरपुराण की, कुमारपाल के गुरु हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की तथा वस्तुपाल के आश्रय पर पश्चात्कालीन कई आचार्यों ने अनेक प्रकार से काव्य-साहित्य की सेवा की। अनेकों काव्यग्रन्थों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रेरणाओं का साभार उल्लेख भी मिलता है।

(इ) गच्छीय स्पर्धा—यद्यपि त्यागी वर्ग को राज्याश्रय और धनिक वर्ग का आश्रय प्राप्त था तथापि उन्हे धन की इच्छा नहीं थी। उनसे प्राप्त सुविधा का उपयोग वे अपनी गच्छीय प्रतिष्ठा और साहित्य-निर्माण में करते थे। काल की दृष्टि से पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक काव्यग्रन्थो का निर्माण उतनी तीव्र गति और प्रचुर मात्रा से नहीं हुआ जितनी कि ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक। दसवीं शताब्दी के पूर्व यदि कई विशाल एव प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गई थीं, तो दसवीं शताब्दी के बाद तीन सौ वर्षों मे यह सख्या बढ़कर सैकड़ों की तादाद तक पहुँच गई। जैन विद्वानों में मानो उस समय कथा-साहित्य[1] की रचना करने में परस्पर बड़ी स्पर्धा हो रही थी। अमुक गच्छवाले अमुक विद्वान् ने अमुक नाम का कथाग्रथ बनाया है, यह जानकर या पढकर दूसरे गच्छवाले विद्वान् भी इस प्रकार के दूसरे कथाग्रन्थ बनाने में उत्सुक होते थे। इस रीति से चन्द्र-गच्छ, नागेन्द्रगच्छ, राजगच्छ, चैत्रगच्छ, पूर्णतल्लगच्छ, वृद्धगच्छ, धर्मघोषगच्छ, हर्षपुरीयगच्छ आदि विभिन्न गच्छ, जोकि इन शताब्दियों में विशेष प्रसिद्धि पाये थे और प्रभावशाली बने थे, इन प्रत्येक गच्छ के विशिष्ट विद्वानों ने इस प्रकार के कथाग्रन्थों की रचना करने के लिए सबल प्रयत्न किये। इस युग में एक ही पीढ़ी के विभिन्न गच्छीय दो-दो, तीन-तीन विद्वानो ने तिरसठ शलाका महापुरुषों के चरित्रों तथा व्रत, मत्र, पर्व, तीर्थमाहात्म्य प्रसंगों को लेकर एक ही नाम की दो-दो, तीन-तीन रचनाएँ लिखीं। लोककथा, नीतिकथा, परीकथा तथा पशु-पक्षी आदि हजारों कथाओ को लेकर इन्होंने विशालकाय कथाकोष ग्रंथ भी लिखे।

(ई) ऐतिहासिक और समसामयिक प्रभावक पुरुषों के आदर्श जीवन—यद्यपि जैन कवि धनादि भौतिक कामनाओं से परे थे फिर भी कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त जैन विद्वानों ने युग की परिणति के अनुकूल ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक कृतियों की रचना की। इन कृतियों में प्रायः ऐसे ही राजवश या

---

१. प्राकृत में कथा और काव्य प्रायः एक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

प्रभावक व्यक्ति की प्रशंसा या इतिवृत्त लिखा गया जिन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए अपना तन, मन और धन लगा दिया था। सिद्धराज जयसिंह, परमार्हत कुमारपाल, महामात्य वस्तुपाल, जगडूशाह और पेथडशाह आदि उदारमना धर्मपरायण व्यक्ति थे जो किसी भी देश, समाज, जाति के लिए प्रतिष्ठा की वस्तु थे। जैन साधुओं ने उनके जैनधर्मानुकूल जीवन से प्रभावित होकर उन्हें अपने काव्यों का नायक बनाया और उनकी प्रशस्तियां लिखीं। आचार्य हेम-चन्द्र ने कुमारपाल के वंश की कीर्ति गाथा में 'द्वयाश्रयकाव्य' का प्रणयन किया, बालचन्द्रसूरि ने वस्तुपाल के जीवन पर 'वसन्तविलास' एवं उदयप्रभसूरि ने 'धर्माभ्युदय' काव्य की रचना की। इसी तरह प्रभावक आचार्यों और पुरुषों के नाम लघु निबन्धों के रूप में प्रबन्धसंग्रह, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित आदि लिखने की प्रेरणा मिली। ये कृतियाँ निकट अतीत या समसामयिक ऐति-हासिक पुरुषों के जीवन पर आधारित होने से तत्कालीन इतिहास जानने के लिए बड़ी ही उपयोगी हैं।

(उ) अन्य महाकवियों की शैली आदि का अनुकरण—संस्कृत साहित्य की कतिपय ख्यातिप्राप्त काव्य-कृतियों से प्रेरणा पाकर भी जैन कवियों ने उनके अनुकरण पर या उस शैली में अनेक काव्यों की रचना की। इस तरह हम देखते हैं कि बाण की कादम्बरी की शैली पर धनपाल ने 'तिलकमंजरी' और ओडयदेव वादीभसिंह ने 'गद्यचिन्तामणि' और 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध' की शैली पर हरिचन्द्र ने 'धर्मशर्माभ्युदय' और मुनिभद्रसूरि ने 'शान्तिनाथचरित्र' और वस्तुपाल ने 'नरनारायणानन्द' तथा जिनपाल उपाध्याय ने 'सनत्कुमारचरित' जैसे प्रौढ़ काव्यों की रचना की। इन रीतिबद्ध शास्त्रीय महाकाव्यों की रचना के पीछे कालिदास, भारवि, बाण आदि महाकवियों की समकक्षता प्राप्त करने या वैसा यश प्राप्त करने तथा विद्वत्ता-प्रदर्शन की भावना झलकती-सी लगती है।

(ऊ) धार्मिक उदारता, निष्पक्षता एवं सहिष्णुता—साहित्य सेवा के क्षेत्र में जैनाचार्यों की नीति निष्पक्ष तथा धार्मिक उदारता से प्रेरित थी। उन्होंने अनेक कृतियाँ इन भावनाओं से प्रेरित होकर भी लिखीं और पढ़ीं और उनका संरक्षण किया है। इस तरह हम देखते हैं कि अमरचन्द्रसूरि ने वायडनिवासी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर 'बालभारत' की तथा नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना की। माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश पर संकेत टीका लिखी तथा अनेक जैनेतर महाकाव्यों पर जैन विद्वानों ने प्रामाणिक टीकाएँ लिखीं,

तथा अनेक जैनेतर कथाग्रन्थों—पचतत्र, वेतालपंचविंशतिका, विक्रमचरित, पचदण्डछत्रप्रबन्ध आदि का प्रणयन किया। इतना ही नहीं, उनकी उदार साहित्य सेवा से प्रभावित हो अन्य धर्म और सम्प्रदाय के लोग उनसे अभिलेख साहित्य का निर्माण कराकर अपने स्थानों मे उपयोग करते थे। उदाहरणार्थ चित्तौड के मोकलजी मन्दिर के लिए दिगम्बराचार्य रामकीर्ति (वि० स० १२०७) से प्रशस्ति लिखायी गई थी। इसी तरह राजस्थान की सुन्ध पहाड़ी के चामुण्डा देवी के मन्दिर के लिए बृहद्गच्छीय जयमगलसूरि से और ग्वालियर के कच्छवाहों के मन्दिर के लिए यशोदेव दिगम्बर ने और गुहिलोत वश के घाघसा और चिर्वा स्थानों के लिए रत्नप्रभसूरि से शिलालेख लिखाये गये थे।[१]

इस तरह हम इस आलोच्य युग में (पाँचवीं से अब तक) जैन काव्य साहित्य के निर्माण में अनेक प्रकार की प्रेरणाएँ देखते हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं—

(अ) धर्मोपदेश और धार्मिक भावना,

(आ) गच्छीय अनुयायियों का अनुरोध,

(इ) गच्छीय स्पर्धा,

(ई) ऐतिहासिक और समसामयिक प्रभावक पुरुषों के आदर्श जीवन का चित्रण करने की प्रेरणा,

(उ) जैनेतर महाकवियों और काव्यों की समकक्षता या शैली के अनुकरण की भावना,

(ऊ) धार्मिक उदारता, निष्पक्षता एव सहिष्णुता।

भारतीय काव्य-साहित्य और जैन काव्य-साहित्य :

साहित्य—'साहित्य' शब्द सहित से बना है। साहित्य में सामूहिकता का भाव है। इसमें शब्द और अर्थ के सहभाव द्वारा इस लोक, पर लोक, मित्र, शत्रु सज्जन, दुर्जन सभी के समान हित का प्रतिपादन होता है।

साहित्य शब्द का प्रयोग व्यापक और संकुचित दोनों अर्थों में होता है। कुछ उपाधियों के साथ वह व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे भारतीय

---

१. जैन शिलालेख सग्रह, तृतीय भाग की प्रस्तावना (मा० दि० जै० ग्र०), बम्बई, १९५७.

साहित्य, ब्राह्मण-जैन-बौद्ध साहित्य, सस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य आदि। इस व्यापक अर्थ मे भी उपाधियों के द्वारा साहित्य के अर्थ का उत्तरोत्तर सकोच किया गया है। पर साहित्यकार, साहित्याचार्य आदि शब्दों मे साहित्य का प्रयोग अति संकुचित और एक विशिष्ट दिशा की ओर हुआ है। यहाँ साहित्य लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। साहित्य केवल सिद्धान्त, दर्शन, तर्क आदि ज्ञानात्मक और गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विज्ञानात्मक ही नहीं अपितु संवेगात्मक, रागात्मक और कल्पनात्मक भी होता है। साहित्यकार या साहित्याचार्य की दृष्टि से साहित्य उन ग्रन्थों मे नहीं है जो स्थायी बौद्धिक रुचि के तथ्यों और सत्यों से व्याप्त हैं अपितु उनमे है जो स्वय ही स्थायी रुचि के हैं। इस प्रकार के साहित्य मे तीन तत्त्व प्रमुख रूप से दिखाई पड़ते हैं: १. जीवन और जगत् की प्रखर अनुभूति, २. साहित्यकार का संवेगसवलित व्यक्तित्व और ३. ललित-प्रेरक शाब्दिक अभिव्यक्ति। दूसरे शब्दों मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन और जगत् के प्रखर अनुभवों की सवेगसवलित शाब्दिक अभिव्यक्ति साहित्य है।

अग्रेजी में 'लिटरेचर' और उर्दू में 'अदब' शब्द साहित्य के अर्थ को द्योतित करते हैं। अंग्रेजी का लिटरेचर तो Letters से बना है। तदनुसार समस्त अक्षर ज्ञान का विस्तार ही साहित्य है। पर उसके व्यापक अर्थ को सकुचित करते हुए ब्रिटेनिका विश्वकोष में Literature का अर्थ 'The best expression of the best thoughts reduced to writing' स्वीकार कर उत्कृष्ट विचार, उत्कृष्ट अभिव्यक्ति-सयत लेखन मे साहित्य माना गया है। उर्दू में कोमलता, कला, शिष्टता और अदा को अधिक महत्त्व मिला है अतः 'अदब' शब्द साहित्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

काव्य—सस्कृत साहित्य शास्त्र मे उपर्युक्त साहित्य का पर्यायवाची शब्द काव्य है क्योंकि सुदीर्घकाल तक साहित्य सृजन कविता में ही होता रहा है। आचार्य-भामह ने (६ठी श०) 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'[1] कहकर शब्द और अर्थ के साहित्य (सम्मेलन) को काव्य माना है और बाद मे इसकी परिभाषा करते हुए पडितराज जगन्नाथ ने कहा है—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्द. काव्यम्'[2]। इस परिभाषा में रमणीय अर्थ और शब्द इन दोनों के द्वारा काव्य

१. काव्यालंकार.

२. रसगगाधर.

मे रस, अलकार और ध्वनि का समन्वय निहित है। पंडितराज जगन्नाथ से बहुत पहले जैनाचार्य जिनसेन ने काव्य शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार बतलायी है—

कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरुच्यते।
तत्प्रतीतार्थमग्राम्यं सालङ्कारमनाकुलम्॥[1]

कवि के भाव अथवा कर्म को काव्य कहते हैं। कवि का काव्य सर्वसम्मत अर्थ से सहित, ग्राम्यदोष से रहित, अलकार से युक्त और प्रसाद आदि गुणों से शोभित होता है अर्थात् शब्द और अर्थ का वह समुचित रूप जो दोषरहित तथा गुण और अलकारसहित (रमणीय) हो, काव्य है। जिनसेन ने अर्थ और शब्द दोनों के सौन्दर्य को काव्य के लिए ग्राह्य बताते हुए उन लोगों की आलोचना की है जो किसी एक के सौन्दर्य को उपादेय मानते हैं। उनका कहना है कि अलकार सहित, शृगारादि रस से युक्त, सौन्दर्य से ओतप्रोत और उच्छिष्टतारहित मौलिक काव्य सरस्वती के मुख के समान शोभायमान होता है। जिसमें रीति की रमणीयता नहीं, न पदों का लालित्य और न रस का ही प्रवाह, वह अनगढ काव्य है, वह तो कर्णकटु ग्रामीण भाषा के समान है।[2]

जिनसेन प्रतिपादित उक्त परिभाषा को देखने पर ज्ञात होता है कि आचार्य ने काव्य मे बहिरंग तत्त्व—रीति, पदलालित्य (गुण और शब्दालकार) तथा अन्तरग तत्त्व—रस, भाव, अर्थालकार, एव मौलिकता का होना आवश्यक माना है।

परन्तु काव्य की परिधि को बढ़ते हुए देखकर काव्य-शास्त्रियों ने उसकी परिभाषा में आवश्यक सशोधन किया। आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश (सन् ११०० के लगभग) में काव्य में अलकार के अभाव में भी काव्यत्व सुरक्षित माना है। उसने दोषरहित, गुणवाली, अलकारयुक्त तथा कभी-कभी अलकाररहित शब्दार्थमयी रचना को काव्य कहा है।[3] इसी तरह अपने युग की रचनाओं को ध्यान में रखकर आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य की परिभाषा 'अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' मानते हुए भी इस

---

१. आदिपुराण, १. ९४.

२. वही, १. ९५-९६.

३. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन: क्वापि।

सूत्र की वृत्ति मे 'चकारो निरलंकारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित् काव्यत्व-ख्यापनार्थः'[१] लिखा है और दूसरे जैन साहित्यशास्त्री वाग्भट (१२वीं श०) ने भी 'शब्दार्थौ, निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्' कहकर इस सूत्र की वृत्ति में 'प्रायः सालंकाराविति निरलकारयोरपि शब्दार्थयो. क्वचित्काव्यत्वख्याप-नार्थम्'[२] द्वारा निरलकार शब्दार्थ को भी काव्य माना है। पीछे १५वीं शताब्दी के कवि नयचन्द्रसूरि ने अपने हम्मीरमहाकाव्य (वि. स. १४५० के लगभग) में अपशब्द शब्द (व्याकरण की दृष्टि से सदोष) के प्रयोग को भी काव्य में स्थान देते हुए कहा है—'प्रायोऽपशब्देन न काव्यहानिः समर्थताऽर्थे रस-संक्रमश्चेत्'[३] अर्थात् यदि किसी कृति में रसमग्न करने की क्षमता है तो फिर उसमें यदि कुछ अपशब्द (सदोष शब्द) भी हों तो उनसे काव्यत्व की हानि नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि काव्य की परिभाषा युग की आवश्यकता के अनुसार बदलती रही है और विशाल एव बहुविध काव्य राशि को देखते हुए उनके काव्यत्व को जॉचने के लिए एक मापदण्ड स्थापित करना कठिन है। सचमुच में 'निरंकुशाः कवयः' यह लोकोक्ति कवियों के लिए चरितार्थ है।

काव्य के प्रकार—साधारणतः काव्य के तीन भेद होते हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम व्यजनाप्रधान, मध्यम लक्षणाप्रधान और अधम अभिधा-प्रधान काव्य होते हैं। काव्य विधा की दृष्टिसे काव्य के दो प्रकार हैं : १. प्रेक्ष्य-काव्य और २. श्रव्य-काव्य। जो रंगमच पर अभिनय करने के लिए रचे गये हों वे प्रेक्ष्य-काव्य हैं। उनका अभिनय आखों द्वारा देखा जाता है। जो काव्य कानों द्वारा सुने जायॅ उन्हे श्रव्य-काव्य कहा जाता है। प्राचीन समय में काव्य अधिकतर सुने जाते थे, उनका प्रचार गान द्वारा होता था। पढ़ने के रूप में पुस्तके कम उपलब्ध होती थीं। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य-काव्य के दो भेद किये हैं—१. पाठ्य और २. गेय। पाठ्य के अन्तर्गत उन्होंने नाटक, प्रकरण, नाटिका, समव-कार, व्यायोग, प्रहसन, सट्टक आदि माना है और गेय के अन्तर्गत रासक, श्रीगदित, रागकाव्यादि माने हैं। श्रव्य-काव्य के तीन प्रकार माने गये हैं : १. गद्य, २. पद्य और ३. मिश्र। गद्य का अर्थ है जो बोलचाल योग्य हो। फिर भी

---

१. काव्यानुशासन.

२. वही.

३. सर्ग १४. ३८.

काव्य के रूप में छन्दोयोजना से रहित तथा काव्य के आवश्यक गुणों से सयुक्त रचना को गद्य काव्य कहा जाता है। गद्य काव्य को आख्यायिका और कथा इन दो भेदों में विभक्त किया गया है। आख्यायिका वह है जिसमें कोई धीरोदात्त नायक अपने जीवन वृत्तान्त को अनेक रोमाचक तत्त्वों के साथ अपने ही मुख से अपने मित्रादि को बताये। सस्कृत के हर्षचरित जैसे ग्रन्थ आख्यायिका के अन्तर्गत माने गये हैं। कथा उसे कहते हैं जिसमे कवि स्वय नायक के जीवन वृत्तान्त का वर्णन गद्य मे करे। इस वर्ग में दशकुमारचरित्र, कादम्बरी आदि आते हैं।

पद्य काव्य छन्दोबद्ध रचना को कहते हैं। पद्य काव्य के दो भेद होते है: १. प्रबन्ध काव्य और २. मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में एक कथा होती है और उसके सभी पद्य एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। प्रबन्ध काव्य में वर्णन, प्राक्कथन, पारस्परिक सम्बध और सामूहिक प्रभाव की प्रधानता रहती है। जिनसेन के अनुसार 'पूर्वापरार्थघटनैः प्रबंधः'[1] अर्थात् पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाहपूर्वक कथात्मक रचना प्रबन्ध काव्य है। मुक्तक काव्य के पद्य स्वतः पूर्ण होते है। उसमें प्रायः प्रत्येक पद्य की स्वतत्र सत्ता रहती है। स्फुट कविताएँ इस विधा के अन्तर्गत आती हैं। सुभाषितों और स्तोत्रों के रूप में यह विधा अभिप्रेत है।

प्रबध काव्य दो रूपों में पाया जाता है: १. महाकाव्य और २. कथाकाव्य। महाकाव्य में जीवन का सर्वांगीण चित्रण होता है और सर्गबद्ध रचना है और उसका आकार भी बृहत् होता है। जिनसेन के अनुसार महाकाव्य वह है जो इतिहास और पुराण प्रतिपादित चरित का रसात्मक चित्रण करता हो तथा धर्म, अर्थ और काम के फल को प्रदर्शित करता हो।[2] कथाकाव्य वह है जिसमें रसात्मक एव अलकार शैली में रोमाञ्चक तत्त्वों के समावेश के साथ कथावर्णन हो। यह छन्दोबद्ध रचना होने से आख्यायिका और गद्य कथा से भिन्न है पर तत्त्वों की दृष्टि से एक है। हेमचन्द्र ने कथाकाव्य के आख्यान, मन्थल्लिका, परिकथा, उपकथा, सकलकथा, खण्डकथा आदि अनेक भेदों का वर्णन किया है। इनमें से दो प्रमुख हैं: १. सकलकथा और २. खण्डकथा। सकलकथा काव्य में महाकाव्य की तरह जीवन के पूर्ण भाग का चित्रण होता है। इसका कथानक विस्तृत होता है और इसमें अवान्तर-कथाओं की योजना भी होती है परन्तु महाकाव्यीय बन्धनों (सर्गबद्धता, छन्दप्रयोग, भाषा की गुरुता आदि) के अभाव में सकलकथाकाव्य, महाकाव्य से भिन्न विधा है। जैनों के अधिकाश

---

१. आदिपुराण, १ १००.

२. वही, १.९९.

चरितकाव्य इसी विधा के अन्तर्गत आते हैं। जैसे—समरादित्यचरित (प्रद्युम्न-सूरिकृत), निर्वाणलीलावती (जिनेश्वरसूरिकृत) आदि।[1] खण्डकथा काव्य मे जीवन के एक पक्ष का चित्रण होता है, अथवा एक ही घटना को महत्ता दी जाती है। अवान्तर कथाओं की योजना भी प्रायः उसमें नहीं होती। इसे खण्ड-काव्य नाम से भी कहा जाता है। कालिदास का मेघदूत और जैन विद्वानों कृत इस विधा के अनेक काव्य इसके अन्तर्गत आते हैं।

मुक्तक काव्य पाठ्य और गेय भेद से दो प्रकार का है। भर्तृहरि के नीति-शतक आदि पाठ्यमुक्तक के और जयदेव का गीतगोविन्द गेयमुक्तक के उदाहरण हैं। पद्यों की सख्या के अनुसार भी मुक्तक के अनेक भेद हैं जैसे एक पद्य की स्फुट कविता मुक्तक, दो पद्यवाली युग्म या सन्दानितक, तीन पद्यवाली विशेषक, पॉच पद्यवाली कलापक, पॉच से बारह या चौदह तक कुलक, शत पद्यवाली शतक आदि।

महाकाव्यों के प्रकार—पाश्चात्य समीक्षाशास्त्रियों ने महाकाव्य के दो रूप स्वीकार किए हैं : १. सकलनात्मक महाकाव्य (Epic of growth) और २ अलंकृत महाकाव्य। सकलनात्मक वे विकसनशील महाकाव्य हैं जिन्हें अनेक विद्वानो ने समय-समय पर सजाया, सम्हाला, परिवर्धित किया है और युगो के बाद उनका वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। वे प्राचीन कुछ गाथाओं के आधार से पल्लवित हुए हैं। उदाहरण के रूप में रामायण और महाभारत के नाम आते हैं।

अलकृत महाकाव्य की रचना व्यक्ति विशेष द्वारा की जाती है। इसमें कवि कलापक्ष और भाषा-शैली की सुन्दरता पर विशेष ध्यान रखता है। अलंकृत महाकाव्यों का प्रादुर्भाव रामायण और महाभारत के पश्चात् ही हुआ है। इनमे उन दोनों की स्वाभाविकता नहीं पाई जाती। इनमें कलात्मकता, कृत्रिमता की ओर विशेष झुकाव है। अलकृत महाकाव्यों के कथानको और शैली पर रामायण और महाभारत का प्रभाव भी प्रायः देखा जाता है इसलिए उन्हे अनुकृत महा-काव्य भी कहते हैं।

जैन काव्य साहित्य मे विकसनशील महाकाव्य नहीं है। अलंकृत या अनुकृत काव्यों का ही बाहुल्य है। अलकृत महाकाव्यों को शैली की दृष्टि से तीन भेदों में

---

१ जैनों के विशाल कथाकाव्यों (कथासाहित्य) का विवेचन महाकाव्यों के वर्णन के बाद दिया जा रहा है।

विभक्त किया जा सकता है : १. शास्त्रीय महाकाव्य, २. ऐतिहासिक महाकाव्य, ३. पौराणिक महाकाव्य। कुछ ऐसे अन्य महाकाव्य हैं जिनमे मिलीजुली शैलियों के भी दर्शन होते हैं। एक ओर शास्त्रीय शैली तो दूसरी ओर ऐतिहासिक शैली, जैसे हेमचन्द्राचार्य का कुमारपालचरित। इसी तरह एक ओर पौराणिक तो दूसरी ओर ऐतिहासिक, जैसे उदयप्रभसूरि का धर्माभ्युदयकाव्य। कुछ विद्वान् कतिपय पौराणिक महाकाव्यों में प्रेम तत्त्व और लौकिक आख्यानों की प्रचुरता के कारण उन्हें रोमाचक महाकाव्य कहते हैं पर यथार्थ में देखा जाय तो भारतीय कवियों ने उन कथाओ को भी जो कदाचित् लौकिक प्रेमकहानी है, अच्छी तरह पौराणिक रूप में प्रस्तुत किया है अतः वे पौराणिक महाकाव्य ही हैं।

१. शास्त्रीय महाकाव्य—ये तीन रूपों में पाये जाते हैं। प्रथम तो वे जो भामह, दण्डी आदि अलकारविदों द्वारा निरूपित लक्षणग्रन्थों के पूर्व रचे गये थे। उनमें लक्षणशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य सम्बधी सभी रूढियों और नियमों का अन्धानुकरण नहीं किया गया। इसमें कवि द्वारा अपनी प्रतिभा का स्वाभाविक उपयोग हुआ है जिससे स्वाभाविकता के साथ कलात्मकता को भी स्थान मिला है। इन्हें काव्यशास्त्र की रीतियों से बँधा न होने के कारण रीतिमुक्त महाकाव्य कहते हैं। इस प्रकार के महाकाव्यो में अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द, कालिदास के रघुवंश और कुमारसभव उल्लेखनीय हैं।

दूसरे प्रकार के रीतिबद्ध महाकाव्य है जो काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रणीत रीतियों से बद्ध हैं। इनमे कृत्रिमता, दुरुहता और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रचुरता रहती है। ऐसे काव्यों में कथावस्तु की उपेक्षा और अलकार, वाक्चातुर्य, पाण्डित्य-प्रदर्शन एव कल्पनाओं की भरमार रहती है। भारविकृत किरातार्जुनीयम्, माघकृत शिशुपालवध, वस्तुपालकृत नरनारायणानन्द आदि इस श्रेणी के महाकाव्य हैं।

तीसरे प्रकार के शास्त्रीय काव्यों को हम शास्त्रकाव्य और बहुर्थक काव्य के रूप में देखते हैं। शास्त्रकाव्य में काव्य के साथ-साथ व्याकरण शास्त्र के नियमों का प्रदर्शन होने से उक्त नाम से कहते हैं, जैसे भट्टिकाव्य, हेमचन्द्र का द्वयाश्रयकाव्य आदि। बहुर्थक महाकाव्यों में दो या दो से अधिक कथानकों को विविध अलकारों द्वारा ऐसा बुना जाता है कि पढनेवालों को चमत्कार-सा लगता है। ऐसे काव्यों मे धनजय का द्विसंधान और हेमचन्द्र तथा मेघविजय के सप्तसंधान प्रभृति अनेक काव्य हैं।

२. ऐतिहासिक महाकाव्य—रोम, यूनान, चीन जैसी इतिहास लेखन की परम्परा भारतीय इतिहास में यद्यपि नहीं देखी जाती पर भारतीय कवि उस शैली से एकदम अपरिचित हों यह नहीं कहा जा सकता। इतिहास को रचने की विविध शैलियों—अभिलेख, ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ, प्रतिमालेख, पट्टावलियों, तीर्थ-मालाएँ आदि के दर्शन हमें भारतीय साहित्य में प्रचुररूपेण होते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में गोडवहो, भुवनाभ्युदय, नरसहसाङ्कचरित, विक्रमाङ्कदेवचरित, राजतरंगिणी, द्व्याश्रयकाव्य, सुकृतसंकीर्तन आदि भी उपलब्ध हैं। इन ऐतिहासिक महाकाव्यों को काव्यकारों ने अनेक पौराणिक, काल्पनिक एवं अनैतिहासिक घटनाओं से रंग दिया है, अतः उन्हें विशुद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य नहीं कह सकते।

३. पौराणिक महाकाव्य—पौराणिक महाकाव्यों के आदि उदाहरण रामायण और महाभारत हैं। रामायण की रचना की उत्तरावधि दूसरी शताब्दी ईस्वी और महाभारत के अन्तिम रूप धारण करने की उत्तरावधि पाँचवीं शताब्दी ईस्वी मानी जाती है। उनके बाद ही ६ठी शताब्दी में विमलसूरि की प्राकृत कृति पउमचरिउ, ७वीं शताब्दी में रविषेण का संस्कृत पद्मपुराण तथा बाद की शताब्दियों में सैकड़ों रचनाएँ इस शैली में लिखी गई हैं। जैन कवियों ने मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में अनेक पौराणिक महाकाव्य निर्मित किये हैं। इन भाषाओं के महाकाव्यों ने अपने समकालीन अन्य भाषाओं के महाकाव्यों को प्रभावित किया है। अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों में जो रोमाचक तत्त्व प्राप्त होते हैं उनका समावेश भी इन पौराणिक महाकाव्यों में यत्र-तत्र हुआ है।

जैन महाकाव्यों का अन्य साहित्य में स्थान :

विश्व साहित्य की श्रेणी में जैन महाकाव्यों की स्थिति जानने के लिए तथा भारतीय महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियों की समकोटि में उनकी देन को अवगत करने के लिए यह आवश्यक है कि पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियों पर एक दृष्टिपात कर लें।

पाश्चात्य साहित्य में महाकाव्य को 'एपिक' कहा जाता है। प्राचीन और अर्वाचीन काव्यमनीषियों ने अर्थात् अरस्तू, केम्स, हाब्स, विलियम रोज बैनिट, वाल्टेयर, एम० डिक्सन, एबरक्रोम्बी, टिलयार्ड, सी० एम० बावरा, डब्ल्यू० पी० केर प्रभृति विद्वानों ने महाकाव्य की जो व्याख्याएँ और परिभाषाएँ निर्धारित की हैं उनसे निम्नांकित प्रमुख तत्त्वों की जानकारी होती है—

१. महाकाव्य का उद्देश्य महान् होता है, वह आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों क्षेत्रो को स्पर्श करता है। उसका उद्देश्य कथानक के माध्यम से शिक्षा देना, आनन्द प्रदान करना और नवीन मानव सत्यों का उद्घाटन कर नवीन मानव समाज का निर्माण करना है।

२. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रख्यात, विशाल एव महत्त्वपूर्ण कथानक चुनना चाहिये जो कि परम्परा-प्राप्त कथाओं या ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हो।

३. उक्त उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व ऐसे नायक द्वारा होता है जिसे महापुरुष, शूरवीर और विजयी होना चहिये। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह मानव ही हो, देवता आदि अलौकिक व्यक्ति भी नायक हो सकते हैं।

४. महाकाव्य मे जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण होना चाहिये। इस उद्देश्य के लिए महाकाव्य में गौणपात्रों की अवतारणा, विविध घटनाओं की सृष्टि, अवान्तर कथाओं की योजना आदि अनेक तत्त्वों के सम्मिश्रण से संघटित कथानक का निर्माण करना चाहिये।

५. महाकाव्य के कथानक की पूर्व और अपर घटनाओं को एक दूसरे से सम्बद्ध होना चाहिये। कथानक को अन्वितिपूर्ण, गतिशील और सुसगठित होना चाहिये।

६. महाकाव्य में अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का समावेश होना सम्भव है। ईलियड, औडिसी, पैराडाइज लास्ट जैसे महाकाव्यों म भूत, प्रत, देवता आदि अतिप्राकृत पात्रों और उनके अलौकिक कार्यों का समावेश हुआ है।

७. महाकाव्य की शैली उदात्त, गम्भीर और मनोहारी होनी चाहिये।

८. महाकाव्य को छन्दोबद्ध रचना होना चाहिये। छन्द का प्रयोग वर्ण्य विषय के अनुकूल होना चाहिये तथा आदि से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।

भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य में निम्नलिखित तत्त्व होने चाहिये—

१. उसे सर्ग, आश्वास या लम्भको से बद्ध होना चाहिये। सर्गों को न अधिक विस्तृत और न अधिक लघु होना चाहिये। महाकाव्य में कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिये।

२. महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम के फल को प्रदर्शित करना है।[१] इसलिए इसका कथानक विशाल होना चाहिये और किसी महती घटना पर आश्रित होना चाहिये।

३. महाकाव्य में इतिहास एवं पुराण से सम्बद्ध अथवा परम्परा की दृष्टि से प्रख्यात महापुरुषों का चरित्रचित्रण होना चाहिये। कथानक अनुत्पाद्य (इतिहास-पुराणाश्रित) तथा उत्पाद्य (कविकल्पनाजन्य) रीति से दो प्रकार का होता है। अनुत्पाद्य का केवल कथापञ्जर लेकर कवि अपनी कल्पना से महाकाव्य को सुगठित करता है।

४. कथानक का विस्तार सगठित और व्यवस्थित रूप से करने के लिए पाँच नाट्यसंधियों की योजना करनी चाहिये।

५. जीवन के व्यापक और गम्भीर अनुभवों का चित्रण करने के लिए महाकाव्य मे अवान्तर कथाओं की योजना करनी आवश्यक है।

६. नायक के अतिरिक्त प्रतिनायक और गौणपात्रों की अवतारणा भी महाकाव्य मे होनी चाहिये।

७. महाकाव्य में अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का होना आवश्यक है। अलौकिक कार्य देवता, राक्षस, यक्ष, व्यन्तर आदि द्वारा ही नहीं बल्कि मनुष्यों और मुनियों द्वारा भी दिखाना आवश्यक है।

८. महाकाव्य मे कविसम्प्रदाय-सम्मत रात्रि, प्रातःकाल, मध्याह्न, सन्ध्या, षट्ऋतु, पर्वत, वन, उद्यान क्रीड़ा, जल क्रीड़ा तथा अन्य बातों का वर्णन होना चाहिये।

९. काव्य के आरम्भ मे मगलाचरण, वस्तु-निर्देश, सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन निन्दा होना आवश्यक है। काव्य के अन्त में हेमचन्द्राचार्य के मत से कवि को अपना उद्देश्य प्रकट करना चाहिये।

१०. महाकाव्य के मूल तत्त्व के रूप मे रस का स्थान प्रमुख है। सभी आचार्यों ने महाकाव्य में नवरसों का विधान अनिवार्य माना है। विश्वनाथ ने रस का क्षेत्र सीमित करते हुए कहा है कि शृङ्गार, वीर और शान्त मे से कोई एक रस प्रधान तथा अन्य रस गौण होना चाहिये।

---

१. महापुराणसम्बन्धिमहानायकगोचरम्।
त्रिवर्गफलसन्दर्भं महाकाव्यं तदिष्यते॥ आदिपुराण, १. ९९.

४. कर्मफल बताने के लिए प्रायः सभी जैन महाकाव्यों में पूर्व भव की कथाओं एव अवान्तर कथाओं की योजना की गई है।

५. जैन महाकाव्यों में कविसमय-सम्मत वर्ण्य-विषयों का वर्णन अर्थात् सध्या, रात्रि, सूर्योदय, ऋतु, वन, पर्वत, जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन कभी मूल-कथा के साथ तो कभी अवान्तर कथाओं के साथ दिया गया है। अमरचन्द्रसूरि ने तो वर्ण्य-विषयों के उपवर्ण्य विषय को बताकर वस्तुवर्णन प्रसग को बढा दिया है।

६. जैन काव्यों ने रस को मूलतत्त्व के रूप में माना है। अधिकाश जैन काव्यों में शान्त रस की ही प्रधानता है, शृगार, वीर आदि को गौण रूप दिया गया है।

७. जैन महाकाव्यों में आवश्यकतानुसार अलकारों का उपयोग हुआ है। वाग्भट ने अलकारों को महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों में नहीं माना है।

८. जैन महाकाव्यों में अनेकों की भाषा-शैली प्रौढ़ है पर अधिकाश पौराणिक काव्यों की भाषा गरिमापूर्ण नहीं है। उनमें प्राकृत, अपभ्रंश, देशी शब्दों के समिश्रण दिखते हैं।

९. जैन महाकाव्यों का उद्देश्य विशेषकर धर्म के फल को प्रदर्शित करना है फिर भी उनमें त्रिवर्ग धर्म, अर्थ और काम के फल की चर्चा है और अन्तिम फल मोक्षप्राप्ति बताया है।
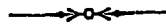
प्रकरण २

पौराणिक महाकाव्य

जैन पौराणिक महाकाव्यों की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ :

१. जैन पौराणिक महाकाव्यों की कथावस्तु जैनधर्म के शलाकापुरुषों—तीर्थंकर, राम, कृष्ण आदि ६३ महापुरुषों के जीवनचरितों को लेकर निबद्ध की गई है। इनके अतिरिक्त अन्य धार्मिक पुरुषो के जीवनचरित भी वर्णित हुए हैं। कभी-कभी किसी व्रत तीर्थ, पच नमस्कार आदि के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भी काव्य रचना की गई है। इन काव्यों को पुराण, चरित या माहात्म्य नाम से भी कहते हैं।

२. इन जीवनचरितों का उद्गम जैन आगमों और भाष्यों तथा प्राचीन पुराणों मे है। कथानक में कल्पना द्वारा भी परिवर्तन करने की चेष्टा नहीं की गई है।

३. ये सभी धार्मिक काव्य हैं। कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना इनका उद्देश्य है। इसलिए इनमें कथारस गौण और धर्मभाव प्रधान है। आत्मज्ञान, संसार की नश्वरता, विषय-त्याग, वैराग्यभावना, श्रावकों के आचार आदि का प्रतिपादन तथा नैतिक जीवन की उन्नति के लिए आदर्शों की योजना इन कृतियों के मुख्य विषय हैं।

४. कर्मफल की अनिवार्यता दिखाने के लिए चरितनायकों एव अन्य पात्रों के पूर्वभवों की कथा मूल कथा के आवश्यक अग के रूप में कही गई है।

५. अनेक काव्यों में स्तोत्रों की योजना की गई है जिनमे तीर्थंकरों या पौराणिक पुरुषों या मुनियों की स्तुति की गई है। किसी-किसी काव्य में तीर्थ-स्थानों और व्रतों का माहात्म्य भी वर्णित है।

६. कई काव्यों में ब्राह्मण, बौद्ध, चार्वाक आदि दर्शनों के सिद्धान्तों का खण्डन और जैन दर्शन का मण्डन है।

७. कुछ काव्य भावात्मक काम. मोह, अहकार, अज्ञान, रागादि तत्त्वों को प्रतीक योजना द्वारा पात्र रूप से प्रस्तुत करते हैं।

८. अधिकाश काव्यों में मूल कथा के साथ अनेक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं, जिनसे कथानक में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। फिर भी इन अवान्तर कथाओं में प्रचलित लोककथाओं के प्रचुरमात्रा में दर्शन होते हैं। ये अवान्तर कथाएँ कभी-कभी एक तृतीयाश तो कभी आधे से भी अधिक भाग को घेरे रहती हैं।

९. रचनाविन्यास में प्रारम्भ प्रायः एक सा दिखायी पड़ता है—जैसे तीर्थकरों की स्तुति, पूर्व कवियों और विद्वानों का स्मरण, सज्जन-दुर्जन चर्चा, देश, नगर, राजा, रानी का वर्णन, तीर्थंकर या मुनि का नगर के बाहर उद्यान में आना, राजा या नगरवासियों का वहाँ जाना, उपदेश सुनना और सवाद रूप में पूरी कथा का वर्णन।

१०. शास्त्रीय महाकाव्योचित वर्ण्य विषयों में नदी, पर्वत, सागर, प्रातः, संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, सुरापान, सुरति, जलक्रीड़ा, उद्यानक्रीड़ा, वसन्तादि ऋतु, शारीरिक सौन्दर्य, जन्म, विवाह, युद्ध और दीक्षा आदि के वर्णन से समग्र जीवन का चित्र उपस्थित करना।

११. इन महाकाव्यों में अलौकिक एव अप्राकृत तत्त्वों की प्रधानता दिखायी पड़ती है। ये दिव्यलोकों, दिव्यपुरुषों और दिव्ययुगों की कल्पना से भरे हैं, साथ ही समय-समय पर विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, देव, राक्षस आदि की उपस्थिति से पात्रों की सहायता की गई है। उनकी उपस्थिति का सम्बन्ध पूर्व भवों के कर्मों से जोड़कर उस अस्वाभाविकता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

१२. इनमें अनेक प्रेमाख्यानक काव्य हैं जिनमें प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, सैनिक अभियान, नगरावरोध, युद्ध और विवाह को महत्त्व दिया गया है।

१३. पौराणिक महाकाव्यों में महाकाव्य की परम्परा के विपरीत कहीं-कहीं क्षत्रियकुलोत्पन्न धीरोदात्त नृप को नायक न बनाकर मध्यम श्रेणी के वणिक् आदि पुरुषों को और कहीं स्त्री को प्रमुख पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

१४. ये काव्य रस की दृष्टि से अधिकाश में शान्त रस पर्यवसायी हैं। यद्यपि इनमे आवश्यकतानुसार शृगार, वीर, रौद्र, भयानक रसों का वर्णन है पर प्रधानता शान्त रस को दी गई है। जीवन की अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बाद भी अन्त में किसी मुनि के उपदेश-श्रवण द्वारा जीवन और ससार से विरक्ति दिखाना, सक्षेप में यही सभी पौराणिक महाकाव्यों का लक्ष्य है।

१५. शास्त्रीय नियमों के अनुसार 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' अर्थात् महाकाव्य को सर्गबद्ध होना आवश्यक है। अधिकाश पौराणिक महाकाव्य सर्गबद्ध हैं। किन्तु कुछ महाकाव्यों की कथा का विभाजन उत्साह, पर्व, लम्भक आदि नामों से हुआ है।

१६. ये महाकाव्य शिक्षित और पण्डित वर्ग की अपेक्षा जनसाधारण को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। इसलिए इनकी भाषा सरल और स्वच्छन्द है। १३वीं-१४वीं शताब्दी तथा उसके आगे के काव्यों में मुहावरों, लोकोक्तियों तथा देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा व्यावहारिक एव बोल-चाल जैसी हो गई है।

१७. इन महाकाव्यों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है। अन्य छन्दों में उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका आदि प्रमुख छन्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। इनमें अनेक प्रकार के अर्धसम और विषम वर्णिक छन्दों तथा अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी हुआ है जिनमें षट्पदी, कुण्डलिक, आख्यानकी, वैतालीय, वेगवती के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्णिक छन्दों में छन्द-शास्त्र के नियम के अनुसार जहाँ-जहाँ यति का विधान है वहाँ अन्त्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा छन्द को नवरूपता प्रदान की गई है। कई महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। किन्तु कहीं-कहीं इन छन्दों में अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से छन्दों में गेयता का गुण अधिक आ गया है और लय में गतिशीलता आ गई है। यह अन्त्यानुप्रास प्रत्येक चरण के अन्त में ही नहीं अपितु चरण के मध्य में भी पाया जाता है।

प्रतिनिधि रचनाएँ और उनपर आधारित संक्षिप्त कृतियाँ :

जैन पौराणिक महाकाव्यों का परिचय देने के क्रम में हमारी पद्धति यह है कि सर्व प्रथम हम उन प्रतिनिधि रचनाओं का विवेचन करेंगे जो उत्तरवर्ती पौराणिक काव्यों के आधार हैं, स्रोत हैं, उपादान हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि रचना के साथ उनके आधार पर रची संक्षिप्त कृतियों का भी विवरण दिया जायगा ताकि एक-एक का चित्र सामने आता जाय। इसके बाद अलग-अलग तीर्थंकरों एवं अन्य शलाका पुरुषों के चरितों का विवरण दिया जायगा और इसी तरह अन्य प्रभावक आचार्यों और पुरुषों का भी।

जैन महाकाव्यों की अनेक प्रतिनिधि रचनाएँ आज तक अनुपलब्ध हैं। दाक्षिण्याक आचार्य उद्योतन सूरि ने अपनी 'कुवलयमाला' कथा की प्रस्तावना में पादलिप्त की तरंगवती, षट्पर्णक कवियों की रचना गाथाकोश, विमलाक के

पउमचरियम्, देवगुप्त के सुपुरुषचरित, हरिवर्ष के हरिवंशोत्पत्ति, सुलोचना-कथा, राजर्षि प्रभंजन का यशोधरचरित आदि अनेक कवियों और रचनाओं का उल्लेख किया है उनमें से कुछ ही मिल सकी हैं और अनेकों अनुपलब्ध है। इसी तरह संघदासगणि का वसुहिण्डी ग्रन्थ खण्डित मिला है। भद्रबाहुकृत वसुदेवचरित का उल्लेख भर मिलता है। कवि परमेष्ठिकृत 'वागर्थसंग्रह' तथा चतुर्मुख का 'पउमचरिउ' और हरिवंशपुराण आज तक अनुपलब्ध है। जो उपलब्ध है उन्हीं का परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

भारतीय साहित्य में कुछ ऐसे राष्ट्रीय चरित्र हैं जो सभी वर्गों को रुचिकर हैं। राम और कृष्ण तथा कौरव-पाण्डवों के चरित्र इसी प्रकार के हैं। इनकी कथावस्तु को लेकर रामायण, महाभारत और हरिवंशपुराण की रचना हुई है। वाल्मीकि का रामायण आदिकाव्य माना जाता है। जैनों के पौराणिक महाकाव्य भी इन्हीं राष्ट्रीय चरित्रों को लेकर प्रारंभ होते हैं। इस क्रम मे वि० सं० ५३० में रचित विमलसूरि का पउमचरिय प्राकृत का प्रथम जैन महाकाव्य है। उसके आधार पर कतिपय संस्कृत-प्राकृत रचनाएँ भी लिखी गई हैं। इसी तरह कौरव पाण्डवों के चरित को लेकर जिनसेन ने शक स० ७०५ में हरिवंशपुराण की रचना की। उसके अनुकरण पर बाद की शताब्दियों मे प्राकृत, अपभ्रंश एव संस्कृत में कई रचनाएँ बनी। रामायण और महाभारत विषयक रचनाओं के बाद काल की दृष्टि से महापुराणों का क्रम आता है जिनमें त्रिषष्टिशलाका[1] पुरुषों के चरित वर्णित हैं। इनका प्रारंभ जिनसेन-गुणभद्र के 'महापुराण-उत्तर-पुराण (९वीं श० का उत्तरार्ध) से होता है। उनके आधार पर कई रचनाएँ उसी

१. इनका उल्लेख जैनागमों में अर्थात् समवायांग, ज्ञाताधर्मकथा, कल्पसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, आवश्यकनिर्युक्ति-चूर्णि, विशेषावश्यकभाष्य और वसुदेवहिण्डी मे मिलता है। वहाँ इन्हें 'उत्तम पुरुष' की संज्ञा दी है। किन्तु बाद में 'शलाका पुरुष' संज्ञा विशेष रूढ हुई। इन शलाका पुरुषों की संख्या जिनसेन और हेमचन्द्र ने ६३ दी है। समवायांग (सू० १३२) में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलदेव को ही 'उत्तम पुरुष' मान ५४ संख्या दी है पर उनमें ९ प्रतिनारायणों को जोड़ ६३ की संख्या बनती है। भद्रेश्वर ने अपनी कहावली मे ९ नारदों की संख्या जोड़कर शलाका पुरुषों की संख्या ७२ दी है। हेमचन्द्र ने 'शलाकापुरुष' का अर्थ 'जातरेखाः' किया और भद्रेश्वरसूरि ने 'सम्यक्त्वरूप शलाका से युक्त' अर्थ किया है।

नाम पर या पुराणसारसंग्रह या चतुर्विंशतिजिनेन्द्रचरित्र, त्रिषष्टिस्मृति आदि नाम से भी बनी। इस विषय का प्राकृत ग्रन्थ 'चउपन्नमहापुरिसचरियं' और 'कहावलि' भी उल्लेखनीय है। संस्कृत में विरचित हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित' महान् आकर ग्रन्थ है। उसमें ही अनेक पौराणिक महाकाव्यों का समावेश है। उसके लघुसंस्करण रूप कतिपय रचनाएँ मिली हैं। उनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

रामायण, महाभारत तथा महापुराणों के पश्चात् अलग-अलग तीर्थंकरों के जीवनचरित अधिक संख्या में पाये जाते हैं जो १० वीं से १८ वीं शताब्दी तक लिखे गए थे। उनका विवेचन भी क्रमशः प्रस्तुत किया जायगा।

राम-विषयक पौराणिक महाकाव्य :

पउमचरिय—प्राकृत भाषा में निबद्ध यह[1] कृति जैन पुराण साहित्य में सबसे प्राचीन कृति है। इसमें जैन मान्यतानुसार रामकथा का वर्णन है। यह ग्रन्थ ११८ अधिकारों में विभक्त है जिनमें कुल मिलाकर ८६५१ गाथाएँ हैं जिनका मान १२ हजार श्लोक प्रमाण है।

इसमें राम का नाम पद्म दिया गया है, वैसे राम नाम भी ग्रन्थ में व्यवहृत हुआ है। इस ग्रन्थ के रचने में ग्रन्थकार का मूल उद्देश्य यह था कि वह प्रचलित राम-कथा के ब्राह्मण रूप के समान अपने सम्प्रदाय के लोगों के लिए जैन रूप प्रस्तुत करे। कितनी ही बातों में इसकी कथा वाल्मीकि रामायण से भिन्न है। लगता है कि विमलसूरि के सम्मुख रामकथा सम्बन्धी कुछ ऐसी सामग्री भी उपस्थित थी जो वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध नहीं थी या कुछ भिन्न थी, जैसे राम का स्वेच्छापूर्वक वनवास, स्वर्णमृग की अनुपस्थिति, सीता का भाई भामण्डल, राम और हनुमान के अनेक विवाह, सेतुबंध का अभाव आदि। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे रावण, कुम्भकर्ण और सुग्रीव, हनुमान आदि राक्षसों और वानरों को दैत्यों और पशुओं के रूप में चित्रित नहीं किया बल्कि उन्हें सुसंस्कृत मनुष्य जाति के रूप में दिखाया गया है।

---

१. प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२. ग्रन्थ का नाम प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'पउमचरियम्' दिया हुआ है। इसे यदाकदा राघवचरित, रामदेवचरित और रामारविन्दचरित भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त इसकी पुराण संज्ञा भी दी गई है।

ग्रन्थकर्त्ता ने अपने पूर्व स्रोतों को सूचित करते हुए कहा है कि उन्हें यह कथानक 'पूर्व' नामक आगम में कथित एवं नामावलिनिबद्ध तथा आचार्य परम्परागत रूप से मिला था। जिन सूत्रों के आधार से यह ग्रन्थ रचा गया है, उनका निर्देश ग्रन्थ के प्रथम उद्देश में किया गया है फिर भी ग्रन्थ रचना की प्रेरणा में जो स्पष्टीकरण दिया गया है उससे [illegible] मिलता है कि लेखक के सम्मुख वाल्मीकि रामायण अवश्य थी और उसी से प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने पूर्व साहित्य और गुरुपरम्परा से प्राप्त सूत्रों को पल्लवित कर यह ग्रन्थ लिखा।

लेखक के अनुसार इसकी कथावस्तु सात अधिकारों में विभक्त है—स्थिति, वंशोत्पत्ति, प्रस्थान, रण, लवंकुशोत्पत्ति, निर्वाण और अनेकभव। कथानक जैन मान्यतानुसार सृष्टि के वर्णन के साथ प्रारम्भ होता है और प्रथम २४ उद्देशों में ऋषभादि तीर्थंकरों के वर्णन के साथ इक्ष्वाकुवंश, चन्द्रवंश की उत्पत्ति बतलाते हुए विद्याधरवंशों में राक्षसवंश और वानरवंशों का परिचय कराया गया है। राम के जन्म से उनके लंका से लौट कर राज्याभिषेक तक अर्थात् रामायण का मुख्य भाग २५ से ८५ तक के ६१ उद्देशों या पर्वों में दिया गया है। ग्रन्थ के शेष भाग में सीता-निर्वासन, लवणांकुश उत्पत्ति, देशविजय व समागम, पूर्वभवों का वर्णन आदि विस्तारपूर्वक देकर अन्त में राम को केवलज्ञान की उत्पत्ति और निर्वाण प्राप्ति के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है।

रामचरित पर यह एक ऐसी प्रथम जैन रचना है जिसमें यथार्थता के दर्शन और अनेक उटपटाग तथा अतार्किक बातों का निरसन हुआ है। इसमें पात्रों के चरित्र-चित्रण में परिस्थितिवश उदात्त भूमिका प्रस्तुत की गई है और पुरुष तथा स्त्री चरित्र को ऊँचा उठाया गया है। इसमें कैकेयी को ईर्ष्या जैसी दुर्भावना के कलंक से बचाया गया है। दशरथ ने वृद्धत्व के कारण जब राज्य छोड़ वैराग्य धारण करने का विचार किया तभी गभीर-प्रकृति भरत को भी वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। कैकेयी के समक्ष पति एवं पुत्र दोनों के वियोग की समस्या आ पड़ी और उसने भरत को गृहस्थ जीवन में बाँधे रखने की भावना से उसे राज्यपद देने के लिए दशरथ से वर माँगा। राम स्वेच्छा से (न कि दशरथ की आज्ञा से) वन जाते हैं। राम को लौटाने के लिए स्वयं कैकेयी वन में जाती है और राम से कहती है कि भरत को अभी बहुत कुछ सीखना है। राज्य तो तुम्हीं को करना है। अकस्मात् जो मुझसे बन पड़ा उसे मत सोचो, क्षमा कर दो और अयोध्या लौट चलो। इसी तरह बालि और रावण का चरित्र

भी यहाँ उदात्त दिखाया गया है। रावण धार्मिक और व्रती पुरुष के रूप में अंकित किया गया है। वह सीता का अपहरण तो कर ले गया परन्तु उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करने का विचार या प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उसने किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग न करने का व्रत ले रखा था। वह सीता को लौटा देना चाहता था पर लोकदृष्टि में डरपोक समझे जाने के भय से ऐसा न कर सका। उसका विचार युद्ध में राम-लक्ष्मण पर विजय प्राप्त करने के बाद वैभव के साथ सीता को वापस करने का था।

पउमचरिय रामचरित के अतिरिक्त अनेक कथाओं का आकर है। इसमें अनेकों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं तथा परम्परागत अनेकों कथाओं को यथोचित परिवर्तन के साथ प्रसगानुकूल बनाया गया है और कुछ नवीन कथाओं की सृष्टि की गई है।

यदि वाल्मीकि रामायण सस्कृत साहित्य का आदि काव्य है तो पउमचरियं प्राकृत साहित्य का। इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है। इसमें देश, नगर, नदी, समुद्र, अटवी, ऋतु, शरीर सौन्दर्य के वर्णन महाकाव्यों के समान हैं। श्रृङ्गार, वीर और करुण रसो की अच्छी अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर हुई है तथा उचित स्थानों पर भयानक, रौद्र, वीभत्स, अद्‌भुत एव हास्य रसों के उदाहरण भी मिलते हैं। वर्णन के अनुसार भाषा ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणयुक्त होती गई है। उपमादि विविध अलकारों के प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में दिखायी देते हैं तथा गाथा छन्द के अतिरिक्त उद्देशों के मध्य में सस्कृत के छन्द उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वसन्ततिलका, रुचिरा, शार्दूलविक्रीडित आदि का प्राकृत भाषा मे प्रयोग किया गया है।

पउमचरियं के अन्तः परीक्षण मे हमें गुप्त-वाकाटक युग की अनेक प्रकार की ऐतिहासिक और सास्कृतिक सामग्री मिलती है। इसमें वर्णित अनेक जन-जातियों, राज्यों और राजनैतिक घटनाओं का तत्कालीन भारतीय इतिहास से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। दक्षिण भारत के कैलकिलों और श्रीपर्वतीयों का उल्लेख है तथा आनन्दवश और क्षत्रप रुद्रभूति का भी उल्लेख है। उज्जैन और दशपुर राजाओं के बीच सघर्ष, गुप्त राजा कुमारगुप्त और महाक्षत्रपों के बीच सघर्ष की सूचना देता है। इसमें नंद्यावर्तपुर का उल्लेख है जिसका वाकाटकों की राजधानी नन्दिवर्धन से साम्य स्थापित किया जाता है।[१]

---

१. इन आधारों से इसके रचनाकाल का निर्धारण किया गया है।

जैनधर्म के सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से पउमचरियं ऐसी रचना है जो साम्प्रदायिकता से परे है। ग्रन्थ मे वर्णित अनेक तथ्यों के विश्लेषण मे ज्ञात होता है कि इसमें श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय सभी सम्प्रदायों का समावेश हो गया है। सभवतः विमलसूरि उस युग के थे जब जैनों मे साम्प्रदायिकता का विभाग गहरा न हो सका था। उनपर साम्प्रदायिकता का कोई प्रभाव नहीं है। उन्होंने परम्परा से जो सुना, पढा और देखा उसीका वर्णन किया है भले वह श्वेताम्बर या दिगम्बर दोनों परम्पराओं के प्रतिकूल बैठे।

रचयिता और रचना-काल—ग्रन्थ के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्त्ता नाइलकुल वश के विमलसूरि थे जो कि राहु के प्रशिष्य और विजय के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त कवि के जीवन पर विशेष प्रकाश नहीं मिलता है।

प्रशस्ति मे एक गाथा से पता चलता है कि यह कृति ५३० वीर निर्वाण सवत् में अर्थात् ई० सन् ४ मे लिखी गई थी। पर इस पर पाश्चात्य विद्वान् ह० याकोबी और जैन विद्वान् मुनि जिनविजय, मुनि कल्याणविजय और पं० परमानन्द शास्त्री तथा जैनेतर विद्वान् के० एच० ध्रुव ने शंका प्रकट की है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस नाइल कुल के ये आचार्य है वह नाइली शाखा के रूप में वी० नि० स० ५८० या ६०० के लगभग वज्र (वी० नि० ५७५) के शिष्य वज्रसेन ने स्थापित की थी और उस शाखा में उत्पन्न होने से ये अवश्य कई पीढ़ी बाद हुए हैं। इसलिए वर्ष ५३०, वीर नि० न होकर बाद का कोई सवत् होना चाहिए। याकोबी ने इसे तृतीय शताब्दी की रचना माना है[1] और डा० के० आर० चन्द्र ने इसे वि० स० ५३० की कृति माना है।[2]

पउमचरियम् के अतिरिक्त विमलसूरि की कुछ अन्य रचनायें बतायी जाती हैं। पर उनका कर्तृत्व विवादास्पद है। 'प्रश्नोत्तरमालिका' एक ऐसी रचना है जिसे बौद्ध, ब्राह्मण और जैन अपने-अपने मत की बताते है। हरिदास शास्त्री और कुछ अन्य विद्वानोंकी मान्यता है कि यह विमलसूरि द्वारा रचित है। कुछ विद्वान् इसे राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (९वीं शता०) की रचना बताते है।[3]

---

१. पउमचरियम्, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२, देखे—डा० वी० एम० कुलकर्णी द्वारा लिखित प्रस्तावना, पृ० ८-१५.

२. ए क्रिटिकल स्टडी आफ पउमचरिय, पृ० १७.

३. पउमचरियं की अग्रेजी प्रस्तावना, पृ० १७, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२.

कुवलयमाला की प्रस्तावना गाथाओं में विमलाक त्रिमलसूरि को स्मरण किया गया है और उनकी 'अमृतमय सरस प्राकृत' की प्रशंसा की गई है (कृति पउमचरियम् का उल्लेख नहीं है पर लक्ष्य वही है)। एक अन्य गाथा—यथा[1]

बुहयणसहस्सदयियं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियंपि हु हरिवरिसं चेय विमलपयं॥

(जिसका अर्थ डा० आ० ने० उपाध्ये ने यह किया है : 'प्रथम हरिवंशोत्पत्तिकारक हरिवर्ष कवि की बुधजनों में प्रिय और विमल अभिव्यक्ति (पदावली) के कारण वन्दना करता हूँ') में कुछ शब्दों का परिवर्तन कर कुछेक विद्वान् कल्पना करते हैं कि इससे 'हरिवंशचरिय के प्रथम रचयिता विमलसूरि' की ध्वनि निकलती है। पर उक्त गाथा से विमलसूरि का हरिवंश कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता है। डा० उपाध्ये ने उक्त गाथा की द्वितीय पंक्ति में 'हरिवरिस चेय विमल पय' के स्थान में 'हरिवंस चेय विमलपय' के रूप में परिवर्तन करने में आपत्ति उठायी है[2] कि उक्त गाथा में हरिवंश शब्द की पुनरावृत्ति हो जाती है। दूसरी बात यह कि उद्योतनसूरि ने प्रस्तावना गाथाओं में काल-क्रम से अजैन और जैन (श्वेता० तथा दिग०) कवियों का स्मरण किया है। उक्त क्रम में विमलाक विमल के बाद तिपुरिसयसिद्ध 'सुपुरुषचरित' के रचयिता गुप्तवंशी देवगुप्त, फिर प्रथम हरिवंशोत्पत्तिकारक हरिवर्ष, इसके बाद सुलोचनाकथाकार, यशोधरचरितकार, प्रभंजन, वरांगचरितकार जटिल, पद्मचरितकार रविषेण तथा समरादित्यकथाकार एवं अपने गुरु हरिभद्र का स्मरण किया है। यदि विमलसूरि की हरिवंस नाम से कोई रचना होती तो उसका उल्लेख विमल के क्रम में होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ है। वहाँ तो एक कवि और उसकी रचना का अन्तराल देकर हरिवंश का उल्लेख हुआ है। यह 'हरिवंसुप्पत्ति' ग्रन्थ प्राकृत में या संस्कृत में भी हो सकता है क्योंकि प्रस्तावना गाथाओंमें प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं के कवियों को स्मरण किया गया है इसलिए उक्त गाथा से विमलसूरि कृत 'हरिवंसचरिय' की ध्वनि निकालना संभव नहीं दिखता।

सीताचरित्र—इसमें ४६५ प्राकृत गाथाओं में भुवनतुंगसूरि ने सीता का चरित्र लिखा है।[3] सीताचरित्र पर प्राकृत में अज्ञात कर्तृक दो और रचनायें

---

१. कुवलयमाला (सिं० जै० ग्र० ४५), पृ० ३.

२. वही, भाग २, प्रस्तावना, पृ० ७६ और नोट्स पृ० १२६

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४२

मिलती है। एक का ग्रथाग्र ३१०० या ३४०० है। दूसरे की हस्त० प्रति में सं० १६०० दिया गया है।[१]

रामलक्ष्मणचरित्र—इसे भी २०८ गाथाओं मे भुवनतुगसूरि ने सीताचरित्र के रचना-क्रम में लिखा है।[२]

पद्मचरित या पद्मपुराण—इस चरित[३] की कथावस्तु आठवें बलभद्र पद्म (राम), आठवें नारायण लक्ष्मण, प्रतिनारायण रावण तथा उनके परिवारों और सम्बद्ध वर्गों का चरित वर्णन करना है। यह रचना संस्कृत मे है। इसमे १२३ पर्व हैं जिनमें अनुष्टुम् मान से १८०२३ श्लोक हैं। संस्कृत जैन कथा साहित्य में यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।

इसमें अधिकतर अनुष्टुम् छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक पर्व के अन्त में छन्द परिवर्तन कर विविध वृत्तों का प्रयोग किया गया है। ४२वें पर्व की रचना नाना छन्दों में की गई है। ७८वें पर्व की विशेषता यह है कि उसमें वृत्तगन्धि गद्य का भी प्रयोग हुआ है जिसमें भुजंगप्रयात छन्द का आभास मिलता है।

ग्रन्थकार ने रचना के आधार की सूचना देते हुए कहा है कि इसका विषय श्री वर्धमान तीर्थंकर से गौतम गणधर को और उनसे धारिणी के सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ। फिर प्रभव को और बाद में श्रेष्ठ वक्ता कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनसे लिखित को आधार बना रविषेण ने यह ग्रन्थ प्रकट किया।[४] अपभ्रंश पउमचरिउ के रचयिता स्वयम्भू ने भी अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर का उल्लेख किया है, पर इनकी कृति अबतक उपलब्ध नहीं है और न ही कीर्तिधर की आचार्य परम्परा।

प्राकृत के 'पउमचरियम्' की कथावस्तु के विन्यास के समान ही इस कृति में वस्तु विन्यास दिखाई पडता है। विषय और वर्णन प्रायः ज्यों के त्यों तथा पर्व-प्रतिपर्व और प्रायः लगातार अनेक पद्य-प्रतिपद्य मिल जाते हैं। इससे लगता है कि यह ग्रन्थ विमलसूरिकृत पउमचरिय को समुख रख कर रचा गया हो,

---

१. वही, पृ० ४४२.

२. वही, पृ० ३३१.

३. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से ३ भागो में सानुवाद प्रकाशित. सन् १९५८-५९, मूल—मा० दि० जै० ग्रन्थमाला, बम्बई, ३ भाग, सन् १९८५; जि० र० को०, पृ० २३३.

४. पर्व १२३, प० १६६.

और अनेक अशों में उसका छायानुवाद हो। फिर भी दोनो ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से विद्वद्वर्ग ने अनेकविध व्यतिक्रम, परिवर्त्तन, परिवर्धन, विभिन्न सैद्धान्तिक मान्यताओं प्रभृति तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त रविषेण के कई विवेचन इतने पल्लवित और परिवर्धित हैं कि संस्कृत की यह कृति प्राकृत पउमचरियम् से डेढ गुने से भी अधिक हो गई है। फिर भी विषय की दृष्टि से इसमें कोई नवीन कथावस्तु का समावेश नहीं है।[1]

इन दोनों की तुलना से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि रविषेण ने जब कि इस कृति को पूर्णतः दिग० परम्परा के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया है तो पउमचरियम् साम्प्रदायिकता से परे है या श्वेताम्बर-दिग० मान्यता से अलग किसी तीसरी परम्परा यापनीय की कृति है।

जैन साहित्य में रामकथा के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप तो विमलसूरि के पउमचरिय में, प्रस्तुत पद्मचरित मे और हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में तथा दूसरा गुणभद्र के उत्तरपुराण, पुष्पदन्तकृत महापुराण एवं कन्नड चामुण्डरायपुराण में। पहला रूप अधिकांशतः वाल्मीकि रामायण के ढग का है जब कि दूसरा रूप विष्णुपुराण तथा बौद्ध दशरथजातक से मिलता-जुलता है।[2]

ग्रन्थकार-परिचय और रचना-काल—इस कृति के रचयिता का नाम रविषेण है। इन्होंने पद्मचरित के १२३वें पर्व के १६७ वें पद्य के उत्तरार्ध में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है—इन्द्रगुरु के शिष्य दिवाकर यति, दिवाकर यति के अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के शिष्य लक्ष्मणसेन और उनके शिष्य रविषेण। पर रविषेण ने अपने किसी संघ या गणगच्छ का कोई उल्लेख नहीं किया है और न स्थानादि की चर्चा की है। परन्तु सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि वे संभवतः सेन संघ के हो। उनके गृहस्थ जीवन और अन्य रचनाओ के विषय मे भी कुछ नहीं मालूम। सौभाग्य से ग्रन्थकार ने इसकी रचना का सवत् दे दिया है। तदनुसार महावीर निर्वाण के १२०३ वर्ष ६ माह बीत जाने पर[3] यह कृति लिखी गई थी। इस सूचना से इसकी रचना वि० स० ७३४ या सन् ६७६ ई० मे हुई है।

---

१ पं० ना० रा० प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८७-१०८, पद्मपुराण, प्रस्तावना, पृ० २१-३२.

२. वही, पृ० ९३-९८.

३. पर्व १२३.१८२.

परवर्ती आचार्यों ने रविषेण और उनकी कृति का ससम्मान उल्लेख किया है। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में[1] और जिनसेन (द्वि०) ने हरिवंशपुराण में[2] इनका स्मरण किया है।

रविषेण ने सुधर्माचार्य, प्रभव और कीर्तिधर के अतिरिक्त किसी पूर्वाचार्य या पूर्ववर्ती कृति का उल्लेख नहीं किया है।

इस पद्मचरित पर राजा भोज (परमार) के राज्य काल सं० १०८७ में धारानगरी में श्रीचन्द्र मुनि ने एक टिप्पण लिखा है।[3]

रामायण—यह[4] सरल संस्कृत गद्य में लिखी हुई रचना है जो पूर्ववर्ती किसी पद्यात्मक रचना का परिवर्तित रूप है। इसे जैन रामायण भी कहते हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना तपागच्छीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य और रामविजय के शिष्य देवविजय ने वि० सं० १६५२ में की थी। इसका संशोधन धर्मसागर गणि के शिष्य पद्मसागर ने किया था।

पद्मपुराण नाम की अन्य[5] कृतियाँ (संस्कृत)—१. पद्मपुराण—जिनदास (१६वीं शती)। ये भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य थे। इसमें उन्होंने रविषेण के पद्मपुराण का अनुसरण किया है। इसका अपरनाम रामदेवपुराण भी है।

२. पद्मपुराण (रामपुराण)—सोमसेन (सं० १६५६)
३. ,, —धर्मकीर्ति (सं० १६६९)
४. ,, —चन्द्रकीर्ति भट्टारक
५. ,, —चन्द्रसागर
६. ,, —श्रीचन्द्र
७. पद्म-महाकाव्य —शुभवर्धन गणि (प्रकाशित—हीरालाल हंसराज जामनगर, सन् १९१७)
८. रामचरित्र —पद्मनाभ
९. पद्मपुराण-पंजिका —प्रभाचन्द्र या श्रीचन्द्र

---

१. पृ० ४ (सिं० जै० ग्रन्थमाला, ४५).
२. सर्ग १.३६
३ प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८६-२९०.
४. जि० र० को०, पृ० ३३१
५. वही, पृ० २३४, ३३१.

रामकथा से सम्बद्ध अन्य[1] रचनाएँ (संस्कृत)—१. सीताचरित्र—इस काव्य में ४ सर्ग है, जिनमें क्रमशः ९५, ९९, १५३, और २०९ पद्य हैं। यह अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति में सं० १३३९ दिया गया है।

२. सीताचरित्र—शान्तिसूरि
३. ,, ब्रह्म नेमिदत्त
४. ,, अमरदास

महाभारत-विषयक पौराणिक महाकाव्य (संस्कृत) :

हरिवंशपुराण—एक महाकाव्य की शैली पर रचा गया यह ब्राह्मण पुराणों के अनुकरण का एक पुराण है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय हरिवंश में उत्पन्न हुए २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र वर्णन करना है।[2] इसका दूसरा नाम अरिष्टनेमिपुराणसंग्रह भी है जिसका प्रत्येक सर्ग के पुष्पिका वाक्य में उल्लेख किया गया है। इसके विषय का ग्रन्थकार ने लोक के आकार का वर्णन, राजवंशों की उत्पत्ति, हरिवंश का अवतार, वसुदेव की चेष्टाएँ, नेमिनाथ का चरित, द्वारिका निर्माण, युद्ध वर्णन और निर्वाण इन आठ अधिकारों में प्रतिपादन किया है। इस ग्रन्थ मे ६६ सर्ग हैं, जिनका कुल मिलाकर १२ हजार श्लोकप्रमाण आकार है।

यह ग्रन्थ नेमिनाथपुराण ही नहीं है बल्कि उसे मध्यबिन्दु बनाकर इसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति, धर्मनीति आदि अनेक विषयों तथा अनेक उपाख्यानों का वर्णन हुआ है। लोक-संस्थान के रूप में सृष्टि-वर्णन ४ सर्गों में दिया गया है। राज्यवंशोत्पत्ति और हरिवंशावतार नामक अधिकारों के उपलक्षण में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण आदि तिरसठ शलाका पुरुषों का और सैकड़ों अवान्तर राजाओं और विद्याधरों के चरितों का वर्णन किया गया है। इस तरह यह अपने मे एक महापुराण को भी अन्तर्गर्भित किये हुए है। हरिवंश के प्रसंग में ऐल और यदुवंशों का भी वर्णन दिया गया है।

---

१. वही, पृ० ४४२

२. मा० दि० जै० ग्र० बम्बई, २ भाग, सन् १९३०-३१, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६२.

प्राचीन जैन साहित्य मे कृष्ण के पिता वसुदेव का चरित बड़े रोचक और व्यापक रूप से वर्णित है। इस वर्णन मे १-२ ही नहीं बल्कि १५ सर्ग (१९–३३ सर्ग) लगाये गये है। यह बड़ा भाग ग्रन्थ के चतुर्थांश जैसा ही है। इस ग्रन्थ के पूर्व भद्रबाहु कृत 'वसुदेवचरित' (अनुपलब्ध) और वसुदेवहिण्डी (सघदास-गणिकृत) मे वसुदेव की कौतुकपूर्ण कथा वर्णित है। वसुदेव के चरित मे सम्बद्ध श्री कृष्ण, बलराम तथा अन्य यदुवंशी पुरुषों—प्रद्युम्न, साम्ब, जरत्कुमार आदि के चरितो और राजगृह के राजा जरासध और महाभारत के नायक कौरव-पाण्डवों का वर्णन भी जैन मान्यतानुसार प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध को हम यदुवशचरित और जैन महाभारत भी कह सकते है।

नेमिनाथ का इतना वर्णन इसमे पूर्व अन्यत्र कहीं स्वतन्त्र रूप मे देखने को नहीं मिलता। केवल उत्तराध्ययन सूत्र के 'रहनेमिज्ज' नामक २२वे अध्ययन मे वह चरित्र अश रूप मे ४९ गाथाओं मे दिया गया है। ग्रन्थ मे चारुदत्त और वसन्तसेना का वृत्तान्त विस्तार से दिया गया है। इसके पूर्व वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोक सग्रह मे भी यह कथानक आया है जिसका स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा माना जाता है। मृच्छकटिक मे इस कथानक का नाटकीय रूप दिया गया है।

हरिवशपुराण न केवल एक कथाग्रन्थ है बल्कि महाकाव्य के गुणों से गुँथा हुआ एक उच्चकोटि का काव्य भी है। इसमे सभी रसों का अच्छा परिपाक हुआ है। युद्ध वर्णन मे जरासध और कृष्ण के बीच रोमाचकारी युद्ध वीर रस का परिपाक है। द्वारिका-निर्माण और यदुवंशियों का प्रभाव अद्भुत रस का प्रकर्ष है। नेमिनाथ का वैराग्य और बलराम का विलाप करुण रस से भरा हुआ है। इस काव्य का अन्त शान्त रस मे होता है। प्रकृति-चित्रण रूप ऋतु-वर्णन, चन्द्रोदय-वर्णन आदि अनेक चित्र काव्यशैली में दिये गये है।

ग्रन्थ की भाषा प्रौढ एव उदात्त है तथा अलंकार और विविध छन्दों से विभूषित है। रस के वर्णन के अनुकूल ही कवि ने छन्द चुने हैं। पचपनवॉ सर्ग यमकादि अलंकारों से सुशोभित है। नेमिनाथ के स्तवन में पूरा ३९वॉं सर्ग वृत्तानुगन्धी गद्य में लिखा गया है। पद्यमय ग्रन्थों में इस प्रकार का प्रयोग रविषेण के पद्मचरित के अतिरिक्त यहॉ ही देखने को मिलता है, अन्यत्र नहीं। कवि की वर्णन-शैली अपूर्व है। वसुदेव की संगीत-कला के वर्णन मे १९वें सर्ग के १२० श्लोक लगाये गये है। वह वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से अनुप्राणित है। इस ग्रन्थ का लोकविभाग और शलाकापुरुषों का वर्णन 'तिलोयपण्णत्ति' से

तथा द्वादशाग का वर्णन राजवार्तिक से मेल खाता है। व्रतविधान, समवसरण और जिनेन्द्रविहारवर्णन भी बड़े ही परिपूर्ण है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हरिवशपुराण अपने समय की कृतियों में निराला है। इसके कर्ता ने अपना परिचय भले प्रकार से दिया है। उन्होंने अपनी रचना शक स० ७०५ में सौराष्ट्र के वर्धमानपुर[1] में समाप्त की थी और ग्रन्थ समाप्ति-वर्ष के काल मे अपने चारों ओर भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए जिनसेन ने कहा है कि उस समय उत्तर दिशा में इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा में कृष्ण का पुत्र श्रीवल्लभ और पूर्व में अवन्तिनरेश वत्सराज और पश्चिम मे सौरों के अधिमण्डल-सौराष्ट्र में वीर जयवराह राज्य करते थे।[2] इतना ही नहीं इस रचना में ऐतिहासिक चेतना के और भी दर्शन होते हैं, यथा—भगवान् महावीर के समय से लेकर गुप्तवश एव कल्कि के समय तक मध्यदेश पर शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों की परम्परा का उल्लेख, अवन्ती की गद्दी पर आसीन होनेवाले राजवश और रासभवश (जिसमें प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य हुआ है) का क्रम दिया है[3], साथ ही जैन इतिहास की दृष्टि से भगवान् महावीर से लगाकर ६८३ वर्ष की सर्वमान्य गुरु-परम्परा और उसके आगे अपने समय तक की अन्यत्र अनुपलब्ध अविच्छिन्न गुरु-परम्परा भी दी गई है[4] एव अपने से पूर्ववर्ती अनेक कवियों और कृतियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इस तरह हम हरिवंशपुराण में पुराण, महाकाव्य, विविध विषयों को प्रतिपादन करनेवाले विश्वकोश तथा राजनीतिक और धार्मिक इतिहास के स्रोत आदि के समुदित दर्शन करते हैं। ग्रन्थकार ने अपने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में स्वय इस प्रकार कहा है कि जो इस हरिवश को श्रद्धा से पढ़ेंगे उन्हें अल्प यत्न से ही अपनी आकांक्षित कामनाओं की पूरी सिद्धि होगी तथा धर्म, अर्थ और

---

१. वर्धमानपुर की पहचान और इस प्रशस्ति में उल्लिखित नरेशों की पहचान पर विद्वानों में बडा मतभेद है। इन सबकी समीक्षा डा० आ० ने० उपाध्ये ने कुवलयमाला (सि० जै० ग्र० ४६) भाग २ की अंग्रेजी प्रस्तावना के पृष्ठ १०५–१०७ मे विस्तार से की है।

२. सर्ग ६६.५२-५३.

३. सर्ग ६० ४८७–४९२.

४. सर्ग ६६.२१–२३.

मोक्ष का भी लाभ मिलेगा।[१] अन्त में ग्रन्थकार ने हरिवंश की समीहित सिद्धि के लिए श्रीपर्वत कहा है।[२] यह श्रीपर्वत आन्ध्रदेश का नागार्जुनीकोण्डा है जो जिनसेन के समय भी ऋद्धि-सिद्धि के लिए देश-प्रसिद्ध केन्द्र माना जाता था।

ग्रन्थकार-परिचय और रचनाकाल—इस ग्रन्थ की समाप्ति पर ६६वें सर्ग में एक महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता पुन्नाटसंघीय जिनसेन हैं। इससे स्पष्ट है कि ये महापुराण (आदिपुराण) के रचयिता मूलसंघीय सेनान्वयी जिनसेन से भिन्न थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण और दादागुरु का नाम जिनसेन था जबकि दूसरे जिनसेन के गुरु का नाम वीरसेन और दादागुरु का आर्यनन्दि था।

पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है और इस देश से निर्गत मुनि संघ का नाम पुन्नाटसंघ पड़ा। हरिवंश के छासठवें सर्ग में महावीर से लेकर लोहाचार्य अर्थात् वी. नि ६८३ वर्ष के बाद तक की आचार्य परम्परा दी गई है जो श्रुतावतार आदि अन्य ग्रन्थों में मिलती है। इसके बाद जो आचार्य परम्परा दी गई है उसमें पुन्नाटसंघ के पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों के नाम दिये गये हैं यथा—विनयधर, श्रुतिगुप्त, ऋषिगुप्त, शिवगुप्त (जिन्होंने अपने गुणों से अर्हद्बलिपद प्राप्त किया), मन्दरार्य, मित्रवीर, बलदेव, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईश्वरसेन, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शान्तिषेण, जयसेन, अमितसेन (पुन्नाटसंघ के अगुआ और सौ वर्ष तक जीनेवाले), इनके बड़े गुरुभाई कीर्तिषेण और उनके शिष्य जिनसेन (ग्रन्थ कर्ता)।[३]

इसमें अमितसेन को पुन्नाटसंघ का अग्रणी कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वे ही पुन्नाटसंघ को छोड़ सबसे पहले उत्तर की तरफ बढ़े होंगे और उनसे पूर्ववर्ती जयसेन गुरु तक यह संघ पुन्नाटदेश में ही विचरण करता रहा होगा—अर्थात् जिनसेन से ५०-६० वर्ष पहले ही काठियावाड़ में इस संघ का प्रवेश हुआ होगा। जिनसेन ने इस ग्रन्थ की रचना शक सं० ७०५ (सन् ७८३) अर्थात् वि० सं० ८४० में की थी।[४] उपर्युक्त गुर्वावली से हम इस निष्कर्ष पर

१. सर्ग ६६.४६.
२. सर्ग ६६.५४ : दृष्टोऽथ हरिवंशपुण्यचरितः श्रीपर्वतः सर्वतो।
३. सर्ग ६६ २२—३३
४. सर्ग ६६, पद्य ५२ : शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरां…।

पहुँचते हैं कि वीर-निर्वाण के बाद से विक्रम स० ८४० तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा इस ग्रन्थ में सुरक्षित है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलती और इस दृष्टि से यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञात होता है कि पुन्नाटसंघ की परम्परा वर्धमानपुर (वढ़वाण—काठियावाड़) मे जिनसेन के बाद लगभग १५० वर्षों तक चलती रही। इसका प्रमाण हमें हरिषेण के 'कथाकोश' से मिलता है। हरिषेण भी पुन्नाटसघ के थे और उनके कथाकोश की रचना जिनसेन के हरिवंश रचने के १४८ वर्ष बाद अर्थात् वि० सं० ९८९ (शक सं० ८५३) में हुई थी। हरिषेण ने अपने गुरु भीमसेन, उनके गुरु हरिषेण और उनके गुरु मौनिभट्टारक तक का उल्लेख किया है। यदि एक-एक गुरु का समय पचीस-तीस वर्ष गिना जाय तो इस अनुमान से हरिवंश कर्ता जिनसेन, मौनिभट्टारक के गुरु के गुरु हो सकते हैं या एकाध पीढ़ी और पहले के। यदि जिनसेन और मौनिभट्टारक के बीच के एक-दो आचार्यों का नाम और कहीं से मालूम हो जाय तो फिर इन ग्रन्थों से वीर नि० से श० स० ८५३ तक की अर्थात् १४५८ वर्ष की एक अविच्छिन्न गुरुपरम्परा तैयार हो सकती है।[1]

पुन्नाटसघ का उल्लेख इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त अभी तक अन्यत्र नहीं मिला है। विद्वानों का अनुमान है कि पुन्नाट (कर्नाटक) से बाहर जाने पर ही यह सघ पुन्नाटसघ कहलाया जिस तरह कि आज कल जब कोई एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाकर रहता है तब वह अपने पूर्व स्थानवाला कहलाने लगता है।

इस ग्रन्थ की रचना नन्नराजवसति पार्श्वनाथ मन्दिर में बैठकर की गई थी।[2]

यद्यपि ग्रन्थकर्ता दिग० सम्प्रदाय के थे फिर भी हरिवंश के अन्तिम सर्ग मे भगवान् महावीर के विवाह की बात लिखी है[3] जो दिग० सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थ में नहीं देखी जाती। लगता है यह मान्यता श्वेता० या यापनीय सम्प्रदाय के किसी ग्रन्थ से ली गई है।

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १२०-१२१.

२. हरिवंशपु०, सर्ग ६६.५२-५५.

३. हरि० पु०, सर्ग ६६.८ : यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीर-विवाहमगलं।

जिनसेन ने अपने से पूर्ववर्ती जिन विद्वानों का उल्लेख किया है वे हैं— समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन (सुलोचनाकथा के कर्ता), रविषेण (पद्मपुराण के कर्ता), जटासिंहनन्दि (वरागचरित के कर्ता), शान्त (किसी काव्य ग्रन्थ के कर्ता), विशेषवादि (गद्यपद्यमय विशिष्ट काव्य के रचयिता), कुमारसेन, वीरसेन (कवियों के चक्रवर्ती), जिनसेन (पार्श्वाभ्युदय के कर्ता) तथा एक अन्य कवि (वर्धमानपुराण के कर्ता) ।[1]

उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला (श० सं० ७००=वि० स० ८३५=सन् ७७८ ई०) में अपने पूर्ववर्ती अनेक जैन (श्वेता० दिग०) एव अजैन कवियों का स्मरण किया है । कुछ विद्वान् रविषेण के पद्मचरित और जटानन्दि के वराग-चरित के समान एक गाथा से इस हरिवंश की स्तुति की भी कल्पना करते हैं, जो कि सम्भव नहीं है क्योंकि हरिवश, कुवलयमाला के बाद (५ वर्ष बाद) की रचना है । पूर्ववर्ती रचना में परवर्ती रचना के उल्लेख की कम ही सभावना रहती है । दूसरी बात यह है कि कुवलयमाला के निम्नांकित पद्य में प्रथम हरि-वशोत्पत्ति कारक हरिवर्ष कवि की, बुधजनों में प्रिय और विमल अभिव्यक्ति (पदावली) के कारण, वन्दना की गई है :

बुहयणसहस्सदयियं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं ।
वन्दामि वंदियंपि हु हरिवरिसं चेय विमलपयं ।।

इससे विदित होता है कि वह हरिवंश अन्य कर्ता की कृति थी, यह नहीं थी ।[2]

कुछ विद्वान् उक्त गाथा से विमलसूरि कृत हरिवशचरियं होने की सभावना करते हैं और मानते है कि सभवतः जिनसेन का हरिवश विमलसूरि के प्राकृत हरिवशचरिय की छाया हो । इस विषय मे हमने पउमचरिय के प्रसग में उक्त सभावना का खण्डन कर दिया है । हॉ, हरिवर्षकृत प्राकृत या संस्कृत में कोई हरिवसुप्पत्ति उपलब्ध हो तब जिनसेन के हरिवंश का मूल क्या था, इस

१. सर्ग १.२१-४०; इसमें विशेषवादि से कहीं उद्योतनसूरि का तो अभिप्राय नही ? उनकी कुवलयमाला गद्य-पद्यमय उक्ति-विशेषों से भरा हुआ काव्य है ।
२. कुवलयमाला (सि० जै० ग्र० ४५), पृ० ३, वही, द्वि० भा०, प्रस्तावना पृ० ७६ और नोट्स पृ० १२६.

विषय पर भले ही कुछ प्रकाश पड़ सके और उसमें भगवान् महावीर के विवाह के उल्लेख की संगति बैठ सके।

पाण्डवचरित—यह एक सर्गबद्ध कृति है।[1] इसमें १८ सर्ग हैं। इसका कथानक लोकप्रसिद्ध पाण्डवों के चरित्र पर आधारित है जोकि जैन-परम्परा के अनुसार वर्णित है, साथ मे नेमिनाथ का चरित भी स्वतः आ गया है। इसके नायक पाँच पाण्डव धीरोदात्त एवं उदात्त क्षत्रिय-कुल सम्भूत हैं। यह वीररस प्रधान काव्य है किन्तु इसका पर्यवसान शान्तरस में हुआ है। शृंगार, अद्‌भुत एवं रौद्र रसों की योजना भी इसमें अंगरूप हुई है। इसमें काव्य-परम्परा के अनुकूल प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया गया है। इसमें महाकाव्यीय वर्ण्य विषयों—नगरी, पर्वत, वन, उपवन, वसन्त, ग्रीष्म आदि का समावेश यथास्थान हुआ है। इसके सर्गों के नामकरण भी वर्ण्य-विषय के आधार पर किये गये हैं। यद्यपि इसमे महाकाव्योचित सभी गुण हैं परन्तु भाषा-शैलीगत प्रौढ़ता और उदात्त कवित्व कला के अभाव में यह सामान्य पौराणिक काव्य रह गया है। पौराणिक काव्यों के समान इसमें अनेक बातें कल्पनापूर्ण एव अतिशयोक्ति से भरी हैं। वर्णन में अनेक अलौकिक और अप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लिया गया है। यत्र तत्र अवान्तर कथाओं की योजना भी की गई है जैसे नलकूबर की कथा। भवान्तरों के कथन में भी अनेक अवान्तर कथाएँ आ गई हैं।

पाण्डवचरित के कथानक का आधार 'षष्ठागोपनिषद्' तथा हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' तथा कुछ अन्य ग्रन्थ हैं। इस बात को ग्रन्थकर्ता ने स्वय इन शब्दों में प्रकट किया है :[2]

षष्ठांगोपनिषत्त्रिषष्टिचरितानालोक्य कौतूहला-
देतत् कन्दलयांचकार चरितं पाण्डोः सुतानामहम् ॥

पाण्डवचरित का ग्रन्थ-प्रमाण लगभग आठ हजार श्लोक है। इसके सभी सर्गों में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गान्तों मे प्रयुक्त अन्य छन्दों की सख्या ४० है। उनमें प्रमुख वसन्ततिलका, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित, मालिनी प्रमुख हैं। ग्रन्थकार ने भाषा की प्रौढ़ता के अभाव को अलंकारों के प्रयोग द्वारा कुछ अशों में दूर करने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में

१. काव्यमाला सिरीज, बम्बई, १९११; जि० र० को०, पृष्ठ २४२.
२. पाण्डवचरित, सर्ग १८, पद्य २८०

अनुप्रास, यमक तथा वीप्सा का प्रयोग बहुत हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा एव रूपक अलंकारों का यथेष्ट प्रयोग दर्शनीय है।

इस काव्य में कवि ने अपने युग का समाज-चित्रण दिया है। इसमें उस युग के अनेक रीति-रिवाज, विवाह-सस्कार तथा प्रचलित अन्धविश्वासों की अच्छी झाँकी मिलती है। पाण्डवचरित एक धार्मिक काव्य भी है। इसमें स्थल स्थल पर धार्मिक उपदेश की योजना की गई है जिसमें दया, दान, शील, तप तथा ससार की अनित्यता प्रतिपादित है।

रचयिता एवं रचना-काल—पाण्डवचरित में दी गई प्रशस्ति से कवि का विशेष परिचय नहीं मिलता। उससे केवल इतना ज्ञात होता है कि पाण्डवचरित के रचयिता देवप्रभसूरि मलधारी गच्छ के थे। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना हर्षपुरीय गच्छ के हेमचन्द्रसूरि-विजयसूरि-चन्द्रसूरि-मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य देवानन्दसूरि के अनुरोध से की थी। प्रशस्ति में रचना-काल नहीं दिया गया पर देवानन्दसूरि, जिनके अनुरोध पर यह ग्रन्थ रचा गया था[1], प्रमुख ग्रन्थ सशोधक प्रद्युम्नसूरि के गुरु कनकप्रभसूरि के गुरु थे। प्रद्युम्नसूरि का साहित्यिक काल स० १३१५ से सं० १३४० तक २५ वर्ष का माना जा सकता है क्योंकि उन्होंने सं १३२२ में श्रेयासनाथचरित (मानतुगसूरिकृत) तथा उसी वर्ष मुनिदेवकृत शान्तिनाथचरित का सशोधन तथा स० १३२४ में अपने काव्य समरादित्यचरित की रचना तथा स० १३३४ में प्रभाचन्द्रकृत प्रभावकचरित का संशोधन किया था। यदि इस काल से पहले २५ वर्ष तक प्रद्युम्नसूरि के गुरु कनकप्रभ का साहित्यिक काल और उनसे २५ वर्ष पूर्व तक कनकप्रभ के गुरु देवानन्द का साहित्यिक काल माना जाय तो कनकप्रभ का साहित्यिक जीवन स० १२९० के पश्चात् और देवानन्द का साहित्यिक जीवन सं० १२६५ के पश्चात् मानना चाहिये। इस अनुमान से कि देवानन्दसूरि का साहित्यिक काल सं० १२६५ के लगभग वैठता है देवप्रभसूरि की कृति पाण्डवचरित का रचनाकाल स० १२६५ के कुछ काल बाद सिद्ध होना चाहिये। दूसरे अनुमान से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। वह है देवप्रभसूरि के शिष्य नरचन्द्रसूरि का समय। नरचन्द्रसूरि भी पाण्डवचरित के संशोधकों में एक थे।[2] इन्हीं नरचन्द्रसूरि ने उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदय महाकाव्य (स० १२७७–१२९०) का सशोधन भी किया था। इससे भी उसी काल के आस-पास पाण्डवचरित का

१. पाण्डवचरित, प्रशस्ति, पद्य ८-९.
२. पाण्डवचरित, प्रशस्ति, पद्य १०-११.

रचनाकाल प्रतीत होता है। पाण्डवचरित के सम्पादकों ने इसका रचनाकाल वि० स० १२७० माना है[1] जो कि उक्त अनुमानों के आस पास ही बैठता है।

हरिवंशपुराण—जिनसेन के हरिवंश पुराण के आधार पर रचित इस[2] कृति में ४० सर्ग हैं। इसमें हरिवंशकुलोत्पन्न २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्री कृष्ण तथा उनके समकालीन पाण्डव और कौरवों का वर्णन है। इसके प्रथम १४ सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति और शेष सर्गों की रचना उनके शिष्य ब्रह्म जिनदास ने की है। इसमें रविषेण और जिनसेन का उल्लेख है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के प्रथमांश के रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं। मध्यकालीन उत्तर भारत में सकलकीर्ति नाम के अनेक भट्टारक हो गये हैं किन्तु उनमें से सर्वप्रथमज्ञात सकलकीर्ति ने अनेक शासन-प्रभावक कार्य किये थे और विपुल साहित्य प्रणयन किया था। इनकी कृतियाँ संस्कृत और राजस्थानी दोनों भाषाओं में प्राप्त हैं।

इनके समय के सम्बन्ध में विवाद है। डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल इनका जन्म वि० स० १४४३ और स्वर्गवास १४९९ मानते हैं, जब कि डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने जन्म १४१८ और स्वर्गवास १४९९ माना है। इन दोनों के मत से डा० मो० विन्टरनित्स द्वारा निर्धारित स्वर्गवास का समय (स० १५२१) ठीक नहीं है और न डा० जोहरापुरकर द्वारा निर्धारित काल स० १४५०..... ।[3] ये डूंगरपुर (ईडर) पट्ट के संस्थापक तथा बागड (सागवाड़ा) बड़साजन पट्ट के भी संस्थापक थे। इन्होंने ३४ के लगभग ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें २८ तो संस्कृत में और ६ राजस्थानी में ।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ : १. मूलाचारप्रदीप, २. प्रश्नोत्तरोपासकाचार, ३. आदिपुराण, ४. उत्तरपुराण, ५. शान्तिनाथचरित्र, ६. वर्धमानचरित्र, ७. मल्लिनाथचरित्र, ८. यशोधरचरित्र, ९. धन्यकुमारचरित्र, १०.

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (मो० द० देसाई) में पाण्डवचरित का रचनाकाल स० १२७० के लगभग माना गया है।

२. जि० र० को०, पृ० ४६०, राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० २७.

३. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० १-२१, जैन सन्देश, शोधांक १६, पृ० १८१-१८८ तथा २०८-२०९.

सुकुमालचरित्र, ११. सुदर्शनचरित्र, १२. सद्भाषितावली, १३. पार्श्वनाथपुराण, १४. सिद्धान्तसारदीपक, १५. व्रतकथाकोष, १६. पुराणसारसग्रह, १७. कर्मविपाक, १८. तत्त्वार्थसारदीपक, १९. परमात्मराजस्तोत्र, २०. आगमसार, २१. सारचतुर्विंशतिका, २२. पंचपरमेष्ठीपूजा, २३. अष्टाह्निकापूजा, २४. सोलहकारणपूजा, २५. जम्बूस्वामिचरित्र, २६. श्रीपालचरित्र, २७. द्वादशानुप्रेक्षा, २८. गणधरवलयपूजा।

इनका स्वर्गवास गुजरात के महसाना नामक स्थान में सं० १४९९ मे हुआ था जहाँ उनकी समाधि-निषद्या अब तक विद्यमान बताई जाती है।

उक्त पुराण के द्वितीयाश के रचयिता ब्रह्म जिनदास हैं जो भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य एव लघुभ्राता थे। इनका संस्कृत और राजस्थानी पर समान अधिकार था पर राजस्थानी से विशेष अनुराग था। इनकी संस्कृत मे रचना अंगुलियों पर गिनने लायक हैं जब कि राजस्थानी में ५० से भी अधिक हैं। ब्रह्म जिनदासकी निश्चित जन्मतिथि के सम्बन्ध मे इनकी रचनाओं के आधार पर कोई जानकारी नहीं मिलती। ये कब तक गृहस्थ रहे और कब से साधु जीवन विताया, इस विषय की भी सूचना नहीं मिलती। इनकी माता का नाम शोभा एव पिता का नाम कर्णसिंह था। ये पाटण के रहने वाले हूंबड़ जाति के श्रावक थे। इनका जन्म भट्टारक सकलकीर्ति के बाद है क्योंकि वे इनके अग्रज थे। ब्रह्म जिनदास ने अपनी केवल दो रचनाओं मे संवत् दिया है, शेष मे नहीं। तदनुसार रामराज्यरास में वि० सं १५०८ तथा हरिवंशपुराण में वि० स० १५२० दिया गया है। संभवतः हरिवशपुराण इनकी अन्तिम कृति थी। संस्कृत में अन्य रचनायें हैं—जम्बूस्वामिचरित्र, रामचरित्र (पद्मपुराण) तथा पुष्पाजलिव्रतकथा और ८ के लगभग पूजा-विषयक लघु रचनाएँ हैं।

पाण्डवपुराण—इस पौराणिक काव्य[1] में पाण्डवों की रोचक कथा का वर्णन किया गया है। इसमें २५ पर्व हैं। इसकी श्लोक-स० ६००० है। इस पुराण की रचना में ग्रन्थकर्ता ने जिनसेन के हरिवशपुराण आदि व उत्तरपुराण तथा श्वेता० रचना देवप्रभसूरि रचित पाण्डवचरित्र का पर्याप्त उपयोग किया है। ग्रन्थ के अन्तरग [2]परीक्षण से यह बात स्पष्ट होती है। फिर भी इस पुराण की कथा में अन्य जैन पुराणकारों की रचनाओं से भेद है। यह ग्रन्थ जैन महाभारत

---

१. जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सं० ३, सोलापुर, १९५४.

२. वही, प्रस्तावना, पृष्ठ १-४०.

भी कहलाता है। पर्वों की रचना अनुष्टुभ् छन्दों में की गई है पर पर्वान्त में छन्द परिवर्तन किये गये हैं। प्रत्येक पर्व का प्रारम्भ तीर्थंकर की स्तुति से होता है। तृतीय पर्व से प्रारभ कर ऋषभ के क्रम से चलकर पच्चीसवें पर्व मे पार्श्व की स्तुति की गई तथा प्रथम मे वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों की और द्वितीय में महावीर की स्तुति की गई है। ग्रन्थरचना सरस, सरल सस्कृत में है।

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। ये भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य और ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। इनके शिष्य श्रीपाल वर्णी थे। इनकी सहायता से भट्टारक शुभचन्द्र ने वाग्वर (वागड) प्रान्त के अन्तर्गत (सागवाड़ा) नगर मे वि० स० १६०८ भाद्रपद द्वितीया के दिन इस पाण्डवपुराण की रचना की है। पच्चीसवें पर्व के अन्त में एक कवि-प्रशस्ति दी गई है। उसमें गुरुपरम्परा का परिचय दिया गया है और साथ मे उनके द्वारा रचित २५-२६ ग्रन्थों की सूची।[१]

भट्टारक शुभचन्द्र बड़े ही विद्वान् थे। त्रिविधविद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम और परमागम के ज्ञाता) और षट्भाषाकविचक्रवर्ती—ये उनकी उपाधियाँ थीं।

इनके द्वारा रचित काव्यग्रन्थ—चन्द्रप्रभचरित, पद्मनाभचरित, जीवन्धर-चरित, चन्दनाकथा, नन्दीश्वरकथा हैं तथा अन्य पूजा-विधान, प्रतिष्ठा आदि के ग्रन्थ हैं।

पाण्डवपुराण—इस पौराणिक काव्य में १८ सर्ग हैं।[२]

रचयिता एव रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टा० वादिचन्द्र थे जो कि मूल-संघ के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इनकी गद्दी गुजरात में ही कहीं पर थी। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं यथा पार्श्वपुराण, ज्ञान-सूर्योदयनाटक, पवनदूत, श्रीपालआख्यान (गुजराती-हिन्दी), यशोधरचरित्र, सुलोचनाचरित्र, होलिकाचरित्र और अम्बिका-कथा।

पाण्डवपुराण की रचना स० १६५४ में नोघकनगर में हुई थी।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ०, ३८३–३८४.

२. जयपुर के तेरहपंथी बडे मन्दिर में इस ग्रन्थ की एक प्रति है। जि० र० को०, पृ० २४३; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८.

पाण्डवपुराण—यह जिनसेन, सकलकीर्ति और अन्य ग्रन्थकर्ताओं के ग्रन्थों के आधारों से रचित सरल संस्कृत पद्यात्मक कृति है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता काष्ठासंघीय नन्दीतट गच्छ के भट्टारक श्रीभूषण हैं। इनके बनाये हुए शान्तिनाथपुराण, पाण्डवपुराण और हरिवंशपुराण उपलब्ध हैं। सभी ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रचना संवत् दिया हुआ है। इसकी रचना का समय वि० सं० १६५७ पौष शुक्ल तृतीया रविवार दिया गया है।[१] ये एक भट्टारक थे और सोजित्रा (गुजरात) की गद्दी पर आसीन थे। प्रशस्ति में गुरुपरम्परा भी दी गई है। प्रस्तुत पुराण की रचना सौर्यपुर अर्थात् सूरत में की गई थी।

पाण्डवचरित्र—यह काव्य ग्रन्थ[२] देवप्रभसूरि कृत पाण्डवचरित्र का सरल संस्कृत में गद्यात्मक रूपान्तर है। इसमें यत्र-तत्र देवप्रभ की रचना से तथा अन्यत्र से कतिपय पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। इसमें भी १८ सर्ग हैं।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—लेखक ने ग्रन्थ के अन्त में एक संक्षिप्त प्रशस्ति में अपने वंश और गुर्वादि का परिचय दिया है। जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता देवविजय गणि हैं जो तपागच्छ के विजयदानसूरि के शिष्य रामविजय के शिष्य थे। इन्होंने अहमदाबाद में रहकर यह ग्रन्थ सं० १६६० में लिखा था। इसका संशोधन शान्तिचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र ने किया था।

हरिवंशपुराण—इसकी[३] रचना का आधार जिनसेन, सकलकीर्ति आदि द्वारा रचित हरिवंशपुराण है।

इसे सोजित्रा के भट्टारक श्रीभूषण ने सं० १६७५ चैत्र सुदी १३ के दिन पूर्ण किया था।

पाण्डवचरित्र—शुभवर्धनगणिकृत इस ग्रंथ[४] को हरिवंशपुराण भी कहते हैं। यह ग्रन्थ सत्यविजय ग्रन्थमाला अहमदाबाद से बालाभाई मूलचन्द्र ने प्रकाशित किया है।

---

१. परमानन्द शास्त्री, प्रशस्ति-संग्रह, पृ० ९६; जैन साहित्य और इतिहास (प्रेमी), पृ० ३८९; जि० र० को०, पृ० २४३.
२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० २६, वाराणसी, वी० सं० २४३८.
३. राजस्थान के शास्त्रभण्डारों की सूची, द्वि० भा०, पृ० २१८, परमानन्द शास्त्री, प्रशस्तिसंग्रह, पृ० ४९.
४. जि० र० को०, पृ० २४२.

हरिवंशपुराण और पाण्डवपुराण-विषयक[1] अन्य रचनाएँ—१. पाण्डव-चरित्र (लघुपाण्डवचरित्र)—अज्ञात ।

२. पाण्डवपुराण—कवि रामचन्द्र (सं० १५६० के पूर्व) ।
३. हरिवंशपुराण—धर्मकीर्ति भट्टारक (सं० १६७१) ।
४. ,, श्रुतकीर्ति ।
५. ,, जयसागर ।
६. ,, जयानन्द ।
७. ,, मंगरस ।

तिरसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य :

महापुराण : आदिपुराण—महापुराण[2] जिनसेन और गुणभद्र की उस विशाल रचना का नाम है जो ७६ पर्वों में विभक्त है। ४७ पर्व तक की रचना का नाम आदिपुराण है और उसके बाद ४८-७६ तक का उत्तरपुराण। इस बृहत्काय ग्रन्थ का अनुष्टुभ् छन्दों मे परिमाण १९२०७ श्लोक हैं। उनमें से आदिपुराण में ११४२९ श्लोक हैं और उत्तरपुराण में ७७७८।

जिनसेन ने ६३ शलाका पुरुषों के चरितों को बृहत्प्रमाण में लिखने की प्रतिज्ञा की थी पर अत्यन्त वृद्ध होने के कारण वे केवल आदिपुराण के बयालीस पर्व और तेतालीसवें पर्व के तीन पद्य अर्थात् १०३८० श्लोक प्रमाण रचकर स्वर्गवासी हो गये। इसके बाद उनके सुयोग्य शिष्य ने शेष कृति को अपेक्षाकृत संक्षेप रूप में पूर्ण किया।

आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के दश पूर्वभवों और वर्तमान भव का तथा भरत चक्रवर्ती के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

प्रथम दो पर्व तो प्रस्तावना रूप हैं, तीसरे में काल और भोगभूमियों और पाँच से लेकर एकादश पर्व तक ऋषभदेव के दश पूर्वभवों का विस्तृत वर्णन है। बारह से पन्द्रह तक ४ पर्वों में ऋषभदेव के गर्भ, जन्म, बाल्यावस्था, यौवन तथा विवाह का वर्णन है। सोलहवें में भरतादि सन्तानोत्पत्ति, प्रजा के लिए असि,

---

१ जि० र० को०, पृ० २४२-२४३, ४६०.
२. स्याद्वाद ग्रन्थमाला, इन्दौर, वि० सं० १९७३-७५, हिन्दी अनुवाद सहित। भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, भाग १-२, १९५१-५४

मषि, कृषि, वाणिज्य, सेवा और शिल्प इन छह आजीविकाओं का प्रतिपादन तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना का वर्णन है।

सत्तरहवें में वैराग्य, दीक्षा, अठारहवें में ६ माह की तपस्या, उन्नीसवें में धरणेन्द्र द्वारा नमि, विनमि के लिए विजयार्ध की नगरियों का प्रदान, बीसहवें में तपश्चरण के बाद इक्षुरस आहार ग्रहण वर्णित है।

इक्कीसवें पर्व में ध्यान का, और बाईस से लेकर पच्चीस तक केवल ज्ञान प्राप्ति, समवसरण, पूजा स्तुति आदि का वर्णन है।

छब्बीसवें से लेकर अड़तीसवें तक १३ पर्वों में भरत चक्रवर्ती की चक्ररत्न-प्राप्ति से लेकर दिग्विजय तथा नगर प्रवेश के पूर्व भरतबाहुबलि युद्ध, बाहुबलि का वैराग्य एव दीक्षा तथा भरत द्वारा ब्राह्मण वर्ण की स्थापना का वर्णन किया गया है।

उनतालीस से लेकर इकतालीस तक तीन पर्वों में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और सस्कारों का वर्णन है। तैंतालीस से लेकर सैंतालीस तक पाँच पर्वों में जय-कुमार और सुलोचना की रोचक कथा दी गई है और सैंतालीस के अन्त में जयकुमार का वैराग्य, दीक्षा, गणधर पद प्राप्ति तथा भरत की दीक्षा और केवलज्ञान प्राप्ति और ऋषभदेव की कैलास पर्वत पर निर्वाण प्राप्ति की कथा दी गई है।

जिनसेन ने अपनी कृति को 'पुराण' और 'महाकाव्य' दोनों नाम से कहा है। वास्तव में यह न तो ब्राह्मणों के विष्णुपुराण आदि जैसा पुराण है और न शिशुपालवधादि के समान महाकाव्य। यह महाकाव्य के बाह्य लक्षणों से सम्पन्न एक पौराणिक महाकाव्य है। आचार्य ने पुराण और महाकाव्य दोनों की परि-भाषा को परिमार्जित करते हुए लिखा है :—जिसमे क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हो, वह पुराण है। इस प्रकार के पुराण मे लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति और फल इन आठ बातों का वर्णन होना चाहिये।[१] पुराण का अर्थ है 'पुरातनं पुराणं'—अर्थात् प्राचीन होने से पुराण कहा जाता है। पुराण के दो भेद हैं—'पुराण' और 'महापुराण'। जिसमें एक महापुरुष के चरित का वर्णन हो, वह 'पुराण' है और जिसमे तिरसठ शलाका-

१. पर्व १-२१-२५.

पुरुषों के चरित का वर्णन रहता है वह 'महापुराण' कहलाता है। जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है—स च धर्मः पुराणार्थः। अर्थात् पुराण में धर्मकथा का प्ररूपण होना चाहिये। महाकाव्य की व्याख्या करते हुए जिनसेन कहता है कि जो प्राचीनकाल के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र चित्रण हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो उसे 'महाकाव्य'[1] कहते हैं। इस तरह परिमार्जित परिभाषा द्वारा पुराण और महाकाव्य के बीच समन्वय स्थापित किया गया है।

आदिपुराण के विस्तृत कलेवर में हम पुराण, महाकाव्य, धर्मकथा, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र और युग की आदि व्यवस्था को सूचित करने वाले एक बृहत् इतिहास के दर्शन करते हैं। यह आदिपुराण दिग० जैनों का एक ऐसा विश्वकोश है तथा एक प्रकार से वह सब कुछ है जो कि उन्हें जानना चाहिये। इसमें अनेक प्रकार के भौगोलिक नाम, बहुरंगी समाज-रचना, सांस्कृतिक जीवन के चित्र, नाना गोष्ठियाँ, नाना प्रकार की कलाएँ, आर्थिक एवं राजनीतिक सिद्धान्त, दार्शनिक तथा धार्मिक बातों की विस्तार के साथ सूचना मिलती है। इस पौराणिक महाकाव्य में ही सर्व प्रथम गर्भादि १६ संस्कारों का उल्लेख किया गया है। संभवतः ब्राह्मण सम्प्रदाय के अनुकरण पर उन्होंने अपने मत के अनुयायियों के लिए यह विकल्परूप रखा है।

साहित्यिक गुणों की दृष्टि से इसके अनेक खण्ड संस्कृत काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। महाकाव्य के नायक रूप में ऋषभदेव के अतिरिक्त भरत, बाहुबलि आदि अनेक पात्र हैं जिनमें से अनेकों चरित्रों का अच्छा विकास हुआ है। पूर्वभवों के निमित्त से अनेक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं जिनमें कई पात्रों के चरित्रों का अच्छा विश्लेषण किया गया है। प्रकृति-चित्रण इस काव्य में पृष्ठभूमि के रूप में प्रचुर मात्रा में किया गया है। कहीं लताओं का वर्णन है तो कहीं सरिताओं और पर्वत-मालाओं का। षड्ऋतु[2] वर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, जलविहार आदि प्रसंगों में प्रकृतिचित्रण[3] बड़े स्वाभाविक रूप में हुआ है। सौन्दर्यचित्रण में कवि ने शास्त्रीय पद्धति अपनायी है और मरुदेवी तथा श्रीमती आदि का नख से लेकर शिखा तक वर्णन किया है।[4]

---

१. वही, १.९९.
२. वही, ९.११, १२, १७; २६.१४८.
३. वही, ३.
४. वही, ६.६९, ७०, ७५.

कवि-परिचय और रचनाकाल—इस महापुराण के रचयिता दो व्यक्ति हैं—जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र। जिनसेन को सम्मान के लिए भगवज्जिनसेन भी कहा जाता है। महापुराण के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गयी पर उत्तर-पुराण के अन्त मे जो प्रशस्ति है उससे इस कवि के जीवन का थोड़ा परिचय मिलता है। इनकी अन्यतम कृति जयधवल टीका से ज्ञात होता है कि ये बाल्य-काल में ही दीक्षित हो गये थे, सरस्वती के बडे आराधक थे तथा शरीर से दुबले-पतले तथा आकृति से भव्य और रम्य नहीं थे। कुशाग्र बुद्धि, ज्ञानाराधना और तपश्चर्या से इनका व्यक्तित्व महनीय हो गया था। इन्होंने ब्राह्मण स्मृतियों का बहुत अध्ययन किया था इसलिये या स्वयं ब्राह्मण होने के कारण स्मृतियों के प्रभाव से जैनाचार को नया मोड़ दिया है।

जिनसेन मूलसघ के पचस्तूपान्वय के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम वीर-सेन था और दादागुरु का नाम आर्यनन्दि। वीरसेन के एक गुरुभाई जयसेन थे। जिनसेन ने अपने आदिपुराण में इनका भी स्मरण किया है। जिनसेन के सधर्मी या सतीर्थ दशरथ मुनि थे। जिनसेन और दशरथ के शिष्य गुणभद्र हुए जिन्होंने महापुराण के शेषाश और उत्तरपुराण की रचना की।[1]

अपने साहित्यिक जीवन मे जिनसेन का तीन स्थानो से सम्बन्ध था—चित्र-कूट, बकापुर और वाटग्राम।[2] चित्रकूट में एलाचार्य का निवास था। जिनसे इनके गुरु वीरसेन ने सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़े थे। चित्रकूट वर्तमान चित्तौड़ है। वाट-ग्राम में रहकर इनके गुरु ने धवला टीका लिखी थी। वाटग्राम, वटपद्र नामों का विद्वानों ने बड़ौदा के साथ साम्य स्थापित किया है। बकापुर में रहकर जिनसेन और गुणभद्र ने महापुराण की रचना की थी। तत्कालीन राष्ट्रकूट नरेश अमोघ-वर्ष (सन् ८१५-८७७ ई०) जिनसेन का बड़ा भक्त था।[3] उस समय अमोघवर्ष का राज्य केरल से लेकर गुजरात, मालवा और चित्रकूट तक फैला हुआ था। जिनसेन का सम्बन्ध चित्रकूट आदि के साथ होने से तथा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित होने से उनके जन्म-स्थान का अनुमान महाराष्ट्र और कर्णाटक के सीमावर्ती प्रदेश में किया जा सकता है।

---

१. उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य १-२०.

२. जैन साहित्य और इतिहास (पं० नाथूराम प्रेमी), पृ० १२७-१५४; महापुराण, प्रस्तावना, पृ० ३१-३२.

३. उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य ९.

आदिपुराण की उत्थानिका में जिनसेन ने अपने पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध कवियों और विद्वानों का, उनके वैशिष्ट्य के साथ, स्मरण किया है–१. सिद्धसेन, २. समन्तभद्र ३. श्रीदत्त, ४. प्रभाचन्द्र, ५. शिवकोटि, ६. जटाचार्य, ७. काणभिक्षु, ८. देव (देवनन्दि), ९. भट्टाकलंक, १०. श्रीपाल, ११. पात्रकेसरी, १२. वादिसिंह, १३. वीरसेन, १४. जयसेन, १५. कविपरमेश्वर।

इस ग्रन्थ से इसके रचनाकाल का पता नहीं चलता फिर भी अन्य प्रमाणों से ज्ञात होता है कि ये हरिवशपुराणकार द्वितीय जिनसेन के ग्रन्थकर्तृत्वकाल (शक स० ७०५ सन् ७८३) में जीवित थे। उनकी ख्याति पार्श्वाभ्युदय रचयिता[1] के रूप में फैली थी। जिनसेन ने अपने गुरु वीरसेन की अधूरी कृति जयधवला को शक स० ७५९ (सन् ८३७) में समाप्त किया था। उसके बाद वृद्धावस्था काल में ही आदिपुराण की रचना प्रारंभ की थी जिसे समाप्त करने के पूर्व ही वे दिवगत हो गये थे। स्व० पं० नाथूराम प्रेमी ने[2] अनुमान किया है कि उनका जीवन ८० वर्ष के लगभग रहा होगा और वे श० स० ६८५ (सन् ७६३) में जन्मे होंगे। जिनसेन द्वितीय के काल (शक स० ७०५) में वे २०-२५ वर्ष के लगभग रहे हों, जयधवला की समाप्ति काल में ७४ वर्ष और प्रस्तुत पुराण के लगभग १० हजार श्लोकों की रचना के समय ८० या उससे कुछ अधिक रहे होंगे। इनकी उपर्युक्त तीन रचनाओंके अतिरिक्त और कोई कृति नहीं मिलती।

उत्तरपुराण—यह पुराण[3] महापुराण का पूरक भाग है। इसमे अजितनाथ से लेकर २३ तीर्थंकरो, सगर से लेकर ११ चक्रवर्तियों, ९ बलदेवों, ९ नारायणों और ९ प्रतिनारायणों तथा उनके काल मे होनेवाले जीवन्धर आदि विशिष्ट पुरुषों के कथानक दिये गये हैं। अवान्तर कथानकों मे कई तो बडे रोचक ढंग से लिखे गये हैं जो पश्चाद्वर्ती अनेकों काव्यो के उपादान बने हैं। इसमें आठवें, सोलहवे, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें तीर्थंकरों को छोड़कर अन्य तीर्थंकरों के चरित्र अत्यन्त सक्षेप मे दिये गये, परन्तु वर्णन शैली का मधुरता से वे भी रोचक

---

१. हरिवंशपुराण, १. ४०.

२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ. १४१.

३. स्याद्वाद ग्रन्थमाला, इन्दौर, सं. १९७३-७५ हि.अ स, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५४.

बन पड़े हैं। अवान्तर कथानकों मे राजा वसु और पर्वत आख्यान, अभयकुमार का चरित्र तथा जीवन्धरचरित्र बड़े ही मनोहर हैं।

उत्तरपुराण के ६७ और ६८ वे पर्वों में रामकथा दी गई है जो पउमचरिय (प्रा०) और पद्मचरित्र (स०) में वर्णित कथा से अनेक बातों में भिन्न है। इस पुराण में राजा दशरथ, वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम कैकयी था। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न बतायी गई है जिसे रावण ने अनिष्टकारिणी जानकर पेटी में रखकर मिथिला में जमीन के अन्दर गड़वा दिया था और वहा से वह राजा जनक को प्राप्त हुई थी। दशरथ पीछे अपनी राजधानी अयोध्या ले गये थे और वहां से राम ने दशरथ का निमत्रण पा सीता से विवाह किया था। राम के बनवास का वहा कोई उल्लेख नहीं है। राम सीता सहित अपने पूर्वजों की भूमि देखने बनारस गये और वहा के चित्रकूट वन से रावण ने सीता का अपहरण किया था। यहाँ सीता के आठ पुत्रों का उल्लेख है किन्तु लव-कुश का नहीं, लक्ष्मण की मृत्यु एक असाध्य रोग के कारण हुई, राम ने लक्ष्मण के पुत्र को राजा बनाया तथा अपने पुत्र को युवराज बनाकर दीक्षा लेली, आदि। यह कथा पालि 'दशरथ-जातक' तथा अद्भुत रामायण के कुछ अनुरूप लगती है, पर इसकी अन्य विशेष बातों का पता लगाना कठिन है।

इसी तरह ७१वें पर्व में बलराम, श्रीकृष्ण, उनकी आठ रानियों तथा प्रद्युम्न आदि के भवान्तर दिये गये हैं। इसमें जिनसेन (द्वि०) के हरिवशपुराण में दिये गये कई स्थानों के नामों तथा कथानक आदि में भेद पाया जाता है।

इस उत्तरपुराण में ४८-७६ तक २९ पर्व हैं। अति विस्तार के भय से, थोड़े में ही कथाएँ समाप्त करना सोचकर कवि ने अपने कवित्व का प्रदर्शन नहीं किया है और केवल पौने आठ हजार श्लोकों में कथाभाग को पूरा किया है। फिर भी बीच-बीच में कितने ही सुभाषित आ गये। इसके प्रतिपर्व की रचना अनुष्टुभ् छन्द में हुई है और सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। इसमें सब मिलाकर १६ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। अनुष्टुभ् मान से इसका ग्रन्थप्रमाण ७७७८ श्लोक है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में ४३ पद्यों की विविध छन्दों में निर्मित एक प्रशस्ति दी गई है जिसके दो भाग हैं। प्रथम भाग १-२७ तक के लेखक गुणभद्र हैं तथा दूसरे भाग के लेखक उनके शिष्य लोकसेन। प्रथम भाग में

ग्रन्थ कर्ता ने अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है। तदनुसार वे मूलसंघ सेनान्वय में हुए वीरसेन मुनि के प्रशिष्य और जिनसेन के शिष्य थे। उक्त प्रशस्ति से सूचना मिलती है कि अमोघवर्ष जिनसेनका बड़ा भक्त था। उसी प्रशस्ति में महापुराण और उत्तरपुराण का आधार कवि परमेश्वरकृत 'गद्यकथा-ग्रन्थ'[1] बतलाया है। गुणभद्र ने लिखा है कि अति विस्तार के भय से और अतिशय हीन काल के अनुरोध से अवशिष्ट महापुराण को उतने सक्षेप में संग्रह किया है।

ग्रन्थकर्ता ने कहीं भी ग्रन्थ समाप्ति का काल नहीं दिया। प्रशस्ति के दूसरे भाग मे उनके शिष्य लोकसेन ने लिखा है कि जब राष्ट्रकूट अकालवर्ष के सामन्त लोकादित्य बंकापुर राजधानी से सारे बनवास देश का शासन कर रहे थे तब शक स. ८२० की श्रावण कृष्णा पचमी के दिन इस पुराण की भव्यजनों द्वारा पूजा की गई।

अब तक विद्वानों ने शक स० ८२० को ग्रन्थ समाप्ति का सवत् माना था जो गलत है।[2] स्व० प० प्रेमी के मत से उत्तरपुराण की समाप्ति जिनसेन के दिवंगत होने अर्थात् श० सं० ७६५ के अनतिकाल बाद पांच-सात वर्षों में अर्थात् लगभग ७७० या ७७२ होनी चाहिये।[1]

गुणभद्र की अन्य कृतियों में २७२ पद्यों का आत्मानुशासन नामक ग्रन्थ मिलता है जो वैराग्यशतक की शैली में लिखा गया है।

कुछ विद्वान् जिनदत्तचरित्र (९ सर्ग) को भी इनकी रचना बताते हैं। पर लगता है कि यह किसी पश्चात्कालीन भट्टारक गुणभद्र की रचना है।[2]

पुराणसार—इसमें चौबीस तीर्थंकरों का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। यह सक्षिप्त रचनाओं में प्राचीन रचना है।[3]

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता लाट बागड़संघ और बलात्कार गण के आचार्य श्रीनन्दि के शिष्य मुनि श्रीचन्द्र हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १०८० में समाप्त की थी। इनकी अन्य कृतियों में महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण पर टिप्पण तथा शिवकोटि की मूलाराधना पर टिप्पण हैं।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १४१-१४२.

२. वही, पृ० ५६५; ३. वही, पृ० २८७.

इन ग्रन्थों के पीछे प्रशस्ति दी गई है जिससे मालूम होता है कि ये सब ग्रन्थ प्रसिद्ध परमार नरेश भोजदेव के समय में धारा मे रहकर लिखे गये थे।

पुराणसारसंग्रह[1]—प्रस्तुत ग्रन्थ में आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्र सकलित हैं। आदिनाथ चरित्र में ५ सर्ग, चन्द्रप्रभ मे १ सर्ग, शान्तिनाथ चरित्र में ६ सर्ग, नेमिनाथ चरित्र में ५ सर्ग, पार्श्वनाथ चरित्र में ५ सर्ग, महावीर चरित्र में ५ सर्ग—इस तरह इसमें २७ सर्ग हैं। इनमे से केवल दस सर्गों के अन्तिम पुष्पिका वाक्यों में ग्रन्थ का नाम पुराणसार सग्रह दिया गया है, बारह में पुराणसग्रह, दो में महापुराणे-पुराणसंग्रहे, एक में महापुराणसग्रह और एक में केवल महापुराण और तीन में केवल अर्थाख्यानसग्रह सूचित किया गया है।

इसके रचयिता दामनन्दि की अनेक कृतियों में चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण[2] नाम से एक कृति श्रवण बेल्गोला के भट्टारक के निजी भण्डार में है।[3] लुइस राइस ने अपनी मैसूर और कुर्ग की हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची में प्रस्तुत रचना और उक्त पुराण दोनों रचनाओं को अभिन्न सूचित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के उक्त पुष्पिका वाक्यों से प्रतीत होता है कि लेखक ने भिन्न-भिन्न समयों में शनैः-शनैः चोबीसों तीर्थंकरों के चरित्र-निबद्ध किये। उनकी रचना के समय ग्रन्थकार ने पूरे ग्रन्थ का कोई एक नाम निश्चित नहीं किया था, इसलिये किसी सर्ग के अन्त में कोई नाम दिया और किसी में कोई। इसलिये प्रतीत होता है कि ग्रन्थ पूर्ण होने पर पूरे ग्रन्थ का नाम चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण या महापुराण प्रसिद्ध हुआ होगा और सर्गान्त वाक्यों के आधार पर वह अर्थाख्यानसग्रह, अर्थाख्यानसयुत, पुराणसारसग्रह, या पुराण-संग्रह भी कहलाता रहा। किसी कारणवश उक्त पूरे ग्रन्थ में से उक्त ६ चरित्र निकाल कर उनका पृथक् सकलन भी प्रचार में आ गया होगा और उसकी प्रसिद्धि 'पुराणसंग्रह' नाम से ही प्रायः हुई होगी।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ के रचयिता दामनन्दि आचार्य हैं, ऐसा अनेक सर्गों के अन्त में दिये गये पुष्पिका वाक्यों से ज्ञात होता है। साहित्य और

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९५४ में दो भागों में प्रकाशित (सं० और अनु० डा० गुलाबचन्द्र चौधरी)।

२. जि० र० को०, पृ० २५२.

३. जि० र० को०, पृ० ११६.

शिलालेख आदि से दामनन्दि नाम के कई आचार्यों का पता चलता है। उनका समय ११वीं से १३ शताब्दी तक के बीच है। कर्नाटक प्रदेश के चिक्कहन-सोगे ताल्लुके में प्राप्त कई शिलालेखों में दामनन्दि का उल्लेख मिलता है।[1] जिनसे ज्ञात होता है कि दामनन्दि भट्टारक का और उनकी शिष्य-परम्परा का हनसोगे (पनसोगे) के ङ्गात्व तीर्थ की समस्त वसदियों (जिनालयों) में तथा पास-पड़ोस की वसदियों में पूर्ण एकाधिकार था। हनसोगे में चार प्रसिद्ध वसदियाँ थीं—आदीश्वर, शान्तिश्वर, नेमीश्वर और जिनवसदि। अन्तिम जिन-वसदि तीन स्वतन्त्र खण्ड थे जिनमें क्रमशः चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ एवं वर्धमान प्रतिमाएँ मूल नायक के स्थान पर प्रतिष्ठित थीं। अनुमान किया जाता है कि ये दामनन्दि भट्टारक ही उक्त चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण के रचयिता थे और स्थानीय महत्त्व की दृष्टि से इस महापुराण में से उपर्युक्त छः तीर्थंकरों के चरित्र संकलित करके एक पृथक् ग्रन्थ के रूप में उन्होंने या उनके शिष्यों ने प्रसिद्ध कर दिये। सम्भवतः यही (प्रस्तुत) वह कथित पुराणसारसंग्रह है। शान्तिनाथचरित्र के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार को एवं सर्गान्त वाक्यों को तथा उसके अन्तिम सर्ग के अन्तिम पद्य को देखने से ऐसा लगता है कि ग्रन्थ रचयिता का स्थायी निवास हनसोगे (पनसोगे) की शान्तीश्वर वसदि ही था। वहीं उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की। भगवान् शान्तिनाथ के वे विशेष भक्त रहे प्रतीत होते हैं। इन दाम-नन्दि का समय ११वीं शताब्दी के मध्य के लगभग पड़ता है।

डा० ज्योतिप्रसाद जैन की मान्यतानुसार[2] ये दामनन्दि एक दूसरे दामनन्दि अर्थात् रविचन्द्र के शिष्य भी हो सकते हैं जिनका समय लगभग १०२५ ई० है। ये चतुर्विंशतिपुराण, जिनशतक (श्लोक सं० ४०००) नामक स्तुति-स्तोत्र-संग्रह, नागकुमारचरित्र, धन्यकुमारचरित्र तथा दानसार (श्लोक सं० ३०००)—इन पाँच ग्रन्थों के रचयिता हैं।[3] डा० जैन ने अनुमान किया है कि ये ही दाम-नन्दि एक महावादी विष्णुभट्ट को पराजित करने वाले थे तथा आप ज्ञानतिलक के रचयिता भट्टवोसरि के गुरु थे तथा अपने समय के प्रभावक आचार्य थे।

पुराणसार नाम से कुछ अन्य रचनाएँ मिलती हैं जिनमें भ० सकलकीर्ति कृत गद्यात्मक है और दूसरी अज्ञातकर्तृक है।

---

१. जै० शि० ले० सं० भा० २, नं० २२३, २३९, २४१.

२. जैन सन्देश, शोधांक २२, भा० दि० जै० स० मथुरा, अक्टू० १९६५.

३. जि० र० को०, पृ० ११६, २५२.

महापुराण—इसके[1] अपर नाम 'त्रिषष्टिमहापुराण' या 'त्रिषष्टिशलाकापुराण' हैं। इसका परिमाण दो हजार श्लोकों का है जिसमें तिरसठ शलाका पुरुषों की सक्षित कथा है। रचना सुन्दर और प्रसाद गुण युक्त है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मुनि मल्लिषेण हैं। महापुराण में रचना का समय शक सं० ९६९ (वि० सं० ११०४) ज्येष्ठ सुदी ५ दिया गया है। इसलिए मल्लिषेण विक्रम की ११वीं के अन्त और १२वीं सदी के प्रारभ के विद्वान् हैं। मल्लिषेण की गुरुपरम्परा इस प्रकार है: अजितसेन (गगनरेश रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय के गुरु) के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के जिनसेन और उनके शिष्य मल्लिषेण। ये एक बडे मठपति थे और कवि होने के साथ-साथ बडे मंत्रवादी थे। धारवाड़ जिले के मुलगुन्द में इनका मठ था वहीं उक्त महापुराण लिखा गया था। इनकी अन्य कृतियों में नागकुमार-काव्य, भैरवपद्मावती-कल्प, सरस्वतीमन्त्रकल्प, ज्वालिनीकल्प और कामचाण्डाली-कल्प मिलते हैं।

त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र—इसमें ६३ शलाका महापुरुषों के जीवनचरित अति-सक्षिप्त रूप में दिये गये हैं।[2] यह भगवज्जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण का सार है। यह ग्रन्थ खाडिल्यवशी जाजाक नामक पण्डित की प्रार्थना और प्रेरणा से नित्य स्वाध्याय करने के लिए रचा गया था। इसके पढ़ने से महापुराण का सारा कथा भाग स्मृति गोचर हो जाता है। ग्रन्थकार ने टिप्पणी रूप में इसपर स्वोपज्ञ 'पंजिका' टीका लिखी है। सम्पूर्ण रचना को २४ अध्यायों में विभक्त किया गया है और इस ग्रन्थ का प्रमाण ४८० श्लोक है। समस्त ग्रन्थ की रचना सुललित अनुष्टुप् छन्दों मे की गई है।

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध प० आशाधर हैं। ये वघेरवाल जाति के जैन थे तथा प्रसिद्ध धारा नगरी के समीप नलकच्छपुर (नालछा) के निवासी थे। इन्होंने लगभग १९ ग्रन्थों की रचना की है उनमें कई प्राप्त हैं और प्रकाशित हैं और कई अब तक अनुपलब्ध हैं। काव्यग्रन्थों में इनके

---

१. जि० र० कोश, पृ० १६३ और ३०५; जैन० सा० और इतिहास, पृ० ३१४-३१९.

२ माणिक्यचन्द्र दि० जै० ग्र० मा० बम्बई, १९३७; जिनरत्नकोश, पृ० १६५.

१. भरतेश्वराभ्युदय काव्य स्वोपज्ञटीका सहित, २. राजीमतीविप्रलम्भ तथा ३. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र हैं। शेष श्रावक-मुनि आचार, स्तोत्र, पूजा, विधान तथा टीकाएँ हैं।

इनके ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ परमारवंशी राजाओं के इतिहास-काल जानने के लिए बड़ी उपयोगी हैं।[१]

इस ग्रन्थ के अन्त में जो प्रशस्ति दी गई है उससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना परमारनरेश जैतुगिदेव के राज्यकाल में विक्रम स० १२९२ में नलकच्छपुर के नेमिनाथ मन्दिर में हुई थी।

आदिपुराण[२]-उत्तरपुराण[३]—आदिपुराण को 'ऋषभदेवचरित' तथा 'ऋषभनाथचरित' नाम से भी कहा जाता है। इसमें बीस सर्ग हैं। उत्तरपुराण का विशेष विवरण नहीं मिल सका है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इन दोनों कृतियों के लेखक भट्टारक सकलकीर्ति हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति हरिवंशपुराण के प्रसंग में दिया गया है।

तिरसठ महापुरुषों के चरित से संबंधित केशवसेन (स० १६८८) और प्रभाचन्द्र के कर्णामृतपुराण[४] भी उल्लेखनीय हैं।

रायमल्लाभ्युदय—इसमें चौबीस तीर्थंकरों का चरित्र महापुराण के अनुसार दिया गया है। यह अबतक अप्रकाशित है तथा हस्तलिखित प्रति के रूप में खंभात के कल्याणचन्द्र जैन पुस्तक भण्डार में है। पत्र संख्या १०५ है। यह ग्रन्थ अकबर के दरबारी सेठ चौधरी रायमल्ल (अग्रवाल दिग०) की अभ्यर्थना और प्रेरणा से रचा गया था, इसलिये इसका नाम 'रायमल्लाभ्युदय' रखा गया।[५]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता उपाध्याय पद्मसुन्दर हैं जोकि नागौर तपागच्छ के बहुत बड़े विद्वान् थे। उनके गुरु का नाम पद्ममेरु और प्रगुरु का आनन्दमेरु था। पद्मसुन्दर अपने युग के प्रभावक आचार्य थे।

---

१ विशेष परिचय के लिए देखें—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३४३–३५८.

२. जि० र० को०, पृ० २८. ३. वही, पृ० ४२. ४. वही, पृ० ६८.

५. इसका परिचय प्रो० पीटर पिटर्सन ने जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई ब्रांच (एक्स्ट्रा न० स० १८८७) में विस्तार से दिया है।

बादशाह अकबर के दरबार में ३३ हिन्दू सभासदों के पाँच विभागों में से उनका नाम प्रथम विभाग में था। उनने अकबर के दरबार में एक महापण्डित को वाद-विवाद मे परास्त भी किया था और सम्मानित हुए थे। जोधपुर के हिन्दू नरेश मालदेव ने भी इनका सम्मान किया था। 'अकबरशाहि-शृंगारदर्पण' की प्रशस्ति से मालूम होता है कि पद्मसुन्दर के दादागुरु आनन्दमेरु का अकबर के पिता हुमायूँ और पितामह बाबर के दरबार में बड़ा सम्मान था।

पद्मसुन्दर बडे ही उदारबुद्धि थे। उन्होंने दिगम्बर सम्प्रदाय के रायमल्ल के अनुरोध पर उक्त ग्रन्थ की ही नहीं बल्कि पार्श्वनाथकाव्य की भी रचना की है। उक्त दोनों ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रायमल्ल के वंश का परिचय तथा काष्ठा-सघ के आचार्यों की गुरु-परम्परा दी गई है।

पद्मसुन्दर ने कई ग्रन्थ लिखे थे: भविष्यदत्तचरित, रायमल्लाभ्युदय, पार्श्व-नाथकाव्य, प्रमाणसुन्दर, सुन्दर प्रकाश शब्दार्णव (कोष), शृंगारदर्पण, जम्बू-चरित (प्राकृत), हायनसुन्दर (ज्योतिष) और कई लघु कृतियाँ। ये समस्त रचनाएँ उन्होंने वि० सं० १६२६ और १६३९ के बीच रची थीं। उनका स्वर्गवास वि० सं० १६३९ में हुआ था।[1]

चउप्पन्नमहापुरिसचरिय—इस चरित[2] में केवल ५४ महापुरुषों का वर्णन किया गया है। जैन साहित्य में महापुरुषों के सम्बध में दो मान्यताएँ हैं। समवायाग सूत्र के २४६ से २७५ वें सूत्र तक ६३ शलाकापुरुषों के नाम दिये गये हैं पर ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़ शेष ५४ को ही सूत्र स० १३२ में 'उत्तम-पुरुष' कहा गया है। इस चरित में भी ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर शेष ५४ को ही 'उत्तमपुरुष' कहा गया है। पर चरित्र प्रतिपादन की दृष्टि से देखा जाय तो इसमें ५१ महापुरुषों का ही वर्णन है क्योंकि शान्ति, कुन्थु और अरनाथ ये तीन नाम तीर्थंकर और चक्रवर्तियों-दोनों में सामान्य हैं। इतना ही नहीं, विषय-सूची देखने से ज्ञात होता है कि वास्तविक चरित ४० ही रह जाते हैं क्योंकि पिता-पुत्र, अग्रज-अनुज के सम्बंध से कुछ चरित साथ-साथ दिये गये हैं इसलिए विशिष्ट चरितों की सख्या ४० शेष रह जाती है।

---

१. अनेकान्त, वर्ष ४ अ० ८; अगरचन्द्र नाहटा—'उपाध्याय पद्मसुन्दर और उनके ग्रन्थ' तथा वही, वर्ष १० अ० १ 'कवि पद्मसुन्दर और श्रावक रायमल्ल', नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९५-४०३.

२. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, सन् १९६१.

महापुरुषों के समुदित चरित्र को प्राकृत भाषा में वर्णन करनेवाले उपलब्ध ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम स्थान है। संस्कृत-प्राकृत भाषाओं में एक-कर्तृक की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ सर्वप्रधान है। संस्कृत में इसके पूर्व 'महापुराण' मिलता है पर वह भी एककर्तृक नहीं है। इसकी पूर्ति जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य ने की थी।

इस ग्रन्थ का श्लोकपरिमाण १०८०० है। यह एक गद्य-पद्यमिश्रित रचना है। प्रारंभ में ऋषभदेव चरित के मध्य एक 'विबुधानन्दनाटक' (संस्कृत-प्राकृतमिश्रित) दिया गया है और यत्र-तत्र अपभ्रंश के सुभाषित भी दिये गये हैं। देशी शब्दों का भी प्रयोग उचित मात्रा में हुआ है।

लेखक ने कथावस्तु के पूर्व स्रोतों के रूप मे आचार्यपरम्परा द्वारा प्राप्त प्रथमानुयोग का निर्देश किया है पर उनके समक्ष शायद ही प्रथमानुयोग रहा हो। ग्रन्थकार ने पूर्ववर्ती रचनाओं से कथावस्तु ग्रहण की है परन्तु उसमे भी कई बातों में भिन्नता प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए रामकथा को ही लें। अधिकाश वर्णन तो विमलसूरि रचित पउमचरियं के समान है पर कुछ बातों में भेद है यथा—रावण की बहिन को पउयचरिय मे चन्द्रनखा कहा है तो यहाँ उसका नाम सूर्पनखा, पउमचरिय में रावण लक्ष्मण के स्वर मे सिंहनाद करके राम को धोखा देता है किन्तु यहाँ सुवर्णमय मायामृग का प्रयोगकर, यहा राम के हाथ से बालि का वध बताया गया है जबकि पउमचरिय में दीक्षा लेना। इन बातों से लगता है कि इस रचना पर वाल्मीकि रामायण का अधिक प्रभाव है। वैसे ग्रन्थ के अन्त मे शीलाक ने स्पष्टतः कहा है कि राम लक्ष्मण का चरित्र पउमचरिय में विस्तार से वर्णित है।

इस ग्रन्थ के ४० चरित्रों में २१ चरित तो कथाओं के अति सक्षिप्त नोट जैसे लगते हैं। कई तो ५-७ पंक्तियों मे या आधे-पौन पृष्ठ मे और अधिक से अधिक एक या सवा पृष्ठ मे समाप्त किये गये हैं। केवल १९ चरित्र अनेकों विशेषताओं के कारण विस्तृत हुए हैं—जैसे महापुरुष के क्रम से १-२. ऋषभ-भरत चरित, ३०-३१. शान्तिनाथ चरित (तीर्थं० चक्र०), ४१. मल्लिस्वामि और ५३. पार्श्वस्वामिचरित–इन चार चरित्रो मे कथानायक के पूर्वभवों का विस्तार से वर्णन है। ७. सुमतिस्वामिचरित पूर्व भव की कथा तथा शुभाशुभ कर्म विपाक के लम्बे उपदेश के कारण विस्तार से वर्णित है। ४. सगरचरित,

२९. सनत्कुमारचरित, ३८. सुभूमचरित, ४९-५०-५१ नेमिनाथ-कृष्ण-बलदेव-चरित, ५२. ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति, तथा ५४. वर्धमानस्वामिचरित—इन छः चरित्रों मे कथानायकों के विविध प्रसगों का विस्तार है। ३. अजितस्वामि-चरित, १७-१८. द्विपृष्ठ-विजयचरित, २०-२१ स्वयम्भू-भद्रबलदेवचरित्र, ३४-३५ अरस्वामि (तीर्थ-चक्र०)-चरित—इन चार चरित्रों में अवान्तर कथाओं के कारण विस्तार किया गया है। १४-१५. त्रिपृष्ठ-अचलचरित्र में सिंहवध-घटना के अतिरिक्त मुख्य रूप से पूर्वभवों के वृत्तान्त के कारण विस्तार हुआ है। ५. सभवचरित, ८ पद्मप्रभचरित १०. चन्द्रप्रभचरित्र—इन तीन चरितों में क्रमशः कर्मबन्ध, देव-नरक गति तथा नरकों से सम्बद्ध उपदेश ही अधिक हैं, चरित तो एक तालिका मात्र ही रह गए हैं।

इसमें समागत वरुणवर्मकथा, विजयाचार्यकथा और मुनिचन्द्रकथा—इन तीन अवान्तर कथाओं की तथा ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति-चरित के अधिकाश भाग की रचनाशैली आत्मकथात्मक है।

अन्य चरित-ग्रन्थों से इसमें विशेषता यह है कि इसमें सर्वप्रथम हमे नाटक रूप में अवान्तर कथा रचे जाने का नमूना मिलता है।

इस काव्य का पश्चात्कालीन सस्कृत-प्राकृत कई काव्यों पर प्रभाव है।

सास्कृतिक सामग्री की दृष्टि से इसमें युद्ध, विवाह, जन्म एव उत्सवों के वर्णन में तत्कालीन प्रथाओं और रीति-रिवाजों के अच्छे उल्लेख मिलते हैं। इसमें चित्रकला और सगीतकला की अच्छी सामग्री दी गई है। इसकी भाषा, शैली आदि महाकाव्य के अनुरूप ही हैं।

ग्रन्थकार और उनका समय—इस चरित ग्रन्थ के रचयिता ने अपनी पहचान तीन नामों से दी है—१. शीलाक या सीलक, २. विमलमति और ३. सीलाचरिय। ग्रन्थ के अन्त में पॉच गाथाओं की एक प्रशस्ति दी गई है उससे ज्ञात होता है कि ये निर्वृत्ति कुल के आचार्य मानदेवसूरि के शिष्य थे।[१] लगता है आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व और उसके बाद ग्रन्थकार का नाम क्रमश. विमलमति और शीलाचार्य रहा होगा। 'शीलांक' तो उपनाम जैसा प्रतीत होता है जो सभवतः उनकी अन्य रचनाओं मे भी प्रयुक्त हुआ हो।

१. प्रस्तावना, पृ० ५२-५४.

देशीनाममाला मे हेमचन्द्र द्वारा प्रयुक्त कुछ उद्धरणों से प्रतीत होता है कि शीलांक रचित कोई 'देशी नाममाला' या 'देशी शब्दकोश' की टीका रही होगी। वैसे शीलाक नाम के अन्य भी आचार्य हो गये हैं पर उनकी आगमविषयक ही रचनाएँ हैं। बृहट्टिप्पनिका में 'चउप्पन्नमहापुरिसचरिय' का रचना-समय वि० सं० ९२५ दिया है। ये शीलाचार्य अपने समकालीन शीलाचार्य अपरनाम तत्त्वादित्य से भिन्न हैं। तत्त्वादित्य ने आचाराग तथा सूत्रकृताग पर वृत्ति लिखी थी।

कहावलि—इस ग्रन्थ[1] मे तिरसठ महापुरुषों का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना प्राकृत गद्य में की गई है पर यत्र-तत्र पद्य भी पाये जाते हैं। ग्रन्थ मे किसी प्रकार के अध्यायों का विभाग नहीं। कथाओं के आरम्भ मे 'रामकहा भण्णइ', 'वाणरकहा भण्णइ' आदि रूप से निर्देश मात्र कर दिया गया है। यह कृति पश्चात् कालीन त्रिषष्टिशलाकापुरुषमहाचरित (हेमचन्द्र) आदि रचनाओं का आधार है। इसके ऐतिहासिक भाग 'थेरावलीचरियं' की सामग्री का हेमचन्द्र ने 'परिशिष्टपर्व' अपरनाम 'स्थविरावलीचरित' में उपयोग किया है। इसमें रामायण की कथा विमलसूरिकृत 'पउमचरिय' का अनुसरण करती है पर यहाँ-वहाँ कुछ फेरफार किया गया है, जैसे सीता के गृह-निर्वास प्रसग में कहा गया है कि जब सीता गर्भवती हुई तो उसे स्वप्न में दिखा कि उसके दो पराक्रमी पुत्र होंगे। स्वप्न की यह बात सपत्नियों के लिये ईर्ष्या का विषय हो गई और उन्होंने छल से राम के आगे उसे बदनाम करना चाहा। उन्होंने सीता से रावण का चित्र बनाने का आग्रह किया। सीता ने यह कहते हुए कि उसने रावण के मुखादि अंग तो देखे नहीं, केवल उसके पैरों का चित्र बना दिया। इसपर सपत्नियों ने लाछन लगाया कि वह रावण पर अनुरक्त है और उसीके चरणों का वन्दन करती है। राम ने यद्यपि इसपर तत्काल कोई ध्यान नहीं दिया पर सपत्नियों ने जनता मे जब अपवाद फैलाना शुरू किया तो राम को विवश होकर उसे निर्वासित करना पड़ा।

रावण के चित्र की घटना हेमचन्द्र ने अपने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में भी दी है।

---

१. इसका सम्पादन उ० प्रे० शाह गाय० ओरि० सि० बड़ौदा के लिए कर रहे हैं।

कर्ता एव रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कृति के रचयिता भद्रेश्वरसूरि हैं। ये अभयदेवसूरि के गुरु थे। अभयदेव के शिष्य आषाढ का समय वि० स० १२४८ है। अतः भद्रेश्वर का समय १२वीं शताब्दी के मध्य के आसपास मान सकते हैं। परन्तु इस ग्रन्थ की भाषा चूर्णियों की भाषा के बहुत समीप है। सम्पादक ने दिखाने का प्रयास किया है कि कहावलि ग्रन्थ १२वीं शताब्दी से बहुत पहले का है। उक्त ग्रन्थ के स्थविरावली के अश में निम्न अवतरण

'जो उण मल्लवाई व पुव्वगयावगही खमापहाणो समणो सो खमा समणो नाम जहा आसो इह संपयं देवलाय (देवलोयं) गओ जिणभद्दि (द्द) गणि खमासमणो त्ति रयि याइं च तेण विसेसावस्सय विसेसणवई सत्थाणि जेसु केवल नाणदस्सणवियारावसरे पयडियाभिप्पाओ सिद्ध-सेन दिवायरो।'

से ज्ञात, होता है कि जिनभद्र क्षमाश्रमण सपयं (इसी समय) देवलोक को गये हैं। इससे कहावलि को जिनभद्र से एकदम छः शताब्दी पीछे नहीं रखा जा सकता। जिनभद्र के बहुत ख्यातिप्राप्त होने से उनके लिये साम्प्रत शब्द दो शताब्दी पूर्व तक के लिये लग सकता है। इसलिए कहावलि को आठवीं के बाद की रचना कहना उचित न होगा।[१]

चउप्पन्नमहापुरिसचरियं—यह प्राकृत भाषानिबद्ध ग्रथ १०३ अधिकारों में विभक्त है। इसका मुख्य छन्द गाथा है। इसका श्लोक-परिमाण १००५० है जिसमें ८७३५ गाथाएँ और १०० इतर वृत्त हैं। यह ग्रथ अब तक अप्रका-शित है।

इसमें भी चौवन महापुरुषों के चरित्र का वर्णन है। ग्रंथ-समाप्ति पर उपसंहार में कहा गया है कि ५४ में ९ प्रतिवासुदेवों को जोड़ने से तिरसठ शलाकापुरुष बनते हैं। इसमें तीर्थंकरो के यक्ष-यक्षिणियों का उल्लेख है जो प्राचीनतम ग्रथों में नहीं मिलता अतः सम्भावना की जा सकती है कि यह ग्रंथ शीलाक के चउप्पन्नम० के बाद रचा गया होगा।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता आम्र कवि हैं। ग्रथ के प्रारम्भ और अन्त में ग्रंथकार ने अपने लिए अम्म शब्द के अतिरिक्त कोई विशेष परि-

---

१ जैन सत्यप्रकाश, भाग १७, स० ४, जनवरी १९५९ में उ० प्रे० शाह का लेख, आल इण्डिया ओरि० का० वर्ष २० भाग २ के पृ० १४७ में भी सम्पादक का उक्त अभिप्राय अंकित है।

न्चायक सामग्री नहीं दी है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वि० स० ११९० में रचित 'आख्यानकमणिकोश' वृत्तिकार आम्रदेव और इस चरित के रचयिता एक ही हैं पर उक्त वृत्ति में अम्म और आम्रदेव के अभिन्न होने का कोई आधार नहीं मिलता है।[1]

इस ग्रथ की अनुमानतः १६वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमिसूरीश्वर-शास्त्रसंग्रह में उपलब्ध है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—इस महाचरित मे जैनों के कथानक, इतिहास, पौराणिक कथाएँ, सिद्धान्त एवं तत्त्वज्ञान का सग्रह है।[2] यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १० पर्वों में विभक्त है। प्रत्येक पर्व अनेकों सर्गों में विभक्त हैं। इस ग्रथ की आकृति ३६००० श्लोकप्रमाण है।[3] महासागर समान इस विशाल ग्रथ की रचना हेमचन्द्राचार्य ने अपनी उत्तरावस्था में की थी। उनकी सुधावर्षिणी वाणी का गौरव और माधुर्य इस काव्य में स्वय अनुभव किया जा सकता है। समकालीन सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक प्रणालियों का प्रतिबिम्ब इस विशाल ग्रन्थ म अनेकों स्थलों में देख सकते हैं। इस प्रकार से इसमे गुजरात के उस समय का समाज और उसका मानस अच्छी तरह प्रतिबिम्बित हुआ है। इस दृष्टि से त्रि० श० पु० च० का महत्त्व हेमचन्द्राचार्य की कृतियों मे विशिष्ट है। इनके 'द्वयाश्रय' में जितना वैविध्य दृष्टिगोचर होता है उसे अधिक इस ग्रथ में होता है।

तिरसठ-शलाका-पुरुषों का चरित १० पर्वों में इस प्रकार समाविष्ट है :—

१ पर्व मे आदीश्वर प्रभु और भरतचक्री।

२ पर्व में अजितनाथ तथा सगरचक्री।

३ पर्व में सम्भवनाथ से लेकर शीतलनाथ तक आठ तीर्थंकरों का चरित।

---

१. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी से प्रकाशित 'आख्यानकमणिकोश' की भूमिका, पृ० ४२.

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९०६–१३.

३ जिनमण्डन ने 'कुमारपालचरित' में इसको ३६००० श्लोकप्रमाण लिखा है, मुनि पुण्यविजय ३२००० श्लोकप्रमाण बतलाते है, प्रो० याकोबी ने ३७००० श्लोकप्रमाण बतलाया है।

४ पर्व में श्रेयासनाथ से लेकर धर्मनाथ तक पॉच तीर्थंकर, पॉच वासुदेव, पॉच प्रतिवासुदेव और पॉच बलदेव तथा दो चक्रवर्ती—मघवा और सनत्कुमार इस प्रकार सब मिला कर २२ महापुरुषों का चरित।

५ पर्व में शान्तिनाथ का चरित। ये एक ही भव मे तीर्थंकर और चक्रवर्ती दोनों थे। उनके दो चरित गिनती में आये।

६ पर्व में कुन्थुनाथ से मुनिसुव्रत तक चार तीर्थंकर, चार चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव तथा दो प्रतिवासुदेव—इन १४ महापुरुषों का चरित। उनमें भी कुन्थुनाथ और अरनाथ उसी भव मे चक्रवर्ती हुए थे। उनकी दो चक्रवर्तियों के रूप में भी गिनती की जाती है।

७ पर्व मे नेमिनाथ, १०वे-११वें चक्रवर्ती हरिषेण और जय तथा आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव—राम, लक्ष्मण तथा रावण—के चरित मिलाकर ६ महापुरुषों के चरित। इस पर्व का अधिक भाग रामचन्द्र आदि के चरित का वर्णन करता है। इसे जैन रामायण अथवा पद्मचरित भी कहते हैं।

८ पर्व में नेमिनाथ तीर्थंकर तथा नवम वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव—कृष्ण, बलभद्र और जरासंध को मिलाकर ४ महापुरुषों के चरित। पाण्डव-कौरव भी नेमिनाथ के समकालीन थे। उनके चरित भी इस पर्व में आ गये हैं। इस पर्व की कथावस्तु जैन हरिवशपुराण के रूप मे भी कही जाती है। दिग० आचार्य जिनसेन का सस्कृत में रचा हरिवशपुराण खूब प्रख्यात है। इसके उपरात कवियों में स्वयभू, धवल आदि ने मी अपनी कुशल लेखनो इस विषय पर चलाई है।

९ पर्व में पार्श्वनाथ तीर्थंकर और ब्रह्मदत्त नामक बारहवें चक्रवर्ती के चरित।

१० पर्व मे भग० महावीर का जीवनचरित है। अन्य पर्वों की अपेक्षा यह पर्व बहुत बड़ा है। सम्पूर्ण पर्व में कुल १३ सर्ग हैं और ग्रन्थकार की प्रशस्ति है। इस पर्व में श्रेणिक, कोणिक, सुलसा, अभयकुमार, चेटकराज, हल्लविहल्ल, मेघकुमार, नन्दिषेण, चेलना, दुर्गन्धा, आर्द्रकुमार, ऋषभदत्त, देवनन्दा, जमालि, शतानीक, चण्डप्रद्योत, मृगावती, यासासासा, आनन्द आदि दश श्रावक, गोशालक, हालीक, प्रसन्नचन्द्र, दर्दुराङ्कदेव, गौतमस्वामी, पुण्डरीक-कडरीक, अंवड, दशार्णभद्र, धन्ना-शालिभद्र, रौहिणेय, उदायन-शतानीक-पुत्र, अन्तिम राजर्षि

उदायन, प्रभावती, कपिलकेवली, कुमारनन्दि सोनी, उदायि, कुलवालुक और कुमारपाल राजा आदि के चरित्र और प्रबन्ध बहुत प्रभावक रूप में वर्णित हैं। इनमें भी श्रेणिक, कोणिक, अभयकुमार, आर्द्रकुमार, दर्दुराङ्कदेव, अन्तिम राजर्षि उदायन और गोशालक आदि के वृत्तान्त बहुत विस्तार से दिये गये हैं। इनमें से कई अंश अन्य ग्रन्थों मे अलभ्य हैं। पाँचवें और छठे आरा (काल) का तथा उत्सर्पिणी काल में आने वाला वृत्तान्त भी बड़े विस्तार से आया है। इन और अन्य अनेक बातों से परिपूर्ण यह चरित है।

त्रि० श० पु० च० मे तत्कालीन अनेक सामाजिक चित्र दृष्टिगोचर होते हैं यथा ऋषभदेव के विवाह प्रसग में हेमचन्द्राचार्य ने समकालीन प्रथाएँ और रीति-रस्में दी हैं।[१]

धार्मिक दृष्टि से इसकी महत्ता दश पर्वों में अलग-अलग तीर्थंकरों की देशना द्वारा जैन सिद्धान्तों के विवेचन से ज्ञात होती है। इसमे नयो का स्वरूप, क्षेत्रसमास, जीवविचार, कर्मस्वरूप, आत्मा का अस्तित्व, बारह भावना, संसार से विरक्ति आदि का सरल और चित्ताकर्षक भाषा में वर्णन किया गया है।[२]

ऐतिहासिक दृष्टि से भी त्रि० श० पु० च० के दशवें पर्व के दो विभाग अत्यन्त उपयोगी है। एक तो कुमारपाल के भविष्य कथन रूप में लिखा हुआ चरित और दूसरा ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति। अन्त्य प्रशस्ति की कई बातें तो प्रकरण के प्रारम्भ में दी गई हैं परन्तु अखिल प्रशस्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। १०वे पर्व के १२वे सर्ग में कुमारपाल के चरित का उल्लेख किया गया है। उसमें पाटन का, कुमारपाल का, उसके राज्यविस्तार का, जिनप्रतिमा के प्रासाद का तथा दूसरी अनेक बातों का वर्णन आया है। राज्यविस्तार का वर्णन करते[३] हुए लिखा है कि :—

'स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्।
याम्यामाविन्ध्यमाम्भोधि पश्चिमां साधयिष्यति[४]॥'

---

१ पर्व १ स० २ ७९६–८०४

२. गुजराती भाषान्तर पर्व १-२ की प्रस्तावना, पृ० ३.

३. पर्व १०, स० १२, श्लो० ३७–९६.

४. वही, श्लो० ५२

अर्थात् वह राजा उत्तर दिशा में तुरुष्क देश तक, पूर्व में गंगा नदी तक, दक्षिण में विन्ध्यगिरि तक और पश्चिम मे समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासन करेगा।

काव्य और शब्दशास्त्र की दृष्टि से भी यह काव्य बड़े महत्त्व का है। यह प्रसाद-गुण व्याप्त है। अलंकारों और कवि-कल्पनाओं तथा शब्द-माधुर्य से व्याप्त है। इसमें सरल पर गौरव पूर्ण भाषा है। इस ग्रन्थ को पढने से शब्दशास्त्र, छन्दशास्त्र, अलकारशास्त्र, तत्त्वज्ञान, पौराणिक कथा, इतिहास आदि अनेक बातों की उपलब्धि एक साथ होती है।

हेमचन्द्र के साथ कुमारपाल का प्रथम मिलन निम्न प्रकार बतलाया गया :—

एक समय वज्रशाखा और चन्द्रकुल में हुए आचार्य हेमचन्द्र उस राजा की दृष्टि में आवेंगे। आचार्य द्वारा जिनचैत्य में धर्मदेशना देते समय उनकी वन्दना करने के लिये अपने श्रावक मंत्री के साथ वह राजा आवेगा। तत्त्व को न जानता हुआ भी शुद्धभाव से आचार्य की वन्दना करेगा। पश्चात् उनके मुख से शुद्ध धर्मदेशना प्रीतिपूर्वक सुनकर वह राजा सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत स्वीकार करेगा और पूर्णरीति से बोध प्राप्त कर श्रावक के आचार का पारगामी होगा।

सोमप्रभकृत कुमारपाल प्रतिबोध के आरम्भ के कथानक के साथ यह वर्णन बहुत कुछ मिलता है। इसलिये ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि से भी आचार्य के साथ कुमारपाल का सम्बन्ध वाग्भट जैसे जैन मंत्रियों की प्रेरणा से बहुत दृढ़ हुआ और जैनधर्म के प्रति उसका आध्यात्मिक भाव उनके सहृदय उपदेशों से व्याप्त हो गया।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र हैं जिनके जीवन-चरित पर बहुविध सामग्री उपलब्ध होती है। उनके जीवन चरित पर पूर्व भागों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

त्रि० श० पु० च० में बड़ी प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना हेमचन्द्र ने चौलुक्य नृप कुमारपाल के अनुरोध से की थी।[1] सम्भवतः कुमारपाल के जैनधर्म स्वीकार करने के बाद उसके अनुरोध पर हेमचन्द्र

---

1. पर्व १०, प्रशस्ति, पद्य १६–२०

ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में इसकी रचना की थी। डा० बूल्हर ने इसकी रचना का समय वि० सं० १२१६–१२२८ माना है। वि० सं० १२२९ में हेमचन्द्र का स्वर्गवास हुआ था।[1]

प्रशस्ति से यह भी मालूम होता है कि इसकी रचना योगशास्त्र की रचना के बाद की गई थी। योगशास्त्र की वृत्ति में कई श्लोक त्रि० श० पु० च० से उतारे गये हैं। इससे यह मान सकते हैं कि उक्त वृत्ति और इस चरित की रचना एक साथ हुई थी। इतना ही नहीं परिशिष्टपर्व की योजना भी उस समय बन गई थी। इसके भी कई प्रमाण मिलते हैं।

हेमचन्द्र ने यद्यपि पूर्वाचार्यों या उनकी कृतियों का उल्लेख नहीं किया है, फिर भी उन्होंने अनेक पूर्वाचार्यों की कृतियों का उपयोग किया है। उनसे पूर्व दिग० और श्वेता० दोनों सम्प्रदायों के कवियों ने इस विषय को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखा है। उस समय तक तीर्थंकरों के अलग-अलग अनेक आख्यान भी लिखे गये थे। विमलसूरि, रविषेण, शीलांक, जिनसेन प्रथम, द्वितीय, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धवल आदि के ग्रन्थों के अतिरिक्त, आवश्यक तथा दूसरे सूत्रों के ऊपर लिखी चूर्णियाँ तथा हरिभद्रसूरि की टीकाएँ आदि में आनेवाली कथाएँ भी हेमचन्द्राचार्य के समक्ष थी हीं। पुरोवर्ती आचार्यों की अनेक कृतियो का हेमचन्द्राचार्य ने अपनी इस कृति में न्यूनाधिक रूप से उपयोग किया है।

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित से प्रभावित रचनाएँ :

चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरितानि (अमरचन्द्रसूरि)—ई० सन् १२३८ के पूर्व रचित इस कृति में २४ अध्याय और १८०२ पद्य हैं। इसमें २४ तीर्थंकरों के संक्षिप्त जीवन चरित्र दिये गये हैं। रचयिता का भाव सभी जिनों के चरित्र को थोड़े में लिखने का था इसलिए इसमें काव्यकला प्रदर्शन करने का कोई अवसर नहीं मिला। प्रत्येक अध्याय में मुख्य विषयों की चर्चा इस प्रकार है—१. पूर्वभव, २. वंशपरिचय, ३. तीर्थंकर को विशेष नाम दिये जाने की व्याख्या, ४. च्यवन, गर्भ, जन्म, दीक्षा और मोक्ष के दिन, ५. चैत्यवृक्ष की ऊँचाई, ६. गणधर, साधु, साध्वी, चौदहपूर्वी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी,

---

१. विशेष जीवनचरित्र के लिये देखें—हेमचन्द्राचार्य-जीवन-चरित्र (कस्तूरमल बांठिया), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १ परिशिष्ट 'अ' और 'ब' में ग्रंथ-सूची दी गई है।

केवली, विक्रिया ऋद्धिधारी न्यायवादी, श्रावक और श्राविका-परिवार, ७. आयु, शैशवावस्था, राज्यावस्था (यदि हो तो), छद्मस्थावस्था और केवली अवस्था का वर्णन।[१]

ग्रन्थ-कर्ता अपने समय के बहुत बड़े कवि थे। उनके अन्य ग्रन्थ हैं: पद्मानन्द, बालभारत आदि १३ ग्रन्थ। बालभारत के परिचय के साथ इस कवि का विशेष परिचय दिया गया है।

महापुरुषचरित—इस रचना में पाच सर्ग हैं।[२] ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पॉच तीर्थंकरों का वर्णन है। इस पर एक टीका भी है, जो सभवतः स्वोपज्ञ है। उसमें उक्त कृति को काव्योपदेशशतक या धर्मोपदेश-शतक भी कहा गया है।

इसके रचयिता मेरुतुग हैं। इनकी अन्य रचना प्रबधचिन्तामणि (सन् १३०६) है। कवि का विशेष परिचय प्रबंधचिन्तामणि के प्रसंग मे दिया जायगा।

लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—यह ग्रन्थ[३] हेमचन्द्राचार्य कृत त्रि० श० पु० च० के अनुकरण पर निर्मित हुआ है। इसमें भी १० पर्व हैं पर इसकी वर्णनशैली अलग दिखती है। इसमें किसी तीर्थंकर के चरित्र में दिक्कुमारि-काओं का महोत्सव विस्तार से दिया गया है, तो किसी में दीक्षामहोत्सव, तो किसी मे समवशरण की रचना अति विस्तार से वर्णित है। सर्वत्र इन्द्रों की स्तुति और तीर्थंकरों की देशना सक्षेप से दी गई है। अवान्तर कथाएँ भी संक्षिप्त रूप में दी गई हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ हेमचन्द्र के बृहत्काय ग्रन्थ के अनुकरण पर बनाया गया है फिर भी इसमें शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्रों के

१. गायकवाड ओरि० सिरीज स० ५८, बडौदा, १९३२, परिशिष्ठ 'क', जि० र० को०, पृ० २३४ मे पद्मानन्दकाव्य के परिचय के साथ।
२. जि० र० को०, पृ० ३०५.
३. जि० र० को०, पृ० ३३५; इसका गुजराती अनुवाद पं० मफतलाल झवेरचन्द्रकृत छोटालाल मोहनलाल शाह, उनादा (उ० गुजरात) द्वारा वि० सं० २००५ में प्रकाशित हुआ है।

संकलन में ग्रन्थकार ने त्रि० श० पु० च० की अपेक्षा उक्त तीर्थंकरों पर लिखी स्वतंत्र रचनाओं का विशेष उपयोग किया है, इसलिए इसमें अनेक प्रसग नये आ गये हैं जोकि त्रि० श० पु० च० मे नहीं हैं।

इस कृति के छोटी होने पर भी इसमे अनेक बातों का सग्रह आ गया है। तीर्थंकरचरित्र, रामायण, महाभारत, चक्रवर्तिचरित्र, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और उनके अनेक कथाप्रसग और ऐतिहासिक प्रसंग इसमें भरपूर हैं।

इस कृति के नाम के पीछे दो बातों का अनुमान किया जा सकता है—एक तो यह कि त्रि० श० पु० च० को सामने रखकर यह कृति बनायी गई हो या उक्त कृति में जो अनेक प्रसंग नहीं हैं उनको शामिल करने पर भी आकार की दृष्टि से लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित नाम रखा गया हो। यह कृति संक्षेपरुचि-वालों के लिए बड़ी उपकारक है। इसका ग्रन्थाग्र ५००० श्लोकप्रमाण है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मेघविजय उपाध्याय हैं। इनके गृहस्थ जीवन का इतिहास तो कहीं से नहीं मालूम होता पर इनके अनेक ग्रन्थो में जो प्रशस्तियाँ दी गई हैं उनमें इनने अपना नाम, अपने गुरु कृपाविजय का, और उपाध्याय विजयप्रभसूरि के नाम का उल्लेख किया है। ये प्रसिद्ध सम्राट अकबर के कल्याणमित्र तपागच्छीय हीरविजयसूरिजी की परम्परा में हुए हैं। इनके ग्रन्थों मे जो प्रशस्तियाँ दी गई हैं उनमें कुछ का रचनाकाल दिया गया है जो वि० स० १७०९ से १७६० तक होता है। प्रस्तुत रचना का समय नहीं दिया गया। इस तरह इन्होंने ५० वर्ष तक लगातार साहित्यसेवा की थी। यदि २०-२५ वर्ष की उम्र से साहित्यरचना प्रारंभ की हो तो इनकी आयु ८० वर्ष अनुमान की जा सकती है।

इन्होंने अनेक काव्यग्रन्थ रचे हैं व किरातार्जनीय, शिशुपालवध, नैषधीय, मेघदूत का अच्छा अभ्यास किया था और नैषधीय की समस्या-पूर्ति पर 'शान्तिनाथचरित्र', शिशुपालवध की समस्यापूर्ति पर 'देवानन्दमहाकाव्य', 'किरातसमस्यापूर्ति' तथा 'मेघदूतसमस्यालेख' रूपी ५ समस्यापूर्ति काव्य तथा सप्तसंधानमहाकाव्य, दिग्विजयमहाकाव्य, लघु त्रि० श० पु० च०, भविष्यदत्त-कथा, पञ्चाख्यान, विजयदेवमाहात्म्यविवरण, युक्तिप्रबोधनाटक (न्याय-ग्रथ), धर्ममंजूषा, चन्द्रप्रभा (हेमकौमुदी), हैमशब्दचन्द्रिका, हैमशब्द-प्रक्रिया, वर्षप्रबोध (ज्योतिष ग्रन्थ), रमलशास्त्र, हस्तसंजीवन, उदयदीपिका,

प्रश्नसुन्दरी, वीसायत्रविधि, मातृकाप्रसाद, ब्रह्मबोध, अर्हद्गीता प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ तथा अनेक गुजराती ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है।[1]

लघुत्रिषष्टि—सोमप्रभकृत इस ग्रन्थ का उल्लेख मेघविजयकृत ल० त्रि० श० च० की गुजराती प्रस्तावना मे प० मफतलाल ने किया है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित और महापुराण पर आधारित कुछ अन्य रचनाएँ—१. लघुमहापुराण या लघुत्रिषष्टिलक्षणमहापुराण—चन्द्रमुनिकृत[2]।

२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र—विमलसूरि।
३. ,, ,, —वज्रसेन।
४. त्रिषष्टिशलाकापचाशिका (५० पद्यों में)—कल्याणविजय के शिष्य।
५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषविचार (६३ गाथाओं में)—अज्ञात[3]।

तिरसठ शलाका पुरुषों के स्वतंत्र पौराणिक महाकाव्य :

रामकथा, महाभारतकथा तथा समुदित तिरसठ शलाका पुरुषों के पौराणिक महाकाव्यों (महापुराणों) और उनके सक्षिप्त रूपों के पश्चात् स्वतन्त्र रूप से तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलदेवों, वासुदेवों आदि के जीवनचरित भी खूब लिखे गये। १० वीं शती से १८ वीं शती तक ये रचनाएँ निर्बाधगति से लिखी जाती रहीं। १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में ये रचनाएँ प्रचुरमात्रा में लिखी गयीं पर आगे की शताब्दियों में भी उनका क्रम चलता रहा। तीर्थंकरों में सबसे अधिक महाकाव्य शान्तिनाथ पर उपलब्ध हैं। वे चक्रवर्ती पदधारी भी थे। द्वितीय श्रेणी में २२ वें नेमि और २३ वे पार्श्वनाथ पर कई काव्य लिखे गये थे। तृतीय क्रम में आदि जिन वृषभ, अष्टम चन्द्रप्रभ और अन्तिम महावीर पर भी चरितकाव्य लिखे गए। वैसे भी तीर्थंकरों और अन्य महापुरुषों पर चरित्र ग्रन्थ लिखे जाने के छिटफुट उल्लेख मिलते हैं।

पहले प्राकृत—विशेषकर महाराष्ट्री प्राकृत में रचित इन ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जायगा और पीछे सस्कृत में रचित का।

---

१. दिग्विजयमहाकाव्य और देवानन्दमहाकाव्य (सि० जै० ग्र०) की प्रस्तावना।
२. जि० र० को०, पृ० १६२, ३०५.
३. वही, पृ० १६५.

आदिनाहचरिय :

ऋषभदेव के चरित का विस्तार से वर्णन करनेवाला यह प्रथम ग्रन्थ है। इसमें पाँच परिच्छेद हैं। ग्रन्थाग्र ११००० श्लोकप्रमाण है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम ऋषभदेवचरित भी है।[1] इसकी रचना पर 'चउप्पन्नमहापुरिसचरिय' का प्रभाव है। उक्त ग्रन्थ की एक गाथा इसमें गाथा सं० ४५ रूप में ज्यों की त्यों उद्धृत की गयी है। अपभ्रंश की गाथायें भी इस रचना में पाई जाती हैं। यह अबतक अप्रकाशित है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानाचार्य हैं। इनकी दूसरी रचनाएँ १५००० गाथाप्रमाण मनोरमाचरिय (सं० ११४०) तथा धर्मरत्नकरण्डवृत्ति (सं० ११७२) भी हैं। आदिनाहचरियं का रचनाकाल सं० ११६० दिया गया है।

प्रथम तीर्थंकर पर रिसभदेवचरिय नाम से ३२३ गाथाओं की एक रचना और मिलती है जिसका दूसरा नाम धर्मोपदेशशतक भी है। इसके रचयिता भुवनतुंगसूरि हैं।[2]

दूसरे और तीसरे तीर्थंकर पर प्राकृत में कोई रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। चौथे अभिनन्दननाथ पर केवल एक रचना का उल्लेख मिलता है।[3]

सुमईनाहचरिय :

पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ के चरित का वर्णन करनेवाला प्राकृत तथा संस्कृत में यह पहला ग्रन्थ है।[4] इसका प्रमाण ९६२१ श्लोक है। इसमें अनेक पौराणिक कथायें दी गयी हैं। यह पाटन के ग्रन्थभण्डारों की सूची में दृष्टिगोचर होता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके लेखक विजयसिंहसूरि के शिष्य सोमप्रभाचार्य हैं जो बृहद्गच्छ के थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कुमारपालप्रतिबोध' प्रकाशित हो चुका है। इनका विशेष परिचय उक्त प्रसंग में दे रहे हैं। यह ग्रन्थ उन्होंने कुमारपाल नृपति के राज्यकाल में लिखा था। संभवतः यह आचार्य की प्रथम कृति है इसलिए इसे कुमारपाल के राज्यारोहण सं० ११९९ में लिखी होना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८ और ५७.

२. वही, पृ० ५७

३. वही, पृ० १४.

४. वही, पृ० ४४६.

चाहिए। इनकी अन्य कृतियों मे शतार्थकाव्य, शृंगारवैराग्यतरंगिणी, सूक्तिमुक्तावली और कुमारपालप्रतिबोध है।

पउमपभचरिय :

इसमे छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ का चरित वर्णित है। यह एक अप्रकाशित रचना है।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवसूरि हैं। इनकी दूसरी कृति सुपार्श्वचरित (प्राकृत) का भी उल्लेख मिलता है। इनका थोड़ा-सा परिचय प्राप्त है। ये जालिहरगच्छ के सर्वानन्द के प्रशिष्य तथा धर्मघोषसूरि के शिष्य एव पट्टधर थे। ग्रन्थकार ने बतलाया है कि प्राचीन कोटिक गण की विद्याधर शाखा से जालिहर और कासद्रहगच्छ एक साथ निकले थे। अन्य सूचनाएँ जो उन्होंने दी हैं, उनमें ये हैं कि उन्होंने देवेन्द्रगणि से तर्कशास्त्र पढा था और हरिभद्रसूरि से आगम। उनके दादागुरु सर्वानन्द पार्श्वनाथचरित के रचयिता थे। एक सर्वानन्दसूरि के पार्श्वनाथचरित का सस्कृत चरितों मे परिचय दिया गया है पर वे अपने को सुधर्मागच्छीय बतलाते हैं और उनके पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल सं० १२९१ है जबकि प्रस्तुत प्राकृत कृति का समय सं० १२५४ बतलाया गया है।[2]

सुपासनाहचरिय :

यह एक सुविस्तृत और उच्चकोटि की रचना है। इसमें लगभग आठ हजार गाथाएँ हैं। समस्त ग्रन्थ तीन प्रस्तावों में विभक्त है। नाम से स्पष्ट है कि इसमें सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का जीवनचरित वर्णित है। प्रथम प्रस्ताव में सुपार्श्वनाथ के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है और शेष में उनके वर्तमान जन्म का। प्रथम प्रस्ताव में सुपार्श्वनाथ के मनुष्य और देवभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि किस प्रकार उन्होंने अनेक भवों में सम्यक्त्व और सयम के प्रभाव से अपने व्यक्तित्व का विकासकर तीर्थंकर प्रकृति का बध कर सातवें तीर्थंकर पद को पाया था। दूसरे प्रस्ताव में उनके जन्म, विवाह और निष्क्रमण का वर्णन किया गया है जो अन्य तीर्थंकरों की भाँति ही है। यहाँ मेरुपर्वत पर देवों द्वारा जन्माभिषेक का सरस वर्णन प्रस्तुत है। तीसरे प्रस्ताव में केवल ज्ञान के वर्णन-प्रसग में अनेक आसनों तथा विविध तपों का वर्णन किया

---

१. वही, पृ० २३४

२. वही, पृ० ४४५.

गया है। इस तरह इसमें विविध धर्मोपदेश और कथा-प्रसगों के बीच सुपार्श्व-नाथ का सक्षिप्त चरित विखेरा गया है। अधिकाश भाग में सम्यग्दर्शन का माहात्म्य, बारह श्रावक व्रत, उनके अतिचार तथा अन्य धार्मिक विषयों को लेकर अनेकों कथाएँ दी गयी हैं जिनसे तत्कालीन बुद्धिवैभव, कलाकौशल, आचार-व्यवहार, सामाजिक रीतिरिवाज, राजकीय-परिस्थिति एव नैतिक जीवन आदि के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[1]

इस चरित की भाषा पर अपभ्रश का पूरा प्रभाव है। इसमें लगभग ५० पद्य अपभ्रश के भी समाविष्ट पाये जाते हैं। सस्कृत की शब्दावली भी अपनायी गयी है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके प्रणेता का नाम लक्ष्मणगणि है। इनके गुरु का नाम हेमचन्द्रसूरि था जो हर्षपुरीयगच्छ के थे और जयसिंहसूरि के प्रशिष्य और अभयदेवसूरि के शिष्य थे। इनके गुरुभाइयों में विजयसिंहसूरि और श्रीचन्द्रसूरि थे। इस ग्रन्थ की रचना उनने धधुकनगर में प्रारम्भ की थी और समाधि मडलपुरी में। उन्होंने इसे वि० सं० ११९९ मे माघ शुक्ल १० गुरुवार के दिन रचकर समाप्त किया था। उस वर्ष चौलुक्य नृप कुमारपाल का राज्याभिषेक भी हुआ था।[2]

सुपार्श्वनाथ चरित पर प्राकृत मे जालिहरगच्छ के देवसूरि तथा किसी विबुधाचार्य की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[3]

चंदप्पहचरिय :

प्राकृत भाषा में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ पर कई कवियों ने रचनाएँ की है। उनमें प्रथम रचना सिद्धसूरि के शिष्य वीरसूरि ने स० ११३८ मे की थी।[4]

जिनेश्वरसूरिकृत द्वितीय चरित[5] में ४० गाथाएँ हैं जो बड़ी सरस हैं। इसमे चन्द्रप्रभ नाम की सार्थकता में कवि कहता है कि चूँकि माता को गर्भकाल में

१. जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला, बनारस, सन् १९१८; जिनरत्नकोश, पृ० ४४५, इसका गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सन् १९२५ मे प्रकाशित हुआ है।

२. विक्कमसएहिं एक्कारसेहिं नवनवइवास अहिएहिं—प्रशस्ति, गा० १५-१६

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५

४. वही, पृ० ११९

५. इसका प्रकाशन महावीर ग्रन्थमाला से विक्रम सं० १९९२ में हुआ है।

चन्द्रयान का दोहद उत्पन्न हुआ था इस कारण इनका नाम चन्द्रप्रभ रखा गया (गाथा १२)। जिनेश्वरसूरि नाम के कई आचार्य हो गये हैं। प्रथम तो वर्धमानसूरि के शिष्य और खरतरगच्छ के सस्थापक (११ वीं शती उत्तरार्ध) थे और उनके ग्रन्थों के नाम सुज्ञात हैं। लगता है चन्दप्पहचरियं के रचयिता दूसरे जिनेश्वरसूरि हैं। एक जिनेश्वरसूरि ने स० ११७५ में प्राकृत मल्लिनाहचरिय[1] (ग्रन्थाग्र ५५५५) तथा नेमिनाहचरिय की रचना की थी। सम्भवतः ये ही उक्त चन्द० चरिय के रचयिता हों।

तृतीय चन्दप्पहचरिय[2] के रचयिता उपकेशगच्छीय यशोदेव अपरनाम धनदेव हैं जो देवगुप्तसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ग्रन्थाग्र ६४०० प्रमाण काव्य की रचना स० ११७८ में की थी। इनके अन्य ग्रन्थ हैं नवपदप्रक० बृ० की बृहद्वृत्ति और नवतत्त्वप्र० की वृत्ति।

चतुर्थ चन्दप्पहचरिय के रचयिता बड़गच्छीय हरिभद्रसूरि हैं। इनकी उक्त रचना की एक प्रति पाटन के भण्डार में विद्यमान है जिसका ग्रन्थाग्र ८०३२ श्लोक प्रमाण है। ग्रन्थकार के दादागुरु का नाम जिनचन्द्र तथा गुरु का नाम श्रीचन्द्रसूरि था। कहा जाता है कि सूरि ने सिद्धराज और कुमारपाल के महामात्य पृथ्वीपाल के अनुरोध पर चौबीस तीर्थंकरों का जीवनचरित लिखा था पर उनमें प्राकृत मे लिखे चन्द० चरिय और मल्लिनाहचरिय तथा अपभ्रंश में णेमिणाहचरिउ ही उपलब्ध है। सूरि प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। ग्रन्थकार का समय १२ वीं का उत्तरार्ध और १३वीं का पूर्वार्ध रहा है।[3]

पञ्चम चन्दप्पहचरि० के रचयिता खरतरगच्छीय जिनवर्धनसूरि हैं। इनके आचार्य पद पर स्थापित होने का समय सं० १४६१ है। ये पिप्पलक नाम की खरतर शाखा के सस्थापक थे।[4] इस चन्द० चरिय पर खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि के प्रशिष्य और सिद्धान्तरुचि के शिष्य साधुसोमगणि ने ग्रन्थाग्र १३१५ प्रमाण टीका लिखी है। टीका में सूचना दी है कि जिनवर्धनसूरि ने इस चरित के अतिरिक्त चार और चरितों की भी रचना की है पर उन चरितों का नाम

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२.

२. वही, पृ० ११९.

३. अनेकान्त, वर्ष १७, कि० ५, पृ० २३२.

४. पट्टावली-पराग, पृ० ३६३.

नहीं दिया।[1] अन्य रचनाओं मे महाराज शास्त्र भण्डार नागौर में दामोदर कविकृत प्राकृत चन्द्रप्रभचरित उपलब्ध है।

चन्द्रप्रभ पर नागेन्द्रगच्छ के विजयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्रगणि ने सं० १२६४ मे ५३२५ श्लोक प्रमाण कृति को संस्कृत-प्राकृत उभयमिश्र भाषा में रचा है।[2] अपभ्रंश में यशःकीर्ति की रचना २४०९ श्लोक प्रमाण ११ सन्धियो मे मिलती है।

नववें और दशवें तीर्थंकर पुष्पदन्त और शीतलनाथ पर प्राकृत में लिखे चरितों के उल्लेखमात्र मिलते हैं। नन्दिताढ्यकृत गाथालक्षण के टीकाकार रत्नचन्द्र ने उसमें आये हुए दो पद्यों पर टीका करते हुए बतलाया है कि ये पद्य एक प्राकृत रचना पुष्पदन्तचरिय मे लिये गये हैं।[3]

सेयंसचरिय :

ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ पर दो प्राकृत पौराणिक काव्य उपलब्ध है। प्रथम तो बृहद्गच्छीय जिनदेव के शिष्य हरिभद्र का जो सं० ११७२ मे लिखा गया था। इसका ग्रन्थाग्र ६५८४ श्लोक प्रमाण है।[4] द्वितीय चन्द्रगच्छीय अजितसिंहसूरि के शिष्य देवभद्र ने ग्रन्थाग्र ११००० प्रमाण रचा था।[5] इसकी रचना का समय ज्ञात नहीं फिर भी यह वि० सं० १३३२ से पहले बनी है क्योंकि मानतुंगसूरि ने अपने संस्कृत श्रेयांसचरित (सं० १३३२) का आधार इस कृति को ही बतलाया है। इस रचना का उल्लेख प्रवचनसारोद्धारटीका में उनके शिष्य सिद्धसेन ने किया है। देवभद्र की अन्य रचनाओं मे तत्त्वबिन्दु और प्रमाणप्रकाश भी है।

वसुपुज्जचरिय :

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य पर चन्द्रप्रभ[6] की ८००० ग्रंथाग्र प्रमाण रचना उपलब्ध है। इसका प्रारम्भ 'सुहसिद्धिबहुवसीकरण' से होता है। चन्द्रप्रभ ने

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

२ आत्मवल्लभ सिरीज सं० ९, अम्बाला, जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

३ जिनरत्नकोश, पृ० २५३; भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना की पत्रिका, भाग १४, पृ० ३

४ जिनरत्नकोश, पृ० ३९९

५ वही, पृ० ४००.

६. वही, पृ० ३४८.

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों में पादलिप्त, हरिभद्र और जीवदेव का उल्लेख तथा ग्रंथों में तरंगवती का उल्लेख किया है। चन्द्रप्रभ नाम के कई गच्छों मे अनेक आचार्य हो गये हैं। १२ वीं शताब्दी में एक चन्द्रप्रभ महत्तर ने सं० ११२७–३७ में विजयचन्द्रचरित्र की रचना की थी और दूसरे चन्द्रप्रभसूरि ने पौर्णमासिक गच्छ की स्थापना सं० ११४९ में की थी और प्रमेयरत्नकोश, दर्शनशुद्धि की रचना की थी। कह नहीं सकते कि प्रस्तुत रचना के रचयिता कौन चन्द्रप्रभ हैं।

१३ वे तीर्थंकर पर भी प्राकृत में विमलचरियं लिखे जाने का उल्लेख मिलता है।[1]

अनन्तनाहचरियं :

इसमें १४ वें तीर्थंकर का चरित वर्णित है। ग्रन्थ में १२०० गाथाएँ हैं।[2] ग्रन्थकार ने इसमें भव्यजनों के लाभार्थ भक्ति और पूजा का माहात्म्य विशेष रूप से दिया है। इसमें पूजाष्टक[3] उद्धृत किया गया है जिसमें कुसुम पूजा आदि का उदाहरण देते हुए जिनपूजा को पाप हरण करनेवाली, कल्याण का भण्डार और दारिद्रय को दूर करने वाली कहा है। इसमें 'पूजाप्रकाश'[4] या पूजाविधान भी दिया गया है जो सघाचारभाष्य, श्राद्धदिनकृत्य आदि से उद्धृत किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता आम्रदेव के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि हैं। इन्होंने इसकी रचना सं० १२१६ के लगभग की है। सम्भवतः ये आख्यानकमणिकोश, महावीरचरिय (स० ११३९) आदि के कर्ता नेमिचन्द्रसूरि से काल की दृष्टि से भिन्न हैं। उक्त नेमिचन्द्र का समय १२ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

१५ वें तीर्थंकर धर्मनाथ पर प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[5]

---

१. वही, पृ० ३५८.

२. वही, पृ० ७.

३. ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर जैन सस्था, रतलाम, सन् १९३९; प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५६९-५७०

४. जिनरत्नकोश, पृ० २५५.

५. वही, पृ० १८९.

संतिनाहचरिय :

यह गुणसेन के शिष्य और हेमचन्द्राचार्य के गुरु पूर्णतल्लगच्छीय देवच चार्य कृत १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित है।[1] इसका परिमाण ग्रन १२००० है। इसकी रचना सं० ११६० में हुई थी। यह प्राकृत गद्य-पद्यमय बीच-बीच में अपभ्रशभाषा भी प्रयुक्त हुई है। इसकी रचना खभात में की थी। इसकी प्रस्तावना में निम्नलिखित आचार्यों का उल्लेख है : इन्द्र (कविराज चक्रवर्ती), भद्रबाहु जिन्होने वसुदेवचरित लिखा (सवायलक्ख कहाकलियम्), हरिभद्र समरादित्य कथा के प्रणेता, दाक्षिण्यचिह्नसूरि कुवलयम के कर्ता तथा सिद्धर्षि उपमितिभवप्रपचा के कर्ता। यह अबतक अप्रकाशित है

इनकी एक अन्य कृति मूलशुद्धिप्रकरणटीका (अपरनाम स्थानकप्रक टीका) है। इसके चौथे एव छठे स्थानक में आनेवाले चन्दनाकथानक ब्रह्मदत्तकथानक को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें आनेवाली अधि गाथाए तथा कतिपय छोटे-बडे गद्यसंदर्भ शीलाकाचार्य के चउप्पन्नमहापु चरिय में आनेवाले 'वसुमइसविहाणय' और बंभयत्तचक्कवट्टिचरिय के अक्षरशः मिलते हैं। इन कथाओ के अवशिष्ट भागों में से भी कितना ही अल्पाधिक शाब्दिक परिवर्तन के साथ चउप्पन्नपुरि० का ही ज्ञात होता अनुमान है कि सतिनाहचरिय पर भी चउप्प० चरिय० का प्रभाव चूंकि यह अप्रकाशित है इससे कुछ कहना कठिन है।

शान्तिनाथ पर इस विशाल रचना के अतिरिक्त प्राकृत मे एक लघु र ३३ गाथाओं में जिनवल्लभ सूरि रचित तथा अन्य सोमप्रभ सूरि रचित उल्लेख मिलता है।[2] संस्कृत मे तो शान्तिनाथ पर अनेकों रचनाएँ लि गई हैं।

१७ वे तीर्थंकर कुन्थुनाथ और १८ वें अरनाथ पर प्राकृत में कोई नाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

१९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ पर प्राकृत में ३-४ रचनाएँ मिलती हैं। जिनेश्वरसूरि कृत का प्रमाण ५५५५ ग्रन्थाग्र है।[3] इसकी रचना सं० ११७

---

१. वही, पृ० ३७९; श्रेष्ठि हालाभाई के पुत्र भोगीलाल का अणहिल्लपुर फोफलीयावाडा आगलीशेरी भाण्डागार, पाटन.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०.

हुई थी। जिनेश्वर सूरि के प्राकृत चरित चन्दप्पहचरिय और नमिनाहचरियं भी इस काल के लगभग लिखे गये थे। द्वितीय रचना चन्द्रसूरि के शिष्य बडगच्छीय हरिभद्रसूरि की है जिसका ग्रन्थाग्र ९००० प्रमाण[1] है। यह तीन प्रस्तावों में विभक्त है। इसकी रचना में सर्वदेवगणि ने सहायता की थी। ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इन्होंने कुमारपाल के मंत्री पृथ्वीपाल के अनुरोध पर इस चरित की तथा अन्य चरित ग्रन्थों की रचना की थी उनमें केवल चन्दप्पहचरिय और अपभ्रंश में णेमिणाहचरिउ उपलब्ध हैं। तीसरा चरित भुवनतुंगसूरि कृत ५०० ग्रन्थाग्र प्रमाण जैसलमेर के भण्डारों में ताडपत्र पर लिखित है[2] तथा चतुर्थ १०५ प्राकृतगाथाओं में अज्ञातकर्तृक है।[3] इसकी हस्तलिखित प्रति पर सं० १३४५ पड़ा है।

मुनिसुव्वयसामिचरिय :

प्राकृत में २० वें तीर्थंकर पर श्रीचन्द्रसूरि की एक मात्र रचना उपलब्ध होती है।[4] इसमें लगभग १०९९४ गाथाएँ हैं। यह अप्रकाशित रचना है। ग्रन्थकार हर्षपुरीय गच्छ के हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनकी अन्य कृतियों में सग्रहणीरत्न और प्रदेशव्याख्याटिप्पन (स० १२२२) मिलते हैं। प्रस्तुत चरित का समय निश्चित नहीं है पर एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार स० ११९३ है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से मालूम होता है कि लेखक ने आसापल्लिपुरी (वर्तमान अहमदाबाद) मे श्रीमालकुल के श्रेष्ठ श्रावक श्रेष्ठि नागिल के सुपुत्र के घर में रहकर लिखा था।

२१ वे तीर्थंकर नमिनाथ सम्बधी एक प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[5]

नेमिनाहचरिय :

२२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ पर प्राकृत में तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रथम जिनेश्वरसूरि की है जो स० ११७५ में लिखी गई थी।[6] दूसरी मलधारी हेमचन्द्र

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० २७९.
२. वही.
३. वही.
४ वही, पृ० ३११
५. वही, पृ० २०२.
६. भारतीय सस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० १२५.

(हर्षपुरीय गच्छ के अभयदेव के शिष्य) की ५१०० ग्रन्थाग्र प्रमाण (१२ वीं का उत्तरार्ध) है तथा तीसरी बृहद्गच्छ के वादिदेव सूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि कृत विशाल रचना है जिसका रचना-सवत् १२३३ है। यह गद्य-पद्यमय रचना ६ अध्यायों में विभक्त है। इसका ग्रन्थाग्र १३६०० प्रमाण है।[1]

पासनाहचरिय :

इसमें २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित विस्तार से दिया है जो पाच प्रस्तावों में विभक्त है। यह प्राकृत गद्य-पद्य में लिखी गई सरस रचना है जिसमें समासान्त पदावली और छन्द की विविधता देखने मे आती है। इसमे सस्कृत के अनेक सुभाषित भी उद्धृत हैं। इसका ग्रन्थाग्र ९००० प्रमाण है।[2]

इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों मे पार्श्वनाथ के दस भवों का वर्णन मिलता है। तीसरे, पाचवें, सातवे और नवें भव मे देवलोक एव नव ग्रैवेयक मे देव रूप से पार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे। इन चार भवों की गणना इस चरित्र के लेखक ने नहीं ली, इसलिए शेष छः भवों का वर्णन ही दिया गया है।

पहले प्रस्ताव मे पार्श्वनाथ के दो पूर्व भवों का उल्लेख है। पहले भव में मरुभूति नाम से मत्रिपुत्र हुए। उसमें कमठ नाम के अपने भाई से मृत्यु पाई। दूसरे भव मे मरुभूति और कमठ क्रमशः हाथी और कुक्कुट सर्प हुए। दूसरे प्रस्ताव में तीसरे भव मे दोनों क्रमशः कनकवेग विद्याधर और सर्प हुए। चौथे भव में वे वज्रनाभ राजा और भील का रूप धारण करते हैं। भील के बाण से उक्त राजा की मृत्यु हुई। पाचवे भव में वे दोनों क्रमशः कनक चक्रवर्ती और सिंह हुए। सिंह ने मुनि अवस्था में चक्रवर्ती को मार डाला। तीसरे प्रस्ताव मे छठे भव मे मरुभूति वाराणसी के राजा अश्वसेन और वामा के पुत्र २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के रूप में जन्म लेते है और कमठ कठ नामक तापस तथा मेघमाली नामक देव हुआ। इसी प्रस्ताव मे पार्श्वनाथ की दीक्षा और तपस्या का वर्णन है तथा मेघमाली देव द्वारा उपसर्ग का वर्णन है। चतुर्थ प्रस्ताव में पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के प्रसग में अपने पिता के प्रश्न पर दश गणधरों के पूर्व भवों का वर्णन है। पाचवें प्रस्ताव मे

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २४४; प्रकाशित—अहमदाबाद, १९४४, गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० २००५.

मथुरा, काशी, आमलकल्पा आदि नगरों मे विहार और धर्मोपदेश का वर्णन है। अन्त मे सम्मेदशिखर पर पहुँच मोक्ष पाने का वृत्तान्त है।

इस प्राकृतचरित में संस्कृत के गुणचन्द्र रचित उत्तरपुराण मे दिये गये पार्श्वनाथ चरित से कुछ बातों मे अन्तर है यथा मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा कमठ की ओर स्वयं आकृष्ट हुई। इसमें ६टे भव के वज्रनाभ के विवाह के प्रसंग में जो युद्ध का वर्णन है वह रघुवश के इन्दुमती अज के स्वयंवर में हुए युद्ध की याद दिलाता है उसी तरह आठवे भव के कनकबाहु चक्रवर्ती का खेचरराज की पुत्री पद्मा से विवाह का प्रसग अभिज्ञान-शाकुतल मे दुष्यन्त-शकुतला के विवाह का स्मरण दिलाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस चरित ग्रन्थ के कर्ता देवभद्राचार्य हैं। ये विक्रम की १२वीं शताब्दी के महान् विद्वान् एवं उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इनका नाम आचार्य पदारूढ होने के पहले गुणचन्द्रगणि था। उस समय सवत् ११३९ में श्री महावीरचरिय नामक विस्तृत १२०२४ श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ रचा। दूसरा ग्रन्थ कथारत्नकोप है जो आचार्य पदारूढ होने के बाद वि० सं० ११५८ में रचा था। प्रस्तुत पासनाहचरियं की रचना उनने वि० स० ११६८ मे गोवर्द्धन श्रेष्ठि के वशज वीरश्रेष्ठि के पुत्र यशदेव श्रेष्ठि की प्रेरणा से की थी।

इस ग्रन्थ की प्रशस्ति मे लेखक की गुर्वावली इस प्रकार दी गई है :— चन्द्रकुल वज्रशाखा मे वर्धमानसूरि हुए। उनके दो शिष्य थे जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि। जिनेश्वरसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि और उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्र हुए। प्रसन्नचन्द्र के शिष्य सुमतिपाठक और इनके शिष्य थे देवभद्रसूरि।

१. महावीरचरिय :

अन्तिम तीर्थंकर महावीर के जीवन पर जो प्राकृत रचनाएँ उपलब्ध हैं उनमें यह सर्व प्रथम है। यह एक गद्य-पद्यमय काव्य है जो आठ प्रस्तावो (सर्गों) में विभाजित है और परिमाण में १२०२५ श्लोक प्रमाण है।[१] इसके प्रारंभिक चार सर्गों मे भगवान् महावीर के पूर्वभवों का वर्णन है और अन्तिम चार में उनके वर्तमान भव का। इस पर तथा इनकी अन्य कृति पासनाहचरियं पर कालिदास, भारवि और माघ के संस्कृत काव्यो का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। इस महाराष्ट्री प्राकृत प्रधान रचना में यत्र-तत्र सस्कृत के तथा अपभ्रश के पद्य

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०६, प्रकाशित—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, सन् १९२९, गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, वि० सं० १९९४.

उद्धृत हैं। इसमे छन्दों की विविधता द्रष्टव्य है। प्रचुरमात्रा मे तद्भव और तत्सम शब्दों का प्रयोग देशी शब्दों के बदले मे किया गया है।

प्रथम प्रस्ताव में सम्यक्त्व प्राप्ति का वर्णन है। दूसरे में प्रथम पूर्व भव के प्रसग मे ऋषभ, भरत, बाहुबलि एव मरीचि के भवों का निरूपण है। तृतीय मे विश्वभूति की वसन्तक्रीड़ा, रणयात्रा एव वैराग्य का वर्णन है। इसी में नारायण त्रिपृष्ट का प्रतिनारायण अश्वग्रीव के साथ युद्ध और चक्रवर्ती प्रियमित्र का दिग्विजय एव प्रव्रज्या वर्णन है। चतुर्थ प्रस्ताव में प्रियमित्र के जीव का नन्दन नाम से नृप होना और उसके द्वारा प्रोठिल मुनि से नरविक्रम का चरित पूछना। यह चरित बड़ा ही रोचक है। नन्दन नृप का जीव ही क्षत्रियकुण्ड के नरेश सिद्धार्थ के यहाँ त्रिशला से महावीर के रूप में जन्म ग्रहण करता है। इस प्रस्ताव में मत्र, तत्र, विद्यासाधन तथा वाममार्गिय और कापालिकों के क्रियाकाण्ड का वणन है। इसी प्रस्ताव मे भग० महावीर के २८वें वर्ष मे उनके माता पिता का स्वर्गवास होने और बडे भाई नन्दिवर्धन का राज्याभिषेक होने एव बडे भाई से अनुमति लेकर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है।

पाँचवे प्रस्ताव में शूलपाणि यक्ष और चण्डकौशिक सर्प को प्रबुद्ध करने का वृत्तान्त है। छठे प्रस्ताव मे आजीवक मत के प्रवर्तक मखलीपुत्र गोशाल का महावीर के साथ सबध का वर्णन है। सातवें मे महावीर के परीषह-सहन और केवलज्ञान प्राप्ति का निरूपण है। आठवें में महावीर के निर्वाण-लाभ का प्ररूपण है। इसमें महावीर के उपदेश, गणधरों के वर्णन, चतुर्विध सघ की स्थापना, महावीर के दामाद जमालि की दीक्षा, उसके द्वारा निह्नव, गोशालक द्वारा श्रावस्ती मे तेजोलेश्या छोडना आदि अन्यान्य बातों का विस्तार से वर्णन है।

इस काव्य में अनेकों अवान्तर कथायें दी गई हैं तथा नगर, वन, अटवी, विवाह-विधि, उत्सव, विद्यासिद्धि आदि के वर्णन द्वारा बड़ा ही रोचक बनाया गया है।

यह एक गद्य-पद्यमय रचना है। कवि को वर्णन के अनुकूल जब जैसी आवश्यकता हुई गद्य-पद्य का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता रही है।

रचयिता और रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कृति के रचयिता गुणचन्द्रसूरि हैं जो आचार्य पद पाने के बाद देवभद्रसूरि कहलाने लगे थे। इन्होने अपने छत्रावली (छत्राल) निवासी सेठ शिष्ट और वीर की प्रार्थना पर वि० स० ११३९ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया सोमवार के दिन इस ग्रन्थ की रचना की थी। प्रशस्ति में शिष्ट और वीर के परिवार का परिचय दिया गया है।

इनकी तीन विशाल कृतियों के पीछे दिये गये प्रशस्ति पद्य बडे महत्त्व के है जिनसे इनकी गुरुपरम्परा तथा रचनाओ का सवत् मालूम होता है। तदनुसार आचार्य देवभद्र सुमतिवाचक के शिष्य थे, आचार्य पद पर आरूढ होने के पहले उनका नाम गुणचन्द्रगणि था। इसी नाम से उनने वि० स० ११२५ मे सवेगरगशाला नाम से आराधनाशास्त्र का सस्कार किया था और वि० स० ११३९ में महावीरचरिय का निर्माण किया था। संवेगरगशाला की पुष्पिका में 'तद्विनेय श्री प्रसन्नचन्द्रसूरि समभ्यर्थितेन गुणचन्द्रगणिना तथा तव्वयणेण गुण-चंदेणं' पदों से ज्ञात होता है कि आचार्य प्रसन्नचन्द्र और देवेन्द्रसूरि का पार-स्परिक सम्बन्ध दूर से था और दोनों परस्पर गुणानुरागी थे। गुणचन्द्र उन्हे बड़े आदर से देखते थे यह कथारत्नकोश और पार्श्वनाथ की प्रशस्ति में आनेवाले 'तस्सेवगेहिं' और 'पयपउमसेवगेहिं' पदों से ज्ञात होता है। प्रसन्नचन्द्र ने गुणचन्द्र के गुणों से आकर्षित होकर उन्हें आचार्य पद पर आरूढ़ किया था।

इन्होंने अपने नाम के साथ किसी गण-गच्छ का उल्लेख नहीं किया पर विस्तृत प्रशस्तियों में अपना सबंध वज्रशाखा, चन्द्रकुल की परम्परा से बतलाया है।

इनके अतिरिक्त और कुछ कृतियाॅ भी मिलती हैं: प्रमाण-प्रकाश, अनन्तनाथ-स्तोत्र, स्तभनकपार्श्वनाथ तथा वीतरागस्तव।[1]

२. महावीरचरिय :

यह महावीर पर प्राकृत में द्वितीय रचना है जो पद्यबद्ध २००० ग्रन्थाग्र प्रमाण है। इसमें कुल २३८५ पद्य है।[2]

इसका प्रारभ महावीर के २६ वे भव पूर्व में भगवान् ऋषभ के पौत्र मरीचि के पूर्वजन्म में एक धार्मिक श्रावक की कथा से होता है। उसने एक आचार्य से आत्मशोधन के लिए अहिंसाव्रत धारण कर अपना जीवन सुधारा और आयु के अन्त में भरतचक्रवर्ती का पुत्र मरीचि नाम से हुआ। एक समय

---

१. आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित एवं स्व० मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित कहारयणकोसो (१९४४) के अन्त में ये सभी लघु कृतियाँ प्रकाशित हैं।

२. जिनरत्नकोश पृ० ३०६, प्रकाशित—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सवत् १९७२.

भरतचक्रवर्ती ने भगवान् ऋषभ के समवशरण में आगामी महापुरुषों के सम्बन्ध में उनका जीवन परिचय सुनते हुए पूछा—भगवन्, तीर्थंकर कौन-कौन होंगे ? क्या हमारे वंश में भी कोई तीर्थंकर होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ऋषभ ने बतलाया कि इक्ष्वाकुवंश में मरीचि अन्तिम तीर्थंकर का पद प्राप्त करेगा। भगवान् की इस भविष्यवाणी को अपने सम्बन्ध में सुनकर मरीचि प्रसन्नता से नाचने लगा और अहं भाव से विवेक तथा सम्यक्त्व की उपेक्षा कर तपभ्रष्ट हो मिथ्यामत का प्रचार करने लगा। इसके फलस्वरूप वह अनेक जन्मों में भटकता फिरा।

इस रचना में भगवान् महावीर के २५ पूर्व-भवों का वर्णन रोचक पद्धति से हुआ है। भाषा सरल और प्रवाहमय है। भाषा को प्रभावक बनाने के लिए अलंकारों की योजना भी की गई है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता बृहद्गच्छ के आचार्य नेमिचन्द्र-सूरि हैं। इनका समय विक्रम की १२वीं शती माना जाता है। इनकी छोटी-बड़ी ५ रचनाएँ मिलती हैं—१. आख्यानमणिकोश (मूलगाथा ५२), २. आत्म-बोधकुलक अथवा धर्मोपदेशकुलक (गाथा २२), ३. उत्तराध्ययनवृत्ति (प्रमाण १२००० श्लोक), ४. रत्नचूड़कथा (प्रमाण ३०८१ श्लोक) और ५. महावीरचरियं (प्रमाण ३००० श्लोक)। प्रस्तुत रचना उनकी अन्तिम कृति है और इसका रचनाकाल सं० ११४१ है।

इनकी अन्तिम तीन कृतियों में दिये गये प्रशस्ति पद्यों से इनकी गुरुपरम्परा का परिचय इस प्रकार मिलता है :—बृहद्गच्छ (प्रा० वड्डु, वडगच्छ) में देवसूरि के पट्टधर नेमिचन्द्रसूरि हुए, उनके पट्टधर उद्योतनसूरि के शिष्य आम्रदेवोपाध्याय के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि हुए। रचयिता के दीक्षागुरु तो आम्रदेव उपाध्याय थे पर वे आनन्दसूरि के मुख्य पट्टधर के रूप में स्थापित हुए थे। पट्टधर होने के पहले इनकी सामान्य मुनि अवस्था (वि० सं० ११२९ के पहले) का नाम देविंद (देवेन्द्र) था। पीछे उनके देवेन्द्रगणि और नेमिचन्द्रसूरि दोनों नाम मिलते हैं। इनके सम्बन्ध में और विशेष जानकारी नहीं मिलती।

महावीरचरित पर दो अन्य प्राकृत रचनाओं का उल्लेख मात्र मिलता है। वे हैं : मानदेवसूरि के शिष्य देवसूरि की तथा जिनवल्लभसूरि की। अन्तिम कृति ४४ गाथाओं में है। इसका दूसरा नाम दुरियरायसमीरस्तोत्र है।[1]

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०६.

सस्कृत मे तीर्थंकरों के जीवनचरित संबधी अनेक पृथक्-पृथक् काव्य मिले हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है :

पद्मानन्द-महाकाव्य :

यह महाकाव्य आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के चरित्र से सम्बद्ध है।[1] इसकी रचना पद्ममत्री की प्रार्थना पर हुई थी इसलिए इसका नाम पद्मानन्द महाकाव्य रखा गया। इस काव्य का दूसरा नाम जिनेन्द्रचरित्र भी है। कवि की दूसरी कृति बालभारत की भाति यह भी 'वीराङ्क' चिह्न से विभूषित है। इसमें १९ सर्ग हैं और अनुष्टुभ् प्रमाण से श्लोक सख्या ६३८१ है। इसकी कथा का आधार 'त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित्र' है।

कवि ने परम्परागत कथानक में बिना कुछ परिवर्तन किये उसे श्रेष्ठ महाकाव्य के गुण से सम्पन्न बनाने में सफलता प्राप्त की है। प्रथम सर्ग प्रस्तावना के रूप में है, दूसरे से छठे सर्ग तक ऋषभदेव के १२ पूर्वभवो का वर्णन है, सातवे मे जन्म, आठवें मे बाललीला, यौवन, विवाह, नवम में सन्तानोत्पत्ति, दशम मे राज्याभिषेक, ग्यारह-बारहवे में षट्ऋतु क्रीडा और अन्त में दीक्षा-ग्रहण, तेरहवें में केवलज्ञान प्राप्ति, चौदहवे में समवशरण—देशना आदि, सोलह सत्तरह-अठारह में भरत-बाहुबलि-मरीचि के वृत्तान्त के साथ अन्त में ऋषभदेव एव भरत के निर्वाण का वर्णन किया गया है। वास्तव में कथा १८वें सर्ग मे ही समाप्त हो जाती है पर उन्नीसवे सर्ग मे कवि ने प्रशस्ति के रूप में अपनी गुरु-परम्परा, काव्यरचना, उद्देश्य, प्रेरणादायक, पद्ममत्री की वशावली का विवरण दिया है। इस तरह आदि और अन्त के सर्ग प्रस्तावना और प्रशस्ति रूप में हैं, शेष १७ सर्गों में कथा का वर्णन है।

इस काव्य मे ऋषभदेव, भरत और बाहुबलि के चरित्र को ही विकसित रूप दिया गया है, शेष को नहीं। प्रकृति-चित्रण भी भव्यरूप से किया गया है। सौन्दर्य चित्रण में बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अकित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

---

१. गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज बड़ौदा, १९३२; जिनरत्नकोश, पृ० २३४. विशेष परिचय डा० श्या० शं० दीक्षित लिखित '१३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य' के अप्रकाशित अंश में दिया गया है।

के पश्चात् इसका रचा जाना ज्ञात होता है। इससे इसका रचनाकाल स० १२९४ और १२९७ के बीच होना चाहिये। इसकी रचना बालभारत के बाद की गई थी।

प्रथम तीर्थंकर पर अन्य रचनाएँ :

आदिनाथचरित पर दूसरी रचना विनयचन्द्र की है जिसका रचनाकाल वि० स० १४७४ है।[1] विनयचन्द्र नाम के अनेक विद्वान् हुए पर ये विनयचन्द्र कौन है? यह ज्ञात नहीं। एक विनयचन्द्र (रविप्रभसूरि के शिष्य) के मल्लिनाथचरित, मुनिसुव्रतनाथचरित तथा पार्श्वचरित मिलते है, पर उनका समय वि० सं० १३०० के लगभग है। स्पष्ट है कि आदिनाथचरित के रचयिता उक्त विनयचन्द्र से अन्य हैं।

सकलकीर्ति (१५ वीं शती) द्वारा रचित आदिनाथपुराण में २० सर्ग है और श्लोक सख्या ४६२८। इसकी वर्णनशैली सुन्दर एव सरस है। इसका दूसरा नाम वृषभनाथचरित्र भी है[2]। भट्टारक सकलकीर्ति का परिचय उनके हरिवंशपुराण के प्रसग में दिया गया है।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में चन्द्रकीर्ति (१७ वीं शती), शान्तिदास तथा धर्मकीर्ति आदि द्वारा रचित का उल्लेख मिलता है[3]। नेमिकुमार के पुत्र वाग्भट ने काव्यमीमासा में अपने ऋषभदेवचरित का उल्लेख किया है।[4] इसके अतिरिक्त सस्कृत नाटककार हस्तिमल्ल कृत कन्नड गद्य में आदिपुराण और श्रीपुराण उपलब्ध हैं जिनपर जिनसेन के आदिपुराण का स्पष्ट प्रभाव है।

अजितनाथपुराण :

द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ पर कान्हणसिंह के पुत्र अरुणमणि उपनाम लालमणि ने अजितनाथपुराण की रचना की[5]। इस भाग के लेखक ने इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में देखी थी। यह मौलिक कृति न होकर जिनसेन के आदिपुराण और हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थों से लम्बे-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८.
२ वही, पृ० २८; प्रकाशित—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, १९३७.
३. वही, पृ० २८-२९.
४. वही, पृ० ५७.
५. वही, पृ० २.

चन्द्रप्रभचरित :

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ पर अनेक संस्कृत काव्य उपलब्ध हैं। उनमें प्रथम आचार्य वीरनन्दि (११वीं शती का प्रारम्भ) कृत चन्द्रप्रभ महाकाव्य है जिसका विस्तार से वर्णन महाकाव्यों के प्रसंग में किया गया है। दूसरी कृति असग कवि (सं० १०४५ के लगभग) कृत का उल्लेख मिलता है।[1] असग कवि कृत शान्तिनाथचरित और वर्द्धमानचरित भी उपलब्ध हैं।

तीसरी रचना ५३२५ श्लोक प्रमाण है। इसमें वज्रायुध नृप की कथा बड़े विस्तार से दी गई है जिसका उत्तर भाग नाटक शैली में लिखा गया है। इसके रचयिता नागेन्द्रगच्छीय विजयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्र या देवचन्द्रसूरि हैं। रचना-संवत् १२६० दिया गया है।[2]

चतुर्थ रचना का वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जाता है :

तेरह सर्गों का यह काव्य अब तक अप्रकाशित है।[3] इसमें जैनों के अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित वर्णित है। सर्गों के नाम वर्ण्य वस्तु के आधार पर हैं जैसे प्रथम सर्ग दानवर्णन, द्वितीय शीलवर्णन और तृतीय तपोवर्णन। इसमें चन्द्रप्रभ के भवान्तरों का वर्णन है ही, साथ ही विविध स्तोत्र और धर्मोपदेश समस्त काव्य में फैले हैं और कोई भी सर्ग अवान्तर कथाओं से खाली नहीं है। अवान्तर कथाओं में कलावान्-कलावती, धनदत्त-देवकी, चारित्रराज, समरकेतु आदि की कथाएँ प्रमुख हैं। मूलकथा और अवान्तर कथाएँ अनेक चमत्कार-पूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण हैं।

यद्यपि यह काव्य तेरह सर्गों में है, किन्तु इसकी कथा प्रथम, षष्ठ और सप्तम इन तीन सर्गों में ही वर्तमान है। शेष सर्गों में विभिन्न देशनाएँ और अवान्तर कथाएँ हैं। द्वितीय सर्ग से पंचम सर्ग तक युगन्धर मुनि की देशनाएँ तथा अष्टम सर्ग से त्रयोदश तक चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की देशनाएँ हैं। विभिन्न अवान्तर कथाओं और धर्म-देशनाओं के कारण मूल कथानक अति शिथिल-सा लगता है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

२. आत्मवल्लभ ग्रन्थ० सं० ९, मुनि चरणविजय द्वारा सम्पादित, अम्बाला, १९३०; जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ११९; हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, बस्ता सं० ७८, ग्रन्थ सं० १८८९.

श्रेयांसनाथचरित :

ग्यारहवें तीर्थंकर पर संस्कृत में दो कृतियाँ मिलती हैं। उनमें प्रथम है मानतुंगसूरिकृत।[1] इस काव्य मे १३ सर्ग हैं। यह ५१२४ श्लोक प्रमाण है। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के आधार पर है। प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में उस सर्ग का कथानक प्रस्तुत करना श्रेयांसनाथचरित की विशेषता है। इसमें श्रेयांसनाथ के केवल दो भवों—नलिनीगुल्म और महाशुक्रदेव का ही वर्णन है। काव्य मे रत्नसार, सत्यकिश्रेष्ठी, श्रीदत्त, कमला आदि अनेक अवान्तर कथाएँ हैं जिनमें भवान्तर वर्णनों की प्रमुखता है। स्थान-स्थान पर जैन धर्म के सिद्धान्तों, उपदेशों और स्तोत्रों का वर्णन है। कथानक मे अनेक अप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का समावेश है। फिर भी इस काव्य के कथानक के प्रवाह मे गति और प्रबन्धात्मकता है। कतिपय अवान्तर कथाओं के होते हुए भी श्रेयांसनाथचरित के कथानक में शिथिलता नहीं है।

इस चरित के प्रमुख पात्रों मे भुवनभानु, नलिनीगुल्म और श्रेयांसनाथ हैं। नलिनीगुल्म और भुवनभानु के चरित्र में तो कुछ विकास हुआ है। श्रेयांसनाथ के चरित्र मे किसी स्वतंत्र व्यक्तित्व के दर्शन नहीं होते है। उनका जन्म और अन्य महोत्सव अन्य तीर्थंकरों की भाँति ही दिखाये गये हैं। विविध उपदेशों में उनका उपदेशक स्वरूप दृष्टिगत होता है। इसमें प्रकृति-चित्रण, कथानक की पृष्ठभूमि और घटनाओं एव चरित्र के अनुरूप वातावरण निर्माण करने के लिए किया है।[2] पात्रों के रूपवर्णन मे कवि ने विशेष रुचि ली है।[3] जैन धर्म के अति प्रचलित नियमों का वर्णन ही इस काव्य में किया गया है। कवि ने कठिन दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की ओर अपनी रुचि नहीं दिखलाई। साहित्य-शास्त्र मान्य विविध रसों की योजना में इस चरित्र के प्रणेता को पर्याप्त सफलता मिली है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४००; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर; विशेष परिचय डा० श्या० श० दीक्षित लिखित '१३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य' में दिया गया है।

२ वही, सर्ग १. ३६-३७; ५. २५-२६, २८, २९; १०. ३४-३६, ५५-५६.

३. वही, सर्ग ७. १७६, १७७, १७९, १८३, २५०, २५५.

४. वही, सर्ग १. २१६-२२०, ४६८-७०; २. ३३३-३३६; ६. २४८-२५१, २५३-५४; १०. ८७-९०, २३८-२४०.

इस चरित्र की भाषा सरल, सुन्दर और मधुर है। सर्वत्र प्रसंगानुकूल और भावानुवर्तिनी है। मुहावरों का प्रयोग कम ही हुआ है। इसकी भाषा आलंकारिक है। अनुप्रास और यमक के प्रयोग से भाषा श्रुतिमधुर और प्रवाहपूर्ण बन गई है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग बहुत हुआ है।[१] इनके साथ अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, परिसंख्या, व्यतिरेक, भ्रान्तिमान् आदि अलंकारों के सुन्दर प्रयोग यत्र तत्र मिलते हैं।

समस्त श्रेयांसनाथचरित अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। केवल प्रत्येक सर्ग के अन्तिम दो-दो पद्य अन्य छन्दों में हैं। इस प्रकार इस चरित्र में अनुष्टुप्, उपजाति, लक्ष्मी, वसन्ततिलका, आर्या, स्वागता तथा शार्दूलविक्रीडित—इन सात छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस चरित्र के अन्त में कवि ने एक प्रशस्ति दी है। तदनुसार ग्रन्थकार मानतुंगसूरि कोटिकगण की वैरिशाखा के अन्तर्गत चन्द्रगच्छ से सम्बन्धित थे। चन्द्रगच्छ में शीलचन्द्र आचार्य के चन्द्रसूरि, भरतेश्वरसूरि, धनेशसूरि, सर्वदेवसूरि तथा धर्मघोषसूरि—ये पाँच शिष्य थे। इनमें धर्मघोषसूरि गच्छाधिपति हुए। सर्वदेवसूरि की शिष्य-परम्परा में क्रमशः चन्द्रप्रभसूरि, जिनेश्वरसूरि, रत्नप्रभसूरि हुए। इन रत्नप्रभसूरि के शिष्य प्रस्तुत काव्य के रचयिता मानतुंगसूरि थे। इस काव्य की रचना वि० सं० १३३२ में हुई थी।[२] इस काव्य का आधार देवभद्राचार्य विरचित प्राकृत श्रेयांसनाथचरित है। यह बात कवि ने सर्ग प्रथम के १३ और १८ वें पद्य में सूचित की है। इस काव्य का संशोधन प्रसिद्ध संशोधक प्रद्युम्नसूरि ने किया था।[३]

श्रेयांसनाथ पर दूसरी रचना भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (सं० १७२२–३३) कृत का उल्लेख मिलता है।[४]

---

१. वही, सर्ग १. १७०, २५१, ४२७, ४२८; २.३२९-३३०; ७.६१.

२. वही, प्रशस्ति, श्लो० १२.

३. पुण्डरीकचरित, सर्ग १३.१४४-१४५.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ४००.

वासुपूज्यचरित :

बारहवें तीर्थंकर पर संस्कृत मे एक मात्र काव्य मिलता है जिसका विवेचन इस प्रकार है :

इस काव्य में वासुपूज्य का चरित वर्णित है[1]। यह ग्रन्थ यद्यपि चार ही सर्गों में विभक्त है पर ग्रन्थपरिमाण लगभग ५॥ हजार श्लोक प्रमाण है। इस काव्य के कथानक का आधार प्राचीन जैन पुराण ग्रन्थ हैं।

यह आह्लादनाङ्कित काव्य है। सर्गों का नाम वर्ण्यविषय के आधार पर किया गया है। इसमें वासुपूज्य के भवान्तरों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। समस्त कथानक में स्तोत्र और धर्मोपदेश फैले हुए हैं। इसमें अपने समय मे रचित काव्यों की अपेक्षा अधिक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं। पुण्याढ्य, हस-केशव, रतिसार, विद्यापति, सनत्कुमार, शृंगारसुन्दरी, सवर, चन्द्रोदर, सूरचन्द्र, विक्रम, हस, लक्ष्मीकुज, नागिल, सिंह, धर्म, सुरसेन-महासेन, केशरी, सुमित्र, मित्रानन्द और सुमित्रा इन उन्नीस अवान्तर कथाओं की योजना इस काव्य में की गई है। इन कथाओं के भीतर भी उपकथाएँ दी गई हैं। कथाओं में अनेक चमत्कारी तत्त्वो का समावेश हुआ है।

चरित्रविकास की दृष्टि से इसमें तीर्थंकर वासुपूज्य के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। शेष चरित्र—विमलबोधि, वज्रनाभ, जया आदि कुछ समय के लिए ही हमारे समक्ष आते हैं। कवि के प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य-चित्रण प्रायः धार्मिकता से ओतप्रोत हैं और जो हैं वे कम ही हैं। धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की चर्चा यत्रतत्र खूब की गई है। प्रस्तुत काव्य के अन्त के दो सर्गों में सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं और विश्वासों का सुन्दर चित्रण हुआ है[2]। वासुपूज्य के जन्म से लेकर दीक्षा के अवसर तक लौकिक रीतिरिवाजों का उल्लेख किया गया है।

इस चरित की भाषा सरस और सरल संस्कृत है। इसके अनुष्टुप् छन्दों में मधुरता और लालित्य भरा हुआ है। कहीं-कहीं ८–१० श्लोकों के कुलकों मे लम्बे-लम्बे समासों से युक्त पदावली का प्रयोग हुआ है[3]। पर कवि ने प्रायः असमस्त शैली का प्रयोग ही किया है। इस चरित की भाषा में आलंकारिता

---

१. जैन-धर्म प्रसारक सभा भावनगर, सं० १९६६; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२८–३०; जिनरत्नकोश, पृ० ३४८.

२. वही, सर्ग ३. ३५०–४००, ४४०–५९६.

३. वही, सर्ग २. ९९१; ३. ४०६–४०९.

[illegible] विद्यमान है। अनुप्रास और यमक जैसे अलंकारों का प्रयोग इसमें बहुत हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना भी सफल हुई है[1]। इस प्रकार [illegible] अलंकारों के प्रयोग से रचयिता ने अपने काव्य के कलापक्ष को समृद्ध किया है।

प्रस्तुत काव्य में अनुष्टुप् और शार्दूलविक्रीडित इन दो छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। सभी सर्गों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में अन्तिम दो पद्यों में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग किया गया है। इस चरित का रचना-परिमाण ५४९४ श्लोक-प्रमाण है। यह बात स्वयं कवि ने प्रशस्ति में कही है[2]।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति में कवि की गुरु-परम्परा का परिचय दिया गया है। तदनुसार [illegible] नागेन्द्रगच्छीय थे। नागेन्द्रगच्छ में [illegible] के शिष्य [illegible] हुए। उनके पट्टधर क्रमशः [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और विजयसिंहसूरि हुए। विजयसिंहसूरि के शिष्य ही प्रस्तुत काव्य के रचयिता वर्धमानसूरि हैं। उन्होंने अणहिल्लपुर में इस काव्य की रचना सं० १२९९ में की थी[3]।

विमलनाथचरित :

तेरहवें तीर्थंकर पर संस्कृत में चार रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनमें पहली है पाँच सर्गों का गद्य में रचित सुन्दर चरितकाव्य[4]। इसका नाम तो विमलनाथ-चरित है पर इसके प्रथम तीन सर्गों का नाम क्रमशः दानधर्माधिकार, शील-तप-धर्माधिकार और भावाधिकार है, शेष दो में तीर्थंकर विमलनाथ के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान, देशना आदि का वर्णन है। पहले दानधर्माधिकार में विमलनाथ के पूर्वभव के जीव राजा पद्मसेन के वर्णन प्रसंग में, धर्म की श्रेष्ठता पर सुबुद्धि की कथा, कदाग्रह पर कुलपुत्र की कथा, दानधर्म पर रत्नचूड की कथा

1. वही, सर्ग १. १, ४४; २ ०६२, ७६३, २००६; ३. ९, २०, ४२३, ४२४, ६५६.
2. वही, प्रशस्ति, श्लोक २८–३१.
3. ततोऽसौ निधिनिध्यर्कसंख्ये (१२९९) विक्रमवत्सरे।
   आचार्यश्चरितं चक्रे वासुपूज्यविभोरिदम् ॥
4. हीरालाल हंसराज, जामनगर, सन् १९१०; इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० १९८५ में प्रकाशित हुआ है।

(इसमे बालक रोहक की अवान्तर कथा), अति लोभ पर सोमशर्मा की कथा तथा वाणी से जीतनेवाली सेठानी की कथा दी गई है। दूसरे शीलतपधर्माधिकार मे शील के माहात्म्य पर शीलवती की कथा, तप-धर्म पर निर्भाग्य की कथा, जिन-पूजा पर देवपाल की कथा, गुरुभक्ति पर श्रेष्ठिपुत्र मुग्ध की कथा, धर्मभक्ति पर अमरसिंह और पूर्णकलश की कथा तथा प्रमाद पर विष्णुशर्मा की कथा दी गई है। तीसरे भावाधिकार में भावधर्म के ऊपर चन्द्रोदर की कथा तथा विमलनाथ के पूर्वभव के जीव पद्मसेन राजा द्वारा पचसमिति और त्रिगुप्ति पालन तथा पचसमिति और त्रिगुप्ति में से प्रत्येक समिति के माहात्म्य पर एक-एक कथा दी गई है।

इसके बाद पद्मसेन नृप ने २० स्थानक की आराधना से तीर्थंकर प्रकृति बाधी और मरकर सहस्रार लोक गया। चतुर्थ सर्ग मे सहस्रार स्वर्ग से च्युत होकर विमलनाथ का गर्भ में आना तथा जन्म-महोत्सव, व्रतग्रहण केवलज्ञान का वर्णन है। बीच में वरुण सेठ के चार पुत्रों की कथा तथा लोभाकर लोभानन्दी की कथाएँ आती हैं। पॉचवें सर्ग में श्रावकधर्म के उपदेश पर १२ व्रतों पर क्रमश॰ नृपशेखर, विमलकमल, सुरदत्त कमलसेन, चन्द्र-सुरेन्द्रदत्त, देवदत्त-जयदत्त, रौहिणेय और उसके पिता, स्वर्णशेखर-महेन्द्र, वीरसेन-पद्मावती, वानर-अरुणदेव, काकजंघ, मलयकेतु, शान्तिमती-पद्मलोचना की कथाएँ और सम्यक्त्व पर कुलध्वज की कथा दी गई है। पीछे गणधर की धर्मदेशना और विमलनाथ के निर्वाण गमन का वर्णन है।

ग्रन्थकार तथा रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में एक प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि स्तभतीर्थ (खभात) में बृहत्तपागच्छ के रत्नसिंह के शिष्य ज्ञानसागर ने सवत् १५१७ में श्रावण कृष्ण पञ्चमी के दिन शाणराज सेठ की प्रार्थना पर इस ग्रन्थ को बनाया था। शाणराज सेठ ने रत्नसिंहसूरि के उपदेश से गिरनार पर्वत पर विमलनाथ का मन्दिर बनाया था और सम्भव है उनका चरित लिखने की उसने प्रार्थना भी की थी। इनकी दूसरी रचना शान्तिनाथ-चरित मिलती है।

अन्य रचनाओं में ब्रह्मचारी कृष्णजिष्णु या कृष्णदास का विमलपुराण[1] १० सर्गात्मक मिलता है। इसमें २३६४ श्लोक हैं। ग्रन्थकर्ता ने अपने को भट्टारक

---

१. मूल और प० गजाधरलालकृत अनुवाद—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, स० १९८१; श्रीलाल शास्त्रीकृत अनुवाद—भा० जै० सि० प्र० कलकत्ता तथा जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, कलकत्ता।

१. शान्तिनाथचरित :

यह मम्मटकृत काव्यप्रकाश के टीकाकार माणिक्यचन्द्रसूरि की दूसरी रचना है। इसकी एक ताडपत्रीय प्रति मिलती है।[१] इसमें आठ सर्ग हैं। इसका रचना-विस्तार ५५७४ श्लोक-प्रमाण है जो कवि ने स्वय निर्दिष्ट किया है।[२] इसका आधार हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा माना जाता है।

इसमें वैसे महाकाव्य के प्रायः सभी बाह्यलक्षण समाविष्ट हैं पर भाषा-शैथिल्य, सर्वांगीण जीवन के चित्र उपस्थित करने की अक्षमता एव मार्मिक स्थलों की कमी इसे प्रमुख महाकाव्य मानने में बाधक है। सर्गों के नाम वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। इसमें स्थान-स्थान पर जैनधर्म-सबंधी उपदेश हैं। सप्तम सर्ग तो जैनधर्म के सिद्धान्तों से ही परिपूर्ण है। काव्य वैराग्यमूलक और शान्तरस पर्यवसायी है। इसका कथानक शिथिल है और इसमें प्रबन्धरूढियों का पालन हुआ है। मगलाचरण परमब्रह्म की स्तुति से प्रारंभ होता है। चरित में अवान्तर कथाओं की भरमार है। छठे, सातवें और आठवें सर्ग में विविध आख्यानो का समावेश है। कई स्थलों पर स्वमत-प्रशसा और परमत-खण्डन किया गया है। इस काव्य में स्तोत्रों और माहात्म्य वर्णनों की प्रचुरता भी दिखाई देती है। छठे और आठवें सर्ग में तीर्थंकर शान्तिनाथ के स्तोत्र तथा कई तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है।

इस शान्तिनाथचरित का कथानक ठीक वही है जो मुनिभद्रसूरिकृत शान्तिनाथ महाकाव्य का है पर इसमें कथानक का विभाजन नवीन ढग से किया गया है। इसमें प्रथम सर्ग में शान्तिनाथ के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भव का वर्णन है, द्वितीय सर्ग मे चतुर्थ और पचम भव, तृतीय सर्ग में षष्ठ और सप्तम भव का, चतुर्थ सर्ग मे अष्टम और नवम भव का तथा पंचम सर्ग में दशम और एकादश भव का वर्णन है। षष्ठ सर्ग मे शान्तिनाथ के जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा, केवलोत्पत्ति तथा देशना का वर्णन है। सप्तम सर्ग में देशना के अन्तर्गत द्वादशभाव तथा शील की महिमा का वर्णन है और अष्टम सर्ग में श्री शान्तिनाथ के निर्वाण का वर्णन है। कथानक-विभाजन की दृष्टि से ही नहीं अपितु नवीन अवान्तर

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०; हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, प्रति ४६।८६५.

२. चतुःसप्ततिसंयुक्ते पंचपंचाशता शतो (?)।
प्रत्यक्षरगणनया ग्रन्थमानं भवेदिह ॥ ग्रन्थाग्रं ५५७४ ॥
—प्रशस्ति, श्लोक २०.

कथाओं की योजना मे भी माणिक्यचन्द्रसूरि ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। इसमे केवल चार ही पात्रों अर्थात् शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिनिर्घोष और सुतारा के चरितचित्रण का प्रयास कवि ने किया है। शेष पात्रों का चरित्र परम्परा सम्मत है, उनका विकास नहीं हुआ।

इसकी भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। अधिकतर इसमे छोटे समासों वाली या समासरहित पदावली का प्रयोग हुआ है। इसमे शब्दालकार के यमक और अनुप्रास के प्रयोग मे भाषा मे प्रवाह और माधुर्य आ गया है। अर्थालकारों मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक एव विरोधाभास आदि अलकारों की सुन्दर योजना हुई है। इसमे प्रायः अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है पर प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया गया है और मालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित आदि कुछ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय एव रचनाकाल—काव्य के अन्त मे जो प्रशस्ति दी गई है उसमे उपलब्ध गुरुपरम्परा का वर्णन कवि कृत पूर्वरचना पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति के विवरण से पूर्णतः मिलता है। इससे यह निर्विवाद है कि इसके रचयिता माणिक्यचन्द्रसूरि हैं। इस काव्य की समाप्ति कसाम्बिति नगर मे दीपावली के दिन सोमवार को हुई थी, जैसा कि कवि ने प्रशस्ति मे कहा है :

दीपोत्सवे शशिदिने श्रीमन्माणिक्यसूरिभिः।
कसामिवत्यां महापुर्यां श्रीग्रन्थोऽयं समर्थितः॥

पर इससे इस ग्रन्थ का रचना-संवत् नहीं मालम होता। माणिक्यचन्द्र की अन्यकृति पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल उसकी प्रशस्ति में वि० स० १२७६ दिया गया है। स० १२७६ मे ही वस्तुपाल को मन्त्रीपद मिला था और जिनभद्रकृत प्रबधावली मे वस्तुपाल और माणिक्यचन्द्र के अच्छे सम्पर्क का विवरण दिया गया है। इससे उनका वि० स० १२७६ के बाद तक जीवित रहना सुनिश्चित है। माणिक्यचन्द्र की एक अन्यकृति काव्यप्रकाश पर संकेत टीका है जिसकी प्रशस्ति से उसकी रचना की ध्वनि स० १२४६ अथवा स० १२६६ निकलती है। इससे सभव है कि उक्त रचना सकेत टीका और पार्श्वनाथचरित के बीच या कुछ बाद अवश्य हुई होगी। मोटे रूप से शान्तिनाथचरित की रचना विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानने मे आपत्ति न होनी चाहिए। अनुमान किया जाता है कि यह कवि की वृद्धावस्था की कृति होगी क्योंकि इस कृति में कवि अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के प्रति उदासीन है जब कि काव्य-प्रकाशसकेत मे उनके प्रौढ़ पाण्डित्य और असामान्य बुद्धि के दर्शन होते

हैं। कवि ने इस काव्य की रचना धर्मभावना से प्रेरित होकर स्वान्तः सुखाय की है।[१] कवि का विशेष परिचय उनकी अन्यकृति पार्श्वनाथचरित के प्रसग में दिया गया है।

२. शान्तिनाथचरित :

यह ६ सर्गात्मक कृति है। इसमे ५००० श्लोक हैं। इसके रचयिता पौर्णमिकगच्छीय अजितप्रभसूरि हैं जो वीरप्रभसूरि के शिष्य हैं[२]। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी : पौर्णमिकगच्छ में चन्द्रसूरि, उनके शिष्य देवसूरि, उनके तिलकप्रभ और उनके शिष्य वीरप्रभ। इस ग्रन्थ की रचना स० १३०७ में हुई थी। इस सूरि का एक अन्य ग्रन्थ भावनासार मिलता है जो उक्त चरित से पहले बनाया गया था[३]।

३. शान्तिनाथचरित :

यह सात सर्ग का एक काव्य है।[४] इसका प्रमाण ४८५५ श्लोक है। इस काव्य के कथानक का आधार प्राचीन चरित ग्रन्थ हैं। सर्गों के नाम वर्णनीय कथा पर आधारित हैं। एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त मे विभिन्न छन्दों के द्वारा कथा परिवर्तन की ओर किंचित् सकेत किया गया है। इसमें शान्तिनाथ, वज्रायुध, अशनिघोष, सुतारा आदि के भवान्तरों का वर्णन किया गया है। अन्य पुराणों की भाँति इसमें अलौकिक और अतिप्राकृतिक कार्यों की भरमार है। मगलकुम्भ धनद, अमरदत्त नृप आदि अनेक अवान्तर कथाओं की योजना के कारण कथानक में शिथिलता आ गई है।

---

१. शान्तिनाथचरित, सर्ग १, श्लोक २३-२४:
प्रक्रान्तोऽयमुपक्रम खलु मया किं तर्श्यगर्ह्यक्रम. ।
स्वस्यानुस्मृतये जडोपकृतये चेतो विनोदाय च ॥

२. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, स० १९७३; जिनरत्नकोश, पृ० ३७९; विब्लियो० इण्डिका। इसका गुजराती अनुवाद भी उपलब्ध है जो जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० २००३ मे प्रकाशित हुआ है।

३. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१०.

४. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, हस्त० क्र० ४२९ तथा ६८४०. इस कृति का परिचय डा० श्यामशंकर दीक्षित के शोधप्रबन्ध 'तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन सस्कृत-महाकाव्य' के अप्रकाशित अश में विस्तार के साथ द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत काव्य मुनिभद्रसूरिकृत शान्तिनाथचरित महाकाव्य से पहले लिखा गया है। दोनों के कथानक और अवान्तर कथाओं में पूर्ण साम्य है। कथाओं का क्रम भी दोनों में एक-सा है। इसलिए मुनिभद्रसूरि की कृति का आधार प्रस्तुत ग्रन्थ ही है। किन्तु मूल कथा के विभाजन में दोनों मौलिक हैं। मुनिभद्रसूरि ने कथा को १९ सर्गों में विभाजित किया है जबकि प्रस्तुत काव्य में कथानक का विभाजन ७ सर्गों में ही हुआ है। इसके प्रथम सर्ग में शान्तिनाथ के प्रारम्भ के तीन भवों का, द्वितीय में चतुर्थ और पंचम भव का, तृतीय सर्ग में षष्ठ और सप्तम भव का, चतुर्थ सर्ग में अष्टम और नवम भव का तथा पंचम में दशम और एकादश भव का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में शान्तिनाथ के जन्म से दीक्षा तक एवं देशनाओं का और सप्तम में उनके मोक्षगमन का वर्णन है। विविध अवान्तर कथाओं के कारण कथानक के प्रवाह में शिथिलता सी आ गई है। इसमें शान्तिनाथ, उनके पुत्र चक्रायुध और अशनिघोष तथा सुतारा ये चार पात्र ही प्रमुख हैं। प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य चित्रण धार्मिकता से अनुप्राणित होने के कारण व्यापक रूप से स्थान नहीं पा सके हैं। जैनधर्म के सिद्धान्तों और नियमों का विवेचन अनेक स्थलों पर हुआ है।

इस काव्य की भाषा सरल और प्रसाद गुण प्रधान है और भाव व्यक्त करने में सक्षम है। अलंकारों की योजना करने में कवि का विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता फिर भी कुछेक तो भाषाप्रवाह में आ गये हैं। शब्दालंकार में अनुप्रास और यमक का प्रयोग अधिक हुआ है और अर्थालंकार में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का।

इसमें अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन हुआ है जिनमें शार्दूलविक्रीडित, आर्या, शिखरिणी, वसन्ततिलका तथा उपजाति छन्दों का प्रयोग है। कवि ने इस काव्य का रचना-परिमाण ४८५५ श्लोक-प्रमाण बताया है[1]।

ग्रन्थकार व रचनाकाल—काव्य के अन्त में प्रशस्ति देकर कवि ने अपना परिचय दिया है। जिससे ज्ञात होता है कि मुनिदेवसूरि बृहद्गच्छीय थे। उन्होंने गुरुपरम्परा भी दी है। तदनुसार इस गच्छ में मुनिचन्द्र नामक विद्वान् सूरि हुए,

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक १८ :

प्रत्यक्षरं च सख्यानात् पंचपंचाशताधिका।
अस्मिन्ननुष्टुभामष्टचत्वारिंशच्छतीत्येव ॥

उनकी पट्टपरम्परा में क्रमशः देवसूरि, भद्रेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, मदनचन्द्रसूरि हुए। प्रस्तुत ग्रन्थकार मुनिदेवसूरि मदनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने प्रस्तुत कृति की रचना स० १३२२ मे की[1]। इस काव्य के सशोधक श्री प्रद्युम्नसूरि थे[2]। प्रस्तुत शान्तिनाथचरित का आधार हेमचन्द्राचार्य के गुरुदेवचन्द्रसूरि कृत प्राकृत में निबद्ध बृहद् शान्तिनाथचरित है। सम्भवतः इसीलिए मुनिदेवसूरि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में देवचन्द्रसूरि की स्तुति की है[3]।

मुनिदेवसूरि के उक्त चरित्र को आधार बनाकर शास्त्रीय महाकाव्य की शैली पर १९ सर्गात्मक शान्तिनाथचरित की रचना बृहद्गच्छीय मुनिभद्रसूरि ने सं० १९१० मे की थी जिसका विवरण शास्त्रीय महाकाव्यों के प्रसग में प्रस्तुत किया जायेगा।

४. शान्तिनाथचरित :

इसमें १६ वे तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित्र वर्णित है[4]। वे तीर्थंकर के साथ चक्रवर्ती और कामदेव भी थे। उनकी इन सभी विशेषताओं का इस काव्य में वर्णन है। काव्य मे १६ अधिकार हैं तथा ग्रन्थाग्र ४३७५ श्लोक-प्रमाण है। इसकी भाषा आलकारिक तथा वर्णन रोचक एव प्रभावक है। प्रारम्भ में शृंगार रस के स्थान मे शान्त रस की ओर प्रवृत्ति पर कवि ने अच्छा प्रकाश डाला है।

५. शान्तिनाथचरित :

इसे सरल सस्कृत गद्य में सं० १५३५ में भावचन्द्रसूरि ने रचा है।[5] ये पूर्णिमागच्छ के पार्श्वचन्द्र के प्रशिष्य एव जयचन्द्र के शिष्य थे। ग्रन्थ का

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक ११.

२. वही, सर्ग १, श्लोक १७.

श्रीप्रद्युम्नश्चिर नन्द्यात् ग्रन्थस्यास्य विशुद्धिकृत्।

३. वही, सर्ग १, श्लो० ३५७.

४. दुलीचन्द्र पन्नालाल देवरी, १९२३, हिन्दी अनुवाद सहित—जिनवाणी प्र० का०, कलकत्ता, १९३९ इसका अनुवाद सूरत से प० लालाराम शास्त्री-कृत भी उपलब्ध है।

५. जिनरत्नकोश, पृ० ३७९; जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ५१६; जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९११; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४; क्षांतिसूरि जैन० ग्र०, अहमदाबाद, सं० १९९५, गुजराती अनुवाद, भावनगर, सं० १९७८.

कथाओं की योजना भी इसमें की गई है। इन अवान्तर कथाओं के कारण कथा-वस्तु में शिथिलता आ गई है। प्रथम तीन सर्गों मे कथा द्रुतगति से आगे बढ़ती गई है परन्तु चतुर्थ सर्ग से कथा की गति मन्थर हो जाती है। छठे सर्ग से तो कथा की गति बहुत ही शिथिल-सी दीख पड़ती है। इस काव्य में श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार मल्लिनाथ को स्त्री माना गया है।

इसमें यद्यपि अनेक पात्र हैं पर मल्लि के चरित्र के अतिरिक्त अन्य किन्हीं चरित्रों का विकास नहीं हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी खूब किया गया है। जिसमें पर्वत, समुद्र, षट्ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, उद्यान-क्रीड़ा आदि का वर्णन स्वाभाविक एव भव्य है[१]। पौराणिक महाकाव्य होने से इस चरित्र मे अलौकिक एवं चमत्कारिक तत्त्वों का समावेश भी किया गया है। यत्रतत्र धार्मिक तत्त्व तथा विविध ज्ञान भी कवि ने इस काव्य में प्रदर्शित किये हैं।

इस चरित की भाषा प्रसादगुणमयी, सरल और भावपूर्ण है। भाषा पर कवि का अच्छा अधिकार दिखाई पड़ता है। प्रसगों के अनुसार वह कहीं मधुर और स्निग्ध है तो कहीं ओजपूर्ण, तो कहीं गम्भीर है। यहाँ भाषा का व्यावहारिक रूप दिखाई पड़ता है। उसमे देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का प्रयोग हुआ है[२]। इस काव्य मे जनप्रचलित लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है[३]। इस चरित की रचना अनुष्टुभ् छन्द मे की गई है पर सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन कर दिया गया है। इस समस्त काव्य मे अनुष्टुभ्, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, इन्द्रवज्रा और शिखरिणी—इन पॉच छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलकार योजना में कवि ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया है फिर भी कहीं-कहीं उपमा और रूपक अलकारों के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं[४]। कवि का शब्दालंकारों की ओर झुकाव अधिक है।

मल्लिनाथचरित का रचना-परिमाण प्रकाशित प्रति के अनुसार ४३५५ श्लोक सिद्ध होता है। जिनरत्नकोश में इसका परिमाण ४२५० श्लोक दिया गया है।

---

१. वही, सर्ग १. ११६-१८; ७. २४०-२४३; ८. १२७ आदि।
२. वही, १. ५१; २. ६१; २. ३९०, २. ४९८, ७. ५६३; ८. ३०६.
३. वही, ७. १६४; २. ४०३; २. ४१२; ७. २२३; ८. ३३६; ९. २८७.
४ वही, सर्ग ८. ५३७; ७. १०२५; ३ ६.

कर्ता तथा रचनाकाल—इसके रचयिता विनयचन्द्रसूरि हैं जिनके विषय मे उनकी अन्य कृति पार्श्वनाथचरित के वर्णन मे कहा गया है। मल्लिनाथचरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना रविप्रभसूरि के शिष्य नरेन्द्र-प्रभ तथा नरसिंहसूरि के अनुरोध पर हुई है। मल्लिनाथचरित्र का सशोधन कनकप्रभसूरि के शिष्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था[१]।

अन्य ग्रन्थकारो मे शुभवर्धनगणि,[२] विजयसूरि (रचना ४६२० ग्रन्थाग्र प्रमाण), भट्टा० सकलकीर्ति[३] और भट्टा० प्रभाचन्द्रकृत[४] मल्लिनाथचरित उप-लब्ध होते हैं। भट्टारक सकलकीर्ति-कृत मल्लिनाथचरित मे ७ सर्ग हैं जिनमे ८७४ श्लोक हैं।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ पर भी आठ के लगभग संस्कृत काव्यों का निर्माण हुआ है। उनमे से एक अममस्वामिचरित आदि ग्रन्थों के रचयिता पौर्णमिकगच्छीय मुनिरत्नसूरिकृत (लग० स० १२५२) ६८०६ श्लोक-प्रमाण है[५]। यह काव्य २३ सर्गों मे विभक्त है। अबतक यह अप्रकाशित है। सूरि का परिचय इनकी प्रकाशित कृति अममस्वामि-चरित के साथ दिया जा रहा है। द्वितीय मुनिसुव्रतचरित विबुधप्रभ के शिष्य पद्मप्रभसूरिप्रणीत है[६] जो स० १२९४ मे रचा गया था। इसका परिमाण ५५५५ श्लोक है। कर्ता की अन्य रचना कुन्थुचरित स० १३०४ की मिलती है। यही ग्रन्थकार पार्श्वस्तव, भुवनदीपक आदि के भी कर्ता हैं या कोई दूसरे पद्मप्रभ इस बात का अबतक निश्चय नहीं हो सका है[७]।

तृतीय रचना विशेष उल्लेखनीय है अतः उसका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक ९.

२. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९३०.

३. जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, सं० १९७९; हिन्दी—गजाधरलाल शास्त्री। इसकी प्राचीन ह० लि० प्रति सं० १५१५ की मिलती है।

. जिनरत्नकोश, पृ० ३०३.

५. वही, पृ० ३०१.

६. वही.

७. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९६.

मुनिसुव्रतचरित :

'विनय' शब्दाङ्कित इस काव्य में आठ सर्ग हैं।[1] इसके रचयिता विनयचन्द्रसूरि हैं। समस्त काव्य मे धार्मिक रूढ़ियों और गतानुगतिकता का पूर्णरूप से पालन किया गया है। मुनिसुव्रतस्वामी के भवान्तरों का वर्णन है साथ ही अवान्तर और प्रासगिक कथाओं के कारण कथानक मे शिथिलता सी आ गई है। प्रथम सर्ग में ही तीन अवान्तर कथाओं—मेघवाहन, सकाशश्रविक और अंम्यकर चक्रवर्ती कथा की योजना की गई है। अन्य सर्गों में विविध कथाओं की योजना की गई है। काव्य में अनेक अलौकिक और अप्राकृत तत्त्वो का समावेश दीख पड़ता है।

वैसे मुनिसुव्रतचरित का कथानक लघु है पर अवान्तर कथाओं के समावेश के कारण इसका महाकाव्योचित विस्तार हो गया है। पर कथाओं के आधिक्य से कथानक में शैथिल्य आ गया है और उसके प्रवाह में अनेक स्थलों में बाधा-सी पड़ी है। यद्यपि इसमें अनेक पात्र हैं पर केवल मुनिसुव्रत के चरित्र का ही विकास हो सका है। शेष उसी की छाया मे आते-जाते दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य में कवि प्रकृति-चित्रण के प्रति उदास से दिखते हैं। उन्होंने कुछ ही स्थलों पर प्रकृति-चित्रण किया है। प्रकृति-चित्रण की भाँति सौन्दर्य-चित्रण भी बहुत कम किया गया है। पर इसमें जैनधर्म के नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रमुखता से हुआ है।[2]

इस चरित में सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं समासप्रधान भाषा का उपयोग हुआ है। लेखक ने अपनी भाषा को विविध सूक्तियों और मुहावरों से सजाया है[3] जिससे भाषा मे सजीवता और भावमयता आ गई है। तत्कालीन प्रचलित देशी भाषा के शब्दों को भी इस काव्य मे ग्रहण कर लिया गया है जैसे कन्दुक के स्थान में गेन्दुक और शुण्डा के स्थान पर शूण्ढ, अज के

---

१. लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी (बडौदा), वि० स० २०१२, जिनरत्नकोश, पृ० ३११.

२. सर्ग १. २२३; १. २६४-२६५, ५. ५; ६. ७५, ६. १४३, १४७; ७. ४४१-४४३ प्रभृति।

३. सर्ग २. ५३४, ६. २५०; ७. ४००; ८. २८४; ८. ३३१, ९. ४१३.

स्थान में वक्र आदि। मुनिसुव्रतचरित की रचना यद्यपि संस्कृत में हुई तथापि इसमें कहीं-कहीं पर प्राकृत का प्रयोग भी मिलता है।[1] अलंकारों के प्रयोग में कवि की अधिक रुचि प्रतीत नहीं होती फिर भी कुछ तो स्वतः ही भाषा प्रवाह में आ गये हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग पद्यों में दृष्टिगोचर होता है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह का प्रयोग अधिक हुआ है।

मुनिसुव्रतचरित के प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित कर दिया गया है। कुल मिलाकर ग्यारह छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है : अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, आर्या, मालिनी उपजाति, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा और वंशस्थ। ग्रन्थ ४५५२ श्लोक-प्रमाण है जो कि अष्टम सर्ग की पुष्पिका में दिया गया है।

कवि-परिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता वे ही विनयचन्द्रसूरि हैं जिन्होंने मल्लिनाथचरित एवं पार्श्वनाथचरित लिखा है। इसकी रचना कब की गई यह कवि ने उल्लेख नहीं किया है परन्तु यह मल्लिनाथचरित के बाद रचा गया है ऐसी सूचना एक पद्य से दी गई है।[2] इस काव्य की रचना कवि ने पुण्यार्जन की कामना से ही की है।[3] इनका विशेष परिचय पार्श्वनाथचरित के प्रसंग में दिया जा रहा है।

अन्य कृतियों में अर्हद्दास[4] कविकृत मुनिसुव्रतकाव्य का वर्णन विशिष्ट महाकाव्यों के प्रसंग में किया जायगा। इसके अतिरिक्त कृष्णदासकृत मुनिसुव्रतकाव्य २३ सर्गों में है जिसका निर्माण कल्पवल्ली में सं० १६८१ में हुआ था।[5] केशवसेन, भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (वि० सं० १७२२–१७३३) तथा हरिषेणकृत मुनिसुव्रत-काव्यों के उल्लेख मिलते हैं।[6]

---

१. सर्ग ४. ३५८ ३५९.

२. सर्ग १ ७.

३. सर्ग ८. ३६४.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१२.

५. वही, पृ० ३१२.

६. वही, पृ० ३१२.

इक्कीसवे तीर्थंकर नमिनाथ पर एक चरित-काव्य का उल्लेख मात्र मिलता है।[1]

बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ पर अनेकों काव्यात्मक रचनाएँ पाई जाती हैं। इनमें प्रथम रचना सूराचार्यकृत नेमिनाथचरित है। यह द्विसंधानात्मक है और प्रथम तीर्थंकर ऋषभ पर भी इसका अर्थ घटित होता है। इसका वर्णन बह्वर्थक काव्यों में किया जायगा। ऐसी ही द्वितीय रचना अजितदेव के शिष्य हेमचन्द्रसूरि की है जिसका नाम नेमिद्विसधान है। इसका भी वर्णन बह्वर्थक काव्यों में किया जायगा। सोम के पुत्र वाग्भट (१२ वीं शती) का नेमिनिर्वाणकाव्य १५ सर्गों में विभक्त है जो शास्त्रीय महाकाव्य की शैली का है। उसका उक्त प्रसग में वर्णन किया जायगा। सामान्यकोटि की कुछ काव्यात्मक रचनाओं का सक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

तिलकमजरीसारोद्धार के रचयिता (लघु) धनपाल (स० १२६१) के पिता कवि रामन ने नेमिचरित्र महाकाव्य लिखा था। तिलकमंजरीसारोद्धार में उस काव्य को सुश्लिष्ट शब्दों से पूर्ण, अद्भुत अर्थ और रसों से तरगित महाकाव्य कहा है।[2] कवि रामन अणहिल्लपुर निवासी पल्लीवालकुलीन तथा अशेष शास्त्रों के ज्ञाता थे। वि० स० १२८७ मे कवि दामोदर ने सल्लखणपुर (मालवा) मे परमारवशी राजा देवपाल के राज्यकाल मे एक नेमिनाथचरित्र की रचना की। कवि के पिता का नाम कवि माल्हण और ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था।[3] इन्हीं दामोदर कवि का एक काव्य चन्द्रप्रभचरित्र भी मिलता है। सन् १२९९ के लगभग नागेन्द्रगच्छ के विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभ ने भी २१०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण नेमिनाथचरित की रचना की। इन्हीं उदयप्रभ ने स० १२९९ में उपदेश-माला पर भी टीका लिखी थी।[4]

वि० चौदहवीं शताब्दी के लगभग सागण के पुत्र विक्रम ने नेमिचरितकाव्य[5] रचा जो कि मेघदूत के पादों को लेकर लिखा गया था। इसका वर्णन समस्या-पूर्तिकाव्य के प्रसग में करेंगे।

---

१. वही, पृ० ३०२.
२. तिलकमंजरीसारोद्धार, प्रशस्ति, पद्य १-२.
३. धारा और उसके जैन सारस्वत, गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रथ, पृ० ५४३.
४ जिनरत्नकोश, पृ० २१७.
५. वही, पृ० २१७, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३५९–३६१.

नेमिनाथ-महाकाव्य :

काव्यात्मक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण कृति है।[1] इसमें १२ सर्ग हैं, जिनमें ७०३ पद्य हैं। सर्गों के निर्माण मे विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। १, ४, ७ और ९ में अनुष्टुप् छन्द, ५-६ में उपेन्द्रवज्रा, ३ में इन्द्रवज्रा, ८ मे द्रुतविलंबित, ११ मे वियोगिनी तथा २, १० और १२ म और प्रत्येक सर्ग के अन्त में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा माधुर्य एव प्रसादगुण युक्त है। १२वें सर्ग के अन्त में शब्दालकार की छटा द्रष्टव्य है। इसमें पूर्वभवों का वर्णन एकदम छोड़ दिया गया है। प्रथम सर्ग मे च्यवनकल्याणक, दूसरे में प्रभात, तीसरे में जन्मकल्याणक, चौथे में दिक्कुमारियों का आगमन, पाँचवें में मेरुवर्णन, छठे में जन्माभिषेक, सातवें मे जन्मोत्सव, आठवे मे षड्ऋतुओं, नववें में कन्यालाभ, दशवें में दीक्षावर्णन, ग्यारहवें में मोहसयमयुद्धवर्णन तथा बारहवें में जनार्दन का आगमन और उनके द्वारा स्तुति तथा नेमिनाथ का मोक्षवर्णन दिया गया है। इस लघु काव्य को प्रभातवर्णन, मेरुवर्णन, षड्ऋतुवर्णन आदि द्वारा महाकाव्योचित लक्षणों से भूषित करने के कारण महाकाव्य की सज्ञा भी दी गई है।

कर्ता और रचनाकाल—काव्यकर्ता का नाम कीर्तिराज उपाध्याय है जैसा कि १२वें सर्ग के अन्तिम पद्य से सूचित होता है। यद्यपि उक्त पद्य में कवि ने इस काव्य को 'काव्याभ्यासनिमित्तम्' लिखा है पर उनके इस प्रौढ़काव्य से ऐसा नहीं लगता है। इस काव्य के पढ़ने से लगता है कि कवि व्याकरण, छन्द, अलकार एवं शब्द-प्रयोग मे विशारद था। कवि कहाँ और किस काल में हुए हैं और किस आचार्य-परम्परा के थे यह उक्त ग्रन्थ से पता नहीं लगता। काव्य की एक हस्तलिखित प्रति में एक ओर लिखा है कि "सं० १४९५ वर्षे श्री योगिनीपुरे (दिल्ली) लिखितमिदम्"। सम्भवतः यही या इससे पूर्व कवि का समय हो। एक अनुमान है कि कवि खरतरगच्छ के थे।

नेमिनाथचरित :

यह चरित्र सस्कृत गद्य के १३ विभागों में निर्मित है।[2] ग्रन्थ ५२८५ श्लोक-प्रमाण है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला (सं० ३८), भावनगर, वी० स० २४४०.

२. देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सूरत, १९२०; गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९८०; जिनरत्नकोश, पृ० २१७

इसमें नेमिनाथ के पूर्व नव भवों का, नेमिनाथ और राजीमती का नव भवों से उत्तरोत्तर आदर्श प्रेम, पति-पत्नी का अलौकिक स्नेह, राजीमती का वैराग्य, साध्वी-जीवन, नेमिनाथ के बालक्रीड़ा, दीक्षा, केवलज्ञान, मोक्षगमन का सुन्दर वर्णन है। साथ ही इसी में वसुदेव राजा का चरित्र और उच्च श्रेणी का पुण्य फल और उसके मीठे फल का वर्णन, श्रीकृष्ण का चरित्र, वैभव, पराक्रम, राज्यवर्णन, प्रतिनारायण जरासघ का वध, श्रीकृष्ण की नेमिनाथ के प्रति अपूर्व भक्ति, तद्भव मोक्षगामी और श्रीकृष्ण के शाम्ब और प्रद्युम्न का जीवनवृत्तान्त, नल-दमयन्ती का जीवनचरित्र, नल राजा का अपने बन्धु कुबेर से जुए में हारना, राजत्याग, दमयन्ती का पति से वियोग, नाना कष्ट, अद्भुत धैर्य, शीलरक्षा, पाण्डवों का चरित्र, द्रौपदी का स्वयवर, पति-सेवा, द्वारिकादहन आदि वर्णन विस्तार से किये गये हैं।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छ के हीरविजयसूरीश्वर के पट्टधर कनकविजय पण्डित के प्रशिष्य और वाचक विवेकहर्ष के शिष्य गुणविजयगणि हैं। इन्होंने सौराष्ट्र के सुरपत्तन शहर के पास द्रंगबन्दर मे सं० १६६८ की आषाढ पचमी को यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया और श्रावण षष्ठी को समाप्त किया था। इसकी रचना उन्होंने जीतविजयगणि के अनुरोध से की थी। ग्रंथ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ये बातें विदित होती हैं।

अन्य अप्रकाशित नेमिचरितों के लेखक तिलकाचार्य (ग्रन्थाग्र ३५०० श्लोकप्रमाण), नरसिंह, भोजसागर, हरिषेण, मंगरस तथा मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त का उल्लेख मिलता है।[1] ब्रह्मनेमिदत्त की कृति का नाम नेमिनिर्वाणकाव्य तथा नेमिपुराण[2] भी है। इसकी रचना स० १६३६ में हुई थी। इसमें १६ सर्ग हैं। रचयिता ने अपने को मूलसंघ सरस्वतीगच्छ का माना है।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित के एक विशेष घटनाप्रधान और चमत्कारी होने के कारण जैन लेखकों ने प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत में २५ से भी अधिक पार्श्वनाथचरित तथा अन्य काव्य विधाओं पर रचनाएँ की हैं। उनमें सस्कृत मे जिनसेन प्रथम (९ वीं शती) कृत पार्श्वाभ्युदय उत्तम कोटि का समस्यापूर्ति काव्य है। इसमे मेघदूत के सभी पद्यों का समावेश किया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७-१८.

२. इसका हिन्दी अनुवाद पं० उदयलाल कासलीवाल ने किया है—दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत, सं० २०११

इसका वर्णन अन्यत्र किया जा रहा है। इसके बाद कई उल्लेखनीय कृतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

१. पार्श्वनाथचरित :

इस काव्य में २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन काव्यात्मक शैली मे वर्णन किया गया है।[1] काव्य १२ सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग का नाम वर्ण्यवस्तु के आधार पर किया गया है। पहले सर्ग का नाम अरविन्दमहाराजसंग्रामविजय, दूसरे का नाम स्वयप्रभागमन, तीसरे का नाम वज्रघोषस्वर्गगमन, चतुर्थ का नाम वज्रनाभचक्रवर्तिप्रादुर्भाव, पाँचवे का नाम वज्रनाभचक्रवर्तिचक्रप्रादुर्भाव, छठे का वज्रनाभचक्रवर्तिप्रबोध, सातवें का वज्रनाभचक्रवर्तिदिग्विजय, आठवें का आनन्दराज्याभिनन्दन, नवम का दिग्देविपरिचरण, दशम का कुमारचरित, ग्यारहवें का केवलज्ञानप्रादुर्भाव और बारहवें का भगवन्निर्वाणगमन है।

कवि ने इसे पार्श्वनाथजिनेश्वरचरित महाकाव्य कहा है। महाकाव्य की शैली के अनुरूप प्रत्येक सर्ग की रचना अलग-अलग छन्द में की है और सर्गान्त में विविध छन्दों की योजना की है। पहले, सातवें और ग्यारहवें सर्गों में अनुष्टुप् छन्द, शेष में दूसरे छन्दों का प्रयोग किया गया है। सप्तमसर्ग में व्यूहरचना के प्रसग में मात्राच्युतक, बिन्दुच्युतक, गूढचतुर्थक, अक्षरच्युतक, अक्षरव्यत्यय, निरोष्ठ्य आदि का अनुष्टुप् छन्दों मे ही प्रदर्शन किया गया है। छठे सर्ग में विविध शब्दों की छटा द्रष्टव्य है।

इस काव्य की भाषा माधुर्यगुणपूर्ण है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह मनोरम कल्पनाओं को साकार करने मे पूर्णतया समर्थ है। कवि ने भाव और भाषा को सजाने के लिए अलकारों का प्रयोग किया है। शब्दालकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यासादि का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है।

ग्रन्थकर्ता और समय—इस काव्य के रचयिता वादिराजसूरि द्रविड़सघ के अन्तर्गत नन्दिसघ (गच्छ) और असंगल अन्वय (शाखा) के आचार्य थे। इनकी उपाधियाँ षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति और जगदेकमल्लवादी थीं।

---

१. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सं० १९७३, जिनरत्नकोश, पृ० २४६; हिन्दी अनुवाद (पं० श्रीलालकृत)—जयचन्द्र जैन, कलकत्ता, १९२२.

ये श्रीपालदेव के प्रशिष्य, मतिसागर के शिष्य और रूपसिद्धि (शाकटायन व्याकरण की टीका) के कर्ता दयापाल मुनि के सतीर्थ या गुरुभाई थे। लगता है वादिराज इनकी एक तरह की पदवी या उपाधि थी, वास्तविक नाम कुछ और रहा होगा पर उपाधि के विशेष प्रचलन से वह नाम ही बन गया। श्रवणबेलगोला से प्राप्त मल्लिषेणप्रशस्ति मे वादिराज की बड़ी ही प्रशंसा की गई है।

वादिराज ने पार्श्वनाथचरित की रचना सिंहचक्रेश्वर या चौलुक्य चक्रवर्ती जयसिहदेव की राजधानी कट्टगेरी में निवास करते हुए[1] शक स० ९४७ की कार्तिक शुक्ल तृतीया को की थी। पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति के छठे पद्य से ऐसा मालूम होता है कि वह राजधानी लक्ष्मी का निवास थी और सरस्वती देवी (वाग्वधू) की जन्मभूमि थी। अपनी दूसरी कृति यशोधरचरित के तीसरे सर्ग के अन्तिम (८५ वें) पद्य में और चौथे सर्ग के उपान्त्य पद्य मे कवि ने चतुराई से जयसिंह का उल्लेख किया है।[2] इससे प्रकट होता है कि यशोधर-चरित्र की रचना भी जयसिंह के ही राज्य में हुई थी। दक्षिण के चालुक्य नरेश जयसिंहदेव की राजसभा में इनका बड़ा सम्मान था और ये प्रख्यातवादी गिने जाते थे। मल्लिषेणप्रशस्ति के अनुसार चालुक्यचक्रवर्ती के जयकटक में वादिराज ने जयलाभ की थी। जगदेकमल्लवादी उपाधि भी जयसिंह ने इन्हें प्रदान की थी और इनकी पूजा भी की थी—सिंहसमर्च्य पीठविभवः।

वादिराज का युग जैन साहित्य के वैभव का युग था। उनके समय मे सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र, इन्द्रनन्दि, कनकनन्दि, अभयनन्दि तथा चन्द्रप्रभ-चरित काव्य के रचयिता वीरनन्दि, कर्नाटकदेशीय कवि रन्न, अभिनवपम्प एव नयसेन आदि हुए थे। गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि के रचयिता ओडय-देव वादीभसिंह और उनके गुरु पुष्पसेन, गगराज राचमल्ल के गुरु विजयभट्टारक तथा मल्लिषेणप्रशस्ति के रचयिता महाकवि मल्लिषेण और रूपसिद्धि के कर्ता दयापाल मुनि इनके समकालीन थे।

इस काव्य पर भट्टा० विजयकीर्ति के शिष्य शुभचन्द्र ने पंजिका लिखी है। इसका उल्लेख पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में भट्टा० शुभचन्द्र ने स्वय किया है।

---

१. 'सिहे पाति जयादिके वसुमतीं'।

२. 'व्यातन्वज्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम्' तथा 'रणमुख जयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार'।

इसकी रचना उन्होंने भट्टा० श्रीभूषण के अनुरोध पर की थी और उसकी प्रथम प्रति श्रीपालवर्णी ने तैयार की थी।[1]

१३ वीं शताब्दी के प्रारभ में एक सर्वानन्दसूरि (जालिहरगच्छ) ने पार्श्वनाथचरित की रचना की थी। यह उल्लेख उनके प्रशिष्य देवसूरि ने अपनी रचना पउमपभचरियं में किया है।[2]

२. पार्श्वनाथचरित :

यह मम्मटाचार्य के काव्यप्रकाश की प्रथम टीका सकेत के लेखक माणिक्यचन्द्रसूरि की कृति है जो अबतक अप्रकाशित है।[3] इसमें दस सर्ग हैं। रचना-परिमाण ६७७० श्लोक है। प्रत्येक सर्ग के अन्त की पुष्पिका में इसे महाकाव्य कहा गया है। महाकाव्योचित अधिकाश लक्षणो का समन्वय इसमे हुआ है। इसमे शातरस की प्रधानता है पर अन्य रस भी गौण रूप से विद्यमान हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन किया गया है। इसमें सूर्योदय, सूर्यास्त, चद्रोदय, ऋतु, वन-वर्णन भी पाये जाते हैं। सर्गों के नाम वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। महाकाव्य होते हुए भी इसमे प्रमुख महाकाव्यों के अनुरूप भाषा-शैली एवं प्रौढ़ कवित्वकला का अभाव है, इससे इसकी गणना सामान्य महाकाव्यों मे मानना चाहिये। पार्श्वनाथचरित एक पौराणिक महाकाव्य है। इसका प्रारभ तीर्थकरों की स्तुति से होता है, भवान्तरों और अनेक अवान्तर कथाओं की योजना की गई है तथा पार्श्वनाथ के जन्म, दीक्षा, केवल एव निर्वाण-कल्याणकों का वर्णन अलौकिक घटनाओं से भरा है। इसका कथानक पूर्णतः परम्परासमत है।

पौराणिक काव्य के अनुरूप इसकी रचना अनुष्टुप् छन्द में हुई है पर सर्गान्त मे मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं सर्ग के मध्य मे भी चार-पाच पद्य अन्य छन्दों के दिये गये हैं। इस काव्य में कवि की अभिरुचि अलकारों की ओर नहीं दीख पड़ती तथा भाषा के सहज प्रवाह और भावों का स्वाभाविक अभिव्यक्ति मे विविध अलकार स्वतः

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४६.

२. वही, पृ० ४४५.

३. ताडपत्रीय प्रति—शान्तिनाथ भण्डार, खम्भात, ग्रन्थ सं० २०७; जिनरत्नकोश, पृ० २४४,

ही आ गये हैं। भाषा सरल और प्रसादगुण से युक्त है। क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसमें सूक्तियों और लोकोक्तियों का विशेष प्रयोग कवि ने नहीं किया है।

कवि-परिचय और रचनाकाल—ग्रन्थान्त में कवि ने प्रशस्ति दी है जिसमें उसने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता माणिक्यचन्द्रसूरि राजगच्छीय थे। राजगच्छ में भरतेश्वरसूरि, उनके शिष्य वीरस्वामी, उनके शिष्य नेमिचन्द्रसूरि, उनके शिष्य सागरचन्द्र। सागरचन्द्र के शिष्य पार्श्वनाथचरित के रचयिता माणिक्यचन्द्रसूरि थे। ये महामात्य वस्तुपाल के समकालीन थे। उदयप्रभसूरि के शिष्य जिनभद्र ने अपनी प्रबन्धावली (सं० १२९०) में माणिक्यचन्द्र और वस्तुपाल के सम्पर्क का विवरण दिया है।

पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल कवि ने इस प्रकार दिया है :

रसर्षि रवि (१२७६) संख्यायां समायां दीपपर्वणि।
समर्थितमिदं वेलाकूले श्रीदेवकूपके ॥[1]

अर्थात् सं० १२७६ में दीपावली के दिन वेलाकूल श्रीदेवकूपक में इस काव्य की रचना हुई। इसे भिल्लमालवंशीय श्रेष्ठी देहड़ की प्रार्थना पर रचा गया था। कवि की दूसरी कृतियों में शान्तिनाथचरित तथा काव्यप्रकाश की संकेत टीका है।

३. पार्श्वनाथचरित :

यह छ सर्गों का 'विनय' शब्दांकित महाकाव्य है। यह अबतक अमुद्रित है।[2] इसका ग्रन्थ-परिमाण ४९८५ श्लोक-प्रमाण है। सर्गों के नाम वर्ण्यवस्तु के आधार पर रखे गये है। इसका कथानक परम्परासम्मत है जिसमें कवि ने कोई परिवर्तन परिवर्धन नहीं किया है। भवान्तरों के वर्णन में अनेक अवान्तर कथाओं की योजना की गई है। ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य धार्मिक स्थानों और सभाओं में श्रद्धालु श्रावकों द्वारा इसका पारायण करना और दूसरों को सुनाना रहा है। फिर भी इस पार्श्वनाथचरित का कथानक परम्परासम्मत

---

१. वही, प्रशस्ति.

२. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, हस्तलिखित प्रतियाँ, क्र० सं० १९१८ और १९६८.

होते हुए भी पूर्ववर्ती पार्श्वनाथचरितों से भिन्न है। इसके प्रथम तीन सर्गों में ही पार्श्वनाथ के सभी भवान्तरों का वर्णन समाप्त हो जाता है। आगे दान, शील, तप और भावना के माहात्म्यवर्णन में नये कथानकों की योजना है। अन्य बातों में भी कवि की नवीनता और मौलिकता स्पष्ट है।

इस काव्य की भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। इसमें क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों का पूर्णतया अभाव है। समासयुक्त पदावली का प्रयोग बहुत कम किया गया है। भाषा के प्रवाह मे अनुप्रासो की झकृति प्रायः स्वतः एव प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है। यत्र-तत्र मधुर सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है।[1] अलकारों का प्रयोग प्रचुर हुआ है पर उनके प्रयोग में स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। कवि ने अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है पर सर्गान्त में छन्दों मे परिवर्तन कर इन्द्रवज्रा, शिखरिणी, मालिनी और उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है।

कवि-परिचय और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त मे कवि ने जो प्रशस्ति दी है उससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता विनयचन्द्रसूरि चन्द्रगच्छीय थे। चन्द्र-गच्छ मे शीलगणसूरि नामक प्रसिद्ध विद्वान् हुए थे। उनके शिष्य मानतुगसूरि और मानतुग के शिष्य रविप्रभसूरि हुए जो बडे विद्वान् थे। उनके शिष्यों मे नरसिंहसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि और विनयचन्द्रसूरि हुए। विनयचन्द्रसूरि ने ही विनयाक पार्श्वनाथचरित की रचना की। इसके अतिरिक्त कवि ने मल्लिनाथचरित, मुनिसुव्रत-स्वामिचरित, कल्पनिरुक्त, काव्यशिक्षा, कालिकाचार्यकथा (प्राकृत) तथा दीपा-वलीकल्प की रचना भी की है। उन्होंने गुर्जर भाषा में भी कई काव्यों की रचना की है जिनमे नेमिनाथचउपई और उपदेशमालाकथानकछप्पय प्राप्त हैं।

पार्श्वनाथचरित के रचनाकाल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई सूचना नहीं है। पर विनयचन्द्रसूरि के सत्ताकाल पर उनकी अन्य रचनाओं से प्रकाश पड़ता है। उन्होंने स० १२८६ में उदयप्रभसूरि द्वारा रचित धर्मविधिवृत्ति का संशोधन किया था[2] तथा कल्पनिरुक्त स० १३२५ मे और दीपमालिका-कल्प स० १३४५ मे रचा था।[3] इससे विनयचन्द्रसूरि का साहित्यिक काल स०

१. वही, सर्ग १.६५, ९१. १८६, ५२४, २.८२, १२६ आदि.
२. धर्मविधिप्रशस्ति, श्लो० ११-१२, १७.
३. मुनिसुव्रतस्वामिचरित, प्रास्ताविक, पृ० ४ (प्रकाशक—लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी).

१२८६ से लेकर १३४५ तक प्रमाणित होता है। इसी बीच मे उन्होंने पार्श्वनाथ-चरित्र एवं अन्य कृतियाँ रची होंगी।

४. पार्श्वनाथचरित :

यह पाच सर्गों का काव्य है। इसकी एक मात्र ताड़पत्रीय प्रति मिलती है[1] पर वह भी अति जीर्ण है। प्रारंभ के १५६ पृष्ठ लुप्त हैं। कुल पृ० सख्या ३४५ है। इसके रचयिता सुधर्मागच्छीय गुणरत्नसूरि के शिष्य सर्वानन्दसूरि हैं। इनकी दूसरी रचना चन्द्रप्रभचरित्र स० १३०२ में रची गई थी। जिनरत्नकोश के अनुसार प्रस्तुत कृति का रचनाकाल स० १२९१ है।[2] इस काव्य का परिमाण ८००० श्लोक-प्रमाण सिद्ध होता है।

५. पार्श्वनाथचरित :

इस काव्य में आठ सर्ग हैं।[3] यह भावाङ्कित महाकाव्य है। सर्गों के नाम भी वर्ण्य विषय के आधार पर रखे गये हैं। वैसे इस चरित में महाकाव्य के बाह्य सभी लक्षणो का समावेश है किन्तु इसमें उदात्त भाषा-शैली तथा उत्कृष्ट कवित्व कला के अभाव से इसे प्रमुख महाकाव्यों की पक्ति में स्थान नहीं दिया जा सकता। यह एक पौराणिक महाकाव्य माना गया है। इसका प्रारम्भ रूढ़ि-परक मगलाचरण से किया गया है। कथानक परम्परासम्मत है और कवि ने उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है।[4] इसमें पार्श्वनाथ के भवान्तर और बीच-बीच में अनेक कथाओं तथा धर्मोपदेश और स्तोत्रों की योजना की गई है। पुराणों के अनुरूप कुछ अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रस्तुत काव्य मे दी गई है। यह काव्य भी वैराग्य-भावना से ओत-प्रोत है। इसकी रचना अनुष्टुप् वृत्त में हुई है पर प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य इतर छन्द म है जैसे—प्रथम, षष्ठ और अष्टम सर्गों के अन्त का छन्द वसन्ततिलका, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम तथा सप्तम सर्गों का शार्दूलविक्रीडित है। सप्तम के मध्य म पद्य सख्या ३५९ से ३६६ तक वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रशस्ति में उपर्युक्त छन्दों

---

१. संघवीपाडा भण्डार, पाटन, सं० २७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २४५.

३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सन् १९१२, इसका सारानुवाद अंग्रेजी में ब्लूमफील्ड ने वाल्टीमोर से सन् १९१९ में प्रकाशित कराया।

४. समीक्ष्य बहुशास्त्राणि श्रुत्वा श्रुतधराननात्।
ग्रन्थोऽयं ग्रथित. स्वल्पसूत्रेणापि मया रसात् ॥ सर्ग १, श्लोक ११

के प्रयोग के साथ मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा और शिखरिणी छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस काव्य की भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। क्लिष्ट शब्दों और समासान्त पदावली का प्रयोग कम ही हुआ है। भाषा प्रसंगानुकूल एवं भावानुवर्तिनी है। लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग भी यत्र-तत्र पाया जाता है। इससे भाषा मधुर एवं सजीव हो गई है।

पार्श्वनाथचरित का रचना-परिमाण अनुष्टुप् मान से ६०७४ श्लोक-प्रमाण है।[1]

इस काव्य की कथा माणिक्यचन्द्रसूरि, सर्वानन्दसूरि आदि के पार्श्वनाथचरित में मिलती जुलती है किन्तु अवान्तर कथाओं की योजना और कथा के सर्गों में विभाजन की दृष्टि से यह काव्य अन्य पार्श्वनाथचरितों से नितान्त भिन्न है। इसमें कथा का विभाजन आठ सर्गों में किया गया है। प्रथम सर्ग में पार्श्वनाथ के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भवों का, द्वितीय सर्ग में चतुर्थ, पंचम भव का, तृतीय सर्ग में षष्ठ, सप्तम भव का और चतुर्थ सर्ग में अष्टम, नवम भव का वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग में पार्श्वनाथ के च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, कौमार तथा विजययात्रा का वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्ग में उनके विवाह, दीक्षा, केवलज्ञान, समवशरण तथा देशना का वर्णन किया गया है। सप्तम सर्ग में जिनगणधर देशना का और अष्टम सर्ग में पार्श्वनाथ के विहार एवं निर्वाण का वर्णन हुआ है। इस तरह यह काव्य विभाजन में पूर्व चरितों से पूर्णतया भिन्न है। अनेक अवान्तर कथाओं के समावेश के कारण इस काव्य का कथानक भी शिथिल है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में जो प्रशस्ति कवि ने दी है उससे ज्ञात होता है कि आचार्य कालिक के अन्वय में खण्डिल्ल नामक गच्छ के चन्द्रकुल में एक भावदेवसूरि नामक विद्वान् हुए थे। उनकी परम्परा में क्रमशः विजयसिंहसूरि, वीरसूरि और जिनदेवसूरि हुए। जिनदेवसूरि के पश्चात् पूर्वागत नाम-क्रम (भावदेव, विजयसिंह, वीर तथा जिनदेव) में शिष्य परम्परा चलती गई जिनमें से एक जिनदेवसूरि के शिष्य इस पार्श्वनाथचरित के रचयिता भावदेवसूरि हुए। उन्होंने इस चरित की रचना सं० १४१२ में पाटन नगर में की थी।[2]

---

१. ग्रन्थः सर्वाग्रमानेन प्रत्येकं वर्णसंख्यया।
चतुःसप्तत्युपेतानि षट्सहस्राण्यनुष्टुभाम्॥ प्रशस्ति, पद्य ३०.

२. तेषां विनेयः विनयी बहु भावदेवसूरिः प्रसन्नजिनदेवगुरुप्रसादात्।
श्रीपत्तनाख्यनगरे रविविश्ववर्षे (१४१२) पार्श्वप्रभोश्चरितरत्नमिदं ततान॥

पार्श्वनाथचरित नाम से कई और ग्रन्थकारों की रचनाएँ मिलती हैं। उनमें भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं शती) कृत काव्य में २३ सर्ग हैं।[1] इसकी भाषा सीधी, सरल एव अलंकारमयी है। इसमें कमठ का नाम वायुभूति दिया गया है। स० १६१५, अगहन सुदी १४ को नागौरी तपागच्छ के विद्वान् उपाध्याय पद्मसुन्दर[2] ने भी सप्तसर्गात्मक पार्श्वनाथकाव्य की रचना की थी। ये आनन्दमेरु के प्रशिष्य और पद्ममेरु के शिष्य थे। आनन्दमेरु और पद्मसुन्दर अकबर बादशाह द्वारा सम्मानित थे। स० १६३२ में तपागच्छीय कमलविजय के शिष्य हेमविजय ने ग्रन्थाग्र ३१६० प्रमाण पार्श्वनाथचरित्र[3] की रचना की। ग्रन्थ के अन्तरग अवलोकन से पता चलता है कि वह हेमचन्द्र के त्रि० श० पु० च० में दिये गये पार्श्वचरित की प्रतिलिपि मात्र है। स० १६४० कार्तिक सु० ५ को भट्टा० वादिचन्द्र ने १५०० श्लोक-प्रमाण पार्श्वपुराण की रचना वाल्मीकिनगर में की। इन्होंने पवनदूत, पार्श्वपुराण आदि कई रचनाएँ लिखी हैं। इनके गुरु का नाम भट्टा० प्रभाचन्द्र तथा दादागुरु का ज्ञानभूषण था।[4] स० १६५४ में तपागच्छीय हेमसोम के प्रशिष्य और सघवीर के शिष्य उदयवीरगणि ने ५५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण पार्श्वनाथचरित लिखा जो संस्कृत गद्य में है और उसमें आठ विभाग हैं।[5] उसी संवत् १६५४ में वैशाख शुक्ल सप्तमी गुरुवार के दिन देवगिरि (दौलताबाद) के पार्श्वनाथ मन्दिर में भट्टा० श्रीभूषण के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने भी पार्श्वपुराण की रचना की। इसमें १५ सर्ग हैं।[6] इसका प्रमाण २७१० ग्रन्थाग्र है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर प्राकृत-अपभ्रंश और देशी भाषाओं में जितनी कृतियाँ पाई जाती हैं उनकी अपेक्षा संस्कृत में स्वतत्र रचनाएँ गिनी-

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० २४६, राजस्थान के जैन सन्त, पृ० ११.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २४४; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९५–३९८.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २४५, प्रकाशित—चुन्नीलाल ग्रन्थमाला, बम्बई, स० १९७२

४. जिनरत्नकोश, पृ० २४६, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८५.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २४५, प्रकाशित—जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, स० १९७०

६. जिनरत्नकोश, पृ० २४६-४७, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९०, इसकी हस्तलिखित प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई में है।

चुनी हैं। उनमें से केवल दो का ही कुछ परिचय प्राप्त हुआ है, शेष का उल्लेख मात्र।

महावीरचरित :

यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर संस्कृत में लिखे गये स्वतन्त्र चरितों में प्राचीन है।[1] इसे अपर नाम से वर्धमानचरित्र या सन्मतिचरित्र भी कहते हैं। इसमें १८ सर्ग हैं। इस ग्रन्थ का उल्लेख धवल कवि के अपभ्रंश हरिवंशपुराण में किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों में से एक की प्रशस्ति में कहा गया है कि इसके रचयिता असग कवि हैं जिन्होंने शक सं० ९१० (वि० सं० १०४५ के लगभग) में आठ अन्य चरितों की रचना की थी। इनके लिखे चन्द्रप्रभचरित्र व शान्तिनाथचरित्र ही और उपलब्ध हैं।

वर्धमानचरित :

इसमें कुल मिलाकर २० अधिकार हैं जिनमें से प्रथम ६ सर्गों में महावीर के पूर्वभवों का और शेष १४ में गर्भकल्याण से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विस्तार से जीवनचरित्र दिया गया है। इसकी भाषा सरल एवं काव्यमय है। वर्णन-शैली प्रवाहमय है। इसका परिमाण ३०३५ श्लोक है।[2] इसके अपर नाम महावीर-पुराण एवं वर्धमानपुराण भी हैं। रचयिता सकलकीर्ति का परिचय पहले दिया जा चुका है।

महावीर के अन्य चरितकारों में पद्मनन्दि, केशव और वाणीवल्लभ की कृतियों का उल्लेख मिलता है।[3]

जैन काव्यकारों ने न केवल अपने पुरातन तीर्थंकरों के स्वतन्त्र चरित लिखे हैं बल्कि आगामी तीर्थंकरों में से एक पर काव्य भी लिखा है जिसका परिचय इस प्रकार है—

---

१. प० खूबचन्द्रकृत हिन्दी अनुवाद सहित—मूलचन्द किसनदास कापडिया, सूरत, १९१८, मराठी अनुवाद—सोलापुर, १९३१.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४३; राजस्थान के जैन सन्त, पृ० १२; नन्दलाल जैन कृत हिन्दी अनुवाद—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता।

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३४३.

अममस्वामिचरित :

इस विशाल ग्रन्थ[1] में भावितीर्थंकर अममस्वामि का चरित २० सर्गों में वर्णित है। इसमें १० हजार से अधिक पद्य हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जीव को आनेवाली उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में अमम नाम से तीर्थंकर होने की कथा वर्णित है। प्रसंगवश प्रथम छः सर्गों में जीवदया पर दामन्नककथा, उसकी शिथिलता पर क्षुद्रकमुनिकथा, उसके त्याग पर निम्नरमुनिकथा, रहस्यभेद पर काकजंघकथा, मित्रकार्य पर दृढमित्रकथा, पाण्डित्य पर सुन्दरी वसन्तसेनाकथा तथा अवान्तर में लोभनन्दी, सर्वाङ्गिल, सुमति, दुर्मति धूतकारकुन्द, कमलश्रेष्ठी, सती सुलोचना, कामाङ्कुर, ललिताङ्ग, अशोक, तज्जारिभर्तृ भार्या, दुर्गविप्रकथा, तामलि राजपुत्रकथाएँ कही गई हैं। इसके बाद हरिवंश की उत्पत्ति, उसमें मुनिसुव्रत जिनेश्वर का पूर्वभववर्णन, भृगुकच्छ में अश्वावबोधतीर्थ की उत्पत्ति, मुनिसुव्रत के वंश में इलापतिराज का वर्णन, क्षीरकदम्बक नारद-वसुराज-पर्वतकथा, नन्दिषेणकथा, कंस तथा प्रतिवासुदेव जरासंध की उत्पत्ति, वसुदेवचरित्रकथा, चारुदत्त रुद्रदत्तकथा, उसके अन्तर्गत मेघदेवकथित यज्ञपशुहिंसा का इतिहास, अथर्ववेदकर्ता पिप्पलाद की उत्पत्ति, नल-दमयन्तीकथा, कुबेरदेवपूर्वभवकथा—ये सब प्रथम ६ सर्गों के अन्तर्गत कही गई हैं। इसके बाद नेमिनाथ का जन्म, कृष्णवध, द्वारिकारचना, कृष्ण का राज्याभिषेक, रुक्मिणी का विवाह, पाण्डव-द्रौपदी-स्वयंवर, प्रद्युम्न-शाम्ब का चरित, जरासंधवधादि, राजीमतिवर्णन, नेमिनाथ की दीक्षा, द्वारिकादाह, कृष्ण की मृत्यु, पाण्डवशेषकथा, नेमिनाथ का मोक्षगमन आदि; अवसर्पिणी से उत्सर्पिणी आना, भाविजिन अमम का जन्म, बाल्यादि वयोवर्णन, विवाह-यौवराज्य, राज्याभिषेक, संमतिनृपदीक्षा, अमम-दीक्षा, केवलज्ञान, समवशरण, धर्मदेशना, सम्यक्त्व के ऊपर सूरराज की कथा, धर्म के ऊपर राजपुत्र पुष्पसार और मंत्रिपुत्र क्षेमंकर की कथा, अन्त में अममस्वामी के गणधरों का वर्णन, तत्कालीन सुन्दरबाहु वासुदेव और प्रतिवासुदेव वज्रजंघ के बाद अममस्वामी के निर्वाण का वर्णन है।

कर्ता—इस ग्रन्थ के कर्ता चन्द्रगच्छीय पूर्णिमामत प्रकट-कर्ता श्रीमान् चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धर्मघोषसूरि के शिष्य समुद्रघोषसूरि के शिष्य मुनिरत्नसूरि हैं। उन्होंने यह ग्रन्थ कोषाध्यक्षमंत्री यशोधवल के पुत्र बालकवि मंत्री जगद्देव की प्रार्थना से वि० सं० १२५२ वर्ष में पत्तननगर में लिखा था। इसका संशोधन

1. पंन्यास मणिविजय ग्रंथमाला, अहमदाबाद, वि० सं० १९९८; जिनरत्नकोश, पृ० १४.

कुमारकवि ने किया। ग्रथान्त में मुनिरत्न के शिष्य जयसिंहसूरि द्वारा लिखित ३३ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है। प्रारभ मे ग्रन्थकर्ता ने पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकर्ताओ का उल्लेख किया है यथा—जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, उमास्वाति वाचक, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र (महत्तरापुत्र), भद्रकीर्ति, सिद्धर्षि—उपमितिभवप्रपञ्चा के कर्ता, तरगवती के कर्ता पालित्तसूरि, सातवाहन के सभासद मानतुगसूरि, भोज के सभासद देवभद्रसूरि, त्रिषष्टिशलाका के कर्ता हेमचन्द्र, दर्शनशुद्धि के कर्ता चन्द्रप्रभ और तिलकमजरी के रचयिता धनपाल।

बारह चक्रवर्ती तथा अन्य शलाका पुरुषों पर स्वतंत्र रचनाएँ :

भरतेश्वराभ्युदयकाव्य—इसमें ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र एव प्रथम चक्रवर्ती भरत का उदात्तचरित वर्णित है। यह काव्य 'सिद्ध्यङ्क-महाकाव्य' भी कहलाता था।[१] इसके रचयिता महाकवि आशाधर (वि० सं० १२३७–१२९६) हैं। इनका परिचय त्रिषष्टिस्मृति के प्रसग में दिया गया है। यद्यपि यह महत्त्वपूर्ण कृति अनुपलब्ध है फिर भी इसकी सुषमा को बतलानेवाले कुछ पद्य स्वय आशाधर ने अपने ग्रन्थों की टीकाओं में उद्धृत किये हैं—

१. परमसमयसाराभ्यासानन्दसर्पत्,
सहजमहसि सायं स्वे स्वयं स्वं विदित्वा।
पुनरुदयदविद्यावैभवाः प्राणचार—
स्फुरदरुणविजृम्भा योगिनो यं स्तुवन्ति ॥[२]

२. सुधागर्वं खर्वन्त्यभिमुखहृषीकप्रणयिनः,
क्षणं ये तेऽप्यूर्ध्वं विषमपवदन्त्यंग ! विषयाः।
त एवाविर्भूय प्रतिचितधनायाः खलु तिरो—
भवन्त्यन्धास्तेभ्योऽप्यहह किमु कर्षन्ति विपदः ॥[३]

इस काव्य पर कवि ने स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखी थी।

भरत पर अन्य रचनाओं में जयशेखरसूरिकृत जैनकुमारसभव महाकाव्य[४] (लगभग १४६४ वि०स०) है जिसका वर्णन शास्त्रीय काव्यों के प्रसंग

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३४६.
२. अनगारधर्मामृत-टीका, पृ० ६३३.
३. मूलाराधना-टीका, पृ० १०६५.
४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत, १९४६.

मे किया जायगा। मुनि पुण्यकुशल ने भरत के चरित्र को लेकर 'भरतेश्वरबाहुबलिमहाकाव्य'[1] लिखा है जो अप्रकाशित है। भरतचरित्र और भरतेश्वरचरित्र नामक दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता[2] है पर उनके लेखक अज्ञात हैं।

द्वितीय चक्रवर्ती सगर के जीवन पर प्राकृत 'सगरचक्रिचरित'[3] का उल्लेख मिलता है जिसका प्रारभ 'सुरवरकयमाणं नट्ठनीसेसमाणं' से होता है। हस्तलिखित प्रति का समय स० ११९१ दिया गया है पर लेखक का नाम अज्ञात है।

तृतीय चक्रवर्ती मघवा के जीवन पर कोई स्वतंत्र चरित उपलब्ध नहीं है।

सनत्कुमारचरित (सणकुमारचरिय)—चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार के जीवन पर यह प्राकृत भाषा में बड़ी रचना है।[4] इसका परिमाण ८१२७ श्लोक-प्रमाण है। इस चरित में उक्त नायक के अद्भुत कार्यों के वर्णन-प्रसग में कहा गया है कि एक बार वह एक घोड़े पर बैठा तो वह भाग कर उसे घने जगल में ले गया जहा उसे अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा परन्तु उन सब पर वह विजय पा गया और उसी बीच उसने अनेक विद्याधर पुत्रियों से परिणय किया।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता श्रीचन्द्रसूरि हैं जो चन्द्रगच्छ मे सर्वदेवसूरि के सन्तानीय जयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य थे। प्रणेता ने अपने गुरुभाई के रूप में यशोभद्रसूरि, यशोदेवसूरि और जिनेश्वरसूरि का नाम दिया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने हरिभद्रसूरि, सिद्धमहाकवि अभयदेवसूरि, धनपाल, देवचन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, देवभद्रसूरि और मलधारी हेमचन्द्रसूरि की कृतियों का स्मरण कर उनकी गुणस्तुति की है।

श्रीचन्द्रसूरि ने उक्त ग्रन्थ की रचना अणहिलपुर (पाटन) में कर्पूर पट्टाधिप-पुत्र सोमेश्वर के घर के ऊपर भाग में स्थित वसति में रहकर वहाँ के कुटुम्ब

---

१. विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९२.

३. पाटन के ग्रन्थों की सूची (गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला), भाग १, पृ० १८२-१८३.

४. मोहनलाल द० देसाई—जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० २७७; जिनरत्नकोश, पृ० ४१२, प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया—पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० ११३.

वालों की प्रार्थना पर की थी। इसकी रचना सं० १२१४ आश्विनवदी ७ बुधवार को हुई थी। इसकी प्रथम प्रति हेमचन्द्रगणि ने लिखी थी।

सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित इतना रोचक था कि इस पर और भी रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत में २४ सर्गात्मक एक उच्चकोटि का महाकाव्य भी रचा गया है। उसके रचयिता कवि जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२-७८) हैं।[1] इसका विवेचन महाकाव्यों के प्रसग मे किया जायगा। अपभ्रंश भाषा मे नेमिनाहचरिउ के अन्तर्गत हरिभद्रसूरि ने रड्डा छन्दों मे सनत्कुमार का चरित्र बड़े विस्तार से दिया है, जिसका सम्पादन और अनुवाद (जर्मनभाषा में) प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी ने किया है।[2] संस्कृत भाषा में सनत्कुमार-चरित्र[3] नामक एक अज्ञात कवि की रचना भी जेसलमेर के भण्डार में मिली है।

पाँचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ हैं जो सोलहवें, सत्तरहवें और अठारहवें तीर्थंकर भी हैं। तीर्थंकर-चरित्रों में इनके सम्बंध की रचनाओं का परिचय दिया गया है।

सुभौमचरित—इसमें आठवें चक्रवर्ती सुभौम का चरित्र वर्णित है। यह साधारण कोटि की रचना है जो ७ सर्गों मे विभक्त है।[4] सब मिलाकर ८९१ श्लोक हैं। प्रत्येक सर्ग में 'उक्त च' कहकर अन्य ग्रन्थों से अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं। इस चरित्र में कवि ने कथाप्रसग से अभिमान करने का फल, निदान-फल, अति लोभ का फल और नमस्कार मन्त्र का माहात्म्य दिखलाया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक रत्नचन्द्र प्रथम हैं। ग्रन्थ के अन्त मे एक प्रशस्तिद्वारा इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है। तदनुसार भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा में भुवनकीर्ति, उनके शिष्य रत्नकीर्ति, उनके शिष्य यशःकीर्ति, उनके गुणचन्द्र और उनके जिनचन्द्र तथा उनके सकलचन्द्र हुए। सकलचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र थे। ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ के भट्टारक थे। काव्य-रचना का काल सं० १६८३ भाद्र० शु० ५ दिया गया है। इनकी अन्य रचना 'चौबीसी' गुजराती में है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२.

२. वही.

३. वही.

४. दिग० जैन पुस्तकालय, सूरत, वि० सं० २०१०, मूल और पं० लालाराम शास्त्रीकृत हिन्दी अनुवाद, जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

पण्डित जगन्नाथकृत 'सुभौमचरित्र'[1] नामक एक अन्य रचना का उल्लेख मिलता है।

नवम चक्रवर्ती महापद्म के चरित्र का वर्णन करनेवाली किसी कृति का उल्लेख नहीं मिलता पर दशम हरिषेण पर प्राकृत में हरिषेणचरित्र[2] का उल्लेख मिलता है। इसी तरह एकादशम चक्रवर्ती पर प्राकृत में जयचक्रीचरित्र[3] का उल्लेख मिलता है। बारहवें चक्रवर्ती पर ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिकथानक या ब्रह्मदत्त-कथा[4] नामक रचना का भी उल्लेख आया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्र) के ९वें पर्व में भी विस्तार से बारहवें चक्रवर्ती का चरित वर्णित है जिसका नाम ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिकथानक है।[5]

नव अर्धचक्रवर्ती या ९ वासुदेवों पर केवल कृष्ण को छोड़ अन्य किसी पर कोई रचना स्वतत्र रूप से नहीं मिलती।

कृष्णचरित (कण्हचरिय)—यह चरित श्राद्धदिनकृत्य नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत दृष्टान्तरूप में आया है। वहीं से उद्धृत कर स्वतंत्र रूप में प्रकाशित किया गया है।[6] इसमें ११६३ प्राकृत गाथाएँ हैं। इसमें वसुदेवचरित, कंस-चरित, चारुदत्तचरित, कृष्ण-बलरामचरित, राजीमतीचरित, नेमिनाथ-चरित, द्रौपदीहरण, द्वारिकादाह, बलदेव दीक्षा, नेमि-निर्वाण और बाद में कृष्ण के भावितीर्थंकर—अमम नाम से होने का वर्णन किया गया है। समस्त कथा का आधार वसुदेवहिण्डी एव जिनसेनकृत हरिवंशपुराण है। यह रचना आदि से अन्त तक कथाप्रधान है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं। इनकी अन्य रचना सुदसणाचरिय अर्थात् शकुनिकाविहार भी मिलती है जिसमें ग्रन्थ-कार ने अपना परिचय दिया है कि वे चित्रापालकगच्छ के भुवनचन्द्र गुरु, उनके शिष्य देवभद्र मुनि, उनके शिष्य जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य थे। उनके एक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

२ वही, पृ० ४६०.

३. वही, पृ० १३३.

४. वही, पृ० २८६.

५. वही

६. ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९३८.

गुरुभ्राता विनयचन्द्रसूरि थे। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार ग्रन्थकार के दादा-गुरु वस्तुपाल महामात्य के समकालीन थे। प्रस्तुत कृष्णचरित्र का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध आता है।

नव प्रतिवासुदेवों के चरित पर कोई पृथक् काव्य नहीं लिखे गये। इसी तरह ९ बलदेवों मे राम और बलभद्र को छोड़ अन्य पर कोई काव्य नहीं लिखे गये। राम से सम्बधित रचनाओं का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। बलभद्रचरित्र[1] पर काव्य शुभवर्धनगणि का है जो प्रकाशित हो चुका है।

जैनधर्म के २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ अर्धचक्रवर्ती (नारायण), ९ प्रति-अर्धचक्रवर्ती (प्रतिनारायण) और ९ बलदेव मिलाकर ६३ शलाका पुरुषों के अतिरिक्त २४ कामदेव (अतिशय रूपवान) हैं जिनमें से कुछ के चरित्र तो जैन कवियों को बड़े ही रोचक लगे हैं और जिन पर कई काव्य कृतिया लिखी गई हैं।[2]

२४ कामदेव इस प्रकार हैं—बाहुबलि, प्रजापति, श्रीभद्र, दर्शनभद्र, प्रसेन-चन्द्र, चन्द्रवर्ण, अग्निमुख, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघप्रभ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, विजयचन्द्र, श्रीचन्द्र, नलराजा, हनुमान, बलिराज, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, जीवन्धर और जम्बू। इनमे सनत्कुमार का चरित्र चक्र-वर्तियों के प्रसग में दिया गया है। शान्ति, कुन्थु और अर तीर्थंकरों के अन्तर्गत आते हैं। शेष में बाहुबलि, विजयचन्द्र, श्रीचन्द्र, नलराज, हनुमान, बलिराज, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, जीवन्धर और जम्बू के चरित्रों पर जैन कवियों ने अपनी बहुविध लेखनी चलाई है। यहाँ एतद्विषयक उपलब्ध काव्यों का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

बाहुबलि के जीवन-चरित्र को ऋषभदेव या भरतचक्रवर्ती के चरित्रों के साथ ही सम्बद्ध समझा जाता है और उनके साथ ही वर्णित किया जाता है पर 'बाहुबलिचरित्र' नाम से दो स्वतत्र रचनाओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम का

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२.
२. कामदेवो के जीवन की विशेषता यह है कि वह अनेकों आकर्षणों से भरा रहता है। इसमें मानव की दुर्बलताओं और उसके उत्थान-पतन का चित्रण दिखाया जाता है। सभी कामदेव चरमशरीरी (उसी जन्म से मोक्ष जानेवाले) होते हैं।

ग्रन्थाग्र ५०० है,[1] वह संस्कृत में है पर उसके कर्ता का नाम अज्ञात है। दूसरी भी संस्कृत मे है और इसके कर्ता का नाम चारुकीर्ति है।[2]

विजयचन्द्रचरित—इसमें १५ वें कामदेव विजयचन्द्र केवली का चरित्र वर्णित है।[3] इसे हरिचन्द्रकथा भी कहते हैं क्योंकि इसमें विजयचन्द्र केवली ने अपने पुत्र हरिचन्द्र के लिए अष्टविध पूजा जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप, नैवेद्य और फल का माहात्म्य आठ कथाओं द्वारा बतलाया है। इस ग्रन्थ के दो रूपान्तर मिलते हैं। लघु का ग्रन्थाग्र १३०० है और बृहत् का ग्रन्थाग्र ४००० (११६३ गाथाएँ)। ये दोनो प्राकृत में लिखे गये हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता खरतरगच्छीय अभयदेवसूरि के शिष्य चन्द्रप्रभ महत्तर हैं। उन्होंने अपने शिष्य वीरदेव की प्रार्थना पर वि० स० ११२७ में इसकी रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में दी गई निम्न प्रशस्ति से यह बात ज्ञात होती है: मुणिकमरुद्दक (११२७) जुए काले सिरि-विक्कमस्स वट्टन्ते रइयं फुडक्खरत्थं चंदप्पहमहयरेणेयं।

स्व० दलाल ने चन्द्रप्रभ महत्तर को अमृतदेवसूरि (निवृत्तिवंश) का शिष्य माना है जो 'जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला' में प्रकाशित प्रति से खण्डित होता है।[4]

विजयचन्द्रकेवलिचरित्र पर जयसूरि और हेमरत्नसूरि एवं अज्ञात लेखक की रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है पर उनका ग्रन्थ-परिमाण और रचनाकाल ज्ञात नहीं है।[5]

श्रीचन्द्रकेवलिचरित—इसमें १६ वें कामदेव श्रीचन्द्र का चरित्र निबद्ध है।[6] यह कथा आचाम्लवर्धनतप के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए रची

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८३.

२. वही.

३. जैनधर्म प्रसारक सभा, ग्रन्थ सं० १६, भावनगर, १९०६; केशवलाल प्रेमचन्द्र कसारा, खंभात, वि० सं० २००७; गुजराती अनुवाद—जै० प्र० स० भावनगर, वि० सं० १९६२; जिनरत्नकोश, पृ० ३५४.

४. हीरालाल र० कापडिया—पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० १११.

५ जिनरत्नकोश, पृ० ३५४.

६. कुंवरजी आणदजी, भावनगर, वि० सं० १९९२.

गई है। इसमें चार अध्याय हैं जिनमें कुल मिलाकर २१०६ श्लोक हैं। यह प्रसादपूर्ण एक संस्कृत काव्य है। इसमें जन्मकाल से सौतेले भाइयों के डाह के कारण श्रीचन्द्र का माता-पिता से वियुक्त होकर एक वणिक् के घर में पालन, युवा होने पर देश-देशान्तरों में भ्रमण, अनेक रूपवती कन्याओं से विवाह, अनेकों अद्भुत कार्यों का प्रदर्शन तथा अन्त में अपने माता-पिता से भेंट, साम्राज्य-पालन आदि का वर्णन तथा उसकी तपस्या का निरूपण किया गया है। बीच-बीच में अनेक प्राकृत पद्य उद्धृत किये गए हैं। इस ग्रन्थ का आधार कोई प्राचीन प्राकृत कृति है।[1]

रचयिता और रचनाकाल— ग्रन्थ के अन्त में दिये गये निम्न पद्य से ज्ञात होता है कि सं० ५९८ में सिद्धर्षि ने किसी प्राकृत चरित्र के आधार से इसे संस्कृत में बनाया है :

वस्वंकेपुमिते वर्षे (५९८), श्रीसिद्धर्षिरिदं महत्।
प्राक् प्राकृतचरित्राद्धि, चरित्रं संस्कृतं व्यवधात् ॥ ९५९ ॥[2]

पर यह इतनी प्राचीन रचना नहीं मालूम होती। इस ग्रन्थ की एक अन्य प्रति में इसे गुणरत्नसूरि की कृति कहा गया है। हमें गुणरत्नसूरि का विशेष परिचय नहीं मिलता। यदि यह प्रसिद्ध कृति 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' के कर्ता सिद्धर्षि द्वारा रचित है तो इसका उपरिनिर्दिष्ट समय ठीक नहीं। सिद्धर्षि (९०६ ई०) दसवें शतक के विद्वान् थे।[2] इस रचना में 'उपमितिभवप्रपञ्चा' जैसी उदात्तता भी नहीं।

श्रीचन्द्रचरित्रनामक दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। एक के कर्ता अज्ञात हैं और दूसरे के कर्ता शीलसिंहगणि हैं जो आगमगच्छ के जया-

---

१. चतुर्थ अध्याय; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८६.

२. उक्त श्लोक में अंकित सं० ५९८ को, डा० मिरोनो (Mironow) ने अपने सन् १९११ में सिद्धर्षि पर लिखे गये निबन्ध में, गुप्त संवत् माना है। इससे वि० सं० ९७४ और ई० सन् ९१७ आता है और इस तरह इसकी उपमितिभवप्रपंचाकथा की रचना (सं० ९६२) से समकालिकता बैठती है। पर गुप्त संवत् का इतने परवर्ती काल तक प्रयोग अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इसलिए सिद्धर्षिकृत रचना मानना संदेहास्पद है।

नन्दसूरि के शिष्य थे। इसमें चार अध्याय हैं। ग्रन्थाग्र २७०० श्लोक-प्रमाण है। रचनाकाल सं० १४९४ है।[1]

सत्तरहवें कामदेव नल पर जैन कवियों ने सस्कृत और प्राकृत में अनेक काव्य, कथाएँ और प्रबध लिखे हैं। उनमें अनेक तो बड़े-बड़े ग्रन्थों के अन्तर्गत हैं और कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ भी हैं, जिनमें प्रमुख और महत्त्वपूर्ण काव्य नलायनम् है।

नलायन—इस काव्य में १७ वे कामदेव नल और उनकी पतिव्रता पत्नी दमयन्ती का चरित जैन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।[2] यह 'नव मगल' शब्दाङ्कित महाकाव्य है। इसकी रचना दश स्कन्धों में की गई है जिनमें कुल मिलाकर १०० सर्ग और ४०५६ पद्य हैं। नलायन के दूसरे नाम 'कुबेरपुराण' और 'शुकपाठ' भी हैं। कवि ने नल के जन्म से लेकर मृत्यु तक पूरा विवरण दिया है, इससे काव्य बहुत विस्तृत हो गया है। इस काव्य की कथा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में नल के जन्म से लेकर दमयन्ती से विवाह और उसे लेकर निषध देश में आने तक, द्वितीय भाग में नल की द्यूत-क्रीड़ा से लेकर दमयन्ती की पुनः प्राप्ति तक तथा तृतीय भाग मे नल के श्राद्ध-धर्म स्वीकार करने से लेकर मृत्यु के पश्चात् कुबेर बनने तक कथा आती है। प्रथम स्कन्ध से लेकर तृतीय स्कन्ध तक प्रथम भाग की कथा वर्णित है। चतुर्थ से आठ तक के स्कन्धों में द्वितीय भाग की और नवम-दशम में तृतीय भाग की कथा वर्णित है।

नलायनम् का कथानक जैनचरित ग्रन्थों मे उपलब्ध आख्यानों पर आधारित है अतः व्यासकृत 'महाभारत' में उपलब्ध नलोपाख्यान से तुलना करने पर उसमें अनेक स्थलों पर परिवर्तन किया गया दृष्टिगोचर होता है। पर यह कवि ने स्वय नहीं किया। उसने जैन परम्परागत नल-चरित की मूल कथा को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। फिर भी काव्य के अनेक अशों में कवि की मौलिकता एवं काव्य-कुशलता झलकती है। हंस-भैमी संवाद, देवदूत-नल-भैमी संवाद, नल के विरह में दमयन्ती का विलाप आदि प्रसगों में पर्याप्त मौलिकता है। देवदूत, नल और दमयन्ती के बीच हुए वार्तालाप एव सवाद मे श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित का

१. जिनरत्नकोश, पृ० २९६.

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वि० सं० १९९४; जिनरत्नकोश, पृ० २०५.

प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस प्रसंग में अनेक भावसाम्य और शब्दसाम्य दिखाई पड़ते हैं। इस नलायनकाव्य में १२ वर्ष पर्यन्त नल-दमयन्ती के वियोग का वर्णन अत्यद्भुत है। जुए में आसक्ति रखनेवाले लोगों की जो-जो दुर्दशा या परिवर्तन होते हैं वे बड़े रोमांचकारी हैं। प्रसंग-प्रसंग पर अनेक चमत्कारी घटनाओं का वर्णन है। इसी ग्रन्थ में शकुन्तला, कलावती और तिलकमंजरी की अवान्तर कथाएँ भी द्रष्टव्य हैं।

इस बृहत् कथा में अनेक पात्र हैं किन्तु नल और दमयन्ती को छोड़ अन्य किसी पात्र के चरित्र का विकास नहीं हुआ है। इसमें नायक नल का चरित्र बड़ा ही भव्य चित्रित किया गया है।[१] नायिका दमयन्ती का भी पतिपरायणा भारतीय नारी के रूप में उत्कृष्ट चित्रण किया गया है।[२] इस काव्य में प्रकृति-चित्रण भी विभिन्न रूपों में हुआ है। नलायन की श्रेष्ठता का बहुत बड़ा श्रेय प्रकृति और जीवन के बीच तादात्म्य स्थापित करने में है। पात्रों के सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने दमयन्ती के सौन्दर्य-वर्णन में नखशिखपद्धति का अवलम्बन लिया है तथा नल के समग्र सौन्दर्य का संश्लिष्ट चित्रण किया है। इस परम्परागत कथानक में कवि ने अपने समय की रूढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों का यत्र-तत्र उल्लेख कर सामाजिक अध्ययन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है।[३]

पौराणिक काव्य होने पर भी इसमें अन्य दूसरे पौराणिक काव्यों की तरह जैनधर्म के सिद्धान्तों और नियमों का बाहुल्य नहीं है। इसमें धार्मिक नियमों का विवेचन कहीं भी क्रमिक रूप में न देकर यत्र-तत्र इतने संक्षिप्त रूप में दिया है[४] कि उससे कथानक में कोई शिथिलता नहीं आने पाई है।

इस काव्य में शान्त रस की ही प्रधानता है, शेष सभी रसों की भी सुन्दर योजना यथास्थान हुई है। अलंकारों में शब्दालंकार के यमक, अनुप्रास और वीप्सा का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है।[५] इसमें पाण्डित्यप्रदर्शन करने के लिए

१. स्कन्ध २, सर्ग ४. ४-५, सर्ग ८. ४४-४०, स्कन्ध १, सर्ग २. ३०-३१, ३७–३९, सर्ग १२. १४-१५ आदि।

२. स्कन्ध २, सर्ग १४. ३०-३१; स्कन्ध ५, सर्ग २१. ६८, सर्ग ७. २

३. स्कन्ध २, सर्ग ९. ८; स्कन्ध ३, सर्ग ९. २२, २७, ३४–३६; स्कन्ध ४, सर्ग १. ७, ८, १०, सर्ग ६. ६५–६७, ७२-७३.

४. स्कन्ध ४, सर्ग ५. ५१-५२; स्कन्ध ५, सर्ग ५. १८.

५. स्कन्ध १, सर्ग १४. ४९, सर्ग ७. २२, ३८; स्क० ३, सर्ग ११. १३; स्क० ४, सर्ग ४. ३०–३३.

क्लिष्ट, कृत्रिम-और श्लेषयुक्त पदावली का प्रयोग किया गया है। अर्थालंकारों के प्रयोग मे कवि ने स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है।[1]

इसकी भाषा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर इसमें सरल भाषा का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर प्रौढ एवं पाण्डित्यपूर्ण भाषा का। फिर भी कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। भाषा जैसे उसके सकेत पर नाचती है। इस काव्य की भाषा का एक अन्य प्रधान गुण उसकी अलकृति है। इसमें अनुप्रास और यमक का प्रयोग पद-पद पर मिलता है। ये अलकार भाषा के भाररूप बनकर नहीं आये बल्कि भाषा-सौन्दर्य के वृद्धिकारक हैं। अनुप्रास और यमक के प्रयोग ने इस काव्य की भाषा को प्रवाहयुक्त, गतिमय, चचल और ललित बना दिया है। इस काव्य में यत्र-तत्र मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है[2] जिससे भाषा की व्यावहारिकता बढ़ी है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग अधिक हुआ है। कतिपय सर्गों मे विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है, इसमे छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। अन्य छन्दों में मालिनी, आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, हरिणी, रथोद्धता, स्वागता, पुष्पिताग्रा, मजुभाषिणी, स्रग्धरा, भृग, तोटक, भुजंगप्रयात, वंशस्थ, स्रग्विणी, हरिणप्लुता तथा कई प्रकार के अर्धसम वर्णिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। सवैया और षट्पदी जैसे सस्कृतेतर छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। इससे कवि का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। फिर भी प्रत्येक स्कन्ध के अन्त मे जो प्रशस्ति दी गई है उसमें कवि ने अपना और अपने गच्छ का नाम दिया है।[3] इससे ज्ञात होता है कि वटगच्छीय सूरि माणिक्यदेव ने इसकी रचना की है।

---

१. स्क० १, सर्ग १ ३१, ३९, ४०, ४९, स्क० २, सर्ग ५. ३३, स्क० ३, सर्ग ९. १४, १६, स्क० ४, सर्ग ६. १६, स्क० ५, सर्ग ४. ३-४; स्क० ७, सर्ग ५. ४२ आदि.

२. स्क० ४, सर्ग ३ ४, सर्ग ६ ५१, सर्ग ९. ४४, सर्ग १२. ४०.

३. एतत् किमप्यनवम नवमगलाङ्कं माणिक्यदेवमुनिना कृतिनां कृतं यत्।
—प्रथम स्कन्ध.

एतत् किमप्यनवमं नवमंगलाङ्कं चक्रे यदत्र वटगच्छनभोमृगाङ्कः।
—द्वितीय स्कन्ध.

कवि ने इसकी रचना कब की यह जानने का विशेष साधन नहीं है फिर भी कवि के काल पर प्रकाश डालनेवाले कुछ सूत्र हमें मिलते हैं। नलायन के तृतीय स्कन्ध के अन्तिम पद्य से ज्ञात होता है कि कवि ने इस काव्य से पहले यशोधरचरित्र काव्य की रचना की थी।[1] दोनों काव्यों में कुछ पद्य समान रूप में मिलते हैं।[2] यशोधरचरित्र के प्रारम्भ में मगलाचरण का निम्नाकित पद्य हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' से उद्धृत मालूम होता है। यथा—

करामलकवद्विश्वं कलयन् केवलश्रिया।
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ॥[3]

चूकि हेमचन्द्र का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी है अतः माणिक्यसूरि का समय इसके बाद होना चाहिए।

'जैन प्रतिमालेखसंग्रह' मे शामिल दो लेखो[4] के आधार से यह कहा जा सकता है कि माणिक्यसूरि स० १३२७ से सं० १३७५ के मध्य जीवित थे। स० १३२७ मे उन्होंने महावीर-प्रतिमा की और १३७५ में पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई थी। इस काल के बीच कभी भी उन्होंने अपने दोनो महाकाव्यों की रचना की होगी, ऐसा हम मान सकते हैं। नलायन-काव्य के अन्य स्कन्धो की प्रशस्तियों मे माणिक्यसूरि की कुछ अन्य रचनाओं के नाम भी आये हैं। यथा—१. अनुभवसारविधि, २. मुनिचरित, ३. मनाहर-चरित, ४. पचनाटक। पर इन ग्रन्थों की अबतक खोज नहीं हुई है।

नल के विषय में जैन विद्वानों की संस्कृत-प्राकृत में अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं—

१. नलविलास नाटक—रामचन्द्रसूरिकृत।
२. नलचरित—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितान्तर्गत।

---

१. एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्क श्रीमद्यशोधरचरित्रकृता कृतं यत्।—तृतीयस्कन्ध.

२. स्क० ९, सर्ग २, श्लोक ८ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग २, श्लोक ३३; स्कन्ध ९, सर्ग २, श्लोक २६ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग २, श्लोक ३४; स्क. ५, सर्ग १, श्लो० २९ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग १३, श्लो० ७८.

३. त्रि० श० पु० च०, पर्व ३.११.

४. बुद्धिसागरसूरि—जैन प्रतिमालेखसग्रह, प्रथम भाग, लेख सं० १३७ और ९८१.

३. नलचरित—धर्मदासगणिविरचित वसुदेवहिण्डी-अन्तर्गत ।
४. नलोपाख्यान—देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवचरितान्तर्गत ।
५. नलचरित—देवविजयगणिविरचित पाण्डवचरितान्तर्गत ।
६. नलचरित—गुणविजयगणिविरचित नेमिनाथचरितान्तर्गत ।
७. दवयतीचरित—सोमप्रभाचार्यविरचित कुमारपालप्रतिबोधान्तर्गत ।
८. दवयन्तीकथा—सोमतिलकसूरिविरचित शीलोपदेशमालावृत्ति में ।
९. दवयन्तीकथा—जिनसागरसूरिविरचित कर्पूरप्रकरटीका में ।
१०. दवयन्तीकथा—शुभशीलगणिविरचित भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में ।
११. दवयन्तीप्रबन्ध—(गद्यरूप) ।[१]
१२. „ „ —(पद्यरूप) जैन ग्रन्थावली ।
१३. दवयतीचरिय[२]—पत्तनभाण्डार प्राकृत-सूचीपत्र ।

हनूमान्चरित—चौबीस कामदेवों में हनुमान १८ वे हैं। रामचरित्र काव्यों में इनका चरित्र अच्छी तरह दिया गया है। फिर भी इनके चरित का अवलम्बन लेकर जैन कवियों ने स्वतत्र काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से सस्कृत में १७वीं शताब्दी के विद्वान् ब्रह्मअजित ने १२ सर्ग में एक हनूमच्चरित्र की रचना की है।[३] इसे अजनाचरित या समीरणवृत्त भी कहते हैं। यह अपने समय का लोकप्रिय काव्य रहा है।

रचयिता एवं रचनाकाल—ब्रह्मअजित सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। ये गोल-श्रृगार जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह एवं माता का नाम पीथा था। ये भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एव भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे। इन्होंने भृगुकच्छपुर (भड़ौच) के नेमिनाथ चैत्यालय में हनूमच्चरित की समाप्ति की थी। रचना-सवत् नहीं दिया गया है।

अन्य हनूमच्चरित्रों में १५वीं शताब्दी के ब्रह्मजिनदास का गुजराती में है और रविषेण तथा ब्रह्मदयाल के हनूमच्चरित्र भी शायद देशी भाषाओं में हैं। हनूमान् की माता अंजना के नाम पर भी कई चरित लिखे गये हैं जिनका परिचय अलग दिया जायगा।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १६६
२. वही.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९, डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल—राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १९५.

बलिराजचरित—इसमें १९वें कामदेव का चरित्र वर्णित है। इसे बलिनरेन्द्र-कथानक या बलिनरेंद्राख्यान भी कहते हैं। इसका अपर नाम भुवनभानुकेवलि-चरित्र भी है। इस पर अनेकों कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत में एतद्विषयक मलधारी हेमचन्द्र तथा हरिभद्रसूरिकृत काव्यों[1] का उल्लेख मिलता है। अन्य लेखकों में विजयसिंहसूरि के शिष्य उदयविजय तथा मलधारीगच्छ के विजयचन्द्रसूरि की रचनाओं का भी निर्देश मिलता है।[2] इन सबका रचनाकाल अज्ञात है। बलिनरेन्द्रकथानक नामक संस्कृत गद्य में उपलब्ध काव्य[3] के रचयिता तपागच्छीय धर्महंसगणि के शिष्य इन्द्रहंसगणि हैं जिसे उन्होंने संवत् १५५४ में रचा था। इन्हीं इन्द्रहंसगणि ने सं० १५५७ में इस चरित्र[4] को प्राकृत भाषा में निबद्ध किया था। यही चरित्र[5] हीरकलशगणि ने सं० १५७२ में रचा है। दो अन्य रचनाएँ अज्ञातकर्तृक भी मिलती हैं।

वसुदेवचरित—कृष्ण के पिता वसुदेव जैन मान्यतानुसार २० वें कामदेव थे। उनका चरित जैन साहित्य में बड़े रोचक और व्यापक रूप से वर्णित है। इस संबंध में सर्वप्रथम ज्ञात रचना भद्रबाहुकृत वसुदेवचरित्र[6] है जो अब तक अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख देवचन्द्रसूरि तथा माणिक्यचन्द्रसूरि के शान्तिनाथ-चरित्र में किया गया है।

वसुदेवहिण्डी—इसका अर्थ वसुदेव की यात्राएँ है। वसुदेवहिंडी[7] में वसुदेव के घर छोड़ कर बाहर घूमने की कथाएँ दी गई हैं। अपनी यात्राओं में वसुदेव

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८२ और २९८.

२. वही, पृ० २९८.

३. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१९.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २९८.

५. वही.

६. पाटन ग्रन्थ सूचीपत्र, भाग १ (गायकवाड ओरियण्टल सिरीज सं० ७६), पृ० २०४; जिनरत्नकोश, पृ० ३४४.

७. सम्पादक—मुनि पुण्यविजय जी, आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, १९३१; गुजराती अनुवाद—डा० भोगीलाल ज० सांडेसरा, आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वि० सं० २००३; जिनरत्नकोश, पृ० ३४४; इस ग्रन्थ का अभी तक केवल प्रथम खण्ड ही प्रकाश में आया है। इसमें भी १९-२० वें लम्भक अनुपलब्ध है तथा २८वां अपूर्ण है।

को कैसे कैसे लोगों से मिलने का अवसर मिला, कैसे-कैसे अनुभव उसको हुए यह सब्र वसुदेवहिण्डी में है।

समस्त ग्रन्थ सौ लम्भकों में पूर्ण हुआ है जो विशाल दो खण्डों मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे २९ लम्भक हैं और उसका परिमाण ११ हजार श्लोक-प्रमाण है। इस खण्ड के कर्ता संघदासगणि वाचक हैं। दूसरे खण्ड में ७१ लम्भक हैं जो १७ हजार श्लोक-प्रमाण हैं और इसके कर्ता धर्मदासगणि हैं। वास्तव मे देखा जाय तो धर्मदासगणि ने अपने ७१ लम्भकों के सन्दर्भ को प्रथम खण्ड के १८ वें लम्भक की कथा प्रियङगुसुन्दरी के साथ जोड़ा है या एक तरह से वहाँ से कथा का विस्तार किया है और इस प्रकार से सघदास की वसुदेवहिण्डी (प्रथम खण्ड) के पेट में अपने अश को भरने का यत्न किया है। भाव यह है कि सघदास-गणि का २९ लम्भकोंवाला ग्रन्थ स्वतत्र तथा अपने मे परिपूर्ण था। पीछे धर्म-दासगणि ने अपने ग्रन्थ को निर्मित कर उक्त ग्रन्थ के मध्यम अश (१८ वें लम्भक) से जोड़ दिया है।

कथा का विभाजन छः प्रकरणों में किया गया है—कहुप्पत्ति (कथोत्पत्ति), पीढिया (पीठिका), मुह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसंहार (उपसंहार)। प्रथम कथोत्पत्ति मे जम्बूस्वामिचरित, कुबेरदत्त-चरित, महेश्वरदत्त-आख्यान, वल्कलचीरि-प्रसन्नचन्द्रआख्यान, ब्राह्मणदारक-कथा, अणाढियदेवोत्पत्ति आदि का वर्णन कर अन्त में वसुदेवचरित्र की उत्पत्ति बताई गई है।

प्रथम प्रकरण के अनन्तर ५० पृष्ठों का एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण धम्मिल्ल-हिण्डी नाम से आता है। इसमें धम्मिल्ल नामक किसी सार्थवाह पुत्र की कथा दी गई है जो देश-देशान्तरों में भ्रमण कर ३२ कन्याओं से विवाह करता है। इस प्रकरण का वातावरण सार्थवाहों की दुनियाँ से व्याप्त है। इसी प्रकरण में शीलवती, धनश्री, विमलसेना, ग्रामीण गाड़ीवान, वसुदत्ताख्यान, रिपुदमन नरपति-आख्यान तथा कृतघ्न वायस आदि सुन्दर लौकिक आख्यान और कथाएँ मिलती हैं। भारत की प्राचीन सस्कृति जानने के लिए धम्मिल्लहिंडी प्रकरण का बड़ा महत्त्व है।

उक्त प्रकरण के बाद द्वितीय प्रकरण पीठिका आती है, जिसमें प्रद्युम्न और शम्बुकुमार की कथा, बलराम-कृष्ण की पट्टरानियों का परिचय, प्रद्युम्नकुमार का जन्म और उसका अपहरण आदि प्रद्युम्नचरित दिया गया है।

तृतीय प्रकरण मुख में कृष्ण के पुत्र शम्ब और भानु की क्रीडाओं का वर्णन है। यह अनेकविध सुभाषितों से भरा हुआ है।

चतुर्थ प्रकरण प्रतिमुख में अन्धकवृष्णि का परिचय और उसके पूर्वभवों का वर्णन किया गया है। अन्धकवृष्णि के पुत्रों में ज्येष्ठ समुद्रविजय था और कनिष्ठ वसुदेव। वसुदेव की आत्मकथा प्रद्युम्न के व्यङ्ग करने पर प्रारम्भ होती है। प्रसग यह है कि सत्यभामा के पुत्र सुभानु के विवाह के लिए १०८ कन्याएँ एकत्र की गईं किन्तु उन्हें छीनकर रुक्मिणीपुत्र शाम्ब ने विवाह किया। इस पर प्रद्युम्न ने अपने बाबा वसुदेव से कहा—देखिये! शाम्ब ने बैठे-बैठाये १०८ वधुएँ प्राप्त करलीं और आप सौ वर्षों तक भ्रमण कर सौ मणियों को ही प्राप्त कर सके! वसुदेव ने उत्तर दिया कि शाम्ब तो कूपमण्डूक है जो सरलता से प्राप्त भोगों से सन्तुष्ट हो जाता है। मैंने तो पर्यटन करके अनेक सुख-दुःखों का अनुभव किया है। पर्यटन से नाना प्रकार के अनुभव तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। इसके बाद वसुदेव अपने १०० वर्षों के भ्रमण का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

पचम प्रकरण शरीर प्रथम लम्भक से प्रारंभ होकर २९ वें लम्भक में समाप्त होता है। इसमें जिस कन्या से विवाह होता उसी के नाम से लम्भकों के नाम दिये गये हैं। इन लम्भकों के कथा-प्रसंगों में जैन पुराणों में समागत अनेक उपाख्यान, चरित, अर्ध ऐतिहासिक वृत्तों का सकलन किया गया है जो पश्चाद्वर्ती अनेकों काव्यों-कथाओं का उपजीव्य है। उदाहरण के लिए गन्धर्वदत्ता लम्भक में विष्णुकुमारचरित, चारुदत्तचरित तथा पुराने जमाने में हमारे देश में सार्थ (काफिले) कैसे चलते थे और व्यापारी माल लाद कर समुद्र मार्ग से देश-विदेश अर्थात् चीन, सुवर्ण भूमि, यवद्वीप, सिंहल, बर्बर और यवन देश के साथ कैसे व्यापार करते थे आदि का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। इसी गन्धर्वदत्ता लम्भक मे अथर्ववेद-प्रणेता पिप्पलाद की कथा दी गई है। नीलजलसा तथा सोमसिरि इन दो लम्भकों में पूरा ऋषभदेवपुराण दिया गया है। इसी मे पर्वत-नारद-वसु उपाख्यान भी दिया गया है। यहीं कई तीर्थों की उत्पत्ति-कथा भी दी गई है।

सातवे लम्भक के पश्चात् प्रथम खण्ड का द्वितीय अश प्रारभ होता है। मदनवेगा लम्भक में सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा तथा रामायण की कथा दी गई है। यहाँ वर्णित रामकथा पउमचरिय की रामकथा से कई बातों में भिन्न है।[1]

---

१. जरनल ऑफ ओरियण्टल इंस्टिट्यूट, बडौदा, जिल्द २, भाग २, पृ० १२८ में प्रो० वी० एम० कुलकर्णी का लेख—'वसुदेवहिण्डी की रामकथा'।

यह वाल्मीकि-रामयण से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। सीता के सम्बंध में कहा गया है कि वह मन्दोदरी की पुत्री थी। उसे एक पेटिका में रख कर राजा जनक की उद्यानभूमि में गड़वा दिया था, जहाँ से हल चलाते समय उसकी प्राप्ति हुई थी। १८ वें प्रियगुसुन्दरीलभक में सगरपुत्रों के कैलाशपर्वत के चारों ओर खाई खोदने पर भस्म होने की कथा भी वर्णित है। १९-२० लभक नष्ट हो गये है। इसके बाद केतुमतीलभक में शान्ति, कुन्थु, अरह तीर्थंकरों के चरित तथा त्रिपृष्ट आदि नारायण-प्रतिनारायणों के चरित्र भी दिये गये हैं। पद्मावती-लम्भक में हरिवश कुल की उत्पत्ति भी दिखलाई गई है। देवकीलंमक में कस के पूर्व-भवों का भी वर्णन दिया गया है।

इस तरह वसुदेवहिण्डी में अनेक आख्यान, चरित, अर्ध ऐतिहासिक वृत्त आये हैं जिन्हें उत्तरकालीन प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश कवियों ने पल्लवित कर अनेक काव्यों की रचना की है। यह ग्रन्थ हरिभद्र के समराइच्चकहा का भी स्रोत है। यहीं से अगड़दत्त के चरित को विकसित किया गया है। जम्बू-चरितों के स्रोत यहीं प्राप्त होते हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के दोनों खण्डों के दो रचयिता हैं। पहले के सघदासगणि वाचक हैं और दूसरे के धर्मदासगणि। पर इनके जीवनवृत्त और अन्य कृतियों के सम्बन्ध में कुछ परिचय नहीं मिलता। यह कथा आगमेतर साहित्य में प्राचीनतम गिनी जाती है। आवश्यकचूर्णि के कर्ता जिनदासगणि ने इसका उपयोग किया है। इसका 'वसुदेवचरित' नाम से सेतु और चेटक कथा के साथ निशीथचूर्णि में उल्लेख किया गया है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपनी कृति विशेषणवती में भी इसका निर्देश किया है। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इसका रचनाकाल लगभग पाँचवीं शताब्दी होना चाहिए। इसकी भाषा भी प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है जिसकी तुलना चूर्णि ग्रन्थों से की जा सकती है। दिस्सहे. गच्छीय, वहाए, पिव, गेण्हेप्पि आदि रूप तथा देशी शब्दों के प्रयोग इसमे मिलते हैं।[1] यह कथा-ग्रन्थ गद्यात्मक समासान्त पदावली से विभूषित है। बीच-बीच में पद्य भी आ गये हैं। भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रसादगुण-युक्त है।

---

१. वसुदेवहिण्डी की भाषा के सम्बन्ध मे डाक्टर आल्सडोर्फ का लेख 'बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज', जिल्द ८, तथा वसुदेवहिण्डी के गुजराती अनुवाद की प्रस्तावना।

जर्मन विद्वान् आल्सडॉर्फ ने वसुदेवहिण्डी की तुलना गुणाढ्य की पैशाची भाषा में लिखी बृहत्कथा से की है। संघदासगणि की इस कृति को वे बृहत्कथा का रूपान्तर मानते हैं। बृहत्कथा[1] में नरवाहनदत्त की कथा दी गई है और इसमें वसुदेव का चरित। गुणाढ्य की उक्त रचना की भाँति इसमें भी शृंगारकथा की मुख्यता है पर अन्तर यह है कि जैनकथा होने से इसमें बीच-बीच में धर्मोपदेश बिखरे पड़े हैं। वसुदेवहिण्डी में एक ओर सदाचारी श्रमण, सार्थवाह एवं व्यवहारपटु व्यक्तियों के चरित अंकित हैं तो दूसरी ओर कपटी तपस्वी, ब्राह्मण, कुट्टनी, व्यभिचारिणी स्त्रियों और हृदयहीन वेश्याओं के। कथानकों की शैली सरस एवं सरल है।

वसुदेवहिण्डीसार—यह २८ हजार श्लोक प्रमाण विशाल कथाग्रन्थ वसुदेवहिण्डी का संक्षिप्त सार है[2] जो २५० श्लोक-प्रमाण प्राकृत गद्य में लिखा गया है। इस वसुदेवहिण्डीसार के कर्ता कौन हैं, उन्होंने क्यों और किसलिए सारोद्धार किया है? यह निश्चित नहीं हो सका। केवल ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि 'इइ संखेपेण सिरिगुणनिहाणसूरीणं कए कहा कहिया' अर्थात् श्रीगुणनिधानसूरि के लिए संक्षेप में कथा कही गई है। पर किसने कही है यह ज्ञात न हो सका। इस प्रति में इसका स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख भी नहीं है। इसके सम्पादक पं० वीरचन्द्र के अनुसार यह ग्रन्थ तीन-चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। इसे 'वसुदेवहिण्डीआलापक' भी कहा जाता है पर ग्रन्थान्त में 'वसुदेवहिण्डी कहा समत्ता' लिखा है इससे इसका 'वसुदेवहिण्डीसार' नाम ठीक है।

प्रद्युम्नचरित्र—बीसवें कामदेव वसुदेव के पौत्र तथा नवम नारायण श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न जैनधर्मसम्मत इक्कीसवें कामदेव (अतिशय रूपवान्) थे। प्रद्युम्न का चरित जैन कवियों को इतना रुचिकर था कि उन्होंने उसे साधारण[3] पुराणों में पर्याप्त स्थान देने के अतिरिक्त स्वतन्त्र काव्यों के रूप में भी रचा है।

---

१. बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर सोमदेवकृत कथासरित्सागर मिलता है जिसमें नरवाहनदत्त के साथ विवाहित होनेवाली कन्याओं के नाम से लम्भकों के नाम दिये गये हैं।

२. हेमचन्द्राचार्य ग्रंथावली (सं० ४), पाटन, सन् १९१७.

३. वसुदेवहिण्डी, जिनसेन के हरिवंशपुराण (४७-४८ सर्ग), हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, गुणभद्र के उत्तरपुराण में प्रद्युम्नचरित दिया गया है।

अबतक सस्कृत, अपभ्रश और हिन्दी में एतद्विषयक २५ स अधिक कृतियाँ मिली हैं। यहाँ सस्कृत में उपलब्ध रचनाओं[1] की सूची देकर कथावस्तु का सक्षिप्त परिचय दिया जायेगा और कुछ प्रकाशित रचनाओं का परिचय भी।

१. प्रद्युम्नचरित	महासेनाचार्य	(११ वीं शती)	
२. ,,	भट्टारक सकलकीर्ति	(१५ ,, ,,)	
३. ,,	भट्टा० सोमकीर्ति या सोमसेन	(स० १५३०)	
४. शाम्बप्रद्युम्नचरित	रविसागरगणि	(,, १६४५)	तपागच्छ
५. प्रद्युम्नचरित	शुभचन्द्र	(१७ वीं शती)	
६. ,,	रत्नचन्द्र	(स० १६७१)	तपागच्छ
७. ,,	भट्टा० मल्लिभूषण	(१७ वीं शती)	
८. ,,	भट्टा० वादिचन्द्र	(,, ,,)	
९. ,,	भट्टा० भोगकीर्ति	समय अज्ञात	
१०. ,,	जिनेश्वरसूरि	,,	
११. ,,	यशोधर	,,	

प्रद्युम्न की सक्षिप्त कथा—श्रीकृष्ण की रानी रुक्मिणी से प्रद्युम्न हुए थे। जन्म की छठी रात्रि को उन्हें धूमकेतु राक्षस अपहरण कर ले गया और एक शिला के नीचे दबाकर भाग गया। उसी समय कालसवर विद्याधर ने इन्हें उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र-रूप मे पालने के लिए दे दिया। प्रद्युम्न ने युवा होने पर कालसवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का बल एव प्रतिभाचातुरी देखकर कालसवर के अन्य पुत्र जलने लगे। जिनदर्शन के बहाने वे उसे वन में ले गये और एक के बाद अनेक विपत्तियो में फँसाते गये परन्तु प्रद्युम्न निर्भयता से उन पर विजय पाकर अनेक विद्याओं का धनी हो गया। उसने अपने बुद्धि-कौशल से पालक माता कंचनमाला से भी तीन विद्याएँ ले लीं। पर कचनमाला अपना स्वार्थ सिद्ध होते न देख क्रुद्ध हो गई। कालसवर को उसने उभाड़ा। वह प्रद्युम्न को मारने को तैयार हुआ कि इसी बीच नारद ने आकर बचाव किया। पीछे वास्तविक स्थिति का पता चला। प्रद्युम्न द्वारिका की ओर लौटे। रास्ते में दुर्योधन के विवाह के लिए जाती हुई कन्या का अपहरणकर विमान द्वारा द्वारिका आये। द्वारिका लौटने पर उन्होंने अपने वैमातृक भाई भानुकुमार एवं सत्यभामा को अपनी विद्याओं से खूब छकाया। तत्पश्चात् ब्रह्म-

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६४ और ४३२

चारी वेश बनाकर अपनी माता रुक्मिणी के पास गए। वहाँ अपने चाचा बलराम और सत्यभामा की दासियों को तग किया। पीछे प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी को श्रीकृष्ण की सभा के आगे से हाथ पकड़ खींचते हुए ले जाकर श्रीकृष्ण को ललकारा। कृष्ण और प्रद्युम्न मे खूब युद्ध हुआ। इसी बीच नारद ने आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रद्युम्न का अच्छा स्वागत हुआ तथा नगर मे उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने बहुकाल तक राजसुख भोगकर और अन्त में दीक्षा धारणकर निर्वाण पद प्राप्त किया।

प्रद्युम्नचरित्र पर लिखी रचनाओं की उपर्युक्त तालिका के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इस चरित्र को सर्वप्रथम स्वतन्त्र चरित्र[1] एव काव्य के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय परमारवंशीय नरेश सिन्धुराज[2] (९९५-९९८ ई०) के समकालीन आचार्य महासेन को है। इस काव्य का वर्णन शास्त्रीय काव्यों के प्रसग में किया जायगा।

काल-क्रम से सस्कृत में द्वितीय रचना भट्टा० सकलकीर्ति (१५ वीं शता०) रचित प्रद्युम्नचरित का उल्लेख मिलता है।[3]

प्रद्युम्नचरित—भट्टारक सोमकीर्तिकृत प्रद्युम्नचरित काल-क्रम से तीसरी रचना है। इसके दो सस्करण है : पहले में १६ सर्ग जिनका ग्रन्थपरिमाण ६००० श्लोक है, दूसरा १४ सर्गवाला ४८५० श्लोक-प्रमाण। मूल ग्रन्थ की सस्कृत बहुत ही सीधी-सादी है। इसके पढ़ने से यह मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ता की यह पहली रचना होगी। इसमें अर्थगांभीर्य, सौन्दर्य तथा शब्दों का सगठन उदात्त नहीं है। फिर भी कथा-प्रबध सुन्दर तथा चित्ताकर्षक है।

रचयिता एव रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त मे दी गई प्रशस्ति में काव्यनिर्माता का परिचय दिया गया है। तदनुसार भट्टारक सोमकीर्ति काष्ठासघीय नन्दीतट शाखा के सन्त थे तथा १०वीं शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा में होनेवाले भट्टारक थे। उनके दादागुरु लक्ष्मीसेन एव गुरु भीमसेन थे। स० १५१८ (सन् १४६१) में रचित एक ऐतिहासिक पद्यावली में इन्होंने अपने को काष्ठासघ का ८७वॉ भट्टारक लिखा है। इनके गृहस्थ जीवन का कोई

1. माणिक्यचन्द्र दिग० जैन ग्रंथमाला, सं० ८, पं० नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४११; जिनरत्नकोश, पृ० २६४.
2. डा० गु० च० चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नोर्दर्न इण्डिया, पृ० ९५.
3. जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

परिचय उपलब्ध नहीं हुआ है परन्तु स० १५१८ में ये भट्टारक पद पर थे। उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचनाकाल स० १५३१ पौष सुदी १३ बुधवार दिया हुआ है।[1] इस काव्य के अतिरिक्त कवि ने संस्कृत मे यशोधरचरित और सप्त-व्यसनकथा लिखी थी तथा अनेक कृतियाँ राजस्थानी में भी।

साम्बप्रद्युम्नचरित—इसमे प्रद्युम्न और उसके अनुज साम्ब के लोकरंजक चरित्र का वर्णन १६ सर्गों में प्राजल सस्कृत पद्यों में दिया गया है।[2] यह काव्य ७२०० श्लोक-प्रमाण है। कथा के उपोद्घात में बतलाया है कि यह कथा अन्तः-कृद्दशाग के चतुर्थ वर्ग के ८वें सूत्र मे आती है और इसे सुधर्मा गणधर ने जम्बू को कहा था।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त मे ५३ पद्यो की एक प्रशस्ति और एक पुष्पिका दी है जिससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता नूतनचरित्रकरण-परायण पण्डित चक्र चक्रवर्ती प० श्री रविसागर गणि[3] है जिन्होने इस ग्रन्थ को स० १६४५ में समाप्त किया था और उनके शिष्य जिनसागर ने लिपिबद्ध किया था। तपा-गच्छ के हीरविजय सन्तानीय राजसागर इनके दीक्षागुरु थे और सहजसागर तथा विनयसागर इनके अध्यापक थे।[4] इसकी रचना माडलि नगर में खेंगार राजा के राज्यकाल में हुई थी।[5]

प्रद्युम्नचरित—इसे महाकाव्य[6] भी कहा गया है जो १६ सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थप्रमाण ३५६९ श्लोक प्रमाण है। इसमें प्रद्युम्न को निमित्त बनाकर सौराष्ट्र

---

१ सर्ग १८, पद्य सं० १६९.

२. डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जयपुर, १९६१, पृ० ४३, जिनरत्नकोश, पृ० २६४, हिन्दी अनुवाद, बुद्धू-लाल पाटनी, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगज, राजस्थान.

३ हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७, पं० मफतलाल झवेरचन्द्र, अहमदा-बाद, वि० स० २००८, जिनरत्नकोश, पृ० २६४ और ४३३.

४. पद्य स० ४८-५२.

५. तस्मिन् मांडलिनाम्नि चारुनगरे खेंगारराजोत्तमे,

सम्पूर्णसमजायतोरुचरितं प्रद्युम्ननामानघं।

सख्यातश्च सहस्रसप्तकमिद द्वाभ्यां शताभ्यां (७२००) शुभं,

पंचांभोनिधिषड्निशापतिमिते १६४५ वर्षे चिरं नदतान् ॥

६. वी० बी० एण्ड कम्पनी, खारगेट, भावनगर, वि० स० १९७४, जिनरत्न-कोश, पृ० २६४.

आदि देशों, द्वारकादि नगरों, विविध वन, नग, सरोवर आदि के प्राकृतिक वर्णन सरस रूप से दिये गये हैं। एक ओर रुक्मिणी, सत्यभामा आदि कृष्ण-पत्नियों के जीवन के उल्लेख से स्त्री-स्वभाव, तो दूसरी ओर प्रवास, यात्रादि के सच्चित्रण द्वारा प्राचीन पुरुषों की परदेश-प्रवास-कुशलता और युद्धादि वर्णनों में नीति-रीति-परायणता के दर्शन होते हैं। इसी मे कहीं-कहीं वसन्त, कामकेलि आदि के द्वारा युवकों का मनोरंजन किया गया है तो कहीं-कहीं आते-जाते पक्षियों एवं अंग-स्फुरण और उसके फलाफल की सूचना शकुनशास्त्र के अनुसार दी गई है। इस तरह धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष पुरुषार्थों की सफलता दिखलाने में कवि ने अपनी कुशलता प्रकट की है।

रचयिता एवं रचनाकाल—कवि ने अपना लघु परिचय प्रति सर्ग में दिया है तथा अन्त मे विस्तारपूर्वक वशावली दी है, जिससे ज्ञात होता है कि ये तपागच्छ मे हीरविजय सन्तानीय शान्तिचन्द्र वाचक के शिष्य रत्नचन्द्रगणि थे। वह ग्रन्थ उन्होंने सूरत में स० १६७४ के आश्विन मास की विजयदशमी के दिन समाप्त किया था।[१]

रत्नचन्द्र गणि की छोटी-मोटी अनेक रचनाएँ थीं, यह इस काव्य मे प्रतिसर्ग के समाप्तिवाक्य से ज्ञात होता है। तदनुसार भक्तामरस्तव, धर्मस्तव, ऋषभ-वीरस्तव, कृपारसकोष, अध्यात्मकल्पद्रुम, नैषधमहाकाव्यवृत्ति, रघुवशकाव्य-वृत्ति आदि अनेक कृतियाँ हैं।

नागकुमारचरित—बाईसवें कामदेव नागकुमार का चरित श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य प्रकट करने के लिए जैन कवियों ने कथाबद्ध किया है।[२] इस चरित पर महाकवि पुष्पदन्त की अपूर्व कृति 'नायकुमारचरिउ' अपभ्रंश मे है पर सस्कृत में भी कई रचनाएँ निर्मित हुई हैं जिनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. रत्नयोगीन्द्र या रत्नाकर	पाँचसर्ग	समय अज्ञात
२. शिखामणि		समय-अज्ञात
३. जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण	५०० श्लोक-प्रमाण	११-१२वीं शताब्दी
४. धर्मधर या धर्मधीर	५३ पत्र, प्रत्येक में १० पक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३२ अक्षर	समय-अज्ञात

१. युगमुनिरसशशिवर्षे (१६७४) मासीषे विजयदशमिकादिवसे।
सूरतबन्दरे महोपाध्यायश्रीरत्नचन्द्रगणिभिः विरचितम् ॥
त्रिसहस्रा पचशती पुनरेकोनसप्ततिः श्लोकानाम् (३५६९)।

२. जिनरत्नकोश, पृ० २०९.

५. दामनन्दि समय-अज्ञात
६. वीरसेन के शिष्य श्रीधरसेन ८ सर्ग समय-अज्ञात, स्थान गोनर्द
७. वादिराज समय अज्ञात
८. अज्ञातकर्तृक

कथा का सार—कनकपुर के राजा जयधर और रानी पृथ्वी से नागकुमार का जन्म हुआ था। बाल्यकाल में नागों के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पड़ा था। नागदेश से ही वह अनेक विद्याएँ सीखकर युवा हुआ था और वहाँ की सुन्दर किन्नरियों से उसने विवाह किया था। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे ईर्षाद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने में सफल हो गया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता के आग्रहवश कुछ समय के लिए विदेश भ्रमण के लिए चला गया। सर्वप्रथम वह मथुरा पहुँचा और वहाँ के राजा की कन्या को बन्दीगृह से निकालकर कश्मीर पहुँचा जहाँ पर वीणा-वादन में त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन में कालगुफावासी भीमासुर से उसका साक्षात्कार हुआ। काचनगुफा मे पहुँचकर उसने अनेक विद्याएँ एवं अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके बाद गिरिशिखरवासी राजा वनराज से उसकी भेंट हुई और उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसका विवाह हुआ। नागकुमार वहाँ से गिरनार पर्वत की ओर गया। वहाँ उसने सिन्ध के राजा चण्डप्रद्योत से गिरिनगर के राजा—अपने मामा—की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अवध नगर के अत्याचारी राजा सुकठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त मे उसने पिहितास्रव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एव श्रुतपचमी के उपवास का फल सुना। इधर उसके सौतेले भाई श्रीधर ने दीक्षा ले ली तब उसके पिता ने उसे बुलाकर राज्याभिषेक कर दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्यसुख भोगकर अन्त में साधु जीवन ग्रहण किया और मोक्ष पद पाया।

नागकुमारकाव्य—यह पाँच सर्गों का लघुकाव्य[1] है जिसमे ५०७ पद्य हैं। इसमें श्रुतपञ्चमी या श्रीपचमी के माहात्म्य को सूचन करने के लिए २०वें कामदेव का चरित्र वर्णित है। इसे श्रुतपञ्चमीकथा भी कहते हैं। इसके

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०९, प० नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० स०), पृ० ३१५.

प्रारभ में कहा गया है कि जयदेवादि कवियों ने जो गद्य-पद्यमय कथा लिखी है वह मन्दबुद्धियों के लिए विषम है। मैं मल्लिषेण विद्वज्जनों का मन हरण करनेवाली उसी कथा को प्रसिद्ध संस्कृत वाक्यों में पद्यबद्ध रचता हूँ।[1] यह काव्य बहुत सरल और सुन्दर है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मल्लिषेण हैं। ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ग्रन्थकार और काव्य के विषय में पर्याप्त परिचय मिलता है। तदनुसार ये उन अजितसेन की शिष्य-परम्परा में हुए हैं जो गगनरेश रायमल्ल और उनके मत्री तथा सेनापति चामुण्डराय के गुरु थे और जिन्हें नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने 'भुवनगुरु' कहा है। अजितसेन के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के जिनसेन और जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण। मल्लिषेण ने जिनसेन के अनुज या सतीर्थ नरेन्द्रसेन को भी गुरुरूप से स्मरण किया है। ये न्यायविनिश्चय-विवरणकार वादिराज के समकालीन थे। इनका समय ग्यारहवीं सदी का अन्त और बारहवीं का प्रारभ हो सकता है। इनकी कई रचनाएँ मिलती हैं—महापुराण, भैरवपद्मावतीकल्प, सरस्वतीमन्त्रकल्प, ज्वालिनीकल्प, कामचाण्डालीकल्प। इनमे केवल महापुराण का रचनाकाल ज्येष्ठ सुदी ५, श० स० ९६९ (वि० सं० ११०४) दिया गया है। अन्य ग्रन्थो का समय नहीं दिया गया है।

जीवन्धरचरित—जैन मान्य कामदेवों में जीवन्धर २३वें कामदेव थे। इनके चरित को लेकर सस्कृत और तमिल मे कवियों ने गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य तथा सामान्यकाव्यों की रचना की है। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण के ७५वें अध्याय मे जीवन्धर की कथा सर्वप्रथम देखने मे आती है। अबतक उपलब्ध रचनाओं की सूची इस प्रकार है[2]—

१. क्षत्रचूडामणि या जीवन्धरचरित (लघुकाव्य) वादीभसिंह ओडयदेव
२. गद्यचिन्तामणि (गद्यकाव्य) ,, ,,

---

१. कविभिर्जयदेवाद्यैः गद्यैर्पद्यैर्विनिर्मितम्
यत्तदेवास्ति चेदत्र विषमं मन्दमेधसाम्।
प्रसिद्धैर्संस्कृतैर्वाक्यैर्विद्वज्जनमनोहरम्
यन्मया पद्यबन्धेन मल्लिषेणेन रच्यते॥
× × ×
तेनैषा कविचक्रिणा विरचिता श्रीपञ्चमी सत्कथा।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १४१.

३. जीवन्धरचम्पू (चम्पूकाव्य) महाकवि हरिचन्द्र
४. जीवन्धरचरित भास्कर कवि
५. ,, सुचन्द्राचार्य
६. ,, ब्रह्मय्य
७. ,, शुभचन्द्र (स० १६०३)

जीवन्धर की कथा का सार—राजपुर का राजा सत्यंधर विषयासक्त होकर राज्य-संचालन से विमुख हो राज्यभार अपने मन्त्री काष्ठाङ्गार को दे देता है। अपनी रानी के प्रसवकाल में राजा विश्वासघाती मन्त्री द्वारा षड्यन्त्र-पूर्वक मारा जाता है। पट्टरानी विजया तथा अन्य दो रानियों ने तथा राजा के चार अन्य विश्वासी मित्रों की पत्नियों ने गुप्तरूप से जन्मे पुत्र को एक वणिक् के घर पाला। रानी विजया के पुत्र का नाम जीवन्धर पड़ा। वह बचपन से ही होनहार और चमत्कारी था। उसने आगे चलकर अपनी असाधारण बुद्धि और शौर्य का परिचय दिया। उसने एक साधु को अपने हाथ से भोजन जिमाकर उसका भस्मक रोग दूर किया। यौवन प्राप्त करते ही उसने एक के बाद एक ८ सुन्दरी कन्याओं को विवाहा। प्रत्येक के विवाह-प्रसंग में उसने अपनी विभिन्न कलाओं का प्रदर्शनकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। वह जादू की अँगूठी के सहारे वेश भी बदल सकता था। अन्तिम विवाह के प्रसग मे उसने अपना वास्तविक परिचय अन्य राजाओं को दिया और उनकी मदद से विश्वासघाती मन्त्री का वधकर राज्य प्राप्त कर सका। एक समय बगीचे में उसने बन्दरों के झुड को क्रोध में लड़ते देखा। इससे उसे संसार से घृणा हो गई और वह भग० महावीर के समोसरण में दीक्षित हो गया और तपस्याकर मोक्षपद पाया।[1]

क्षत्रचूडामणि—जीवन्धर को क्षत्र या क्षत्रियों में चूडामणि[2]-तुल्य मानकर इस काव्य का नाम क्षत्रचूडामणि[3] रखा गया है। इसका दूसरा नाम जीवन्धर-चरित भी है।

---

१ विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५००–५०३.

२. राजतां राजराजोऽयं राजराजो महोदयै.,
तेजसा वयसा शूरः क्षत्रचूडामणिर्गुणै.।

३. सम्पादक—टी० ए० कुप्पुस्वामी, तजोर, १९०३; हिन्दी अनुवाद, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, जिनरत्नकोश, पृ० ९७

इसकी रचना प्रारम्भ से अन्त तक अनुष्टुप् छन्दों में हुई है। इसमें कुल मिलाकर ७४६ श्लोक हैं जो ११ लम्बों (लम्भ) में विभक्त हैं। यह अपनी पूर्ववर्ती रचना गद्यचिन्तामणि से इस अर्थ में भिन्न है कि वह तो संस्कृत गद्य में ओजपूर्ण भाषा में शृंगारादि रसों से परिप्लुत लिखी गई है और प्रौढमति लोगों के द्वारा ही पठनीय है जबकि यह बहुत ही सरल और प्रसादगुणयुक्त शैली में लिखी गई है, इसे सुकुमारमतिवाले बहुत अच्छी तरह पढ़ सकते हैं। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कथा के साथ साथ नीति और उपदेश की चर्चा है। कवि प्रायः श्लोक के पूर्वार्ध में अपनी कथा को कहता चलता है और साथ-साथ उत्तरार्ध में अर्थान्तरन्यास के द्वारा कोई न कोई नीति या शिक्षा की सुन्दर सूक्ति देता जाता है। यथा—

अबोधयच्च तां पत्नीं लब्धबोधो महीपतिः।
तत्त्वज्ञानं हि जागर्ति विदुषामार्तिसम्भवे॥
१.५७

\+ + +

पराजेष्ट पुनस्तेन यथार्थं प्रहितं वलं।
स्वदेशे हि शशप्रायो बलिष्ठः कुञ्जरादपि॥
२.६४

\+ + +

मत्सरी कौरवेणायं भर्त्सनाद्व्युपरंस्त।
मत्सराणां हि नोदेति वस्तुयाथात्म्यचिन्तनम्॥
१०.३५

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता ओडयदेव वादीभसिंह हैं। गद्यकाव्य गद्यचिन्तामणि के रचयिता और इस काव्य के रचयिता के एक ही होने का अनुमान है। कुछ विद्वान् रचना शैली और शब्द-योजना की भिन्नता के कारण दोनों के एककर्तृत्व होने में सन्देह करते हैं।[1] कवि के क्षेत्र और समय के सम्बन्ध में भी विवाद है। वी० शेषगिरिराव के अभिमत से कवि कलिंग के गंजाम जिले का निवासी था। गंजाम जिला तमिलनाडु के उत्तर में है और उड़ीसा प्रान्त के अन्तर्गत है। वहाँ ओडेय और गोडेय दो जातियाँ रहती हैं।

---

१. डा० हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १७१.

सम्भवतः कवि ओडेय जाति के सरदार कुमार थे क्योंकि इनका नाम ओडयदेव भी मिलता है। उड़ीसा और तमिलदेश की लोककथाओं में आज भी जीवन्धर की कथा पाई जाती है।

कवि के जीवन के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नहीं। इन्होंने अपने गुरु का नाम पुष्पसेन बतलाया है। विद्वानों का अनुमान है कि वादीभसिंह इनकी उपाधि थी क्योंकि इन्होंने अनेक वादिरूपी सिंहों को जीता था।

कवि के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में एकमत नहीं है। पर अधिकाश[1] मतों के अनुसार ये या तो ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ के कवि थे या उक्त शताब्दी के उत्तरार्ध के। कवि की अन्य रचनाओं में 'गद्यचिन्तामणि' और 'स्याद्वादसिद्धि' प्रकाशित हैं।

एक अन्य जीवन्धरचरित के रचयिता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। इसमे १३ सर्ग हैं। कवि ने इसे धर्मकथा कहा है और इसकी रचना सं० १६०३ में नवीननगर के चन्द्रप्रभ जिनालय में की थी।[2] रचयिता का विशेष परिचय और उनकी रचनाओं का निर्देश हमने उनकी अन्य रचना 'पाण्डवपुराण' के प्रारम्भ मे किया है।

जीवन्धर-सम्बन्धी गद्यात्मक कृति गद्यचिन्तामणि का गद्यकाव्यों में और जीवन्धरचम्पू का चम्पूकाव्यों में परिचय दिया जायगा। शेष रचनाओ का उल्लेखमात्र मिलता है।

जम्बूस्वामिचरित—जम्बू भग० महावीर के अन्तिम गणधर तथा जैनमान्य २४ अतिशय रूपवान (कामदेव) पुरुषों में अन्तिम थे। यह चरित भी जैन

---

१. समयनिर्णय के लिए देखें, न्यायकुमुदचन्द्र (मा० दि० ग्रन्थ०), प्रस्तावना, पृ० १११; स्याद्वादसिद्धि (मा० दि० ग्रन्थ०), प्रस्तावना, पृ० ११, जैन साहित्य और इतिहास, बम्बई, १९५६, पृ० ३२४–३२८, गद्यचिन्तामणि, श्रीरंगम्, १९१६, प्रस्तावना, पृ० ७-८, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा, भाग ६, किरण २, पृ० ७८–८७ तथा भाग ७, किरण १, पृ० १–८; हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (एम० कृष्णमाचारी), मद्रास, १९३७, पृ० ४७७, गद्यचिन्तामणि (भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी), प्रस्तावना

२. राजस्थान के जैन सन्त · व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० १००, प्रशस्ति, पद्य ७ मे रचनाकाल दिया है।

कवियों को इतना रोचक लगा कि उस पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा देशीभाषाओं में १०० से अधिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यहाँ काल-क्रम से संस्कृत, प्राकृत में उपलब्ध सामग्री तथा स्वतन्त्र काव्यों की सूची प्रस्तुत करते हैं[1]—

१. संघदासगणि (५-६ वीं शता०)	वसुदेवहिंडी का कथोत्पत्ति प्रकरण	(प्राकृत)
२. गुणभद्राचार्य (सन् ८५० के लगभग)	उत्तरपुराण का ७६वाँ पर्व—२१३ श्लोक	(संस्कृत)
३. जयसिंहसूरि (सन् ८५८)	धर्मोपदेशमाला - विवरण में संक्षेपरूप में कुछ पंक्तियाँ और जम्बूचरित में सम्बद्ध चार कथाएँ प्रकीर्ण रूप में	(प्राकृत)
४. भद्रेश्वरसूरि (१०-११वीं शता०)	कथावली के अन्तर्गत	(प्राकृत)
५. गुणपालमुनि (वि. सं. १०७६ के पूर्व)	जम्बूचरिय १६ उद्देशक	(प्राकृत)
६. रत्नप्रभसूरि (वि. सं. १२३८)	उपदेशमाला पर विशेष-वृत्ति के अन्तर्गत	(संस्कृत)
७. जिनसागरसूरि प्रतिष्ठासोम	कर्पूरप्रकरण टीका के अन्तर्गत	(संस्कृत)
८. हेमचन्द्राचार्य (वि.सं.१२१७-१२२९)	परिशिष्टपर्व—४ पर्व (गुणपालकृत जम्बूचरिय के अनुसार)	(संस्कृत)
९. उदयप्रभसूरि (वि. सं. १२७९-९०)	धर्माभ्युदय महाकाव्य ८ सर्ग	(संस्कृत)
१०. जयशेखरसूरि (वि. स. १४३६)	जम्बूस्वामिचरित्रकाव्य ६ प्रक०	(संस्कृत)
११. रत्नसिंह के शिष्य—नाम अज्ञात (वि. स. १५१६)	जम्बूस्वामिचरित	(संस्कृत)
१२. ब्रह्मजिनदास (वि. स. १५२०)	जम्बूस्वामिचरित्र, ११ संधियाँ	(संस्कृत)

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२९–१३२, डा० विमलप्रकाश जैन द्वारा सम्पादित जम्बूसामिचरिउ की प्रस्तावना, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी.

१३. सकलचन्द्र—भुवनकीर्ति के शिष्य
(वि. सं० १५२०) जम्बूचरिय (प्राकृत)

१४. उपा० पद्मसुन्दर नागौरी
(वि. स. १६२६–३९) जम्बूचरिय (प्राकृत)

१५. प० राजमल्ल (वि. स. १६३२) जम्बूस्वामिचरित्र (सस्कृत)

१६. विद्याभूषण भट्टारक (वि. स. १६५३) जम्बूस्वामिचरित्र (सस्कृत)

१७. जिनविजय (वि. स. १७८५–१८०९) जम्बूस्वामिचरित्र (प्राकृत)

१८. अज्ञातकर्तृक जम्बूस्वामिचरित्र (सस्कृत गद्य)

१९. पद्मसुन्दर जम्बूसामिचरिय
७५० गाथाएँ (प्राकृत)

२०. सकलहर्ष जम्बूस्वामिचरित्र
(११ पत्र) (सस्कृत)

२१. मानसिंह जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र १३०० (सस्कृत)

२२. अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र १४ पत्र (सस्कृत)

२३. अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र ८९७ (सस्कृत गद्य)

२४ अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र १६४४ (सस्कृत)

२५. अज्ञात जम्बूसामिचरिय (प्राकृत)

जम्बूस्वामी का संक्षिप्त कथानक—भग० महावीर के काल मे जम्बू राजगृह में एक श्रेष्ठिपुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। वे अतिशय रूपवान् और अनेक कलाओं के पण्डित थे। एकबार सुधर्मा स्वामी से धर्मोपदेश सुनने के बाद जम्बू ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया और वैराग्यवृत्ति की ओर अग्रसर होने लगे। इसे रोकने के लिए माता-पिता ने उनका आठ सुन्दर कन्याओं से विवाह कर दिया पर वे सब भी उनके मन को सासारिक सुखो में प्रवृत्त न करा सकीं। दीक्षा की पूर्व रात्रि में उनके घर मे एक बड़ा डाकू चोरी के लिए घुसा पर रात्रिभर वे अपनी पत्नियों को ससार के दुःखों का परिज्ञान कराने के लिए दृष्टान्त स्वरूप अनेक कथाएँ कहते रहे और उनके तर्कों और युक्तियों का खण्डन करते रहे। वह डाकू भी उनके उपदेशों को सुनकर ससार से विरक्त हो गया। अतः जम्बू, उनकी पत्नियाँ तथा वह चोर अपने साथियों के साथ दीक्षित हो गये।

जम्बूस्वामी तपस्या कर सुधर्मास्वामी के बाद श्रमणसंघ के नेता—गणधर बने। वे अन्तिम केवली थे और वीर नि० स० ६४ में निर्वाणपद पाया।

जम्बूचरिय—महाराष्ट्री प्राकृत में रचित यह काव्य १६ उद्देशों में विभक्त है। प्रथम दो उद्देशों में 'समराइच्चकहा' के समान कथाओं के अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं संकीर्णकथा—ये चार भेद बतलाकर धर्मकथा को ही रचना का प्रतिपाद्य विषय बतलाया है और तीसरे उद्देश से कथा प्रारम्भ की गई है। चौथे और पाँचवें में जम्बूस्वामी के पूर्वभवों का वर्णन दिया गया है। छठे में जम्बू का जन्म, शिक्षा, यौवन आदि का वर्णन है। सातवें में उनके वैराग्य की ओर प्रवृत्ति, माता-पिता द्वारा संसार-प्रवृत्ति के लिए विवाह। अगले उद्देशों में जम्बूस्वामी ने आठ पत्नियों तथा घर में घुसकर बैठे प्रभव नामक चोर तथा उसके साथियों को नाना आख्यानों, दृष्टान्तों, कथाओं आदि से वैराग्यवर्धक उपदेश सुनाये और अन्त में उन्होंने श्रमण-दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धि पाई।[1]

इसमें काव्य-लेखक ने कथाक्रम को ऐसा व्यवस्थित किया है कि पाठक की जिज्ञासा और कुतूहल प्रारंभ से अन्त तक बने ही रहते हैं। इसमें वर्णनों की विविधता देखी जाती है। यह काव्य प्राकृत गद्य और पद्य के सुन्दर नमूने प्रस्तुत करता है। यहाँ धार्मिक कथा का आदर्श रूप दिया गया है। नायक को अपनी वीरता प्रकट करने का कहीं अवसर भी नहीं आया। यह कृति परवर्ती कवियों का आदर्श रही है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता नाइलगच्छीय गुणपाल मुनि हैं जो वीरभद्रसूरि के प्रशिष्य एवं प्रद्युम्नसूरि के शिष्य थे। संभवतः कुवलयमाला के रचयिता उद्योतनसूरि के सिद्धान्तगुरु वीरभद्राचार्य और गुणपाल मुनि के दादागुरु वीरभद्रसूरि दोनों एक ही हों। ग्रन्थ की शैली पर हरिभद्र की समराइच्चकहा और उद्योतनसूरि की कुवलयमाला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उक्त कथाग्रन्थों के समान ही यह भी गद्य-पद्य मिश्रित है।

ग्रन्थकार और उक्त रचना के काल के संबंध में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है पर रचनाशैली आदि से अनुमान होता है कि इसे १०-११वीं शताब्दी

---

१ सिंघी जैनशास्त्र विद्यापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९; जिनरत्नकोश, पृ० १३०

के आसपास की रचना होना चाहिए। इसकी एक ताड़पत्रीय प्रति जैसलमेर जैन भण्डार से १४ वीं शताब्दी के पूर्व की मिलती है।

जम्बूस्वामिचरित—सम्पूर्ण काव्य ११ सर्गों मे विभक्त है।[1] यह काव्य सरल संस्कृत मे लिखा गया है। काव्य में सुभाषितों का प्रयोग अधिकता से किया गया है। इस काव्य की स० १५३६ की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज एव शिष्य ब्रह्मचारी जिनदास हैं जिन्होंने स० १५०८-१५२० में इसकी रचना की थी। इनका विशेष परिचय इनकी अन्य कृति हरिवशपुराण के साथ दिया गया है (पृ० ५२)।

जम्बूस्वामिचरित—सस्कृत मे रचे इस काव्य[2] में ६ सर्ग हैं जिनमें ७२६ श्लोक हैं। इसमे पूर्वोक्त गुणपाल आदि द्वारा विरचित कथाओं में कुछ परिवर्तन किया गया है। इसके रचयिता जयशेखरसूरि है जो अचलगच्छ के थे। इसका रचनाकाल वि० स० १४३६ है।

जबूचरिय—इसमें २१ उद्देश हैं। इसे 'आलापकस्वरूपजम्बुदृष्टान्त'[3] या 'जम्बु-अध्ययन' भी कहते हैं। यह प्राकृत रचना है। प्रारंभ 'तेणं कालेण' से होता है। इसे 'प्रकीर्णक' भी माना जाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता नागौरीगच्छीय पद्मसुन्दर[4] उपाध्याय हैं जो तपागच्छ के बड़े विद्वान् थे। ये अकबर के हिन्दू सभासदों में से एक थे और उनके पॉच विभागों में से प्रथम विभाग में थे। इनका और इनकी रचनाओं का परिचय 'रायमल्लाभ्युदय' के प्रसग मे दिया गया है।

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० १३२, राजस्थान के जैन सन्त · व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २६; इस काव्य पर कवि वीरकृत अपभ्रंश कृति 'जम्बुसामिचरिउ' का पूर्ण प्रभाव दिखाई पडता है।

२ जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९६८-७०, गुजराती अनुवाद वहीं से, १९७०, जिनरत्नकोश, पृ० १३२.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १२९.

४. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० सं०), पृ० ३९५-९६.

जम्बूस्वामिचरित—इस काव्य[1] मे १३ सर्ग है और २४०० पद्य। कथावस्तु दो भागो में विभक्त है। पहली पूर्व भवो और दूसरी इस भव से सम्बद्ध है। प्रारभ के चार सर्गों के सभी आख्यान पूर्वभवों से सम्बद्ध हैं और पचम से जम्बू के इस भव की कथा प्रारभ होती है। वे श्रेष्ठिपुत्र होते हुए भी पराक्रमशाली और वीरपुरुष दिखलाये गये है। उन्होंने एक मदोन्मत्त हाथी को वश मे किया था इससे प्रभावित होकर ४ श्रीमन्त सेठों ने अपनी कन्याओं का विवाह इनसे कर दिया था। शेष कथा पूर्वोक्त प्रकार से है।[2]

इस काव्य की कथावस्तु को अनुष्टुप् छन्दों मे ही रचकर कवि ने काव्य-चमत्कार उत्पन्न करने में कोई कमी नहीं की। कवि युद्धक्षेत्र का वर्णन करते हुए वीर और भयानक रसों को मूर्तिरूप मे प्रस्तुत करता है (७वा सर्ग)। ग्यारहवे सर्ग मे सूक्तियो का सुन्दर समावेश किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता कवि प० रायमल्ल हैं। इनके अन्य ग्रन्थ पचाध्यायी, लाटीसहिता और अध्यात्मकमलमार्तण्ड मिलते हैं। इस ग्रन्थ की रचना आगरा नगर मे स० १६३२ चैत्र कृष्ण अष्टमी पुनर्वसु नक्षत्र में की गई थी। काव्य के प्रारभ मे कवि ने आगरा (अर्गलपुर) का सुन्दर वर्णन किया है। वहाँ उस समय अकबर बादशाह राज्य करता था जिसने कि जजियाकर और मद्यपान का निषेध कर दिया था। यह काव्य गर्गगोत्रीय साहु टोडर अग्रवाल के लिए रचा गया था। कवि ने साहु टोडर के परिवार का पूरा परिचय दिया है। साहु टोडर ने मथुरा की यात्रा की थी और वहाँ जम्बूस्वामी के निर्वाणस्थान पर अपार धन व्ययकर अनेक स्तूपों का जीर्णोद्धार किया था। इसी की प्रार्थना से कवि ने आगरा मे रहते हुए इस काव्य की रचना की थी। पीछे कवि आगरा छोड़ वैराट नगर मे रहने लगे और शेष साहित्य-निर्माण वहीं किया।

जंबूसामिचरिय—इसकी[3] रचना प्राकृत गद्य में हुई है पर यत्र-तत्र सुभाषितो के रूप में प्राकृत पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। इसमे जम्बूस्वामी

---

१ मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला, स० ३५, वम्बई १९३६, जिनरत्नकोश, पृ० १३२.

२. कवि वीरकृत अपभ्रश जम्बुसामिचरिउ का इस काव्य पर प्रभाव दीखता है।

३. जैन साहित्य वर्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४.

का चरित्र संक्षिप्त रूप से वर्णित है। जम्बूस्वामी द्वारा अपनी पत्नियों के समक्ष प्रस्तुत दृष्टान्त-कहानियाँ प्रायः सभी दी गई हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—यह ग्रन्थ प्राकृत चरित्रों में अपनी विशेषता रखता है क्योंकि इसकी रचना ठीक उसी प्रकार की अर्ध-मागधी प्राकृत मे उसी गद्य-शैली से हुई है जैसी आगमों की। वर्णनों को सक्षेप में बतलाने के लिए यहाँ भी 'जाव', 'जहा' आदि का उपयोग किया गया है। इस से यह रचना आगमों के सकलनकाल (५ वीं शता०) के आस पास की प्रतीत होती है परन्तु ग्रन्थ के अन्त में एक प्राकृत पद्य से सूचित किया गया है कि इस ग्रन्थ को विजयदया सूरीश्वर के आदेश से जिनविजय ने लिखा, और इस ग्रन्थ की प्रति स० १८१४ के फाल्गुन सुदि ९ शनिवार के दिन नवानगर में लिखी गई थी।[1] किन्तु वास्तविक रचनाकाल वि० स० १७७५ से १८०९ के बीच आता है क्योंकि तपागच्छ-पट्टावली में ६४ वें पट्टधर विजयदयासूरि का यही समय दिया गया है। जिनविजय नाम के अनेक मुनि हुए हैं। उनमें एक क्षमाविजय के शिष्य थे और दूसरे माणविजय के शिष्य जो कि विजयदयासूरि के समकालीन बैठते हैं। अधिक सभावना है कि वे माणविजय के शिष्य हों क्योंकि उनकी श्रीपालचरित्ररास, धन्नाशालिभद्ररास आदि रचनाएँ मिलती हैं।[2] इस ग्रन्थ के लेखक ने १८ वीं शता० में भी आगमशैली मे यह ग्रन्थ लिखकर एक असाधारण कार्य किया है।[3]

अबतक हमने प्राकृत-सस्कृत में निबद्ध उन पौराणिक काव्यो का परिचय दिया जो तिरसठ शलाका महापुरुषों तथा चौबीस कामदेवों के चरितों से सम्बद्ध थे। उक्त पुराण पुरुषो के अतिरिक्त जैनधर्म और सिद्धान्तों को महत्ता प्रदान करनेवाले एव उक्त महापुरुषों में से अनेकों के समकालीन तथा महावीर के पश्चात् होनेवाले अनेकों अद्‌भुत सन्तों, महर्षियों, साध्वीसतियों, राजर्षियों, व्यापारवीर श्रावकों की जीवनियों पर भी पुराण-शैली मे काव्य रचे गये हैं। अद्‌भुत सन्तों में प्रत्येकबुद्धों के चरित उल्लेखनीय हैं। भग० ऋषभ के समकालीन भरत चक्रवर्ती

---

१. विजयदयासूरीसर आएसं लहिअ बोहणट्ठाए जिणविजयेण य लिहिअं जम्बूचरित्त परमरम्म ॥ इति श्री जम्बूस्वामिचरित्र सम्पूर्ण। स० १८१४ वर्षे फाल्गुण सुदि ९ शनौ श्रीनवानगरे श्रीआदिजिनप्रसादात् शुभं भवतु लेखकपाठकयोः।

२. प्रवेशद्वार, पृष्ठ ४.

३. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १४८.

के सेनापति जयकुमार अपर नाम मेघेश्वर और उनकी सती रानी सुलोचना के चरित भी उपलब्ध हैं। इसी तरह ऋषभदेव के प्रथम गणधर पर पुण्डरीकचरित, महावीर के प्रथम गणधर पर गौतमचरित एवं गौतमीयकाव्य आदि तथा महावीर के समकालीन नरेश श्रेणिक और उनके पुत्र अभयकुमार आदि पर भी चरित काव्य लिखे गये हैं। महावीर के पश्चात् होनेवाले युगप्रभावक आचार्य भद्रबाहु, स्थूलभद्र, पादलिप्त, कालिक, हरिभद्र, हेमचन्द्रादि पर भी चरित ग्रन्थ लिखे गये हैं। इसी तरह साध्वी महिलाओं में अंजना, द्रौपदी, दमयन्ती, राजीमती, चन्दनबाला, मृगावती, जयन्ती आदि पर अनेकों चरित-काव्यों का निर्माण किया गया है।

यहाँ हम सुविधा की दृष्टि से पहले प्रत्येकबुद्धों पर लिखी कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत कर पीछे यथासम्भव अन्य रचनाओं का परिचय देंगे।

प्रत्येकबुद्धचरित :

जैनाचार्यों ने, विशेषकर श्वेताम्बराचार्यों ने बौद्धों की भाँति प्रत्येकबुद्धों की कल्पना की है। प्रत्येकबुद्ध उन्हें कहते हैं जो गृहस्थी में रहते हुए किसी एक निमित्त से बोधि प्राप्त कर लें और अपने आप दीक्षित हो बिना उपदेश किये ही शरीरान्त कर मोक्ष चले जायँ। प्रत्येकबुद्ध प्रायः एकाकी विहारी होता है। वह गच्छवास में नहीं रहता। उत्तराध्ययन[1] सूत्र में चार प्रत्येकबुद्धों का उल्लेख है : करकण्डु, नग्गई, नमि और दुर्मुख। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इनकी कथाओं पर बहुत सा साहित्य निर्माण हुआ है। बौद्धों के पालिसाहित्य[2] में भी इन चारों को प्रत्येकबुद्ध मानकर कथाएँ दी गई हैं। बौद्ध इन्हें महात्मा बुद्ध से पूर्व हुए स्वीकार करते हैं और जैन भग० पार्श्व के तीर्थकाल में। पर उनके जीवन-चरितों पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि ये चारों प्रत्येकबुद्ध भगवान् महावीर की दीक्षा से पूर्व प्रव्रजित हुए हैं और उनके शासनकाल में भी जीवित रहे हैं। प्रत्येकबुद्धों की संख्या में विवाद है। ऋषिभाषितसूत्र[3] में ४५ प्रत्येकबुद्धों के उपदेश संगृहीत हैं उनमें से २० नेमिनाथ के, १५ पार्श्वनाथ के और १० महावीर के तीर्थकाल में हुए बतलाये जाते हैं। नन्दिसूत्र में औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी बुद्धि से युक्त जो मुनि होते हैं वे सब प्रत्येकबुद्ध कहलाते हैं। यह मानकर प्रत्येकबुद्धों की संख्या की अवधि निश्चित नहीं की है।

---

१. १८. ४५.

२. कुम्भकार जातक (सं० ४०८).

३. ऋषिभाषितसूत्र, अनुवादक—मनोहर मुनि, बम्बई, १९६३.

जो हो पर श्वे० जैनाचार्यों ने उत्तराध्ययन मे समागत उक्त चार प्रत्येकबुद्धो पर बहुत-सा साहित्य रचा है। इनके अतिरिक्त अम्बड, कुम्मापुत्त तथा शालिभद्र आदि प्रत्येकबुद्धो पर भी कई रचनाएँ मिलती हैं। पश्चात्काल मे इनमें से अनेकों कथानकों मे परिवर्तन होने से इनका प्रत्येकबुद्ध रूप से उल्लेख नहीं हुआ। दिगम्बरमान्यता मे प्रत्येकबुद्ध माने गये हैं पर उनका उल्लेख केवल पूजाओ मे हुआ है। उत्तराध्ययन के उक्त चार प्रत्येकबुद्धों मे से केवल करकण्डु पर सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में उक्त सम्प्रदाय के विद्वानो ने काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं पर करकण्डु को उन्होने कहीं भी प्रत्येकबुद्ध सज्ञा से नहीं कहा है।

उत्तराध्ययन समागत प्रत्येकबुद्धों पर समष्टिरूप मे कई रचनाएँ लिखी गई हैं। उनमें श्रीतिलक (प्राकृत), जिनरत्न एव लक्ष्मीतिलक (सस्कृत), जिन-वर्धनसूरि (संस्कृत), समयसुन्दरगणि (सस्कृत), भावविजयगणि (सस्कृत) तथा तीन अज्ञात-कर्तृक (२ अपभ्रंश और १ प्राकृत) काव्य उपलब्ध हैं। यहाँ कुछ का परिचय दिया जाता है।

१. प्रत्येकबुद्धचरित—यह प्राकृत भाषा मे निबद्ध रचना है जिसका ग्रन्थाग्र ६०५० श्लोक है। बृहट्टिप्पनिका के अनुसार इसकी रचना स० १२६१ में श्रीतिलकसूरि ने की थी। श्रीतिलकसूरि चन्द्रगच्छीय शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थ अग्रतक अप्रकाशित है।[1]

२. प्रत्येकबुद्धचरित—यह सस्कृत में रचित काव्य है। इसका पूरा नाम प्रत्येकबुद्धमहाराजर्षिचतुष्कचरित्र है।[2] इसके प्रत्येक पर्व में चार सर्ग हैं और अन्त में एक चूलिका सर्ग है। इस तरह इसके १७ सर्गों का रचना-परिमाण १०१३० श्लोक है। प्रस्तुत काव्य जिनलक्ष्मी शब्दांकित है जो इसके दो ग्रथकर्ताओं को द्योतित करता है।

यद्यपि इसमें वर्णित चारों चरित्र एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् हैं अतएव इसमें धारावाहिकता का अभाव है फिर भी इसे एक अच्छे पौराणिक महाकाव्य का रूप दिया गया है। कवि ने इसमें प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य चित्रण मे पर्याप्त रुचि ली है। पुरुष-पात्रों मे सिंहरथ और स्त्री पात्रों मे मदनरेखा के रूप-वर्णन कल्पनात्मक दृष्टि से अच्छे बन पडे हैं। जैनधर्म के साधारण सिद्धान्तो एव नियमो का इस काव्य मे अच्छा वर्णन हुआ है।

---

१. जैन साहित्य संशोधक, भाग १, अंक २, पूना १९२५; जिनरत्नकोश, पृ० २६३.

२. जैसलमेर बृहद्भण्डार, प्रति सं० २७२, २७३, जिनरत्नकोश, पृ० २६३.

इसकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। घटना और परिस्थिति के अनुकूल शब्द-योजना में कवि सफल है। यद्यपि इसमें शान्तरस प्रमुख है फिर भी अन्य रसों की व्यञ्जना भी ठीक तरह से की गई है। इस काव्य को व्यर्थ के शब्दालंकारों से लादने का प्रयत्न नहीं किया गया है पर अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के अच्छे प्रयोग[1] दिखाई पड़ते हैं। छन्द की दृष्टि से इसकी रचना अनुष्टुप् छन्दों में हुई है। सर्गान्त में दूसरे छन्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं बीच में भी अन्य वृत्तों का प्रयोग हुआ है।

कथावस्तु—उपर्युक्त रचनाओं में प्रत्येकबुद्ध करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति का जीवन चरित्र अंकित है। ये चारों समकालीन थे। इनकी कथावस्तु का संक्षेप इस प्रकार है—

१. चम्पानगरी में राजा दधिवाहन और रानी पद्मावती थे। एक समय दुष्ट हाथी द्वारा रानी के अपहरण के कारण उसके पुत्र का जन्म एक नगर के समीप श्मशान भूमि में हुआ। रानी साध्वी बन जाती है पर बालक का पालन और शिक्षण एक मातंग के द्वारा हुआ। उसका नाम अवकर्णक रखा गया। उसकी देह पर रूक्षकण्डू थी। वह खेलकूद में राजा बनकर तथा अपने साथियों को प्रजा बनाकर उनसे कर के रूप में अपने शरीर को खुजाता था इसलिए उसे लोग करकण्डु कहने लगे। काञ्चनपुर के राजा के मरने पर दैवयोग से करकण्डु वहाँ का राजा बनाया गया। एक बार उसने चम्पापुर के राजा दधिवाहन को पत्र लिखा जिसमें एक ब्राह्मण को ग्राम देने की बात थी पर दधिवाहन ने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर करकण्डु ने उस पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय साध्वी पद्मावती (माता) ने प्रकट होकर युद्ध का निवारण और पिता-पुत्र की पहिचान कराई। इस पर राजा दधिवाहन बहुत खुश हुआ और वृद्धावस्था के कारण करकण्डु को राज्यभार सौंपकर स्वयं उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार अपनी आज्ञा से पुष्ट किये गये बैल को कालान्तर में वृद्ध देखकर राजा करकण्डु संसार से विरक्त हो एवं मुनिवेश धारणकर भ्रमण करने लगा।

२. पांचाल देश के कांपिल्यनगर में राजा यव को सभाभवन निर्माण करते समय एक चमकदार मुकुट मिला जिसके धारण करने से वह द्विमुख (दो मुखवाला) मालूम पड़ने लगा और इससे उसका नाम द्विमुख पड़ गया। इसके

---

१. सर्ग २ १२८; ११. १२७-१२८, ३६५, ९. ३२ आदि.

बाद मुकुट के प्रभाव से वह उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत को हराकर बन्दी बनाता है पर अपनी पुत्री के उस राजा पर प्रेमासक्त होने से उससे विवाह कर उसे राज्य लौटा देता है। एकबार काष्ठ के खंभे को लोगों ने इन्द्रध्वज बनाकर बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से पूजा और पीछे उत्सव समाप्त होने पर पृथ्वी पर गिरा दिया जिसे बालकजन विट्मूत्र से लिप्त घसीटकर ले जाने लगे। यह देख द्विमुख को वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा धारण कर ली।

३. सुदर्शनपुर का नृप मणिरथ अपने अनुज युगबाहु की पत्नी मदनरेखा पर आसक्त हो जाता है और उसे पाने के लिए अपने अनुज को मार डालता है। गर्भावस्था मे ही मदनरेखा भाग निकलती है और रंभागृह मे एक बालक को जन्म देती है। सरोवर में वस्त्र-प्रक्षालन को जाते समय उसका अपहरण हो जाता है। रंभागृह से उसके बालक को मिथिलानरेश पद्मरथ ने लाकर पाला-पोसा और उसका नाम नमि रखा और युवक होने पर उसे राज्य देकर प्रव्रज्या धारण कर ली।

एक दिन नमि की देह मे भयंकर दाह होने लगी। रानियाँ उसके लिए चन्दन घिसने लगीं पर उनकी चूड़ियों की ध्वनि से ही उसे बड़ी पीड़ा होती थी। इससे रानियों ने एक चूड़ी को छोड़ शेष को उतार दिया, इससे ध्वनि होनी बन्द हो गई। तब नमि ने यह सोचा कि संग ही सबसे बड़ा दुःख देनेवाला है, ये चूड़ियाँ अन्य चूड़ियों के साथ आवाज करती थीं पर अकेले रहने पर शान्त हो गई हैं अतः शान्ति के लिए एकाकी जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। इस तरह वह विरक्त हो गया और दीक्षा ले ली।

४. गांधार देश का राजा सिंहरथ एक समय वन में जाने पर एक सुन्दरी कन्या से विवाह करता है और उससे अपनी जीवन-कथा सुनाने का आग्रह करता है। वह अपने पूर्व की कथा सुनाकर कहती है—मैं पूर्व में कनकमंजरी नाम के चित्रकार की पुत्री थी और आपके पूर्वभव के जीव राजा जितशत्रु से विवाह हुआ था। मृत्यु के बाद स्वर्ग से आकर राजा दृढरथ की पुत्री कनकमाला हुई हूँ और आप सिंहरथ हुए हैं। एक देवता के आदेश पर यहाँ बैठे आज आपको पति के रूप मे प्राप्त किया है। नृप सिंहरथ पत्नी की आज्ञा लेकर घर आता है और प्रायः हर दूसरे-तीसरे दिन प्रिया कनकमाला की याद करके नग पर जाता रहता है अतः प्रजा उसका नाम नग्गति रखती है। एक दिन वह ससैन्य उपवन मे जाता है। वहा वह आम्रवृक्ष की एक मंजरी तोड़ता है। सभी सैनिक भी एक-एक मंजरी तोड़ते हैं। जिससे वह पेड़ लकड़ी मात्र

रह गया। सुन्दर वृक्ष की थोड़ी देर में यह हालत देख नग्गति विरक्त हो जाता है और दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

चारों प्रत्येकबुद्ध मुनिविहार करते हुए क्षितिप्रतिष्ठितपुर नगर में एक यक्षमन्दिर में परस्पर मिलते हैं। यहाँ करकण्डु अपना कान खुजलाते हैं जिसे देखकर द्विमुख उनसे कहते हैं—तुमने राज्य आदि सब त्याग दिया, इस कण्डू को साथ क्यों लिए फिरते हो। इस पर नमि द्विमुख से कहते हैं कि तुम भी जब राज्य त्यागकर मुनि बन गये तो तुम्हें दूसरों का दोष देखना उचित नहीं। इस पर नग्गति नमि से कहते हैं कि सब कुछ छोड़कर मोक्ष मार्ग मे प्रवृत्त व्यक्ति को परनिन्दा नहीं करना चाहिए। तब करकण्डु ने कहा कि दुष्टबुद्धि से किया गया परदोष-कथन ही निन्दा है, हितबुद्धि से किया गया परदोष-कथन अनुचित नहीं है अपितु उचित ही है। नमि, द्विमुख और नग्गति ने जो कुछ कहा वह अहित निवारण के लिए ही है अतः वह दोष नहीं है। करकण्डु आदि पीछे तपस्याकर मरके पुष्पोत्तर विमान मे उत्पन्न हुए और वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव में तपस्याकर मोक्ष प्राप्त किया।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—काव्य के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता, जिनरत्नसूरि और लक्ष्मीतिलकगणि, दो व्यक्ति हैं। वे सुधर्मागच्छ में हुए थे। उनसे पहले इस गच्छ मे क्रमशः जिनचन्द्रसूरि, नवागी टीकाकार अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि हुए थे। प्रस्तुत ग्रन्थकर्तृद्वय जिनेश्वरसूरि के ही शिष्य थे। खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि के अनुसार जिनेश्वरसूरि ने पौष सुदी ११ स० १२८८ के दिन जावालिपुर (जालौर—राजस्थान) में लक्ष्मीतिलक को दीक्षा दी थी। स० १३१२ की वैशाख-पूर्णिमा के दिन लक्ष्मीतिलक को वाचनाचार्य का पद और स० १३१७ की माघ शुक्ला १२ को उपाध्याय की उपाधि मिली थी। जिनरत्नसूरि का पहला नाम जिनवर्धनगणि था। उन्हें स० १२८३ की माघ कृष्णा ६ को वाग्भटमेरु (बाडमेर) में जिनेश्वरसूरि से दीक्षा मिली थी। सं० १३०४, वैशाखे शुक्ला चतुर्दशी के दिन आचार्य पद मिला था। इस अवसर पर ही जिनेश्वरसूरि ने उनका नाम जिनरत्नसूरि रख दिया था।[१]

इस ग्रन्थ की रचना मे पालनपुर निवासी जगधर के पुत्र भुवनपाल और पद्माकपुत्र सादल ने प्रेरणा दी थी।[२] इस काव्य की रचना स० १३११ मे

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि, पृ० ४९-५१.

२. प्रत्येकबुद्धचरित्र, प्रशस्ति, श्लो० २८-३१.

हुई थी तथा इसका सशोधन जिनेश्वरसूरि तथा अन्य साहित्यिक विद्वानो ने किया था।[1]

दिगम्बर साहित्य में उक्त चार प्रत्येकबुद्धों मे से केवल करकण्डु के चरित्र को लेकर कई रचनाएँ लिखी गई हैं परन्तु उनमे करकण्डु को प्रत्येकबुद्ध नहीं कहा गया और उसके चरित्र को चमत्कारी एव कौतूहलवर्धक घटनाओ से पूर्ण बनाया गया है। इस विषय मे एक प्राचीन कृति अपभ्रश में 'करकण्डुचरिउ' उपलब्ध है जिसे कनकामर मुनि ने ग्यारहवीं शती के मध्यभाग में रचा था। इसी का अनुसरणकर पश्चात्काल में इस कथा का सक्षेपरूप श्रीचन्द्रकृत कथाकोष, रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रव-कथाकोष और नेमिदत्तकृत आराधना-कथाकोष मे दिया गया है। स्वतन्त्र काव्य के रूप में रइधू, जिनेन्द्रभूषण भट्टारक और श्रीदत्तपण्डितकृत करकण्डुचरितों का भी उल्लेख भण्डारों की सूचियों में पाया जाता है।[2] शुभचन्द्र भट्टारककृत सस्कृत में १५ सर्गात्मक काव्य भी उपलब्ध है। अपभ्रश के मर्मज्ञ डा० हीरालाल जैन ने करकण्डुचरिउ[3] की भूमिका मे उक्त कथानक की पूर्व-कथाओं से तुलना तथा उसके विविध तत्त्वों की खोज की है तथा अवान्तर कथाओं के अध्ययन के साथ परवर्ती साहित्य रयणसेहरी-कहा (जिनहर्षगणिकृत) तथा हिन्दी काव्य पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी-कृत) पर उक्त कथानक का प्रभाव दिखाया है। यहाँ उक्तविषयक सस्कृत मे उपलब्ध दो रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

१. करकण्डुचरित—इसमें १५ सर्ग हैं। इसमें करकण्डु की दक्षिण देश मे विजययात्रा, तेरापुर मे जैन गुफाओं का निर्माण, उसकी रानी का अपहरण, फिर सिंहलयात्रा, लौटते समय विद्याधरों द्वारा करकण्डु का अपहरण एवं विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह आदि घटनाओं का रोमाञ्चक रीति से वर्णन है। यद्यपि इस काव्य के रचयिता ने इसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे रचने का दावा किया है पर ग्रन्थ के मिलान से यह सिद्ध हुआ है कि यह कनकामर मुनिरचित 'करकण्डु-चरिउ' का अनुवाद मात्र है।[4] मूल-कथा के साथ-साथ सभी अवान्तर कथाएँ भी इसमे ज्यों की त्यों हैं।

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक० ३२.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ६७.
३. भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६४, भूमिका, पृ० १३-३०
४. करकण्डुचरिउ, प्रस्तावना, पृ० २९.

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता (अनुवादक) भट्टारक शुभचन्द्र हैं। इनका परिचय पाण्डवपुराण के प्रसग मे दिया गया है। ग्रन्थ के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह काव्य जवाछपुर के आदिनाथ चैत्यालय मे सं० १६११ में लिखा गया था। इस काव्य की समाप्ति में उनके शिष्य सकलभूषण सहायक थे।[1]

२. करकण्डुचरित—इस काव्य मे ४ सर्ग हैं जिनमें ९०० श्लोक हैं। इसके रचयिता जिनेन्द्रभूषण भट्टारक हैं जो कि विश्वभूषण के प्रशिष्य तथा ब्रह्म हर्षसागर के शिष्य थे। इसमें अवान्तर कथाएँ बहुत सक्षेप में दी गई हैं। यह रचयिता के 'जिनेन्द्रपुराण' ग्रन्थ का एक भाग भी माना जाता है।[2]

कुम्मापुत्तचरिय—ऋषिभाषित सूत्र में सप्तम अध्ययन कुम्मापुत्त प्रत्येकबुद्ध से सम्बन्धित दिया गया है। इसके चरित्र पर भी दो काव्य उपलब्ध हुए हैं। पहला काव्य प्राकृत की २०७ गाथाओं में निर्मित है।[3] कथानक सक्षेप में इस प्रकार है—एक समय भगवान् महावीर ने अपने समवसरण में दान, तप, शील और भावना रूपी चार प्रकार के धर्म का उपदेश देकर कुम्मापुत्त (कूर्मापुत्र) का उदाहरण दिया कि भावशुद्धि के कारण वह गृहवास में भी केवलज्ञानी हो गया था। कुम्मापुत्त राजगृह के राजा महिन्दसीह और रानी कुम्मा का पुत्र था। उसका असली नाम धर्मदेव था पर उसे कुम्मापुत्त नाम से भी कहते थे। उसने बाल्यावस्था में ही वासनाओं को जीत लिया था और पीछे केवलज्ञान प्राप्त किया। यद्यपि उसे घर मे रहते सर्वज्ञता प्राप्त हो गई थी पर माता-पिता को दुःख न हो, इसलिए उसने दीक्षा नहीं ली। उसे गृहस्थावस्था मे केवलज्ञान इसलिए प्राप्त हुआ था कि उसने पूर्व[4] जन्मों में अपने समाधिमरण के क्षणों मे भावशुद्धि रखने का अभ्यास किया था।

इस ग्रन्थ में ५२, ११२, १६० सस्कृत पद्य, १२०–१२१ अपभ्रंश मे तथा दो गद्य भाग अर्धमागधी के आ गये हैं।

---

१. पद्य सं० ५४-५६; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ९८

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ९५; जैन विविधशास्त्र साहित्यमाला, स० १३१, वाराणसी, १९१९; डा० प० ल० वैद्य, पूना और के० वी० अभ्यकर, अहमदाबाद के संस्करण (१९३१) प्रस्तावना, टिप्पण आदि सहित; ए० टी० उपाध्ये, बेलगाँव, १९३६—भूमिका, अनुवाद, टिप्पण सहित.

४. इस ग्रन्थ में कुम्मापुत्त के पूर्व जन्मो की भी कथा दी गई है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय आचार्य हेमविम के शिष्य जिनमाणिक्य या जिनमाणिक्य के शिष्य अनन्तहंस हैं। कुछ विद्वा अनन्तहंस को ही वास्तविक कर्ता मानते हैं और कुछ उनके गुरु को। ग्रन्थ रचनाकाल नहीं दिया गया पर तपागच्छपट्टावली में हेमविमल को ५५ आचार्य माना गया और उनका समय १६वीं शताब्दी का प्रारम्भ बैठता है इसलिए प्रस्तुत कथानक का काल १६वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है

द्वितीय रचना पूर्णिमागच्छ के विद्यारत्न ने लिखी है जिसका समय सं १५७७ है। ग्रन्थकार की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—जयचन्द्र, भावचन्द्र चारित्रचन्द्र, मुनिचन्द्र (गुरु)।

अम्बडचरित्र—अम्बड को ऋषिभाषित सूत्र में प्रत्येकबुद्ध कहकर उन उपदेशों का संकलन किया है। प्रथम उपांग सूत्र औपपातिक[1] में अम्ब परिव्राजक की कथा दी गई है। संभवतः उसी के चरित्र को लेकर पश्चात्काली कवियों ने अपनी अद्भुत कल्पनाओं का समिश्रणकर ४-५ रचनाएँ लिखी हैं उनमें से मुनिरत्नसूरिकृत काव्य का ग्रन्थाग्र १२९० है।[2] रचनाकाल ज्ञात नहीं है अन्य रचनाओं में अमरसुन्दर (१४५७), हर्षसमुद्रवाचक (स० १५९९) जयमेरु (सं० १५७१) तथा एक अज्ञातकर्ता की कृतियाँ उपलब्ध हैं।[3] यह केवल एक रचना का परिचय दिया जाता है।

अम्बडचरित—इसे अम्बडकथानक भी कहते हैं।[4] इसमें अम्बड का कथा नक बड़ी विचित्रता से वर्णित है। पहले वह एक तान्त्रिक था और उसने यन्त्र-म के बल से गोरखादेवी द्वारा निर्दिष्ट सात दुष्कर कार्य सम्पन्न कर दिखाये। उस ३२ सुन्दरियों से विवाह किया और अपार धन एवं राज्य प्राप्त किया। अन्त उसने प्रव्रजित होकर सल्लेखना-मरण किया। यह कथा संस्कृत में है। इस कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा दिखलाई है और इसे 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' वर्णित विक्रमादित्य के घटनाचक्र के समान घटनाचक्र से सम्बन्धित किया है

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० २५-३०, अम्मडचरित्र.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १५; अहमदाबाद से सन् १९२३ में प्रकाशित.

३. वही, पृ० १५.

४ हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; इसका जर्मन अनुवाद चार्ल्स क्राउस ने किया है जो लीपजिग से १९२२ में प्रकाशित हुआ है; विण्टरनित्स हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ३४० में इसे कौतुकपूर्ण लोक कथा कहा है।

कर्ता एवं कृतिकाल—इसके रचयिता अमरसुन्दरसूरि हैं। इनका नाम सोमसुन्दरगणि (वि० स० १४५७) के शिष्यों में आता है। अमरसुन्दर को 'संस्कृत जल्पपट्ट' कहा गया है। रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

धन्यशालिचरित—अपने ही विवेक से पात्र-दान रूपी धार्मिक प्रवृत्ति द्वारा जीवन को उच्च साधना पथ पर ले जाने के लिए श्रेणिक और महावीर के समकालीन राजगृह के दो श्रेष्ठिपुत्र—धन्यकुमार और शालिभद्र के चरित्र जैन कवियों को बहुत प्रिय हुए हैं। धन्यकुमार की कथा अनुत्तरोववाइयदसाओं[1] में और प्रकीर्णकों के मरणसमाधि में धन्य और शालिभद्र के (प्रायोपगमन-समाधि के उदाहरणरूप) कथानक आये है। ये दोनों भी प्रत्येकबुद्ध[2] की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों को एक साथ कर धन्यकथा, धन्यचरित्र, धन्यकुमारचरित्र, धन्यनिदर्शन, धन्यरत्नकथा, धन्यविलास, धन्यशालिभद्रचरित्र, धन्यशालिचरित्र और शालिभद्रचरित्र[3] नाम से अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :

१. धन्यकुमार या शालिभद्रयति	गुणभद्र	(१२वीं शताब्दी)
२. धन्यशालिचरित्र	पूर्णभद्र	(स० १२८५)
३. शालिभद्रचरित्र	धर्मकुमार	(स० १३३४)
४. धन्यशालिभद्रचरित्र	भद्रगुप्त	(स० १४२८)
५. ,,	दयावर्धन	(स० १४६३)
६. धन्यकुमारचरित्र	सकलकीर्ति	(स० १४६४)
७. धन्यशालिचरित्र (दानकल्पद्रुम)	जिनकीर्ति	(स० १२९७)
८. ,,	जयानन्द	(स० १५१०)
९. धन्यकुमारचरित्र	यशःकीर्ति	
१०. धन्यकुमारचरित्र	मल्लिषेण	(१६वीं का प्रारम्भ)
११. ,,	ब्रह्म नेमिदत्त	(स० १५१८-२८)

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० २४३.

२. गा० १२२; भारतीय संस्कृति मे जैनधर्म का योगदान, पृ० १७२; विंटरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५१८, दोनो सगे संबधी थे और दीक्षा में एक-दूसरे से प्रभावित थे।

३. जिनरत्नकोश, पृ० १८७ और ३८२

१२.	शालिभद्रचरित्र	विनयसागर	(स० १६२३)
१३.	,,	प्रभाचन्द्र	
१४.	,, (प्राकृत)	अज्ञात	
१५.	,, ,,	,,	
१६.	धन्यविलास	धर्मसिंहसूरि	(स० १६८५)
१७.	धन्यचरित्र	उद्योतसागर	(लगभग स० १७४२)
१८.	,,	बिल्हण कवि ?	

कथा का सार—सुप्रतिष्ठितनगर मे नैगम सेठ और लक्ष्मी सेठानी से धनचन्द्रादि पॉच पुत्र हुए। धन्यकुमार उनमे पॉचवॉ था। वह पूर्व जन्म मे पिता के मर जाने से निर्धन होकर बाल्यावस्था मे गाय के बछड़ों को चराता था। एक पर्व के दिन नगर के बालकों को खीर खाते देख उसने अपनी माँ से खीर की मॉग की। माता ने पड़ोसियों से दूध, चीनी, चावल मॉगकर खीर बनाई और गरम परोसकर किसी काम से बाहर चली गई। इस बीच एक मुनिराज आये और उस बालक ने प्रसन्न मन से आहारदान मे वह खीर दे दी। माता के लौटने पर वह कुछ नहीं बोला। माता ने समझा कि इसने खीर खा ली है तथा और चाहता है इसलिए उसने और परोस दी जिसे खाकर वह सो गया। इससे उसके कई बछडे नहीं लौटे। जागने पर वह उनकी तलाश में निकला और रास्ते में एक मुनि से श्रावकव्रत ले लिया तथा रात्रि मे बछड़ों की तलाश करते समय वह एक सिंह द्वारा मारा गया। मुनिदान के प्रभाव से वह धन्यकुमार हुआ तथा स्वल्पकाल में सकल कलाओं का पारगामी हो गया। उसके ज्येष्ठ भ्राता उससे डाह करने लगे। उसने जीवन प्रारम्भ करते ही अनेक आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये। उसने भेड़ों के युद्ध मे हजार दीनार पाये, मृतक-खाट को खरीदकर उसमें कीमती रत्न पाये आदि। भाइयों मे बढती ईर्ष्या के कारण वह घर से बाहर निकल गया और बुद्धिवैभव से अनेकों चमत्कार दिखाकर उसने राजगृह मे अनेकों कन्याओ से तथा गोभद्र सेठ की पुत्री (शालिभद्र की बहिन) से विवाह किया और सुख से रहने लगा। इधर माता-पिता तथा भाइयों की हालत खराब हो चली। उन्हे आजीविका के लिए मजदूरी करनी पड़ी। उसने उन सबकी मदद की और बहुत ख्याति तथा राज-प्रतिष्ठा पाई।

शालिभद्र अपने पूर्व जन्म मे एक गरीब विधवा का पुत्र था। उसका नाम सगमक गड़रिया था। वह भेड़ें चराते समय सामायिक मे बड़ा आनन्द लेता था। एक उत्सव के दिन उसने सब घरों में अच्छे सुस्वादु भोजन तैयार होते देखे और अपनी मा से भी पकवान बनाने को कहा। वह गरीब स्त्री बड़ी

कठिनाई से पकवान बना सकी और बालक को परोसकर बाहर चली गई। उसी समय पारणा के लिए एक मुनि आ गये जिन्हे उसने अपना भोजन दे दिया। रात्रि में उसे भूख के कारण इतनी वेदना हुई कि वह मर गया पर आहारदानरूपी पुण्यफल से राजगृह में भद्रा और सेठ गोभद्र के यहाँ शालिभद्र नामक पुत्र हुआ। वह बड़ा सुन्दर और गुणवान् था। जब वह युवावस्था मे पहुँचा तो उसके पिता ने ३२ कन्याओं से उसका विवाह कर दिया और इस तरह वह आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसका पिता मुनि हो गया और समाधिमरणपूर्वक स्वर्ग गया। देवता पर्याय पाकर उसने अपने पुत्र शालिभद्र के लिए प्रचुर धनसग्रह किया। उस समय 'इतना धनी जितना कि शालिभद्र' यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई। एक दिन उसकी मा ने उसकी बहुओं के लिए बहुमूल्य ३२ रत्नकम्बल खरीदे जिनमे से एक को भी खरीदने का सामर्थ्य राजा श्रेणिक को न था। एक दिन अपने वैभव को देखने के लिए राजा श्रेणिक को साधारण मनुष्य के रूप मे अपने घर आया देख और यह समझकर कि उसके ऊपर भी कोई है वह विरक्त हो गया और प्रत्येकबुद्ध बन गया और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगा। अपने साले के इस चरित्र को देख धन्यकुमार भी सब वैभव छोड़ दीक्षित हो गया। दोनों ने घोर तपस्याकर मोक्ष पद पाया।

धन्यकुमारचरित—यह एक लघु सस्कृत काव्य है जिसमें ७ सर्ग हैं।[१] काव्य की भाषा सरल और सरस है। इस कथा का आधार गुणभद्र का उत्तरपुराण प्रतीत होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि धन्यकुमारविषयक स्वतत्र चरित्रों मे यह सर्वप्रथम है और इस ग्रन्थ में किसी भी पूर्ववर्ती धन्यकुमारचरित्र या उसके लेखक का उल्लेख नहीं किया गया है।

कर्ता और कृतिकाल—इसके लेखक माथुरसंघ के आचार्य माणिक्यसेन के प्रशिष्य और नेमिसेन के शिष्य गुणभद्र मुनि[२] हैं जिन्होंने इसकी रचना महोबे के चन्देलनरेश परमर्दिदेव के शासनकाल में मध्य प्रदेश के विलासपुर नगर मे लम्बकचुक श्रावक बल्हण की प्रेरणा से स० १२२७ और १२५७ के मध्य किसी समय की थी। ग्रन्थकर्ता की अन्य कृतियों मे बिजोलिया पार्श्वनाथ का स्तभलेख और गुणभद्र-प्रतिष्ठापाठ भी हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८७

२. लेखक के विशेष विवरण के लिए देखें–जैन सन्देश, शोधांक ८, पृ० २७४-७६ और पृ० ३०१.

धन्यशालिभद्रकाव्य—इस काव्य में ६ परिच्छेद हैं।[1] ग्रन्थाग्र १४६० तथा प्रशस्ति पद्य मिलाकर १४९० श्लोक-प्रमाण है। ग्रन्थान्त में विविध छन्दमय १५ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है। ग्रन्थ को महाकाव्य कहा गया है क्योंकि इसमें अनेक रसों, अलकारों एव विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा सक्षेप में नगरों, उपवनों आदि का वर्णन है। कथा का मूल उद्देश्य दानधर्म के माहात्म्य को सूचित करना है इसलिए यत्र-तत्र सुललित पदों में धार्मिक उपदेश भरे पड़े हैं। काव्य के बीच-बीच में पहेलियों और सवादो ने कथानक को बड़ा सजीव बना दिया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता जिनपतिसूरि के शिष्य पूर्णभद्रसूरि हैं जिन्होंने ज्येष्ठ शुक्ल १०, वि० स० १२८५ में जैसलमेर में रहकर इसे पूर्ण किया था।[2] इसमें उन्हें सर्वदेवसूरि की सहायता मिली थी। प्रशस्ति मे कर्ता ने अपनी गुरुपरम्परा जिनेश्वरसूरि से प्रारभ की है। ग्रन्थकार की अन्य रचनाएँ अतिमुक्तकचरित्र (स० १२८२) तथा कृतपुण्यचरित्र (सं० १३०५) हैं।

शालिभद्रचरित—यह सात प्रक्रमो का एक लघुकाव्य[3] है जो एक आलकारिक काव्य की सभी विशेषताओं से युक्त है। इसका आधार हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के १०वें पर्व का ५७वॉ अध्याय है। इस काव्य का नाम 'दानधर्मकथा' भी है। इसे अनेकों सूक्तियों, नीति एव व्यावहारिक कहावतों से सजाया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना धर्मकुमार ने स० १३३४ मे की है। धर्मकुमार नागेन्द्रकुल के आचार्य सोमप्रभ के शिष्य विबुधप्रभ के शिष्य थे। इसकी रचना में कनकप्रभ के शिष्य एव अनेक ग्रन्थों के सशोधक आचार्य

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८८, जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत, वि० स० १९९१

२. प्रशस्ति, पद्य स० ११-१२.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३८२; इसकी कथा का सक्षेप अंग्रेजी में विण्टरनित्स की हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २ के पृ० ५१८ में दिया गया है। यह यशोविजय ग्रन्थमाला, वाराणसी (१९१०) से प्रकाशित है। ब्लूमफील्ड ने अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी की पत्रिका, भाग ४३, पृ० २५७ आदि पर विस्तृत परिचय दिया है।

प्रद्युम्न ने सहायता की थी। प्रद्युम्न के पूर्व प्रभाचन्द्र (प्रभावक चरित्रकार) ने इसका संशोधन किया था।

धन्यशालिभद्रचरित—इसके रचयिता रुद्रपल्लीयगच्छ के देवगुप्त के शिष्य भद्रगुप्त हैं।[1] रचनाकाल सं० १४२८ दिया गया है।

धन्यशालिचरित—इसका दूसरा नाम धन्यनिदर्शन भी है।[2] इसकी रचना दयावर्धनसूरि ने सं० १४६३ में की है। उनके गुरु का नाम जयपाण्डु या जयचन्द्र या जयतिलक है। ग्रन्थकार की अन्य महत्त्वपूर्ण कृति 'रत्नशेखररत्नवतीकथा' (सं० १४६३) है जो जायसी के हिन्दी महाकाव्य पद्मावत का स्रोत माना गया है। ग्रन्थकार के विषय में और कुछ नहीं मालूम है।

धन्यकुमारचरित—इसमें सात सर्ग हैं। भाषा सरल एवं सुन्दर है। ग्रन्थाग्र ८५० श्लोक प्रमाण है।[3] इसके रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं जिनका परिचय पहले दिया गया है।[4]

धन्यशालिचरित—इसका दूसरा नाम 'दानकल्पद्रुम' भी है।[5] यह एक संस्कृत-पद्यबद्ध रचना है। इसके कर्ता तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनकीर्ति हैं जिन्होंने इसकी रचना सं० १४९७ में की थी। इनकी अन्य कृतियाँ नमस्कारस्तव स्वोपज्ञवृत्ति के साथ (वि० सं० १४९४), श्रीपालगोपालकथा, चम्पकश्रेष्ठिकथा, पंचजिनस्तव तथा श्राद्धगुणसंग्रह (वि० सं० १४९८) हैं।

१. धन्यकुमारचरित—इसमें पांच सर्ग हैं और ११४० श्लोक हैं। इसकी रचना खरतरगच्छीय जिनशेखर के प्रशिष्य और जिनधर्मसूरि के शिष्य जयानन्द ने सं० १५१० में की थी।[6]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८८.

२. वही, पृ० १८७-१८८, जैन आत्मानन्द सभा (ग्रं० ४३), भावनगर, १९७१.

३. वही, पृ० १८७; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ११; हिन्दी अनुवाद—जैन भारती, बनारस, १९११.

४. पृ० ५१.

५. जिनरत्नकोश, पृ० १७२, १८७; देवचन्द्र लालभाई ग्रन्थमाला, सं० ९, बम्बई, १९११.

६. वही, पृ० १८७, जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, १९२८.

यशःकीर्ति और मल्लिभूषण के धन्यकुमारचरित्र का उल्लेख भर मिलता है। इसी तरह विल्हणकविकृत धन्यकुमारचरित्र का भी।[1]

२ धन्यकुमारचरित—इसमें पॉच सर्ग हैं। इसकी रचना भट्टा० विद्यानन्दि एव मल्लिभूपण के शिष्य ब्रह्म नेमिदत्त ने की थी।[2] ब्र० नेमिदत्त का साहित्यकाल सं० १५१८-२८ माना जाता है।

शालिभद्रचरित—इसकी रचना विनयसागरगणि ने स० १६२३ में की थी।[3] इस रचना एवं रचयिता के सम्बन्ध मे और विशेष कुछ नहीं ज्ञात हो सका है। प्रभाचन्द्रकृत शालिभद्रचरित का भी उल्लेख मिलता है।

प्राकृत में भी कुछ शालिभद्रचरित्रों का पता लगा है। एक मे १७७ गाथाएँ हैं। प्रारम्भ 'सुरवरकयमाणं नट्ठनीसेसमानं' से होता है। अन्यों का उल्लेख मात्र है।[4]

धन्यविलास—इसका ग्रथाग्र ११०० श्लोक-प्रमाण है। यह सस्कृत-कृति है। इसकी रचना धर्मसिंहसूरि ने की थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति मिली है।[5]

धन्यचरित—यह 'संस्कृताभासजल्पमय' विशाल गद्यरचना है। इसका ग्रथाग्र ९००० श्लोक-प्रमाण है। यह ९ पल्लवों मे विभक्त है।[6] इसमें धन्यकुमार, शालिभद्र दोनों का चरित्र है।

इस ग्रथ का आधार जिनकीर्ति की कृति उपर्युक्त 'दानकल्पद्रुम' अपरनाम धन्यशालिचरित्र है।[7] ग्रथ के बीच मे अनेक अवान्तर कथाएँ हैं। यह ग्रथ अनेक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८७

२. वही

३. वही, पृ० ३८२.

४. वही.

५. वही, पृ० १८७.

६. वही; पोपटलाल प्रभुदास, सिहोर द्वारा वि० स० १९९६ मे प्रकाशित.

७. इति श्री जिनकीर्तिविरचितस्य पद्यबद्धश्रीधन्यचरित्रशालिन············· महोपाध्यायश्रीज्ञानसागरगणिशिष्यात्पमतिग्रथितगद्यरचना प्रबधे इत्येवं मया धन्यमुनेः शालिभद्रमुनेः चरितं संस्कृताभासजल्पमयं गद्यबन्धेन लिखितं।

प्रकार की लौकिक शिक्षाओं से भरा हुआ है। बीच-बीच में देशी भाषाओं के अनेक पद्य उद्धृत हैं।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रंथकार ने इतना बड़ा ग्रंथ लिखकर भी अपना नाम सूचित नहीं किया है। केवल ज्ञानसागरगणिशिष्य-अल्पमति दिया है। पर ज्ञानसागर के शिष्य ने प्राचीन गुजराती में २१ प्रकारी और अष्टप्रकारी पूजा की रचना की है। अष्टप्रकारी पूजा की रचना के अन्त में दी गई प्रशस्ति में स० १७४३ दिया गया है तथा कर्ता के नाम पर 'ज्ञान-उद्योत' इस प्रकार का श्लिष्ट-पद दिया गया है। हो सकता है गुरु का नाम ज्ञानसागर और शिष्य का नाम उद्योतसागर रहा हो।[1]

पृथ्वीचन्द्रचरित्र—पृथ्वीचन्द्र नृप की कथा भी प्रत्येकबुद्धचरितों की श्रेणी में आती है क्योंकि उसने सम्यग्दर्शन के प्रभाव से अपना इतना आध्यात्मिक विकास किया था कि उसे गृहस्थावस्था में ही बिना किसी के उपदेश से केवलज्ञान हो गया और मुक्ति प्राप्त हुई थी।

उक्त कथा को लेकर जैन कवियों ने प्राकृत, संस्कृत तथा लोकभाषाओं में अनेकों रचनाएँ लिखी हैं। उनमें से ज्ञात का वर्णन इस प्रकार है :

१. पुहवीचन्दचरिय	सत्याचार्य	(सं० ११६१)	प्राकृत
२. पृथ्वीचन्द्रचरित्र	माणिक्यसुन्दर	(सं० १४७८)	पुरानी गुजराती
३. ,,	जयसागरगणि	(सं० १५०३)	
४. ,,	सत्यराजगणि	(सं० १५३४)	
५. ,,	लब्धिसागर	(सं० १५५८)	
६. ,,	रूपविजय	(सं० १८८२)	
७. ,,	अज्ञात		
८. पृथ्वीचन्द्रगुणसागरचरित्र	अज्ञात		
९. पृथ्वीचन्द्रचरित्र	अज्ञात		संस्कृत गद्य
१०. ,,	अज्ञात		

कथा का सार—पृथ्वीचन्द्र नृप और वणिक् पुत्र गुणसागर ग्यारह भव पूर्व १. शंख नृप और कलावती रानी के रूप में जन्म ले सम्यक्त्व और शील के प्रभाव से उत्तरोत्तर विकास कर अगले भवों में २. राजा कमलसेन-रानी गुणसेना, ३. देवसिंह

१. विशेष के लिए उक्त ग्रन्थ की प्रस्तावना देखें।

नृप-रानी कनकसुन्दरी, ४. देवरथ-रत्नावली, ५. पूर्णचन्द्र-पुष्पसुन्दरी, ६. शूरसेन-मुक्तावली, ७. पद्मोत्तर-हरिवेग (विद्याधर राजा), ८. गिरिसुन्दर रत्नसार (वैमातृक भाई), ९. कनकध्वज-जयसुन्दर (सहोदर), १०. कुसुमायुध-कुसुमकेतु (पिता-पुत्र) और अन्त में पृथ्वीचन्द्र महाराज और गुणसागर श्रेष्ठिपुत्र हुए। दोनों के परिणाम इतने निर्मल थे कि वे दोनों गृहस्थावस्था में ही केवलज्ञानी हो गये और मुक्तिगामी हुए। पृथ्वीचन्द्र के प्रथम भव शंख-कलावती को लेकर कुछ स्वतन्त्र कथाग्रंथ भी बनाये गये हैं।

यहाँ पृथ्वीचन्द्र राजर्षि की कथा से सम्बद्ध कुछ रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

पुहवीचदचरिय—यह प्राकृत भाषा में ७५०० गाथाओं में निबद्ध विशाल ग्रंथ है[1] जो अनेक अवान्तर कथाओं से भरा हुआ है। इसकी रचना बृहद्गच्छीय सर्वदेवसूरि के प्रशिष्य एवं नेमिचन्द्र के शिष्य सत्याचार्य ने महावीर स० १६३१ अर्थात् वि० स० ११६१ में की थी। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं।

इस पर ११०० श्लोक-प्रमाण कनकचन्द्रसूरिकृत टिप्पण तथा रत्नप्रभसूरिकृत चरित्र-सकेत टिप्पण (५०० श्लोक-प्रमाण) भी मिलते हैं।

१. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह सस्कृत भाषा में ११ सर्गात्मक रचना है। इसका परिमाण २६५४ श्लोक-प्रमाण है। इसकी रचना खरतरगच्छ के जिनवर्धनसूरि के शिष्य जयसागरगणि ने पाल्नपुर में सं० १५०३ मे की थी। इनकी अन्य कृति 'पर्वरत्नावली' है।[2]

२. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह काव्य संस्कृत के अनुष्टुप् छन्दों में निर्मित है।[3] इसमें ११ सर्ग हैं और ग्रन्थाग्र १८४६ श्लोक-प्रमाण है।[4] इसमें सर्गों का नामाकन पृथ्वीचन्द्र और गुणसागर के ११ मनुष्यभवों के नाम से किया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २५५-२५६.
२. वही, पृ० २५६.
३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला (सं० ४४), भावनगर, वि० सं० १९७६, जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५१६ में इसे विना देखे ही गद्य-पद्यमय श्लेष-ग्रन्थ कहा गया है।
४. प्रशस्ति, पद्य १०.

यह अनेक अद्भुत घटनाओं से भरा हुआ है। इसमें सरल पद्य प्रसादपूर्ण ढंग से अनेक अवान्तर कथाएँ वर्णित हैं। इस ग्रन्थ का आधार पूर्वाचार्यों की प्राकृत-ग्रन्थ कृति है।[1]

कर्ता एवं कृतिकाल—इसके रचयिता सत्यराजगणि हैं। कवि ने ग्रन्थान्त में १० पद्यों की प्रशस्ति द्वारा अपना परिचय दिया है जिससे ज्ञात होता है कि वे पूर्णिमागच्छ के पुण्यरत्नसूरि के शिष्य थे। यह ग्रन्थ अहमदाबाद में वि० सं० १५३५ में रचा गया था। ग्रन्थरचना के समय इनके गुरु की विद्यमानता माडल-पत्तन के ऋषभदेव मन्दिर में प्राप्त एक धातुप्रतिमालेख (वि० सं० १५३१) से ज्ञात होती है।

३. पृथ्वीचन्द्रचरित—वृद्ध तपागच्छ के उदयसागर के शिष्य लब्धिसागर ने इसे सं० १५५८ में संस्कृत भाषा में लिखा था।[2] इनकी दूसरी रचना श्रीपालकथा सं० १५५७ में बनी थी।

४. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह संस्कृत गद्य में ११ सर्गात्मक बृहत्कृति है।[3] ग्रन्थाग्र ५९०१ श्लोक-प्रमाण है। गद्य सरल भाषा में है और बीच-बीच में संस्कृत और प्राकृत के पद्य भी यहाँ-वहाँ से उद्धृत हैं। इसमें कवि ने अपनी रचना का आधार किसी प्राकृत कृति को माना है: कविना प्राक्कृतस्य प्राकृतपृथ्वीचन्द्रचरित्रस्य गद्यबन्धभाषया किंचित् लिख्यते।

कर्ता एवं कृतिकाल—ग्रन्थान्त में ११ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता तपागच्छ-संविग्नशाखा के पद्मविजयगणि के शिष्य रूपविजयगणि हैं जिन्होंने प्रस्तुत काव्य अहमदाबाद नगर में वि० सं० १८८२ श्रावण मास में नेमिनाथ के जन्म दिन पर बनाया था।[4]

एतद्विषयक अन्य कृतियों के लेखकों का नाम अज्ञात है। उनमें एक संस्कृत गद्य में भी मिलती है।[5]

---

१. प्रशस्ति, पद्य ४.
२. जिनरत्नकोश, पृ० २५६, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१८.
३. वही, पृ० २५६.
४. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९१८; मेसर्स ए० एम० कम्पनी, भावनगर, १९३६, प्रशस्ति, पद्य ५-११.
५. जिनरत्नकोश, पृ० २५६.

आर्द्रककुमारचरित—ऋषिभाषित सूत्र में आर्द्रक को २८वाँ प्रत्येकबुद्ध माना गया है। उन्होंने कामवासना की गर्हा की थी। सूत्रकृतांग के अनुसार आर्द्रक एक अनार्य देश का राजकुमार[1] था, श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार से उसकी मैत्री थी। आर्द्रककुमार ने अभयकुमार के लिए उपहार भेजे थे। अभयकुमार ने भी उसके पास धर्मोपकरण के रूप में उपहार भेजे थे जिसे पाकर आर्द्रककुमार प्रतिबुद्ध हुआ। जातिस्मरणज्ञान के आधार से उसने दीक्षा ग्रहण की और वहाँ से भगवान् महावीर की ओर विहार किया।

आर्द्रककुमारचरित्र[2] पर अज्ञातकर्तृक कई रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उनमें एक १५९ और दूसरी १७० प्राकृत पद्यों में है।

उसकी पत्नी श्रीमती पर भी श्रीमतीकथा[3] नामक रचना अज्ञातकर्तृक उपलब्ध हुई है।

केवलिचरित :

प्रत्येकबुद्धों के चरित के समान ही विभिन्न समयों में हुए कतिपय केवलियों (केवलज्ञानसम्पन्न) के चरितों को भी रोचकता के कारण जैन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है। उनमें से कामदेवों के चरितों के प्रसग में हम विजयचन्द्रकेवलिचरित्र (प्राकृत), सिद्धर्षिकृत श्रीचन्द्रकेवलिचरित्र, भुवनभानुकेवलि (बलिनरेन्द्र) चरित्र, तथा जम्बुकेवलिचरित आदि कुछ रचनाओं का परिचय दे चुके हैं। इनके अतिरिक्त केवलिचरित्र पर और भी रचनाएँ मिलती हैं।

जयानन्दकेवलिचरित—यह ६७५ ग्रन्थाग्र-प्रमाण है। इसकी रचना तपागच्छ के प्रभावक आचार्य सोमसुन्दर के शिष्य मुनिसुन्दर (वि० सं० १४७८-१५०३) ने की है।[4]

---

१. डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने आर्द्रककुमार को ईरान के ऐतिहासिक सम्राट् कुरुष (ई० पू० ५५८-५३०) का पुत्र माना है।—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ६७-६८.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४; पाटन सूची, भाग १, पृ० १५२ और ४०५.

३. वही, पृ० ३९८.

४. जिनरत्नकोश, पृ० १३४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९६८.

दूसरी कृति संस्कृत गद्य में है। इसकी रचना तपागच्छीय प्रभावक आचार्य यशोविजय के गुरुभाई पद्मविजय ने सं० १८५८ में की है। इस कृति का आधार मुनिसुन्दरकृत रचना है।[1]

प्रकीर्णक पात्रो के चरित्र :

उपर्युक्त श्रेणीबद्ध (तीर्थंकर-चक्रवर्ती से लेकर प्रत्येकबुद्ध तक) चरित्रों और पौराणिक काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत-प्राकृत में अनेकों प्रकीर्णक काव्य मिलते हैं जिनमें ऐसे पात्रों का चरित्र चित्रित है जो उपर्युक्त तीर्थंकर—चक्रवर्ती आदि के जीवन से सम्बद्ध थे या समकालिक थे और उनके भव्य जीवन के प्रति कवियों और श्रोताओं की विशेष अभिरुचि थी। यहाँ हम पहले तीर्थंकर से अन्तिम तीर्थंकर तक के कालों में समागत पात्रों पर आश्रित प्रमुख काव्यों का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

जयकुमार-सुलोचनाचरित—भरत चक्रवर्ती के सेनापति और हस्तिनापुर के नरेश जयकुमार (मेघेश्वर) तथा उनकी रानी सुलोचना के कौतुकपूर्ण चरित को लेकर जैन कवियों ने सुलोचनाकथा या चरित, जयकुमारचरित[2], सुलोचनाविवाह नाटक (विक्रान्तकौरव नाटक) आदि विविध रूप में काव्य लिखे। कथा प्रसंग में कवियों को उक्त चरित की कई बातें रोचक लगीं। जयकुमार सौन्दर्य और शील के भण्डार थे। एक समय वे काशिराज अकंपन की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में आये। अनेकों सुन्दर राजकुमारों, यहाँ तक कि चक्रवर्ती भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के रहने पर भी, सुलोचना ने वरमाला जयकुमार के गले में डाल दी। स्वयंवर समाप्त होते ही भरत के पुत्र अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच युद्ध ठन गया पर विजय जयकुमार की हुई। इस अप्रिय घटना की सूचना भरत चक्रवर्ती के पास भेजी गई। इस पर चक्रवर्ती ने जयकुमार की ही बहुत प्रशंसा की। विवाह के अनन्तर विदा लेकर जयकुमार चक्रवर्ती से मिलने अयोध्या जाते हैं और वहाँ से लौटकर जब वे अपने पड़ाव की ओर आते हैं तो मार्ग में 'गंगा नदी पार करते समय उनके हाथी को एक देवी ने मगर का रूप धारणकर ग्रस लिया जिससे जयकुमार-सुलोचना हाथीसहित गंगा में डूबने लगे। तब सुलोचना ने पंच-नमस्कार-मंत्र की आराधना से उस उपसर्ग को दूर किया। हस्तिनापुर पहुँचकर जयकुमार और सुलोचना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२४; यह पालीताना से सन् १९२१ में प्रकाशित हुई है।
२. वही, पृ० १३२ और ४४७.

ने अनेक सुख भोगे। एक समय महल की छत पर बैठे दोनों ने आकाशमार्ग से पार होते विद्याधरदम्पति को देखा और दोनों अपने पूर्व जन्म की घटना स्मरणकर मूर्च्छित हो गये। पीछे सचेत हो पूर्व भवावलियों का वर्णन करते हुए सुख से समय बिताने लगे। एक बार एक देव ने आकर जयकुमार के शील की परीक्षा की। पीछे जयकुमार ने संसार से विरक्त हो भगवान् ऋषभदेव के पास दीक्षा ले ली। इस कथानक पर निम्नलिखित रचनाएँ अब तक उपलब्ध हुई हैं :

महासेन (वि० सं० ८३५ से पूर्व)	सुलोचनाकथा
गुणभद्र (वि० सं० ९०५ के लगभग)	महापुराण के अन्तिम पांच पर्वों में
हस्तिमल्ल (१३वीं शती)	विक्रान्तकौरव या सुलोचनानाटक
वादिचन्द्र भट्टा० (वि० सं० १६६१)	सुलोचनाचरित
ब्र० कामराज (१७वीं शती का उत्तरार्ध)	जयकुमारचरित्र
ब्र० प्रभुराज	"
प० भूरामल	जयोदयमहाकाव्य

इन रचनाओं में विक्रान्तकौरव का परिचय नाटकों के प्रसंग में तथा जयोदयमहाकाव्य का शास्त्रीय महाकाव्यों के प्रसंग में करेंगे। शेष का परिचय इस प्रकार है।

सुलोचनाकथा—इसका[1] उल्लेख जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण में, उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में और धवलकवि ने अपने अपभ्रंश हरिवंशचरिउ में बड़े प्रशंसा भरे शब्दों में किया है।

कुवलयमाला में इस कथा के विषय में कहा है—

> सण्णिहियजिणवरिंदा धम्मकहाबंधदिक्खियणरिंदा।
> कहिया जेण सुकहिया सुलोयणा समवसरणं च ॥ ३९ ॥

अर्थात् जिसने समवसरण जैसी सुकथिता सुलोचनाकथा कही। जिस तरह समवसरण में जिनेन्द्र स्थित रहते हैं और धर्मकथा सुनकर राजा लोग दीक्षित होते हैं, उसी तरह सुलोचनाकथा में भी जिनेन्द्र सन्निहित हैं और उसमे राजा ने दीक्षा ले ली है। कुवलयमाला से पाँच वर्ष बाद लिखे गये हरिवंशपुराण में उक्त ग्रन्थ के विषय में कहा है—

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२०-४२१.

महासेनस्य मधुरा शीलालंकारधारिणी।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना॥

अर्थात् शीलरूप अलंकार को धारण करनेवाली और मधुरा वनिता के समान महासेन की सुलोचनाकथा की प्रशंसा किसने नहीं की? धवल महाकवि ने रविषेण के पद्मचरित के साथ महासेन की सुलोचनाकथा का उल्लेख किया है—

मुणि महसेणु सुलोयणु जेण, पउमचरिउ मुणि रविसेणेण।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता महासेन थे और वे वि० सं० ८३५ से पहले हुए हैं। उद्योतनसूरि और जिनसेन समकालीन तथा एक देशस्थ थे अतएव अधिक संभावना यही है कि दोनों द्वारा प्रशंसित यह कथा-ग्रन्थ एक ही था। सम्भवतः यह प्राकृत रचना थी।

सुलोचनाचरित—यह ९ परिच्छेदों में विभक्त है। इसका ग्रन्थाग्र ४५२५ श्लोक-प्रमाण है।[1] प्रशस्ति के अनुसार यह सुगम संस्कृत में लिखा गया है।[2] इसके रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र हैं। इनकी अन्य रचनाएँ हैं पार्श्वपुराण, ज्ञानसूर्योदय, पवनदूत, यशोधरचरित, पाण्डवपुराण आदि तथा कई गुजराती ग्रन्थ। इस काव्य की एक प्रति ईडर के ग्रन्थभण्डार में है जो रचयिता के शिष्य ब्र० सुमतिसागर ने व्यारानगर में वि० सं० १६६१ में लिखी थी। ग्रन्थ-रचना इससे अवश्य ही कुछ वर्ष पहले हुई होगी।

ब्र० कामराज की एतद्विषयक रचना का नाम जयपुराण या जयकुमार-चरित्र है। यह संस्कृत काव्य है। इसमें १३ सर्ग हैं।[3] प्रभुराजकृत जयकुमार-चरित्र का उल्लेख मात्र मिलता है। इस चरित पर अपभ्रंश में ब्र० देवसेन और रइधू की रचनाएँ भी मिलती हैं।[4]

भरत के उक्त सेनापति के चरित्र के अतिरिक्त भरत के एक पुत्र एवं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८.

२. विहाय पदकाठिन्यं सुगमैर्वचनोत्करैः। चकार चरितं साध्व्या वादिचन्द्रोऽल्पमेधसाम्॥

३. जिनरत्नकोश, पृ० १३२.

४. वही.

ऋषभदेव के प्रथम गणधर[1] पुण्डरीक के चरित्र को लेकर भी एक जैन कवि ने पुण्डरीकचरित्र प्रस्तुत किया है जिसका परिचय इस प्रकार है—

पुण्डरीकचरित—यह महाकाव्य आठ सर्गों में विभक्त है जिसमें २८३० पद्य हैं। उनका परिमाण ३३०० श्लोक-प्रमाण है।[2] पौराणिक महाकाव्य होने से इसमें अनेक अलौकिक एवं अप्राकृत तत्त्वों का समावेश हुआ है। साथ ही स्तोत्रों और माहात्म्यों का भी वर्णन हुआ है। शत्रुंजयमाहात्म्य का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। इसमें अवान्तर कथाओं में अन्यभवों का वर्णन देकर कर्मफल और जैनधर्म के महत्त्व को दिखाया गया है।

इस काव्य के नायक का कथानक वास्तव मे तृतीय सर्ग से प्रारभ होता है। प्रथम दो सर्गों में ऋषभदेव एव भरत-बाहुबलि का वर्णन है। पहले इसमें आठ सर्ग होने की बात कही गई है किन्तु आठ सर्गों के बाद भी १०० पद्यो से ग्रन्थ की समाप्ति की गई है। वस्तुतः यह काव्य का नौवा सर्ग माना जाना चाहिए पर कवि ने कहीं भी इसे नवाँ सर्ग नहीं कहा है। काव्य के नायक को मोक्षपद-प्राप्ति अष्टम सर्ग के मध्य में ही दिखाई गई है जहाँ कि कथा की समाप्ति समझी जानी चाहिए किन्तु कवि ने आगे कुछ बढाकर ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती के निर्वाण को दिखाने के लिए कथा-क्रम जारी रखा है। इस काव्य के नाम से ज्ञात होता है कि पुण्डरीक ही इसका नायक है। इसलिए इसमें उसके व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावशील होना चाहिए पर उसका व्यक्तित्व इस काव्य में ऋषभदेव और भरत के आगे कुछ दबा हुआ दृष्टिगत होता है और वह केवल उपदेशक के रूप में ही दिखाई पड़ता है। इस तरह काव्य के नायकत्व रूप में ऋषभदेव, भरत और पुण्डरीक ये तीन पात्र सम्मुख आते हैं।

पुण्डरीकचरित की भाषा सरल और सरस है। इसमें अवसर के अनुकूल ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से भाषा में प्रसादगुण की अधिकता है किन्तु युद्ध आदि के प्रसंगों में वह ओजप्रधान हो गई है। इस चरित की भाषा में यमक और अनुप्रास का आग्रह बहुत प्रबल है जिससे भाषा में गति, प्रवाह और झकृति के गुण आ गये हैं।[3] पुण्डरीकचरित में यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग भी किया गया है। प्राकृत के

---

१. श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार.

२. शारदा विजय जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित; जिनरत्नकोश, पृ० २५१.

३. पुण्डरीकचरित, सर्ग १, श्लोक ७५-७६; सर्ग ५, श्लो० १९५, ३३७ आदि.

गद्य-पद्य की योजना भी इस चरित्र में की गई है। इनमें से कुछ प्राचीन अर्धमागधी आगमों से उद्धरण के रूप मे उद्धृत किये गये है और कुछ की रचना स्वय कवि ने की है।[1] यह चरित विविध अलंकारों की योजना से समृद्ध है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग तो प्रचुर हुआ है पर अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इस चरित मे विविध छन्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है। महाकाव्य के परम्परागत नियमों का पालन न कर प्रत्येक सर्ग में अनेक वृत्तों का प्रयोग भी किया गया है, छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। वैसे काव्य में अनुष्टुप् का प्रयोग सबसे अधिक है। उसके बाद उपजाति, वसन्ततिलका, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग क्रमशः कम होता गया है। अन्य छन्दों में स्वागता, हरिणी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस चरित के अन्त में कवि ने अपनी गुरुपरम्परा का वर्णन किया है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता कमलप्रभसूरि हैं जो चन्द्रगच्छीय साधु थे। उनके पूर्ववर्ती आचार्यों में चन्द्रगच्छ मे चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धर्मघोषसूरि हुए जिनके चरणों की वन्दना जयसिंह नृप भी करता था। धर्मघोषसूरि के पश्चात् उनके पट्ट पर क्रमशः कूर्चालसरस्वती की उपाधि से विभूषित चक्रेश्वरसूरि आदि कई आचार्य हुए उनमें से एक रत्नप्रभसूरि थे। पुण्डरीकचरित के रचयिता कमलप्रभसूरि इन्हीं रत्नप्रभसूरि के शिष्य थे। कमलप्रभसूरि ने इस काव्य की रचना गुजरात के एक नगर धवलक्क (धोलका) मे वि० स० १३७२ में की है।[2] प्रस्तुत काव्य के निर्माण की प्रेरणा कवि को मुनियों से मिली थी। इस काव्य का आधार भद्रबाहुकृत शत्रुजयमाहात्म्य, वज्रस्वामीकृत शत्रुंजयमाहात्म्य और पादलिप्तसूरिकृत शत्रुंजयकल्प बतलाया गया है।

अन्य महापुरुषों में भगवान् मुनिसुव्रत के तीर्थंकाल में रामचन्द्र के चरित से सम्बद्ध सीता, लक्ष्मण चरित्र के अतिरिक्त सुग्रीव पर सुग्रीवचरित्र[3] (प्राकृत) मिलता है।

---

१. पुण्डरीकचरित, सर्ग ३, श्लो० १०-११.

२. श्रीविक्रमराज्येन्द्रात् त्रयोदशशतमिते।
द्वासप्तत्यधिके वर्षे विहितं धवलक्के॥

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४.

अंजनासुन्दरीचरित—हनुमान की माता अजनासुन्दरी पर अंजनासुन्दरीचरित नामक, खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि की शिष्या गुणसमृद्धिमहत्तराकृत, ५०३ प्राकृत गाथाओं का काव्य (स० १४०६), जिनहस के शिष्य पुण्यसागरगणिकृत (३०३ सस्कृत श्लोकों में) काव्य, खरतरगच्छीय रत्नमूर्ति के शिष्य मेरुसुन्दरोपाध्यायकृत (१६ वीं शता०) तथा ब्रह्म जिनदासकृत काव्य[1] मिलते हैं।

राजीमती-रुक्मिणी-सुभद्रा-द्रौपदीचरित—भगवान् नेमिनाथ और कृष्णकालीन अनेक धर्मपरायणा महिलाओं के चरित्र भी जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं। यथा—नेमिनाथ की भावी पत्नी राजीमती पर आशाधरकृत राजीमतीविप्रलंभ (खण्डकाव्य) तथा यशश्चन्द्र का राजीमतीप्रबोधनाटक[2]; कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी पर रुक्मिणीचरित (जिनसमुद्र, १८वीं शती), रुक्मिणीकथानक[3] (छत्रसेन आचार्य), कृष्ण की बहिन सुभद्रा पर सुभद्राचरित्र[4] (ग्रन्थाग्र १५००) तथा पाण्डवपत्नी द्रौपदी पर द्रौपदीसंहरण (समयसुन्दर, १७वीं शती), द्रौपदीहरणाख्यान[5] (पण्डित लालजी) तथा अज्ञातकर्तृक द्रौपदीचरित नामक काव्य मिलते हैं।

वरांगचरित्र—बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के समकालीन नृप एव पुण्यपुरुष वराग की कथावस्तु जैन कवियों को काव्य के माध्यम से गृहीधर्म—अणुव्रत तथा अध्यात्मधर्म को समझाने में बहुत प्रिय रही है। वराग के चरित में धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्वर्ग-समन्वित धर्मकथा के दर्शन काव्यरचयिताओं ने किये और पाठकों को कराये हैं। अबतक वरागचरित नाम से सस्कृत में तीन, कन्नड में एक तथा हिन्दी में दो काव्य उपलब्ध हुए हैं। केवल सस्कृत रचनाओं का ही यहाँ परिचय प्रस्तुत किया जाता है—

१. वरांगचरित्त—जैन चरित काव्यों में संस्कृत का महत्त्वपूर्ण सर्वप्रथम चरित काव्य जटासिंहनन्दि का वरागचरित है। यद्यपि इसके पूर्व रविषेण का 'पद्मचरित' उपलब्ध है पर वह अधिकाश मे 'पउमचरिय' की छाया रूप सिद्ध

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४.
२. वही, पृ० ३३१.
३. वही, पृ० ३३२.
४. वही, पृ० ४४५.
५. वही, पृ० १८२.

हुआ है तथा वह बहुनायकवाली रचना है। प्रस्तुत काव्य एक नायकवाली रचना है। इसमें ३१ सर्ग हैं जिनमे कुल मिलाकर २८१५ विविध वृत्त हैं।[१]

कथावस्तु—विनीत देश के उत्तमपुर नगर में राजा धर्मसेन और रानी गुणवती से वरांग नाम का राजकुमार हुआ। युवा होने पर उसका दश राजकुमारियों से विवाह किया गया। एक समय उस नगर में भगवान् नेमिनाथ के प्रधान शिष्य वरदत्त आये। उनसे राजा धर्मसेन और राजकुमार वरांग ने धर्म श्रवण किया और अन्त में सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का स्वरूप समझ वराग ने उनसे अणुव्रत ग्रहण किया तथा सभी प्राणियों के प्रति मैत्री और प्रेम का आचरण प्रारंभ किया। राजा ने तीन सौ पुत्रों के रहते हुए भी वरांग के गुणों से प्रभावित हो उसे युवराज पद दिया। इससे वराङ्ग की विमाता मृगसेना और उसका पुत्र सुषेण डाह करने लगे और वरांग को भगाने के लिए उन्होंने सुबुद्धि नामक मंत्री से सहायता प्राप्त की। एक समय मत्री के द्वारा शिक्षित दुष्ट घोड़ा वराग को चढ़ने के लिए दिया गया जिसने कुमार को एक घने जगल में ले जाकर पटक दिया जहाँ वराग को अनेक कष्ट झेलने पड़े। एक बार एक हाथी की सहायता से उसने एक व्याघ्र के मुख से अपनी जान बचाई। वहीं एक पक्षी ने एक सुन्दरी का रूप धारण करके वराङ्ग को लुभाना चाहा किन्तु स्वदारसन्तोषव्रत की परीक्षा में वह अडिग निकला। वहीं भ्रमण करते समय वह भीलों द्वारा पकडा गया पर उनके मुखिया के पुत्र को सर्पदश से अच्छा करने के कारण उसे उनसे मुक्ति मिली। एक बार भीलों से लड़कर उसने वणिग्दल की रक्षा की और उनके मुखिया के साथ ललितपुर आकर 'कश्चिद्भट' नाम धारण कर वहाँ रहने लगा।

इधर वराङ्ग के अकस्मात् गायब हो जाने से उसके माता-पिता और पत्नियाँ बहुत शोकाकुल हो गये पर एक मुनि के उपदेश से सान्त्वना पाकर वे सब अपना समय धर्म-ध्यान में बिताने लगे। एक बार मथुरा के राजा द्वारा ललितपुर पर चढ़ाई करने पर कश्चिद्भट नामधारी वरांग ने वहाँ के राजा की सहायताकर उसे मार भगाया। तब ललितपुर नरेश ने उससे अपनी कन्याओं के विवाह के साथ आधा राज्य प्रदान किया। एक समय उसके पिता के राज्य पर बकुलनरेश ने आक्रमण किया क्योंकि उसके सौतेले भाई सुषेण के राज्य सम्हालने के कारण शासन कार्य बिगड़ गया था। उसके पिता ने ललितपुर के राजा से

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४२; डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (सं०), वरांगचरित, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३८.

सहायता की याचना की। इस मौके का वराग ने लाभ उठाया और बकुलनृप को परास्तकर अपने पिता के नगर में प्रवेश किया। उत्तमपुर की जनता ने वराग का स्वागत किया। इसके बाद अपने विरोधियों को क्षमाकर वह वहाँ का राज्यशासन सम्हालने लगा और पिता की आज्ञा से नये देशों को जीतने निकला। पीछे उसने नये राज्य की स्थापनाकर आनर्तपुर को अपनी राजधानी बनाई। एक दिन उसने अपनी प्रधान रानी के एक प्रश्न पर गृहस्थ का मर्म बतलाया तथा वहीं जिनगृह तथा जिनप्रतिमा की स्थापना की।

एक दिन आकाश में वराङ्ग ने टूटते हुए तारे को देखा। इससे उसे वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र सुगात्र को राज्यभार सौंपकर वरदत्त केवलीसे जिनदीक्षा ले ली तथा तपस्या कर मुक्ति पद प्राप्त किया।

वराङ्गचरित के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में उसे धर्मकथा[1] कहा गया है। यद्यपि कवि ने इस रचना को महाकाव्य की उपाधि नहीं दी है फिर भी इसमें पौराणिक महाकाव्य की अनेक विशेषताएँ हैं, यथा—सर्गों में विभाजन तथा महाकाव्योचित नगर, ऋतु, केलि, विरह, विवाह, युद्ध, विजय आदि का वर्णन, विभिन्न छन्दों का उपयोग तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन। इसका नायक वराङ्ग धर्मवीर और युद्धवीर है।

वराङ्गचरित में जैन सिद्धान्त और नियमों का वर्णन बहुत है। चौथे से लेकर दसवें तक तथा छब्बीसवाँ और सत्ताईसवाँ सर्ग इस निमित्त ही रचे गये हैं। यदि इन सर्गों को ग्रन्थ से निकाल भी दिया जाय तो घटनाओं के वर्णन में कोई अन्तर नहीं आता। इस काव्य के विविध स्थलों मे जीव और कर्म-सम्बन्ध, सुख और दुःख का कारण, सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, ससार का स्वरूप, गृहस्थधर्म, जिनपूजा और जिनमन्दिर-निर्माण का महत्त्व, महाव्रत, गुप्ति, समिति आदि का निरूपण किया गया है। कवि ने अनेक प्रसङ्गों में इतर मतों की आलोचना की है। उन्होंने ससार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के कारण स्वरूप पुरुष, ईश्वर, काल, कर्म, दैव, ग्रह आदि का खण्डन किया है। इसी तरह बौद्ध सिद्धान्तों—क्षणिकवाद, शून्यवाद, विज्ञप्तिमात्रतावाद और प्रतीत्यसमुत्पाद-वाद का खण्डन किया है। कवि ने रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुमार और बुद्ध के देवत्व की भी समीक्षा की है। कवि ने जन्मना वर्ण-व्यवस्था का खण्डन

---

१. इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते। स्फुटशब्दार्थसन्दर्भे वराङ्गचरिताश्रिते॥

विलंबित, भुजगप्रयात, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालभारिणी, मालिनी और वसन्ततिलका उल्लेखनीय है। काव्य में छन्द-सम्बन्धी अनियमितताएँ भी दृष्टि-गोचर होती हैं, जैसे अनुष्टुप् के कुछ छन्दों में नौ अक्षर हैं। एक उपजाति मे एक चरण वंशस्थ वृत्त का है। एक में अक्षराधिक्य है।[१]

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य में ग्रन्थकार का कहीं नामोल्लेख नहीं हुआ, न कोई प्रशस्ति ही दी गई है इससे उसके सम्बन्ध में अन्तरङ्ग साक्ष्य एक प्रकार से मूक है पर बाह्य साक्ष्यों से हमें अवश्य सहायता मिलती है। यथा सर्वप्रथम उद्योतनसूरि ने अपने काव्य कुवलयमाला (ई० ७७८) मे वराग-चरित और उसके रचयिता जटिल का उल्लेख किया है।[२] इसके पाँच वर्ष बाद जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण (ई० ७८३) में केवल वरागचरित की प्रशंसा की है—'सुन्दरी नारी की तरह वराङ्गचरित की अर्थपूर्ण रचना अपने गुणों से किसके हृदय मे अपने प्रति गाढ अनुराग उत्पन्न नहीं करती!'[३] एक अन्य जिनसेन के आदिपुराण (लग० ई० ८३८) में केवल जटाचार्य की प्रशंसा की गई है[४], साथ ही उसमे वराङ्गचरित से बहुत-सी सामग्री भी ली गई है। धवल-कवि ने अपने अपभ्रंश हरिवंश (११वीं शती) मे तो रचयिता और काव्य दोनों का एक साथ उल्लेख किया है।[५] कन्नड 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (चामु-ण्डरायपुराण) के रचयिता मंत्री एव सेनापति चामुण्डराय ने अपने पुराण के एक गद्यांश में वराङ्गचरित के प्रथम सर्ग के छठे और सातवें श्लोकों को व्याख्यान रूप में दिया है और प्रथम सर्ग के १५वें पद्य को 'जटासिंहनन्द्याचार्यवृत्तम्' कर के उद्धृत किया है।

उक्त उल्लेखों से निष्कर्ष निकलता है कि इस वरागचरित के रचयिता जडिल, जटाचार्य या पूर्ण नाम जटासिंहनन्द्याचार्य हैं। कन्नड साहित्य के कवियों—

---

१ प्रस्तावना, पृ० ४८-४९.

२ जेहिं कए रमणिज्जे वरंगपउमाणचरियवित्थारे।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो॥

३. वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक्।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम्॥ १. ३५.

४. काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात्॥ १. २०.

५. जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु जडिलमुणिणा वरंगचरित्तु।

पम्प, नयसेन, जन्न, गुणवर्म, कमलभव और महाबलि ने अपने पुराणों में जटासिंहनन्दि का उल्लेख किया है। प्रस्तुत कवि ने अपने ग्रन्थ मे किसी भी पूर्ववर्ती कवि का उल्लेख नहीं किया है। चूँकि इनका सर्वप्रथम उल्लेख उद्योतनसूरि की कुवलयमाला (शक स० ७००=७७८ ई०) में हुआ है अतः जटासिंहनन्दि इनसे अवश्य पूर्ववर्ती हैं। कन्नड साहित्य में इनके विविध उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि ये कर्णाटकवासी थे। कर्णाटक प्रदेश के पल्लक्कीगुण्डु नाम की पहाड़ी पर अशोक के शिलालेख के समीप दो पदचिह्न अंकित हैं। उनके ठीक नीचे पुरानी कनड़ी मे दो पंक्ति का एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि चावय्य ने जटासिंहनन्द्याचार्य के पदचिह्नों को तैयार कराया। संभवतः इसी कवि का वह समाधिस्थल हो।[1] इस काव्य के सम्पादक डा० आ० ने० उपाध्ये ने जटासिंहनन्दि का समय सातवीं शती ईस्वी का अन्त बतलाया है।[2] कवि के इस काव्य की तुलना अनेक दृष्टियों से अश्वघोष के बुद्धचरित से की जा सकती है। कालिदास और भारवि की रचनाओं और वरांगचरित में कोई साम्य नहीं है।[3]

वरांगचरित पर अन्य संस्कृत रचनाएँ ६-७ शताब्दी बाद की हैं।

२. वरांगचरित—इस द्वितीय रचना में १३ सर्ग हैं और काव्य का परिमाण अनुष्टुप् छन्दों में १३८३ है।[4] इसका आधार पूर्वोक्त वरांगचरित है। पर इसके रचयिता ने उक्त कथानक में से वर्णन और धर्मोपदेशों को कम कर दिया है। धार्मिक और दार्शनिक चर्चाएँ भी नाममात्र के रूप में हुई हैं। कथानक में कवि ने मात्र इतना परिवर्तन किया है कि जहाँ जटासिंहनन्दि ने वरांग की विरक्ति का कारण आकाश में टूटते हुए तारे का दर्शन बतलाया, वहाँ प्रस्तुत काव्य मे उसकी विरक्ति का कारण दीपक का तैल घट जाने से उसकी क्षीण होती हुई ज्योति का दर्शन है।

यद्यपि यह पूर्व. वरांगचरित का संक्षिप्त रूप है फिर भी कवि ने अपने भावों को सुन्दर रसों, अलंकारों और छन्दों मे व्यक्त करने में सफलता पाई है। इसमें

---

१. प्रस्तावना, पृ० १९.

२. वही, पृ० २२.

३. वही, पृ० ७३.

४. पं० जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले द्वारा सम्पादित और मराठी मे अनूदित, सोलापुर, १९२७.

अनावश्यक बातों को हटा देने से कथानक में पूर्ण धारावाहिकता पाई जाती है। इस काव्य के द्वितीय सर्ग में शृंगार रस, छठे और आठवें सर्ग में वीर रस, सातवें में करुण रस तथा शान्त रस की योजना की गई है। इस काव्य में प्रचलित सभी अलंकारों का व्यवहार किया गया है। विविध छन्दों के प्रयोग में कवि निष्णात है। प्रथम सर्ग में वंशस्थ, २, ६, ९ और १३ सर्ग में उपजाति तथा ४, ५, ७, ८ और ११ सर्ग अनुष्टुप् में, ३ सर्ग स्वागता में, १० सर्ग वसन्ततिलका में, १२ सर्ग गीति तथा आर्या छन्दों में निर्मित किये गये हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में दो पद्यों के छन्द अवश्य देखे गये हैं और तेरहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य चमत्कार के हेतु बीच-बीच में नीतिवचनों का भी प्रयोग किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—कवि ने काव्य के अन्त में एक पद्य द्वारा अपना नाम वर्धमान भट्टारक तथा मूलसंघ, बलात्कारगण और भारतीगच्छ सूचित किया है।[1] पर उसने अपनी गुरुपरम्परा आदि का उल्लेख नहीं किया है। जैन शिलालेखों से बलात्कारगण के दो वर्धमानों के नाम ज्ञात होते हैं। शक सं० १३०७ (ई० सन् १३८५) के विजयनगर से प्राप्त एक लेख में धर्मभूषण के गुरु के रूप में एक वर्धमान उल्लिखित हैं[2] और दूसरे हुम्मच शिलालेख (ई० सन् १५३०) के रचयिता के रूप में माने गये हैं।[3] विजयनगर के धर्मभूषण न्यायदीपिका ग्रन्थ के रचयिता ही हैं जिनके समय की पूर्वसीमा शक संवत् १२८० (ई० १३५८) मानी गयी है। इससे उनके गुरु का समय इसी के आस-पास रहा होगा। श्रवणबेल्गोला से प्राप्त एक लेख में एक वर्धमानस्वामि का समय शक सं० १२८५ (ई० सन् १३६३) दिया गया है। यदि ये वे ही वर्धमान हैं जो कि इस काव्य के रचयिता हैं तो इन्हें ईस्वी सन् की १४वीं शताब्दी उत्तरार्ध

---

१. स्वस्ति श्रीमूलसंघे भुवि विदितगणे श्रीबलात्कारसंज्ञे,
श्रीभारत्याख्यगच्छे सकलगुणनिधिर्वर्धमानाभिधानः।
आसीद्भट्टारकोऽसौ सुचरितमकरोच्छ्रीवराङ्गस्य राज्ञो,
भव्यश्रेयांसि तन्वद्भुवि चरितमिदं वर्ततामार्कतारम्॥ १३.८७

२. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २ (मा० दि० जैन ग्रन्थमाला), लेख सं० ५८५.

३. वही, लेख सं० ६६७.

का विद्वान् मान सकते हैं। हुम्मच के कन्नड-संस्कृत लेख के रचयिता वर्धमान ने भी धर्मभूषण के गुरु के रूप में उक्त वर्धमान की स्तुति की है।[1]

ज्ञानभूषण भट्टारककृत एक अन्य वरांगचरित का भी उल्लेख मिलता है।[2]

महावीरकालीन श्रेणिक-परिवार के चरित्र :

भग० महावीर का समकालीन राजगृहनरेश श्रेणिक जैन धर्मानुयायी था। जैनागमों में उसका कई स्थलों पर वर्णन है। यहाँ उसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। जैन चरित्र काव्यों में उस पर कई रचनाएँ मिलती हैं—

१	श्रेणिकचरित्र (श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति)	देवेन्द्रसूरि (सं० १३२७ के पूर्व)
२	श्रेणिकद्व्याश्रयकाव्य	जिनप्रभ (वि० सं० १३५६)
३	श्रेणिकपुराण या चरित्र	भट्टारक शुभचन्द्र (वि० सं० १६१२)
४	श्रेणिकराजकथा (गद्य)	धर्मवर्धन या धर्मसिंह (वि० सं० १७३६ के लगभग)
५	श्रेणिकपुराण	बाहुबलि
६-७	श्रेणिकचरित्र	अज्ञात

श्रेणिकचरित—इसमें ७२९ अनुष्टुप् पद्य हैं।[3] बीच बीच में प्राकृत पद्य भी हैं। यह श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति से अलगकर प्रकाशित किया गया है।[4] वहाँ यह प्रभावना के महत्त्व को सूचित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। इसमें संक्षेप में श्रेणिक, उसकी रानियों, पुत्रों तथा जीवन की अनेक धार्मिक घटनाओं का वर्णन है। यह एक धार्मिक काव्य है। इसमें श्रेणिक नरेश के राजनैतिक जीवन का कोई चित्रण नहीं है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि हैं। इनका स्वर्गवास वि० सं० १३२७ में हुआ था। इनकी अन्य रचनाएँ—पाँच नव्यकर्मग्रन्थ सटीक, भाष्यत्रय, श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति, धर्मरत्नटीका, सिद्धपञ्चासिका और सुदर्शनाचरित्र मिलती हैं।

---

1. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पृ० ५२०.
2. जिनरत्नकोश, पृ० ३४१.
3. वही, पृ० ३९९.
4. ऋषभदेव केशरीमल श्वे० जैन संस्था, रतलाम, सं० १९९४.

अन्य श्रेणिकचरितों में जिनप्रभ के श्रेणिकद्वयाश्रयकाव्य का शास्त्रीय काव्यों में वर्णन करेंगे। भट्टा० शुभचन्द्र का श्रेणिकपुराण एक साधारण रचना है जो हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है।[१] शेष का उल्लेख मिलता है।[२]

जैनागमों में न केवल श्रेणिक का ही चरित वर्णित है बल्कि उसके राजकुमारो का भी। जैन कवियों ने जिस तरह श्रेणिक पर स्वतत्र काव्य रचनाएँ की हैं उसी तरह उसके राजकुमारों पर भी चरित एव कथा-ग्रन्थ लिखे हैं। राजा श्रेणिक की अनेक रानियाँ थी और उनसे अनेक राजकुमार थे। उनमें से अशोकचन्द्र[३] अर्थात् कुणिक या अजातशत्रु पर, दूसरे पुत्र अभयकुमार[४] तथा अन्य राजकुमारों में मेघकुमार[५] और नन्दिषेण[६] पर चरित-काव्य एव कथाएँ मिलती हैं। इनमें से अभयकुमार-चरित्र पर लिखा एक काव्य कुछ महत्त्वपूर्ण है, उसका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

अभयकुमारचरित—यह अभयाङ्क चिह्नित काव्य १२ सर्गों का है।[७] इसका रचना-परिमाण ९०३६ श्लोक है। इसमें राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार का विस्मयकारी चरित्र वर्णित है। सक्षेप में वह इस प्रकार है—राजगृह के राजा प्रसेनजित के कई पुत्रों में चातुर्यगुण-सम्पन्न एक पुत्र श्रेणिक था। पर पिता की उपेक्षा के कारण वह परदेश चला जाता है जहाँ वह श्रेष्ठीपुत्री नन्दा से विवाह कर लेता है। कुछ दिनों बाद पिता की रुग्णता का समाचार पाकर वह राजगृह लौटता है। वहाँ उसका राजतिलककर प्रसेनजित स्वर्गवासी हो जाता है। इधर पितृगृह में नन्दा के पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम अभयकुमार रखा जाता है। वयस्क होने पर अभयकुमार अपनी माता को साथ लेकर राजगृह अपने पिता के पास आता है। पुत्र के चातुर्य से प्रसन्न होकर श्रेणिक उसे प्रधान मत्री बना देता है। दूसरे-तीसरे सर्ग में अभयकुमार की चातुरी से श्रेणिक का विवाह वैशालीनरेश चेटक की पुत्री चेल्लना से होता है। गर्भवती

---

१. दिगं० जैन पुस्तकालय, सूरत.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३९९

३. वही, पृ० १७.

४ वही, पृ० १२-१३.

५. वही, पृ० ३१३.

६. वही, पृ० १९९.

७. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१७; जिनरत्नकोश, पृ० १२.

होने पर वह चेल्लना के विचित्र दोहद को अपनी चातुरी से शान्त करता है। इसी तरह श्रेणिक की दूसरी रानी धारिणी के अकालवर्ष दोहद को वह अपनी चातुरी से पूर्ण करता है। चतुर्थ सर्ग में उसके अनेक विस्मयकारी कार्यों का वर्णन है। पाँचवे से सातवें सर्ग में श्रेणिक और उसकी रानियों से संबधित कथाएँ हैं। एक कथा मे चेल्लना का हार खोने पर अभयकुमार अपनी चातुरी से उसे खोज निकालता है। इसी तरह आठवे से दसवें सर्गों में अनेक कथाओं का वर्णन है जो किसी न किसी प्रकार से अभयकुमार के चातुर्य प्रदर्शन से सम्बद्ध की गई हैं। ग्यारहवें सर्ग मे महावीर स्वामी के राजगृह आगमन पर अभयकुमार दीक्षा-ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त करता है और बारहवें में दीक्षित हो तपस्याकर सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होता है।

इस काव्य की कथा बड़ी रोचक है। इस काव्य मे प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण मे काव्यकार को पर्याप्त सफलता मिली है।[१] अनेक स्थलों पर उसने प्रकृति का स्वाभाविक रूप में चित्रण किया है। पात्रों के सौन्दर्य-चित्रण की ओर भी कवि ने पर्याप्त ध्यान दिया है।[२] पर वह परम्परागत उपमानों में वर्णित है, सहज सौन्दर्य के रूप मे नहीं।

अभयकुमारचरित्र में अपने समय के समाज का, उसमें व्याप्त धारणाओं, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और मान्यताओं का यथार्थ चित्रण हुआ है।[३] इस काव्य में सामाजिक अध्ययन की जितनी सामग्री मिलती है उतनी इस युग के अन्य काव्यों में नहीं मिलती।

भाषा की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। अन्य काव्यों की अपेक्षा इसकी भाषा बहुत ही व्यावहारिक और मुहावरेदार है। इसमें सरलता और सरसता सर्वत्र व्याप्त है। समस्त पदावली का प्रयोग बहुत ही कम किया गया है। कहीं-कहीं अनुकूल शब्दों के चयन से सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[४] इस काव्य

---

१. वही, सर्ग, १.२७८-२८२; २.७८; ३.२०४-२०५, २४२-२४३; ६.५९-६२; ८.५.

२. वही, सर्ग, १.१६७, २०१; २.२.

३. वही, सर्ग, १.३०६-३३४, ३९२-४१०, ४९६-४७१; २.१०१-१५६; ३.१७४-१७७, १८३-१८५; ४.१०८, १६८, २५८; ५.२२९-२३०, ५६९-५७१; ९.४०-४७, ५०, ५१, ५६, ५८, ४३७, ६६०-६६८; ११. २६२, ९०३-९०४, ९२१-९२२.

४. वही, सर्ग, १०.५७-५९.

में लोकोक्तियों एव मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।[1] उनका प्रयोग ऐसी कुशलता से किया गया है कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया है और वे वाक्य के अग बन गये हैं। इस काव्य में देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का भी बहुत प्रयोग हुआ है। कवि ने अनेक देशी शब्दों को ही सस्कृत रूप देकर उनका प्रयोग किया है, जैसे डोगर (डूंगर—पर्वत), केदारक (क्यारि), हदते (हगता है), सिघ्रन (सूघ्रना), तालक (ताला), विभामण (विछावन), प्रोयितु (पिरोना) आदि। इसकी भाषा के प्रवाह में अलकारों का प्रयोग भी स्वभावतः हो गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन किया गया है। १,३,५,७,९,११,१२ सर्गों में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है। दूसरे मे उपजाति, चौथे में माधव, छठे में रथोद्धता, आठवें में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है। दसवें और प्रशस्ति में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस काव्य में कुल १५ छन्दों का प्रयोग हुआ है जैसे अनुष्टुप्, उपजाति, वसन्ततिलका, रथोद्धता, माधव, तोटक, स्रग्विणी, दोधक, द्रुतविलम्बित, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, आर्या, शिखरिणी तथा मन्दाक्रान्ता।

कविपरिचय और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ग्रन्थकर्ता का परिचय मिलता है। तदनुसार इसके रचयिता चन्द्रतिलक उपाध्याय चन्द्रगच्छीय थे। इसी चन्द्रगच्छ में प्रसिद्ध विद्वान् वर्धमानसूरि हुए थे। उनके बाद क्रमशः जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि और जिनेश्वरसूरि हुए। कवि चन्द्रतिलक उपाध्याय जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। प्रशस्ति में कवि ने विभिन्न मुनियों का साभार उल्लेख किया है जिनसे उसने विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था। इस कृति की रचना कवि ने जिनपाल उपाध्याय की प्रेरणा से की थी। इसका सशोधन लक्ष्मीतिलकगणि और अभयतिलकगणि ने किया था। इसके लेखन का प्रारम्भ वाग्भटमेरु (बाड़मेर) नगर में हुआ था और समाप्ति गुजरात के खम्भात

---

१. वही, सर्ग १.१३०; ४.३९४; ५.४४२, ७०२, ७.६९०; ८.१२८, १५३; ९.८४, १७२, ४३०, ४८६, ६८५,९२२, ६२३; ११.७२१; १२.१७१ आदि.

नगर में वघेला नरेश वीसलदेव के राज्य मे वि० स० १३१२ में दीपावली के दिन हुई थी।

अभयकुमारचरित नाम की रचनाओं में भट्टारक सकलकीर्तिकृत तथा एक अज्ञात लेखक की रचना का उल्लेख मिलता है।[1]

महावीरकालीन अन्य पात्रो के चरित :

भगवान् महावीर के समकालीन अनेक सन्तों, नरेशों, धार्मिक राजकुमारों, राजकुमारियों तथा सेठ, गृहस्थ एव अन्य वर्ग के लोगों के चरित्र पर भी जैन कवियों ने काव्य लिखे हैं।

राजन्यवर्ग में राजगृह के नृप श्रेणिक और उसके राजकुमारों के अतिरिक्त कौशाम्बी नरेश पर उदयनचरित्र[2], उज्जैनी नृप पर प्रद्योतकथा[3], सिन्धु-सौवीर नृपति पर उदायनराजकथा,[4] दशार्णभद्र देश के राजा पर दशार्णभद्रचरित[5] (प्राकृत) तथा हस्तिनापुर के नरेश पर शिवराजर्षिचरित[6] लिखे गये हैं। इसी तरह राजकुमारों में पृष्ठचम्पा के राजकुमार महाशाल,[7] अतिमुक्तक[8] और मृगापुत्र[9] पर चरितग्रन्थ उपलब्ध हैं।

धार्मिक सेठों में धन्यकुमार-शालिभद्र के अतिरिक्त सुदर्शन सेठ[10] पर भी कई काव्य लिखे गये हैं। धनी गृहस्थों में कामदेव[11] श्रावक का चरित्र उल्लेखनीय है। इसी तरह आनन्दादि[12] दस श्रावकों पर भी चरितग्रन्थ उपलब्ध हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३.
२. वही, पृ० ४६.
३. वही, पृ० २६४.
४. वही, पृ० ४६
५. वही, पृ० १७१.
६. वही, पृ० ३८४.
७. वही, पृ० ३०७.
८. वही, पृ० ४.
९. वही, पृ० ३१३.
१०. वही, पृ० ४४४.
११. वही, पृ० ८४.
१२. वही, पृ० ३०.

सामान्य वर्ग में से अर्जुन मालाकार पर तथा चौरकर्मनिरत व्यक्तियों में विद्युच्चर[1], रौहिणेय[2] और दृढप्रहारि[3] पर चरितग्रन्थ मिलते हैं।

महासन्तों में गौतम गणधर और जम्बूस्वामी के अतिरिक्त अम्बड परिव्राजक एव गागेय मुनि पर चरित्र उपलब्ध हैं। भक्त महिलाओं में चन्दना, मृगावती, जयन्ती, प्रभावती, श्रीमती (आर्द्रकुमार की रानी), सुलसा एव रेवती श्राविका आदि पर भी ग्रन्थ लिखे गये हैं।

यहाँ हम कुछ रचनाओं का सक्षिप्त परिचय देते हैं।

गौतमचरित—भग० महावीर के प्रथम गणधर गौतम पर कई काव्य लिखे गये हैं उनमें से प्रस्तुत काव्य में ५ सर्ग हैं। इसकी रचना मडलाचार्य धर्मचन्द्र (दिग०) ने की है। धर्मचन्द्र भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य, भानुकीर्ति के प्रशिष्य तथा श्रीभूषण भट्टारक के शिष्य थे। इस काव्य का काल स० १७२६ है।[4]

दूसरी रचना[5] भट्टाकर यशःकीर्तिकृत का भी निर्देश मिलता है।

तीसरी रचना का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

गौतमीयकाव्य—यह काव्य ११ सर्गों में विभक्त है।[6] प्रारम्भ में श्रोताओं के मनोरजन के लिए उपवनशोभा, षड्ऋतु-वर्णन, समवसरण की शोभा आदि का वर्णन है। इस काव्य-ग्रन्थ में गौतम इन्द्रभूति के सशय का निवारण करने के लिए और उन्हें चारित्र में प्रवेश करने के लिए भगवान् महावीर उपदेश देते हैं। उपदेश में जैनधर्म के गूढ़ से गूढ़ तथ्य आ गये हैं, जैसे तर्कों द्वारा आत्मसिद्धि आदि। इन्द्रभूति के बाद अग्निभूति, व्यक्ताचार्य, सुधर्मा, मण्डित, मेतार्य प्रभृति के सन्देहों का निराकरण तथा जैनधर्म में दीक्षा का वर्णन है। इस प्रकार इस काव्य मे प्रारम्भिक जैनसघ का एक छोटा-सा इतिहास उपस्थित किया गया है। कवि ने बड़े कौशल से क्लिष्ट एव नीरस विषय का भी हृदयाकर्षक ढग से काव्यशैली में वर्णन किया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५६.
२. वही, पृ० ३३४.
३. वही, पृ० ११७.
४. वही, पृ० १११.
५ वही.
६. वही, पृ० ११२, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सिरीज (सं० ९०), १९४०, व्याख्यासहित.

काव्यकर्ता और रचना-समय—खरतरगच्छ के अन्तर्गत दत्तगच्छ के पाठक रूपचन्द्रगणि[1] ने सं० १८०७ में इस काव्य की रचना की। ग्रन्थ के अन्तिम चार श्लोकों में ग्रन्थकार की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने जोधपुर नगर में श्री अभयसिंह नृप के राज्यकाल मे इसकी रचना की थी।

इस काव्य पर वि० स० १८५२ में अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणगणि ने गौतमीयप्रकाश नामक व्याख्या लिखी है।

भग० महावीर के ११ गणधर थे पर गौतम को छोड़ अन्य पर स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

गांगेयभंगप्रकरण—भग० महावीर और पार्श्वनाथ सन्तानीय मुनि गागेय के बीच नारक जीवों आदि के सम्बन्ध मे हुई चर्चा का वर्णन भगवतीसूत्र के ९वें शतक के ३२वें उद्देश में दिया गया है। उसी की स्मृति जागरूक रखने के लिए गागेय मुनि के जीवन पर पद्मविजय ने स० १८७८ में ५४ प्राकृत गाथाओं में[2] तथा मेघमुनि के शिष्य श्रीविजय ने २३ गाथाओं में स्वोपज्ञ अवचूरि के साथ रचना[3] की है। उत्तमविजय के शिष्य धर्मविजय द्वारा रचित गागेयभगप्रकरण[4] का भी उल्लेख मिलता है।

उदायनराजकथा तथा प्रभावतीकथा—सिन्धु सौवीर महावीर-बुद्ध के समय में एक विशाल राज्य माना जाता था। वहाँ के राजा का नाम उदायन था जो अपने समय का बड़ा पराक्रमी और प्रभावक राजा था। उसकी रानी का नाम प्रभावती था जो वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी। प्रभावती निर्ग्रन्थ श्राविका थी, पर उदायन तापस भक्त था। प्रभावती मृत्यु पाकर स्वर्ग में गई। उसने अपने पति को प्रतिबोधा और उसे दृढ़निष्ठ श्रावक बनाया। पीछे वह अपने भाजे केशी को राज्य सौंप दीक्षित हो गया। जैन कवियों को उदायन राजर्षि और प्रभावती के चरित बड़े रोचक लगे और उन्होंने उदायननृपप्रबन्ध,

---

१. इनका दूसरा नाम रामविजयोपाध्याय है और इन्हें दयासिंह का शिष्य कहा गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १०४, आत्मवीर ग्रन्थमाला मे १९१७ में प्रकाशित.

३. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित; इसकी हस्त० प्रति सं० १६७२ की मिली है।

४. जिनरत्नकोश, पृ० १०४.

उदायनराजकथा और उदायनराजचरित्र नाम से तीन-चार काव्य[1] तथा रानी प्रभावती पर प्रभावतीकथा, प्रभावतीकल्प, प्रभावतीचरित्र (संस्कृत), प्रभावती-दृष्टान्त (प्राकृत) नामक कृतियों[2] की रचना की।

मृगापुत्रचरित—यह उत्तराध्ययन के १९वें अध्ययन पर आश्रित प्राकृत ग्रन्थ है।[3] इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। विपाकसूत्र में भी एक मृगापुत्र का वर्णन आता है जिसके द्वारा दुःखविपाक का एक रोमाचकारी चित्र उपस्थित किया गया है।

अतिमुक्तकचरित—अन्तगडदसाओ में दो अतिमुक्तकों का वर्णन आता है : एक तो नेमि और कृष्ण के समय के जो कस और देवकी के अग्रज तथा कुमारकाल में दीक्षित हो गये थे और दूसरे महावीर के समय के राजकुमार जो आध्यात्मिक समस्याओं के समाधानार्थ कुमारकाल में ही भिक्षु-जीवन स्वीकारकर अन्त में मुक्त हुए थे। अतिमुक्तक के चरित्र को लेकर सस्कृत में तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें से एक २११ सस्कृत पद्यों में जिनपति के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने स० १२८२ में पाल्नपुर में रहते हुए लिखी थी।[4] पूर्णभद्रगणि की अन्य कृतियाँ धन्यशालिभद्रचरित्र (स० १२८५) तथा कृतपुण्यचरित्र (स० १३०५) हैं।

दूसरा काव्य भी सस्कृत में है जिसे अचलगच्छ के शालिभद्र के शिष्य धर्मघोष ने स० १४२८ में रचा था।[5]

एक अज्ञात लेखककृत अतिमुक्तचरित्र[6] का भी उल्लेख मिलता है।

सुदर्शनचरित—इसमें सुदर्शन मुनि का चरित्र वर्णित है। जैन परम्परा में इन्हें महावीर के समकालीन अन्तःकृत केवली माना गया है। इनका सक्षिप्त वर्णन अन्तगडदसाओ तथा भत्तपइण्णा में दिया गया है। भत्तपइण्णा और मूलाराधना (भगवती आराधना) में इन्हें णमोकार मन्त्र के प्रभाव से मूर्ख गोपाल के जीवन से उत्कर्षकर सुदर्शन सेठ और उसी जन्म मे मोक्षफल पानेवाला -

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४६.

२. वही, पृ० २६६.

३ वही, पृ० ३१२.

४. वही, पृ० ४; जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, १९४४.

५. वही, पृ० ४.

६. वही.

बतलाया गया है। इस कथा का विस्तार हरिषेणाचार्य के बृहत्कथाकोश में, श्रीचन्द्रकृत अपभ्रंश कहाकोसु, तथा रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोश में दिया गया है। एतद्विषयक सर्वप्रथम स्वतंत्र काव्य अपभ्रंश में नयनन्दि का सुदंसणचरिउ (सं० ११००) है। इसके बाद हमें संस्कृत की तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं का उत्तरार्ध) कृत काव्य में आठ परिच्छेद हैं।[1] उसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १६५४ की मिली है। सकलकीर्ति और उनकी कृतियों का उल्लेख पहले कर चुके हैं।

२. भट्टारक मुमुक्षु विद्यानन्दिकृत काव्य १२ अधिकारों में विभक्त है। ग्रन्थ-परिमाण १३६२ श्लोक-प्रमाण है।[2] ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में महावीर-समागम, दूसरे में श्रावकाचार एवं तत्त्वोपदेश, अष्टम में सुदर्शन के पूर्वभवों का तथा नवम में द्वादश अनुप्रेक्षाओं का वर्णन है और शेष अधिकारों में सुदर्शन के वर्तमान भवों का। समस्त ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्दों में निर्मित है पर अधिकारान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। ग्रन्थ में 'उक्तं च' द्वारा अन्य ग्रन्थों से प्राकृत एवं संस्कृत पद्य उद्धृत किये गये हैं।

प्रस्तुत काव्य के प्रत्येक अधिकार की अन्तिम पुष्पिका तथा ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति में कर्ता ने अपना नामनिर्देश तथा गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है जिससे मालूम होता है कि इसके लेखक मुमुक्षु विद्यानन्दि हैं। ये मूलसंघ-भारतीगच्छ, बलात्कारगण के भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रशिष्य तथा भट्टारक देवकीर्ति के शिष्य थे। विद्यानन्दि के शिष्य मल्लिभूषण, श्रुतसागर और ब्रह्म नेमिदत्त भी अच्छे कवि एवं ग्रन्थकार हुए हैं। विद्यानन्दि के कार्यकलाप का समय वि० सं० १४८९ से १५३८ माना जाता है। प्रस्तुत काव्य की रचना उन्होंने गन्धारपुरी (सूरत या उसके भाग या समीपवर्ती नगर) में सं० १५१३ के

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १२; मराठी अनुवाद सहित सोलापुर से सन् १९२७ में प्रकाशित, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४५४-५६ में विशेष परिचय दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, वि० सं० २०२७, डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, प्रस्तावना द्रष्टव्य.

लगभग की थी।[१] इस काव्य की हस्तलिखित प्राचीन प्रति सं० १५९१ की मिलती है।

विद्यानन्दिकृत उक्त काव्य को ही भ्रान्ति से उनके शिष्य ब्रह्म नेमिदत्त या मल्लिभूषण या विश्वभूषणकृत मान लिया गया है।

कामदेवचरित—महावीर के जीवन-प्रसग में धनी गृहस्थ कामदेव का वर्णन आता है। उसी को लेकर रोचक काव्य के रूप में अचलगच्छ के मेरुतुगसूरि ने वि० स० १४०९ मे चरित्र निर्मित किया।[२]

आनन्दसुन्दरकाव्य—महावीरकालीन दस श्रावकों[३] के समुदित चरित के रूप मे संस्कृत भाषा में आनन्दसुन्दरकाव्य[४] अपर नाम दशश्रावकचरित की रचना सर्वविजयगणि ने की। उक्त गणि ने तपागच्छीय लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टधर सुमतिसाधु के पट्टकाल में मालवा के गियासुद्दीन खिलजी के राजकर्मचारी जावड़ की प्रार्थना पर उक्त काव्य की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५५१ की मिली है। सर्वविजयगणि की अन्य रचना सुमतिसम्भव भी मिलती है जिसमें सुमतिसाधु और जावड़ का चरित्र वर्णित है। दशश्रावकों के चरित को लेकर प्राकृत में जिनपति के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने स० १२७५ मे उपासकदशाकथा[५] अपर नाम दशश्रावकचरित और साधुविजय के शिष्य शुभवर्धन ने सं० १५४२ में ग्रन्थाग्र ८०० श्लोक-प्रमाण दशश्रावकचरित्र[६] (प्राकृत) की रचना की। एक अज्ञात लेखककृत आनन्दादिश्रावकचरित[७] तथा दशश्राद्धचरित[८] नामक चरितग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं।

आर्जुनमालाकार—अर्जुनमाली घटनाविशेष के प्रभाव से समग्र मानवजाति के प्रति विद्रोही बन जाता है और प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मार गिराने का

---

१ प्रस्तावना, पृ० १३–१७.

२ जिनरत्नकोश, पृ० ८४; हेमचन्द्र सभा, पाटन, १९२८.

३ दशश्रावक : आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकोलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता, सालिहीपिता.

४ जिनरत्नकोश, पृ० ३०.

५ वही, पृ० ५६, १७१.

६ वही, पृ० १७१.

७. वही, पृ० ३०.

८. वही, पृ० १७१.

महान् हिंसक सकल्प कर बैठता है। कालान्तर मे दूसरी घटना के प्रभाव से वह प्रतिबुद्ध हो भगवान् महावीर का शिष्य बन आत्म-कल्याण करता है। इस चरित को लेकर खरतरगच्छ के गुणशेखर के शिष्य नयरग ने सं० १६२४ के लगभग आर्जुनमालाकार काव्य लिखा।[1] इसी चरित को लेकर वर्तमान युग में तेरापन्थी आचार्य कालूगणि से दीक्षित एव तुलसीगणि के शिष्य चन्दनमुनि ने सुललित सस्कृत गद्य मे आर्जुनमालाकार ग्रन्थ लिखा है।[2] इसका रचनाकाल स० २०२५ है। काव्य में सात समुच्छ्वास हैं। चन्दनमुनि की अनेक सस्कृत-प्राकृत रचनाएँ मिलती हैं: सस्कृत में प्रभवप्रबोधकाव्य, अभिनिष्क्रमण, ज्योतिस्फुलिंग, उपदेशामृत, वैराग्यैकसप्तति, प्रबोधपंचपञ्चाशिका, अनुभवशतक, पंचतीर्थी, आत्मभावद्वात्रिंशिका, पथिकपञ्चदशक; प्राकृत में रयणवालकहा, जयचरिय तथा णीईधम्मसुत्तीओ।

रोहिणेयकथा—महावीरकालीन प्रसिद्ध चोर, जिसका कि उनके उपदेश से उद्धार हुआ था, रोहिणेय पर रामभद्रसूरिकृत प्रबुद्धरौहिणेय नाटक के अतिरिक्त संस्कृत मे कासद्रहगच्छ के देवचन्द्र के शिष्य उपाध्याय देवमूर्ति ने उक्त ग्रन्थ लिखा।[3] उपाध्याय देवमूर्ति की अन्य रचनाओं में विक्रमचरित उपलब्ध है।

विद्युच्चरचोर, जो पीछे मुनि हो गया था, पर भी भट्टारक सकलकीर्तिकृत ग्रन्थ मिलता है।[4]

चन्दनाचरित—महासती चन्दना भग० महावीर के साध्वीसघ की प्रमुखा थी। उसके चरित्र को लेकर भट्टा० शुभचन्द्र ने यह काव्य लिखा। इस काव्य में पॉच सर्ग हैं। इसकी रचना बागड प्रदेश के डूगरपुर नगर मे हुई थी।[5] इस सम्बन्ध की अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ प्राकृत-सस्कृत में नहीं हुई हैं।

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५८४.
२. रामलाल हंसराज गोलछा, विराटनगर (नेपाल) द्वारा प्रकाशित। इसका हिन्दी अनुवाद छोगमल चोपडा ने किया है।
३. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८ तथा जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१६; इसका अंग्रेजी अनुवाद न्यू हेवेन (अमेरिका) से सन् १९३० में एच० जोन्सन ने 'स्टडीज इन ऑनर ऑफ ब्लूमफील्ड' में प्रकाशित किया है।
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३५६.
५ सर्ग ५, पद्य सं० २०८; राजस्थान के जैन सन्त: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० .००.

मृगावतीचरित—कौशाम्बी का महावीरकालीन राजवंश जैनेतर और जैन साहित्य में कवियों के लिए विविध प्रकार के कथानकचयन के लिए आकर्षक रहा है। महावीर के काल में कौशाम्बी नरेश शतानीक का परिवार प्रबुद्ध परिवार था। उसकी रानी मृगावती और बहिन जयन्ती तथा पुत्र उदयन को जैन कवियों ने अपने चरित्र एवं कथाकाव्यों का विषय बनाया है। मृगावती पर हीरविजयसूरिकृत मृगावतीआख्यान ग्रन्थाग्र ८०० श्लोक प्रमाण मिलता है। अन्य कृतियों में मृगावतीकुलक (प्राकृत में) तथा अज्ञात लेखक की मृगावतीकथा का उल्लेख मिलता है।[1] मलधारि देवप्रभसूरिकृत मृगावतीचरित्र पाँच सर्गों का एक लघु काव्य है जो अनुष्टुप् छन्दों में है।[2] सर्गान्त में छन्द परिवर्तन हुआ है। इसमें कुल मिलाकर १८४८ पद्य हैं। इस काव्य में दिखाया गया है कि उज्जयनी नरेश प्रद्योत मृगावती को उसके अतिशय सौन्दर्य के कारण प्राप्त करना चाहता था और इसके लिए उसने कौशाम्बी पर घेरा डाल दिया। मृगावती ने अपने बुद्धि-कौशल से उसे ऐसा न करने दिया और अन्त मे भग० महावीर के समक्ष दीक्षित हो गई। प्रद्योत को महावीर ने परस्त्रीवर्जन का उपदेश दिया। देवप्रभसूरि की अन्य रचनाओं में पाण्डवपुराण, सुदर्शनाचरित तथा काकुस्थकेलिकाव्य मिलते हैं। मृगावतीचरित्र में मृगावती के सतीत्व एव बुद्धि-कौशल तथा जिनदीक्षा का रोचक वर्णन दिया गया है।

जयन्तीचरित—इसे सिद्धजयन्तीचरित्र, जयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रह या केवल प्रश्नोत्तरसंग्रह नाम से कहते हैं। यह प्राकृत में निर्मित ग्रन्थ है जिसमें मूल २८ गाथाएँ हैं जिनका आधार भगवतीसूत्र के १२वें शतक का द्वितीय उद्देशक है।[3] इनकी रचना पूर्णिमागच्छ के मानतुंगसूरि ने की थी। इस पर उनके शिष्य मलयप्रभसूरि ने एक विशाल वृत्ति लिखी है जिसका ग्रन्थाग्र ६६०० श्लोक-प्रमाण है।[4] इस वृत्ति में प्राकृत भाषा में ही ५६ के लगभग कथाएँ दी गई हैं और इस प्रकार से यह एक अच्छा कथाकोश बन गया है। इसमें कौशाम्बी की राजकुमारी तथा मृगावती की ननद एव उदयन की फूफी की भी कथा है जो भग० महावीर के शासनकाल में निर्ग्रन्थ साधुओं को वसति देने के कारण प्रथम शय्या-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३.

२. हीरालाल हंसराज, जामनगर, सं० १९६६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १३३, २७७.

४. पंन्यास मणिविजय ग्रन्थमाला, लींच (मेहसाना), वि० सं० २००६.

तरी के रूप मे प्रसिद्ध हुई थी। जयन्ती ने महावीर से जीव और कर्म विषयक अनेक प्रश्न पूछे थे।

वृत्तिकार ने अभयदान मे मेघकुमार-कथा, करुणा-दान में सम्प्रतिनृप-कथा, शील पालन पर सुदर्शनसेठ-मनोरमा-कथा, मान मे बाहुबलि की कथा तथा अन्य प्रसगों में बप्पभट्टसूरि, आर्यरक्षित आदि की कथाएँ और अन्त मे जयन्ती की कथा दी है। इस वृत्ति मे सस्कृत गद्य-पद्य का मिश्रण हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थान्त में २० श्लोकों मे ग्रन्थकार की तथा १८ श्लोकों मे ग्रन्थ-लेखक की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि वटगच्छ मे क्रमशः सर्वदेवसूरि, जयसिंहसूरि, चन्द्रप्रभसूरि, धर्मघोषसूरि, शील-गणसूरि हुए। उसी गच्छ की पूर्णिमा शाखा के गच्छपति मानतुगसूरि ने जयन्ती-प्रश्नोत्तरप्रकरण का निर्माण किया और उनके शिष्य मलयप्रभ ने वि० सं० १२६० (ज्येष्ठ कृष्ण ५) में इस पर वृत्ति लिखी। इस ग्रन्थ का लेखन सं० १२६१ में चौलुक्य नरेश भीमदेव द्वितीय के राज्य में प्राग्वाटवंशी सेठ धवल की पुत्री नाउ श्राविका ने पडित भुजाल से लिखाकर मकुशिला स्थान मे अजित-देवसूरि को समर्पण किया।

मानतुंग की अन्य रचना के विषय में मालूम नहीं पर मलयप्रभ ने स्वप्न-विचारभाष्य लिखा था।

सुलसाचरित—भग० महावीर के श्राविकासघ की प्रमुख सुलसा अपने दृढ सम्यक्त्व के लिए प्रसिद्ध थी। उसी के चरित्र को लेकर आगमगच्छीय जय-तिलकसूरि ने ८ सर्गों मे यह काव्य लिखा है जिसमें ५४० संस्कृत श्लोक हैं। इसकी अनेकों हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। प्राचीनतम सं० १४५३ की है।[१]

महावीरकालीन अन्य श्राविकाओं मे रेवती के चरित पर रेवतीश्राविका-कथा[२] (सस्कृत) उपलब्ध है।

प्रभावक आचार्यविषयक कृतियाँ :

जैन कवियों ने तीर्थंकरादि महापुरुषों के समुदित चरितों—महापुराण या त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि के समान समुदित रूप से आचार्यों मुनियों के

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७.
२. वही, पृ० ३३३.

चरित पर भी ग्रन्थ लिखे हैं। अनेक मुनियों के नामों का सकलन 'निर्वाणकाण्ड' आदि नित्यपाठ किये जानेवाले स्तोत्रों के रूप में मिलता है पर उनके जीवन पर कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य भी लिखे गये हैं।

एतद्विषयक भद्रेश्वरसूरिकृत कहावलि मे 'थेरावलीचरिय' भाग उल्लेखनीय है। इसमें सर्वप्रथम युगप्रधान आचार्यों के सम्पूर्ण इतिहास की सामग्री का सग्रह किया गया है। इसमें कालकाचार्य से लेकर हरिभद्रसूरि तक के आचार्यों के चरित्र दिये गये हैं। यह एतद्विषयक अन्य रचनाओं—परिशिष्टपर्व आदि का आदर्श रही है।

स्थविरावलीचरित अथवा परिशिष्टपर्व—यह हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के १० पर्वों के परिशिष्ट रूप में रचा गया होने से परिशिष्टपर्व कहलाता है।

त्रिषष्टिशलाकापुंसां दशपर्वीविनिर्मिता।
इदानीं तु परिशिष्टपर्वास्माभिर्वितन्यते॥

इसमें जम्बूस्वामी से लेकर वज्रस्वामिपर्यन्त प्रभावक आचार्यों का विस्मयकारक चरित्र ग्रथित है।[1] जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी इसे स्थविरावलिचरित नाम से कहते हैं जो दो आधारों से है।- पहला उक्त ग्रन्थ के पहले सर्ग का ६ठॉ श्लोक है: 'अत्र च जम्बूस्वाम्यादिस्थविराणा कथोच्यते'। दूसरा प्रत्येक पर्व के अन्त मे आई पुष्पिकाओं में 'स्थविरावलीचरित महाकाव्य' नामोल्लेख मिलता है · इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते परिशिष्टपर्वणि स्थविरावलीचरिते महाकाव्ये ·····।

इस ग्रन्थ मे १३ पर्व हैं जिनका परिमाण ३५०० श्लोक प्रमाण है।

इस ग्रन्थ का उद्देश्य धर्मोपदेश है जिसे हेमचन्द्र ने प्राचीन दृष्टान्त, उपदेशपूर्ण कथाएँ और पूर्ववर्ती युगप्रधान पुरुषों के कथानक देकर रोचक एव रम्य बना दिया है। इसमें सग्रह रूप में अनेक पौराणिक कथाएँ, नीतिकथाएँ तथा प्राचीन स्थविरों के जीवन-वृत्तान्त मिल जाते हैं। धर्म के परम्परागत विस्तार में

---

१ याकोबी, स्थविरावलीचरित अथवा परिशिष्टपर्व, बिब्लियोथेका इण्डिका (सं० ९६), कलकत्ता १८९१; द्वितीय परिवर्धित संस्करण जिसे ल्यूमान और टावने ने सम्पादित किया, १९३२, पं० हरगोविन्द दास द्वारा सम्पादित, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, स० १९६८; इसके अनेक उद्धरणों का अनुवाद जे० हर्टल ने जर्मन में किया था, लीपजिग, १९०८.

प्राचीन पूर्वधरों ने जो भाग लिया उनके कथानक श्रमणवर्ग मे गुरुशिष्य परम्परा से जीवित रहे। प्रथम, दस आगमों के ऊपर भद्रबाहु ने निर्युक्तियाँ लिखी थीं उनमें इन कथानकों का साधारण उल्लेख है। उनमें विस्तारपूर्वक उल्लेख नहीं हो सका कारण वे तो गाथाओं और सूत्रों का अर्थ ही बताती हैं। इसके बाद सूत्र और निर्युक्तियो को विस्तार से समझाने के लिए प्राकृत चूर्णियाँ लिखी गई। इन चूर्णियों मे ये कथानक विस्तार से उल्लिखित हैं। इन चूर्णियों को भी विस्तार से समझानेवाली टीकाएँ हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों ने लिखी। इस विपुल कथानक समुदाय का उपयोग हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्टपर्व लिखने मे किया है। प्रो० याकोबी ने परिशिष्टपर्व की सम्पूर्ण सामग्री का विश्लेषण कर बतलाया है कि हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ मे प्रायः पूरी की पूरी सामग्री प्राचीन स्रोतों से ली है।

फिर भी यह बिखरी सामग्री को ऐतिहासिक क्रम से सम्बद्ध करने में और ओजस्वी काव्य शैली मे प्रस्तुत करने में श्लाघनीय ग्रन्थ है। काव्य की दृष्टि से उन कथानकों को कल्पना और काव्य-माधुर्य देकर हेमचन्द्र ने खूब सजाया है और आवश्यक विस्तार तथा भाषापरिवर्तन द्वारा प्राचीन परम्परा के इतिहास को सचाई से प्रस्तुत किया है।

प्रथम पर्व से पचम पर्व तक जम्बूस्वामी से लेकर भद्रबाहु तक का वृत्तान्त है। इनमे दूसरे तीसरे पर्व अनेक प्रकार की प्राणिकथा, लोककथा, तथा नीतिकथाओं से भरे हुए है, पाँचवे पर्व के अर्धभाग से लेकर आठवे पर्व तक भारत के प्राचीन राजनैतिक इतिहास के लिए अद्भुत सामग्री भरी पड़ी है यथा—पाटलिपुत्र की स्थापना, नन्द राजाओं का आख्यान, मौर्य चन्द्रगुप्त और उसके मंत्री चाणक्य, वररुचि, शकटाल, पीछे विन्दुसार, अशोक, सम्प्रति आदि के विषय में महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। यह अश भारतीय इतिहास के लिए अति महत्त्व का है। अन्तिम नवम से तेरह तक के पर्व स्थूलभद्र से लेकर वज्रस्वामी तक जैन परम्परा के इतिहास को प्रस्तुत करते है।

इस तरह प्रस्तुत ग्रन्थ मे जम्बूस्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक पट्टधरों की जीवनियाँ और उनके अनुषंग से ऐतिहासिक कथानकों का अच्छा सग्रह किया गया है। इसके पूर्व भद्रेश्वर की कहावली में ६३ शलाका पुरुषों के उपरान्त संक्षेप में पट्टधरों तथा कालक से हरिभद्रसूरि तक युगप्रधानों की कथाएँ केवल सग्रह रूप में दी हैं। उक्त ग्रन्थ से परिशिष्टपर्व में यह विशेषता है कि इसमें एकसूत्रता, प्रवाहिता, प्रसाद एवं सुश्लिष्टता आदि गुण अधिक पाये जाते हैं।

यह ग्रन्थ अनुष्टुभ् छन्द में रचा गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य हैं जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है। यह ग्रन्थ उनके जीवन के उत्तरकाल की रचना है इसलिए पद्य-रचना में उनका अद्भुत कौशल दिखाई पड़ता है।

प्रभावकचरित—इसे 'पूर्वर्षिचरित' भी कहते हैं। यह ग्रन्थ[1] एक प्रकार से परिशिष्टपर्व का पूरक है। परिशिष्टपर्व में जम्बू से लेकर वज्रस्वामी तक चरित दिये गये हैं तो प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने वज्रस्वामी से हेमचन्द्र तक आचार्यों की जीवनियाँ दी हैं। दूसरे शब्दों में इसमें विक्रम की पहली शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक आचार्यों के चरित वर्णित हैं। उनमें प्राचीन आचार्यों मे पादलिप्त, सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्रसूरि तथा बप्पभट्टि के चरित उल्लेखनीय हैं। चौलुक्य नरेशों के समकालीन वीरसूरि, शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, सूराचार्य, अभयदेव, वीरदेव और हेमचन्द्रसूरि के चरित तो गुजरात के इतिहास के लिए बडे महत्त्वपूर्ण हैं। इस चरित की ऐतिहासिक विशेषता को हम ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग मे बतलावेंगे।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना चन्द्रकुल के राजगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य आचार्य प्रभाचन्द्र ने वि० सं० १३३४ में की थी। ग्रन्थ के अन्त मे एक अच्छी प्रशस्ति दी गई है जिससे कवि का परिचय प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का संशोधन प्रसिद्ध संशोधक आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था। ग्रन्थकार ने अपने सक्षिप्त विषयप्रवेश में लिखा है कि उन्होंने इस कृति की सामग्री अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों से तथा अपने समय में प्रचलित आख्यानों से ली है। इसमें हेमचन्द्राचार्य के विषय में दिया गया चरित उनके विषय मे उपलब्ध सभी चरितों से प्राचीन कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ हेमचन्द्र के स्वर्गवास के ८० वर्ष पश्चात् लिखा गया था।

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अतिरिक्त ग्रन्थकार की अन्य कृति नहीं मिलती। प्रभाचन्द्र ने धर्मकुमाररचित धन्यशालिभद्रचरित (स० १३३८) का सशोधन भी किया था।

---

१. पं० हरिनन्द शर्मा द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९; मुनि जिनविजय द्वारा संपादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १९४०; जिनरत्नकोश, पृ० २६६.

प्रभावकचरित्र के अतिरिक्त जैन आचार्यों के सामूहिक रूप मे चरित्रों का वर्णन करनेवाले प्रबधावलि, प्रबंधचिन्तामणि और प्रबधकोश मिलते हैं। जिनभद्र की प्रबंधावलि (सं० १२९०) में मानतुग, पादलिप्त, हरिभद्र, अभयदेव, सिद्धर्षि और देवाचार्य के चरित सगृहीत हैं। प्रबधावलि वर्तमान पुरातनप्रबंध-संग्रह[1] के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है। मेरुतुगकृत प्रबधचिन्तामणि[2] (सं०१३६१) में सक्षेप और सामासिक शैली में भद्रबाहु, वृद्धवादी, मल्लवादी और हेमचन्द्र मात्र के चरित्र दिये गये हैं जब कि राजशेखरसूरिकृत प्रबंधकोश[3] (स०१४०५) मे भद्रबाहु, नन्दिल, जीवदेव, आर्यखपट, पादलिप्त, सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्र, बप्पभट्टि और हेमचन्द्रसूरि के चरित्र सगृहीत हैं। प्रभावकचरित में दिये गये इन आचार्योंके चरित्रों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि राजशेखर के सम्मुख इन आचार्यों के चरित्र विषयक अन्य कोई सग्रह भी रहा होगा जिससे उन्होंने आचार्यविषयक प्रबधों के लिए कितनीक सामग्री सगृहीत की है, कारण इन आचार्यों के चरित्रों में कई बातें ऐसी हैं जो प्रभावकचरित में नहीं मिलतीं और प्रभावकचरित की कई बातें इसमे नहीं मिलतीं। फिर भी प्रबधकोश की प्रधान सामग्री प्रभावकचरित्र से ही एकत्रित की गई प्रतीत होती है।

पुरातनप्रबधसग्रह, प्रबधचिन्तामणि और प्रबधकोश का विशेष परिचय ऐतिहासिक रचनाओं में दिया जाएगा।[4]

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २, १९३६.

२. वही, ग्रन्थांक १, १९३३.

३. वही, ग्रन्थांक ६, १९३५.

४. प्रबंध उस अर्ध-ऐतिहासिक कथानक को कहा जाता है जो सरल सस्कृत गद्य और कभी-कभी पद्य मे भी लिखा जाता है। प्रबंधकोश के रचयिता राजशेखरसूरि (१५वी शताब्दी) ने उक्त कोश के प्रारभ में चरित्र और प्रबंध का अन्तर समझाने का प्रयत्न किया है। उसके अनुसार तीर्थंकरों आदि जैनपुराण के महापुरुषों और प्राचीन नृपों तथा आर्यरक्षितसूरि (महावीर-निर्वाण ५५७) तक के जैनाचार्यों के जीवन-चरित्रों को चरित्र-ग्रन्थ कहा जाता है, इसके बाद होनेवाले आचार्यों और श्रावकों के जीवन चरितों को प्रबंध। राजशेखर की इस मान्यता का प्राचीन आधार नहीं मालूम होता।

जो कुछ भी हो, इस प्रकार की नाम-पद्धति का विवेक रचनाओं में सदा ही पालन नहीं हुआ है क्योंकि कुमारपाल, वस्तुपाल, जगडू आदि

प्रभावककथा—यह प्रभावकचरित के समान ही कुछ प्रभावशील आचार्यों के जीवन पर लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें लेखक ने अपने छः गुरु-भ्राताओं—उदयनन्दि, चारित्ररत्न, रत्नशेखर, लक्ष्मीसागर, विशालराज और सोमदेव—का चरित दिया है।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के कर्ता प्रसिद्ध तपागच्छीय आचार्य मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं। इसकी रचना वि० स० १५०४ में हुई है।[1] इसके पूर्व ग्रन्थकार ने वि० स० १४९०–९९ के बीच विक्रमचरित्र तथा बाद में वि० सं० १५०९ में विशाल कथाग्रन्थ पचशतीप्रबोधप्रबंध अर्थात् भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति की रचना की है।

प्रभावक आचार्यों के स्वतंत्र चरित्र भी उपलब्ध होते हैं।

दिग०-श्वेता० सत्र के इतिहास में भद्रबाहु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन माने जाते हैं। दिग० परम्परा में उन्हें अन्तिम श्रुत-केवली कहा गया है। इनका चरित्र प्राचीन ग्रन्थों में दिया गया है। कई कथा-कोशों में भी इनके चरित्र का वर्णन है। स्वतत्र चरित्र के रूप मे भी एक-दो रचनाएँ मिलती हैं।

भद्रबाहुचरित—यह चार अधिकारों में विभक्त सस्कृत ग्रन्थ है।[2] अधि-कारों में क्रमशः १२९, ९३, ९९ और १७७ श्लोक हैं। इसमें दिग० मान्यता-नुसार भद्रबाहु का चरित्र दिया है। ग्रन्थकार ने अपने पूर्ववर्ती देवसेन और हरिषेण द्वारा प्रतिपादित कथाओं को सम्बद्धकर यह चरित्र लिखा है इससे

१२-१३वीं शताब्दी के पुरुषों की जीवनियों को भी चरित्र कहा गया है। प्रबंधों के विषय यद्यपि अर्ध ऐतिहासिक या ऐतिहासिक व्यक्ति ही हैं फिर भी उनके लिखे जाने का ध्येय था 'धर्मश्रवण के लिए एकत्र हुई समाज को धर्मोपदेश देना, जैन धर्म के माहात्म्य को बतलाना, साधुओं को समयानुकूल उपदेश की सामग्री देना और श्रोताओं का चित्त-विनोद करना'। इसलिए प्रबंधों को वास्तविक इतिहास या जीवन-चरित नहीं समझना चाहिये।

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९१; जैन भारती भवन, बनारस, वी० सं० २४३७, पं० उदयलाल कासलीवालकृत हिन्दी अनुवाद.

दोनों के चरित्रों से इसमें परिवर्तन देखा जाता है। ग्रन्थकार ने हरिषेण की परम्परा से प्राप्त अर्धफालक सम्प्रदाय और श्वेताम्बरमत की उत्पत्ति दी है। इसमें लुंकामत की उत्पत्ति[1] वि० सं० १५२७ में बतलायी गई है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता अनन्तकीर्ति के शिष्य ललितकीर्ति के शिष्य रत्ननन्दि हैं। ग्रन्थ के अन्त में एक पद्य से यह सूचित किया गया है तथा उसमें लिखा है कि हीरक आर्य के आग्रह से यह चरित लिखा गया है पर ग्रन्थकार ने कहीं भी अपने गणगच्छ का नाम या रचनाकाल नहीं दिया है। फिर भी इसकी रचना स० १५२७ के बाद ही हुई है क्योंकि उक्त सवत् में इसमें लुकामत की उत्पत्ति बतलाई गई है। ग्रन्थ के सम्पादक ने रत्ननन्दि का नाम उनके दादागुरु और गुरु के नाम पर रत्नकीर्ति होना माना है और सुदर्शनचरितकार विद्यानन्दि द्वारा स्तुत रत्नकीर्ति से साम्य स्थापित किया है पर यह ठीक नहीं है। विद्यानन्दि के सुदर्शनचरित्र का समय वि० स० १५१३ है इसलिए उनके द्वारा स्तुत रत्नकीर्ति का समय और पहले होना चाहिये। पर प्रस्तुत रचना में लेखक ने लुकामत की उत्पत्ति का सवत् १५२७ दिया है तो वह अवश्य पीछे हुआ है। ग्रन्थकार ने अनन्तकीर्ति को अपना दादागुरु बतलाया है पर अनन्तकीर्ति के शिष्य रूप में किसी ललितकीर्ति (ग्रन्थकार के गुरु) का पता अन्य साधनों से अब तक नहीं लगा है इससे ग्रन्थकार के समय का निर्धारण करना कठिन है।

एक भट्टारक रत्नचन्द्रकृत भद्रबाहुचरित्र[2] का भी उल्लेख मिलता है। इसी तरह एक भद्रबाहुकथा का भी निर्देश हुआ है।[3]

स्थूलभद्रचरित—श्वेताम्बर सघ के इतिहास मे आचार्य स्थूलभद्र का बहुत बड़ा स्थान है। इनके चरित्र प्राचीन ग्रन्थों में तो दिये ही गये हैं पर इन पर स्वतत्र रचनाएँ भी ४-५ मिलती हैं।

पहली रचना में ६८४ सस्कृत श्लोक हैं जिसे चौदहवीं शती के जयानन्दसूरि ने लिखा है।[4] जयानन्द तपागच्छीय सोमतिलकसूरि के शिष्य थे। इनकी

---

१. ४. १५७.
२. जिनरत्नकोश, पृ० २९१.
३. वही.
४. वही, पृ० ४५५; प्रकाशित—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक २५, बम्बई, १९२५.

अन्य कृति कालकाचार्यकथा प्राकृत में मिलती है। इस काव्य पर पद्मनन्दनसूरि ने टीका लिखी है।

दूसरी रचना पद्मसागरकृत है।[1] इसे शीलप्रकाश भी कहते हैं। इसमें सात सर्ग हैं और यह सं० १६३४ में रची गई है। कर्ता तपागच्छ के आचार्य विमलसागर और धर्मसागर के शिष्य थे।

तीसरी रचना शीलदेवकृत तथा एक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख भी मिलता है। इसी तरह केशरियाजी मन्दिर, जोधपुर में वीरकलश के शिष्य सूरचन्द्रकृत स्थूलभद्रगुणमालामहाकाव्य[2] का उल्लेख मिलता है।

कालकाचार्यकथा—कालकाचार्य को कालिकाचार्य[3] भी कहा गया है। युग-प्रधान आचार्यों में इनकी जीवनी बड़ी ही चमत्कारपूर्ण मानी गई है। प्राचीन ग्रन्थों में, यथा उत्तराध्ययननिर्युक्ति और चूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य और चूर्णि, पचकल्पभाष्य और चूर्णि, दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, निशीथचूर्णि, व्यवहारचूर्णि, आवश्यकचूर्णि तथा भद्रेश्वरकृत कहावली में इनके जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। उन घटनाओं मे से उज्जैनी के गर्दभ राजा का उच्छेद, निगोद की सूक्ष्म व्याख्या, सुवर्णभूमिगमन, आजीविकों से निमित्त शास्त्र का अध्ययन, अनुयोगों की रचना तथा सातवाहन राजा को मथुरा का भविष्य-कथन ऐतिहासिक तत्त्ववाली घटनायें मानी जाती हैं। इनका समय ईसापूर्व द्वितीय और प्रथम शताब्दी के बीच माना जाता है। डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने इनका साम्य आर्य श्याम से स्थापित किया है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८४, ४५८, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९११.

२. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खरतरगच्छ साहित्य सूची, पृ० २६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८६-८८; एन० डब्ल्यू ब्राउन, स्टोरी ऑफ कालक, वाशिंगटन, १९३३, साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित कालकाचार्य कथा; पंजाब विश्वविद्यालय पत्रिका मे ६ कथाओं का मूल और डा० बनारसीदास जैन कृत हिन्दी अनुवाद; कालकाचार्य-कथासंग्रह, १९४५.

४. डॉ० शाह ने अपने लघु ग्रंथ 'सुवर्णभूमि में कालकाचार्य' में प्राचीन और अर्वाचीन सामग्री का विश्लेषण कर यह मत प्रकट किया है कि अर्वाचीन सामग्री में अनेक नाम विकृत हैं तथा काल्पनिक बातें जोड़ी गई हैं।

कालकाचार्य के कथानक को लेकर ११वीं शताब्दी के बाद संस्कृत-प्राकृत में अनेकों रचनाएँ या तो स्वतन्त्र या किसी न किसी कथासंग्रह या चरित के अन्तर्गत की गई हैं। उन सबका संग्रह अपने आप में एक बड़ा साहित्य बन जाता है इसलिए उसकी एक रूप-रेखा मात्र यहाँ प्रस्तुत की जाती है :

१.	कालकाचार्यकथा	देवचन्द्रसूरि[1]	(सं० ११४६)	प्राकृत
२.	,,	मलधारी हेमचन्द्र[2]	(१२वीं शती)	,,
३.	,,	अज्ञातकर्तृक बृहद्[3] रचना		प्राकृत
४.	,,	महेन्द्रसूरि[4]	(सं० १२७४ से पूर्व)	संस्कृत
५.	,,	विनयचन्द्रसूरि[5]	(सं० १२८६)	प्राकृत
६.	,,	देवेन्द्रसूरि[6]	(१३वीं शती)	संस्कृत
७.	,,	रामभद्रसूरि[7]	(१३वीं शती)	सस्कृत
८.	,,	भावदेवसूरि[8]	(सं० १३१२)	प्राकृत
९.	,,	प्रभाचन्द्रसूरि[9]	(स० १३३४)	सस्कृत

उन बातों के आधार पर एकाधिक कालकार्य मानना सम्भवतः उचित नहीं। प्राचीन सामग्री के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि सभी घटनाओं से सम्बद्ध एक ही कालक थे (देखें—जैन सस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी से प्रकाशित उनका उक्त ग्रन्थ)।

१. मूलशुद्धिटीकान्तर्गता.
२. पुप्पमालान्तर्गता.
३. १५४ गाथाएँ, ग्रन्थाग्र २११.
४. ५२ श्लोक; लेखक पल्लिवालगच्छ के ४८वें पट्टधर
५. ७४ गाथाएँ; लेखक रविप्रभसूरि के शिष्य एवं पार्श्वनाथचरित और मल्लिनाथचरित आदि के कर्ता.
६. ८४ श्लोक; लेखक जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य, अन्य श्राद्धदिनकृत्य सवृत्ति आदि अनेक रचनाएँ.
७. १२५ संस्कृत पद्य; लेखक की अन्य रचना प्रबुद्धरौहिणेय नाटक.
८. ९९ गाथाएँ; चन्द्रकुल खण्डिलगच्छ के यशोभद्र लेखक के गुरु थे, अन्य रचना पार्श्वनाथचरित.
९. १५६ संस्कृत पद्य; लेखक की प्रसिद्ध कृति प्रभावकचरित के अन्तर्गत.

१०.	कालकाचार्यकथा	धर्मप्रभसूरि[१]	(सं० १३९८)	प्राकृत
११.	,,	जयानन्दसूरि[२]	(१४वीं शती)	प्राकृत
१२.	,,	विनयचन्द्र[३]	(,,)	संस्कृत
१३.	,,	जिनदेवसूरि[४]	(,,)	,,
१४.	,,	रामचन्द्रसूरि[५]	(सं० १४१२)	,,
१५.	,,	सोमसुन्दर[६]	(सं० १४५८-१४९३)	गुजराती
१६.	,,	धर्मघोषसूरि[७]	(सं० १४७३)	प्राकृत
१७.	,,	अज्ञातकर्तृक[८]	(सं० १४९०)	प्राकृत
१८.	,,	,,[९]		प्राकृत
१९.	,,	,,[१०]		संस्कृत
२०.	,,	शुभशीलगणि[११]	(सं० १५०९)	संस्कृत
२१.	,,	देवकल्लोल[१२]	(सं० १५६६)	,,

१. ५६ गाथाएँ, लेखक अंचलगच्छीय देवेन्द्रसूरि (स्वर्ग० १३२०) के शिष्य, त्रैलोक्यप्रकाश, चूड़ामणिसारोद्धार के रचयिता.

२. १२० गाथाएँ; लेखक तपागच्छ के धर्मसागर के शिष्य सोमतिलक के शिष्य, अन्य रचना स्थूलभद्रचरित्र.

३. ८९ श्लोक; लेखक रत्नसिंहसूरि के शिष्य एवं पर्यूषणाकल्प, दीपमालिका-कल्प के कर्ता.

४. ९७ पद्य; जिनप्रभसूरि के शिष्य.

५. १७ संस्कृत-प्राकृत पद्य; लेखक बृहद्गच्छीय देवेन्द्रसूरि के शिष्य जिनचन्द्र के शिष्य.

६. उपदेशमाला के अन्तर्गत, गुजराती गद्य, अपने युग के प्रभावक आचार्य, गुजराती में अनेक ग्रन्थ.

७. १०५ गाथाएँ; अपर नाम धर्मकीर्ति; देवेन्द्रसूरि (स्वर्ग० १३२०) के शिष्य, अनेक स्तोत्रों के कर्ता.

८. १४४ गाथाएँ. ९. १०७ गाथाएँ.

१०. ६५ श्लोक, गुजराती टीका सहित.

११. संक्षिप्त कथा १९ श्लोकों में; शुभशीलगणि की भरतेश्वर बाहुबलिवृत्ति से.

१२. १०४ श्लोक, लेखक उपकेशगच्छीय कर्मसागर पाठक के शिष्य थे.

२२.	कालकाचार्यकथा	अज्ञात[१]		संस्कृत
२३.	,,	माणिक्यसूरि[२]	(१६वीं शती)	,,
२४.	,,	कल्याणतिलक[३]	(१६वीं शती)	प्राकृत
२५.	,,	कमलसंयमोपाध्याय	(१६वीं शती)	संस्कृत
२६.	,,	गुणरत्नसूरि[४]	(१६वीं शती)	,,
२७.	,,	जिनचन्द्रसूरि[५]	(सं० १६१२)	,,
२८.	,,	समयसुन्दरोपाध्याय[६]	(सं० १६६६)	,,
२९.	,,	जयकीर्ति[७]	(१७वीं शती)	,,
३०.	,,	कनकसोम	(सं० १६३२)	,,
३१.	,,	ज्ञानमेरु[८]	(१७वीं शती)	,,
३२.	,,	शिवनिधानोपाध्याय	(१७वीं शती)	,,
३३.	,,	जिनलाभसूरि	(?)	,,
३४.	,,	कीर्तिचन्द्र	(?)	,,
३५.	,,	कुलमण्डन	(?)	,,
३६.	,,	कनकनिधान	(१८वीं शती)	संस्कृत
३७.	,,	लक्ष्मीवल्लभ[९]	(१८वीं शती)	,,
३८.	,,	सुमतिहंस[१०]	(सं० १७१२)	,,

१. ६७ विविध छन्दों का अच्छा काव्य, लेखक का नाम विबुधतिलक अनुमान किया जाता है.

२. १०४ श्लोक; माणिक्यसूरि ६-७ हो गये हैं, लेखक का निर्णय करना कठिन है.

३ ५६ गाथाएँ, गुजराती टीका सहित; खरतरगच्छीय जिनसमुद्रसूरि के शिष्य.

४. पिप्पलगच्छीय, अन्य कुछ ज्ञात नहीं देखें—पिप्पलगच्छ-गुर्वावलि, आ० विजयवल्लभ स्मा० ग्रन्थ.

५. बृहत्खरतरगच्छीय आचार्य.

६. २७ संस्कृत-प्राकृत पद्य और संस्कृत गद्यमयी रचना; लेखक बृहत्खरतरगच्छ के सकलचन्द्र के शिष्य, भावशतक के रचयिता.

७. वादि हर्षवर्धन के शिष्य.

८. महिसुन्दर के शिष्य.

९. लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य.

१०. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय के शिष्य.

यहाँ सम्भव नहीं कि उपरि निर्दिष्ट सभी रचनाओं और लेखकों का परिचय दिया जाय। इनमें से कई एक का परिचय एन० डब्ल्यू० ब्राउन के स्टोरी आफ कालक में तथा पं० अम्बालाल प्रेमचन्द्र शाह ने कालकाचार्यकथा की गुजराती प्रस्तावना में दिया है। इनमें से कई अच्छे आलंकारिक लघुकाव्य हैं।

कथानक का सार—भारतवर्ष के धरावास नगर के राजा वैरिसिंह के पुत्र कालककुमार अनेक कलाओं के पारगामी थे। एक समय गुणाकरसूरि से धर्म-बोध पाकर उन्होंने जैनी-दीक्षा ग्रहण कर ली। पीछे अपने ही गुरु के पट्टधर होकर पाँच सौ शिष्यों के साथ विहार करने लगे। कालक की बहिन सरस्वती भी साध्वी हो गई। पर उसके सौन्दर्य पर रीझकर उज्जैन का राजा गर्दभिल्ल उसे अपने अन्तःपुर में ले गया। उसे बहुत समझाया गया पर सब व्यर्थ गया। तब कालकाचार्य अपवाद मार्ग ग्रहणकर साधुवेश छोड़ राजा का उच्छेद करने के लिए सिन्धुदेश के उस पार से शक राजा को ले आये। इससे गर्दभिल्ल मारा गया। शक राजा उज्जैन का राजा बना। कालान्तर में उसके वश का उच्छेद कर विक्रमादित्य राजा बना।

इधर कालकाचार्य ने प्रायश्चित्तकर पुनः मुनिवेश धारणकर देश-देशान्तरों में भ्रमण किया। दक्षिण देश के सातवाहन राजा के अनुरोध पर उन्होंने पर्यूषणा की पंचमी तिथि को बदलकर चतुर्थी कर दिया। एक समय उन्होंने इन्द्र की निगोद विषयक शंकायें दूर कीं। वे अपने दुर्विनीत शिष्य सागरसूरि को उपदेश देने सुवर्णभूमि भी गये। पीछे उनका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ।

परवर्ती रचनाओं में वर्णित अनेक घटनाओं को सत्य मान कुछ विद्वानों ने दो कालकाचार्यों की कल्पना की है।[1]

वज्रस्वामिचरित—वज्रस्वामी के चरित्र पर वज्रस्वामिकथा तथा वज्रस्वामि-चरित्र (प्राकृत) का उल्लेख मिलता है।[2] दो अपभ्रंश रचनाओं का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। उनमें से एक की रचना जिनहर्षसूरि ने सं० १३१९ में की थी।

---

१. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ में मुनि कल्याणविजय जी का लेख। प्रथम कालकाचार्य, महावीर निर्वाण सं० ३००-३७६ मे तथा दूसरे महा० नि० सं० ४२५ के लगभग और ४६५ के पहले।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४०.

पादलिप्तसूरिकथा—पादलिप्तसूरि तरंगवतीकथा के कर्ता माने जाते हैं। इनका एक चरित प्राकृत गाथाओं में निर्मित है।[१] प्रारम्भ 'अत्थि इह भरहवासे' से होता है। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की है।

अन्य पादलिप्तसूरिकथा (संस्कृत) का भी उल्लेख मिलता है।[२]

सिद्धसेनचरित—सन्मतितर्क आदि ग्रन्थों के कर्ता सिद्धसेन पर एक हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की पाटन के भण्डार मे मिलती है। यह प्राकृत मे है।[३]

मल्लवादिकथा—द्वादशारनयचक्र के कर्ता मल्लवादी पर भी एक प्राकृत रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की मिली है।[४]

मलयगिरिचरित—इस कृति का उल्लेख मिलता है।[५]

बप्पभट्टिचरित—गुर्जर प्रतिहार नरेश आमनागावलोक-गुरु पादलिप्त पर भी कई रचनाएँ मिलती हैं। उनमें से एक का दूसरा नाम बप्पभट्टसूरिप्रबन्ध पुण्यप्रदीप है।[६] इसमें ७०० पद्य (संस्कृत) हैं। कर्ता का नाम माणिक्यसूरि है। माणिक्यसूरि नाम से ६-७ आचार्य हुए हैं। ये कौन हैं, निर्णय करना कठिन है।

एक दूसरी रचना 'बप्पभट्टिकथा' ६८५ गाथाओं मे प्राकृत मे उपलब्ध है। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १२९१ की मिलती है।[७]

राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश से भी लेकर बप्पभट्टिचरित अलग प्रकाशित हुआ है।[८]

दो अज्ञातकर्तृक रचनाओं का भी पता लगा है।[९]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४३; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५.

२. वही.

३. वही, पृ० ४३८; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५

४. वही, पृ० ३०२; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५.

५. वही.

६. वही, पृ० २८२.

७. वही; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९५.

८. आगमोदय समिति ग्रन्थमाला, क्रं० ४६, बम्बई, १९२६

९. जिनरत्नकोश, पृ० २८२.

हरिभद्रसूरिचरित—हरिभद्रसूरि के चरित पर स्वतंत्र रचनाओं में धनेश्वर-सूरि (१२वीं शती) कृत उल्लेखनीय है। इसका सम्पादन पं० हरगोविन्द दास ने वाराणसी में किया था।[1]

अन्य दो रचनाओं—हरिभद्रकथा एवं हरिभद्रप्रबन्ध—का भी उल्लेख मिलता है।

१६-१७वीं शताब्दी के तपागच्छीय विद्वान् मुनियों ने अपने गच्छ के अनेकों प्रभावक गुरुजनों के गुण-कीर्तन मे काव्यात्मक शैली में महत्त्वपूर्ण चरित्र-ग्रन्थ लिखे हैं। वे उन महापुरुषों के आध्यात्मिक जीवन एवं धार्मिक कृत्यों का वर्णन करते हैं इसलिये पौराणिक काव्यों की श्रेणी में आते हैं फिर भी उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का अच्छा चित्रण होने से वे ऐतिहासिक महत्त्व के काव्य भी माने जाते हैं।

जैन साहित्य में सं० १४५६–१५०० तक सोमसुन्दर युग, सं० १६०१ से १७०० तक हैरक युग तथा स० १७०१ से १७४३ तक यशोविजय युग में प्रभावक आचार्यों पर इस प्रकार की अनेक कृतियाँ रची गयीं। उनका यहाँ सक्षिप्त परिचय देते हैं। उनके शास्त्रीय महाकाव्यत्व और ऐतिहासिक महाकाव्यत्व का दिग्दर्शन उन प्रसगों में आगे करेंगे।

सोमसौभाग्यकाव्य—तपागच्छ के युग-प्रधान सोमसुन्दरसूरि पर दो-तीन जीवनचरित्र मिलते हैं। पहला तो १० सर्गात्मक सोमसुन्दर के ही शिष्य प्रतिष्ठासोम ने स० १५२४ में (ग्रन्थाग्र १३०० श्लोक-प्रमाण) रचा था।[2] दूसरा तपागच्छीय लक्ष्मीसागर के शिष्य सुमतिसाधु ने लिखा था।[3] इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है। सुमतिसाधु का स्वर्गवास सं० १५५१ में हुआ था। इससे यह रचना इसके पूर्व अवश्य रचित हुई है। सुमतिसाधु के चरित्र पर भी एक सुमतिसम्भवकाव्य स० १५४७–१५५१ के बीच लिखा गया था।

एक अज्ञातकर्तृक तीसरे सोमसौभाग्यकाव्य का भी उल्लेख मिलता है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९.
२. वही, पृ० ४५३; इसका सार 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास', पृ० ४५१–४६१ में दिया गया है।
३ वही.
४. वही.

गुरुगुणरत्नाकरकाव्य—इसमें तपागच्छ के पट्टधर लक्ष्मीसागरसूरि (सं० १५१७–१५४७ गच्छनायक) का जीवनवृत्त चार सर्गों में वर्णित है।[1] यह संस्कृत में है। इसका ऐतिहासिक विवेचन अन्यत्र दिया जायगा।

कर्ता एवं रचना-समय—इसकी रचना लक्ष्मीसागर के पट्टकाल में ही सं० १५४१ में सोमचरित्रगणि ने की है। प्रशस्ति में ग्रन्थकर्ता ने परिचय देते हुए अपनी गुरुपरम्परा में लिखा है कि वे तपागच्छ के सोमसुन्दरसूरि के शिष्य सोमदेवसूरि और उनके शिष्य चरित्रहंसगणि के शिष्य थे।

सुमतिसम्भव—इसमें[2] तपागच्छीय विद्वान् कवि सुमतिसाधु का जीवनचरित निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है पर काव्य-नायक के विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं होती। इससे कहीं अधिक उपयोगी सामग्री माण्डवगढ के धनाढ्य व्यापारी संघपति जावड़ की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा धर्मनिष्ठा के विषय में मिलती है। इसकी चर्चा ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग में की जायगी।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना सर्वविजयगणि ने की है जो शिवहेम के शिष्य और जिनमाणिक्य के छात्र थे। इसका रचनाकाल अज्ञात है पर प्राचीन प्रतिलिपि सं० १५५४ की लिखी मिली है।[3] इसमें सं० १५४७ में जावड़ द्वारा प्रतिमा-प्रतिष्ठा का वर्णन है। पर सुमतिसाधु के स्वर्गारोहण (सं० १५५१) का उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह काव्य सं० १५४७ के बाद तथा सं० १५५१ के पूर्व रचा गया होगा। सर्वविजयगणि की अन्य रचना 'दश श्रावकचरित' मिलती है।

जगद्गुरुकाव्य—इसका ग्रथाग्र २३३ श्लोक-प्रमाण है।[4] इसमें संस्कृत-छन्दों में तपागच्छ के हीरविजयसूरि की जीवनी वर्णित है। सं० १६४१ में बादशाह

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०६; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २४, वीर सं० २४३७. इसके चारों सर्गों का सार 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' पृ० ४९६–५०२ में मो० द० देसाई ने दिया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६; इसकी एक मात्र प्रति एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता में सुरक्षित है (प्रति-संख्या ७३०५)। इस काव्य के परिचय के लिए गंगानगर के प्रो० सत्यव्रत तृषित का आभारी हूँ।

३. इसे हर्षकुलगणि ने ईडर में लिखवाई थी : संवत् १५५४ वर्षे श्रीइलदुर्गमहानगरे हर्षकुलगणयः सुमतिसम्भवमलीलिखल्लेखकेन।

४. जिनरत्नकोश, पृ० १२८; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० १४, भावनगर.

अकबर ने हीरविजय को जगद्गुरु की उपाधि दी थी। इसकी रचना विमल-सागरगणि के शिष्य पद्मसागरगणि ने मागरोल (सौराष्ट्र) में रहकर सं० १६४६ में की थी। पद्मसागर की अन्य कृतियों में तिलकमजरीवृत्ति, यशोधरचरित्र, उत्तराध्ययनकथासंग्रह, प्रमाणप्रकाश सटीक, धर्मपरीक्षा आदि मिलते हैं।

कृपारसकोश—यह भी हीरविजयसूरि के जीवन से सम्बद्ध रचना है। इसमें हीरविजय के उपदेश से बादशाह ने जो दयामय कार्य किये थे उनका वर्णन है। काव्य में १२८ श्लोक हैं। इसकी रचना तपागच्छीय सकलचन्द्र उपाध्याय के शिष्य शान्तिचन्द्र उपाध्याय ने स० १६४६–४८ के बीच की थी।[1]

इस पर उनके शिष्य रत्नचन्द्रगणि ने एक वृत्ति लिखी थी।[2] इसका उल्लेख वृत्तिकार ने अध्यात्मकल्पद्रुम और सम्यक्त्वसप्तति में किया है।

हीरसौभाग्यमहाकाव्य—इसमें हीरविजयसूरि का जीवन तथा उनके धार्मिक कार्य, प्रभावना, अकबर बादशाह से सम्पर्क आदि प्रसग विस्तार से दिये गये हैं। यह काव्य सत्रह सर्गों का बृहत् काव्य है जिसके अधिकाश सर्गों में सौ से अधिक पद्य हैं। चौदहवें सर्ग में यह संख्या ३०० तक पहुँच जाती है। यह काव्य श्रीहर्ष के नैषधमहाकाव्य को आदर्श बनाकर लिखा गया है पर उस जैसा दुरूह और दुर्बोध नहीं है। इसके महाकाव्यत्व और ऐतिहासिकता पर पीछे उक्त प्रसगों पर प्रकाश डालेंगे।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना तपागच्छीय सिंहविमलगणि के शिष्य देवविमल ने सुखबोधा नामक स्वोपज्ञवृत्ति के साथ की है।[3] इसकी रचना का आरभ तो हीरविजयसूरि के समय में ही हो गया था ऐसा धर्मसागरगणि की पट्टावलि से मालूम होता है पर इसकी समाप्ति विजयदेवसूरि के शासन-काल में ही हो सकी इसलिए यह स० १६७२ से स० १६८५ के बीच में ही बन सका है। देवविमल के गुरु बडे प्रभावक थे। उन्होंने स्थानसिंह नामक अजैन व्यक्ति को जैन धर्म में दीक्षित किया था जो पीछे आगरा के प्रमुख जैनों में एक था। देवविमलकृत हीरसौभाग्य के आधार से ऋषभदास कवि ने सं० १६८५ में गुजराती में हीरविजयसूरिरास की रचना की थी। हीरसौभाग्य-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९५; कान्तिविजय इतिहासमाला, भावनगर, स० १९७३.

२. वही, पृ० ९५.

३. वही, पृ० ४६१; काव्यमाला, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९००.

काव्य का संशोधन उपाध्याय कल्याणविजय के शिष्य धनविजय वाचक ने किया था।

विजयप्रशस्तिकाव्य—इस काव्य के १६ सर्गों की रचना करने के बाद कवि का स्वर्गवास हो गया इससे गुणविजय ने अन्तिम पाँच सर्ग जोड़कर इसे २१ सर्गात्मक कृति बनाया है।[1] इसमें कुल मिलाकर १७०९ पद्य हैं। ये विविध छन्दों में निर्मित हैं। इसमें तपागच्छ के हीरविजय, विजयसेन और विजयदेवसूरि के चरित का काव्यात्मक शैली में वर्णन है। इसके महाकाव्यत्व और ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चा पीछे की जायगी।

काव्यकर्ता और रचनाकाल—इसकी रचना कमलविजयगणि के शिष्य हेमविजयगणि ने सं० १६८१ में की है। ये सत्रहवीं शती के महान् लेखक थे। इनकी अन्य रचनाओं में पार्श्वनाथमहाकाव्य, कथारत्नाकर, अन्योक्तिमुक्तामहोदधि, कीर्तिकल्लोलिनी, सूक्तिरत्नावली, विजयस्तुति आदि मिलते हैं। सभी ग्रन्थों के पीछे कवि ने अपना तथा ग्रन्थ का परिचय दिया है। विजयप्रशस्ति के पीछे तो सभी ग्रन्थों का उल्लेख पद्यों में किया गया है।

इस काव्य पर कनकविजय के शिष्य और अन्तिम पाँच सर्गों के कर्ता गुणविजय ने एक संस्कृत टीका लिखी है जिसका परिमाण १०००० श्लोक है। वह टीका वि० स० १६८८ में लिखी गई थी।

विजयदेवमाहात्म्य—इसमें १९ सर्ग हैं जिनमें विविध छन्दों में निर्मित १७९५ पद्य हैं।[2] इसमें हीरविजयसूरि के प्रशिष्य और विजयसेनसूरि के शिष्य विजयदेव का जीवनवृत्त काव्यात्मक शैली में दिया गया है। इसके ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चा उक्त प्रसग में की जायगी।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के प्रणेता बृहत्खरतरगच्छीय जिनराजसूरि-सन्तानीय पाठक ज्ञानविमल के शिष्य श्रीवल्लभ उपाध्याय हैं। इसका रचनासमय अज्ञात है किन्तु इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १७०९ की मिलती है।[3] इससे ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ पहले बना होगा।

---

१. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० २३, भावनगर, वीर सं० २४३७, टीका सहित, जिनरत्नकोश, पृ० ३५४-३५५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५४; जैन साहित्य संशोधक समिति, अहमदाबाद, १९२८.

३. लिखितोऽयं ग्रन्थः पण्डितश्री५श्रीरङ्गसोमगणिशिष्यमुनिसोमगणिना स० १७०९ वर्षे ...।

इस पर तपागच्छ के कृपाविजयगणि के शिष्य मेघविजयगणि ने विवरण लिखा है जिसमें कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया गया है। मेघविजयगणि का परिचय पहले दे चुके हैं।

भानुचन्द्रगणिचरित—वाचक सकलचन्द्र के दो शिष्य सूरचन्द्र और शान्तिचन्द्र थे। सूरचन्द्र के भानुचन्द्र नामक प्रभावक शिष्य थे। भानुचन्द्र के चरित्र पर इस काव्य का निर्माण चार प्रकाशों में किया गया है। इन प्रकाशों मे क्रमशः १२८, १८७, ७६ और ३५८ सस्कृत पद्य हैं।[1] यह चरितकाव्य अनुष्टुप् छन्दों में रचा गया है पर यत्र तत्र अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। यह काव्य मुगल सम्राट् अकबर के अन्तिम वर्षों और जहाँगीर के समय (सन् १६०५—१६२७) में भानुचन्द्र द्वारा किये गये प्रभावना कार्यों तथा अन्य बातों पर प्रकाश डालता है जिनपर ऐतिहासिक काव्यों के प्रसग में चर्चा करेंगे।

काव्यकर्ता और रचना-समय—इसकी रचना भानुचन्द्र के ही शिष्य तथा उनके अनेक साहित्यिक अनुष्ठानों के सहयोगी सिद्धिचन्द्रगणि ने की थी। इसका रचना-सवत् ज्ञात नहीं होता फिर भी यह समकालिक रचना मालूम होती है। अपने गुरु की भाँति सिद्धिचन्द्र अपने युग के महान् साहित्यकार थे। उनकी अनेक रचनायें मिलती हैं: कादम्बरीउत्तरार्धटीका, शोभनस्तुतिटीका, काव्यप्रकाशखण्डन, वासवदत्ताटीका आदि १९ कृतियाँ। सम्राट् जहाँगीर ने सिद्धिचन्द्र को खुश-फहम (तीक्ष्णबुद्धि) की उपाधि दी थी।

देवानन्दमहाकाव्य—यह माघकृत शिशुपालवध पर आश्रित सात सर्गों का पादपूर्ति काव्य है जिसका वर्णन पादपूर्ति काव्यों में करेंगे। इसमें हीरविजय के प्रशिष्य विजयदेवसूरि का जीवन-चरित्र दिया गया है। इसकी रचना कृपाविजयगणि के शिष्य मेघविजयगणि ने स० १७५५ में की है।[2] मेघविजय का परिचय अन्यत्र दिया गया है।

दिग्विजयकाव्य—इसमें १३ सर्ग हैं जिनमे विविध छन्दों में १२९४ पद्य हैं।[3] इसमें तपागच्छ के विजयप्रभसूरि का चरित-वर्णन है। इसके प्रारभिक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २९४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १७, सं० १९९७.

२. जिनरत्नकोश; पृ० १७९; यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर, सं० १९६९; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ७, १९३७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १७४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १४, १९४५.

पाँच सर्गों में उनके गुरु विजयदेव का चरित्र भी दिया गया है। यह भी एक ऐतिहासिक महत्त्व का काव्य है। इसका उक्त प्रसग में वर्णन करेंगे।

इसके रचयिता उक्त मेघविजयगणि हैं। रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

विजयोल्लासमहाकाव्य—यह[1] एक अज्ञात कृति थी जिसकी अपूर्ण प्रति सौराष्ट्र के जूनागढ शहर के ज्ञानभण्डार से मिली है। इसके कर्ता महोपाध्याय यशोविजय (१७ १८वीं शता०) हैं जो अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। इसमे श्री हीरविजयसूरि की परम्परा मे विजयदेवसूरि के शिष्य विजयसिंहसूरि का जीवन-वृत्त वर्णित है। ग्रन्थ का प्रारंभ ऐं नमः से होता है और तीन मगलाचरण श्लोकों के प्रारभ में ऐंकार सार, ऐन्दं प्रकाशं और ऐंकारमाराधयताम् शब्दों का प्रयोग हुआ है। चौथे पद्य से यमकालकार युक्त भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके बाद विजयसिंहसूरि का नामोल्लेखपूर्वक चरित प्रारम्भ होता है और केवल पहले सर्ग में १०२ श्लोकों में पूर्ण होता है। सर्गान्त में कई श्लोक विविध छन्दों में लिखे गये हैं। सर्ग के अन्त मे 'इति श्रीविजयोल्लासे विजयाङ्कमहाकाव्ये प्रथमसर्गः' लिखा है।

खरतरगच्छीय आचार्यों के जीवनचरित्र :

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के कतिपय खरतरगच्छीय आचार्यों के समकालिक रचयिताओं द्वारा लिखे गये लघुचरित[2] उपलब्ध होते हैं जो प्राकृत भाषा में निबद्ध धार्मिक काव्यों के अच्छे नमूने हैं। साथ ही उनसे कतिपय ऐतिहासिक महत्त्व की बातें भी प्रकट होती हैं।

जिनपतिसूरि-पंचासिका—इसमें मणिधारी जिनचन्द्र (२) सूरि के शिष्य जिनपति का ५५ गाथाओं में माता-पिता, नगर आदि के नाम के साथ जन्म (सं० १२१०), दीक्षा एव आचार्यपद (स० १२२३) तक का चरित्र वर्णित है। इसके रचयिता ने अपना नाम प्रकट नहीं किया है पर 'जिणवइणो नियगुरुणो' वाक्य से जिनपति का शिष्य होना प्रकट किया है। जिनपति षट्त्रिंशत् वाद-

---

१. महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण-महोत्सव ग्रन्थ, खण्ड २, बम्बई, १९६८, पृ० २३३-२३५.

२. जिनभद्रसूरिस्वाध्यायपुस्तिका (अप्रकाशित), अजीमगंज की बडी पोसाल में सं० १४९० मे लिखी प्रति.

विजेता माने जाते हैं। उन्होंने शाकंभरी नरेश (पृथ्वीराज) के दरबार में जयपत्र पाया था।

जिनेश्वरसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाएँ हैं जिनमें जिनपति के शिष्य जिनेश्वरसूरि के माता-पिता, नगर के नाम के साथ जन्म (स० १२४५), दीक्षा एव आचार्यपद (स० १२७८) का वर्णन है। ये लक्षण, प्रमाण और शास्त्र-सिद्धान्त के पारगामी थे। इन्हें ३४ वर्ष की आयु में गच्छाधिपतिपद मिला था। इन्होंने शत्रुंजय आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। यह एक अज्ञात-कर्तृक रचना है।

जिनप्रबोधसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाओं में जिनेश्वरसूरि के शिष्य जिनप्रबोध के पूर्व क्रमानुसार जन्म (स० १२८५), दीक्षा एवं आचार्यपद (सं० १३३१) का वर्णन है। ये बड़े विद्वान् एव प्रभावक गच्छनायक थे। इन्होंने कातन्त्रव्याकरण पर दुर्गपदप्रबोधटीका वि० स० १३२८ में बनायी थी और विवेकसमुद्रगणिकृत पुण्यसारकथा का संशोधन किया था। इनका स्वर्गवास स० १३४१ में हुआ था। इस चरित्र के रचयिता विवेकसमुद्रगणि हैं जो उन्हीं के सघ में वाचनाचार्य थे और पुण्यसारकथा के कर्ता थे।

जिनचन्द्रसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाओं में जिनप्रबोध के शिष्य जिनचन्द्र (३) का चरित वर्णित है।[1] ये बड़े प्रभावक आचार्य थे। इन्होंने अपने युग के चार राजाओं को प्रतिबोधित किया था। इन्हे स० १३४१ में आचार्य पद मिला था तथा इनका स० १३७६ में स्वर्गवास हुआ था। इसकी रचना उनके ही शिष्य जिनकुशलसूरि ने की थी।

जिनकुशलसूरि-चहुत्तरी—इसमें ७४ गाथाओं में जिनचन्द्र (३) के शिष्य एवं पट्टधर जिनकुशलसूरि के जन्म (वि० स० १३३७), दीक्षा (स० १३४६), वाचनाचार्यपद (स० १३७५) एवं आचार्यपद (स० १३७७) का वर्णन है। इनका स्वर्गवास स० १३८९ में हुआ था। इन्होंने अपने पट्टकाल में नाना नगरों-देशों मे विहार कर जैन धर्म को बड़ी ही प्रतिष्ठा प्रदान की थी।

इसकी रचना उन्हीं के शिष्य आचार्य तरुणप्रभ ने की है।

जिनलब्धिसूरि-चहुत्तरी—जिनलब्धिसूरि के सम्बन्ध में प्राप्त अद्यावधि सामग्री में यही प्रामाणिक और विस्तृत है। जिनलब्धि का जन्म स० १३६० में

---

१. दादा जिनकुशलसूरि के परिशिष्ट में श्री अगरचन्द नाहटा ने प्रकाशित की है।

हुआ था और दीक्षा जिनचन्द्रसूरि (३) से सं० १३७० में मिली थी, इनका नाम लब्धिनिधान था। सं० १३८८ में जिनकुशलसूरि ने इन्हें उपाध्याय-पद दिया था। सं० १३८९ में जिनकुशलसूरि का स्वर्गवास हुआ और सं० १३९० में उनके स्वर्गवास के लगभग ३।। माह बाद पद्ममूर्ति क्षुल्लक को जिनपद्म नाम से पट्टपद मिला था। १० वर्ष बाद सं० १४०० में इन्हीं जिनपद्मसूरि के पद पर लब्धिनिधानोपाध्याय को जिनलब्धिसूरि नाम से पट्टपद मिला था। उनका स्वर्गवास सं० १४०४ में हुआ था। इस चरित की रचना उनके ही सतीर्थ्य तरुणप्रभसूरि ने ही की है।

जिनलब्धिसूरि पर चार गाथाओं में जिनलब्धिसूरि-स्तूपनमस्कार और आठ गाथाओं में जिनलब्धिसूरि नागपुर-स्तूप स्तवन नामक संक्षिप्त[1] कृतियाँ भी मिलती हैं जिनमें उनके माता-पिता के नाम, जन्म, दीक्षा, उपाध्याय, आचार्य-पद, स्वर्गवास आदि बातें उल्लिखित हैं। जिनलब्धिसूरि अनेक स्तोत्रों के लेखक थे।

जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरचरित—इसमें बीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय आचार्य कृपाचन्द्रसूरि का जीवनवृत्त दिया गया है जिसमें ५ सर्ग हैं और कुल मिलाकर विविध छन्दों में १५७० पद्य हैं।[2] कृपाचन्द्रसूरि का जन्म सं० १९१३ में हुआ था, १९३६ में दीक्षा, १९८२ में आचार्यपद और १९९४ में स्वर्गवास हुआ था। यह काव्य विविध छन्दों से विभूषित है। सर्गों में स्थल-स्थल पर छन्द-परिवर्तन किये गये हैं।

---

१. 'जिनभद्रसूरिस्वाध्यायपुस्तिका' जिससे कि उपर्युक्त रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, प्रभावक एवं सुप्रसिद्ध आचार्य जिनभद्रसूरि द्वारा ही संकलित पुस्तिका है। उक्त सूरि ने ही जैसलमेर, खंभात, पाटन, जालौर, नागौर आदि स्थानों में ज्ञानभण्डार स्थापित किये थे और अनेक तीर्थ-मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ कराई थीं। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है: सं० १४९० वर्षे मार्गशिर सुदि ७ गुरौदिने शतभिषा नक्षत्रे हरषणयोगे श्रीविधिमार्गीय सुगुरु श्रीजिनराजसूरि दीक्षितेन परम भट्टारक प्रभुश्रीमज्जिनभद्रसूरि आत्मनमवबोधार्थं श्रीसज्झायपुस्तिका संपूर्णा जाता।—महावीर विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ, खण्ड १, बंबई, १९६८, पृ० २५-३६ में श्री अगरचन्द एवं भँवरलाल नाहटा का लेख.

२. जिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभण्डार, पालीताना से सं० १९९५ में प्रकाशित.

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता कृपाचन्द्र के शिष्य जयसागरसूरि हैं। ग्रथ के अन्त में दी गई प्रशस्ति में इन्होंने अपना जन्म स० १९४३, दीक्षा स० १९५६, उपाध्यायपद सं० १९७६ व आचार्यपद सं० १९९० में पालीताना में होना लिखा है।

प्रस्तुत काव्य की रचना सं० १९९४ में फाल्गुन सुदी १३ को पालीताना में की गई थी।

बीसवीं शताब्दी के उपाध्याय लब्धिमुनि ने अपने गच्छ के पूर्व आचार्यों के चरित पर आठ संस्कृत[1] काव्यों का निर्माण किया है। वे ये हैं :

१. युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि	(६ सर्ग, १२१२ श्लोक)	स० १९९२
२. जिनकुशलसूरिचरित	(६३३ पद्य)	सं० १९९६
३. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[1]	(२०१ श्लोक)	सं० १९९८
४. जिनदत्तसूरिचरित्र	(४६८ श्लोक)	सं० २००५
५. जिनरत्नसूरिचरित्र		सं० २०११
६. जिनयशःसूरिचरित्र		सं० २०१२
७. जिनऋद्धिसूरिचरित्र		सं० २०१४
८. मोहनलालजी महाराज		स० २०१५

प्रभावक आचार्यों के समान ही जैनधर्म के पोषक एवं संवर्धक नरेशों, मन्त्रियों, धनी सेठों-साहूकारों एवं श्रावकों के चरितों को भी जैन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है। उनमे से कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत है।

कुमारपालचरित :

गुजरात का चौलुक्य नरेश कुमारपाल वैसे शैवधर्मी था पर आचार्य हेमचन्द्र और तत्कालीन अनेकों जैन धनिकों और विद्वानों के कारण उसने जैनधर्म और सिद्धान्तों को समझने, उनका अनुसरण करने एव प्रचार करने में बड़ा ही योगदान दिया था। जैन विद्वानों ने इसके चरित को लेकर महाकाव्य, लघुकाव्य, नाटक, प्रबन्ध, कथाग्रथ आदि लिखे हैं। उनमें से अनेक समकालिक होने से ऐतिहासिक महत्त्व के हैं और पश्चात्काल में श्रोताओं की रुचि बढ़ाने के लिए

1. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ में इन रचनाओं का उल्लेख है।

वैसे तो एक इतिहास-लेखक भी निःसन्देह अपनी सामग्री विभिन्न स्रोतों से एकत्र करता है, परन्तु जिनमण्डन में गुण-दोषविवेचक योग्यता का अभाव है और उनके श्रम का फल उन सब त्रुटियों से भरा है जो अविश्वसनीय स्रोतों से एकत्र तथ्योंवाले सग्रह में होती हैं।

इस काव्य मे हेमचन्द्राचार्य के सम्बध मे कुछ कल्पित बातें कही गई हैं जैसे—पहली हेमचन्द्रसूरि के संगीत-ज्ञान की, दूसरी हेमचन्द्रसूरि के अजैन शास्त्रों के ठोस ज्ञान की, तीसरी हेमचन्द्रसूरि ने पशु-बलिदान के अनौचित्य को कैसे सिद्ध किया, चौथी हेमचन्द्र के प्रशसकों को राजा की ओर से उपहार मिलता था।[१]

इसके कर्ता जिनमडनगणि तपागच्छ के प्रभावक आचार्य सोमसुन्दरसूरि के शिष्य थे। उन्होंने प्रस्तुत कृति की रचना स० १४९१-९२ में की थी। उनकी अन्य रचनाएँ हैं धर्मपरीक्षा एवं श्राद्धगुणसंग्रह-विवरण (स०१४९८)।

वस्तुपाल-तेजपालचरित :

गुजरात के बघेलावंशीय नरेश वीरधवल के दो सहोदर मंत्रियों—वस्तुपाल एवं तेजपाल की कीर्ति-गाथाओं को लेकर उनके समकाल तथा पश्चात्काल में जितने काव्य, नाटक, प्रबंध और प्रशस्तियां लिखी गई हैं उतनी शायद ही भारत के किसी अन्य राजपुरुष के लिए लिखी गई हों। इनमे अनेक तो ऐतिहासिक महत्त्व की हैं और कुछ शास्त्रीय महाकाव्य के रूप में हैं। हम उनका विवेचन उन प्रसंगों में करेंगे। इनके धार्मिक कार्यों के वर्णन के लिए समकालिक आचार्य उदयप्रभ ने धर्माभ्युदयकाव्य अपरनाम संघपतिचरित निर्मित किया है। वह एक प्रकार से कथाकोश है अतः उसका परिचय कथाकोशों के प्रसग में दे रहे हैं।

इन दोनों मंत्री-भ्राताओं के चरित्र पर पश्चात्काल (अर्थात् दो सौ वर्ष बाद) में एक स्वतत्र रचना जिनहर्षगणिकृत वस्तुपालचरित (सं० १४४१) मिलता है। इसमें वस्तुपाल-तेजपाल के सम्बध की उपलब्ध पूर्व सामग्री का उपयोग किया गया है। इसकी विशेष चर्चा ऐतिहासिक काव्यों में करेंगे।

विमलमंत्रिचरित :

इसमें गुजरात के चौलुक्य नरेश भीम (प्रथम) के नगरसेठ एवं प्रधान सेनापति विमलशाह पोरवाड (वि० स० ११वीं का पूर्वार्ध) के धार्मिक कार्यों का वर्णन है।

---

१. कुमारपालप्रबंध, पृ० ३७, ४७, ४९;

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना पण्डित इन्द्रहंसगणि ने सं० १५७८ में की थी।[1] इनकी रचना का आधार आचार्य लावण्यविजय द्वारा सं० १५६८ में गुजराती में निर्मित विमलप्रबंध है। पर ग्रन्थकार ने अन्य दूसरी सामग्री का उपयोग भी इसमें किया है। विमलशाह के सम्बंध की जो पुरानी प्रशंसाएँ अज्ञातप्राय हैं और जो कुछ प्रशस्तियों में अवशिष्ट हैं उनमे से कुछ का उपयोग कवि ने प्रस्तुत कृति में किया है।

विमल मन्त्री पर सं० १५७८ में सौभाग्यनन्दि द्वारा विरचित कृति[2] का भी उल्लेख मिलता है। इसका भी आधार लावण्यसमय का गुजराती ग्रन्थ है।

विमल मंत्री पर रचित ये कृतिया सामयिक नहीं हैं, इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व विचारणीय है।

जगडूचरित:

इसमें १३-१४वीं शताब्दी में हुए प्रसिद्ध जैनश्रावक जगडूशाह का चरित वर्णित है। इस लघु काव्य में ७ सर्ग हैं जिनमें ३८८ श्लोक हैं।[3] काव्य मे जगडू के अनेक धार्मिक कार्यों तथा परोपकारिता का वर्णन है। इसमें अनेक ऐतिहासिक प्रसग हैं जिनकी चर्चा अन्यत्र की जायगी।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में दी हुई पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता धनप्रभसूरि के शिष्य सर्वानन्द थे। काव्य के अन्त में ऐसी कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है जिससे कवि का विशेष परिचय और रचनाकाल जाना जा सके। फिर भी काव्य के प्रारंभ में कवि ने लिखा है कि 'गुरु के वचनों को स्मरण करके मैं जगडू के उत्तम चरित की रचना करता हूँ।' इससे यही ज्ञात होता है कि कवि जगडू के समय तो नहीं ही हुआ है। उसने जगडू के पावन कार्यों का विवरण गुरु के मुख से ही सुना था। सभवतः कवि के गुरु धनप्रभसूरि जगडू के समकालीन रहे हों और उन्होंने जगडू के

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८; हीरालाल हंसराज, जामनगर। प्रस्तुत भाग के पृ० १०४ में इस रचना को १३वें तीर्थंकर विमलनाथ से सम्बद्ध मानना भूल है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३६० पर टिप्पण.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १२८; म० द० खक्खर, बम्बई, १८९६ में प्रकाशित.

पुण्य-कार्यों का आखों देखा विवरण अपने शिष्य को सुनाया हो जिससे प्रभावित हो कवि ने इस काव्य की रचना तत्काल अर्थात् सुनने के अनन्तर मूल घटना के ३०-४० वर्ष बाद स० १३५० के लगभग की हो। श्री मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई ने इस काव्य का रचनाकाल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी माना है।[1]

जगड्डशाह पर एक अन्य कृति जगड्डशाहप्रबंध[2] का भी उल्लेख मिलता है।

सुकृतसागर :

यह ८ सर्गों का लघु सस्कृत काव्य है जिसमें कुल मिलाकर १३७२ श्लोक हैं। इसमें माण्डोंगढ (मालवा) के चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध मे हुए प्रसिद्ध जैन वणिक् पेथड (पृथ्वीधर) और उसके पुत्र झाझण के सुकृत कार्यों का विस्तृत परिचय दिया गया है।[3]

इन दोनों पिता-पुत्र का परिचय उपदेशतरगिणी मे तथा पृथ्वीधरप्रबध मे भी सक्षेप मे दिया गया है। यह काव्य अपने युग की धार्मिक प्रभावना बतलाने के लिए बड़ा ही उपयोगी है। यह तत्कालीन जैन तीर्थों के महत्त्व का भी दिग्दर्शक है।[4]

पृथ्वीधरप्रबंध :

इसे झंझणप्रबंध या पेथडप्रबंध[5] भी कहते हैं। इसमें उक्त पृथ्वीधर और उसके पुत्र झाझण के धार्मिक कार्यों का सक्षेप में वर्णन किया गया है। यह एतद्विषयक काव्य सुकृतसागर का ही सक्षिप्त रूप है। प्रस्तुत प्रबंध गद्य-पद्य-मय है। उपर्युक्त सुकृतसागर और प्रस्तुत कृति की रचना तपागच्छीय नन्दिरत्न-गणि के शिष्य रत्नमण्डनगणि ने की है। रत्नमण्डनगणि की अन्य कृतियाँ उपदेश-तरगिणी तथा भोजप्रबध (स० १५१७) उपलब्ध हैं।

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४३४.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२८.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; जैन आत्मानन्द सभा, ग्रन्थांक ४०, भावनगर, सं० १९७१; इसके विशेष परिचय के लिए देखें—मो० द० देसाई, जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ४०४-४०६ तथा चिमनलाल भाईलाल शेठ, जैनिज्म इन गुजरात, पृ० १५८-१६२.

४. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४७०-७१.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २५६; यहाँ पेथड का पेघड नाम अशुद्ध छापा गया है।

पेथड़ अपरनाम पृथ्वीधर के चरित्र को लेकर १६वीं शती के कवि राजमल्ल ने भी पृथ्वीधरचरित लिखा है।

नाभिनन्दनोद्धारप्रबंध :

इसका दूसरा नाम शत्रुंजयमहातीर्थोद्धारप्रबंध भी है। इसमें गुजरात के पाटनगर के प्रसिद्ध जौहरी समरसिंह अपरनाम समराशाह के परिवार का तथा उसके धार्मिक कार्यों का अच्छा वर्णन किया गया है।[१] साथ में उसके द्वारा स० १३७५ में शत्रुंजय तीर्थ पर उद्धार कार्यों का भी प्रचुर वर्णन है। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व का भी ग्रन्थ है जिसका कि विवेचन पीछे करेंगे।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि के पट्टधर शिष्य कक्कसूरि ने सं० १३९२ में की थी। इसी समय के लगभग समरसिंह का स्वर्गवास भी हुआ था।

जावडचरित्र और जावडप्रबंध :

जावड़ (१६वीं श० का मध्य) मालवा के माण्डवगढ़ का धनाढ्य व्यापारी था और साथ में मालवा के तत्कालीन राजा गयासुद्दीन खिलजी का राज्याधिकारी भी था। उक्त काव्यों में[२] जावड़ के सघपतित्व एव सामाजिक प्रतिष्ठा और धर्मनिष्ठा का वर्णन है। जावड़ श्रीमालभूपाल एवं लघुशालिभद्र कहलाता था। इन काव्यों के लेखक एवं रचनाकाल ज्ञात नहीं हैं। जावड़ का चरित सर्वविजयगणि ने सुमतिसंभव नामक काव्य में विस्तृत रूप से दिया है। इस काव्य का रचनाकाल स० १५४७ से १५५१ निर्धारित किया गया है। सभवतः उक्त दोनो काव्य भी उस समय के आस-पास की रचनाएँ हों।

कर्मवंशोत्कीर्तनकाव्य :

अकबर के समय में बीकानेर में कर्मचन्द्र मत्री ओसवाल जाति का बड़ा ही शूरवीर, बुद्धिशाली तथा दानी पुरुष हो गया है। वह भक्त जैन तथा कुशल राजप्रिय पुरुष था। उसकी कीर्ति राजस्थान से लेकर दिल्ली के मुगल दरबार तक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१०, ३७२; प्रकाशित—हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, मो० द० देसाई के जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४२४-४२७ और चि० भा० शेठ के जैनिज्म इन गुजरात, पृ० १७१-१८० में समरसिंह का चरित्र विस्तार से दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १३४.

फैली थी। वह खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के प्रभावना-कार्यों में बड़ा सहयोगी था।

उसके जीवन को लेकर संस्कृत में लगभग ५५० पद्यों का उक्त काव्य खरतरगच्छ की क्षेमशाखा के प्रमोदमाणिक्य के शिष्य जयसोम उपाध्याय ने सं० १६५० में[1] विजयादशमी के दिन लाहौर मे रचा है। यह एक समकालिक रचना है।

इस पर उन्हीं के शिष्य गुणविजय ने स० १६५५ मे सस्कृत व्याख्या लिखी और उसी वर्ष गुजराती मे पद्यानुवाद किया।

क्षेमसौभाग्यकाव्य :

इसे पुण्यप्रकाश भी कहते हैं।[2] इसमें मत्री क्षेमराज के पुण्य-कार्यों का वर्णन है। इसे तपागच्छ के आनन्दकुशल के शिष्य रत्नकुशल ने सं० १६५० में रचा था। इसे खीमसौभाग्याभ्युदय नाम से भी कहा जाता है।[3]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ७१; इसका सार श्री देसाई ने अपने जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास में पृ० ५७१-५७५ पर दिया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १००.

३. इसकी हस्तलिखित प्रति विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा मे उपलब्ध है।

प्रकरण ३

कथा-साहित्य

पुराण-चरित-साहित्य के समान ही जैनों का कथा-साहित्य भी खूब समृद्ध है। वेदों और पालि त्रिपिटक की भाँति जैनों के अर्धमागधी आगम ग्रन्थों में भी छोटी-बड़ी सभी प्रकार की अनेक कहानिया मिलती हैं। उनमें दृष्टान्त, उपमा, रूपक, सवाद एव लोक-कथाओं द्वारा संयम, तप और त्याग का विवेचन किया गया है। जैनागमों के निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि एवं टीका-ग्रन्थों में तो अपेक्षाकृत विकसित कथा-साहित्य के दर्शन होते हैं। उनमें ऐतिहासिक, अर्धैतिहासिक, धार्मिक एवं लौकिक आदि कई प्रकार की कथाएँ सगृहीत हैं। फिर जैनों ने कथाओं के पृथक् ग्रन्थों का भी बड़ी सख्या में प्रणयन किया है।

कथा के भेदों का निरूपण करते हुए आगमों में अकथा, विकथा, कथा तीन भेद किये गये हैं। उनमें कथा तो उपादेय है, शेष त्याज्य। उपादेय कथा के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण विषय, शैली, पात्र एवं भाषा के आधार पर किया गया है। विषय की दृष्टि से चार प्रकार की कथाएँ होती हैं—अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा। धर्मकथा के चार भेद किये गये हैं—आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदनी और निर्वेदनी। जैनाचार्यों ने अधिकतर इसी को उपादेय माना है। मिश्रकथा में मनोरजक और कौतुकवर्धक सभी प्रकार के कथानक रहते हैं। जैन कथाकारों मे यह प्रकार भी प्रशसनीय माना गया है। पात्रों के आधार से दिव्य, मानुष और मिश्र कथाएँ कही गई हैं। भाषा की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत और मिश्र रूप में कथाएँ लिखी गई और इन तीनों प्रकारों को खूब अपनाया गया है। इसी तरह शैली की दृष्टि से सकलकथा, खण्डकथा, उल्लावकथा, परिहासकथा और सकीर्णकथा के भेद से पचविध कथाएँ मानी गई हैं। यहाँ इन सबका विस्तार से विवेचन करना सभव नहीं पर सभी प्रकारों में मिश्र या संकीर्ण भेद में अनेक तत्त्वों का मिश्रण होने से जन-मानस का अनुरंजन करने की अधिक क्षमता होती है। यह गद्य-पद्य मिश्रित तथा प्राकृत-संस्कृत मिश्र रूप में भी लिखी गई है।

जिस तरह आज के कथा-साहित्य के उद्देश्य, कथानक, पात्र और शैली ये ४ मूल तत्त्व हैं उसी तरह कथाओं के उपर्युक्त भेदों में इन तत्त्वों के दर्शन सुदूर

अतीत के साहित्य मे भी हो सकते हैं। आज के कथा-साहित्य का उद्देश्य केवल लोकरुचि का मनोरंजन मात्र नहीं है अपितु पाठकों के लिए किसी विचार दर्शन का प्रस्तुत करना भी है, उसी तरह जैन कथाओं का उद्देश्य भी जैन विचार-आचार अर्थात् कर्मवाद तथा सयम, व्रत, उपवास, दान, पर्व, तीर्थ आदि के माहात्म्य को प्रकट करना है। यद्यपि इस दृष्टि से वे आदर्शोन्मुखी हैं पर ऐसा होते हुए भी जीवन के यथार्थ धरातल पर टिकी हुई है इसलिए उनमे सामाजिक जीवन की विविध भगिमाओं के दर्शन होते हैं। कथानक की दृष्टि से इन कथाओं का क्षेत्र भी बड़ा व्यापक है। इनमें नीतिकथा, लोककथा, पशुपक्षिकथा, भावात्मक ध्वनिकथा, धर्मकथा, पुरातन-कथा, दैवतकथा, दृष्टान्तकथा, परीकथा, कल्पितकथा आदि सभी प्रकार की कथाओं को स्थान मिला है। यद्यपि अधिकाश जैन कथानक घटनाबहुल हैं पर उन्हे घटनाप्रधान नहीं कह सकते। उनका उद्देश्य पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारते हुए पाठक को एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाना है। कथानक की भाँति जैन कथा-साहित्य के पात्रों का क्षेत्र भी बड़ा व्यापक है। उसमे राजा से लेकर दरिद्र, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल, साहूकार से लेकर चोर, पतिव्रता से लेकर वेश्या तक, सभी वर्गों के पात्र समाविष्ट हैं। पुरुष, स्त्री, देव, यक्ष, किन्नर, विद्याधर, मुनि, बाल, वृद्ध, युवा और यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी पात्र के रूप में विद्यमान है। आज के कहानीकार का उद्देश्य अपने पात्रों का चारित्रिक विश्लेपण करना है। वह उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को दिखाता है, उनके चारित्रिक मनोविज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत करता है और उनके अन्तर्तम के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करता है परन्तु प्राचीन कथाओं की भाँति जैन कथाओं मे भी पात्र केवल निमित्त हैं। वहाँ पात्रों की अवतारणा वास्तव में बुराई का अन्त बुराई और भलाई का अन्त भलाई में दिखाने के लिए की गई है। शैली की दृष्टि से भी आधुनिक और प्राचीन कथाओं में बड़ा अन्तर है। आज की कहानियों में विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं। कहीं वे कलात्मक है तो कहीं आत्मचरित्र शैली मे या किसी अन्य प्रकार में पर प्राचीन कथाओं की भाँति जैन कथाएँ इतिवृत्तात्मक शैली मे अधिक हैं, जैसे अमुक नगर में अमुक राजा या व्यक्ति रहता था।

यहाँ हम जैन कथा-साहित्य के कतिपय अमूल्य रत्नों—कृतियों का परिचय प्रस्तुत करते हैं। वैसे तो जैन पुराणों मे भारतीय कथा-साहित्य के ऐसे अनेक रत्न मिले हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं फिर भी पृथक् रूप से अनेक प्रकार की बड़ी कृतियाँ और लघु कथाओं के संग्रह बहुसंख्या में मिले हैं।

यहाँ वर्णनक्रम में सर्वप्रथम हम उन कथा-कोशों का परिचय दे रहे हैं जो

आगमों, चूर्णियों, टीकाओं की परम्परा का अनुसरण करते हुए प्राचीन आदर्शों को बतलानेवाली कथाओं के संग्रह हैं। इनमे समागत अनेक कथाएँ परवर्ती अनेक स्वतंत्र रचनाओं की उपजीव्य हैं। इसके बाद हम उन प्रमुख कथाग्रन्थों का वर्णन करेंगे जो धर्म-अर्थ काम पुरुषार्थों का एक साथ प्रतिपादन करने में सक्षम हैं और अपने में एक विशाल कथा-जाल को भरे हुए हैं। इसके बाद नीतिकथा अर्थात् दान, शील, अहिंसादि व्रतों, पर्वों, तीर्थों आदि से सम्बद्ध कथाओं को देकर कल्पितकथा, लोककथा और प्राणिकथा आदि पर उपलब्ध रचनाओं का विवेचन करेंगे।

औपदेशिक कथा-संग्रह :

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४ में हम देख चुके हैं कि आगमिक प्रकरणों का उद्भव और विकास कैसे हुआ है। हम प्रारंभ में कह आये हैं कि चरणकरणानुयोग विषयक साहित्य धर्मोपदेश या औपदेशिक प्रकरणों के रूप में उद्भूत एवं विकसित हुआ है।

धर्मोपदेश में संयम, शील, तप, त्याग और वैराग्य आदि भावनाओं को प्रमुख बताया गया है। इनका उपदेश कोमलमति श्रोताओं के उद्देश्य से करने के लिए कथाओं का अच्छा माध्यम चुना गया है। प्रवचन के प्रारम्भ में, प्रवचनकार जैन साधु, कुछ शब्दों या श्लोकों में अपनी धर्मदेशना का प्रसंग बता देता है और फिर एक लम्बी-सी मनोरंजक कहानी कहने लगता है जिसमें अनेक रोमांचक घटनायें होती हैं और अनेक बार एक कथा में से दूसरी कथाएँ निकलती जाती हैं। इस तरह ये औपदेशिक प्रकरण अत्यन्त मूल्यवान् कथा-साहित्य से भरे हुए हैं जिसमे हर प्रकार की कहानियाँ—रमन्यास, उपन्यास, दृष्टान्तकथा, प्राणिनीतिकथा, पुराणकथायें, परिकथायें और नानाविध कौतुक और अद्भुत कथाएँ मिलती हैं।

जैनों ने इस प्रकार के विशाल औपदेशिक कथा-साहित्य का निर्माण किया है। जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग में धर्मोपदेश प्रकरण के अन्तर्गत जो उपदेशमाला, उपदेशप्रकरण, उपदेशरसायन, उपदेशचिन्तामणि, उपदेशकन्दली, उपदेशतरंगिणी, भावनासार आदि ५० ६० रचनायें संक्षिप्त विवरण के साथ दी गई हैं; वे अधिकांश में टीका और वृत्ति के रूप मे जैन कथाओं के संग्रह ही हैं। उदाहरण के लिए धर्मदासगणिकृत उपदेशमालाप्रकरण को लें। इस पर १०वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक लगभग २० संस्कृत टीकाएँ लिखी गई हैं। इसकी ५४२ गाथाओं मे दृष्टान्तस्वरूप ३१०

कथानकों का सग्रह हो गया है। इसी तरह हरिभद्रसूरि के उपदेशपद पर विवृतियों मे कथाओं का एक विशाल जाल बुना गया है। ये कथाएँ यद्यपि प्राचीन जैन ग्रन्थों से ली गई हैं फिर भी इनके कथन का ढग निराला है। इसी तरह जयसिंहसूरि (वि० स० ९१५) कृत धर्मोपदेशमालाविवरण मे १५६ कथाएँ समाविष्ट की गई हैं जो सयम, दान, शील आदि का माहात्म्य और रागद्वेषादि कुभावनाओं के दुष्परिणामों को व्यक्त करती हैं। विजयलक्ष्मी (स० १८४३) कृत उपदेशप्रासाद[1] मे सबसे अधिक ३५७ कथानक मिलते हैं। इस तरह औपदेशिक कथा-साहित्य के अच्छे सग्रह[2] रूप में जयकीर्ति की शीलोपदेशमाला, मलधारी हेमचन्द्र की भवभावना और उपदेशमालाप्रकरण, वर्धमानसूरि का धर्मोपदेशमालाप्रकरण, मुनिसुन्दर का उपदेशरत्नाकर, आसड की उपदेशकदली और विवेकमजरीप्रकरण, शुभवर्धनगणि की वर्धमानदेशना, जिनचन्द्रसूरि की सवेगरगशाला तथा विजयलक्ष्मी का उपदेशप्रासाद है। दिगम्बर साहित्य में यद्यपि ऐसे औपदेशिक प्रकरणो की कमी है जिन पर कथा-साहित्य रचा गया हो फिर भी कुन्दकुन्द के षट्प्राभृत की टीका में, वट्टकेर के मूलाचार, शिवार्य की भगवतीआराधना तथा रत्नकरण्डश्रावकाचारादि की टीकाओं में औपदेशिक कथाओं के सग्रह उपलब्ध होते हैं।

औपदेशिक कथा-साहित्य के अनुकरण पर अनेक कथाकोश और सग्रहों का भी निर्माण हुआ है। उनमें हरिषेण का बृहत्कथाकोश प्राचीन है।

बृहत्कथाकोश—उपलब्ध कथाकोशों में यह सबसे प्राचीन है।[3] इसमे छोटी-बड़ी सब मिलाकर १५७ कथाएँ हैं। ग्रन्थ-परिमाण साढ़े बारह हजार श्लोक-प्रमाण है।[4] इन कथाओं मे कुछ कथाएँ चाणक्य, शकटाल, भद्रबाहुस्वामी, कार्तिकेय आदि ऐतिहासिक-राजनीतिक पुरुषों और आचार्यों से सम्बधित हैं

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४९०-५२४. इसमें उक्त साहित्य की अनेकों कथाओं की विशेषता प्रतिपादित है।

२. जैनधर्म प्रसारक सभा (ग्रं० सं० ३३-३६), भावनगर से १९१४-२३ में प्रकाशित; वहीं से ५ भागो में गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

३. जिनरत्नकोश, पृ० २८३; डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क १७, इसकी १२२ पृष्ठ में अंग्रेजी में लिखी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

४. सहस्रैर्द्वादशैर्बद्धो नून पंचशतान्वितैः (१२५००), प्रशस्ति, पद्य १६.

यद्यपि इनका उद्देश्य इतिहास की अपेक्षा आराधना-समाधिमरण का महत्त्व बतलाना अधिक है। इसमे १३१वीं कथा—भद्रबाहु—में दो बातें ऐसी कही गई हैं जो अन्य कथाग्रन्थों एवं शिलालेखों से विरुद्ध पड़ती हैं। इस कथा के अनुसार भद्रबाहु का समाधिमरण उज्जयिनी के समीप भाद्रपद देश (स्थान) में हुआ था और १२ वर्षीय अकाल के समय जैनसघ को दक्षिण देश में ले जानेवाले उनके शिष्य चन्द्रगुप्त अपरनाम विशाखाचार्य थे। अन्य कथाओं और लेखों के अनुसार भद्रबाहु स्वय दक्षिण देश ससघ गये थे और उनका समाधि-मरण श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत में हुआ था। चन्द्रगुप्त उनके साथ ही गये थे और उनका नाम प्रभाचन्द्र था। इसमें अन्य दिग० कथाकोशों की भाँति समन्तभद्र, अकलंक और पात्रकेसरी की कथाये नहीं दी गई हैं।

इस कथाकोश की प्रशस्ति के आठवें पद्य में इसे 'आराधनोद्धृत' कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आराधना नामक किसी ग्रन्थ में जो उदाहरण रूप कथायें थीं उन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है। इस तथ्य के सकेत रूप में यत्र तत्र शिवार्य की भगवतीआराधना का नाम दिया गया है। इस ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक डा० आदिनाथ ने० उपाध्ये का मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कितनेक अश सभवतः किसी प्राकृत ग्रन्थ से सस्कृत में अनूदित हुए हैं क्योंकि इसमें बहुत से प्राकृत नाम ज्यों के त्यों रह गये हैं, यथा—मेदज्ज (मेतार्य), भारहेवासे (भारतवर्षे), वाणारसी (वाराणसी), विज्जुदाढ (विद्युद्दंष्ट्र) आदि। पंथा, विकुर्व्वणा आदि कितने ही शब्द सस्कृत रचनाओं में दुर्लभ हैं किन्तु प्राकृत ग्रन्थों में सुलभ है। यह सब देख 'आराधनोद्धृत' का अर्थ आराधना नामक प्राकृत ग्रन्थ से ही उद्धृत किया हुआ या लिया हुआ होना चाहिये।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्ता आचार्य हरिषेण हैं। प्रशस्ति में उनकी परम्परा दी गई है। तदनुसार पुन्नाट सघ में मौनिभट्टारक, उनके शिष्य हरिषेण (प्रथम), उनके शिष्य भरतसेन (जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता तथा किसी काव्य के कर्ता थे) और उनके शिष्य प्रस्तुत हरिषेण (ग्रन्थकर्ता) थे। इस ग्रन्थ की रचना काठियावाड़ के बढमान (वर्धमानपुर) नामक स्थान में वि० सं० ९५५ में हुई थी। इसी बढमान में शक स० ७०५ (वि० स० ८४०) में पुन्नाट सघ के एक आचार्य जिनसेन ने हरिवशपुराण की रचना की थी। सभवतः हरिषेण भी उनकी परम्परा के हों, यदि हमे जिनसेन और हरिषेण के परदादागुरु मौनिभट्टारक के बीच की दो तीन पीढ़ियों का पता लग जाय। जिनसेन के हरिवश की प्रशस्ति

के दोष दिखाने का कुफल, १ कथा में मुनि-अपमान-निवारण का सुफल, १ कथा में जिनवचन पर अश्रद्धा का कुफल, १ कथा में धर्मोत्साह प्रदान करने का सुफल, १ कथा मे गुरुविरोध का फल, १ में शासनोन्नति करने का फल तथा अन्तिम कथा में धर्मोत्साह प्रदान करने का फल वर्णित है।

यद्यपि इस कथाकोश की कथाएं प्राकृत गद्य में लिखी गई हैं फिर भी प्रसग-वश प्राकृत पद्यों के साथ सस्कृत और अपभ्रश के पद्य भी मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से कथाए सरल एव सुगम हैं। इसमें व्यर्थ के शब्दाडम्बर एव दीर्घ-समासों का अभाव है। कथाओं में यत्र-तत्र चमत्कार एवं कौतूहल तत्त्व बिखरा पड़ा है। धार्मिक कथाओं मे शृंगार और नीति का संमिश्रण प्रचुर रूप में हुआ है जिससे मनोरजकता विपुल मात्रा में आ गई है। इन कथाओं मे तत्कालीन समाज, आचार-विचार, राजनीति आदि के सरस तत्त्व विद्यमान हैं।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के प्रारभ और अन्त से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता जिनेश्वरसूरि हैं। इनका श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे एक विशिष्ट स्थान है। इन्होंने शिथिलाचारग्रस्त चैत्यवासी यतिवर्ग के विरुद्ध आन्दोलन कर सुविहित या शास्त्रविहित मार्ग की स्थापना की थी और श्वेताम्बर संघ में नई स्फूर्ति और नूतन चेतना उत्पन्न की थी। इनके गुरु का नाम वर्द्धमानसूरि था और भाई का नाम बुद्धिसागरसूरि था। ये ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे पर धारा नगरी के सेठ लक्ष्मीपति की प्रेरणा से वर्धमानसूरि के शिष्य हुए थे।

इनकी विशाल और गौरवशालिनी शिष्यपरम्परा थी जिससे श्वेता० समाज में नूतन युग का उदय हुआ। इनकी शिष्यपरम्परा में नवागी वृत्तिकार अभयदेवसूरि, सवेगरंगशाला के लेखक जिनचन्द्रसूरि, सुरसुन्दरीकथा के कर्ता धनेश्वरसूरि, जयन्तविजयकाव्य के रचयिता अभयदेव (द्वितीय), पासनाहचरिय और महावीरचरिय के प्रणेता गुणचन्द्रगणि अपरनाम देवभद्र-सूरि आदि अनेक विद्वान्, शास्त्रकार, साहित्य-उपासक हो गये हैं।

इनके शिष्य-प्रशिष्यों ने इन्हें युगप्रधान विरुद से संबोधित किया है।

प्रस्तुत कथाकोषप्रकरण के अतिरिक्त इनके रचित ग्रन्थ चार और हैं: प्रमालक्ष्म, निर्वाणलीलावतीकथा, षट्स्थानकप्रकरण, पञ्चलिङ्गीप्रकरण। उनमें निर्वाणलीलावतीकथा (प्राकृत) अबतक अनुपलब्ध है।

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४३१-४३९.

इस कथाकोषप्रकरण की रचना वि० स० ११०८ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी रविवार को हुई थी।

१. कथानककोश—इसे कथाकोश या कथाकोशप्रकरण भी कहा गया है। बृहट्टिप्पणिका के अनुसार यह प्राकृत ग्रन्थ है जिसमें २३९ गाथाएँ हैं।[1] लेखक ने प्रारम्भ में एक गाथा में कहा है कि वह इस कोश में कुछ नयों और दृष्टान्त-कथाओं को कह रहा है जिनके श्रवण से मुक्ति सम्भव है। गाथाओं में कथाओं का आकर्षक नामों से उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं एक ही दृष्टान्त की एकाधिक कथायें दी गई हैं। उदाहरण के लिए पूजा की भावना मात्र से स्वर्गसुख की प्राप्ति होती है, इसके लिए चौथी गाथा में जिनदत्त, सूरसेना, श्रीमाली और रोरनारी के नाम दृष्टान्त रूप में दिये गये हैं। प्रथम १७ गाथाओं में सब कथाएँ जिनपूजा और साधुदान से सम्बन्धित हैं। गाथाओं पर गद्य-पद्य मिश्रित एक संस्कृत टीका है पर उसमें दृष्टान्त कहानियाँ प्राकृत में दी गई हैं। कथाकार ने इसमें आगमवाक्य तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के कुछ पद्यों को उद्धृत किया है।

रचयिता और रचनाकाल—इस कथाकोश में रचयिता का नाम नहीं दिया गया है पर मुनि जिनविजय के मतानुसार वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि ने ही इन गाथाओं को रचकर उनसे सम्बद्ध कथाओं की रचना वर्तमान रूप में की है। हो सकता है उन्होंने इसमें प्राचीन सामग्री भी सम्मिलित कर दी हो। बृहट्टिप्पणिका के अनुसार इसका समय स० ११०८ है। श्री देसाई के अनुसार यह ग्रन्थ स० १०८२–१०९५ के बीच रचा गया है।[2] इसे मोटे रूप में ११वीं सदी के उत्तरार्ध की रचना मान सकते हैं।

२. कथानककोश—यह एक गद्य-पद्यमयी रचना[3] है जिसमें गद्य संस्कृत में है और पद्य कहीं संस्कृत में और कहीं प्राकृत में। इसमें श्रावकों के दान, पूजा,

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६५ (III); डा० आ० ने० उपाध्ये, हरिषेण के बृहत्कथाकोश की भूमिका, पृ० ३९.

२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २०८; विण्टरनित्स ने अपने ग्रन्थ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४३ में इस कथाकोश का समय ई० सन् १०९२ दिया है जो भूल से संवत् के स्थान में सन् मानने से हुआ लगता है।

३. पं० जगदीशलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा १९४२ में प्रकाशित; जिनरत्नकोश, पृ० ६५.

शील, कषायदूषण, द्यूत आदि पर २७ कथाओं का सग्रह है। प्रारभ मे धनद की कथा है और अन्त में नल की। ये कथाएँ किसी विषयक्रम के अनुसार नहीं रखी गई हैं। कई विषय आगे-पीछे दो बार आये हैं पर कथाओं की पुनरावृत्ति नहीं हुई है। प्रत्येक कथा के आदि में एक पद्य दिया गया है जो कथा के उद्देश्य को सूचित करता है। यह शैली पचतंत्र, हितोपदेश के अनुकरण पर है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता का नाम कहीं नहीं दिया है। अन्य किसी कथाकोशकार ने भी इसके कर्ता का नाम निर्दिष्ट नहीं किया है। पर इसमे कर्क, अरिकेसरिन् और मम्मण का उल्लेख किया गया है और इन राजाओं का समय कर्णाटक राजवशावली के अनुसार ई० १०वीं-११वीं शताब्दी है। इन उल्लेखों से डा० सलेतोरे ने कल्पना की है कि इस कथाकोश की रचना ११वीं सदी ईस्वी के अन्तिम चतुर्थ में हुई होगी।[1]

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अम्बाला और जीरा नामक स्थानों पर मिली हैं। इसमें 'चीठी' आदि हिन्दी भाषा के शब्द मिलने से यह अनुमान होता है कि लिपिकारों ने इसमें आवश्यक परिवर्तन किया है। इसकी हस्तलिखित प्रतिया वि० सं० १८५९ से पूर्व की नहीं मिली हैं। इसका अंग्रेजी अनुवाद सी० एच० टानी ने किया है[2] और मूल्याकन करते हुए लिखा है कि ये कहानियाँ भारतीय लोकवार्ताओं के यथार्थ अश हैं जिन्हें किसी जैनाचार्य ने अपने धर्म के अनुयायियों के गौरवगान का रूप देकर अपने ढग से फिर से सम्पादन किया है।

कहारयणकोस (कथारत्नकोश)—इस कथाकोश मे ५० कथाए हैं जो दो बृहद् अधिकारों में विभक्त हैं।[3] पहले अधिकार का नाम धर्माधिकारी-सामान्य-गुण वर्णन है। इसमें ९ सम्यक्त्व पटल की तथा २४ सामान्य गुणों की इस तरह ३३ कथायें हैं। द्वितीय धर्माधिकारी-विशेषगुण-वर्णनाधिकार में बारह व्रतों तथा वन्दन-प्रतिक्रमण आदि से सबधित १७ कथायें हैं। इस कथाकोश का उद्देश्य यह है कि अच्छा साधु और अच्छा श्रावक वही है जो अपने-अपने

---

१ जैन एण्टीक्वेरी, भाग ४, सं० ३, पृ० ७७-८०.

२. ओरियण्टल ट्रान्सलेशन फण्ड, न्यू सिरीज, लन्दन, १८९५.

३. आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला में मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, सन् १९४४ में प्रकाशित; डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४४८-४५५; जिनरत्नकोश, पृ० ६६.

व्रतों में निष्णात है। बिना अच्छा श्रावक बने कोई भी अच्छा श्रमण नहीं बन सकता है। जो अणुव्रतों का पालन कर सकता है वही महाव्रतों का पालन कर सकता है। सुश्रावक होने के लिए व्यक्ति में सामान्य और विशेष दोनों ही गुण होने चाहिये। सुश्रावक के सामान्य गुण ३२ हैं जिनमें सम्यग्दृष्टि और उसके आठ अतिचार, धर्म में श्रद्धा, देवमन्दिर और मुनिसंघ की श्रद्धापूर्वक सहायता करना और करुणा, दया आदि मानवीय वृत्तियों का पोषण करना समाविष्ट हैं। विशेष गुण १७ हैं जिनमें पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत, संवरण, आवश्यक और दीक्षा समाविष्ट हैं। इन गुणों के महत्त्व को प्रकाशित करनेवाली कथाएँ ही इस कथाकोश में दी गई हैं।

यह कथाकोश अधिकांश में प्राकृत पद्यों में ही लिखित है, कहीं-कहीं कुछ अंश गद्य में भी दिये गये हैं। बीच-बीच में संस्कृत और अपभ्रंश के पद्य भी दिये गये हैं। कथाओं द्वारा धार्मिक और औपदेशिक शिक्षा देना ही इस कथा-कोश का प्रधान लक्ष्य है। ग्रन्थ का परिमाण १२३०० श्लोक प्रमाण है।

इस कथाकोश की सभी कथाएँ रोचक हैं। उपवन, ऋतु, रात्रि, युद्ध, श्मशान, राजप्रासाद, नगर आदि के सरस वर्णनों के द्वारा कथाकार ने कथा-प्रवाह को गति-शील बनाया है। इन कथाओं में सांस्कृतिक महत्त्व की बहुत सामग्री है। नागदत्तकथानक में कुलदेवता की आराधना के लिए उठाये गये कष्टों से उस काल के रीति-रिवाजों तथा नायक के चरित्र और वृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है। सुदत्त-कथा में गृहकलह का प्रतिपादन करते हुए सास, बहू, ननद और बच्चों के स्वाभाविक चित्रणों में कथाकार ने पूरी कुशलता प्रदर्शित की है। सुजसश्रेष्ठी और उसके पुत्रों की कथा में बाल-मनोविज्ञान के अनेक तत्त्व चित्रित हैं। धन-पाल और बालचन्द्र की कथा में वृद्धा वेश्या का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवभद्रसूरि (गुणचन्द्रगणि) हैं। इनका परिचय इनकी अन्य कृतियों—महावीरचरिय तथा पासनाहचरिय के प्रसंग में दिया गया है। इसकी रचना उन्होंने वि० सं० ११५८ में[1] भरुकच्छ (भड़ौच) नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में समाप्त की थी। इस ग्रन्थ में प्रणेता ने अपनी अन्य कृतियों में पासनाहचरिय और संवेगरंगशाला[2] (कथाग्रन्थ) का उल्लेख किया है।

---

१. वसुबाण रुद्दसंखे ११५८ वच्चंते विक्कमाओ कालम्मि।
लिहिओ पढमम्मि य पोत्थयम्मि गणिअमलचन्देण॥ प्रशस्ति, ९.

२. इसका परिचय जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४ में दिया गया है।

आख्यानकमणिकोश (अक्खाणयमणिकोस)—यह १२७ उपदेशप्रद कथाओं (आख्यानकों) का बृहद् संग्रह है।[1] मूल कृति में प्राकृत की ५२ गाथाएँ हैं। पहली मे मगलाचरण, दूसरी मे प्रतिज्ञात वस्तु का निर्देश है और शेष पचास गाथाओं को ४१ अधिकारों में विभक्त किया गया है। इन गाथाओं में उन-उन अधिकारों में प्रतिपाद्य विषयसम्बंधी दृष्टान्तकथाओं के पात्रों का नाम-निर्देश मात्र किया गया है। ये कथाएँ पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों और श्रुति-परम्परा से प्रसिद्ध थीं। लेखक ने केवल उन सबको विविध विषयों के साथ सम्बद्ध करके उनका विषय-दृष्टि से वर्गीकरण किया है और स्मृतिपथ में लघु रीति से लाने के लिए एक लघु कृति के रूप मे बनाया है। इन गाथाओं में वैसे १४६ आख्यानकों का निर्देश ग्रन्थकार ने किया है पर कई की पुनरावृत्ति भी की गई है इसलिए वास्तविक सख्या १२७ ही होती है।

रचयिता और रचनाकाल—इन कथात्मक गाथाओं के रचयिता बृहद्गच्छीय आचार्य देवेन्द्रगणि[2] (नेमिचन्द्रसूरि) हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति महावीरचरिय के प्रसग में दिया गया है। प्रस्तुत कथाकोश की रचना वि० सं० ११२९ में हुई थी।

आख्यानकमणिकोशवृत्ति—उक्त ग्रन्थकार की जीवन-समाप्ति के कुछ दशकों बाद इस पर एक बृहद्वृत्ति रची गई। मूल गाथाओं पर वृत्ति संस्कृत में है पर १२७ आख्यानकों में से १४, १७, २३, ३९, ४२, ६४, १०९, १२१. १२२ और १२४ ये तो सस्कृत में, २२वां और ४३वां अपभ्रश में[3] और शेष आख्यानक प्राकृत में हैं। ७३वें भावभट्टिका[4] के अन्तर्गत अन्तिम चारुदत्तचरिउ अपभ्रंश मे है। संस्कृत में लिखे गये आख्यानकों में १७ और १२४[5] गद्य में हैं और १४ वा[6] चम्पू-शैली में है तथा प्राकृत

---

१. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, १९६२.

२ अक्खाणयमणिकोसं एवं जो पढइ कुणइ जहयोगं।
देविंदसाहुमहियं अइरा सो लहइ अपवग्गं॥

३. भरताख्यानक और सोमप्रभाख्यानक.

४. यह परियों की कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का है। इसके कुछ भाग की तुलना 'अरेबियन नाइट्स' से की जा सकती है।

५. चण्डचूडाख्यान.

६. सीता-आख्यानक.

में लिखे आख्यानकों में ४७वां प्राकृत गद्य में है, १२३वां प्राकृत उपेन्द्रवज्रा में और शेष ११५ प्राकृत आर्या छन्दों में। यत्र-तत्र अन्य छन्दों का प्रयोग किया गया है पर बहुत कम। इस ग्रन्थ से वृत्तिकार की संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में पटुता ज्ञात होती है।

वृत्तिकार ने इन कथाओं का कलेवर प्रायः पूर्ववर्ती कृतियों से लिया है और इस बात का यत्र-तत्र निर्देश भी कर दिया है। उदाहरणार्थ १०वा[1] और ६५वां आख्यानक देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) कृत महावीरचरिय से अक्षरशः लिये गये हैं। ३२वें बकुलाख्यानक की विशेष घटना जानने के लिए वृत्तिकार ने देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) कृत रत्नचूड़कथा को देखने का निर्देश किया है। इसी तरह अन्य १९ आख्यानों में रामचरित, हरिवंश, आवश्यक, उत्तराध्ययन, निशीथ आदि ग्रन्थों को देखने का निर्देश किया है। इन आख्यानकों में कुछ तो प्रचलित जैन परम्परा के ढंग के हैं, कुछ कुक्कुटाख्यानक (१०९) अजैन परम्परा के पौराणिक ढंग के और कुछ लौकिक उदाहरणों का अनुसरण करते हुए लिखे गये हैं। इन आख्यानकों की कथावस्तु को अन्यान्य साहित्य के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो बड़ी रोचक बातें ज्ञात होंगी। इन कथानकों में नाना प्रकार के सुभाषित, सूक्त और लोकोक्तिया भरे पड़े हैं। अनेक प्रसिद्ध देश्य और प्राकृत शब्द भी इसमें मिलते हैं।[2]

रचयिता और रचनाकाल—इस कथात्मक वृत्ति के रचयिता आम्रदेवसूरि हैं जो जिनचन्द्र के शिष्य थे। उन्होंने इसका प्रणयन वि० सं० ११९० (सन् ११३३) अर्थात् मूल गाथाओं के रचने के ठीक ६० वर्ष बाद किया था।

कथामहोदधि—इसे कर्पूरकथामहोदधि[3] भी कहते हैं। इसमें छोटी-बड़ी सब मिलाकर १५० कथाएँ हैं।[4] यह वज्रसेन के शिष्य हरिषेण द्वारा रचित उपदेशात्मक काव्य 'कर्पूरप्रकर' या सूक्तावली के १७९ पद्यों में वर्णित ८७ जैन धार्मिक और नैतिक नियमों को सङ्केत रूप में दी गई दृष्टान्त-कथाओं का पूर्ण विवरण देने के लिए रचा गया है, इसलिए इसे कर्पूरकथामहोदधि[5] भी कहते हैं।

---

१ चन्दना का आख्यान.

२ प्रस्तावना, पृ० ८-९.

३ जिनरत्नकोश, पृ० ६८.

४. इन कथाओं की सूची पिटरसन रिपोर्ट ३, पृ० ३१६-१९ में दी गई है।

५. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१६.

कर्पूरप्रकरकाव्य का प्रारंभ 'कर्पूरप्रकर' वाक्य से होता है अतः उसका नाम वही हो गया। इसका प्रत्येक पद बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है और प्रसगानुकूल दृष्टान्तों द्वारा समझाया गया है। उदाहरण के लिए जीवदया पर नेमिनाथ का तथा परस्त्री-अनुराग के कुफल पर रावण का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक पद्य में एक या अधिक दृष्टान्तरूप कहानियाँ दी गई हैं। इन्हीं दृष्टान्तों को आधार बनाकर कथाओं का विस्तार कर यह ग्रन्थ बनाया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय रत्नशेखरसूरि के शिष्य सोमचन्द्रगणि हैं जिन्होंने इसकी रचना वि० सं० १५०४ में की थी।

कर्पूरप्रकर के आधार पर दूसरा कथाकोश भी उपलब्ध है, यथा खरतर-गच्छीय जिनवर्धनसूरि के शिष्य जिनसागर की *कर्पूरप्रकर-टीका*।[1] इसका समय स० १४९२ से १५२० माना जाता है। इस प्रकार यह टीका सोमचन्द्रकृत कथामहोदधि के समकालीन है। इसमें उक्त काव्य के पद्यों की व्याख्या करने के बाद दृष्टान्त-कथा सस्कृत श्लोकों में दी गई है। कथा का प्रवेश आगमों या उपदेशमाला जैसे ग्रन्थों के गद्य-पद्यमय प्राकृत उद्धरणों को देते हुए किया गया है। इसमें कथाओं के शीर्षक और क्रम 'कथामहोदधि' के समान ही हैं। इसमें नेमिनाथ, सनत्कुमार प्रभृति पुराण पुरुषों, सत्यकी, चेल्लणा, कुमारपाल प्रभृति ऐतिहासिक-अर्धैतिहासिक पुरुषों और अतिमुक्तक, गजसुकुमाल प्रभृति तपस्वियों तथा जैन परम्परा के धर्मपरायण पुरुष-महिलाओं की कहानिया दी गई हैं।

कर्पूरप्रकर पर तपागच्छीय चरणप्रमोद की तथा अज्ञात लेखक की वृत्ति (ग्रन्थाग्र १७६८) मिलती है तथा हर्षकुशल और यशोविजयगणि की टीका तथा मेरुसुन्दर के बालावबोध (टीका) और धनविजयगणिकृत स्तबक का उल्लेख मिलता है।[2] सभवतः इनमें से कुछ उक्त कथाकोशों के समान ही हों।

कथाकोश (भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति)—मूल में यह १३ गाथाओं की प्राकृत रचना है[3] जो 'भरहेसरबाहुबलि' पद से प्रारभ होती है। संभवतः यह

---

१. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९१९.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६९.

३. देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, बम्बई से बड़े दो भागों में सन् १९३२ और १९३७ में प्रकाशित.

नित्य स्मरण की एक स्तुति है। इसमें १०० धर्मात्मा गिनाये गये हैं। इनमे ५२ पुरुष (पहला भरत और अन्तिम मेघकुमार) और ४७ स्त्रिया (पहली सुलसा और अन्तिम रेणा) हैं जो धर्म और तप साधनाओं के लिए जैनों में सुख्यात हैं। अधिकाशतः ये प्राचीन जैन कथा-साहित्य में उपलब्ध कथाओं के ही पात्र हैं। इनका उल्लेख सूयगड, भगवई, नायाधम्मकहाओ, अन्तगड, उत्तराध्ययन, पइन्नय, आवस्सय, दसवेयालिय एव विविध निर्युक्तियों तथा टीकाओं में हुआ है। मूल प्राकृत गाथाओं में तो इन नामों की शृखला मात्र दी गई है। पहले पहल ये गाथाएँ जैन साहित्य के विविध क्षेत्रों के अभ्यासियों के लिए बोधगम्य रही होंगी। पर पीछे मूल पर विस्तृत टीका एव कथाओं के पूर्ण विवरण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इस तरह यह विशाल कथाकोश प्रकाश में आया। इस सस्कृत टीका में गद्य-पद्य मिश्रित कथाएँ भी दी गई हैं जिनमे यत्र-तत्र प्राकृत के उद्धरण विकीर्ण हैं। टीका में सब कथाएँ ही कथाएँ हैं, इसलिए इसे कथाकोश भी कहा जाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कथासग्रह के रचयिता शुभशीलगणि हैं। इनके गुरु का नाम मुनिसुन्दरगणि था। विक्रम की १५वीं शती में हुए युगप्रभावक आचार्य सोमसुन्दर का विशाल शिष्य-परिवार था जो विद्वान् तथा साहित्यसर्जक था। सोमसुन्दर के पट्टशिष्य सहस्रावधानी मुनि-सुन्दर थे। उनके अन्य गुरुभाइयों ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। शुभशीलगणि इसी परिवार के साहित्यसर्जक विद्वान् थे।

शुभशीलगणि ने इस कथाकोश की रचना वि० सं० १५०९ में की थी। ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति में रचना-सवत् दिया गया है।

इनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं जिनमें कुछ में रचना-सवत् दिया गया है यथा—विक्रमादित्यचरित्र (वि० सं० १४९९), शत्रुंजयकल्प कथाकोश (वि० स० १५१८), पंचशतीप्रवंध (वि० सं० १५२१), भोजप्रबध, प्रभावककथा, शालिवाहनचरित्र, पुण्यधननृपकथा, पुण्यसारकथा, शुकराजकथा, जावडकथा, भक्तामरस्तोत्रमाहात्म्य, पंचवर्गसंग्रहनाममाला, उणादिनाममाला और अष्टकर्मविपाक।

शुभशीलगणि कथात्मक ग्रन्थ लिखने में विशेष प्रवण थे।

पंचशतीप्रबोधसंबंध—ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रारंभ में इसका नाम इस प्रकार सूचित किया है—"ग्रन्थोऽयं पञ्चशतीप्रबोधसंबंधनामा क्रियते मया तु"।

जिनरत्नकोश में भी यही नाम दिया गया है।[1] पर अन्य कथाकोशों की भाँति इसके संक्षिप्त नाम कथाकोश और प्रबंधपंचशती मिलते हैं। इस कथाकोश में ४ अधिकार हैं जिनमें सब मिलाकर ६२५ कथाप्रबंधों का संग्रह है। प्रथम अधिकार में १–२०३ तक, द्वितीय में २०४–४२६ तक, तृतीय में ४२७–४७६ तक और चतुर्थ में ४७७–६२५ तक कथाएँ दी गई हैं।

कथाकार ने इन कथाओं के संकलन में अनेक स्रोतों का आश्रय लिया है। वे कहते हैं कि—"किंचिंद्गुरोराननतो निशम्य, किंचित् निजान्यादिकशास्त्रतश्च" अर्थात् गुरु-परम्परा तथा जैन-जैनेतर ग्रन्थों का उपयोग करके यह रचना लिखी गई है। इसमें विशेषतः प्रभावकचरित, प्रबंधचिन्तामणि, पुरातनप्रबंधसंग्रह, प्रबंधकोश, उपदेशतरंगिणी, आवश्यकनिर्युक्ति आदि जैन ग्रन्थों तथा हितोपदेश, पंचतंत्र, रामायण, महाभारत आदि में प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। ग्रन्थ गुरुपरम्परा से उपलब्ध विशाल कथा-साहित्य का पश्चात्कालीन उत्तराधिकारी है इससे यह बड़े महत्त्व का है। प्रस्तुत कृति में कथाओं का विषय-क्रम नहीं दिखाई पड़ता है फिर भी इसके तीन विभाग कर सकते हैं :

१. ऐतिहासिक प्रबंध, २. धार्मिक कथाएं, ३. लौकिक कथाएं।

ऐतिहासिक प्रबंधों में नन्द, सातवाहन, भर्तृहरि, भोज, कुमारपाल, हेमसूरि आदि की कथाएँ द्रष्टव्य हैं।

यह ग्रन्थ गद्य-पद्यमिश्रित है जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के सुभाषित अवतरणरूप में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें संस्कृत व्याकरण के कठिन प्रयोगों से मुक्त सरल भाषा का प्रयोग किया गया है तथा लोकभाषा में प्रचलित अनेक शब्दों का संस्कृतीकरण करके इसमें प्रचुर रूपेण प्रयोग हुआ है। इसमें अनेक फारसी शब्दों का भी प्रयोग द्रष्टव्य है यथा—

---

१. सुवासित साहित्य प्रकाशन, सूरत, १९६८, सम्पादक—मुनि श्री मृगेन्द्र; जिनरत्नकोश, पृ० २२४; विण्टरनित्स ने हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४४, टि० ३ में बतलाया है कि इटाली विद्वान् पेवोलिनी ने इस कथाग्रन्थ से लेकर द्रौपदी, कुन्ती, देवकी, रुक्मिणी कथाएं लिखी हैं। दूसरे इटाली विद्वान् बल्लिनी ने पहली ५० कथाओं का मूल और अनुवाद प्रकाशित किया है। इसी विद्वान् ने सुल्तान फिरोज द्वि० (सन् १२२०-१२९६) और जिनप्रभसूरि से सम्बन्धित १६ कथाओं का वर्णन किया है।

कलन्दर, कागद, खरशान, मोहरि, बीबी, मसीत, मीर, मुलाण (मुल्ला), मुशलमान, हज, हरीमज आदि। इसकी भाषा और शब्दों का अध्ययन एक पृथक् विषय है। मूल शब्दों का संस्कृतीकरण करने से कई स्थानों पर अर्थ लगाने में बड़ी गड़बड़ी होती है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के उपर्युक्त शुभशीलगणि ही रचयिता हैं। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचना-सवत् विक्रम सं० १५२१ दिया गया है।[1] उक्त प्रशस्ति में शुभशीलगणि ने अपने को रत्नमण्डनसूरि का शिष्य बताया है पर इस कथाकोश के एक अधिकार की प्रशस्ति में लक्ष्मीसागर के शिष्य के रूप में उल्लेख किया गया है :

लक्ष्मीसागरसूरीणां पादपद्मप्रसादतः।
शिष्येण शुभशीलेन ग्रन्थ एष विधीयते ॥ ३ ॥

ये लक्ष्मीसागर शुभशीलगणि के या तो प्रगुरु थे या उनके गुरु मुनिसुन्दर के गुरुभाई थे। अपने अन्य ग्रन्थों में शुभशील ने अपने को मुनिसुन्दरसूरि का शिष्य बताया है।[2] संभवतः कथाकार ने कृतज्ञतावश विद्या, आश्रय और दीक्षा देनेवाले तीन प्रकार के गुरुओं का स्मरण किया है।

१. कथाकोश—इसे 'कल्पमंजरी' भी कहते हैं। इसकी रचना आगमगच्छ के जयतिलकसूरि ने की है। इसका ग्रन्थाग्र २९० श्लोक प्रमाण है।[3] इसका समय १५वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

२. कथाकोश—इसे 'व्रतकथाकोश' भी कहते हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्रभण्डार में उपलब्ध है। इसमें विभिन्न व्रतों सम्बंधी कथाओं का संग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध न होने से यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका कि इसमें कितनी व्रतकथाएँ लिखी गई थीं।[4] इसके रचयिता प्रसिद्ध भट्टारक सकलकीर्ति हैं जिनका अन्यत्र परिचय दिया गया है।

---

१. विक्रमार्काद् विधु-द्वीपु-चन्द्र (१५२१) प्रमितवत्सरे।
अमुं व्यधात् प्रबंधं तु शुभशीलाभिधो बुधः ॥
२. मुनिसुन्दरसूरीशविनेयः शुभशीलभाक्—विक्रमचरित्र, प्रशस्ति, पद्य १२.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ६५.
४. वही, पृ० ६५, ३६८; राजस्थान के जैन सन्तः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १४.

३. कथाकोश—इसे व्रतकथाकोश और कथावली भी कहते हैं।[१] इसमें व्रतों, धार्मिक क्रियाओं, नियमों, अनुष्ठानों तथा तपों की कथाए दी गई हैं यथा अष्टाह्निक व्रतकथा, आकाशपञ्चमी, मुक्तासप्तमी, चन्दनषष्ठी आदि।

कर्ता तथा रचनाकाल—इसे मूलसघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण के श्रुतसागर ने रचा है। उन्होंने अपने को ब्रह्म० या देशयती कहा है। इनके गुरु का नाम भट्टारक विद्यानन्दि था, जो पद्मनन्दि के प्रशिष्य और देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। विद्यानंदि का भट्टारक पद गुजरात के ईडर नामक स्थान में था और उनके पट्टधर मल्लिभूषण और उसके बाद लक्ष्मीचन्द्र भट्टारक हुए। मल्लिभूषण को श्रुतसागर ने गुरुभाई कहा है। श्रुतसागर बड़े विद्वान् थे।[२] इनकी अनेक उपाधिया थीं। इनकी अन्य कृतिया तत्त्वार्थवृत्ति,[३] यशस्तिलक-चन्द्रिका, औदार्यचिन्तामणि, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका, महाभिषेकटीका, षट्प्राभृतटीका, श्रीपालचरित, यशोधरचरित, सिद्धभक्तिटीका, सिद्धचक्राष्टकटीका आदि ग्रन्थ हैं। इन्होंने षट्प्राभृत की सस्कृत टीका में भी कई कथाएँ दी हैं।

श्रुतसागर विक्रम की १६वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनके किसी भी ग्रन्थ में रचना का समय नहीं दिया गया है पर अन्य उल्लेखों से इनके समय का अनुमान किया गया है।

कुछ अन्य कथाकोश हैं जिन्हें 'व्रतकथाकोश' भी कहते हैं। उनमें दयावर्धन, देवेन्द्रकीर्ति, धर्मचन्द्र एव मल्लिषेण की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[४]

अन्य कथाकोशों मे वर्धमान, चन्द्रकीर्ति, सिंहसूरि तथा पद्मनन्दि के ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। वर्धमान अभयदेव के शिष्य थे और उनके कथाकोश को 'शकुनरत्नावलि' भी कहते हैं।[५]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६६ और ३६८.
२. पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० सं०), पृ० ३७१-३७७.
३. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३६८.
५. वही, पृ० ६५, ३६८.

४. कथाकोश—यहाँ कुछ अज्ञात लेखकों के संस्कृत प्राकृत कथाकोशों का परिचय दिया जाता है। इनमें से अधिकाश की हस्तलिखित प्रतिया पूना के भाण्डारकर प्राच्य मन्दिर के सरकारी संग्रह विभाग में उपलब्ध हैं।[1]

१. स० ४७८ (सन् १८८४–८६)—इसके पहले तीन पत्रों में हरिषेण का कथाकोश है। इसके बाद ५३ व्रत-कथाएँ हैं जिनमें सुगन्धदशमी, षोडश-कारण और रत्नावली सस्कृत में हैं। शेष अपभ्रश में हैं।

२. सं० ५८२ (१८८४–८६)—इसमें सस्कृत श्लोकों के बाद ही दृष्टान्त कथाएँ दी गई हैं जिनमें कुछ जिनप्रभसूरि, जगसिंह, सातवाहन, जगडूशाह आदि के प्रबध भी हैं।

३. स० ५८३ (१८८४–८६)—यह दोनों ओर से टूटा-फूटा है। यह सस्कृत पद्य में है जिसमें संस्कृत-प्राकृत दोनों प्रकार के उद्धरण हैं। सभवतः इसमें सम्यक्त्वकौमुदी की ही कथाएँ हैं।

४. स० १२६६ (१८८४–८७)—यह चन्द्रप्रभ की स्तुति से प्रारभ होता है और इसमें संस्कृत में आरामलनय, हरिषेण, श्रीषेण, जीमूतवाहन आदि की कथाएँ दी गई हैं। यह अपूर्ण है। केवल ४७ पृष्ठ उपलब्ध हैं।

५. स० १२६७ (१८८४–८७)—इसमें वे कहानियाँ हैं जो सामान्यतया सम्यक्त्वकौमुदीकथा नाम से कहलाती हैं। प्रारम्भ का गद्य कुछ दूसरी तरह का है और वह इस प्रकार का है—गोडदेशे पाडलीपुरनगरे आर्यसुहस्ति-सूरीश्वराः। त्रिखण्डभरताधिपसंप्रतिराज्ञोऽग्रे धर्मदेशनां चक्रुरेवं भो भो भव्याः। इसमें सबसे अन्त में पात्रदान के दृष्टान्तरूप मे धनपति की कथा दी गई है। यद्यपि यह सस्कृत का ग्रन्थ है पर इसमें यत्र-तत्र प्राकृत गाथाए दी गई हैं।

६. सं० १२६८ (१८८४–८७)—इसमें प्राकृत कथाएँ दी गई हैं यथा गधपूजा पर शुभमति की, धूपपूजा पर विनयधर की तथा अन्य दृष्टान्तकहानियाँ। इसकी प्रशस्ति और कुछ अश सस्कृत में है। इसकी रचना हर्षसिंहगणि द्वारा सारगपुर में की गई थी।

---

1. इन सबका परिचय बृहत्कथाकोश में डा० उपाध्ये द्वारा लिखी प्रस्तावना के आधार पर दिया जाता है।

७. सं० १२६९ (१८८४–८७)—यह प्रति टूटी-फूटी है तथा लिपि गड़-बड़ है। इसमें भावना विषयक अमरचन्द्र की कथा, पारमार्थिक-मैत्री विषयक विक्रमादित्य आदि की कथाएँ हैं। पत्र १६ में वैतालपंचविंशतिका की कथा उद्धृत है और अपभ्रंश एवं प्राचीन गुजराती मे भी छोटी-छोटी कुछ कथाएँ दी गई हैं। इसकी समाप्ति एक प्राणिकथा से होती है जो सभवतः पंचतन्त्र की है।

८. सं० १३२२ (१८९१–९५)—इसमें मदनरेखा, सनत्कुमार आदि की कथाएँ सस्कृत में दी गई हैं और बीच-बीच में प्राकृत एवं अपभ्रंश के पद्य भी दिये गये हैं।

९. स० १३२३ (१८९१–९५)—यह संस्कृत गद्य में है जिसमें संस्कृत-प्राकृत पद्य बीच-बीच में प्रस्तुत हुए हैं। इसमें देवपूजा विषयक देवपाल की, मान सम्बन्धी बाहुबलि की, माया विषयक अशोकदत्त, वन्दन-पूजा के सम्बन्ध में मदनावली आदि अनेक विषयक कथाएँ दी गई हैं। कोई-कोई कथा प्राकृत गाथा से ही प्रारभ होती है।

१०. सं० १३२४ (१८९१–९५)—यह टूटा-फूटा अपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रसन्नचन्द्र, सुलसा, चिलातिपुत्र आदि की कथाएँ सस्कृत गद्य में हैं। कहीं कहीं श्लोक भी हैं।

कुछ अन्य कथाकोश इस प्रकार हैं:—

कथासमास—औपदेशिक प्रकरणग्रन्थ 'उपदेशमाला' में उल्लिखित दृष्टान्तों पर स्वतन्त्र कथाग्रंथ लिखने की जैनाचार्यों में विशेष प्रवृत्ति देखी गई है। उपदेशमाला पर लगभग बीसेक टीकाएँ लिखी गई हैं उनमें अनेक कथात्मक हैं। प्रस्तुत रचना उपदेशमाला-कथासमास नाम से भी कही जाती है और संक्षेप में 'कथासमास' नाम से भी। इसमे सभी कथाएँ प्राकृत में दी गई हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जिनभद्र मुनि हैं जो शालिभद्र के शिष्य थे। उन्होंने इसे संवत् १२०४ में रचा था।[१]

कथार्णव—यह सस्कृत अनुष्टुभ् छन्दों में निर्मित कथाओं का सग्रहरूप टीकाग्रन्थ है जिसमें ऋषिमण्डलस्तोत्र की व्याख्या करते हुए उसमें नमस्कार के रूप में उल्लिखित एव वर्णित शलाकापुरुषों, उनके समकालीन धर्मात्माओं, प्रत्येकबुद्धों, जिनपालित आदि काल्पनिक वीरों, मेतार्य जैसे तपस्वियों और महावीर के उत्तरकालीन आचार्यों की कथारूप विस्तृत जीवनियाँ दी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ५१; पाटन हस्त० सूची, भाग १, पृ० ९०.

इनमें अधिकांश की कथा आगमों, निर्युक्तियों और प्रकीर्णकों में पाई जाती हैं। जो औपदेशिक प्रकरणों, माहात्म्यों और दृष्टान्त-कथाओं में अनैतिहासिक या पौराणिक पात्र से प्रतीत होते थे, वे सब यहाँ तपशूर तथा जैनसंघ के यथार्थ व्यक्ति माने गये हैं। कथार्णव का ग्रन्थाग्र ७५९० श्लोक प्रमाण है।[1]

रचयिता एवं रचनाकाल—खरतरगच्छ के गुणरत्नसूरि के शिष्य पद्ममन्दिर-गणि ने इसकी रचना वि० सं० १५५३ में की है।

१. कथारत्नाकर—यह १५ तरंगों में विभक्त है।[2] इसके अन्त में अगड-दत्त की कथा है। इसकी रचना नरचन्द्रसूरि ने की है। जैनधर्म सम्बन्धी कथानक सुनने की वस्तुपाल महामात्य की उत्कण्ठा शान्त करने के लिए ही नरचन्द्र ने तप, दान, अहिंसा आदि सबंधी अनेक धर्मकथावाला यह कथाकोश रचा है। इसे 'कथारत्नसागर' भी कहते हैं।[3] इसकी एक ताड़पत्रीय प्रति सं० १३१९ की मिलती है। इसका ग्रन्थाग्र २०९१ श्लोक-प्रमाण है। यह सारा ग्रन्थ अनुष्टुभ् छन्द में रचा गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता नरचन्द्रसूरि बड़े विद्वान् थे। ये हर्षपुरीय या मलधारिगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे। वे महामात्य वस्तुपाल के मातृपक्ष से गुरु थे और वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण तथा साहित्य में पारगत किया था। इनके रचे अनेक ग्रन्थ मिलते हैं यथा—न्यायकन्दलीपंजिका, अनर्घ-राघवटिप्पण, ज्योतिःसार, सर्वजिनसाधारणस्तवन आदि।[4] प्रबंधकोश के अनुसार नरचन्द्रसूरि का निधन भाद्रपद १० वि० सं० १२८७ में हुआ था इस-लिए उक्त रचना का समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य मानना चाहिये।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६०; ऋषिमण्डलप्रकरण, आत्मवल्लभ ग्रन्थमाला, सं० १३, वलद, १९३९; प्रस्तावना विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६६; पाटन की हस्तप्रतियों का सूचीपत्र (गा० ओ० सि०), भाग १, पृ० १४.

३. इत्यभ्यर्थनया चक्रुर्वस्तुपालमंत्रिणः ।
नरचन्द्रमुनीन्द्रास्ते श्रीकथारत्नसागरम् ॥

४. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० १००-१०४ तथा पृ० २०७-२०८.

२. कथारत्नाकर—यह कथाकोश दस तरंगों में विभक्त है, जिनमे कुल मिलाकर २५८ कथाएँ हैं।[1] अनेकों तो सरल संस्कृत गद्य में लिखी गई हैं और बहुत थोड़ी गंभीर शैली में। कुछ सस्कृत पद्यों में भी लिखी गई हैं। इनमें कुछ कथाएँ परम्पराश्रुत हैं, कुछ कल्पनाप्रसूत हैं, कुछ अन्य आधारों से ली गई हैं और कुछ जैनागमों से ली गई हैं। प्रत्येक कथा का प्रारंभ एक या दो उपदेशात्मक गाथा या श्लोक से होता है। सारे ही ग्रन्थ में संस्कृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी और पुरानी गुजराती के उद्धरण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। महाभारत, रामायण आदि विशाल ग्रन्थों एव भर्तृहरिशतक, पचतंत्र आदि अनेकों नीति-ग्रन्थों से सुपरिचित कुछ उद्धरण भी लिये गये हैं। ग्रन्थ का जैन दृष्टिकोण उसके प्रारभ के श्लोक, भाव और कथाओं से ही स्पष्ट हो जाता है। इसमें शृगार से लेकर वैराग्य तक विचारों और भावों का समावेश है। विण्टरनित्स का कहना है कि इसमे अनेक कहानियाँ पंचतंत्र या उस जैसे कथाग्रन्थों मे पाई जानेवाली कथाओं जैसी हैं। यथा—स्त्री-चातुर्य की कहानियाँ, धूर्तों की कथाएँ, मूर्खकथाएँ, प्राणिकथाएँ, परीकथाएँ, अन्य सभी प्रकार के चुटकुले जिनमें ब्राह्मणों और दूसरे मतों का उपहास है। पंचतंत्र के समान ही इनमें कथाओं के बीच-बीच मे अनेक सदूक्तियाँ फैली हुई हैं। इसमे कहानियाँ एक-दूसरे से यों ही जोड़ दी गई हैं। वे एक ढाँचे में सजायी नहीं गई हैं।[2] ग्रन्थ का अधिक भाग वास्तव में एक दृष्टिकोण से भारतीय ही है। जैन कथा-ग्रन्थो मे सामान्य रूप से आनेवाले नामों के अतिरिक्त इसमें भोज, विक्रम, कालिदास, श्रेणिक आदि के उपाख्यान दिये गये हैं। कुछ भौगोलिक उल्लेख भी इसमें बिल्कुल आधुनिक हैं और दिल्ली, चम्पानेर तथा अहमदाबाद जैसे नगरों से सम्बन्धित कहानियाँ भी हैं। सक्षेप में इसका विषय शिक्षाप्रद और मनोरंजक दोनों ही है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता हेमविजयगणि हैं जो तपागच्छीय कल्याणविजयगणि के शिष्य थे। इनका विशेष परिचय अन्यत्र दिया गया है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १६५७ में की गई है।[3] इनकी अन्य कृतियाँ पार्श्वनाथ-

---

१. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९११; इसका जर्मन अनुवाद १९२० में हर्टेल महोदय ने किया है।

२. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४५.

३. अहिमन्नगरद्रंगे वर्षेष्व्यश्वेषु रसावनौ।
मूलमार्तण्डसंयोगे चतुर्दश्यां शुचौ शुचेः॥ —प्रशस्ति.

महाकाव्य, अन्योक्तिमुक्तामहोदधि, कीर्तिकल्लोलिनी, स्तुतित्रिदशतरंगिणी, सूक्तरत्नावली, कस्तूरीप्रकर, ऋषभशतक, विजयप्रशस्तिमहाकाव्य आदि अनेक हैं। इसकी सूचना विजयप्रशस्तिमहाकाव्य की प्रशस्ति में दी गई है।

३. कथारत्नाकर—यह 'धर्मकथारत्नाकरोद्धार'[1] या 'कथारत्नाकरोद्धार' नाम से भी कहा जाता है। इसमें दो अध्याय हैं। इसका ग्रथाग्र ५५०० श्लोकप्रमाण है। इसमें साधु-निन्दा का परिणाम दिखाने के लिए रुक्मिणी की कथा सम्मिलित है। इसके रचयिता उत्तमर्षि हैं। उत्तमर्षि के विषय में कुछ नहीं मालूम है।

एक अज्ञात लेखककृत कथारत्नाकर का भी उल्लेख मिलता है।

कथानककोश—इसमे १४० प्राकृत गाथाएँ हैं जिनपर सस्कृत में विनयचन्द्र की टीका है। इस ग्रंथ का नाम धम्मक्खाणयकोस भी है।[2] पाटन भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति है जिसमें वि० स० ११६६ रचना या लिपि का समय दिया गया है।[3]

पाटन के भण्डार में 'कथाग्रंथ' नामक कथाकोश की ताड़पत्रीय प्रति है जिसे महत्त्वपूर्ण बतलाया जाता है।[4] दूसरे ताड़पत्रीय कथाकोश 'कथानुक्रमणिका' का भी उल्लेख मिलता है जिसका समय सं० ११६६ है।[5]

कथासंग्रह—इसे अन्तरकथासग्रह या विनोदकथासग्रह भी कहते हैं।[6] यह सरल सस्कृत-गद्य में लिखा गया कथाग्रंथ है। इसमें लगभग ८६ कथाएँ धार्मिक और नैतिक शिक्षा की हैं और शेष १४ वाक्चातुरी और परिहास द्वारा मनोरजन की हैं। इनकी शैली बिल्कुल बातचीत की है। शब्दविन्यासप्रणाली देशज शब्दों से बहुत-कुछ रगी हुई है। संस्कृत, महाराष्ट्री और अपभ्रंश पद्य इसमें प्रचुर रूप से उद्धृत हैं। अनेक कथाएँ तो सिद्धान्तों की गाथा कहकर ही कही गई हैं। ऐसी गाथाओं में किसी व्रत का माहात्म्य दिया गया है और उसे दृष्टान्तकथा

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६६.
२ पाटन की हस्तलिखित प्रतियों की सूची, भाग १ (गायकवाड ओ० सिरीज सं० ७६), पृ० ४२; जिनरत्नकोश, पृ० ६५.
३ जिनरत्नकोश, पृ० ६५, ३६८.
४. वही, पृ० ६५.
५ वही.
६. वही, पृ० ११ और ३५७.

देकर समझाया गया है। इसकी शैली, रचना-विन्यास और विषय पंचतन्त्र जैसे हैं। इस ग्रंथ की रचना में लेखक के धार्मिक और लौकिक दोनों दृष्टिकोण रहे हैं। इन दृष्टान्त-कथाओं में सभी प्रकार की लौकिक चतुराई भरी हुई है और कुछ मे जैनधर्म और आचार की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। यद्यपि इन विषयों पर दूसरों ने भी कथाएँ कही हैं फिर भी यह सम्भव है कि इसकी अधिकाश कथाएँ कल्पित हों और अनुरोधवश रची गयी हों। कुछ कथाएँ प्रचलित भारतीय कथाओं से ली गई हैं और कुछ जैनागमों की टीकाओं से।

अन्तरकथा शीर्षक का सम्भवतः यह अर्थ है कि जैसे बड़ी कथा की उपकथाएँ होती हैं उसी तरह यहाँ ये दृष्टान्त-कथाएँ हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता राजशेखरसूरि हैं जो कि प्रबन्ध-कोश (सं० १४०५) के रचयिता भी हैं। इनके गुरु सागरतिलकगणि हैं जो हर्षपुरीयगच्छ के थे। इनकी अन्य कृतियाँ षड्दर्शनसमुच्चय, स्याद्वादकलिका, रत्नाकरावतारिकापंजिका और न्यायकंदलीपजिका हैं। राजशेखर का समय १४वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है।

उक्त रचना के अतिरिक्त और भी कई कथा-संग्रहों का उल्लेख जिनरत्नकोश में है[१] जिनका विशेष परिचय मालूम नहीं है। उनकी सूची तथा संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है :

१. हेमाचार्य का कथासंग्रह।

२. आनन्दसुन्दर का कथासंग्रह।

३. मलधारीगच्छीय गुणसुन्दर के शिष्य सर्वसुन्दर (सं० १५१०) का कथासंग्रह।

४. सख्या ३३५ (सन् १८७१-७२ की रिपोर्ट) के कथासग्रह में पहली कथा विक्रमादित्य की है। इसके अतिरिक्त श्रीपाल आदि की अन्य कहानियाँ हैं जिनमें जैनव्रतों और आचारों के फलों का प्रभाव दिखाया गया है। इसकी सब कथाएँ सस्कृत में हैं परन्तु उनमें मराठी और अपभ्रश के उद्धरण भी हैं। सिर्फ एक कथा ही इस सग्रह में प्राकृत में है।

५. सं० १२७२ (सन् १८८४–८७ की रिपोर्ट) के कथासग्रह (सवत् १५२४) में जीवकथा आदि कई विषयों पर सस्कृत में कई उपदेशात्मक छोटी-छोटी

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० ६६.

कथाएँ हैं। कथासंग्रहों का यह एक अच्छा ग्रंथ है जिसका जैनमुनि अपने प्रवचनों में दृष्टान्त के रूप में उपयोग करते थे।

६. सं० १३२५ (सन् १८९१–९५ की रिपोर्ट) के कथासग्रह में सस्कृत गद्य में आठ कथाएँ—कुरुचन्द्र, पद्माकर आदि की—साधुओं के वसति, शय्या, आसन, आहार-पान, औषधि, वस्त्र और पात्रदान के महत्त्व से सम्बन्धित हैं—दी गई हैं। इनका उल्लेख उपदेशमाला की २४०वीं गाथा वसही-सयणासण आदि में है।

७. स० १३२६ (सन् १८९१–९५ की रिपोर्ट) के कथासग्रह में धनदत्त, नागदत्त, मदनावली आदि की कथाएँ पूजा के भिन्न-भिन्न प्रकार के फल प्रदर्शित करने के लिए दी गई हैं।[1]

उपर्युक्त कथासग्रह के अतिरिक्त जिनरत्नकोश[2] में कुछ कथाकोश विभिन्न नामों से उल्लिखित मिलते हैं, यथा—कथाकल्लोलिनी, कथाग्रंथ, कथाद्वात्रिंशिका (परमानन्द), कथाप्रबन्ध, कथाशतक, कथासमुच्चय, कथासंचय आदि। इन सबके परीक्षणों से जैनकथा साहित्य पर विशेष प्रकाश पड़ने की आशा है।

कुछ अन्य नामों से भी कथाकोश उपलब्ध हुए हैं।

पुण्याश्रव-कथाकोश—पुण्याश्रव-कथाकोश[3] नाम से कथाओं के कतिपय संग्रह हैं। विषय की दृष्टि से इनमें पुण्यार्जन की हेतुभूत कथाओं का सग्रह है। प्रस्तुत संग्रह का परिमाण ४५०० श्लोक प्रमाण है।[4]

यह सस्कृत गद्य में है जो ६ अधिकारों में विभक्त है जिनमें कुल मिलाकर ५६ कथाएँ हैं। प्रथम पाँच खण्डों में आठ-आठ (अष्टक) कथाएँ हैं और छठे में १६। कथाओं के प्रारम्भिक पद्यों की सख्या ५७ है पर १२-१३वीं कथाओं को एक माना गया है इससे कथाएँ ५६ ही हैं। इन कथाओं में उन पुरुषों और

---

१. उपर्युक्त कुछ कथा-संग्रहों का परिचय बृहत्कथाकोश की प्रस्तावना में डा० उपाध्ये द्वारा प्रस्तुत विवरण से लिया गया है।

२. पृ० ६६-६७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २५२, रामचन्द्र मुमुक्षुकृत, नेमिचन्द्रगणिकृत (ग्रन्थाग्र ४५००) तथा नागराजकृत रचनाएँ। कवि रइधू ने अपभ्रंश में 'पुण्णासव-कहाकोसो' लिखा है।

४. जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, १९६४, हिन्दी अनुवादसहित.

नारियों के चरित्र वर्णित हैं जिन्होंने देवपूजा आदि गृहस्थों के ६ धार्मिक कृत्यों में विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

प्रथम अष्टक की कथाएँ देवपूजा-जन्य पुण्य के माहात्म्य का सूचन करती हैं। दूसरे अष्टक में णमोकार मन्त्र का माहात्म्य, तीसरे अष्टक में स्वाध्याय का फल, चौथे अष्टक में शील के प्रभाव का ज्ञापन, पाँचवें में पर्वों पर उपवास का महत्त्व तथा छठे में पात्र दान से होनेवाले पुण्य की कथाएँ दी गई हैं।

प्रत्येक कथा के आरम्भ में एक श्लोक से पंचतंत्र-हितोपदेश के समान कथा के विषय का संकेत कर दिया गया है। ये श्लोक ग्रंथकार ने स्वयं बनाये या पीछे से जोड़े, इसका निर्णय करना कठिन है। कथाएँ गद्य में हैं जो कि ऊपर से तो सरल दिखाई देती हैं किन्तु प्रायः जटिल हैं। कथाओं के भीतर उपकथाएँ भी आ गई हैं। जन्मान्तरों की कथाओं के वर्णन के कारण कथावस्तु में जटिलता आ गई है। यत्र-तत्र संस्कृत-प्राकृत के कुछ पद्य अन्यत्र से उद्धृत पाये जाते हैं।

ग्रंथकार ने कथाओं को कई स्रोतों से लिया है और कहीं कहीं कुछ का निर्देश भी कर दिया है। उनमें से कुछेक कथाओं का आधार कन्नड वड्डाराधना है तथा अधिकांश कथाएँ रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, जिनसेन गुणभद्रकृत महापुराण और सम्भवतः हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश से ली गई हैं।

यद्यपि यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है पर लोक-प्रचलित शैली में लिखा होने से संस्कृत-व्याकरण के कठोर नियमों का पालन नहीं किया गया है। इसकी संस्कृत तत्कालीन बोलियों से प्रभावित है। इसमें यत्र-तत्र कन्नड़ शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—कर्ता ने प्रशस्ति के तीन पद्यों में अपना कुछ परिचय दिया है। तदनुसार इनका नाम रामचन्द्र मुमुक्षु था। ये दिव्यमुनि केशवनन्दि के शिष्य थे जो कुन्दकुन्दान्वयी थे तथा बड़े संयमी, अनेक मुनियों और नरेशों से वन्दनीय एवं बहुख्यातिप्राप्त थे। रामचन्द्र ने महायशस्वी वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दि से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था।

इस कथाकोश की रचना किस समय हुई, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। न कर्ता के काल का पता है। तो भी इनका १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होना सम्भव माना जा सकता है।[1]

---

१. देखें—पुण्याश्रवकथाकोश पर लिखी भूमिका, पृष्ठ २०-२२.

कुमारपाल-प्रतिबोध (कुमारवाल-पडिबोह)—इसे जिनधर्मप्रतिबोध और हेमकुमारचरित भी कहते हैं।[१] इसमें पाँच प्रस्ताव हैं। पाँचवाँ प्रस्ताव अपभ्रंश तथा संस्कृत में है। यह प्रधानतः प्राकृत में लिखी गद्य-पद्यमयी रचना है। इसमें ५४ कहानियों का संग्रह है। ग्रंथकार ने दिखलाया है कि इन कहानियों के द्वारा हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल को जैनधर्म के सिद्धान्त और नियम समझाये थे। इसकी अधिकाश कहानियाँ प्राचीन जैनशास्त्रों से ली गई हैं। इसमें श्रावक के १२ व्रतों के महत्त्व सूचन करने के लिए तथा पाँच-पाँच अतिचारों के दुष्परिणामों को सूचित करने के लिये कहानियाँ दी गई हैं। अहिंसाव्रत के महत्त्व के लिए अमरसिंह, दामन्नक आदि, देवपूजा का माहात्म्य बताने के लिए देवपाल-पद्मोत्तर आदि की कथा, सुपात्रदान के लिए चन्दनबाला, धन्य तथा कृतपुण्य-कथा, शीलव्रत के महत्त्व के लिए शीलवती, मृगावती आदि की कथा, द्यूतक्रीड़ा का दोष दिखलाने के लिए नलकथा, परस्त्री सेवन का दोष बतलाने के लिए द्वारिकादहन तथा यादवकथा आदि आई हैं। अन्त में विक्रमादित्य, स्थूलभद्र, दशार्णभद्र कथाएँ भी दी गई हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना सोमप्रभाचार्य ने की है। सोमप्रभ के पिता का नाम सर्वदेव और पितामह का नाम जिनदेव था। ये पोरवाड़ जाति के जैन थे। सोमप्रभ ने कुमार अवस्था में जैन-दीक्षा ले ली थी। वे बृहद्गच्छ के अजितदेव के प्रशिष्य और विजयसिंहसूरि के शिष्य थे। सोमप्रभ ने तीव्र बुद्धि के प्रभाव से समस्त शास्त्रों का तलस्पर्शी अभ्यास कर लिया था। वे महावीर से चलनेवाली अपने गच्छ की ४०वीं पट्टपरम्परा के आचार्य थे। इनकी अन्य रचनाएँ[२] शतार्थीकाव्य, शृंगारवैराग्यतरंगिणी, सुमतिनाथचरित्र, सूक्तमुक्तावली

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९१, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, सं० १४, बड़ौदा, १९२०; इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० १९८३ में प्रकाशित; विशेष के लिए देखें—विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५७०; आल्सडोर्फ ने आल्ट उण्ड न्यू इण्डिश स्टुडियन, १९२८, पृ० ८ पर इसके विवरणों की समीक्षा की है; प्रद्योतकथा के लिए 'अनल्स आफ दी भाण्डारकर ओ० रिसर्च इन्स्टी०', भाग २, पृ० १–२१ देखें, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४६३–४७२.

२. वेलंकर कम्मेमोरेशन वोल्यूम, पृ० ४१–४४ में डा० घटगे का लेख देखें।

आदि मिलती हैं। इनका शतार्थीकाव्य की रचना के कारण शतार्थिक उपनाम भी हो गया था।

कुमारपालप्रतिबोध की रचना स० १२४१ में हुई थी जो कुमारपाल की मृत्यु के ११ वर्ष बाद आता है। यह इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्त्व की रचना है।

धर्माभ्युदय—इसे संघपतिचरित्र भी कहा गया है। इसमें १५ सर्ग है और समग्र ग्रन्थ का परिमाण ५२०० श्लोक-प्रमाण है।[1] इस कथाकाव्य में महामात्य वस्तुपाल द्वारा की गई सघयात्रा को प्रसग बनाकर धर्म के अभ्युदय का सूचन करनेवाली अनेक धार्मिक कथाओं का संग्रह है। इसके प्रथम सर्ग म वस्तुपाल की वशपरम्परा तथा वस्तुपाल के मत्री बनने का निर्देश है तथा पन्द्रहवें सर्ग में वस्तुपाल की सघयात्रा का ऐतिहासिक विवरण है। इससे इस काव्य को सघपति-चरित नाम भी दिया गया है।

अन्य सर्गों मे अर्थात् २ से १४ तक परोपकार, शीलव्रत और प्राणियों के प्रति अनुकम्पा जन्य पुण्य से सम्बधित अनेकों धर्मकथाएँ तथा शत्रुजय तीर्थ के उद्धार तथा माहात्म्य सम्बधी अनेकों कथाएँ दी गई हैं। द्वितीय सर्ग से सप्तम सर्ग तक परोपकार का माहात्म्य, नवम सर्ग मे तप का माहात्म्य और दशम से चतुर्दश तक दीनानुकम्पन का माहात्म्य बतलाया गया है। इन सर्गों में गुरु विजयसेनसूरि ने अपने शिष्य वस्तुपाल को ऋषभदेव, भरत, बाहुबलि, जम्बू-स्वामी, युगबाहु और नेमिनाथ[2] की कथाएँ सुनाई और इन कथाओं के भीतर भी बीसियों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं, यथा—अभयंकरनृपकथा, अंगारकदृष्टान्त, मधुविन्दाख्यानक, कुबेरदत्त-कुबेरदत्ताख्यानक और शखधम्मिक आदि।

ये सब कथाएँ अनुष्टुभ् छन्द में ही वर्णित हैं पर कथात्मक इन सर्गों (२-१४) मे प्रत्येक सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन के साथ कुछ पद्य जोडे गये हैं जिनमे वस्तुपाल की प्रशंसा है और प्रस्तुत रचना को महाकाव्य कहा गया

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४, मुनि चतुरविजयजी और पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९४९.

२. नेमिनाथचरित्र के प्रसंग में जो उदयप्रभ की स्वतंत्र रचना का उल्लेख किया है वह स्वतत्र नही प्रत्युत यहीं से उद्धृत एवं अलग प्रकाशित रचना है।

है, तथा काव्य को इतर महाकाव्यों की पद्धति से 'लक्ष्मी' शब्द से अंकित किया गया है।[1] यह अनुमान किया जाता है कि ये प्रशस्ति-पद्य मूल कर्ता के नहीं हैं और पीछे इसकी प्रतिलिपि करनेवाले वस्तुपाल ने स्वय ही इस रचना को गरिमा प्रदान करने के लिए जोड़ दिये हैं। कथात्मक इन सर्गों की भाषा भी सहज, सरल एव मृदु है। साधारण सस्कृत जाननेवाले के लिए भी इसकी भाषा बोधगम्य है। कवि की शैली वर्णनात्मक है जिसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। फिर भी इस कथानक भाग मे सस्कृतज्ञों में प्रचलित बोल-चाल की भाषा का प्रयोग ही किया गया है। भाषा को शब्दालकारों से सजाने का प्रयास सफल रहा है। भाषा में अनुप्रास और यमकालंकारों की रणनात्मक झकृति जो यहाँ है व अन्यत्र बहुत कम दिखाई पड़ती है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है।

इस काव्य के ऐतिहासिक भाग (१ और १५ सर्ग) में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है और भाषा भी उदात्त है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्ता उदयप्रभसूरि नागेन्द्रगच्छीय थे। उनसे पहले नागेन्द्रगच्छ मे क्रमशः महेन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, आनन्दसूरि, अमरचन्द्रसूरि, हरिभद्रसूरि, विजयसेनसूरि हुए। विजयसेनसूरि ही उदयप्रभसूरि और वस्तुपाल के गुरु थे। उक्त प्रशस्ति मे धर्माभ्युदय के रचनाकाल का उल्लेख कहीं नहीं किया गया। पर इसकी जो सर्व प्राचीन प्रति मिली है उसे सं० १२९० मे स्वयं वस्तुपाल ने अपने हाथों से लिखा है। इसके अन्त मे यह उल्लेख है: सं० १२९० वर्षे चैत्र शु० ११ रवौ स्तम्भतीर्थवेलाकूलमनुपालयता महं श्री वस्तुपालेन श्री धर्माभ्युदयमहाकाव्यपुस्तकमिदमलेखि।

इससे निश्चय ही यह ग्रन्थ स० १२९० से पूर्व लिखा गया होगा। प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार वस्तुपाल ने सघपति होकर प्रथम तीर्थयात्रा सं० १२७७ मे की थी। इसकी पुष्टि गिरिनार के स० १२९३ के एक शिलालेख से भी होती है। अतः धर्माभ्युदय महाकाव्य की रचना स १२७७ के बाद और स० १२९० के पूर्व कभी हुई है।[2]

---

१. इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीउदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि संघपतिचरिते 'लक्ष्म्यङ्के' महाकाव्ये तीर्थयात्राविधिवर्णनो नाम...... सर्गः।

२. भूमिका, पृ० १४७.

सम्यक्त्वकौमुदी—इस नाम की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। कुछ का नाम सम्यक्त्वकौमुदीकथानक, सम्यक्त्वकौमुदीकथा, सम्यक्त्वकौमुदीकथाकोप, सम्यक्त्वकौमुदीचरित्र और सम्यक्त्वकौमुदी' भी कहा गया है। इन नामों के अन्तर्गत सम्यक्दर्शन (जैनधर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा) के सम्बध की अनेक लघु कथाओं का सग्रह किया गया है। विभिन्न कहानियाँ एक प्रधान कहानी के चौखटे के अन्तर्गत समाविष्ट की गई है, जो इस प्रकार है : रात्रि मे अर्हद्दास सेठ अपनी आठ पत्नियों को कहानिया सुनाता है कि उसे किस प्रकार सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और वे पत्निया भी अपनी पारी मे अपने-अपने सम्यक्त्व पाने की कहानिया कहती है। ये कहानिया उसी समय गुप्त वेश धारण कर अपने मंत्री के साथ घूमते हुए वहाँ आये राजा ने तथा छिपे हुए एक चोर ने सुनीं। इन कहानियों मे एक राजा सुयोधन की कहानी है। वह राजा अपने सत्यनारायण कोतवाल को जाल मे फंसाने के लिए अपने कोपागार मे सेंध लगाता है। कोतवाल उसे सात दिन तक सात कहानियो द्वारा चेतावनी देकर छोड़ देता है पर अन्त में उसका चोर के रूप मे भेद खुल जाता है और लोग उसे राज्यच्युत कर देते हैं।

यह लघु कथाकोश विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा प्रणीत उपलब्ध है।[2] अब तक ज्ञात प्राचीन कृतियों में सबसे प्राचीन वह सम्यक्त्वकौमुदी[3] है जिसकी रचना मदनपराजय के कर्ता नागदेव ने की है। ये लगभग १४वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के विद्वान् हैं। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १४८९ की मिली है। इसमें २००० श्लोक हैं जिनमें विभिन्न आठ कहानियाँ दी गई हैं।

धर्मकल्पद्रुम—यह नौ पल्लवों में विभक्त बृहत् कथाकोश[4] है जिसका ग्रन्थाग्र ४८१४ श्लोक-प्रमाण है। इसमें अनेकों रोचक कथाएँ दी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४२४.

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० २१०-२११; उसमे नागदेव-कृत रचना का परिचय नहीं दिया गया है।

३. जैन ग्रन्थ कार्यालय, हीराबाग, बम्बई से प्रकाशित; विषय की तुलना और कर्ता के निर्णय के लिए देखें—वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ मे श्री राजकुमार जैन का लेख 'सम्यक्त्वकौमुदी के कर्ता', पृ० ३७५-३७९.

४. जिनरत्नकोश, पृ० १८८; देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ४०, बम्बई, सं० १९७३; द्रष्टव्य—हर्टेल का लेख : जेड० डी० एम० जी०, भाग ६५, पृ० ४२९ प्रभृति.

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना मुनिसागर उपाध्याय के शिष्य उदयधर्म ने आनन्दरत्नसूरि के पट्टकाल में की थी। आनन्दरत्न आगमगच्छीय आनन्दप्रभ के प्रशिष्य और मुनिरत्न के शिष्य थे। मुनिसागर के शिष्य उदय-धर्म का और पट्टधर आनन्दरत्न का पता साहित्यिक तथा पट्टावलियों के आधार से लगाने पर भी नहीं चल सका इसलिए रचनाकाल बतलाना कठिन है। जर्मन विद्वान् विण्टरनित्स[1] का अनुमान है कि ये १५वीं शती या उसके बाद के ग्रन्थकर्ता हैं।

धर्मकल्पद्रुम[2] नाम की अन्य रचनाएँ भी मिलती है उनमें दो अज्ञातकर्तृक हैं, एक का नाम वीरदेशना भी है। अन्य दो में से एक के रचयिता धर्मदेव हैं जो पूर्णिमागच्छ के थे और उन्होंने इसे सं० १६६७ में रचा था। दूसरे का नाम परिग्रहप्रमाण है और यह एक लघु प्राकृत कृति है। इसके रचयिता धवलसार्थ (श्राद्ध—श्रावक) है।

दानप्रकाश—यह कथाग्रन्थ ८ प्रकाशों में विभक्त है। ग्रन्थाग्र ३४० श्लोक-प्रमाण है। इसमें वसतिदान पर कुरुचन्द्र-ताराचन्द्रनृपकथा (१ प्र०), शय्यादान पर पद्माकर सेठ की (२ प्र०), आसनदान पर करिराजमहीपाल की (३ प्र०), भक्तदान पर कनकरथ की (४ प्र०), पानीदान पर भद्र-अतिभद्र नृप की (५ प्र०), औषधिदान पर रेवती की (६ प्र०), वस्त्रदान पर ध्वजभुजग की (७ प्र०), पात्रदान पर धनपति की (८ प्र०) कथाएँ दी गई हैं।

कर्ता एवं कृतिकाल—ग्रन्थान्त में ४ श्लोक की प्रशस्ति दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि इसे तपागच्छ के विजयसेनसूरि के प्रशिष्य सोमकुशलगणि के शिष्य कनककुशलगणि ने स० १६५६ मे रचा था। कनककुशल की अन्य कृतियाँ भी मिलती हैं: जिनस्तुति (स० १६४१), कल्याणमन्दिरस्तोत्रटीका, भक्तामर-स्तोत्रटीका[3], चतुर्विंशतिस्तोत्रटीका[4], पचमीस्तुति (चारों सं० १६५२), विशाल-लोचनस्तोत्रवृत्ति[5] (स० १६५३), सकलार्हत्स्तोत्रटीका[6] (स० १६५४), कार्तिक-

---

१. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १८८-१८९.

३. दोनों प्रकाशित.

४. स्तुतिसंग्रह में मेहसाना से सन् १९१२ में प्रकाशित.

५. अप्रकाशित.

६. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के प्रथम २६ पद्यों पर टीका, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से १९४२ में प्रकाशित.

शुक्लपञ्चमीकथा[1] (अपरनाम ज्ञानपंचमीकथा, सौभाग्यपंचमीकथा, वरदत्त-गुणमजरीकथा—स० १६५५), सुरप्रियमुनिकथा[2] (स० १६५६), रोहिण्यशोक-चन्द्रनृपकथा (स० १६५७), अक्षयतृतीयाकथा (गद्य), दीपालिकाकल्प (प्राकृत), रत्नाकरपचविंशतिकाटीका और मृगसुन्दरीकथा (सं० १६६७)।

उपदेशप्रासाद—यह एक विशाल कथाकोश है। इसमे २४ स्तंभ हैं।[3] प्रत्येक स्तम्भ में १५-१५ व्याख्यान हैं, इस तरह सब मिलाकर ३६० व्याख्यान होते है। इस ग्रन्थ की प्रासाद सज्ञा की सिद्धि के लिए ३६१वा व्याख्यान कहा गया है। इसमें कुल मिलाकर दृष्टान्त कथाएँ ३४८ हैं तथा ९ पर्व कथाएँ दी गई हैं।

विषय की दृष्टि से प्रथम चार स्तम्भों मे सम्यक्त्व के प्रकारों का वर्णन है, पांच से बारह तक स्तंभों मे श्रावक के १२ व्रतों का वर्णन, १३वें में जिनपूजा, तीर्थयात्रा तथा नवकार जाप का महत्त्व दिखाया गया है, १४वें मे तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक, दीपोत्सव आदि का वर्णन, १५ से १७ तक में ज्ञानपचमी आदि पर्वों का वर्णन है, १८वें मे ज्ञानाचार, १९वें में तपाचार, २०वें मे वीर्याचार, २१ से २३ तक ज्ञानसारग्रन्थ के ३२ अष्टक तथा फुटकर विषय और २४वें में अनेक विषयों का समावेश है। इन विषयों के विवेचन मे दृष्टान्त रूप में जो कहानियॉ दी गई हैं उनसे यह विशाल कथाकोश बन गया है। इसमे अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, आचार्यसम्बधी तथा जनप्रिय कथाएँ देखने को मिलती हैं। यह जैन श्रावकों के लिए बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है।

इन कथाओं मे से पर्वों से सम्बधित कथाओं को 'पर्वकथासग्रह'[4] नाम से अलग प्रकाशित किया गया है जिसमे आषाढ-चातुर्मासिक, दीपावली, कार्तिक-प्रतिपदा, ज्ञानपञ्चमी, कार्तिकी पूर्णिमा, मौनैकादशी, रोहिणी-हुताशनी आदि पर्वों की कथाएं दी गई हैं।

---

१. प्रकाशित.

२. दोनों प्रकाशित

३. जैनधर्म प्रसारक सभा, ग्रन्थ स० ३३-३६, भावनगर, १९१४-१९२३; वहीं से ५ भागों मे गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

४. चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क ३४, अहमदाबाद, वि० सं० २००१; 'सौभाग्यपञ्चम्यादिपर्वकथासग्रह' नाम से हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय, कोटा से वि० सं० २००६ में प्रकाशित.

कर्ता एवं रचनासमय—२४वें स्तभ के अन्त में ५१ पद्यों का गुरुपट्टानुक्रम दिया गया है और उसके बाद ३४ पद्यों की एक बड़ी प्रशस्ति दी गई है। गुरुपट्टानुक्रम में सुधर्मा स्वामी से लेकर अपने समय तक की गुरुपरम्परा दी है और तपागच्छ की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। इसके बाद तपागच्छ की पट्टावली दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि ये विजयसौभाग्यसूरि के शिष्य थे। विजयलक्ष्मी इनका नाम था और इन्होंने इस ग्रन्थ पर प्रेमविजय आदि मुनियों के अभ्यास के लिए उपदेशसग्रह नाम से वृत्ति लिखी थी, वह ग्रन्थ स० १८४३ मे समाप्त हुआ था। पट्टावलीपराग[1] में पृष्ठ २०६ पर दी गई तपागच्छान्तर्गत विजयानन्दसूरि-गच्छपरम्परा मे इनका सक्षिप्त परिचय दिया गया है। ये सिरोडी और हणादरा के बीच पाल्ड़ी ग्राम में स० १७९७ में जन्मे थे। पिता का नाम हेमराज और माता का आनदीबाई था। स० १८१४ में नर्मदा तट पर सिनोर में दीक्षा, उसी वर्ष सूरिपद और स० १८५८ में सूरत में स्वर्गवास हुआ था।

धर्मकथा—सस्कृत में यह बृहत् कथाग्रन्थ है।[2] इसमें छोटी-बड़ी १५ कथाएँ दी गई हैं। इसी में सीताचरित्रमहाकाव्य ४ सर्गों में वर्णित है जिनमे ५५६ श्लोक हैं। अन्य चरित्रों मे असत्य भाषण पर ऋषिदत्ताकथा (४८५ श्लोक), सम्यक्त्व पर विक्रमसेनकथा (२३३ श्लोक) और वज्रकर्णकथा (९९ श्लोक), जीवदया पर दामन्नककथा (१०४ श्लोक), सत्यव्रत पर धनश्रीकथा, चोरी पर नागदत्तकथा, ब्रह्मचर्य पर गजसुकुमालकथा, परिग्रह-परिमाण पर चारुदत्तकथा, रात्रिभोजन पर वसुमित्रकथा, दान पर कृतपुण्यकथा, शील पर नर्मदासुन्दरीकथा (२०५ श्लोक) और विलासवतीकथा (५२२ श्लोक), तप पर दृढप्रहारिकथा और भावना पर इलातीपुत्रकथा दी गई है।

रचयिता या सग्रहकर्ता का नाम अज्ञात है पर प्रशस्ति में रचना स० १३३९ (द्वितीय कार्तिक वदी) दिया हुआ है।

एकादश-गणधरचरित—इसका ग्रन्थाग्र ६५०० है। इसमें महावीर के ११ गणधरों की कथाएँ सकलित हैं। इसकी रचना खरतरगच्छ के देवमति उपाध्याय ने की है।[3]

---

१. प० कल्याणविजयगणिकृत.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १८८; पाटन ग्रन्थभण्डार सूची, भाग १, १७५-१७६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ६१.

युगप्रधानचरित—युगप्रधान आचार्यों के समुदित चरित्र को लेकर ६००० ग्रन्थाग्र प्रमाण एक रचना का जैन ग्रन्थावलि में उल्लेख मिलता है।[1]

सप्तव्यसनकथा—सप्तव्यसन अर्थात् जुआ, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीसेवन, मद्य एव मासभक्षण के कुपरिणाम को बतलाने के लिए सात कथाओं के सग्रहरूप मे कई कृतिया मिली हैं।

उनमे सोमकीर्ति भट्टारककृत सप्तव्यसनकथा[2] (सं० १५२६) मे सात सर्ग हैं। यह कथा-साहित्य का अच्छा ग्रन्थ है। अन्य रचनाओं मे सकलकीर्तिकृत[3] १८०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण तथा भुवनकीर्तिकृत[4] ३५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण एव कुछ अन्यकर्तृक[5] सप्तव्यसनकथाएँ मिलती हैं।

समितिगुप्तिकषायकथा—इसमें उक्त विषयक कथाओं का सग्रह है। इसकी रचना तपागच्छीय कमलविजयगणि के शिष्य कनकविजय ने की है।[6] रचना-काल ज्ञात नहीं है।

कामकुम्भादिकथा-संग्रह—यह पॉच कथाओं का सग्रह है जो कि विजयनीति-सूरि के शिष्य पन्यास दानविजयजी के सदुपदेश से प्रकाशित हुआ है।[7] इसमे सस्कृत गद्य में कामकुम्भकथा अपरनाम पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा, तथा पाँच पापों को सेवन करनेवाले सुभूम चक्रवर्ती की, अभयदान देनेवाले दामन्नक की, तथा चार नियमों का पालन करनेवाले वंकचूल की एवं शील पालनेवाली नर्मदासुन्दरी की कहानी है। सभी कहानिया रोचक एव उपदेशप्रद हैं।

अन्य कथाकोशों या संग्रहों मे निम्नलिखित कृतिया मिलती हैं:

अमरसेनवज्रसेनादिकथादशक[8], आवश्यककथासग्रह[9], अष्टादशकथा[10] (सकलकीर्ति सं० १५२२), उपासकदशाकथा[11] (पूर्णभद्र स० १२७५, प्राकृत), उत्तराध्ययनकथासग्रह[12] (शुभशील सं० १५६०), उत्तराध्ययनकथाएँ[13] (पद्म-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३२१.

२-५. वही, पृ० ४१६.

६. वही, पृ० ४२१.

७. वही, पृ० ८४.

८. वही, पृ० १५. ९. वही, पृ० २४. १०. वही, पृ० १९.

११. वही, पृ० ५६. १२-१३. वही, पृ० ४५.

सागरगणिकृत स० १६५७, एव पुण्यनन्दनगणि तथा दो अज्ञातकर्तृक), अनगसिंहादिकथा[1], द्वादशकथा[2] (लक्ष्मीसूरि तथा अज्ञातकर्तृक), द्वादशभावनाकथा[3], द्वादशव्रतकथा[4] (चरित्रकीर्तिगणि), दशदृष्टान्तचरित्र[5] (अनन्तहस स० १५७१), दशदृष्टान्तकथा[6] (अभयधर्मवाचक), दशश्रावकचरित्र[7] (शुभवर्धन स० १५४२), दानचतुष्टयकथा[8], धर्माख्यानकोश[9] (विनयचन्द्र), धर्मोपदेशकथा,[10] धनमित्रादिकथा,[11] कनकश्रेष्ठ्यादिकथा,[12] ढण्ढणकुमारादिकथा,[13] मोदकादिकथा,[14] वज्रायुधादिकथा,[15] वार्षिककथासंग्रह,[16] वेणवत्सराजादीनाकथा,[17] शिक्षाचतुष्टयकथा,[18] श्रावकदिनकृत्यदृष्टान्तकथा,[19] श्रावकव्रतकथासंग्रह,[20] सनत्कुमारादिकथासग्रह[21] (४८ कथाएँ), श्रीषेणकुमारादिकथा,[22] स्मरनरेन्द्रादिकथा,[23] सोमभीमादिकथा,[24] सप्तनिह्नवकथा,[25] ह्रस्वकथासग्रह[26] (सं० १४१३), पचाणुव्रतकथा,[27] पार्श्वनाथचरित्रसम्बद्धदशदृष्टान्तकथा,[28] पुरुदेवपंचकल्याणकथा,[29] भरताष्टपट्टनृपचरित्र,[30] चतुरशीतिधर्मकथा,[31] द्वाविंशतिपरीषहकथा[32] आदि ।

इन कथाकोशों में चार प्रकार की आराधना—तप, शील, ज्ञान, भावना तथा अहिंसादि १२ व्रत, दान, पूजा आदि के विविध प्रकारों के माहात्म्य तथा ज्ञानपचमी आदि व्रतों एवं पर्वों तथा तीर्थों के माहात्म्य के अतिरिक्त नीतिकथा विषयक प्राणिकथाएँ एव रोचक परीकथाओ, अद्भुत कथाओं और मुग्ध कथाओं का सग्रह किया गया है ।

धर्मकथा-साहित्य की स्वतंत्र रचनाएँ :

पूर्वोक्त विशाल पौराणिक साहित्य तथा कथाकोशों में जो अनेक प्रकार के कथानक आये हैं उनमे से अनेकों को स्वतत्र रचना के रूप में भी प्रस्तुत किया

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० ६. २-७. वही, पृ० १८४. ८. वही, पृ० १७२. ९. वही, पृ० १९४. १०. वही, पृ० १९५. ११. वही, पृ० १८७. १२. वही, पृ० ६४. १३. वही, पृ० १५१. १४. वही, पृ० ३१५. १५. वही, पृ० ३४०. १६. वही, पृ० ३४८. १७. वही, पृ० ३६५. १८. वही, पृ० ३८३. १९. वही, पृ० ३९२. २०. वही, पृ० ३९४. २१. वही, पृ० ४१२. २२. वही, पृ० ३९८. २३ वही, पृ० ४५६. २४. वही, पृ० ४५२. २५. वही, पृ० ४१५. २६ वही, पृ० ४६३. २७. वही, पृ० २३०. २८. वही, पृ० २४४. २९. वही, पृ० २५३. ३०. वही, पृ० २९२. ३१. वही, पृ० ११३. ३२. विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला, ५ वां पुष्प, वि० सं० १९९६.

गया है। इसके अतिरिक्त अनेक लौकिक कथाओं को धर्मकथा के रूप में परिणत करने के लिए उनमें यत्र-तत्र परिवर्तन कर कल्पित धर्मकथा-साहित्य की सृष्टि की गई है।

धर्मकथा-साहित्य की स्वतन्त्र रचनाओं को हम विभिन्न शैलियों मे देख सकते है। इन शैलियों का व्यक्तिगत रचनाओं के परिचय के साथ हमने सकेत कर दिया है। उनकी अन्य विशेषताओं को दिखाने से ग्रन्थ का कलेवर बढने का भय है इसलिए जहाँ जैसी आवश्यकता हुई है उसकी ओर सकेत मात्र कर दिया है।

स्वतन्त्र रचनाओं के वर्णन क्रम में हमने एक सुविधाजनक वर्गीकरण का अवलम्बन लिया है जिसे वैज्ञानिक या आलोचनात्मक वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता। कहीं हमने घटनाओं या कथासूत्र का एक-सा अनुकरण करनेवाली रचनाओं का परिचय दिया है तो कहीं एक से कल्पनाबन्ध (Motif) वाली कृतियों का, कहीं पुरुषपात्र-प्रधान कहानियों का तो कहीं स्त्रीपात्र-प्रधान कथाओं का एकत्र विवरण प्रस्तुत किया है। साथ ही तीर्थों, पर्वों एव स्तोत्रों के माहात्म्य को प्रकट करनेवाली कथाओं का परिचय भी एक क्रम में देने का प्रयास किया है। अन्त मे परीकथाओं, मुग्धकथाओं और प्राणिकथारूपी नीतिसबंधी कथाओं पर जैन कथाकारों की सफल रचनाओं का परिचय दिया है।

पुरुषपात्र-प्रधान प्रमुख रचनाएँ :

समराइच्चकहा—यह धर्मकथा के साथ-साथ प्राकृत भाषा का विशाल ग्रन्थ है।[१] इसमें ९ प्रकरण है जो ९ भवनाम से कहे गये हैं। इसमें जैन महाराष्ट्री

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९; बिब्लियोथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता, १९२६, विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२३-५२५; संस्कृत-छाया सहित दो भागों मे क्रमशः १९३८ और १९४२ मे अहमदाबाद से प्रकाशित; भव १, २, ६, मधुसूदन मोदी, अंग्रेजी अनुवाद एवं भूमिका, अहमदाबाद, सन् १९३३-३६; भव २, गोरेकृत अंग्रेजी भूमिका, अनुवादसहित, पूना, १९५५, इस पर कवि पद्मविजय ने नौ खण्डों एव गेय ढालों मे सं० १८३९-४२ में गुजराती रास लिखा है; इस पर शिवजी देवसी शाह ने उपन्यास लिखा है जिसे मेघजी हीरजी ने बम्बई से प्रकाशित किया; दूसरा उपन्यास 'वैरना विपाक' शीर्षक

ाकृत गद्य की प्रधानता है पर उसमे भी यत्र-तत्र शौरसेनी का प्रभाव देखा
ाता है। बीच-बीच में पद्य भाग भी हैं जो आर्या छन्दों मे है पर द्विपदी,
वेपुला आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है।
ुबंधु और बाण के ग्रन्थों जैसी जटिल भाषा का यद्यपि इसमें प्रयोग नहीं हुआ
है फिर भी यत्र-तत्र वर्णन-प्रसग में लम्बे समासों और उपमा आदि अलकारों
ा प्रयोग हुआ है जिससे कर्ता का काव्य कौशल ज्ञात होता है। इसके कितनेक
र्णन बाण की कादम्बरी और श्रीहर्ष की रत्नावलि से प्रभावित हैं। इस विशाल
चना का ग्रन्थाग्र १०००० श्लोक प्रमाण है।

इस कथाग्रन्थ मे दो ही आत्माओं के नौ मानवभवों का विस्तृत एवं
रल वर्णन है। वे हैं: उज्जैन के नरेश समरादित्य (पीछे समरादित्य केवली)
और उन्हें अग्नि द्वारा भस्मसात् करने में तत्पर गिरिसेन चाण्डाल। एक अपने
ूर्व भवों से पापों का पश्चात्ताप, क्षमा, मैत्री आदि भावनाओं द्वारा उत्तरोत्तर
विकास करता है और अन्त में परमज्ञानी और मुक्त हो जाता है तो दूसरा
ातिशोध की भावना लिए ससार में बुरी तरह फँसा रहता है।

कथावस्तु—समरादित्य और गिरिसेन अपने मानवभवों के नववें भवपूर्व
में क्रमशः राजपुत्र गुणसेन और पुरोहितपुत्र अग्निशर्मा थे। अग्निशर्मा की कुरू-
ता की गुणसेन नाना प्रकार से हँसी उड़ाया करता था जिससे विरक्त होकर
अग्निशर्मा ने दीक्षा ले ली और मासोपवास सयम का पालन किया। राज्यपद पाने
र गुणसेन ने अग्निशर्मा तपस्वी को क्रमश. तीन बार आहार के लिए आमत्रित
किया किन्तु तीनों बार राजकाज मे व्यस्त होने से उसे भोजन न करा सका। इससे
अग्निशर्मा ने यह समझ लिया कि राजा ने वैर लेने के लिए ही उसे इतनी बार
निमंत्रित कर आहार से वञ्चित रखा है। इससे क्रुद्ध होकर उसने मारणान्तिक
सल्लेखना द्वारा प्राण-त्याग करते समय इस बात का निदान (फलेच्छा) किया कि
'मेरे तप, सयम और त्याग का यदि कोई फल मिलना है तो मैं जन्म-जन्मान्तरों
में इस प्रवचना का गुणसेन के जीव से उसे मार-मारकर बदला लेता रहूँ।' इस

से भीमजी हरजीवन 'सुशील' ने भावनगर से सवत् २००२ में; इसका
हिन्दी अनुवाद (श्री कस्तूरमल बाठिया) जिनदत्तसूरि सेवासंघ, मद्रास-
बम्बई से सं० २०२१ में प्रकाशित, इस महाग्रंथ का गुजराती अनुवाद हेम-
सागरसूरि ने आनन्दहेम ग्रन्थमाला (२१-२२), खाराकुवा, बम्बई से
सन् १९६६ ई० में प्रकाशित कराया है।

निदान के कारण अग्निशर्मा का उत्तरोत्तर अधःपतन होता रहा जब तक कि उसे अन्त में 'अहो इसकी महानुभावता' द्वारा स्व-सम्बोधन नहीं हुआ।

अग्निशर्मा की प्रतिशोध-भावना का क्रम भावी आठ मानव भवों तक चलता रहा। वे अगले भवों मे क्रमशः (२) पिता पुत्र के रूप मे सिंह आनन्द, (३) पुत्र और माता के रूप मे शिखि-जालिनी, (४) पति और पत्नी के रूप में धन-धनश्री, (५) सहोदर के रूप में जय-विजय, (६) पति और भार्या के रूप में धरण लक्ष्मी, (७) चचेरे भाई के रूप में सेन-विषेण, (८) राजकुमार गुणचन्द्र और वानमन्तर विद्याधर तथा अन्त मे (९) समरादित्य और गिरिसेन हुए।

इन नौ भवों (प्रकरणों) में अनेकों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं : प्रथम भव में विजयसेन आचार्य की; दूसरे मे अमरगुप्त-धर्मघोष अवधिज्ञानी की; तीसरे में विजयसिंह आचार्य की; चौथे मे यशोधर-नयनावली की; पंचम मे सनत्कुमार की; छठे भव में अर्हदत्त की; सातवें मे केवली साध्वी की; आठवें में विजयधर्म की तथा नववें भव मे पाच अन्तर्कथाएँ दी गई है जिनका उद्देश्य जन्म-जन्मान्तर के कर्मफलों का विवेचन करना ही है।

इसकी अवान्तर कथाएँ परवर्ती अनेक रचनाओं की उपजीव्य रही हैं। चौथे भव की अन्तर्कथा यशोधर पर तो २४ से अधिक प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में काव्य लिखे गये हैं।

प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने अपनी कथा के स्रोत रूप मे प्राप्त आठ[1] संग्रहणी गाथाओं का उल्लेख किया है उनमें तीन इस प्रकार है :

गुणसेण-अग्गिसम्मा सीहा-णंदा य तह पिआ-पुत्ता।
सिहि-जालिणी माइ-सुओ, धण-धरणसिरिओ य पइ भज्जा ॥१॥
जय-विजया य सहोअर, धरणो लच्छी य तह पई-भज्जा।
सेण-विसेण पित्तिअ, उत्ता जंमंमि सत्तमए ॥२॥
गुणचन्द-वाणमन्तर समराइच्च गिरिसेण पाणोय।
एगस्स तओ मुक्खो, णंतो अण्णस्स संसारो ॥३॥

---

१. इन गाथाओं में नायक-प्रतिनायक के नौ मानव भवान्तरों के नाम, उनका सम्बन्ध, उनकी निवास नगरियाँ एवं मानवभवों मे मरण के पश्चात् प्राप्त स्वर्ग-नरकों के नाम दिये गये हैं। ये गाथाएँ कथानक की रूपरेखा जैसी लगती हैं और स्वयं ग्रन्थकार ने लिखी हो यह सम्भावना है।

, इन गाथाओं के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि ये हरिभद्र (ग्रन्थकार) के गुरु ने हरिभद्र के पास एक प्रसंग में उत्पन्न क्रोध को शान्त करने के लिए भेजी थीं, जिनको आधार बनाकर समराइच्चकहा की रचना की गई थी। सत्य जो हो पर इन गाथाओं के प्राचीन स्रोत का पता नहीं लगता, फिर भी इनकी व्याख्या रूप मे जिस भव्य कथा-प्रासाद को खड़ा किया गया वह भव्य एव अद्भुत है। इसमें समाज के विभिन्न वर्गों—नाई, धोबी, चर्मकार, मछुए, चिडीमार, चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय (ठाकुर), वैश्यों (व्यापारी एव सार्थवाहों) के चलते-फिरते चित्र देखने को मिलते हैं और उनमें भारत की मध्यकालीन सस्कृति का उदात्त एव भव्य रूप भी।[१]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध हरिभद्रसूरि (वि० स० ७५७ ८२७) हैं जिनका परिचय और रचनाओं का विवरण इस इतिहासमाला के तृतीय भाग (पृ० ४० और ३५९ ६३) में दिया गया है।

इस कथानक के संगठन में हरिभद्रसूरि ने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं वसुदेव-हिण्डी, उवासगदसाओ, विपाकसूत्र, उत्तराध्ययन, नायाधम्मकहाओ प्रभृति जैन-ग्रन्थों से तथा महाभारत, अवदान साहित्य तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा प्रभृति जैनेतर साहित्य से सहायता ली है और अपनी कल्पनाशक्ति तथा सवेदनशीलता से समराइच्चकहा को सरस एव प्रभावोत्पादक बनाया है।

परवर्ती कथाकारों को इस कथाग्रन्थ ने बहुत ही प्रभावित किया है। कुवलय-मालाकार उद्योतनसूरि ने इसका 'समरमियकाकहा'[२] नाम से उल्लेख किया है।

इस पर स० १८७४ में क्षमाकल्याण और सुमतिवर्धन ने टिप्पणी लिखी है जो मूल का प्राय संस्कृत छाया रूप है।[३]

---

१. इसके लिए देखें, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, नवम प्रकरण, डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३९४–४११

२. जो इच्छइ भवविरहं, भवविरह को न बंधए सुयणो।
समयसयसत्थकुसलो समरमियंका कहा जस्स ॥
प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ मे मुनि पुण्यविजयजी का लेख : आचार्य हरिभद्रसूरि और उनकी समरमियंकाकहा

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९.

समरादित्यचरित्र नाम से मतिवर्धनकृत एक अन्य लघु रचना उपलब्ध है।[१] इसी तरह माणिक्यसूरिकृत समरभानुचरित्र[२] का भी उल्लेख मिलता है।

समरादित्यसंक्षेप—यह हरिभद्रसूरिकृत प्राकृत 'समराइच्चकहा' का संस्कृत भाषा में छन्दोबद्ध सार है।[३] इस सार की भाषा अति संक्षिप्त होते हुए भी आलंकारिक काव्य के गुणों से पूर्ण है। यह कृति उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों से भरपूर है। इसमें सार्वजनीन भावसूचक वाक्यांश या पद्य प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनका विधिवत् संग्रह सुभाषित साहित्य के लिए एक बड़ी देन होगी। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

१. स्वप्रतिज्ञां न मुञ्चन्ति महाराज तपस्विनः। १. १६५
२. नैवोचितं पुंसां मित्रदोषप्रकाशनम्। २. १९९
३. अब्जेषु श्रीनिवासेषु कृमयो न भवन्ति किम्। ४. १६३
४. भवन्त्यपरमार्थज्ञाः जना विषयलोलुपाः। ६. ३२९
५. महतामुपकारो हि सद्यः फलति निर्मितः। ८. २६७

भाषा की दृष्टि से यह नूतन सामग्री से समृद्ध है। इसमें कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो केवल वेद और महाभारत में ही मिलते हैं; कुछ ऐसे अप्रसिद्ध शब्द हैं जो व्याकरणों में ही उपलब्ध हैं; कुछ ऐसे अप्रयुक्त शब्द हैं जो कोषों में मिलते हैं पर साहित्य में प्रायः कम ही प्रयुक्त हुए हैं और कुछ ऐसे नये शब्द हैं जो प्रकाशित कोषों में नहीं दिखाई पड़ते।[४]

रचयिता एवं रचनाकाल—इस कृति के कर्ता प्रद्युम्नसूरि[५] हैं जिन्होंने इसकी रचना वि० सं० १३२४ (१२६८ ई०) में की थी। ग्रंथ के अन्त में दी गयी

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९; हीरालाल हंसराज, जामनगर, सन् १९१५.
२ वही, पृ० ४१६; ३२०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण.
३. नवं कर्तुमशक्तेन मया मन्दधियाधिकम्।
प्राकृत गद्यपद्यं तत् संस्कृतं पद्यमुच्यते॥ १.३०.
४. इस विषय पर विशेष विवेचन के लिए देखें : डा० इ० डी० कुलकर्णी का लेख : लैंग्वेज आफ समरादित्यसंक्षेप आफ प्रद्युम्नसूरि, आल इण्डिया ओरि० का०, वर्ष २०, भाग २, पृ० २४१.
५. प्रद्युम्नस्य कवेः लक्ष्मीजानिः किमभिधः हिता।
कुमारसिंह इत्युक्ते.................. ॥

प्रशस्ति से पता चलता है कि प्रद्युम्नसूरि चन्द्रगच्छ के थे। गृहस्थ अवस्था में उनके माता-पिता का नाम कुमारसिंह और लक्ष्मी था। ग्रन्थ के आदि में उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा दी है जिससे ज्ञात होता है कि उनका सामान्य शिक्षण कनकप्रभसूरि से हुआ था। इसके अतिरिक्त नरचन्द्र मलधारी ने उन्हें, उत्तराध्ययन और विजयसेन ने न्याय तथा पद्मचन्द्र ने आवश्यक सूत्र पढाया था।[1]

प्रद्युम्नसूरि एक बड़े भारी आलोचक विद्वान् प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने कई कृतियों का सशोधन एवं परिष्कार किया था। इनके द्वारा सशोधित कृतियों का यथा प्रसग उल्लेख किया गया है।

धूर्ताख्यान—आचार्य हरिभद्र ने धर्मकथा का एक अद्भुत रूप आविष्कृत किया है जो धूर्ताख्यान[2] के रूप में भारतीय कथा-साहित्य मे विचित्र कृति है। इसमें बडे विनोदात्मक ढग से रामायण, महाभारत और पुराणों के अतिरजित चरित्रों और कथानकों पर व्यग्य करते हुए उन्हें निरर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। यह प्रचुर हास्य और व्यग्य से परिपूर्ण रचना है। इसमें ४८० के लगभग प्राकृत गाथाएँ हैं जो पाँच आख्यानों में विभक्त हैं। यह सम्पूर्ण कृति सरल प्राकृत मे लिखी गई है।

कथावस्तु—उज्जैनी के उद्यान में धूर्तविद्या में प्रवीण पॉच धूर्त अपने सैकडों अनुयायियों के साथ संयोगवश इकट्ठे हुए। पॉच धूर्तों मे ४ पुरुष थे और एक स्त्री। वर्षा लगातार हो रही थी और खाने-पीने का प्रबन्ध करना कठिन प्रतीत हो रहा था। पाँचों दलों के मुखियों ने विचार विमर्श किया। उनमें से प्रथम मूलदेव ने यह प्रस्ताव किया कि हम पाँचों अपने-अपने अनुभव की कथा कहकर सुनायें। उसे सुनकर दूसरे अपने कथानक द्वारा उसे सम्भव करें। जो ऐसा न कर सके और आख्यान को असम्भव बतलावे, वही उस दिन समस्त धूर्तों के भोजन का खर्च उठावे। मूलदेव, कडरीक, एलाषाढ, शश[3] नामक धूर्त-

---

१. १. २२–२५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १९८; सिंघी जैन ग्रन्थमाला (सं० १५), बम्बई, १९४४; इस पर डा० उपाध्ये की अंग्रेजी प्रस्तावना विशेषरूप से पठनीय है।

३ मूलदेव और शश एकदम काल्पनिक नाम नहीं हैं। मूलदेव को चौरशास्त्र प्रवर्तक माना जाता है और 'चतुर्भाणी' में शश का उल्लेख मूलदेव के मित्र के रूप मे मिलता है।

राजों ने अपने-अपने असाधारण अनुभव सुनाये, उनका समर्थन भी पुराणों के अलौकिक वृत्तान्तों द्वारा किया। पाँचवाँ आख्यान खण्डपाना नाम की धूर्तनी का था। उसने अपने वृत्तान्त में नाना असम्भव घटनाओं का उल्लेख किया, जिनका समाधान क्रमशः उन धूर्तों ने पौराणिक वृत्तान्तों द्वारा कर दिया, फिर उसने एक अद्भुत आख्यान कहकर उन सबको अपने भागे हुए नौकर सिद्ध किया तथा कहा कि यदि उस पर विश्वास है तो उसे सब स्वामिनी मानें और विश्वास नहीं तो सब उसे भोज (दावत) दें तभी वे सब उसकी पराजय से बच सकेंगे। उसकी इस चतुराई से चकित हो सब धूर्तों ने लाचारी में उसे स्वामिनी मान लिया। फिर उसने अपनी धूर्तता से एक सेठ द्वारा रत्नमुद्रिका पाई और उसे बेचकर एवं खाद्य-सामग्री खरीद कर धूर्तों को आहार कराया। सभी धूर्तों ने उसकी प्रत्युत्पन्नमति के लिए साधुवाद किया और स्वीकार किया कि पुरुषों से स्त्री अधिक बुद्धिमान होती है।

इस ध्वन्यात्मक शैली द्वारा लेखक ने असभव, मिथ्या और कल्पनीय बातों का निराकरण कर स्वस्थ, सदाचारी और सभव आख्यानों की ओर संकेत किया है।

इसके रचयिता प्रसिद्ध हरिभद्रसूरि हैं जिनका परिचय इस इतिहास के तृतीय भाग में दिया गया है। इस कथा का आधार जिनदासगणि (७वीं शती का उत्तरार्ध) कृत निशीथचूर्णि मालूम होता है। वहाँ इन धूर्तों की कथा लौकिक मृषावाद के रूप में दी गई है[1] जिसे हरिभद्र ने एक विशिष्ट व्यङ्ग्य-ध्वन्यात्मक शैली द्वारा विकसित कर प्रस्तुत किया है। हरिभद्र के पुष्ट व्यङ्ग्य और उपहास हमे पाश्चात्य लेखक स्विफ्ट तथा वाल्टेयर की याद दिलाते हैं। भारतीय साहित्य में यद्यपि व्यङ्ग्य मिलते है पर अविकसित और मिश्र रूप में। हरिभद्र की यह कृति उनसे बहुत आगे है। इसके आदर्श पर परवर्ती अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं, यथा अपभ्रंश धर्मपरीक्षा (हरिषेण और श्रुतकीर्ति) और संस्कृत धर्मपरीक्षा (अमितगति)। एक अन्य संस्कृत धूर्ताख्यान[2] का उल्लेख मिलता है जो उक्त रचना का रूपान्तर है।

धर्मपरीक्षा-कथा—धूर्ताख्यान की व्यङ्ग्यात्मक शैलीरूप से प्राकृत और सस्कृत मे धर्मपरीक्षा नाम के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें कुछ को छोड़

---

१. डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, धूर्ताख्यान इन दि निशीथचूर्णि, आचार्य विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १९९.

अधिकाश छोटी-बड़ी कथाओं के अच्छे सग्रह हैं। यहाँ हम कुछ का परिचय देते हैं।

१. धर्मपरीक्षा—यह प्राकृत गाथाओं में लिखा हुआ ग्रन्थ कवि जयराम ने विरचित किया था। इसका उल्लेख हरिषेण ने अपनी अपभ्रश धर्मपरीक्षा में किया है और लिखा है कि उनकी यह अपभ्रश रचना जयरामकृत धर्मपरीक्षा पर आधारित है।[1] जयराम के जीवनवृत्त और रचनाओं के सम्बंध में अधिक नहीं मालूम है।

२. धर्मपरीक्षा—यह एक सस्कृत ग्रन्थ है। इसमें इक्कीस परिच्छेद हैं। सारा ग्रन्थ एक सुन्दर कथा के रूप में श्लोकबद्ध है। इसमें श्लोकों की सख्या १९४५ है। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य हरिभद्र के धूर्ताख्यान के समान ही अन्य धर्मों की पौराणिक कथाओं की असत्यता को, उनसे अधिक कृत्रिम, असंभव एव समानान्तर उटपटाग आख्यान कह कर सिद्ध करना है और उनसे विमुख कर सच्ची धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करना है। यहाँ अनेक छोटे-बड़े कथानक दिये गये हैं जिनमें धूर्तता और मूर्खता की कथाओं का बाहुल्य है। कथा मनोवेग और पवनवेग दो मित्रों के सवादरूप में चलती है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता अमितगति हैं[2] जो काष्ठासंघ-माथुरसघ के विद्वान् थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—वीरसेन, उनके शिष्य देवसेन, देवसेन के शिष्य अमितगति (प्रथम), उनके नेमिषेण, नेमिषेण के माधवसेन और उनके शिष्य अमितगति। इनकी अन्य रचनाएँ हैं: सुभाषित रत्नसन्दोह, पचसग्रह, उपासकाचार, आराधना, सामायिकपाठ, भावनाद्वात्रिंशिका, योगसारप्राभृत आदि।

अमितगति धारानरेश भोज के सभा के रत्न थे। प्रस्तुत कृति को कवि ने दो महीने में ही रच डाली थी।[3] इसका रचनाकाल विक्रम स० १०७०

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८९, ग्यारहवीं आल इण्डिया ओरि० कान्फरेंस, १९४१ (हैदराबाद) में पठित डा० आ० ने० उपाध्ये का लेख.

२ जिनरत्नकोश, पृ० १९०; हिन्दी अनुवाद, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९०८; जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी, कलकत्ता, १९०८; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५६३ आदि में सार दिया गया है; एन० मिरोनोव, डि धर्मपरीक्षा डेस अमितगति, लाइप्जिग, १९०८

३. अमितगतिरिवेद स्वस्य मासद्वयेन।
प्रथित विशदकीर्तिः काव्यमुद्भूतदोषम्॥

हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अमितगति ने अपना यह ग्रन्थ जयरामकृत प्राकृत धर्मपरीक्षा या हरिषेणकृत अपभ्रंश धर्मपरीक्षा दोनों में से किसी एक के आधार से बनाया है। कथानक, पात्रों के नाम आदि धम्मपरिक्खा और धर्मपरीक्षा के बिल्कुल एक हैं। संभवतः इसीलिए उसके बनने में केवल दो ही महीने लगे हों।

३. धर्मपरीक्षा—यह धर्मपरीक्षा सं० १६४५ में तपागच्छीय धर्मसागर के शिष्य पद्मसागरगणि ने लिखी है।[1] इसमें कुल मिलाकर १४७४ श्लोक हैं जिनमें १२५० के लगभग तो अमितगति की धर्मपरीक्षा से हूबहू ले लिये गये हैं।[2] दोनों में मनोवेग-पवनवेग की प्रधान कथा है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य कुछ बातों में परिवर्तन किया गया है पर अनेक स्थलों में दिगम्बर मान्य बातें रह गई हैं।

४. धर्मपरीक्षा—इसकी रचना तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनमण्डनगणि (१५वीं शताब्दी के अन्तिम दशक) ने १८०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण की है। जिनमण्डन की अन्य कृतियों में कुमारपालप्रबंध (सं० १४९२) तथा श्राद्धगुणसंग्रहविवरण (सं० १४९८) मिलते हैं।[3]

५. धर्मपरीक्षा—इसमें मनोवेग और पवनवेग नामक दो मित्रों का संवाद अत्यन्त रमणीय है। चूंकि पवनवेग दैववश से सद्धर्म की भावना से विमुख था और अन्य धर्मावलम्बी हो गया था, इसलिए मनोवेग ने रूप बदलकर विद्वानों की सभा में पवनवेग को नाना प्रकार के दृष्टान्तों द्वारा प्रतिबोध कराया और उसे विविध प्रकार की युक्तियों से समझाकर सद्धर्म में स्थिर किया। पवनवेग ने भी अपनी भूल सुधारकर मनोवेग के वचन को स्वीकारा। इस ग्रन्थ में सद्-असद्धर्म का अच्छा विवेचन है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; देवचन्द्र लालभाई पुस्तक० (सं० १५), बम्बई, १९१३; हेमचन्द्र सभा, पाटन, सं० १९७८.

२. तुलना के लिए देखें—जैन हितैषी, भाग १३, पृ० ३१४ आदि में प्रकाशित पं० जुगलकिशोर मुख्त्यार का लेख—धर्मपरीक्षा की परीक्षा; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५८६, टिप्पण ५१३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; जैन आत्मानन्द सभा (सं० ९७), भावनगर, सं० १९७४.

यह अनुष्टुभ् छन्दों में निर्मित है और १६ परिच्छेदों मे विभक्त है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति में कर्ता की गुरुपरम्परा दी गई है। तदनुसार श्रीपालचरित्र के रचयिता लब्धिसागरसूरि (स० १५५७) के शिष्य सौभाग्यसागर ने स० १५७१ में इसकी रचना की और अनन्तहस ने इसका सशोधन किया।[1]

धर्मपरीक्षा नाम की रचनाओं में १७वीं शताब्दी मे श्रुतकीर्ति[2] एवं पार्श्वकीर्ति[3] कृत धर्मपरीक्षा कथाओं का उल्लेख मिलता है। लगभग उसी शताब्दी में रामचन्द्र दिगम्बर ने पूज्यपादान्वयी पद्मनन्दि के शिष्य देवचन्द्र के अनुरोध पर सस्कृत मे धर्मपरीक्षाकथा की रचना की। इसका ग्रन्थाग्र ९०० श्लोक-प्रमाण है। वरग जैनमठ में किसी वादिसिंहरचित धर्मपरीक्षा होने का उल्लेख मिलता है।

१८वीं शताब्दी में तपागच्छीय विजयप्रभसूरि (स० १७१०—१७४८) के शासनकाल में जयविजय के शिष्य मानविजय ने अपने शिष्य देवविजय के लिए एक धर्मपरीक्षा की रचना की है।[4]

यशोविजयकृत धर्मपरीक्षा तथा देवसेनकृत धर्मपरीक्षा भी मिलती हैं पर उनका विषय धार्मिक सिद्धान्तों का प्ररूपण करना है। कई अज्ञातकृत धर्म-परीक्षायें मिलती हैं पर उनका प्रतिपाद्य विषय ज्ञात नहीं है।

मनोवेगकथा—यह अमितगति की धर्मपरीक्षा के समान ही परिहासपूर्ण कथासग्रह है जो संस्कृत गद्य मे लिखा गया है। रचयिता का नाम अज्ञात है।[5]

मनोवेग-पवनवेगकथानक—यह भी उक्त धर्मपरीक्षा के समान मनोवेग-पवनवेग की प्रधान कथा को लेकर उपहासपूर्ण कथाओं का सग्रह है।[6] कर्ता का नाम अज्ञात है।

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० १९०, मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १३, अहमदाबाद.

२. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक ५२४.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १९०.

४. वही.

५-६. वही, पृ० ३०१.

जैन कवियों ने रूपकात्मक (Allegorical) शैली में भी धर्मकथा कहने का उपक्रम किया है।

उपमितिभवप्रपंचाकथा—इस कथा में[1] चतुर्गतिरूप संसार का विस्तार, उपमा द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसकी संस्कृत में समास द्वारा इस प्रकार व्युत्पत्ति है : उपमितिकृतो नरकतिर्यङ्नरामरगतिचतुष्करूपो भवः तस्य प्रपञ्चो यस्मिन् इति अर्थात् नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप भव=संसार का विस्तार जिस कथा में उपमिति=उपमा का विषय बनाया गया हो, वह कथा उपमितिभवप्रपंचाकथा कहलाती है। सिद्धर्षिगणि ने अपने शब्दों में उसे इस प्रकार कहा है :

कथा शरीरमेतस्या नाम्नैव प्रतिपादितम्।
भवप्रपञ्चो व्याजेन यतोऽस्यामुपमीयते ॥ ५५ ॥
यतोऽनुभूयमानोऽपि परोक्ष इव लक्ष्यते।
अयं संसारविस्तारस्ततो व्याख्यानमर्हति ॥ ५६ ॥

यह ग्रन्थ आठ प्रस्तावों में विभक्त है जिनमें भवप्रपंच की कथा के साथ प्रसंगवश न्याय, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, सामुद्रिक, निमित्तशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, धातुविद्या, विनोद, व्यापार, दुर्व्यसन, युद्धनीति, राजनीति, नदी, नगर आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है।

कथावस्तु—अदृष्टमूलपर्यन्त नगर में एक कुरूप दरिद्र भिक्षु रहता था जो कि अनेक रोगों से पीड़ित था। उसका नाम 'निष्पुण्यक' था। भिक्षा में उसे जो कुछ सूखा भोजन मिलता था उससे उसकी बुभुक्षा शान्त न होती थी बल्कि बढ़ती ही गई। एक समय वह उस नगर के राजा सुस्थित के महल में भिक्षा हेतु गया। 'धर्मबोधकर' रसोइये और राजा की पुत्री 'तद्दया' ने उसे सुस्वादु और

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ५२; बिब्लियोथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता, १८९९-१९१४; देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड (सं० ४६), बम्बई, १९१८-२०; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२६-५३२ में कथानक का विवरण विस्तार से प्रस्तुत है; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८२-१८६; इसका जर्मन अनुवाद डब्ल्यू० किर्फेल ने किया है, लाइप्जिग, १९२४; गुजराती अनुवाद—मोतीचन्द्र गिरधरलाल कापडिया, तीन भागों में (पृ० २१००), श्री कापडिया ने इस कथा पर विस्तृत समीक्षात्मक ग्रन्थ 'सिद्धर्षि' भी लिखा है।

स्वास्थ्यप्रद भोजन दिया, आँखों में 'विमलालोक' अंजन लगाया और 'तत्त्व-प्रीतिकर' जल से मुखशुद्धि कराई। धीरे-धीरे वह स्वस्थ होने लगा पर बहुत समय तक अपने पुराने अस्वास्थ्यकर आहार को छोड़ न सका। तब उक्त रसोइये ने 'सद्बुद्धि' नामक धाय को उसकी सेवा के लिए रख दिया। इससे उसकी भोजन-अशुद्धि दूर हुई और इस तरह निष्पुण्यक सपुण्यक बन गया। अब वह अपनी इस औषधि का लाभ दूसरों को देने का प्रयत्न करने लगा। पर उसे पहले से जाननेवाले लोग उस पर विश्वास नहीं करते थे। तब 'सद्बुद्धि' धाय ने सलाह दी कि अपनी तीनों औषधियों को काष्ठपात्र में रखकर राजमहल के आंगण में रखें ताकि प्रत्येक व्यक्ति उनसे स्वयं लाभ उठा सके।

कवि ने प्रथम प्रस्ताव के अन्तिम पद्यों में इस रूपक का खुलासा किया है। 'अदृष्टमूलपर्यन्त' नगर तो यह संसार है और 'निष्पुण्यक' अन्य कोई नहीं स्वयं कवि है। राजा 'सुस्थित' जिनराज हैं और उनका 'महल' जैनधर्म है। 'धर्मबोधकर' रसोइया गुरु है और उसकी पुत्री 'तद्दया' उनकी दयादृष्टि। ज्ञान ही 'अंजन' है, सच्ची श्रद्धा 'मुखशुद्धिकर जल' तथा सच्चरित्र ही 'स्वादिष्ट भोजन' है। 'सद्बुद्धि' ही पुण्य का मार्ग है और वह 'काष्ठपात्र एवं उसमें रखा भोजन, मल्हम (मजन) और अंजन' आगे वर्णित कथानुसार हैं।

अनन्तकाल से विद्यमान मनुजगति नाम के नगर में 'कर्मपरिणाम' नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा शक्तिशाली, क्रूर तथा कठोर दण्ड देने वाला था। उसने अपने विनोद के लिए भवभ्रमण नाटक कराया, जिसमें नाना रूप धारणकर जगत् के प्राणी भाग ले रहे थे। इस नाटक से वह बड़ा खुश रहता था और उसकी रानी 'कालपरिणति' भी उसके साथ इस नाटक का रस लेती थी। उसे पुत्र की इच्छा हुई और पुत्र उत्पन्न होने पर पिता की ओर से उसका 'भव्य' तथा माता की ओर से 'सुमति' नाम रखा गया। उसी नगर में 'सदागम' नाम के आचार्य थे। राजा उनसे बहुत डरता था क्योंकि वे उसके उस नाटक का रंगभंग कर देते थे और कितने ही अभिनेताओं को उस नाटक से छुड़ाकर 'निर्वृति नगर' में जा बसाया था। वह नगर उसके राज्य के बाहर था और वहाँ सभी बड़े आनन्द से रहते थे। एक बार 'प्रज्ञाविशाला' नामक द्वारपाली राजकुमार 'भव्य' की भेंट 'सदागम' आचार्य से कराने में सफल हुई, और भाग्य से राजकुमार को उनसे शिक्षा लेने की आज्ञा भी राजा-रानी से मिल गई। एक समय जब कि सदागम अपने उपदेशों को बाजार में दे रहा था, उस समय एक कोलाहल सुनाई दिया। उस समय 'संसारीजीव' नामक चोर पकड़ा गया और जब न्यायालय में कोलाहलपूर्वक भेजा जा रहा था तब

'प्रज्ञाविशाला' ने दयापूर्वक उसे सदागम आचार्य के आश्रय में ला दिया। वहाँ वह मुक्त होकर अपनी कथा निम्न प्रकार कहने लगा—

मैं सबसे पहले स्थावर लोक में वनस्पति रूप से पैदा हुआ और 'एकेन्द्रिय नगर' मे रहने लगा और वहीं पृथ्वीकाय, जलकायादि गृहों मे कभी यहाँ कभी वहाँ रहने लगा। इसके बाद छोटे कीड़े-मकोडे तथा बड़े हाथी आदि तिर्यञ्चों (त्रसलोक) में जन्मा और भटका। बहुत काल तक दुःख भोगकर अन्त में मनुष्य पर्याय में राजपुत्र नन्दिवर्धन हुआ। यद्यपि मेरा एक अदृष्ट मित्र 'पुण्योदय' था, जिसका मैं इन सफलताओं के लिए कृतज्ञ हूँ किन्तु एक दूसरे मित्र वैश्वानर के कारण गुमराह रहने लगा। इसी कारण अच्छे अच्छे गुरुओं और उपदेशकों की शिक्षायें मुझ पर विफल हुई। वैश्वानर का प्रभाव बढ़ता ही गया और अन्त में उसने राजा दुर्बुद्धि और रानी निष्करुणा की पुत्री 'हिंसा' से विवाह करा दिया। इस कुसंगति से मैंने खूब आखेट खेला और असख्य जीवों का शिकार किया। चोरी, द्यूत आदि व्यसनों में भी कुख्याति प्राप्त की। यथा समय मैं अपने पिता का उत्तराधिकारी राजा बना। इस दर्प में मैंने अनेक घोर कर्म किये। यहा तक कि एक राजदूत को उसके माता-पिता, स्त्री, बन्धु एव सहायकों सहित मरवा डाला। एक बार एक युवक से मेरी लड़ाई हो पड़ी और हम दोनों ने एक-दूसरे को वेधकर मारा डाला। फिर हम दोनों नाना पापयोनियों में उत्पन्न हुए और फिर सिंह-मृग, बाज-कबूतर, अहि-नकुल आदि रूप से एक दूसरे के भक्ष्य-भक्षक बनते रहे। अन्ततः मैं रिपुदारुण नाम का राजकुमार हुआ तथा शैलराज (दर्प) और मृषावाद मेरे मित्र बने। इनके प्रभाव के कारण मुझे पुण्योदय से मिलने का अवसर न मिला। पिता की मृत्यु के पश्चात् मै राजा बना। मैंने पृथ्वी के सम्राट् की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। एक बार एक जादूगर ने मुझे नीचा दिखाया और मेरे ही सेवकों ने मेरा वध कर दिया। अपने दुष्कृत्यों के फलस्वरूप मै अगले जन्मों में नरक-तिर्यञ्च योनियों में भटककर अन्त मे मनुष्य गति मे आकर सेठ सोमदेव का पुत्र वामदेव हुआ। 'मृषावाद, माया और स्तेय' मेरे मित्र बने। एक सेठ की चोरी करने के कारण मुझे फासी मिली और मैंने फिर नरक और तिर्यञ्च लोकों का चक्कर काटा। मैं एक बार पुनः सेठ-पुत्र हुआ। इस बार 'पुण्योदय' और 'सागर' (लोभ) मेरे मित्र बने। सागर की सहायता से मैंने अतुल धनराशि कमाई। मैंने एक राजकुमार से दोस्ती कर उसके साथ समुद्र-यात्रा की और लोभवश उसे मारकर उसका धन हड़पने का प्रयत्न किया, पर समुद्र देवता ने उसकी रक्षा की और मुझे जल में

फेंक दिया। किसी प्रकार मैं तट पर पहुँचा और दुर्दशा में यत्र-तत्र भ्रमण करने लगा। एक समय जब मैं धन गाड़ना चाहता था तो मुझे एक वैताल ने खा लिया। पुनः नरक और तिर्यञ्च लोक के चक्कर लगाकर मै धनवाहन नामक राजकुमार हुआ और अपने चचेरे भाई अकलक के साथ बढने लगा। अकलक धर्मात्मा जैन बन गया और उसके द्वारा मैं सदागम आचार्य के सम्पर्क में आ गया। परन्तु महामोह और परिग्रह से भी मेरी मित्रता हो जाती है और मैं उनके पूर्णतः वशीभूत हो गया। इससे मैं निर्दय शासक बन गया किन्तु दुर्नीति के कारण हटा दिया गया और दुःखपूर्वक मरा। मैंने पुनः नरक और तिर्यग् लोक का भ्रमण किया। इसके बाद साकेत नगरी में अमृतोदर नाम से मनुष्य हुआ, और ससारी जीवन के उच्चस्तर पर चलने लगा। एक जन्म में राजा गुणधारण हुआ। यहाँ सदागम और सम्यग्दर्शन से मेरी मैत्री हुई जिससे मैं धर्मात्मा श्रावक और अच्छा शासक हुआ और मेरा क्षमा, मृदुता, ॠजुता, सत्य, शुचिता आदि कुमारियों से विवाह हुआ। फलतः मैंने न्यायनीति से राज्य किया और अन्त में मुनिव्रत धारण किये तथा मरकर देव हुआ और फिर मनुष्य। अब मैं वही ससारी जीव अनुसुन्दर सम्राट् हूँ। इस बार महामोह का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं। सदागम और सम्यग्दर्शन ही मेरे अन्तरग मित्र हैं। इस समय मैं सबके कल्याणार्थ अपना यही अनुभव सुनाने के लिए चोर के रूप में उपस्थित हुआ हूँ और पुनर्जन्मों के चक्र को कहता हूँ।

इसके बाद वह संसारी जीव अपना वृत्तान्त सुनाकर ध्यानमग्न हो गया और शरीर छोड़ उत्तम स्वर्ग में देव हुआ।

महती कथा का यह उपर्युक्त अति संक्षिप्त सार है। मूल में समस्त वृत्तान्त विस्तार से सरल, सरस और सुन्दर सस्कृत गद्य मे और कहीं-कहीं पद्य में वर्णित है। इसमे बीच मे कुछ बड़े और कुछ छोटे पद्य आये हैं और प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर बड़े-बड़े छन्द भी देखने को मिलते हैं। इसमें अन्य भारतीय आख्यानों के समान ही कथानक के ढाँचे में अनेक उपकथाएँ भी समाविष्ट की गई हैं।

यह मूल कथा रूपक (Allegory) या रूपकों के रूप मे है क्योंकि इसमें न केवल प्रधान कथानक, बल्कि अन्य कथानक भी रूपक के रूप में ही हैं। पर इसमें रूपक के लक्षण का ठीक-ठीक पालन नहीं किया गया है। कवि स्वय दो प्रकार के व्यक्तियों में भेद कर देता है। एक तो नायक के बाह्य मित्र और दूसरे अन्तरग मित्र। भीतरी मित्रों को ही व्यक्त्यात्मक एव मूर्तात्मक

रूप दिया गया है और भवचक्र नाटक के वे ही यथार्थ पात्र हैं जिन्हें कवि श्रावकों के आगे खोलकर रखना चाहता है।

सिद्धर्षि का कहना है कि पाठको को आकर्षित करने के लिए उसने रूपक चुना है तथा इसी कारण उसने प्राकृत मे ग्रन्थ न रचकर संस्कृत मे ग्रन्थ लिखा है। क्योंकि प्राकृत अशिक्षितों के लिए है जबकि शिक्षितों को उनकी मिथ्या-मान्यताओं का खण्डन करने के लिए और अपने मत में लाने के लिए सस्कृत उचित है। उनका कहना है कि वह ऐसी संस्कृत लिखेगा जो सर्वत्र समझने में आवे। यथार्थ में भाषा बहुत मृदु और स्वच्छ है, कहीं न तो बड़े-बडे शब्द हैं और न अस्पष्टता का दोष है। सस्कृत में ग्रन्थ रचनेवाले जैसे अन्य ग्रन्थकार करते हैं उसी तरह सिद्धर्षि ने भी प्राकृत शब्दों और प्रचलित भाव प्रकट करने वाले शब्दों को अपनाया है।

जैनों में इस काव्य की सर्वप्रियता इतने से ही जानी जाती है कि ग्रन्थ रचे जाने के १०० वर्ष बाद ही इससे उद्धरण लिए जाने लगे और इसके सक्षिप्त रूप बनाये जाने लगे।[१]

कहा नहीं जा सकता कि इसका पाश्चात्य देशों मे प्रभाव पड़ा या नहीं किन्तु इसे पढ़कर अंग्रेज कवि जॉन बनयन के रूपक (Allegory) Pilgrims Progress का स्मरण हो आता है। इसका विषय भी ससारी जीव का धर्मयात्रा द्वारा उत्थान ही है और अनेक बातों मे उपमितिभवप्र० से मेल है पर वह न तो आकार मे और न भावों में इसकी तुलना में आ सकता है।

कथाकर्ता और रचनाकाल—इस कथा के अन्त में एक प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना आचार्य सिद्धर्षि ने वि० स० ९६२,

---

१. जिनरत्नकोश पृ० ५४; सं० १०८८ में वर्तमान वर्धमानसूरि (जिनेश्वरसूरि के गुरु) ने १४६० ग्रन्थाग्र-प्रमाण 'उपमितिभवप्रपन्चानामसमुच्चय'; सं० १२९८ में देवेन्द्रसूरि (चन्द्रगच्छ के चन्द्रसूरि के शिष्य) ने श्लोकों में उपमितिभवप्रपन्चाकथासारोद्धार; देवसूरि ने २३२४ ग्रन्थाग्र-प्रमाण उपमितिभवप्रपन्चोद्धार (गद्य) तथा हंसरत्न ने उपमितिभवप्रपन्चाकथोद्धार की रचना की। इनमें देवेन्द्रसूरि की रचना अत्युत्तम है। इसमें सार मूलकथा के साथ-साथ चलता है। न इसमें कुछ छोडा गया है और न नवीन विषय लिया गया है। इसके संशोधक भी प्रद्युम्नसूरि हैं। केशरबाई ज्ञानमन्दिर, पाटन (गुजरात), वि० सं० २००६.

ज्येष्ठ सुदी पचमी, गुरुवार के दिन की थी ।[1] प्रशस्ति के अनुसार इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है : निवृत्तिकुल में सूराचार्य हुए, उनके शिष्य ज्योतिष और निमित्तशास्त्र के ज्ञाता देल्लमहत्तर, उनके शिष्य दुर्गस्वामी हुए जो गृहस्थावस्था में धनी, कीर्तिशाली ब्राह्मण थे तथा जिनका भिल्लमाल में स्वर्गवास हुआ था । उनके शिष्य सिद्धर्षि हुए । दुर्गस्वामी और सिद्धर्षि दोनों गुरु-शिष्यों को दीक्षा गर्गर्षि ने दी थी । यद्यपि यह बात सिद्धर्षि ने नहीं लिखी[2] पर उन्होंने हरिभद्रसूरि की स्तुति अधिक की है और उन्हें अपना 'धर्मबोधकरो गुरुः' माना है। इससे कुछ विद्वानों का मत है कि हरिभद्रसूरि उनके गुरु थे। पर दोनों के काल का बड़ा अन्तर देखते हुए यह मानना सम्भव नहीं । सभवतः सिद्धर्षि ने हरिभद्र के प्रति सम्मान का इतना अधिक भाव इसलिए दिखाया है कि उनके ग्रन्थों से उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली थी, विशेषकर उनकी ललितविस्तरा टीका से ।

यह कथाग्रन्थ भिल्लमाल नगर के जैन मन्दिर मे लिखा गया था और दुर्गस्वामी की 'गणा' नाम की शिष्या ने इसकी प्रथम प्रति तैयार की थी ।

सिद्धर्षि का प्रभावकचरित (१४) में भी चरित दिया गया है जिसमें इन्हें माघकवि का चचेरा भाई कहा गया है पर इसमे कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है ।

रूपकात्मक धर्मकथा पर सस्कृत में दूसरा ग्रन्थ मदनपराजय है ।

मदनपराजय—काम, मोह, जिन, मोक्ष आदि को मूर्तिमान पात्रों का रूप देकर एक लघुकाव्य का निर्माण किया है जिसमें जिनराज द्वारा कामदेव की पराजय का चित्रण हुआ है ।

कथावस्तु—भवनगर का राजा मकरध्वज एक समय अपने प्रधान सेनापति मोह द्वारा यह जानकर कि जिनराज से मुक्तिकन्या का विवाह हो रहा है, उन्हें रोकने के लिए मुक्तिकन्या के पास रति और प्रीति नामक अपनी पत्नियों को भेजता है तथा राग और द्वेष को जिनराज के पास भेजता है। पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं होता है और जिनराज द्वारा उसके दूत निकाल दिये जाते हैं। उधर मकरध्वज का सेनापति मोह और इधर जिनराज का सेनापति सवेग सेनाओं की तैयारी कर चढ़ाई कर देते हैं। दोनों की सेनायें उलझ जाती हैं। स्वय जिनराज से मकरध्वज

---

१. संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहितेऽतिलंघिते चास्याः ।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥

२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८१.

सीधे टक्कर मे परास्त होता है। मकरध्वज की पत्नियों द्वारा प्राणों की भीख मांगने पर मकरध्वज को शुक्लध्यानवीर ने अपने राज्य की सीमा से हटा दिया।

मकरध्वज आत्मघातकर देखते ही देखते अनग होकर अदृश्य हो गया। इसके बाद जिनराज सिद्धसेन की पुत्री मुक्ति से विवाह करने के लिए कर्मधनुष को तोड़कर मोक्षपुर रवाना हो जाते हैं।

इस कथानक को लेकर मदनपराजय नाम की कई रचनायें लिखी गई हैं। उनमे से हरिदेवकविकृत अपभ्रश रचना प्रसिद्ध है। उसी के आधार से संस्कृत मे नागदेव ने मदनपराजय की रचना की है। जिनरत्नकोश में जिनदेव और ठाकुरदेवकृत अन्य मदनपराजयों का उल्लेख मिलता है।[1]

संस्कृत मदनपराजय के रचयिता कवि नागदेव ने ग्रन्थ के अन्त में एक प्रशस्ति दी है जिससे ज्ञात होता है कि वे दक्षिण भारत के थे। वे सोमकुल में उत्पन्न हुए थे। उस कुल मे अनेक कवि और वैद्य हुए थे। उनके पिता श्रीमल्लुगि अपभ्रश मयणपराजयचरिउ के कर्ता के प्रपौत्र थे। उक्त अपभ्रंश रचना में यत्र-तत्र भाषा, शैली, विषयवर्णन और प्रसंग-योजना द्वारा परिवर्तनकर नया रूप देकर संस्कृत मदनपराजय चरित की रचना की गई है।[2] इसे लेखक ने इस तरह प्रस्तुत किया है जैसे कोई नाटक हो। पर मदनपराजय न तो नाटक है और न नाटकीय शैली से लिखा गया है। इसमें कवि ने हृदयहारी रूपकों की इतनी योजना की है कि इसे हम रूपकभण्डार कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसे कवि ने पंचतन्त्र और सम्यक्त्वकौमुदी की शैली पर लिखा है। इसी से इसमें अनेक सुभाषित और सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं।

मदनपराजय का रचनाकाल नहीं दिया गया है पर उसकी एक हस्त० प्रति वि० सं० १५७३ की मिली है। अतः वह उसके पूर्व की रचना होना चाहिए।

यशोधरचरित्र—अहिंसा के माहात्म्य को तथा हिंसा और व्यभिचार के कुपरिणामों को बतलाने के लिए यशोधर नृप की कथा प्राचीन काल से जैन कवियों को बहुत प्रिय रही है। इस पर प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश में साधारण से लेकर

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से अपभ्रंश और संस्कृत दोनों मदनपराजय प्रकाशित हुए हैं। दोनों की भूमिकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। डाक्टर हीरालाल जैन ने अपभ्रंश रचना की भूमिका में प्रतीक कथा-साहित्य का अच्छा परिचय दिया है। यह भूमिका कई बातों में बड़ी उपयोगी है।

उच्चकोटि की अनेकों रचनायें मिलती हैं। यशोधरचरित पर ज्ञात सस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है :[१]

१.	यशोधरचरित	प्रभजनकृत (कुवलयमाला मे उल्लेख)	
२.	,,	हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा—चतुर्थभव	(९वीं शताब्दी)
३.	यशोधर-चन्द्रमति-कथानक	हरिषेण—बृहत्कथाकोश	(१०वीं शता०)
४.	यशस्तिलकचम्पू	सोमदेव	(१०वीं शता०)
५.	यशोधरचरित	वादिराज	(११वीं शता०)
६.	,,	मल्लिषेण	(,,)
७	,,	माणिक्यसूरि	(सं० १३२७–१३७५)
८.	,,	वासवसेन	(स० १३६५ से पहले)
९.	,,	पद्मनाभ कायस्थ	(स० १४०२–१४२४)
१०.	,,	देवसूरि	(अज्ञात)
११.	,,	भट्टारक सकलकीर्ति	(पन्द्रहवीं का मध्य)
१२.	,,	भट्टारक कल्याणकीर्ति	(स० १४८८)
१३.	,,	भट्टा० सोमकीर्ति	(स० १५३६)
१४.	,,	भट्टा० पद्मनन्दि	(१६वीं शता०)
१५.	,,	भट्टा० श्रुतसागर	(,,)
१६.	,,	ब्रह्म० नेमिदत्त	(,,)
१७.	,,	हेमकुजर उपाध्याय	(स० १६०७ के पहले)
१८.	,,	ज्ञानदास (लुकागच्छ)	(स० १६२३)
१९.	,,	पद्मसागर (तपागच्छीय धर्मसागर के शिष्य)	(लग० स० १६५०)
२०.	,,	भट्टा० वादिचन्द्र	(स० १६५७)
२१.	,,	भट्टा० ज्ञानकीर्ति	(स० १६५९)
२२.	,,	पूर्णदेव	(अज्ञात)
२३.	,, (गद्य)	क्षमाकल्याण	(स० १८३९)
२४.	,, (प्राकृत)	मानदेवेन्द्र	

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१८-३२०, ४६६.

यशोधरचरित्र की कथा का सार—एक समय राजपुर नरेश मारिदत्त चण्डमारी देवी के मन्दिर में सभी प्रकार के प्राणियों के जोड़े की बलि देने का अनुष्ठान करता है ताकि उसे लोकविजय करनेवाली तलवार प्राप्त हो सके। वहाँ नर-नारी रूप में बलि के लिए दो मुनिकुमार—अभयरुचि और अभयमती (दोनों सहोदर भाई-बहिन) पकड़ कर लाये गये। वे एक मुनिसंघ के सदस्य थे और भिक्षा के लिए नगर में आये थे। उन्हें देख राजा मारिदत्त का चित्त करुणा से द्रवित हुआ और उसने उनसे परिचय पूछा। उन दोनों ने अपना इस जन्म का सीधा परिचय न देकर अपने पूर्वभवों की कथा सुनाते हुए अन्त में बतलाया कि वे उस नरेश के भाजा-भांजी हैं। अभयरुचि ने बलि के लिए लाये गये अनेक जीवों को देखकर हिंसा की तीव्र निन्दा की और अपने पूर्वजों से सम्बद्ध, जीवित मुर्गे की नहीं अपितु आटे के मुर्गे का बलिदान करने और उसे खाने के कारण दारुण फलों को जन्मों-जन्मों में भोगने की अद्‌भुत कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया :

अभयरुचि ने कहा कि यह आठ पूर्वभवों की कथा है। प्रथम भव में वह उज्जयिनी का यशोधर नाम का राजा था। उसकी रानी एक रात्रि में कुबड़े, कुरूप महादत्त के गाने को सुनकर उसपर आसक्त हो गई और उससे प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर रात्रि के पिछले पहर में उससे रमण करने जाने लगी। एकबार रात्रि में राजा ने इस कृत्य को स्वयं आँखों से देखा पर कुल की निन्दा के कारण उन दोनों को नहीं मार सका और चुपचाप सो गया। सुबह बहुत भारी मन और उदासीनता से उसने अपनी माता से भेंट की और उदासीनता का कारण एक दुःस्वप्न बतलाया जिसमें उसने अपनी रानी के दुश्चरित्र का आभास-सा दिया पर वह समझ न सकी और दुःस्वप्न का वारण करने के लिए उसने देवी के लिए बकरी के बच्चे की बलि चढ़ाने को कहा। पर उसने ऐसा करने से इनकार तो किया किन्तु माता के तीव्र अनुरोध पर आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाई। फिर भी इस हिंसा और रानी के व्यभिचार के कारण उसका दिल इतना हिल गया कि उसने राज्य परित्यागकर तपस्या करना चाहा। किन्तु इसके पूर्व उससे आग्रह किया गया कि वह देवी का प्रसाद पा ले और उसे और उसकी माता को रानी ने विषमिश्रित लड्डू खिलाकर मार डाला। माता और पुत्र मरकर क्रमशः कुत्ता और मयूर हुए। दोनों संयोगवश उसी महल में इकठ्ठे हुए। मयूर ने रानी से संभोग करते हुए कुबड़े की आँख फोड़ देना चाही पर रानी ने उसे अधमरा कर दिया और कुत्ते ने उसे खा लिया। राजपुत्र ने क्रोध में आकर कुत्ते को मार दिया। इस तरह अगले जन्मों में दोनों माता-पुत्र क्रमशः सर्प-नेवला

(या सेही), मगर-मच्छ, बकरी-बकरी-पुत्र, भैंसा-बकरा तथा दो मुर्गे के रूप में हुए। एक समय मुनि का उपदेश सुनकर उन दोनों मुर्गों को जातिस्मरण हुआ और वे ऊँची बाँग देने लगे। राजा यशोधर के पुत्र (तत्कालीन नरेश) ने अपनी रानी को अपना शब्दवेधित्व दिखाने के लिए उन मुर्गों पर बाण छोड़ा जिससे उन दोनों की मृत्यु हो गई और उन्होंने उसी नरेश के पुत्र-पुत्री युगल—अभयरुचि और अभयमती के रूप में जन्म लिया।

एक समय नगर के एक जिनालय में सुदत्ताचार्य मुनि आये। राजा ने उन्हें अमंगल स्वरूप जान क्रोध करना चाहा पर एक व्यक्ति से उनका परिचय पाकर तथा उनसे उपदेश सुनकर तथा अपने पितामह, पितामही और पिता आदि का पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर यशोधर विरक्त हो गया और साधु हो गया। अभयरुचि और अभयमती ने भी अपने पूर्वजन्मों के हालातों को सुनकर क्षुल्लक-व्रत ग्रहण कर लिए।

यह सब वृत्तान्त सुनकर मारिदत्त उन क्षुल्लक युगल के गुरु के पास गया और संसार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली। उसके पुत्र ने भी राज्य में हिंसा का निषेध कर दिया।

यह यशोधर-कथानक कुम्भकार-चक्र की भाँति प्रस्तुत किया गया है जो मारिदत्त एवं क्षुल्लक युगल के परस्पर वार्तालाप से प्रारंभ होता है और उन्हीं दोनों के वार्तालाप से समाप्त होता है।[१]

उपर्युक्त कई रचनाओं में मारिदत्त का आख्यान प्रारम्भ मे न देकर ग्रथान्त में दिया गया है।

उपलब्ध रचनाओं में हरिभद्रकृत 'समराइच्चकहा' में समागत यशोधर की कथा परवर्ती रचनाओं का उपजीव्य रही है। पर उसके पात्र परवर्ती कथाओं में परिवर्तित रूप में मिलते हैं तथा उनमें अनेक घटनाएँ जोड़ दी गई हैं। कथा के नायक नायिका रूप में हरिभद्र ने यशोधर-नयनावलि नाम दिया है। वहाँ मारिदत्त का आख्यान नहीं है और न चण्डमारी देवी के सम्मुख पूर्व नियोजित नर-बलि की घटना। समराइच्चकहा में अभयमती और अभयरुचि दोनों अलग-अलग देशों के राजकुमार-राजकुमारी हैं, कारणवश वैराग्य धारण कर लेते हैं। वहाँ वे भाई-बहिन के रूप मे नहीं माने गये। समराइच्चकहा में यशोधर-कथा आत्मकथा के रूप में मिलती है। वहाँ यशोधर अपनी कथा धन नामक

---

१. देखें, डा० राजाराम जैन का लेख, 'यशोधरकथा का विकास', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २५, किरण २, पृ० ६२—६९, आरा, १९६८.

व्यक्ति के लिए सुनाता है न कि अभयमती, अभयरुचि और मारिदत्त के लिए।

परवर्ती रचनाओं में यशोधर कथा का विकास अनेक आधारों से किया गया प्रतीत होता है।

यहाँ उक्त कथाविषयक चरितों का परिचय दिया जाता है—

१. यशोधरचरित—यशोधर के चरित्र पर सम्भवतः यह पहली स्वतंत्र रचना है।[1] इसका सर्वप्रथम उल्लेख उद्योतनसूरि (सं० ८३५) ने अपनी कुवलयमाला में[2] इस प्रकार किया है :

सत्तूण जो जसहरो जसहरचरिएण जणवए पयडो।
कलिमलपभंजणो च्चिय पभंजणो आसि रायरिसी ॥ ४० ॥

अर्थात् जो शत्रुओं के यश का हरण करनेवाला था और जो यशोधरचरित के कारण जनपद में प्रसिद्ध हुआ, वह कलि के पापों का प्रभंजन करनेवाला प्रभंजन नाम का राजर्षि था।

मुनि वासवसेन (वि० सं० १३६५ से पूर्व) ने भी अपने यशोधरचरित[3] में लिखा है :

प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेणसमन्वितैः।
यदुक्तं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम् ॥

अर्थात् हरिषेण-प्रभंजनादि कवियों ने पहले जो कुछ कहा है, वह मुझ बालक से कैसे कहा जा सकता है।

भट्टारक ज्ञानकीर्ति (वि० सं० १६५९) ने अपने यशोधरचरित[4] में अपने पूर्ववर्ती जिन यशोधरचरित-कर्ताओं के नाम दिये हैं उनमें प्रभंजन का भी

१. डा० पी० एल० वैद्य ने प्रभञ्जन के यशोधरचरित को उक्त विषयक ग्रन्थों में सबसे प्राचीन माना है (जसहरचरिउ, कारंजा, १९३१, भूमिका, पृ० २४ प्रभृति); डा० आ० ने० उपाध्ये, कुवलयमाला, भाग २, टिप्पण ३१, पृ० १२६.

२. कुवलयमाला (सिं० जै० ग्रं० सं० ४५), पृ० ३.

३. पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२१.

४. डा० क० च० कासलीवाल, राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २११; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११० और ४२१.

नाम है—सोमदेव, हरिषेण (अपभ्रंश के कवि), वादिराज, प्रभजन, धनजय, पुष्पदत (अपभ्रश के कवि), वासवसेन ।

यदि उक्त भट्टारक ने इन सब ग्रन्थों को देखकर ही यह उल्लेख किया है तो समझना चाहिये कि वि० स० १६५० तक प्रभंजन का यशोधर-चरित था ।

२. यशोधरचरित—यह ४ सर्गों का एक लघु पर महत्त्वपूर्ण काव्य है । इसमें विविध छन्दों के कुल २९६ पद्य हैं ।[1] इस काव्य में लेखक ने किन्हीं पूर्वाचार्यों का उल्लेख नहीं किया है, केवल समन्तभद्रादि (१ · ३) मात्र कहकर रह गया है । इस काव्य को प्रभावक बनाने के लिए प्रौढ सस्कृत भाषा में कई रसों का वर्णन किया गया है, यथा—अभयरुचि और अभयमती को बलि के लिए ले जाते समय करुण रस, महावत के वर्णन में वीभत्स रस, चतुर्थ सर्ग में वसन्त-वर्णन आदि ।[2] कथा में सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू का अनुसरण किया गया है ।

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता वादिराज हैं जो द्रविड-संघ की शाखा नन्दिसंघ अरुगलान्वय के आचार्य थे । इनकी अन्य कृतियो मे पार्श्वनाथचरित, एकीभावस्तोत्र तथा न्यायग्रन्थ न्यायविनिश्चयविवरण, अध्यात्माष्टक, त्रैलोक्यदीपिका, प्रमाणनिर्णय प्राप्त हैं । इनका विशेष परिचय पार्श्वनाथचरित के साथ दिया गया है ।[3]

इस काव्य के रचनाकाल के संबंध में इसी काव्य से दो महत्त्व की सूचनाएं मिलती हैं । पहली तीसरे सर्ग के अन्तिम ८५वें पद्य में 'व्यातन्वञ्जयसिंहता रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम्' और दूसरी चौथे सर्ग के उपान्त्य पद्य में 'रणमुख-जयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार' । इन पद्यांशों में कवि ने चतुराई से अपने सम-कालीन नरेश दक्षिण के चौलुक्य वशी जयसिंह का उल्लेख किया है । इससे ज्ञात होता है कि इस काव्य की रचना जयसिंह के समय (शक सं० ९३८-९६४) में हुई है । इसकी रचना वादिराज ने पार्श्वनाथचरित के बाद की थी क्योंकि इसमें उन्होंने अपने को पार्श्वनाथचरित का कर्ता बतलाया है ।[4] चूंकि

---

१. स०—टी० ए० गोपीनाथ राव, सरस्वती विलास सिरीज सं० ५, तंजौर, १९१२; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

२ १. ४०; २. ३९-४०; ४ सर्ग का प्रारम्भ.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९१–३०८.

४. श्रीपार्श्वनाथकाकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम् ।
तेन श्रीवादिराजेन दृब्धा याशोधरी कथा ॥ १.५.

पार्श्वनाथचरित की रचना श० सं० ९४७ की कार्तिक सुदी ३ को की गई थी[1] इसलिये हम अनुमान कर सकते हैं कि यह उसके बाद और श० सं० ९६४ के बीच कभी रचित हुई होगी। श० सं० ९६४ जयसिंह के राज्य का अन्तिम वर्ष माना जाता है।

३. यशोधरचरित—माणिक्यसूरिकृत इस काव्य में १४ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर ४०५ श्लोक हैं।[2] कवि ने अपनी कथा का स्रोत संभवतः हरिभद्र-सूरि की समराइच्चकहा को माना है। इस चरित का कथानक सगठित एव धारावाहिक है। इसमें अवान्तर कथाओं का अभाव होने से शिथिलता नहीं आ सकी है। इस चरित्र में प्रकृति-चित्रण भी विविध रूपों में हुआ है[3] पर अधिकतर घटनाओं के अनुकूल पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए ही प्रकृति का वर्णन हुआ है।

इस काव्य में रचयिता ने जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त—केवल अहिंसा का—हिंसा के दोष और अहिंसा के गुणों का प्रारंभ से अन्त तक वर्णन किया है। उसी के प्रतिपादन तक ही अपने को सीमित रखा है और जैनधर्म के अन्य नियमों का निरूपण नहीं किया है। इस काव्य की भाषा यद्यपि प्रौढ़ और गरिमा-युक्त नहीं है फिर भी यह अत्यन्त सरल और प्रसादगुणयुक्त है। कवि को विविध स्थितियों और घटनाओं के सजीव चित्र उपस्थित करने में बड़ी सफलता मिली है। इस काव्य में मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का भी यथावसर प्रयोग हुआ है।[4] इस चरित्र की भाषा में बोलचाल के कई देशी शब्द सस्कृत के ढाचे में ढालकर प्रयुक्त हुए हैं जैसे—कुचिका (कूची), कटाही (कढ़ाई), भट्टित्र (भट्टी), मिंटा (मेढ़ा), वर्करः (बकरा), चारक (चारा), वटक (वाटी) आदि। कवि ने इस काव्य में अलकारों की कृत्रिम और अस्वाभाविक योजना प्रायः कहीं नहीं की। भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में ही अनेक अलंकार स्वतः आ गये हैं।[5] इस चरित्र में विविध छन्दों का प्रयोग दर्शनीय है। ७, ९,

---

१. पार्श्वनाथचरित, प्रशस्ति, पद्य ५.

२. सम्पादक—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

३. १.४२-४३, ७१-७२; ३.५,६१; ५.४-७; ६.२-४; ८.४२-४३, ४५-४८ आदि.

४. २.६८, ६९; ३.४०; ४.४०; ६.७०, ७७, ११३; १२. ७५.

५. २.७; १२. २६.

१०, ११ और १४ सर्गों में किसी एक वृत्त का प्रयोगकर सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। शेष सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। समस्त काव्य में २५ वृत्तों का प्रयोग हुआ है। कुछ अप्रसिद्ध तथा अज्ञात छन्दों का प्रयोग भी इसमे हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है अतः कवि का विशेष परिचय इस काव्य से नहीं मिलता है। परन्तु नलायनमहाकाव्य के तृतीय स्कन्ध के अन्त मे कवि ने ये पक्तियाँ लिखी है :

स्तत् किमप्यनवमं नवमंगलांकं श्रीमद्यशोधरचरित्रकृता कृतं यत्।
तस्यार्यकर्णनलिनस्य नलायनस्य स्कन्धो जगाम रसवीचिमयस्तृतीयः॥

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि नलायनकाव्य और प्रस्तुत काव्य के रचयिता एक ही माणिक्यसूरि हैं। उन्होंने नलायन से पूर्व यशोधरचरित की रचना की थी। माणिक्यसूरि स० १३२७ से १३७५ के बीच जीवित थे। वे बडगच्छ के थे और उनके गुरु का नाम पडोचन्द्र (पद्मचन्द्र) सूरि था।

४. यशोधरचरित—इसमें आठ सर्ग हैं।[1] इसकी अन्तिम पुष्पिका में 'इति यशोधरचरिते मुनिवासवसेनकृते काव्ये अष्टमः सर्गः समाप्तः' वाक्य है। प्रारभ में लिखा है : प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेण समन्वितैः। यदुक्त तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम्। इससे ज्ञात होता है कि उनसे पूर्व प्रभंजन और हरिषेण[2] ने यशोधरचरित लिखे थे। वासवसेन ने अपने समय और कुलादि का कोई परिचय नहीं दिया है।

स० १३६५ में हुए अपभ्रश कवि गन्धर्व ने अपने 'जसहरचरिउ' में वासवसेन की रचना का उल्लेख किया है : 'जं वासवसेणिं पुव्व रइउ, तं पेक्खवि गंधव्वेण कहिउ' अर्थात् वासवसेन ने पूर्व में जो ग्रन्थ रचा था, उसे देखकर ही यह गधर्व ने कहा। इससे इतना निश्चित है कि वे गन्धर्व कवि से अर्थात् स० १३६५ से पहले हुए हैं।

५. यशोधरचरित (अपर नाम दयासुन्दरकाव्य)—इस काव्य में ९ सर्ग हैं और कुल मिलाकर १४६१ पद्य हैं। यह अप्रकाशित रचना जैन सिद्धान्त भवन, आरा में सुरक्षित है। इसके प्रत्येक सर्ग की पद्य सख्या क्रमशः १४९, ७९,

१. हस्तलिखित प्रति, बम्बई के सरस्वती भवन सं० ६०४ क; जयपुर के बाबा दुलीचन्द्र के भण्डार में, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २५५.
२. हरिषेण शायद वे ही हों जिनकी धर्मपरीक्षा (अपभ्रंश) मिली है।

१९३, २३४, १७९, १८०, १७४, १९१, १०९ है। अन्त में १३ पद्यों की एक प्रशस्ति है। इस काव्य का दूसरा नाम दयासुन्दरकाव्य भी दिया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता का नाम पद्मनाभ है जो कायस्थ जाति का था। उसके गुरु जैन भट्टारक गुणकीर्ति (वि० स० १४६८-७३) थे। उन्हीं के उपदेश से उसने उक्त काव्य लिखा। तत्कालीन कई भक्तों ने उक्त काव्य की मुक्तकठ से प्रशसा की थी। अन्त्य प्रशस्ति खण्ड के १० पद्यों में कवि ने अपने आश्रयदाता मंत्री कुशराज का विस्तृत परिचय दिया है। यह कुशराज ग्वालियर के तोमरवंशीय नरेश विक्रमदेव (वीरमदेव स० १४५९-१४८३) के मंत्रिमण्डल का प्रमुख सदस्य था। इसने गोपाचल पर एक विशाल चन्द्रप्रभ जिनालय बनवाया था।

अन्य यशोधरचरितों में भट्टा० सकलकीर्ति के काव्य मे ८ सर्ग हैं और परिमाण १००० श्लोक-प्रमाण है। कल्याणकीर्ति की रचना १८५० ग्रन्थाग्र-प्रमाण बतलाई गई है।[१] सोमकीर्ति (स० १५३६) के काव्य मे ८ सर्ग हैं। इसकी रचना उन्होने गोढिली (मारवाड़) में स० १५३६ में की थी।[२] उन्होंने प्राचीन हिन्दी मे भी एक यशोधरचरित रचा है। सोमकीर्ति का परिचय प्रद्युम्नचरित के प्रसग में दिया गया है। इनकी अन्य कृति सप्तव्यसनकथा भी मिलती है। श्रुतसागरकृत यशोधरचरित में ४ सर्ग हैं। श्रुतसागर विद्यानन्दि के शिष्य थे जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण के भट्टारक थे।[३] श्रुतसागर बहुत बडे विद्वान् थे। इन्होंने यशस्तिलकचम्पू पर यशस्तिलकचन्द्रिका टीका लिखी है जो अधूरी है। इनके अन्य ग्रन्थों मे तत्त्वार्थवृत्ति एव श्रीपालचरित उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपने किसी ग्रन्थ में रचना का समय नहीं दिया है, फिर भी अन्य प्रमाणो से यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रम की १६वीं शताब्दी में हुए हैं। धर्मचन्द्रगणि के शिष्य हेमकुजर उपाध्याय ने भी एक यशोधरचरित रचा है जिसकी हस्तलिखित प्रति सं० १६०७ की मिलती है।[४] लुकागच्छीय नानजी के शिष्य ज्ञानदास ने भी सं० १६२३ में एक यशोधरचरित रचा था।[५] पार्श्वपुराण के रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र ने भी सं० १६५७ में एक यशोधर-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.
२. राजस्थान के जैन सत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३९-४३.
३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३७१-३७७.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.
५. वही.

चरित को अंकलेश्वर (भड़ौच) के चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में बैठकर रचा था। उक्त काव्य की प्रशस्ति में रचना-सवत् दिया हुआ है और कहा गया है कि यह काव्य दया के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए निर्मित हुआ है।[1] सं० १६५९ मे वादिभूषण के शिष्य ज्ञानकीर्ति ने आमेर के महाराजा मानसिंह (प्रथम) के मंत्री नानूगोधा की प्रार्थना पर एक यशोधरचरित बनाया जिसमे ९ सर्ग हैं। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्रभडार में है।[2] सं० १८३९ में खरतर-गच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने सस्कृत गद्य में यशोधरचरित जैसलमेर में रहकर लिखा था।[3]

श्रीपालचरित्र—श्रीपाल का चरित्र सिद्धचक्र पूजा (अष्टाह्निका, नन्दीश्वर-द्वीप पूजा) अर्थात् नवपद मण्डल के माहात्म्य को प्रकट करनेवाला एक रूढ चरित है जिसे थोडे-बहुत परिवर्तन के साथ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराएँ मानती हैं। जिस प्रकार दूसरे व्रतों या अनुष्ठानों के लिए एक से अधिक चरित्र मिलते हैं उसी प्रकार इसके लिए भी संस्कृत-प्राकृत में मिलाकर २६ से अधिक रचनाएँ मिलती हैं।

यद्यपि उक्त पूजा का उल्लेख पुराना है और उसके माहात्म्य के लिए अयोध्या के हरिषेण राजा की कथा जोड़ी गई है, पीछे पोदनपुर के एक विद्याधर नरेश की। पहले नंदीश्वर पूजा मूल रूप में विद्याधर लोक की वस्तु थी पर विद्याधर से अतिरिक्त मानव से भी सम्बन्ध जोड़ने के लिए लोककथासाहित्य से श्रीपाल के चरित्र को धर्मकथा के रूप में गढकर तैयार किया गया। श्रीपाल कोई पौराणिक पुरुष नहीं है। इसकी जो कथा मिलती है उसके विश्लेपण से इसकी मुख्य वस्तु ज्ञात होती है : पूर्वजन्म के संचित कर्मों का फल प्रकट करना है पर उनसे त्राण पाने में अलौकिक शक्तियों से भी सहायता मिल सकती है और वह अलौकिक शक्ति है सिद्धचक्र पूजा।

कथावस्तु—उज्जैन के राजा प्रजापाल की दो पत्नियाँ हैं, एक शैव और दूसरी जैन। एक की पुत्री सुरसुन्दरी और दूसरी की मयनासुन्दरी। शिक्षा-

---

१ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८, कथामेनां दयासिद्ध्यै वादिचन्द्रो व्यरीरचत्।

२. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० २११; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

३ केटेलाग आफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मेनु०, भाग ४ (लालभाई दलपतभाई ग्र० स० २०), परिशिष्ट, पृ० ८५.

दीक्षा के बाद सभा में राजा उनसे पूछता है कि उनके सुख का श्रेय किसे है ? सुरसुन्दरी ने पिता को और मयना ने अपने कर्म को बतलाया। राजा पहली से प्रसन्न हो उसका विवाह शंखपुर नरेश अरिमर्दन से कर देता है और दूसरी से क्रुद्ध हो कोढ़ी राजपुत्र श्रीपाल से।

श्रीपाल चम्पापुर का राजपुत्र था। बाल्यकाल मे ही उसके पिता के मर जाने के कारण मन्त्री ने और उससे छीनकर चाचा अजितसेन ने राज्य सम्हाला और माँ-बेटे को मारने का षड्यन्त्र किया जिससे दोनों भागकर ७०० कोढ़ियों के गाँव मे शरण लेते हैं। वहाँ श्रीपाल भी कोढ़ी हो जाता है। माता उपचार के लिए उसे उज्जयिनी ले गई। कोढियों ने श्रीपाल को अपना मुखिया चुन लिया था और उसके विवाह के लिए वे लोग राजा से मयनासुन्दरी की माँग करते हैं। राजा उससे विवाह कर देता है। मयनासुन्दरी इसे अपना कर्मफल मानती है और उसके निवारणार्थ सिद्धचक्र की पूजा करती है और सब कोढ़ी ठीक हो जाते हैं।

कुछ समय वहाँ रहकर श्रीपाल पत्नी से अनुमति लेकर यश और सम्पत्ति अर्जन के लिए विदेश जाता है। वहाँ अनेकों राजकुमारियों से विवाह करता है, व्यापार में सहयोगी धवल सेठ द्वारा धोखे से समुद्र मे गिराये जाने पर भी बच जाता है तथा सेठ के अनेक कपट-प्रपचों से बचता हुआ सम्पत्ति-विपत्ति के बीच डावां-डोल हालत से पार होता हुआ अपनी पत्नियों सहित उज्जैन लौट आता है। फिर अपनी माँ और पत्नी (मयना) से मिलकर अगदेश पर आक्रमण करता है। चाचा अजितसेन को हराता है जो मुनि हो जाता है। श्रीपाल राजसुख भोगता है। एक दिन उन्हीं मुनि से अपने पूर्वजन्म की कथा सुनकर मालूम करता है कि वह कुछ काल कर्मफल भोग ९वें जन्म में मोक्ष प्राप्त करेगा।

दिगम्बर परम्परा के कथानक के अनुसार राजा पहुपाल की एक रानी की दो पुत्रियाँ सुरसुन्दरी और मयणा थीं। दोनों की शिक्षा अलग-अलग होती है। सुरसुन्दरी का विवाह कौशाम्बी के राजा शृंगारसिंह से होता है और मयणा का कोढी श्रीपाल से (श्रीपाल को राजा बनने के बाद कोढ हुआ था) जो कि कोढ़ के कारण १२ वर्ष से प्रवास में था। मयणा सिद्धचक्रविधि से उसके कोढ़ का निवारण करती है। इसके बाद दो विद्याएँ प्राप्तकर श्रीपाल विदेशयात्रा करता है। वहाँ समुद्र मे पतन आदि कपटप्रबन्धों से पार होकर क्रमशः ४००० राजकन्याओं से विवाह करता है। पीछे लौटकर अपने चाचा वीरदमन से राज्य छीन सुखभोग करता है। पश्चात् एक मुनि से पूर्वभव की बातें सुन मुनि होकर तपस्याकर मोक्ष जाता है।

उक्त दोनों रूपान्तरों में जो समान तथ्य प्रतिफलित होते हैं वे हैं : श्रीपाल का चम्पापुर का राजपुत्र होना, उसे पूर्व कर्मों के फलस्वरूप कोढ होना और मयना का भी कर्मफलस्वरूप तथा पिता द्वारा बदले की भावना के कारण विवाह होना, श्रीपाल का घरजवाई न बनकर अपना साहस और पुरुषार्थ दिखाना, समुद्रयात्रा के अनुभव प्रकट करना और यह बताना कि इन कष्टों से मुक्ति का उपाय है सिद्धचक्र पूजा।

सिरिवालकहा—श्रीपाल के आख्यान पर सर्व प्रथम एक प्राकृत कृति 'सिरिवालकहा'[1] मिलती है जिसमे १३४२ गाथाएँ हैं। उनमें कुछ पद्य अपभ्रंश के भी हैं। प्रथम गाथा मे कथा का हेतु दिया गया है :

अरिहाइ नवपयाइं झाइत्ता हिययकमलमज्झंमि।
सिरिसिद्धचक्कमाहप्पमुत्तमं किं पि जंपेमि॥

तेईसवीं गाथा में नवपदों की गणना इस प्रकार दी है :

अरिहं सिद्धायरिया उज्झाया साहुणो अ सम्मत्तं।
नाणं चरणं च तवो इय पयनवगं मुणेयव्वं॥

इसके बाद उक्त पदों का ९ गाथाओं में अर्थ तथा माहात्म्य की चर्चा है। २८८वीं गाथा से श्रीपाल की कथा दी गई है। यह कथाग्रन्थ कल्पना, भाव एवं भाषा में उदात्त है। इसमें कई अलकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। कथानक की रचना आर्या और पादाकुलक (चौपाई) छन्दों में की गई है, पर कहीं-कहीं पज्झडिआ छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त मे कहा गया है कि इसका संकलन वज्रसेन गणधर के पट्टशिष्य व प्रभु हेमतिलकसूरि के शिष्य रत्नशेखरसूरि ने किया। उनके शिष्य हेमचन्द्र साधु ने वि० स० १४२८ में इसको लिपिबद्ध किया।[2] पट्टावलि से ज्ञात होता है कि रत्नशेखरसूरि तपागच्छ की नागपुरीय

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३९६; देवचन्द्र लालभाई पुस्तक० (६३), बम्बई, १९२३. श्री वाडीलाल जे० चोकसी के अनुसार इस कथा का आविष्कार सर्वप्रथम रत्नशेखरसूरि ने ही किया है। इस कथन का समर्थन उक्त ग्रन्थकार के सिद्धचक्रयन्त्रोद्धार के वर्णन से होता है।

२. सिरिवज्जसेण गणहर पट्टप्पइ हेमतिलयसूरीणं।
सीसेहिं रयणसेहरसूरीहिं इमा हु संकलिया॥ १३४०॥
तस्सीस हेमचंदेण साहुणा विक्कमस्स नरसंमि।
चउदस अट्ठावीसे लिहिया गुरुभत्तिकलिएणं॥ १३४१॥

शाखा के हेमतिलक के शिष्य थे। वे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के समकालीन थे। रत्नशेखरसूरि का जन्म वि० स० १३७२ में हुआ था और १३८४ में दीक्षा तथा १४०० में आचार्य पद। इनका विरुद 'मिथ्यान्धकारनभोमणि' था। वि० स० १४०७ में इन्होंने फिरोजशाह तुगलक को धर्मोपदेश दिया था। इसकी अन्य रचनाएँ. गुणस्थानक्रमारोह, लघुक्षेत्रसमास, संग्रोहमत्तरी, गुरुगुण-षट्त्रिंशिका, छन्दःकोश आदि मिलती हैं।

सिरिवालकहा पर खरतरगच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने स० १८६९ में टीका लिखी है।[1]

श्रीपालकथा—यह सस्कृत गद्य मे लिखी गई अति सक्षिप्त कथा है।[2] इसके रचयिता उक्त रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमचन्द्रसूरि ही है। इसमे अपने गुरु की रचना की गाथाओं और भावों का सग्रह मात्र है।

श्रीपालचरित—इसमे ५०० सस्कृत पद्यों में कथा वर्णित है।[3] इसके रचयिता पूर्णिमागच्छ के गुणसमुद्रसूरि के शिष्य सत्यराजगणि हैं जिन्होने स० १५१४ या ५४ मे इसकी रचना की।

श्रीपालकथा या चरित—इसमे ५०७ सस्कृत श्लोक है। इसके रचयिता वृद्ध तपागच्छ के उदयसागरगणि के शिष्य लब्धिसागरगणि है। इसकी रचना स० १५५७ में हुई थी।

अन्य श्रीपालचरितों में वृद्ध तपागच्छ के ही एक अन्य विद्वान् विजयरत्नसूरि के शिष्य धर्मधीर ने सस्कृत में श्रीपालचरित की रचना की, जिसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ स० १५७३, १५७५ और १५९३ की मिलती हैं।[4]

एक श्रीपालचरित्र को सस्कृत गद्य में तपागच्छीय नयविमल के शिष्य ज्ञानविमलसूरि ने स० १७४५ में लिखा है। यह चरित्र विजयप्रभसूरि के पट्टधर विजयरत्नसूरि के शासनकाल में समाप्त हुआ था।[5]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३६९.

२. नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला (२२), केशवलाल प्रेमचन्द्र कंसारा, खभात, वि० सं० २००८.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३९७; विजयदानसूरीश्वर ग्रन्थमाला (सं० ४), सूरत, वि० स० १९९५.

४ जिनरत्नकोश, पृ० ३९७.

५. वही; देवचन्द लालभाई पुस्तक० (स० ५६), बम्बई, १९१७.

उक्त प्राकृत रचना के आधार से खरतरगच्छ के जयकीर्तिसूरि ने भी सं० १८६८ में ग्रन्थाग्र ११०० प्रमाण श्रीपालचरित्र[1] संस्कृत गद्य में रचा है। इस पर एक अज्ञातकर्तृक टीका भी है।

अन्य श्रीपालचरितों के रचयिताओं[2] के नाम हैं: जीवराजगणि, सोमचन्द्र-गणि (संस्कृत गद्य), विजयसिंहसूरि, वीरभद्रसूरि (ग्रन्थाग्र १३३४), प्रद्युम्न-सूरि (प्राकृत रचना), सौभाग्यसूरि, हर्षसूरि, क्षेमलक, इन्द्रदेवरस, विनयविजय (प्राकृत) तथा लब्धिमुनि।

इनमें विनयविजय की प्राकृत रचना ४ खण्डों में विभक्त है। इसकी प्राचीन प्रति स० १६८३ की मिलती है। लब्धिमुनि की १० सर्गों में १०४० श्लोक-प्रमाण रचना है जो सं० १९९० में रची गई है।[3] लब्धिमुनि खरतरगच्छ के राजमुनि के शिष्य हैं और इन्होंने खरतरगच्छ के आचार्यों के कई जीवन-चरित लिखे हैं।

उपर्युक्त रचनाओं में श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित श्रीपाल का चरित दिया गया है।

दिगम्बर सम्प्रदाय सम्मत चरित्र पर सर्वप्राचीन ग्रन्थ श्रीपालचरित भट्टारक सकलकीर्तिकृत मिलता है जो सात परिच्छेदों में विभक्त है। इसमे कोटिभट श्रीपाल को राज्यावस्था में कुष्ठ होना, उसका निवारण, समुद्र-यात्रा, शूली पर चढना आदि घटनाएँ नाटकीय ढग से वर्णित हैं। इसके रचयिता का परिचय पहले दे चुके हैं पर ग्रन्थ की रचना का ठीक काल मालूम नहीं हो सका है।

अन्य लेखकों में विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, श्रुतसागर, ब्रह्म नेमिदत्त (नौ सर्गों में, स० १५८५), शुभचन्द्र, प० जगन्नाथ तथा सोमकीर्ति कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[4]

दो अज्ञातकर्तृक श्रीपालचरितों का भी उल्लेख मिलता है उनमें से एक की प्राचीन प्रति स० १५७२ की है।[5]

---

१. वही, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.

२ वही, पृ० ३९७–९८

३ वही, पृ० ३९८, जिनदत्तसूरि भण्डार, पायधुनी, बम्बई, सं० १९९१.

४. वही, पृ० ३९७-३९८, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३७४; राजस्थान के जैन सन्त: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १२; इनमें से एक का हिन्दी अनुवाद जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

५. वही.

श्रीपालचरित पर एक नाटक[1] भी धर्मसुन्दर अपर नाम सिद्धसूरि ने स० १५३१ मे रचा है।

अपभ्रंश भाषा मे कवि रइधू और प० नरसेन के सिरिपालचरिउ मे दिगम्बर सम्प्रदाय सम्मत कथानक दिया गया है।

गुजराती और हिन्दी भाषा के कवियों के लिए यह चरित बड़ा ही रोचक रहा है।

भविष्यदत्तकथा—श्रीपालकथा के समान भविष्यदत्त की लौकिक कथा को श्रुतपचमी के माहात्म्य के लिए धर्मकथा मे परिणत किया गया है।

कथावस्तु—भविष्यदत्त एक वणिक् पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार हेतु परदेश जाता है, वहाँ धन कमाता है और विवाह भी कर लेता है परन्तु उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देकर दुःख पहुँचाता है, यहाँ तक कि उसे एक द्वीप में अकेला छोड़कर उसकी पत्नी के साथ घर लौट आता है और उससे विवाह करना चाहता है। किन्तु इसी बीच भविष्यदत्त भी यक्ष की सहायता से घर लौट आता है, अपना अधिकार प्राप्त करता है और राजा को खुशकर राजकन्या से भी विवाह करता है। अन्त मे एक मुनि से पूर्वभव के वृत्तान्त सुन विरक्त होकर पुत्र को राज दे मुनि हो जाता है।

इस कथा पर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं जिनका परिचय ज्ञानपचमी कथा पर लिखी रचनाओं के प्रसग में दिया गया है।

मणिपतिचरित (मुनिपतिचरित)—इस चरित्रात्मक कथाग्रन्थ में[2] मणिपति (नृप) मुनि के चरित्र के साथ उनके तथा कुंचिक सेठ के बीच सवाद के द्वारा १६ कथाएँ दी गई हैं जिनका संकलन एक पद्य में इस प्रकार है :

हस्ती हारः सिहो मेतार्यः सुकुमारिका,
भद्रोक्षा गृहकोकिलः सचिवावटुकोऽपिच।
नागदत्तो वर्द्धकिश्च चारभट्यथ गोपकः,
सिही शीतार्दितहरिः काष्ठर्षिः षोडशो मतः॥

१. वही, पृ० ३९८.

२. वही, पृ० ३००, ३१०; इस काव्य का वास्तविक नाम मणिपतिचरित है। प्राकृत में मणिवई को पीछे लेखकों ने मुणिवई करके मुनिपति (संस्कृत) नाम दे दिया है। इस बात का स्पष्टीकरण हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, अहमदाबाद से प्रकाशित इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में किया गया है।

इस चरित्र का सार निम्न रीति से है : मणिपतिका नगरी का मणिपति नामक राजा था। उसने एक दिन अपने सिर का पका केश देख अपने पुत्र मुनिचन्द्र को राज्य दे दमघोषमुनि से दीक्षा ले ली और अकेला विहार करने लगा। एक बार वह उज्जयिनी के बाहर श्मशान मे कायोत्सर्ग कर रहे थे। वहाँ भयानक ठड के कारण गोपाल बालकों ने भक्ति से मुनि को वस्त्र ओढा दिया पर चिता की लपट के कारण वस्त्र मे आग लग जाने से मणिपतिमुनि झुलस गये। इसकी खबर उस नगर के सेठ कुचिक को लगी और उसने मुनि को घर में लाकर चिकित्सा कराई तथा वर्षाकाल समीप आने पर उन्हें चातुर्मास बिताने का आग्रह किया, तथा अपने पुत्र के भय से सस्तारक के नीचे अपने धन को गाड़ दिया। पर पुत्र ने उस धन का अपहरण कर लिया। सेठ ने मुनि पर धनचोरी का आरोप किया और हाथी की कथा कही। तब मुनि ने अपनी निर्दोषता को बतलाने के लिए एक हारकथा (यह एक लम्बा कथानक है) कही। इसी तरह उन दोनों के बीच चर्चा में ८—८=१६ कथाएँ कहीं गईं। पर सेठ के मन का पाप दूर नहीं हुआ तो मुनि ने क्रोध में आकर शाप दिया कि 'जिसने तेरा धन लिया हो उसका नाश हो जाय'। तप के प्रभाव से मुनि के शरीर से तेजोलेश्या निकलने लगी। तब कुचिक सेठ के पुत्र ने भयभीत होकर धन की चोरी स्वीकार कर मुनि से क्षमा मागी। मुनि ने क्षमा दी। कुचिक सेठ भी विरक्त हो मुनि बन गया और दोनों ने निर्दोष तपस्याकर स्वर्ग-प्राप्ति की। इस कथा पर सस्कृत में तीन और प्राकृत में एक रचना मिलती है।

प्रथम गद्य-पद्यमय संस्कृत रचना[1] है जिसे चन्द्रगच्छ के जम्बूकवि ने स० १००५ में रचा था। इनकी अन्य रचना जिनशतककाव्य पर स० १०२५ में साम्बमुनि ने टीका लिखी थी। उसी की प्रशस्ति से इस कवि के गच्छ का पता लगा है। कर्त्ता के जीवन के विषय मे और कोई सूचना कहीं से नहीं मिलती है। बृहट्टिप्पनिका मे मणिपतिचरित को मुनिपतिचरित कहकर '१००५ वर्षे जम्बूनागकृतं ३२०० उद्धृ० २७००' लिखा है। इससे लगता है कि जम्बूनाग और जम्बूकवि एक ही थे। हो सकता है कि जम्बू का ही दूसरा नाम जम्बूनाग रहा हो। यह चरित्रग्रन्थ एतद्विषयक अन्य रचनाओं से प्राचीन सुन्दर एव आकर्षक है। इसकी भाषा सरल, स्पष्टार्थयुक्त एव अलकारविभूषित है। शुरू में सज्जनस्तुति, दुर्जननिन्दा, ग्रीष्मादि ऋतु, सायंकाल तथा नगरी आदि का आकर्षक वर्णन है। कवि अलंकारप्रिय है पर उसकी भाषा प्रसादगुणवाली है। इस

---

१. हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, स० १९७८.

सुकोशलचरित—तप की आराधना के महत्त्व को प्रकट करने और तिर्यञ्च (व्याघ्री) कृत उपसर्ग को क्षमा भाव से सहन करने के लिए सुकौशलमुनि का चरित्र अनेक कथाकोशों में आया है। हरिषेण के कथाकोश में यह चरित्र २८४ श्लोकों में वर्णित है।

प्राकृत (अपभ्रंश ?) में सोमकीर्ति[१] भट्टारक कृत तथा तीन अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[२] (जिनमें ९७ गा०, १०१ गा० और १०७ गा० हैं) उपलब्ध होती हैं। संस्कृत में ब्रह्म नेमिदत्त[३] और भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति[४] कृत रचनाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश में १३०२ में रचित अज्ञातकर्तृक रचना[५] तथा कवि रइधूकृत सुकोसलचरिउ[६] का उल्लेख मिलता है।

अवन्ति-सुकुमाल अथवा सुकुमालचरित—तप की चरम आराधना और तिर्यञ्च (शृगाली) के उपसर्ग को अडिग भाव से सहन करने के दृष्टान्तरूप अवन्ति सुकुमाल की कथा आराधना कथाकोशों तथा अन्य कथाकोशों मे वर्णित है। हरिषेण के कथाकोश में यह कथा २६० श्लोकों में दी गई है। दानप्रदीप में इसे उपाश्रयदान के महत्त्व में कहा गया है। अवन्तिसुकुमाल आचार्य सुहस्ति के शिष्य माने गये हैं और कहा जाता है कि इन्हीं के समाधिस्थल पर उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर बना है।

इस पर स्वतन्त्र रचनाओं मे भट्टारक सकलकीर्ति[७] (१५वीं शती) कृत ९ सर्गात्मक १०५० श्लोकों मे एक काव्य उपलब्ध है। दूसरी रचना भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य वादिचन्द्र[८] (सं० १६४०–१६६०) कृत तथा अन्य अज्ञात[९] कर्तृक संस्कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

पाटन (गुजरात) के तपागच्छ भण्डार के एक कथासंग्रह में अवन्ति-सुकुमालकथा[१०] प्राकृत ११९ गाथाओं मे उपलब्ध है।

जिनदत्तचरित—साधुपरिचर्या या मुनि आहारदान के प्रभाव से व्यक्ति जीवन-प्रसंग मे खतरों से बचता हुआ, अपनी कितनी शुद्धि कर सकता है इस

१-६. वही, पृ० ४४३-४४४; हिन्दी में सुकोशलचरित्र प्रकाशित है। गुजराती में अनेक रास आदि उपलब्ध हैं।

७-९. वही, पृ० ४४३; सुकुमालचरित्र पर हिन्दी मे गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

१०. वही, पृ० १७, पाटन भण्डार सूची, भाग १, पृ० ४०५

चरित्र का कथानक तो बहुत संक्षिप्त है पर वर्णन और प्रासंगिक कथाओं से यह बड़ा हो गया है।

द्वितीय प्राकृत गाथाओं में संक्षिप्त रचना है। इसमें ६४६ गाथाएँ हैं जिनका प्रमाण ८०५ श्लोक है।[1] इसकी रचना सं० ११७२ में बृहद्गच्छीय मानदेव के प्रशिष्य एवं उपाध्याय जिनपति के शिष्य हरिभद्रसूरि ने की है।[2] हरिभद्रसूरि की अन्य कृतियाँ: श्रेयांसचरित, प्रशमरतिवृत्ति, क्षेत्रसमासवृत्ति एवं बंधस्वामित्व-षडशीतिकर्मग्रन्थवृत्ति मिलती हैं।

तृतीय रचना संस्कृत गद्य में है। यह हरिभद्रसूरि के प्राकृत चरित्र पर से ही संस्कृत गद्य में रचा गया है। वास्तव में यह उसका अनुवाद मात्र है और उससे लघु है। जिनरत्नकोश के अनुसार इसके रचयिता धर्मविजयगणि हैं।[3]

चतुर्थ रचना नयनन्दिसूरिकृत ग्रन्थाग्र ६२५ प्रमाण का उल्लेख मिलता है।[4]

पंचम रचना संस्कृत गद्य में है और इसमें प्रासंगिक कथाएँ इतनी अधिक हैं कि इसका प्रमाण दोनों चरित्रों से बड़ा हो गया है। इस ग्रन्थ की भाषा अस्त व्यस्त है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है।[5]

एक मुनिपतिचरित्रसारोद्धार[6] नामक संस्कृत कृति का भी उल्लेख मिलता है।

गजसुकुमालकथा—गजसुकुमाल को गजकुमार भी कहा जाता है। इनकी कथा अन्तकृतदशांग में आई है। ये देवकी के अन्तिम पुत्र थे। इनका उदाहरण तप की चरम आराधना, मनुष्यकृत उपसर्ग को अचल भाव से सहने और क्षमा की उच्चकोटि की परिणति के लिए अनेक कथाग्रन्थों में आता है। इस पर संस्कृत में एक अज्ञातकर्तृक रचना[7] का उल्लेख मिलता है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००, ३१०.

२. नयणमुणिरुद्दसंखे विक्कमसंवच्छरमिवच्चन्ते (११७२)।
भद्दवय पंचमिए समत्थियं चरित्तमिणमोत्ति ॥

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३११.

४. वही.

५. मणिपतिराजर्षिचरित की प्रस्तावना, हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, सं० १९७८; हीरालाल हंसराज, जामनगर द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ३११.

७. वही, पृ० १०२.

सुकोशलचरित—तप की आराधना के महत्त्व को प्रकट करने और तिर्यञ्च (व्याघ्री) कृत उपसर्ग को क्षमा भाव से सहन करने के लिए सुकौशलमुनि का चरित्र अनेक कथाकोशों मे आया है। हरिषेण के कथाकोश में यह चरित्र २८४ श्लोकों में वर्णित है।

प्राकृत (अपभ्रंश ?) में सोमकीर्ति[१] भट्टारक कृत तथा तीन अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[२] (जिनमें ९७ गा०, १०१ गा० और १०७ गा० हैं) उपलब्ध होती हैं। सस्कृत में ब्रह्म नेमिदत्त[३] और भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति[४] कृत रचनाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश मे १३०२ में रचित अज्ञातकर्तृक रचना[५] तथा कवि रइधूकृत सुकोसलचरिउ[६] का उल्लेख मिलता है।

अवन्ति-सुकुमाल अथवा सुकुमालचरित—तप की चरम आराधना और तिर्यञ्च (शृगाली) के उपसर्ग को अडिग भाव से सहन करने के दृष्टान्तरूप अवन्ति सुकुमाल की कथा आराधना कथाकोशों तथा अन्य कथाकोशों में वर्णित है। हरिषेण के कथाकोश में यह कथा २६० श्लोकों मे दी गई है। दानप्रदीप में इसे उपाश्रयदान के महत्त्व में कहा गया है। अवन्तिसुकुमाल आचार्य सुहस्ति के शिष्य माने गये हैं और कहा जाता है कि इन्हीं के समाधिस्थल पर उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर बना है।

इस पर स्वतत्र रचनाओं मे भट्टारक सकलकीर्ति[७] (१५वीं शती) कृत ९ सर्गात्मक १०५० श्लोकों में एक काव्य उपलब्ध है। दूसरी रचना भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य वादिचन्द्र[८] (स० १६४०–१६६०) कृत तथा अन्य अज्ञात[९] कर्तृक सस्कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

पाटन (गुजरात) के तपागच्छ भण्डार के एक कथासंग्रह में अवन्ति-सुकुमालकथा[१०] प्राकृत ११९ गाथाओं मे उपलब्ध है।

जिनदत्तचरित—साधुपरिचर्या या मुनि-आहारदान के प्रभाव से व्यक्ति जीवन-प्रसग में खतरों से बचता हुआ, अपनी कितनी शुद्धि कर सकता है इस

१-६. वही, पृ० ४४३-४४४; हिन्दी में सुकोशलचरित्र प्रकाशित है। गुजराती में अनेक रास आदि उपलब्ध हैं।

७-९. वही, पृ० ४४३; सुकुमालचरित्र पर हिन्दी मे गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

१०. वही, पृ० १७; पाटन भण्डार सूची, भाग १, पृ० ४०५.

तथ्य को बतलाने के लिए जिनदत्त के चरित्र को लेकर कई कथाग्रन्थ संस्कृत-प्राकृत में लिखे गये हैं।[1]

जिनदत्त ने अपने पूर्वभव में माघ पूर्णिमा के दिन एक मुनिराज को परिचर्यापूर्वक आहारदान दिया। उसके प्रभाव से वह अपने इस भव मे द्यूत-व्यसन से धन-सम्पत्ति खोकर भी नाना प्रकार के चमत्कारी एवं साहसिक कार्य कर सका। उसने वेष परिवर्तन किया, समुद्र-यात्रा की, हाथी को वश में किया, राजकन्याओं से विवाह किया और नाना सुख भोगकर अन्त में तपस्याकर स्वर्ग प्राप्त किया।

इस कथानक को लेकर सबसे प्राचीन प्राकृत गद्य में अज्ञातकर्तृक कृति[2] मिलती है जिसकी हस्तलिखित प्रति मणिभद्रयति ने वरनाग के लिए सं० ११८६ में तैयार की थी। इसमें जिनदत्त का पूर्वभव प्रारम्भ मे न देकर अन्त में दिया गया है।

द्वितीय रचना प्राकृत गद्य-पद्य में ७५० ग्रन्थाग्र-प्रमाण है।[3] इसकी रचना पाडिच्छयगच्छ के नेमिचन्द्र के प्रशिष्य एव सर्वदेवसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने की है। ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित नहीं है, तथापि एक प्राचीन प्रति में उसके अणहिलपाटन मे सं० १२४६ मे लिखाये जाने का उल्लेख है अतः ग्रन्थ की रचना इससे पूर्व होना निश्चित है।[4] इसमे वणिक् पुत्रों और सायात्रिकों की यात्रा का रोचक वर्णन है।

इस कथानक सम्बन्धी तृतीय रचना सस्कृत में है।[5] इसमे ९ सर्ग हैं तथा ९३८ पद्य हैं। इसे जिनदत्तकथासमुच्चय भी कहते हैं। सर्गान्त के एक-एक दो-दो वृत्त छन्दों को छोड़कर शेष सारा ग्रन्थ अनुष्टुप् में है। इसकी रचना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३५.
२ सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २७, बम्बई, सं० २००९.
३. वही, दोनों रचनाएँ एक ही ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।
४. विशेष परिचय के लिए, डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४७६, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५०५-५०८.
५. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सं० १९७३; इसका हिन्दी अनुवाद पं० श्रीलाल काव्यतीर्थ, कलकत्ता से प्रकाशित.

गुणभद्राचार्य ने की है। गुणभद्र नाम के ५ आचार्यों का पता लगता है। उनमें से एक उत्तरपुराण के रचयिता गुणभद्र हैं पर उनकी रचना से इसका कोई मेल नहीं है। द्वितीय गुणभद्र चन्देल नरेश परमर्दि के शासन (सन् ११७०-१२००) काल में हुए हैं। ये अच्छे कवि भी थे। इनके द्वारा रचित सस्कृत धन्यकुमार-चरित्र काव्य मिलता है। ये ही विजौलिया पार्श्वनाथ स्तभलेख के लेखक तथा प्रतिष्ठापाठ[1] के लेखक माने जाते हैं। बहुत सम्भव है इन्हीं गुणभद्र ने जिनदत्त-चरित्र की रचना की हो।

चतुर्थ रचना सस्कृत गद्य (ग्रन्थाग्र १६३७) मे है। इसे स० १४७४ में पूर्णिमागच्छ के गुणसागरसूरि के शिष्य गुणसमुद्रसूरि ने बनाया था।

अन्य एक-दो जिनदत्तकथाओं का उल्लेख मिलता है। अपभ्रंश में रइधू कवि ने जिनदत्तचरिउ लिखा है।

नरवर्मकथा—सम्यक्त्व के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए नरवर्म नरेश को लेकर दो-तीन रचनाएँ मिलती हैं।

कथावस्तु—राजगृह के नरेश नरवर्म थे और उनका पुत्र हरिदत्त। एक समय विदेश यात्रा से लौटकर नरेश के मित्र मदनदत्त ने राजा को एक हार दिया और कहा कि उसे एक देवता ने दिया है जोकि पूर्वभव में उसका बड़ा भाई था और एक मुनि की सूचना के अनुसार वह देवता अब आपके पुत्र हरिदत्त के रूप में अवतरित हुआ है। हरिदत्त ने भी उक्त हार को देखते ही जातिस्मरण द्वारा पूर्वभव के समस्त वृत्तान्त सुनाये। उसी समय एक केवली मुनि से उपदेश सुनकर नरवर्म ने सम्यक्त्व व्रत ग्रहण किया। एक समय इन्द्र से उसकी प्रशसा सुन एक देवता ने परीक्षा ली जिसमे उसने बुभुक्षापीड़ित जैन-साधुओं को लड़ते-झगड़ते दिखाया, इससे राजा अपने राज्य में यह देख आत्म-निन्दा और गर्हणा करने लगा। देवता ने इस तरह उसे सच्चा सम्यक्त्वी पाया। नरवर्म बहुत काल तक गृहस्थधर्म पाल पीछे दीक्षा ले सुगति को गया।

इस कथानक पर सर्वप्रथम कृति नरवर्ममहाराजचरित्र विवेकसमुद्रगणि द्वारा विरचित मिलती है जिसमें पाच सर्ग है। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने इसका परिमाण ५४२४ श्लोक-प्रमाण दिया है। इसका दूसरा नाम सम्यक्त्वालकार-

---

१. प्रतिष्ठापाठ पश्चात्कालीन १६वीं सदी के गुणभद्र की रचना है।

काव्य है।[1] यह अवान्तर कथाओं से भरा हुआ है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। सभी सर्गों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसके रचयिता खरतरगच्छीय जिनरत्नसूरि के शिष्य वाचनाचार्य विवेकसमुद्रगणि हैं। इसकी रचना उन्होंने खंभात में सं० १३२५ में दीपावली के दिन की थी। रचना का अनुरोध वाहड़पुत्र बोहित्थ ने किया था। इस कृति का संशोधन प्रत्येकबुद्धचरित के रचयिता जिनरत्नसूरि और लक्ष्मीतिलक उपाध्याय ने किया था। विवेकसमुद्रगणि की अन्य रचनाओं में जिनप्रबोधचतुःसप्ततिका तथा पुण्यसारकथानक (सं० १३३४) मिलते हैं। खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि[2] के अनुसार विवेकसमुद्र की दीक्षा वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सं० १३०४ में, वाचनाचार्य की उपाधि सं० १३२३ में और स्वर्गवास ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया सं० १३७८ में हुआ था।

नरवर्मचरित्र पर दूसरी रचना विनयप्रभ उपाध्याय कृत मिलती है जो सं० १४१२ में रची गई थी।[3] यह एक लघु कृति है। इसका ग्रन्थाग्र ८०० प्रमाण है। विनयप्रभ खरतरगच्छ के जिनकुशलसूरि के शिष्य थे।

तृतीय रचना ग्रन्थाग्र ५०० प्रमाण मुनिसुन्दरसूरिकृत का उल्लेख मिलता है।[4]

चतुर्थ रचना खरतरगच्छीय पुण्यतिलक के शिष्य विद्याकीर्ति ने सं० १६६९ में रची है।[5]

गुणवर्मचरित—अभिषेक आदि सत्रह प्रकार की अर्हन्तपूजा के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए गुणवर्मा और उसके १७ पुत्रों की कथा की रचना हुई है।[6]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४२७, जिनरत्नकोश में इसका अपर नाम नरवर्ममहाराजचरित न देने की भूल हुई है; इसकी प्रति बृहत् भण्डार, जैसलमेर (प्रति सं० २७४) में है।

२. पृ० ४९-६५.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २०४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९

४. वही, पृ० २०५.

५. अप्रकाशित, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २८.

६. जिनरत्नकोश, पृ० १०५; प्रकाशित—अहमदाबाद, १९०१.

कथावस्तु—हस्तिनापुर में गुणवर्मा राजपुत्र ने राज्यपद पाने के बाद क्रमशः रत्नावली, कनकावली, रत्नमाला और कनकमाला राजकुमारियों से विवाह किया। द्वितीय राजकुमारी के विवाह प्रसंग में पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में भक्तिभाव से पूजा करते समय उसे जाति-स्मरण हुआ कि पूर्वभव में वह हस्तिनापुर में धनदत्त नामक सेठ था। उसके ४ वधुओं से १७ प्रकार की पूजा से १७ पुत्र हुए थे। जिनपूजा के प्रभाव से वह देव हुआ और इस जन्म में गुणवर्मा नरेश। इस जन्म में भी उसके १७ पुत्र हुए। इसमें १७ प्रकार की पूजा के नाम दिये गये हैं।[1] प्रत्येक पूजा के माहात्म्य के लिए १७ कथाएँ दी गई हैं।

यह कथाग्रन्थ ५ सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थाग्र १९४८ श्लोक प्रमाण है। इसमें संस्कृत के विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके प्रणेता अचलगच्छेश माणिक्यसुन्दरसूरि हैं जिन्होंने इसे सं० १४८४ में सत्यपुर (साचौर) के वर्धमान जिनभवन में उपाध्याय धर्मनन्दन के विशिष्ट सान्निध्य से समाप्त किया था। इनकी अन्य कृतियों में श्रीधरचरितकाव्य, शुकराजकथा, धर्मदत्तकथानक, महाबलमलयसुन्दरीकथा, चतुःपूर्वीचम्पू, पृथ्वीचन्द्रचरित्र (गद्य) आदि उपलब्ध होते हैं।

णरविक्कमचरिय—इसमें नरसिंह नृप के पुत्र राजकुमार नरविक्रम, उसकी पत्नी शीलवती और उन दोनों के दो पुत्रों के विपत्तिमय जीवन का वर्णन है जो एक अप्रिय घटना के कारण राज्य छोड़कर चले गये थे और अनेक साहसिक घटनाओं के बाद पुनः मिल गये थे। यह कथा पूर्वकर्म फल-परीक्षा के उद्देश्य से कही गई है।[2]

इस कथा को गुणचन्द्रसूरि ने महावीरचरिय में भी विस्तार से दिया है जिसे संस्कृत छाया के साथ पृथक् रूप में प्रकाशित किया गया है। इस कथा का महत्त्व इसमें है कि यह अनेक जैन और अजैन लेखकों द्वारा गुजराती में वर्णित लोककथा 'चन्दनमलयगिरि' का आधार सिद्ध हुई है।[3]

---

१. सर्ग २. ४२-४५.

२. नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला (२०), सं० २००८.

३. महावीर विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में प्रकाशित अंग्रेजी लेख 'Jain and Non-Jain Versions of the Popular Tale of Chandana-Malayagiri from Prakrit and other Early Literary Sources' by Ramesh N Jani

रयणचूडरायचरिय—इसे रत्नचूडकथा या तिलकसुन्दरी रत्नचूडकथानक भी कहते हैं।[1] यह एक लोककथा है जिसका सम्बन्ध देवपूजादिफल-प्रतिपादन के साथ जोड़ा गया है। कथा तीन भागों में विभक्त है: १. रत्नचूड का पूर्वभव, २. जन्म, हाथी को वश में करने के लिए जाना एव तिलकसुन्दरी के साथ विवाह और ३. रत्नचूड का सपरिवार मेरुगमन और देशव्रत स्वीकार।

कथावस्तु—पूर्वजन्म में कचनपुर के बकुल माली ने ऋषभदेव भगवान् को पुष्प चढाने के फलस्वरूप गजपुर के कमलसेन नृप के पुत्र रत्नचूड के रूप में जन्म ग्रहण किया। युवा होने पर एक मदोन्मत्त हाथी का दमन किया किन्तु हाथी के रूपधारी विद्याधर ने उसका अपहरण कर जगल में डाल दिया। इसके बाद वह नाना देशों मे घूमता हुआ अनेक अनुभव प्राप्त करता है, अनेकों राजकन्याओं से विवाह करता है और अनेकों ऋद्धि-विद्याएँ भी सिद्ध करता है। तत्पश्चात् पत्नियों के साथ राजधानी लौटकर बहुत काल तक राज्यवैभव भोगता है। फिर धार्मिक जीवन बिताकर स्वर्ग-प्राप्ति करता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि (पूर्व नाम देवेन्द्रगणि) है जो बृहद्गच्छ के उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और आम्रदेव के शिष्य थे। इस रचना का समय तो मालूम नहीं पर इन्होंने अपनी दूसरी कृति महावीरचरिय को स० ११३९ में बनाया था। इनकी अन्य कृतियों में उत्तराध्ययन-टीका (स० ११२९) तथा आख्यानमणिकोश भी मिलते हैं। इन्होंने रत्नचूडकथा की रचना डडिल पदनिवेश में प्रारम्भ की थी और चड्डावलिपुरी में समाप्त की थी। इसकी प्राचीन प्रति स० १२०८ की मिली है। इसकी ताड़पत्रीय प्रति चक्रेश्वर और परमानन्दसूरि के अनुरोध से प्रद्युम्नसूरि के प्रशिष्य यशोदेव ने सं० १२२१ में तैयार की थी।

रत्नचूडकथा—यह सस्कृत पद्यों मे वर्णित कथा है।

इसमें ताम्रलिप्ती नगरी के सेठ रत्नाकर के पुत्र रत्नचूड की विदेश में वाणिज्य यात्रा की कथा दी गई है।[2] कथा के बीच मे अद्‌भुत ढग से स्वप्न और उनका

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३६०, ३२६, ३२७; पं० मणिविजय ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९४९.

२. यशोविजय ग्रन्थमाला, सं० ४३, भावनगर, जिनरत्नकोश, पृ० ३२७; इसका जर्मन अनुवाद जे० हर्टल ने किया है जो १९२२ में लीपजिग से प्रकाशित हुआ है।

फल[1], यात्रार्थ जाते हुए पुत्र रत्नचूड को पिता द्वारा शिक्षा जिसमे व्यावहारिक बुद्धि और अन्धविश्वासों का विचित्र समिश्रण है[2], यात्रार्थ जाते हुए शुभ-शकुनों का उल्लेख[3], भाग्यशाली पुरुष के शरीर में ३२ तिलादि चिह्नों की गणना[4] आदि का समावेश किया गया है। यात्रा प्रसग में रत्नचूड धूर्तों की नगरी अनीतिपुर नगर में पहुँचता है जहाँ अन्यायी राजा राज्य करता है जिसका अविचार मन्त्री तथा अशाति पुरोहित था। धूर्तों की दुनिया मे रत्नचूड को अनेकों चमत्कारी घटनाओं का सामना करना पड़ा।

कहानी बड़ी ही चतुरतापूर्ण एवं मनोरंजक है। कहानी के बीच में रोहक नामक बालक एवं ब्राह्मण सोमशर्मा के पिता की कहानी आविष्कृत की गई है। रोहक पालि महाउम्मग्ग जातक में वर्णित महासेध नामक पुरुष के समान ही अनेकों असभव कार्यों को अपने बुद्धिवल से कर लेता है।[5] सोमशर्मा ब्राह्मण का पिता हवाई किले बनाता था। कथानकों मे मौके-मौके पर उपदेशात्मक पद रखे गये हैं जो बड़े रोचक हैं।

रत्नचूड अपने बुद्धिकौशल से धन कमाकर लौटता है। उसे मुनि धर्मघोष पूर्वजन्म में दिये गये दान का प्रभाव बताते हैं। फिर अनीतिपुर (धूर्तनगरी) की प्रत्येक घटना को रूपक के ढंग से इस ससार में घटाते हुए कथा की समाप्ति होती है।[6]

यह कथा देवेन्द्रसूरिकृत प्राकृत रत्नचूडकथा[7] से नामसाम्य होने पर भी सर्वथा भिन्न है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता तपागच्छीय रत्नसिंह के शिष्य ज्ञान-सागर हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति विमलनाथचरित के प्रसग मे

---

१. श्लोक सं० २२-५७.
२. श्लोक स० ९५-१२६.
३. श्लोक सं० १११-११४.
४. श्लोक सं० ४८५-४२१.
५. श्लोक सं० २१८-३०९.
६. श्लोक सं० ५३०-५३८.
७ इसे तिलकसुन्दरी-रत्नचूडकथानक भी कहते हैं।

दिया है।[1] विमलनाथचरित के दानधर्माधिकार में यही कथा संस्कृत गद्य में दी गई है।

रत्नचूडकथा पर जिनवल्लभसूरि, नेमप्रभ और राजवर्धन ने भी ग्रन्थ रचे हैं।[2]

रत्नशेखरकथा—राजा रत्नशेखर और रानी रत्नवती की लौकिक कथा को जैन कथाकारों ने पर्वतिथि आराधन के कल्पनाबन्ध में परिवर्तित कर प्रकट किया है।

कथावस्तु—रत्नपुर का राजा रत्नशेखर किन्नर युगल से रत्नवती की प्रशंसा सुन मुग्ध होकर मरना चाहता है। पर उसका मन्त्री आश्वासन देकर रत्नवती का पता लगाने जंगलों में भटकता है। एक यक्षकन्या के निर्देश से वह अग्निकुण्ड में गिरकर पाताललोक में पहुँचता है और वहाँ एक यक्ष से उस कन्या (जो मानुषी थी) की उत्पत्ति जान उससे विवाह कर लेता है (कन्या की उत्पत्ति में उसके मनुष्यभव के पिता माता की कथा दी गई है जो पर्वतिथि भंग करने से यक्ष योनि में उत्पन्न हुए थे)। उस यक्ष ने ही उसे रत्नवती का पता बतलाया जो कि सिंहलनरेश की पुत्री थी। उस यक्ष ने उसे विद्याबल से सिंहलद्वीप भी भेज दिया। वहाँ वह योगिनी के वेष में रत्नवती से मिला। रत्नवती ने बतलाया कि वह उस पुरुष से विवाह करेगी जो पूर्वजन्म में उसका मृगरूप में पति था। योगिनी ने भविष्य का विचारकर बतला दिया कि उसका वही पति उसे शीघ्र ही कामदेव के मन्दिर में द्यूतक्रीड़ा करता हुआ मिलेगा। इस प्रकार रत्नवती को समझाकर वह उसी यक्षविद्या के बल से अपने राजा के पास रत्नपुर पहुँचा जो सात माह की अवधि समाप्त होने पर चिता में जल मरने को तैयार था। उसे साथ लाकर कामदेव के मन्दिर में सिंहल राजकन्या से भेंट करा दी। दोनों में विवाह हो गया। दोनों अपने नगर लौट आये। एक बार एक शुक और शुकी आकर दोनों के हाथों में बैठ गये और पूछने पर विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप करते हुए वे दोनों मूर्च्छित होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। राजा ने एक मुनि से उक्त घटना पूछने पर जाना कि वे उसके पूर्वज थे और पर्वतिथि का भंग करने से पक्षियोनि में उत्पन्न हुए थे। अब वे पाप से मुक्त हो धरणेन्द्र पद्मावती हुए हैं। यह जान राजा, रानी, मन्त्री आदि ने पर्वतिथि पालन का नियम लिया और अन्त में व्रत के प्रभाव से स्वर्ग गये।

---

१. पृ० १०२-१०३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२६-३२७.

इस कथा में यदि पर्वतिथि-पालन विधि को न जोड़े तो यह बिल्कुल लौकिक कथा है और सुप्रसिद्ध हिन्दी काव्य जायसीकृत पद्मावत की कथा का मूलाधार सिद्ध होती है। डा० हीरालाल जैन ने इसका विश्लेषण कर इस बात को भली-भाति सिद्ध कर दिया है।[1]

उक्त कथानक को लेकर संस्कृत-प्राकृत में जैन कवियों ने ३-४ रचनाएँ लिखी हैं। सबसे प्राचीन तपागच्छीय जयतिलकसूरि के शिष्य दयावर्धनगणि की कृति है जिसे 'रत्नशेखररत्नवतीकथा'[2] या 'पर्वविचार' या 'पर्वतिथिविचार' कहा गया है। इसमें ३८० श्लोक हैं और रचना सं० १४६३ है। दयावर्धन की अन्यकृति हंसकथा भी है।

एतद्विषयक दूसरी रचना रत्नशेखरसूरि की है।[3] ये रत्नशेखर कौन हैं, कहना कठिन है। एक रत्नशेखर १५वीं शती के पूर्वार्ध में और दूसरे १६वीं शती के प्रारंभ में हुए हैं।

तीसरी रचना प्राकृत में 'रयणसेहरीकहा' है जिसका ग्रन्थाग्र ८००० श्लोक-प्रमाण है।[4] इसकी रचना तपागच्छीय जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणि ने की है। इन्होंने यह कथा चित्रकूट में रची थी। इस कथा का रचना संवत् ज्ञात नहीं पर जिनहर्षगणि की अन्य कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें वस्तुपालचरित्र की रचना सं० १४९७ में और विंशतिस्थानकसंग्रह सं० १५०२ में लिखी गई है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति वि० सं० १५१२ की है अतः इसकी रचना उससे पूर्व की होनी चाहिये।

कुछ अज्ञातकर्तृक रत्नशेखरकथाएँ भी हैं, उनमें से एक की प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५५३ की मिली है।

---

१ मध्यभारती पत्रिका, संख्या २, डा० जैन का अंग्रेजी लेख, 'सोर्सेज आफ पद्मावत'.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२८; लब्धिविजयसूरीश्वर ग्रन्थमाला, भावनगर, सं० २०१४.

३. वही.

४. वही, पृ० ३२४, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला (सं० १०), वाराणसी, १९१८; जैन आत्मानन्द सभा (स० ६३), भावनगर, सं० १९७४.

अगडदत्तपुराण (चरित)—इसकी कथा अति प्राचीन होने से पुराण नाम से कही गई है।[1] इसमें अगडदत्त का कामाख्यान एवं चातुरी वर्णित है। इसके कर्ता अज्ञात हैं। अगडदत्त की कथा वसुदेवहिण्डी (५-६ठी शती), उत्तराध्ययन की वादिवेताल शान्तिसूरिकृत शिष्यहिता प्राकृत टीका (११वीं शती) तथा नेमिचन्द्रसूरि (पूर्वनाम देवेन्द्रगणि) कृत सुखबोधा टीका (सं० ११३०) में आती है। वसुदेवहिंडी के अनुसार अगडदत्त उज्जैनी का एक सारथीपुत्र था। पिता की मृत्यु हो जाने पर पिता के परम मित्र कौशाम्बी के एक आचार्य से वह शस्त्रविद्या सीखता है, वहाँ उसका सामदत्ता सुन्दरी से प्रेम हो जाता है। कुछ समय बाद वह परिव्राजक रूपधारी चोर का वध करता है। उसके भूमिगृह का पता लगा उसकी बहिन से मिलता है। वहाँ उसके बदला लेने के कपटप्रबंध से वह बच जाता है। सामदत्ता को लेकर उज्जैनी लौटते समय धनजय नाम के चोर से उसका सामना होता है जिसका वह वध कर देता है। उज्जैनी पहुँचने पर सामदत्ता के साथ उद्यान यात्रा में सामदत्ता को सर्प डस लेता है। विद्याधर युगल के स्पर्श से वह चेतना प्राप्त करती है। देवकुल में पहुँचकर सामदत्ता अगडदत्त के वध का प्रयत्न करती है। स्त्री-निन्दा और ससार-वैराग्य के रूप मे कहानी का अन्त होता है।[2]

नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन-वृत्ति में इसे प्रतिबुद्धजीवी के दृष्टान्तरूप में कहा है। यह कथानक पूर्वोक्त कथानक से कई बातों में भिन्न है। कई घटनाओं और पात्रों के नामों में अन्तर है। नेमिचन्द्रसूरि का स्रोत सम्भवतः वसुदेवहिंडी के स्रोत से भिन्न रहा हो। जर्मन विद्वान् डाक्टर आल्सडोर्फ ने इस कथानक का विश्लेषण कर इसे हजारों वर्ष प्राचीन कथानकों की श्रेणी में रखा है।[3] सभवतः अति प्राचीनता के कारण ही उक्त रचना को अगडदत्तपुराण कहा गया है।

उत्तमकुमारचरित—दान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए उक्त लौकिक कथा का उपयोग किया गया है। उत्तमकुमार एक राजकुमार है जो कि नाना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १; विनयभक्ति सुन्दरचरण ग्रन्थमाला (सं० ६), जामनगर, सं० १९९७; यह रचना सस्कृत के ३३४ श्लोकों में समाप्त है, इसे द्रव्यभाव-निद्रात्याग के दृष्टान्त-रूप में कहा गया है।

२ वसुदेवहिंडी, पृ० ३६-४२.

३. ए न्यू वर्सन आफ अगडदत्त स्टोरी, न्यू इण्डियन एंटीक्वेरी, भाग १, सन् १९३८-३९.

प्रकार के साहस के कार्य करता है और दुःखों से पार होता हुआ पग-पग में ऋद्धि-सिद्धि पाता है। धर्मकथा की दृष्टि से बतलाया गया है कि जीवन में उसे जो बीच-बीच मे दुःख आये वे पूर्वभव के दुष्कर्म के कारण आये और जो सफलताएँ मिलीं उसका कारण मुनियों को वस्त्रदान देना था।

इस कथा को लेकर कई लेखकों की रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत श्लोकों में प्रथम कृति तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनकीर्तिकृत[1] है और दूसरी सोमसुन्दर के प्रशिष्य एव रत्नशेखर के शिष्य सोममंडनगणिकृत है।[2] पट्टावली के अनुसार सोमसुन्दर को वि० स० १४५७ में सूरिपद मिला था इससे ये रचनाएँ १५वीं सदी के अन्तिम दशकों की होनी चाहिए। इसी विषय की एक अन्य कृति शुभशीलगणिकृत[3] पाई जाती है। चतुर्थ रचना १६वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय भक्तिलाभ के शिष्य चारुचन्द्रकृत है जिसमें ६८६ श्लोक सरल भाषा मे हैं। इसमें ग्रन्थान्तरों से उद्धृत बीच-बीच में प्राकृत पद्य भी आ गये हैं। अनेक अवान्तर कथाएँ भी सक्षेप में दी गई हैं।[4]

इसी कथा का अज्ञातकर्तृक सस्कृत गद्य में रूपान्तर भी मिलता है। जर्मन विद्वान् वेबर ने सन् १८८४ में इसका सम्पादन और जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया है।[5]

१९वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विनीतसुन्दर के शिष्य सुमतिवर्धन ने भी इस कथा पर एक पद्यात्मक रचना लिखी है।[6]

भीमसेननृपकथा—पंचपाडवों से अतिरिक्त जैन कथानकों में कई भीमसेन के चरित्र वर्णित हैं। धनेश्वरसूरिकृत शत्रुञ्जयमाहात्म्य मे भी एक भीमसेनचरित्र आया है और यशोदेवकृत धर्मोपदेशप्रकरण (वि० स० १३०५) में एक अन्य भीमसेन नृप का चरित्र आया है। सस्कृत में स्वतंत्र रचना के रूप में अज्ञातकर्तृक तीन कृतियों का उल्लेख मिलता है।[7] बीसवीं सदी मे उक्त दोनों

१–३. वही, पृ० ४१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ४१; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२; वर्धमान सत्यनीति हर्षसूरि जैन ग्रन्थमाला, पुष्प १५.

५. वही, पृ० ४२.

६. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २६.

७. जिनरत्नकोश, पृ० २९७.

चरितों को लेकर तपागच्छीय बुद्धिसागर के शिष्य अजितसागर ने दो रचनाएँ की हैं।

पहली रचना यशोदेव के उक्त कथाकोश रूपी ग्रन्थ से कथानक लेकर की गई १३ सर्गों की बृहती रचना है।[1] इसमें २४२५ पद्य हैं। इसमें सभी रसों का प्रतिपादन हुआ है पर करुण रस की प्रधानता है। भीमसेन अन्तरायकर्म की प्रबलता से अनेक कष्ट सहता है और मुनिदान के प्रभाव से तथा वर्धमानतप के प्रभाव से अपने राज्य को पा लेता है। फिर तपस्या कर मोक्षपद पाता है।

द्वितीय रचना में २६८ पद्य हैं जो शत्रुञ्जयमाहात्म्य के अनुसार हैं। इस कथा का निर्देश हमने उक्त माहात्म्य के प्रसंग में किया है।

१७वीं शती का यशोविजयकृत एक आर्षभीमचरित्र भी उपलब्ध हुआ है।

चम्पकश्रेष्ठिकथानक—यह एक संस्कृत गद्य मे लिखी गई कथा[2] है जिसमें अन्य कथाकोषों तथा प्रबंधचिन्तामणि समागत चम्पश्रेष्ठि की कथा दी गई है। साथ मे, उसके भीतर तीन और सुन्दर उपाख्यान दिये गये हैं जो भाग्य और पुरुषार्थ के महत्त्व को सूचित करते हैं।

संक्षेप में कथा इस प्रकार है: चम्पानगरी के एक सेठ को कोई सन्तान न थी। गोत्रदेवी ने बतलाया कि उसका उत्तराधिकारी दासी के गर्भ से उत्पन्न बालक होगा। इस पर उस भवितव्यता को बदलने का वह प्रयत्न करने लगा। उसने दासी को खोजकर उसे गर्भिणी हालत में मार डाला पर भाग्यवश उसका बच्चा जीवित निकला और दूसरों द्वारा पाला गया। बड़ा होने पर सेठ को पता लगता है और वह उसे मार डालने के लिए एक गुप्त पत्र लिखता है जो कि उसकी पुत्री तिलोत्तमा द्वारा विवाह-पत्र के रूप में परिणत हो जाता है। इस तरह चम्पक उस सेठ का जामाता बन जाता है। फिर भी सेठ उसे मार डालना चाहता है पर सेठ ही मारा जाता है और चम्पक उसका उत्तराधिकारी बन जाता है।

---

१. अजितसागरसूरि ग्रन्थमाला (सं० १४-१५), प्रान्तिज (गुजरात).

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२१; इसका अंग्रेजी और जर्मन अनुवाद हर्टेल ने सन् १९२२ में लीपजिग से निकाला है। इसका एक संस्करण विद्याविजय यंत्रालय से सन् १९१५ में निकला है।

इस कथा में तीन कहानियाँ शामिल की गई हैं। प्रथम कथा रावण की है जो व्यर्थ में भाग्यचक्र को चुनौती देता है। दूसरी कथा में पुरुषार्थ द्वारा विधि-लिखित बात भी बदली गई है और तीसरी कथा एक वणिक की है जो अब तक लोगों को ठगता रहा है पर अन्त में एक वेश्या द्वारा ठगा जाता है। यह अन्तिम कथा बड़ी हास्यपूर्ण है।

यह एक ऐसी कहानी है जो पूर्व एवं पश्चिम दोनों देशों मे प्रसिद्ध है, जिसे ब्राह्मण एव बौद्ध साहित्य में भी देखते हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता तपागच्छीय सोमसुन्दरसूरि के शिष्य जिनकीर्ति हैं। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। ग्रन्थकार की अन्य कृतियाँ दानकल्पद्रुम अपरनाम धन्यशालिचरित्र (वि० सं० १४९७), श्रीपाल-गोपालकथा, पचजिनस्तव, नमस्कारस्तव (वि० स० १४९४), श्राद्धगुणसंग्रह (वि० स० १४९८) हैं।

चम्पकश्रेष्ठी की कथा पर तपागच्छीय जयविमलगणि के शिष्य प्रीतिविमल की रचना[1] (स० १६५६) तथा जयसोम की रचना[2] भी उपलब्ध होती है।

अघटकुमारकथा—यह चम्पकश्रेष्ठी के समान ही लौकिक कथा है जिसमें पत्रविनिमय द्वारा कथानायक अघटकुमार के मृत्यु से बचने की घटना आई है।

इस पर दो अज्ञातकर्तृक पद्यात्मक कृतियाँ मिलती हैं।[3] जिनकीर्तिकृत अघटनृपकुमारकथा सस्कृत गद्य मे है।[4] इसका जर्मन अनुवाद डा० कुमारी चार्लोस क्राउस ने सन् १९२२ में किया है।[5] उपर्युक्त रचना का काल नहीं दिया गया है। यह अनुमानतः १५-१६वीं शती की रचना है।

मूलदेवनृपकथा—मूलदेव नृप की लोकसाहित्य जगत् की एक कथा को सुपात्रदान के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूलदेव पाटलिपुत्र का एक अति रूपवान् राजकुमार था। उसे जुआ खेलने का व्यसन था। उसके पिता ने उसे निकाल दिया। उज्जैनी पहुँचकर वह गुलिका विद्या से बौने का रूप धारण कर मनोहर गीत गाते हुए रहने लगा। उस पर देवदत्ता नामक वेश्या आसक्त हो गई। वेश्या की मा ने उसे कपट-प्रबंध से वहाँ से भागने को बाध्य किया। भूखे-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२१, जमनाभाई भगुभाई, अहमदाबाद, १९१६.

२. वही, पृ० १२१.

३–४. वही, पृ० १.

प्यासे भटकते हुए उसे भिक्षा में कुछ कुल्माष मिले जिन्हें उसने मुनि को आहार में दिये। इससे प्रसन्न हो एक देवी ने वर मांगने को कहा। फलस्वरूप उसने राज्य और देवदत्ता वेश्या को वर में मांगा। सत्पात्र दान से उसे ऐश्वर्य एवं अनेक कौतुकपूर्ण कार्य करने को मिले।

प्रस्तुत कृति ३२२ संस्कृत श्लोकों में समाप्त हुई है। रचयिता का नाम अज्ञात है।[1]

नाभाकनृपकथा—देवद्रव्य के सदुपयोग पर नाभाक नृप की कथा कही गई है। इसमें बताया गया है कि नाभाक किस तरह देवद्रव्य के सदुपयोग से सद्गति पाता है और उसी का दुरुपयोग करने से उसका भाई सिंह और एक नाग सेठ भवान्तरों में कैसे दुःख पाते हैं। कथाप्रसंग में शत्रुंजयतीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है। यह ग्रन्थ संस्कृत श्लोकों में है तथा बीच-बीच में प्राकृत की गाथाएँ भी आ गई हैं जिनका 'उक्तं च' द्वारा निर्देश किया गया है। कथा बड़ी रोचक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना अचलगच्छीय मेरुतुंगसूरि ने वि० सं० १४६४ में की है।[2] ये महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—जैनमेघदूतसटीक, कातंत्रव्याकरणवृत्ति, षड्दर्शननिर्णय आदि।

नाभाकनृपकथा पर कमलराज के शिष्य रत्नलाभकृत रचना तथा एक अज्ञातकर्तृक नाभाकनृपकथा भी मिलती है।[3]

मृगांकचरित—इसे मृगांककुमारकथा भी कहते हैं। यह एक लोककथा है जिसे पात्रदान में सद्-असद्भाव के फल को द्योतन करने से सम्बद्ध किया गया है।

कथावस्तु—मृगांक और पद्मावती साथ-साथ पढ़ते हैं। पद्मावती के पिता ने मृगांक को अपनी पुत्री के लिए देने को ८० कौड़ियाँ दीं पर मृगांक ने उनसे कुम्हड़ापाक लेकर खा लिया। पद्मावती को जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत क्रुद्ध हुई और मौका आने पर सीख देने की धमकी दी।

---

१. विनयभक्ति सुन्दरचरण ग्रन्थमाला (सं० ४), जामनगर, सं० १९९५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २१०; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.

३. वही, पृ० २१०.

युवावस्था में भाग्यवश दोनों का विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद मृगाक को पुरानी बात याद आई और उसने बदला लेना चाहा। पहले तो वह उसे छोड़ परदेश जाना चाहता था पर वह भी साथ हो ली। जलमार्ग से जाते हुए एक द्वीप में रात्रि को वह पद्मावती को सोता हुआ छोड़ देता है। कष्टों को पार करती हुई पद्मावती एक विद्याधर से अदृश्य होने, रूप बदलने और दूसरे की विद्या नष्ट करने की विद्या पा जाती है। इन्हीं विद्याओं के सहारे वह पुरुषवेश धारणकर सुसुमारपुर में रहने लगती है और वहाँ राजपुत्रों को पढ़ा, चुगी वसूल करनेवाले आफीसर का काम तथा अनेक अद्भुत काम करती है। मृगाक भी भाग्य का मारा वहाँ आया। चुंगी (शुल्क) की चोरी के बहाने से पद्मावती ने उसे खूब तग किया और बदला लिया पर सब प्रेमसिक्त भाव से। अन्त में मृगाक से दीनता प्रकट कराके उसने अपना असली रूप प्रकट किया।

वह पीछे राजा का दामाद हो राज्यपद भी पा सका। एक बार एक मुनि से विपत्ति और सम्पत्ति के इस परिवर्तन को उसने पूछा और उन्होंने पूर्वजन्म में पात्रदान देने पर भी पीछे कुभाव और फिर सुभाव लाना ही कारण बतलाया।

इस कथा पर मृगाककुमारकथा नामक अज्ञातकर्तृक रचना[१] तथा २८३ सस्कृत पद्यों में लिखा मृगाकचरित्र[२] मिलता है। इस द्वितीय कृति के लेखक पण्डित ऋद्धिचन्द्र हैं जो अकबर और जहाँगीर के दरबार में ख्यातिप्राप्त उपाध्याय भानुचन्द्र के सुयोग्य शिष्य थे। इसे विद्वान् उदयचन्द्र ने शुद्ध किया था।[३]

धर्मदत्तकथानक या चन्द्रधवल-धर्मदत्तकथा—यह एक लौकिक कथा है जिसे धर्मकथा के रूप में परिवर्तित कर अतिथिसविभाग व्रत के माहात्म्य को दिखाने के लिए उपयोग किया गया है।

कथावस्तु—इस कथा में दो नायक हैं : चन्द्रधवल नृप और धर्मदत्त श्रेष्ठी। धर्मदत्त को एक योगी की कृपा से सुवर्णपुरुष प्राप्त होने वाला था कि बीच में चन्द्रधवल ने उसे छिपा दिया। पीछे उसे भी एक बड़ा हिस्सा दिया गया। दोनों ने एक मुनि से पूछा कि इसका कारण क्या है तो मुनि ने पूर्वजन्म की बात

१-२. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३; सूरत से १९१७ में प्रकाशित; जैन आत्मवीर सभा (सं० ५), भावनगर, स० १९७३; हिन्दी अनुवाद–यशोधर्ममन्दिर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित.

३. प्रशस्ति, पद्य २८४–२८८.

कही। उसमें धर्मदत्त के जीव ने पूर्वभव में साधुओं को १६ मोदक दिये थे इससे उसे १६ करोड़ का सुवर्ण मिला और चन्द्रधवल ने अगणित मोदक दिये थे इससे उसे अगणित सोना और धनराशि मिली।

उक्त कथानक को लेकर कई रचनाएँ मिलती हैं।[1] सर्वप्रथम अंचलगच्छीय मेरुतुंग के शिष्य माणिक्यसुन्दरकृत है जिसका समय वि० सं० १४८४ है। इनकी अन्य कृतियों मे शुकराजकथा आदि हैं। प्रस्तुत कथा प्रचलित सस्कृत गद्य में लिखी गई है। बीच मे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और देशी भाषा के सुभाषित है।

दूसरी रचना विनयकुशलगणिकृत है।[2] इसका रचना सवत् ज्ञात नहीं है। इस विषय की अन्य कृतियाँ अज्ञातकर्तृक हैं। उनमें एक प्राचीन कृति का सवत् १५२१ दिया गया है।[3]

रत्नसारमन्त्रिकथा—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में परिग्रह-परिमाण के विषय में रत्नसार की कथा कही गई है। इसी कथा को लेकर अज्ञातकर्तृक रत्नसारमन्त्रिदासीकथा[4] मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत गद्य में तपागच्छीय आचार्य यतीन्द्रसूरि (२०वीं शता०) ने रत्नसारचरित्र[5] की रचना की है।

रत्नपालकथा—रत्नपाल के जन्मकाल मे ही उसके माता-पिता निर्धन एवं कर्जदार हो जाते है और साहूकार उसे २७ दिन की आयु में ऋण अदायगी तक के लिए ले जाता है। युवा होने पर किस तरह रत्नपाल विदेश यात्रा करता है और इधर उसके माता-पिता लकड़ी बेचकर दुःख उठाते हैं, रत्नपाल किस तरह उन सबको कर्ज से मुक्ति दिला सुख-सम्पत्ति पाता है आदि चरित्र दिया गया है।

इसमें जीव कैसे एक ही जन्म में कर्म की विचित्रता का अनुभव करता है यह दिखलाने की चेष्टा की गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११८, १८९; हसविजय फ्री लायब्रेरी, अहमदाबाद, सं० १९८१.

२-३. वही, पृ० १८९.

४. वही, पृ० ३२८.

५ यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४१.

इस कथानक को लेकर अनेकों रचनाएँ बनाई गई हैं। सर्वप्रथम रत्नशेखर-सूरिकृत रचना[1] मिलती है। दूसरी तपागच्छ के भानुचन्द्रगणिकृत है। इसकी प्राचीन प्रति स० १६६२ की मिली है।[2] तीसरी तपागच्छीय मुनिसुन्दर के शिष्य सोममण्डनगणिकृत है।[3] बीसवीं सदी में तेरापन्थी मुनि नथमल जी (टमकोर) ने संस्कृत में रत्नपालचरित्र की तथा चन्दनमुनि ने प्राकृत गद्य में सस्कृत छाया तथा हिन्दी अनुवाद के साथ 'रयणवालकहा' की रचना सं० २००२ में की है।[4]

चन्द्रराजचरित—इस कौतुक एव चमत्कारपूर्ण चरित्र मे चन्द्रराज की कथा दी गई है जो अपनी सौतेली माता के कपट-प्रबंध से नाना प्रकार के कष्ट उठाता है और यहा तक कि कुक्कट बना दिया जाता है। उन कष्टों से उसकी मुक्ति शत्रुजय तीर्थ के सूर्यकुण्ड में स्नान करने से होती है। पीछे वह राज्य-सुख भोग मुनिसुव्रत स्वामी के समोसरण में दीक्षा ले लेता है। यह चरित अति-मानवीय तथा नट आदि के चमत्कारों से भरा हुआ है।

उक्त कथानक को लेकर सस्कृत पद्य-गद्यमय तथा हिन्दी और गुजराती मे रचनाएँ मिलती हैं।

सर्वप्रथम गुणरत्नसूरिविरचित चन्द्रराजचरित का उल्लेख मिलता है।[5] उसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

बीसवीं सदी में तपागच्छ के विजयभूपेन्द्रसूरि ने सस्कृत गद्य में स० १९९२ में एक विशाल रचना की है जिसमें २८ अध्याय हैं।[6] बीच बीच में संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। यह कृति पण्डित काशीनाथ जैन द्वारा सकलित हिन्दी चरित्र के आधार से लिखी गई है।

पाल-गोपालकथा—इस कथा मे उक्त नाम के दो भ्राताओं के परिभ्रमण व नाना प्रकार के साहसों व प्रलोभनों को पारकर अन्त में धार्मिक जीवन व्यतीत करने का रोचक वृत्तान्त दिया गया है।

१-२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२७.

३. वही, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९६९

४ भागवतप्रसाद रणछोड़दास, अहमदाबाद, १९७१; इसकी संस्कृत छाया मुनि गुलाबचन्द्र निर्मोही ने तथा हिन्दी अनुवाद मुनि दुलहराज ने किया है।

५ जिनरत्नकोश, पृ० १२१.

६. भूपेन्द्रसूरि जैन साहित्य प्रकाशक समिति, आहोर (मारवाड), सं० १९९८.

इस कथा पर एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[1] एक ज्ञातकर्तृक रचना के रचयिता तपागच्छ के सोमसुन्दरसूरि के शिष्य जिनकीर्ति हैं।[2] इसका जर्मन भाषा मे अनुवाद हुआ है। इस कथा को श्रीपाल गोपालकथा[3] नाम से भी कहा गया है।

कृतपुण्यचरित—सुपात्र दान को लेकर कृतकर्मनृपतिकथा[4] तथा कृतपुण्य सेठ या कयवन्ना सेठ की कथा कही गई है। कृतपुण्य की कथा कथाकोषप्रकरण (जिनेश्वरसूरि) तथा धर्मोपदेशमालाविवरण (जयसिंहसूरि) में आई है। इस पर स्वतंत्र रचनाएँ भी मिलती हैं।

पहली रचना जिनपतिसूरि के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने जिनपति के पट्टधर जिनेश्वर के शासनकाल मे स० १३०५ मे की थी।[5]

द्वितीय रचना कृतपुण्यकथा अपरनाम कयवन्नाकथा अज्ञातकर्तृक का उल्लेख मिलता है।

तृतीय रचना बीसवीं सदी मे विजयराजेन्द्रसूरि ने पचतंत्र की शैली मे गद्यात्मक रूप मे लिखी है। बीच बीच में कहानियों को जोड़ने के लिए श्लोक उद्धृत हैं। इसकी रचना स० १९८५ में हुई है।[6]

पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा—भावात्मक व कल्पित पापबुद्धि राजा और धर्मबुद्धि मंत्री के माध्यम से पाप और धर्म के महत्त्व को समझाने के लिए उक्त कथा की कल्पना की गई है। इस कथा को अन्य नामों से भी प्रकट किया गया है यथा कामघटकथा[7], कामकुम्भकथा और अमरतेजा-धर्मबुद्धिकथा[8]। इनमें से कुछ के कर्ता ज्ञात हैं और अधिकाश के कर्ता अज्ञात हैं।

ज्ञातकर्तृक रचनाओं मे हीरविजयसन्तानीय मानविजय के शिष्य जयविजय ने पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा[9] अपरनाम कामघटकथा की रचना की। जयविजय ने

१-३. जिनरत्नकोश, पृ० २४८, ३९६; आत्मानन्दजय ग्रन्थमाला, दभोई, सं० १९७६; जे० हर्टेलकृत जर्मन अनुवाद, लाइपजिग, १९१७.

४. वही, पृ० ९५.

५. वही.

६. राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय, खुडाला (मारवाड़), सं० १९८८.

७-९. जिनरत्नकोश, पृ० १४, ८४, २४३; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९; मास्टर उमेदचन्द्र रायचन्द्र, पांजरापोल, अहमदाबाद; इसका परिवर्धित रूप भूपेन्द्रसूरि जैन साहित्य समिति, आहोर (मारवाड) से प्रकाशित हुआ है।

एक बृहत् ग्रन्थ धर्मपरीक्षा की रचना की थी। उसी का यह कथा खण्डमात्र है। कर्ता का समय १६-१७वीं शताब्दी अनुमानित है। एतद्विषयक अज्ञातकर्तृक सस्कृत रचनाओं का निर्देश मिलता है। गुजराती में भी कई रचनाएँ हैं।[1]

पुरुषपात्र-प्रधान लघु कथाएँ :

कुछ ऐतिहासिक पुरुषों को लेकर भी कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें ऐतिहासिकता का अश कम है।

सम्प्रतिनृपचरित—सम्राट् अशोक के पौत्र सम्प्रति के कथात्मक चरित्र को लेकर एक-दो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनके रचयिता और रचनाकाल की सूचना नहीं दी गई है।[2]

नवनन्दचरित—नन्दराज्यवंश के सस्थापक नवनन्दों के कथात्मक चरित से सम्बद्ध एक रचना अज्ञातकर्तृक मिलती है।[3] रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इसकी ताडपत्रीय प्रति जेसलमेर में है।

शालिवाहनचरित—इस कृति मे सातवाहन की कथा दी गई है। यह १८०० श्लोक-प्रमाण है। इसकी रचना वि० स० १५४० में हुई थी। रचनाकार तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं।[4]

देवर्धिगणिक्षमाश्रमणचरित—वलभी वाचना के प्रमुख देवर्धिगणि पर स्वतत्र रचना के रूप में जैनग्रन्थावलि मे देवर्धिकथा[5] का उल्लेख मिलता है तथा अहमदाबाद के डेला उपाश्रय भण्डार में देवर्धिगणिक्षमाश्रमणचरित उपलब्ध है।[6]

अकलककथा—प्रसिद्ध जैन नैयायिक आचार्य अकलक के जीवन पर चमत्कारपूर्ण कथा का निर्माण किया गया है। स्वतत्र रचना के रूप में भट्टारक सिंहनन्दि और भट्टारक प्रभाचन्द्र की कृतियों का उल्लेख मिलता है।[7]

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग १-३, कृतिसूची.

२ जिनरत्नकोश, पृ० ४२२; आत्मानन्दजय ग्रन्थमाला (दभोई), अहमदाबाद, सं० १९७६; दूसरी रचना—हीरालाल हंसराज, जामनगर.

३. वही, पृ० २०८.

४. वही, पृ० ३८२.

५-६. वही, पृ० १७८.

७ वही, पृ० १.

पात्रकेशरिकथा—दिग० मुनि पात्रकेशरी की कथा पर भट्टारक मल्लिषेण (१६वीं शताब्दी) की रचना उपलब्ध होती है।[1] पात्रकेशरी के विषय में प० जुगलकिशोर मुख्तयार ने माना है कि ये बौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति और मीमांसक कुमारिल के प्रायः समकालीन थे। पात्रकेशरी द्वारा रचित जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति, पात्रकेशरिस्तोत्र और न्यायग्रन्थ त्रिलक्षणकदर्थन का उल्लेख मिलता है।

मंग्वाचार्यकथा—आर्य मंगु को पार्श्वस्थ भिक्षु कहा गया है। मथुरा में सुभिक्षा प्राप्त होने पर भी आहार का कोई प्रतिबंध नहीं रखते थे। इनकी कथा उपदेशमाला और उपदेशप्रासाद में आई है। उन्हीं के विषय में उक्त कथाकृति उपलब्ध है।[2] रचयिता का नाम एवं रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

इलाचीपुत्रकथा—भावना या भावशुद्धि के महत्त्व को बतलाने के लिए इलाचीपुत्र की कथा दी गई है। यह कथा कथाकोशों में वर्णित है।

प्रस्तुत रचना प्राकृत में निबद्ध है।[3] रचयिता का नाम एवं रचनाकाल अज्ञात है।

अनाथमुनिकथा—अनाथ मुनि की कथा उत्तराध्ययन में आई है। इनके पिता धनाढ्य थे। पर ये बाल्यकाल में नाना रोगों से ग्रस्त थे। इनकी वेदना को कोई न बँटा सका। अत्यन्त निराश हो उन्होंने सोचा—'यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो प्रव्रज्या स्वीकार कर लूँगा'। वे रोगमुक्त होकर दीक्षित हो गये और राजगृह के मण्डिकुक्षि चैत्य में राजा श्रेणिक को सनाथ और अनाथ का अर्थ समझाया। उक्त कथानक पर अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[4] गुजराती में एतद्विषयक अनेक काव्य मिलते हैं।[5]

प्रदेशी या परदेशीचरित—रायपसेणिय सूत्र में राजा प्रदेशी और कुमार-श्रमण केशी का रोचक कथानक दिया गया है। यह परवर्ती लेखकों को बड़ा रोचक लगा। इस पर प्राकृत, संस्कृत और गुजराती में अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४३.
२. वही, पृ० ३००
३. वही, पृ०, ४०
४. वही, पृ० ७.
५. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ४०८, ६०२, ६४६ आदि.

सस्कृत मे उक्त कथा पर कुशलरुचिकृत एक कृति है जिसकी हस्तलिखित प्रति स० १५६४ की मिलती है।[1] दूसरी चारित्रोपाध्यायकृत सं० १९१३ की उपलब्ध है।[2] प्राकृत में ३०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण रचना है।[3] इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। एक और अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[4]

नागदत्तकथा—नागदत्त की कथा कई प्रसंगों के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की गई है। आवश्यकनिर्युक्ति के प्रतिक्रमण अध्ययन में नागदत्त की कथा आई है। हरिषेण के बृहत्कथाकोश (१०वीं शताब्दी) में निर्मोहिता के उदाहरणरूप में नागदत्त की कथा दी गई है। कई कथाकोशों में अदत्त-अग्रहण के उदाहरणरूप में यह कथा वर्णित है। एक रचना[5] अष्टाह्निका पर्व के माहात्म्य को सूचित करने के लिए भी रची गई है। प्राकृत में १००० ग्रन्थाग्र का नागदत्तचरियं[6] (अज्ञात-कर्तृक) भी मिलता है।

विक्रमसेनचरित—इसमें विक्रमसेन नरेश का सम्यक्त्वलाभ से लेकर सर्वार्थ-सिद्धि विमान जाने तक का वृत्तान्त प्राकृत छन्दों में वर्णित है। साथ ही दान, तप, भावना के प्रसंग से १४ कथाएँ भी दी गई हैं। यह एक उपदेशकथा-ग्रन्थ है।

इसके रचयिता[7] ने अपना नाम पद्मचन्द्र शिष्य मात्र दिया है। रचना-समय अज्ञात है।

अन्निकाचार्य-पुष्पचूलाकथा—इसमे तपस्वी अन्निकाचार्य और साधुओं की सतत वैयावृत्य (सेवा) कर केवलज्ञान प्राप्त करनेवाली महिला पुष्पचूला की कथा दी गई है। शुभशीलगणिकृत भरतेश्वर-बाहुबलिवृत्ति में भी यह कथा आई है।[8] इसके पूर्व उपदेशमाला और उपदेशप्रासाद मे भी यह कथा वर्णित है।

इसकी स्वतन्त्र रचना[9] तपागच्छीय अमरविजय के शिष्य मुनिविजयकृत उपलब्ध होती है। रचनासमय अज्ञात है।

१-४. जिनरत्नकोश, पृ० २२६ और २६३-२६४.

५-६. वही, पृ० २१०.

७. वही, पृ० ३५०; पाटन ग्रन्थभण्डार सूची, भाग १, पृ० १७२.

८. ५वीं और २२वीं कथा.

९. जिनरत्नकोश, पृ० ११.

मृगध्वजचरित—हिंसा के दोष से बचने के लिए तीव्र तपस्या कर कैवल्य प्राप्त करनेवाले राजपुत्र मृगध्वज की कथा[1] बृहत्कथाकोश (हरिषेणकृत) में दी गई है।

स्वतंत्र रचना के रूप में खरतरगच्छीय पद्मकुमार ने ८३ गाथाओं में इसकी रचना की है।[2] रचनासमय अज्ञात है पर गुजराती में इन्हीं पद्मकुमारकृत मृगध्वजचौपाई[3] मिलती है जिसका रचनाकाल सं० १६६१ दिया गया है।

प्रीतिकरमहामुनिचरित—प्रीतिकर मुनि के चरित्र पर दो दिग० कवियों की संस्कृत रचनाएँ मिलती हैं।[4] ब्रह्म नेमिदत्त की कृति में पाँच सर्ग हैं। इसकी प्राचीन प्रति सं० १६४५ की मिली है। दूसरी रचना संस्कृत में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति की मिलती है। उसका रचनासमय ज्ञात नहीं है। नरेन्द्रकीर्ति सत्रहवीं शती के अन्तिम तथा अठारहवीं के प्रथम दशक के विद्वान् थे।

आरामनन्दनकथा—पंच णमोकार मन्त्र के प्रभाव से अनेक सुख मिलते हैं, भवपार हो जाता है, देवगति मिलती है। यह कथा णमोकार मन्त्र का माहात्म्य बतलाने के लिए संस्कृत ६०५ श्लोकों में रची गयी है।[5] रचना-समय ज्ञात नहीं पर इस रचना के आधार पर सं० १५८७ में साडेरगच्छ के धर्मसागर के शिष्य चउहथ ने गुजराती में आरामनन्दनचौपई की रचना की है।[6]

अजापुत्रकथानक—पुण्य से साहस, सद्भाव, कीर्ति आदि सभी मिलते हैं। दृष्टान्तस्वरूप अजापुत्र की कथा पर दो रचनाएँ मिलती हैं।[7] एक अज्ञात-कर्तृक ५६१ श्लोकों में है और एक गद्य में। एक के कर्ता जिनमाणिक्य हैं और दूसरी के माणिक्यसुन्दरसूरि (१६वीं शती)। इस पर गुजराती में कई रास भी मिलते हैं।[8]

---

१. कथा सं० १२१.
२ जिनरत्नकोश, पृ० ३१३.
३ जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४६२.
४. जिनरत्नकोश, पृ० २८१.
५ वही, पृ० ३३.
६. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५७८.
७. जिनरत्नकोश, पृ० २.
८. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५३७, ५३८.

चाणक्यर्षिकथा—चाणक्य का चरित्र हरिषेण ने वृहत्कथाकोश में और हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्टपर्व में दिया है। उस पर देवाचार्य की उक्त स्वतन्त्र रचना मिलती है।[1] रचनाकाल नहीं दिया गया है।

मित्रचतुष्ककथा—स्वदारसन्तोषव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए सुमुखनृपादिमित्रचतुष्ककथा अपरनाम मित्रचतुष्ककथा की रचना ५१७ श्लोकों में तपागच्छीय सोमसुन्दरसूरि के शिष्य मुनिसुन्दरसूरि ने सं० १४८४ में की है। इसका संशोधन लक्ष्मीभद्रसूरि ने किया था।[2]

किन्हीं सयमरत्नसूरि ने भी मित्रचतुष्ककथा[3] (ग्रन्थाग्र १६३१) की रचना की है।

उक्त व्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए प० रामचन्द्रगणि ने ११ सर्गों का एक सुमुखनृपतिकाव्य सं० १७७० मे रचा है। इस काव्य की एक त्रुटित प्रति प्राप्त हुई है।[4]

धनदेव-धनदत्तकथा—इसे धनदत्तकथा, धनधर्मकथा भी कहते हैं। सुपात्र में भुक्तिदान से पाप दूर होकर सम्पत्ति मिलती है। इस बात को बतलाने के लिए धनदेव और धनदत्त की कथा दी गई है।

इस पर सर्वप्रथम कृति तपागच्छ के मुनिसुन्दर की रचना ४४० संस्कृत श्लोकों में मिलती है। रचना मे स० १४८४ दिया गया है।[5] दूसरी रचना तपागच्छीय अमरचन्द्र की है।[6] अमरचन्द्र का समय १७वीं शती का उत्तरार्ध है। इनकी गुजराती रचनाएँ कुलध्वजकुमार (स० १६७८) और सीताविरह (सं० १६७९) मिलती हैं।[7]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२२.

२. वही, पृ० ३०९, ४४७; जैन आत्मानन्द सभा, ग्रन्थांक ७५, भावनगर; गुजराती अनुवाद भी वहीं से सं० १९७९ में प्रकाशित.

३. वही.

४. श्रमण, वर्ष १९, अक ८, पृ० ३०-३१ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'पं० रामचन्द्ररचित सुमुखनृपति-काव्य'.

५-६. जिनरत्नकोश, पृ० १८६, १८७.

७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ५०७, ५०८.

धनदत्तकथा—श्रावकधर्म मे व्यवहारशुद्धि के लिए अमरचन्द्र ने सस्कृत में धनदत्तकथा[1] लिखी है। धनदत्तकथा पर गुजराती में कई रास[2] लिखे गये हैं।

अमरसेन-वज्रसेनकथानक—दान एव पूजा से अपार सुख मिलता है। इस बात का द्योतन करने के लिए अमरसेन-वज्रसेन राजर्षि की कथा इसमें वर्णित है। इस पर कई कृतियाँ मिलती हैं। पहली कृति १६वीं शती के मतिनन्दनगणि की है जो खरतरगच्छ में पिप्पलकगच्छ के धर्मचन्द्रगणि के शिष्य थे।[3] इनकी अन्य कृति धर्मविलास मिलती है। उक्त कथा पर अन्य दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी हैं जिनमें एक की रचना स० १६५८ में हुई थी।[4] सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में गुजराती मे इस कथानक पर कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।[5]

अमरदत्त-मित्रानन्दकथानक—इसमें अमरदत्त-मित्रानन्द के सरस सम्बन्ध को दिखलाते हुए दान के प्रभाव से उन दोनों ने संसार में किस तरह सुख पाया यह दिखलाया गया है। इसके रचयिता भावचन्द्रगणि हैं जो भानुचन्द्रगणि के शिष्य थे।[6] उन्होंने यह कथा शान्तिनाथचरित्र में वर्णित की है। इस पर गुजराती मे कई रास बने हैं।[7]

सुमित्रकथा—यह कथा वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में दसवे श्रावकव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए दी है। स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में हर्षकुंजर उपाध्यायकृत सुमित्रचरित्र[8] और अज्ञातकर्तृक सुमित्रकथा[9] मिलती हैं।

रूपसेनकथा—इसमें दान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए रूपसेन और कनकावती की कथा दी गई है। इस कथानक पर अनेक कृतियाँ मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८६.
२ जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० २६८.
३. जिनरत्नकोश, पृ० १४.
४. वही.
५. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४७५, भाग २, पृ० १६५.
६. जिनरत्नकोश, पृ० १४, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.
७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० २००, भाग २, पृ० ९४, २२४.
८-९. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

अज्ञातकर्तृक रचनाओं में रूपसेनकनकावतीचरित्र, रूपसेनकथा, रूपसेन-पुराण नामक ग्रन्थ मिलते हैं।[१]

ज्ञातकर्तृक रचनाओं में तपागच्छीय हर्षसागर के प्रशिष्य एव राजसागर के शिष्य रविसागर ने स० १६३६ मे रूपसेनचरित्र[२] लिखा।

दूसरी कृति[३] सुधाभूषण और विशालराज के शिष्य जिनसूरि ने सस्कृत गद्य में निर्माण की है। इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

तीसरी रचना[४] किसी दिगम्बर धर्मदेव ने लिखी है।

करिराजकथा—आसनदान के माहात्म्य के लिए करिराजकथा का विधान हुआ है। इस कथा पर स० १४८९ में किसी अज्ञात कर्ता ने ग्रन्थ लिखा।[५] दानप्रदीप (सं० १४९९) के छठे प्रकाश मे भी यह कथा शामिल है।

वकचूलकथा—औपदेशिक कथाओं मे दान, शील, तप, भावना आदि को एकचित्त से पालने के लिए वंकचूल का उदाहरण आया है। उक्त कथा पर प्राकृत वक्कचूडकहा[६] नामक कृति का उल्लेख मिलता है। उसके कर्ता और रचनाकाल ज्ञात नहीं हो सके। गुजराती में इस पर कई काव्य लिखे गये हैं।[७]

तेजसारनृपकथा—इसमें जिनप्रतिमा को जिन सदृश मानकर आराधना करने के माहात्म्य को प्रकट करने लिए तेजसारनृप की कथा दी गई है। इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है।[८] इस कथा मे दीपपूजा का विशेष माहात्म्य दिया गया है। गुजराती मे कुशललाभकृत तेजसाररास (स० १६२४) भी मिलता है।[९]

गुणसागरचरित—पृथ्वीचन्द्र नृप के पूर्वभवों का सहयोगी गुणसागर था। उसका चरित्र भी पृथ्वीचन्द्र नृपर्षि के समान पावन है। देवेन्द्रसूरि के शिष्य धर्मकीर्ति ने 'सद्धाचारविधि' में गुणसागर की कथा दी है।

१-४. जिनरत्नकोश, पृ० ३३२.

५. वही, पृ० ६८.

६. वही, पृ० ३४०.

७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४८३, ५८९.

८. जिनरत्नकोश, पृ० १६१.

९. गुर्जर जैन कविओ, भाग १, पृ० २१४.

इस पर स्वतन्त्र रचना भी मिलती है जिसके कर्ता खरतरगच्छीय क्षमा-कल्याणोपाध्याय (१९वीं शती का उत्तरार्ध) हैं।[1]

सुरप्रियमुनिकथानक—अपने किये पापों का प्रायश्चित करनेवाले सुरप्रिय मुनि की कथा को सं० १६५६ में तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य कनककुशल ने संस्कृत छन्दों में रचा है।[2] इसका गुजराती अनुवाद उपलब्ध है तथा गुजराती में कई रास भी मिलते हैं।

सुव्रतऋषिकथानक—सुव्रत की कथा उपदेशप्रासाद में आई है। इस कथानक पर दो अज्ञातकर्तृक लघु रचनाएँ मिलती हैं।[3] दोनों प्राकृत में हैं। पहली प्रकाशित कृति में १५७ गाथाएँ हैं और दूसरी अप्रकाशित में केवल ५९ गाथाएँ।

कनकरथकथा—उत्तम पात्र के लिए भोजनदान के माहात्म्य पर कनकरथ सेठ की कथा कही गई है जो अज्ञातकर्तृक संस्कृत रचना के रूप में सं० १४८० की मिलती है।[4] एक अन्य रचना कनकरथनरिंद[5] का भी उल्लेख मिलता है।

रणसिंहनृपकथा—धर्मदासगणि की उपदेशमाला पर रत्नप्रभसूरि द्वारा रची 'दोघट्टी' टीका (सं० १२३८) में एक रणसिंह की कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि वह विजयसेन राजा और विजया रानी का पुत्र था। यह विजयसेन दीक्षा लेकर अवधिज्ञानी हुआ और उसने अपने सांसारिक पुत्र रणसिंह के लिए उवएसमाला की रचना की। माना जाता है कि यही विजयसेन धर्मदासगणि थे।

उक्त रणसिंह नृप की कथा पर एक प्राचीन कृति अज्ञातकर्तृक मिलती है[6] तथा दूसरी रचना खरतरगच्छीय सिद्धान्तरुचि के शिष्य मुनिसोम ने सं० १५४० में लिखी है।[7]

---

१. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७; गुजराती अनुवाद—मुनि प्रतापविजयकृत, मुक्ति-कमल-जैन मोहनमाला (१२), वड़ोदा, सं० १९७६.

३. वही, पृ० ४४७; विजयदानसूरीश्वर ग्रन्थमाला, सूरत, सं० १९९५.

४-५. वही, पृ० ६७.

६. वही, पृ० ३२६.

७. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २९.

कूलवालककथा—कूलवाल की कथा आगमों मे प्रसिद्ध है। उपदेशप्रासाद तथा शीलोपदेशमाला में इसकी कथाएँ आई हैं। इस पर अज्ञातकर्तृक एक रचना का उल्लेख मिलता है।[१]

प्रियंकरकथा—उपसर्गहरस्तोत्र के महत्त्व का वर्णन करने के लिए प्रियकर नृप की कथा कही गई है। इसकी रचना तपागच्छ के विशालराज के शिष्य जिनसूरि ने सस्कृत गद्य में की है।[२]

गजसिंहपुराण—इसे गजसिंहराजचरित भी कहते हैं।[३] इसमें दशरथ नगरी के राजा गजसिंह के शीलादि गुणों से अनेक वैभव पाने का वर्णन है। निशीथवृत्ति मे यह चरित्र विस्तार से दिया गया है। गुजराती में इस चरित्र को लेकर कई रास लिखे गये हैं।[४]

संस्कृत में अज्ञातकर्तृक दो रचनाएँ मिलती हैं।

संग्रामसूरकथा—सम्यक्त्व के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए राजा संग्राम-सूर की कथा उपदेशप्रासाद में दी गई है।

इस पर स्वतत्र रचना मेरुप्रभसूरिकृत मिलती है।[५] गुजराती में स० १६७८ में तपागच्छीय शान्तिचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र ने एक कृति लिखी है।[६]

संकाशश्रावककथा—प्रमादी मित्र के दोष को प्रकट करने के लिए संकाश श्रावक या संकाश श्रेष्ठी की कथा कही गई है। इस पर अज्ञातकर्तृक एक कृति संस्कृत में और एक प्राकृत[७] में मिलती है। संकाश की कथा हरिभद्रसूरि के उपदेशपद (गा० ४०३-४१२) में भी आई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९५-९६.

२. वही, पृ० २८०; देवचन्द्र लालभाई पु० ग्रन्थमाला (८०), बम्बई, १९३२; शारदाविजय जैन ग्रन्थमाला (१), भावनगर, १९२१.

३. वही, पृ० १०२.

४. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ६०, ६३, १९६, ५२४, ५२६.

५ जिनरत्नकोश, पृ० ४१०.

६. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ९८९.

७. जिनरत्नकोश, पृ० ४०८.

पुण्यसारकथा या पुण्यधनचरित—जिनरत्नकोश के अनुसार ये दोनों शीर्षक एक ही कृति के हैं।[1] यह १३११ श्लोक-प्रमाण रचना है। इसमें जीवदया के माहात्म्य को बतलाया गया है। इसकी रचना शुभशीलगणि ने की है। इनकी भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति आदि अनेकों कृतियाँ मिलती हैं।

पुण्यसारकथा—साधर्मिक वात्सल्य के फल को प्रकट करने लिए श्रेष्ठिपुत्र पुण्यसार की कथा कही गई है।

इस कथा पर अनेक रचनाएँ मिलती हैं।

प्रथम रचना[2] जिनेश्वरसूरि के शिष्य वाचनाचार्य विवेकसमुद्रगणिविरचित है। इसकी रचना सं० १३३४ में जैसलमेर में हुई थी। इसमें ३४२ संस्कृत श्लोक हैं। इस कथा का संशोधन जिनप्रबोधसूरि ने किया है। विवेकसमुद्र की अन्य रचना नरवर्मचरित भी मिलती है।

इस कथा पर अजितप्रभसूरि और भानुचन्द्रकृत[3] संस्कृत कृतियाँ भी मिलती हैं।

पुरन्दरनृपकथा—निरतिचार-संयम तथा उग्रशीलव्रत का पालन करने में पुरन्दर नृप का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इस कथा पर कई रचनाएँ हैं।

एक कृति देवेन्द्रसूरिकृत[4] है जिसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है। दूसरी है भाव-देवसूरि के शिष्य ब्र० मालदेवकृत।[5] मालदेव की गुजराती रचना भी सं० १६६९ की मिलती है। एक अज्ञातकर्तृक पुरन्दरनृपचरित्र[6] प्राकृत में मिलता है। ब्र० श्रुतसागर ने भी पुरन्दरविधिकथोपाख्यान लिखा है।[7] गुजराती में एतद्विषयक कई रचनाएँ मिलती हैं।[8]

सदयवत्सकुमारकथा—सत्पात्रदान और अभयदान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए संस्कृत और गुजराती में उक्त कुमार पर कई कथाएँ लिखी गईं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २५१; नानजीभाई पोपटचन्द द्वारा महावीर जैन सभा, खम्भात के लिए सन् १९१९ में प्रकाशित.

२-३. वही, पृ० २५१, २५२; इनमें से पहली जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार कार्यवाहक, सूरत से सं० २००१ में प्रकाशित तथा भावचन्द्रकृत हीरालाल हंसराज, जामनगर से सन् १९२५ में प्रकाशित.

४-७. वही, पृ० २५२-२५३.

८. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३०८-३०९.

हैं। संस्कृत में हर्षवर्धनगणिकृत रचना उपलब्ध होती है।[1] इसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

देवदत्तकुमारकथा—संतोष और विरति तथा अनासक्ति-भावना के महत्त्व को बतलाने के लिए संस्कृत और गुजराती मे देवदत्तकुमार के चरित्र का वर्णन हुआ है।[2] संस्कृत में उक्त कथा की अज्ञातकर्तृक कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं।

त्रिभुवनसिंहचरित—महीतल मे करोड़ों उपाय हैं पर कर्मफल टाला नहीं जा सकता। कर्मफल की महत्ता को बतलाने के लिए इस चरित्र का चित्रण संस्कृत और गुजराती मे किया गया है। संस्कृत गद्य मे ६८४ ग्रन्थाग्र-प्रमाण एक अज्ञातकर्तृक रचना प्रकाशित हुई है।[3]

देवकुमारचरित—गुजराती जैन कवियों ने देवकुमार के कौतुक और आश्चर्य से पूर्ण चरित्र का सप्तव्यसन का त्यागकर गृहस्थ धर्म में अदत्तादान आदि व्रतों को दृढ़ता से पालने के दृष्टान्तरूप में प्ररूपण किया है। संस्कृत में ५२७ ग्रन्थाग्र-प्रमाण एक रचना उपलब्ध होती है।[4] कर्ता और रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

राजसिंहकथा—णमोकार मन्त्र के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए राजसिंह और रत्नवती की कथा पश्चिम भारत में प्रसिद्ध है। इस पर संस्कृत में एक अज्ञात-कर्तृक रचना मिलती है।[5] गुजराती में इस सम्बन्ध में कई रास मिलते हैं।[6] सं० १९०० में तपागच्छीय पद्मविजय के शिष्य रूपविजय ने ४१३ श्लोकों मे राजसिंह-रत्नवतीकथा की रचना की है।[7]

मथनसिंहकथा—उपदेशप्रासाद एवं श्राद्धविधि में मायाकपट-विरमण के प्रसंग में तथा प्रतिक्रमण के महत्त्व को प्रकट करने के लिए महणसिंह का दृष्टान्त आया

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२.
२. वही, पृ० १७७; जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ८ २, ९३४.
३. जिनरत्नकोश, पृ० १६१, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२-२३.
४. वही, पृ० १७७.
५. वही, पृ० ३३१.
६. जैन गुर्जर कविओ, भाग १-३ में कृतियों की अनुक्रमणी देखें.
७. जिनरत्नकोश, पृ० ३३१.

है। उसी को संस्कृत छन्दों में 'मदनसिंहकथा' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रचयिता एवं रचनाकाल अज्ञात है।

विद्याविलासनृपकथा—उत्तरवर्ती मध्ययुग में पुण्य के प्रभाव को बतलाने के लिए विद्याविलास नृप की कथा जैन कवियों को बड़ी रोचक लगी। इस पर संस्कृत और गुजराती में अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत में गद्यात्मक एक रचना की हस्तलिखित प्रति सं० १४८८ की मिली है।[1] दूसरी गद्यात्मक रचना मल्यहंस की मिली है।[2] परन्तु समय ज्ञात नहीं है। तीसरी[3] रचना पद्यात्मक देवदत्तगणिकृत है। अन्य रचनाएँ अज्ञातकर्तृक हैं।[4] इसी कथा से सम्बद्ध एक 'विद्याविलाससौभाग्यसुन्दरकथानक'[5] भी मिलता है पर इसके कर्ता ज्ञात नहीं हैं।

मंगलकलशकथा—दान के महत्त्व को प्रकट करने के लिए मंगलकलश-कुमार की कथा पर अनेकों ग्रन्थ लिखे गये हैं। यह कथा उपदेशप्रासाद में भी आई है।

इस पर उदयधर्मगणिकृत सं० १५२५ की संस्कृत रचना मिलती है।[7] दूसरी रचना हंसचन्द्र के शिष्य (अज्ञातनामा) की है।[8] तीसरी भावचन्द्र की है।[9] गुजराती में तो एतद्विषयक बीसियों रचनाएँ मिलती हैं।[10]

विनयंधरचरित—जिनमत के दृढ़ श्रद्धान के महत्त्व के लिए विनयधर नृप की कथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश में आई है। उक्त कथा पर प्राकृत में एक अज्ञात-कर्तृक रचना[11] तथा संस्कृत गद्य[12] में शीलदेवसूरिकृत रचना मिलती है।

मत्स्योदरकथा—शान्तिनाथचरित में पुण्य (धर्म) की महिमा को प्रकट

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२-६. वही, पृ० ३५६.

७. वही, पृ० २९९.

८. वही.

९. वही; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.

१०. जैन गुर्जर कविओ, तीनों भागों की कृतियों की अनुक्रमणिका देखें.

११-१२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५७

करने के लिए मत्स्योदरनृप की कथा आई है। इसी कथा पर उक्त अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[1] गुजराती मे इस कथा पर अनेक रास लिखे गये हैं।

वीरभद्रकथा—अकाल में श्रुतपाठ के दोष को बतलाने के लिए वीरभद्र मुनि की कथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश में दी गई है। वीरभद्र की कथा को लेकर देवभद्राचार्य द्वारा रचित वीरभद्रचरित्र[2] एव अज्ञातकर्तृक वीरभद्रकथा[3] तथा वीरभद्रचरित्र[4] मिलते हैं।

कुरुचन्द्रकथानक—कुरुचन्द्र नृपति की कथा हरिभद्र के उपदेशपद की टीका तथा अन्य औपदेशिक कथा-साहित्य में आती है। उसी चरित को लेकर सस्कृत गद्य में उक्त चरित की रचना की गई है।[5] इसकी प्राचीन प्रति सं० १४८९ की मिली है पर इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इस कथा को दानप्रदीप (सं० १४९९) में वसतिदान के सम्बन्ध में दिया गया है।

प्रज्ञाकरकथा—शयनदान के लिए प्रज्ञाकर राजा की कथा दानप्रदीप (चारित्ररत्नगणि) में दी गई है। उसी पर एक स्वतत्र रचना अज्ञातकर्तृक मिलती है।[6]

सुबाहुकथा—विधिवत् पात्रदान के महत्त्व को प्रकट करने के लिए सुबाहु मुनि या नृप के चरित पर अज्ञातकर्तृक तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[7] पाटन सूचीपत्र के अनुसार दो प्राकृत रचनाएँ हैं।[8] एक में २२८ गाथाएँ और दूसरी मे २१५ गाथाएँ हैं। एक रचना अज्ञातकर्तृक भी है।[9] किसी का रचनाकाल नहीं दिया गया है।

गुजराती मे जिनहससूरि के शिष्य पुण्यसागर ने स० १६०४ में एक सुबाहुसधि का[10] निर्माण किया था।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०.
२-४. वही, पृ० ३६३.
५. वही, पृ० ९४.
६. वही, पृ० २५७.
७-९. वही, पृ० ४४५; पाटन ग्रन्थ-भण्डारसूची, भाग १, पृ० ६१, ९१, १४२. १६१.
१०. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १८८.

हरिबलधीवरचरित—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) मे जीवदया के महत्त्व को समझाने के लिए हरिबल धीवर की कथा आती है। उसी कथानक को लेकर संस्कृत मे हरिबलकथा एवं हरिबलचरित नामक अज्ञातकर्तृक रचनाएँ तथा हरिबलसम्बन्ध नामक प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[1] २०वीं शती के तपागच्छीय आचार्य यतीन्द्रसूरि ने स० १९८४ मे हरिबलधीवरचरित की रचना संस्कृत गद्य में की है।[2]

सुन्दरनृपकथा—इसमें १६४ श्लोक है।[3] इसमें सुन्दरनृप द्वारा स्वदार-सन्तोषव्रत पालन करने की कथा वर्णित है। इस पर गुजराती मे सुन्दरराजारास (स० १५५१) आगमगच्छ के क्षमाकलशकृत मिलता है।

कुलध्वजकथानक—इसमें परस्त्रीत्यागव्रत के माहात्म्य को बतलाने के लिए कुलध्वज कुमार[4] की कथा वर्णित है। इस संस्कृत रचना के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। गुजराती में कक्कसूरि के शिष्य कीर्तिहर्ष द्वारा स० १६७८ में रचित कुलध्वजकुमाररास भी मिलता है।[5]

सुमढचरित—राजा की आज्ञा भंग करने से इस भव और परभव मे अनेक दुःख मिलते हैं। सुसढ ने चतुर्थ, षष्ठ व्रत कर उन दुःखों को पार कर लिया। महानिशीथ की अन्तिम चूला मे सुसढ का चरित वर्णित है। उसको लेकर देवेन्द्र-सूरि ने प्राकृत गाथाओं मे इसकी रचना की है।[6] इसकी हस्तलिखित प्रतियों में ४८७ से लेकर ५२० प्राकृत-गाथाएँ मिलती हैं।[7] इसी चरित्र पर लब्धिमुनि (२०वीं शती) ने संस्कृत मे एक कृति रची है।[8] गुजराती मे इस कथा पर कई रचनाएँ हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९; हरिषेण के बृहत्कथाकोश मे ऐसी ही मृगसेन धीवर की कथा (संख्या ७२) दी गई है।

२. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४१.

३ जिनरत्नकोश, पृ० ४४५.

४. वही, पृ० ९५.

५. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ९२.

६-७. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७-४४८; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित.

८. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० ३०.

सुरसुन्दरनृपकथा—रत्नशेखरसूरिकृत श्राद्धविधि की स्वोपज्ञवृत्ति में श्रावक के गुणों को बतलाने के लिए सुरसुन्दर नृप और उसकी पाँच पत्नियों की कथा दी गई है। उस पर सुरसुन्दरनृपकथा (प्राकृत) नामक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[1]

नरसुन्दरनृपकथा—हरिभद्रकृत उपदेशपद की टीका में तीव्र भक्ति के उदाहरणरूप नरसुन्दरनृपकथा कही गई है। इस पर स्वतन्त्र अज्ञातकर्तृक नरसुन्दरनृपकथा का उल्लेख मिलता है।[2] इस पर दूसरी रचना नरसवादसुन्दर[3] मिलती है जिसके लेखक राजशेखर के शिष्य रत्नमण्डनगणि माने गये हैं। रत्नमण्डन सम्भवतः वे ही हैं जिनकी भोजप्रबन्ध, उपदेशतरंगिणी, पृथ्वीधरप्रबन्ध एवं सुकृतसागर रचनाएँ मिलती हैं।

मेघकुमारकथा—मानवृत्ति के कुपरिणाम सूचन के लिए उपदेशवृत्ति में मेघकुमार की कथा आई है। उसे ही स्वतन्त्र रचना के रूप में प्रस्तुत कृति[4] मे प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थकर्ता का नाम अज्ञात है।

सहस्रमल्लचौरकथा—जैनधर्म की आराधना का महत्त्व बतलाने के लिए शुभवर्धनगणिकृत वर्धमानदेशना (प्राकृत) में उक्त कथा दी गई है। उस पर अज्ञातकर्तृक सहस्रमल्लचौरकथा[5] का उल्लेख मिलता है।

सागरचन्द्रकथा—सम्यग्ज्ञान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए वर्धमानदेशना में सागरचन्द्र सेठ की कथा दी गई है। उसी को लक्ष्यकर अज्ञातकर्तृक एक रचना प्राकृत में मिलती है।[6] इसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

सागरश्रेष्ठिकथा—देवद्रव्यग्रहण और लोभ के कुफल को बताने के लिए सागरसेठ की कथा उपदेशप्रासाद में दी गई है। उसी पर अज्ञातकर्तृक एक संस्कृत कथा उपलब्ध होती है।[7]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

२. वही, पृ० २०५.

३ वही, पृ० २०५, ४०६, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१९.

४ वही, पृ० ३१२.

५ वही, पृ० ४२९.

६. वही, उपदेशमाला १८१, उपदेशप्रासाद १३-१६० में भी अन्य प्रसगों में सागरचन्द्र-कथा दी गई है।

७. जिनरत्नकोश, पृ० ४२९

नन्दयतिकथा—यह ६०० ग्रन्थाग्र परिमाणवाली अज्ञातकर्तृक रचना है।[1] इसमें बताया है कि नन्द राजकुमार साधु हो जाने पर भी अपनी सुन्दरी का ही ध्यान किया करता था; नन्द का भाई अपने कई चमत्कारपूर्ण कार्यों द्वारा नन्द को सुन्दरी से विरक्त करता है। एतद्विषयक एक नन्दोपाख्यान भी मिलता है।[2]

यह कथा हरिभद्रकृत उपदेशपद की टीका (मुनिचन्द्रकृत) में आई है। यह महाकवि अश्वघोषकृत सौन्दरनन्द की कथावस्तु का ही अनुकरण लगता है।

हंसराज-वत्सराजकथा—पुण्य के फल से रूप, आयु, कुल, बुद्धि आदि मिलते हैं। पुण्य के ही फल को बताने के लिए हंसराज वत्सराज नरेशों के चरित वर्णित किये गये हैं।

इस कथा पर मलधारीगच्छ के गुणसुन्दरसूरि के शिष्य सर्वसुन्दरसूरि ने एक कृति सं० १५१० में लिखी। इसे कथासंग्रह भी कहते हैं।[3]

दूसरी कृति वाचक राजकीर्तिकृत है जो १०५० ग्रन्थाग्ररूप में है।[4] एक अज्ञातकर्तृक रचना में २४६ श्लोक हैं।[5] गुजराती में जिनोदयसूरि (सं० १६८०) कृत हंसराजवच्छराजरास मिलता है।[6]

धनदचरित—जैन कथा और इतिहास में धनद नामक कई व्यक्ति हो गये हैं। धन्यशालिभद्र के धन्यकुमार को भी धनद कहा गया है और गुजराती में इसके चरित पर धनदरास बने हैं। हरिषेण के कथाकोश में भी असत्यपरिहार के लिए एक धनद की कथा दी गई है। मध्यकाल में शतकत्रय के रचयिता धनदराज श्रावक को भी धनद कहा गया है।

धनदचरित्र नाम की तीन रचनाएँ अब तक मिली हैं। एक अज्ञातकर्तृक धनदकथानक ४०० श्लोक-प्रमाण है जो 'अत्रैव सुविस्तीर्णे' पद[7] से प्रारम्भ होती है। दूसरी कृति सं० १५९० में हुमायूँ बादशाह के राज्य में काष्ठसंघीय श्री गुण-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९९.

२. वही, पृ० २०१.

३-६. वही, पृ० ४५८.

७. वही, पृ० १८६.

भद्रसूरिदेव के शिष्य ने लिखी थी।[1] तीसरी[2] रचना भानुचन्द्रगणि के शिष्य भावचन्द्र की है जो प्रकाशित है।

निमिराजकाव्य—इसमें निमिराज का चरित्र है। यह काव्य ५००० श्लोक-प्रमाण है।[3] नवरसात्मक होते हुए भी यह शान्तरस-प्रधान है। इसकी रचना प्रसिद्ध अध्यात्मी एव महात्मा गाधी के मान्य गुरु कवि रायचन्द्र ने की है। कवि का देहोत्सर्ग मात्र ३३ वर्ष की उम्र में स० १९५७ में राजकोट में हुआ था। इनकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

परमहंससंबोधचरित—हरिभद्र की कथा से सम्बद्ध हस-परमहस के चरित्र को लेकर उक्त सस्कृत रचना का निर्माण खरतरगच्छ के गुणशेखरगणि के शिष्य नयरग ने सं० १६२४ में किया। इसमें ८ सर्ग है।[4]

अन्य लघु कथाग्रन्थों में निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख मिलता है। विस्तार-भय से सबका परिचय देना सम्भव नहीं है :

अभयसिंहकथा[5] (सस्कृत, १३८ ग्रन्थाग्र), आर्यआषाढकथा[6], इन्द्र-जालिककथा[7] (रत्नशेखर), गगदत्तकथानक[8] (सं० १६८२), गण्डूरायकथा[9], चण्डपिंगलचोरकथा[10], कर्मसारकथा[11], काकजघकोकासककथा[12] या कोकासक-कथानक, कुसुमसार[13] (१७०० गाथाएँ, नेमचन्द्र, स० १०९९), कृतकर्म-राजर्षि[14], खर्परचौरकथा[15] (गद्य), गोधनकथा[16] (संस्कृत), चन्द्रोदयकथा[17], चामरहारिकथा[18], जिनदासकथा[19], दृढप्रहारिकथा[20], दृष्टान्तरहस्यकथा[21], देव-कुमार-प्रेतकुमारकथा[22] (प्रोषधव्रत पर), धनपतिकथा[23] (गद्य, स० १४८९), धन्नाकाकदीकथा[24], धर्मपालकथा[25] (संस्कृत), धर्ममित्रकथा[26], धर्मराजकथा[27]

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २२२. २. जिनरत्नकोश, पृ० १८६. ३. वही, पृ० २१२; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ७१२. ४. जिन-रत्नकोश, पृ० २३६; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २८. ५. जिनरत्नकोश, पृ० १३. ६. वही, पृ० ३४. ७. वही, पृ० ३९. ८. वही, १०१. ९. वही, पृ० १०३. १०. वही, पृ० ११३. ११. वही, पृ० ७३. १२. वही, पृ० ८३. १३. वही, पृ० ९४. १४. वही, पृ० ९५. १५. वही, पृ० १०१. १६. वही, पृ० ११०. १७. वही, पृ० १२१. १८. वही, पृ० १२२. १९. वही, पृ० १३५. २०-२२. वही, पृ० १७७. २३-२४. वही, पृ० १८७. २५. वही, पृ० १९०. २६. वही, पृ० १९१. २७. वही, पृ० १९२.

(सातवें व्रत पर), धन्यसुन्दरीकथा[1] (प्राकृत), धूर्तचरित्रकथा[2], धृष्टकथा[3] (पुण्यफल पर), ध्वजभुजगमकथा[4], नन्दिषेणकथा[5], नन्ददत्तकथा[6], नरदेवकथा[7], नरब्रह्मचरित्र[8], नागकेतुकथा[9], नागश्रीकथा[10], निषिद्ध-भोगदैवकथानक[11] (प्राकृत), पद्मलोचनकथा[12], पद्माकरकथा[13], पुण्याढ्यनृपकथा[14], पुन्नडकथा[15], फलधर्मकुटुम्बकथा[16], भद्रनन्दिकुमारकथा[17], भद्रश्रेष्ठिकथा[18], मालाकार-कथा[19], यवराजर्षिकथा[20], राजहंसकथा[21], लोकापवादकथा[22], वज्रस्वामिकथा[23], वत्सराजकथा[24] (सर्वसुन्दरसूरि, अजितप्रभसूरि), वज्रसेनचरित्र[25], वसुभूति-कथा[26], वसुभूतिवसुमित्रकथा[27], वसुराजकथा[28], वस्त्रदानकथा[29], विनयकुमार-चरित्र[30] (प्राकृत), विद्यापतिश्रेष्ठिकथा[31], विद्यासागरश्रेष्ठिकथा[32] (गुणाकरकवि), विद्युच्चरमुनिचरित्र[33], विद्रुमचरित्र[34] (रामचन्द्रसूरि), विश्वसेनकुमारकथा[35] (प्राकृत), वीराङ्गदकथा[36] (हरिभद्र), वैश्रवणकथा[37], शामदेवशामदेवकथा[38], शालक्ष्मीयकथा[39], शिवकुमारकथा[40], साहसमल्लकथा[41], सावद्याचार्यकथा[42], सुगुणकुमारकथा[43], सुनक्षत्रचरित्र[44], सुमनगोपालचरित्र[45], सुवर्णभद्राचार्यचरित्र[46] (पद्मनाभकवि), सोममुनिकथा[47], हंसपालकथा[48], हरिश्चन्द्रनृपतिकथानक[49], हुण्डिकचोरकथा[50], सविभागव्रतकथा[51] आदि।

स्त्रीपात्र-प्रधान रचनाएँ :

तरंगवईकहा (तरंगवतीकथा)—यह प्राकृत कथा-साहित्य की सबसे प्राचीन कथा है।[52] इसका उल्लेख अनुयोगद्वारसूत्र (१३०), दशवैकालिकचूर्णि

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९७. २. वही, पृ० १९८. ३-६. वही, पृ० ९९. ७-८. वही, पृ० २०४. ९. वही, पृ० २०९. १०. वही, पृ० २१०. ११. वही, पृ० २१२. १२-१३. वही, पृ० २३४. १४-१५. वही, पृ० २५२. १६. वही, पृ० २८०. १७-१८. वही, पृ० २९१. १९. वही, पृ० ३०९. २०. वही, पृ० ३१८. २१. वही, पृ० ३३१. २२-२३. वही, पृ० ३४०. २४. वही. २५. वही, पृ० ३४२. २६-२८. वही, पृ० ३४५. २९. वही, पृ० ३४६. ३०. वही, पृ० ३५३. ३१. वही, पृ० ३५५. ३२-३४. वही, पृ० ३५६. ३५. वही, पृ० ३६१. ३६. वही, पृ० ३६३. ३७. वही, पृ० ३६६. ३८. वही, पृ० ३८१. ३९. वही, पृ० ३८२. ४०. वही, पृ० ३८३. ४१-४२. वही, पृ० ४३५. ४३. वही, पृ० ४४४. ४४. वही, पृ० ४४५. ४५. वही, पृ० ४४६. ४६. वही, पृ० ४४७. ४७. वही, पृ० ४१२. ४८. वही, पृ० ४५९. ४९. वही, पृ० ४६०. ५०. वही, पृ० ४६२. ५१. वही, पृ० ४०५. ५२. वही, पृ० १५८.

(३, पृ० १०९) तथा विशेषावश्यकभाष्य (गाथा १५०८) में मिलता है। निशीथचूर्णि में मलयवती और मगधसेना के समान तरंगवती को लोकोत्तर धर्मकथा कहा गया है।[१] उद्योतनसूरि ने चक्रवाल युगल से युक्त सुन्दर राजहंसों को आनन्दित करनेवाली तरगवती की प्रशसा की है। इसे वहाँ सकीर्णकथा कहा गया है। इसी तरह धनपाल कवि ने तिलकमंजरी में, लक्ष्मणगणि ने सुपासनाह-चरिय मे तथा प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभावकचरित में तरगवती का उदात्त शब्दों में स्मरण किया है।[२]

तरगवती तो अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध नहीं है पर उसका सक्षिप्त रूप १६४२ प्राकृत गाथाओं मे 'तरगलोला' नाम से मिलता है।

रचयिता और रचनाकाल—तरंगवतीकथा के रचयिता एक प्राचीन आचार्य पादलिप्तसूरि हैं। कुवलयमाला की प्रस्तावना-गाथाओं में इन्हें राजा सातवाहन की गोष्ठी की शोभा कहा है। इनका विशेष परिचय प्रभावकचरित में दिया गया है। प्रोफेसर लायमन ने इसका रचनाकाल ईस्वी सन् की दूसरी-तीसरी शताब्दी स्वीकार किया है।

तरंगलोला—इसे संक्षिप्ततरंगवती[३] भी कहते हैं। इसमें कथावस्तु को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। यह एक अद्भुत श्रृंगारकथा है जिसका अन्त धर्मोपदेश में होता है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है: चन्दनबाला के नेतृत्व में साध्वीसघ में सुव्रता आर्या थी जिसे अपने रूप-सौन्दर्य का गर्व था। वह एक श्राविका को अपनी जीवनकथा कहती है—वह एक धनी वणिक् की

---

१. तरगलोला की भूमिका में उद्धृत, पृ० ७.

२. कुवलयमाला, पृ० ३, गाथा २०; तिलकमंजरी, श्लोक २३; सुपास-नाहचरिय, पुव्वभव, गा० ९; प्रभावकचरित, पृ० २९.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १५८; नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला, सं० २०००; जर्मन विद्वान् अर्नेस्ट लायमन ने इसका जर्मन भाषान्तर प्रकाशित किया है। इस भाषान्तर का गुजराती अनुवाद नरसिंह भाई पटेल ने जैन साहित्य सशोधक (द्वितीय खण्ड, पूना, १९२४) में प्रकाशित किया; पृथक् पुस्तक के रूप मे यह अनुवाद बवलचन्द्र केशवलाल मोदी, अहमदाबाद से सन् १९२४ में प्रकाशित; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२२.

सुन्दरी पुत्री थी। एक दिन वह उपवन मे क्रीड़ा करने गई तो सरोवर मे उसने हंसयुगल को देखा। इससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी क्योंकि उसे जातिस्मरण से मालूम पड़ा कि वह पूर्वभव मे इसी प्रकार हसयुगल थी। उसके पति को एक शिकारी ने मार डाला था। तब उसके प्रेम के कारण वह भी उसके साथ जल मरी थी।

अब वह अपने पूर्वजन्म के पति को ढूंढने लगी। उसने एक सुन्दर चित्र-पट बनाया जिसमे हसयुगल का जीवन चित्रित था। इसकी सहायता से उसने अनेकों वियोगों, विरहों के बाद अपने पूर्वजन्म के पति को ढूंढ लिया। वे दोनों अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध नाव मे बैठकर भाग निकले और गन्धर्व विधि से विवाह कर लिया। परदेश मे भटकते समय उन्हें चोरो ने पकड़ लिया और काली देवी के सामने बलि चढाने ले गये पर किसी तरह उनका बचाव हुआ। माता-पिता ने उन्हें खोजकर उनका विधिवत् विवाह कर दिया।

एक समय वे दोनों पति-पत्नी वसन्त ऋतु मे वनविहार कर रहे थे। वहाँ उन्हें उस मुनि से उपदेश सुनने को मिला जो कि उनके पूर्वजन्म मे नर हस को मारनेवाला शिकारी था। इससे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हें ससार से विरक्ति हो गई और दोनों मुनि एव साध्वी बन गये। वही तरगवती मै सुव्रता आर्या हूँ।

यह आत्मकथा उत्तमपुरुष में वर्णित है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस तरगलोला के रचयिता वीरभद्र आचार्य के शिष्य नेमिचन्द्रगणि हैं जिन्होंने मूल तरगवतीकथा के लगभग १००० वर्ष पश्चात् यश नामक अपने शिष्य के स्वाध्याय के लिए इसे लिखा था। नेमिचन्द्र के अनुसार[१] पादलिप्त ने तरगवती की रचना देशी भाषा में की थी जो अद्भुत रससम्पन्न एव विस्तृत थी और केवल विद्वद्भोग्य थी। लेखक के सम्बन्ध में अन्य बातें ज्ञात नहीं हैं।

---

१. नेमिचन्द्रगणि ने पादलिप्त की तरंगवई के सम्बन्ध मे निम्न गाथाएँ लिखी हैं :

पालित्तएण रइया वित्थरओ तह य देसिवयणेहिं।
नामेण तरंगवई कहा विचित्ता य विउला य ॥
न य सा कोई सुणेइ नो पुण पुच्छइ नेव य कहेइ।
विउसाण नवर जोगा इयरजणो तीए किं कुणउ ॥

कुवलयमाला—यद्यपि यह स्त्री-प्रधान कथा नहीं है फिर भी कथा[1] को आकर्षक बनाने के लिए यह नाम दिया गया है। १३००० श्लोक-प्रमाण यह बृहत् कृति महाराष्ट्री प्राकृत में गद्य पद्य मिश्रित चम्पू शैली में लिखित प्रमादपूर्ण रचना है। इसमें महाराष्ट्री के साथ साथ कहीं-कहीं कुतूहलवश, तो कहीं वचन-वशीभूत होकर संस्कृत, अपभ्रंश, द्राविड़ी और पैशाची एवं देशी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। यह बात रचयिता ने इन शब्दों में कही है :

पाइय भासा रइया मरहट्टय देसिवण्णय णिबद्धा।
सुद्धा सयल-कहच्चिय तावस-जिण-सत्थ वाहिल्ला॥
कोऊहलेण कत्थइ पर-वयण-वसेण सक्कय णिबद्धा।
किंचि अपब्भंसकया दाविय पेसाय आसिल्ला॥

रचयिता ने इसे सर्गों, प्रकरणों अथवा अध्यायों में विभक्त नहीं किया है और न कण्डिकाओं का ही क्रमांक दिया है। इसकी अब तक केवल दो ही हस्त-प्रतियाँ—एक ताड़पत्र पर और दूसरी कागज पर मिली हैं। इससे लगता है कि इसका प्रचार बहुत कम हुआ। इसका एक कारण इसकी पाण्डित्यपूर्ण भाषा और शैली भी है। इसमें कहीं रूपकों की बहुलता, तो कहीं दीर्घ ललितपद; कहीं उल्लापक कथा, तो कहीं कुलक; कहीं गाथाएँ एवं द्विपदी गीतक, तो कहीं द्विवलय, त्रिवलय एवं चतुर्वलय; कहीं दण्डक रचना, तो कहीं नाराच रचना, कहीं वृत्त, तो कहीं तरङ्ग रचना, और कहीं मालावचन, विन्यास आदि दिखाई पड़ते हैं।

कथा में एकरसता या नीरसता को हटाने के लिए कुवलयमालाकार ने नगर-वर्णन[2], युद्ध-वर्णन[3], प्रकृति-चित्रण[4], विवाह-वर्णन[5] आदि प्रचुररूपेण

---

१ डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित और दो भागों में प्रकाशित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला (क्रमांक ४५-४६), भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९ और १९७०. दूसरे भाग में अंग्रेजी में लिखी विस्तृत प्रस्तावना है तथा रत्नप्रभसूरिविरचित संस्कृत कुवलयमालाकथा दी गई है।

२ पृ० ७.

३. पृ० १०.

४. पृ० १६.

५. पृ० १७०, १७१.

में सागरदत्त मुनि को देखा। वे एक सिंह को संलेखना करा रहे थे। कुमार ने उनसे अश्व द्वारा अपने हरण का कारण पूछा। मुनिराज ने कहा—एक समय कौशाम्बी का राजा पुरन्दरदत्त अपने मंत्री वासव के साथ उद्यान में गया। वहाँ आचार्य धर्मनन्दन चारगतिस्वरूप ससार के विषय में अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे थे। राजा ने वहाँ बैठे अनेक दीक्षितों याने चण्ड-सोम, मानभट्ट, मायादित्य, लोभदेव और मोहदत्त के सम्बन्ध में प्रश्न किये और उत्तर में आचार्य ने उन पात्रों के वृत्तान्त कहे। उन्होंने कहा कि ये सब पूर्व जन्मों में क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के वशीभूत हो संसार में घूमते फिरे और फिर दीक्षा लेकर सयम का पालन करते रहे। फिर धर्मनन्दन आचार्य वहाँ से अन्यत्र विहार कर जाते हैं। चण्डसोम आदि दीक्षित मरकर देवलोक मे उत्पन्न हुए। उन्होंने वहाँ एक-दूसरे को सम्बोधित करने की प्रतिज्ञा की थी और एक समय धर्मनाथ तीर्थंकर के समवसरण मे पहुँच कर इन पाँचों देवों ने अपने भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किये थे। कुछ समय बाद लोभदेव का जीव देवच्युत होकर मनुष्यलोक में सागरदत्त व्यापारी के रूप में जन्म लेता है और कालान्तर में दीक्षा लेकर सागरदत्त मुनि हो जाता है जो कि मैं (सागरदत्त मुनि) तुम्हारे सामने हूँ। पूर्वभव के मानभट्ट का जीव तुम (पूछनेवाले) कुवलयचन्द्र हो और मायादत्त का जीव दक्षिण देश के राजा की पुत्री 'कुवलयमाला' हुआ है और चण्डसोम का जीव यह सिंह है जिसे मैं प्रतिबोध दे रहा हूँ, तथा तुम और कुवलयमाला से पृथ्वीसार नामक कुमार होगा।

सागरदत्त मुनि की सूचनानुसार कुवलयमाला को प्रतिबोध कराने के लिए कुवलयचन्द्र दक्षिण देश की ओर तत्काल रवाना हुआ।[1] वहाँ विजयानगरी के राजा विजयसेन और रानी भानुमती से कुवलयमाला उत्पन्न हुई थी।

---

१. कुवलयमाला, पृ० १११, कण्डिका १९६. मार्ग में शान्त बैठे हुए सिंह को देखकर कुवलयचन्द्र को पूर्वजन्म का सम्बन्ध स्मरण हो आता है और उस सिंह की ऐसी स्थिति देख वह भगवान् जिनेन्द्र के वचन स्मरण करता है: 'थो मे परियाणइ सो गिलाणं पडिवरइ। यो गिलाणं पडिवरइ सो ममं परियाणइ'। यह वाक्य हमें पालि महावग्ग (पृ० ३१७) मे आये उस बुद्ध-वचन की याद दिलाता है जिसमें कहा गया है: 'यो भिक्खवे म उपट्ठहेय्य सो गिलानं उपट्ठहेय्य'। यह अद्भुत साम्य है।

यह कन्या समस्त पुरुषों से विद्वेष करती थी, किसी पुरुष का मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। इसके सम्बन्ध में एक मुनिराज ने बतलाया था कि अयोध्या के राजा का पुत्र कुवलयचंद्र समस्यापूर्ति द्वारा इसे वशकर विवाह करेगा।

मार्ग में यक्ष जिनेश्वर, वनसुन्दरी एणिका, राजपुत्र दर्पफलिह आदि का वृत्तान्त वह जानता है, फिर विजयानगरी में जाकर कुवलयमाला की पादपूर्त्ति कर उससे विवाह कर लेता है और उसके साथ स्वदेश लौट आता है। मार्ग में भानुकुमार मुनि के दर्शनकर वह उनसे संसारचक्र के चित्रपट का वृत्तान्त जानता है।

कुवलयचन्द्र के लौट आने पर राजा दृढवर्मा (उसका पिता) दीक्षा ले लेता है। कुवलयमाला को कुछ काल पश्चात् एक पुत्र होता है। उसका नाम पृथ्वीसार रखा गया। समय आने पर कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला दोनों पृथ्वीसार कुमार को राज्यभार सौंप दीक्षा ले लेते हैं। बहुत काल तक राज्य-सुख भोगकर पृथ्वीसार भी दीक्षा ले लेता है। उधर सागरदत्त मुनि और सिंह भी मरणोपरान्त देवरूप में जन्म लेते हैं। देवायु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होकर कुवलयचन्द्र का जीव भगवान् महावीर के समय में काकन्दीनगरी में कंचनरथ राजा के शिकार-व्यसनी पुत्र मणिरथकुमार के रूप में जन्मा। कंचनरथ राजा की प्रार्थना पर भग० महावीर इस पुत्र के एक भव की कथा कहते हैं जिसे सुनकर वैराग्य प्राप्तकर मणिरथकुमार उनके पास दीक्षित हो जाता है। इधर मोहदत्त का जीव देवलोक से च्युत होकर रणगजेन्द्र के पुत्र कामगजेन्द्र के रूप में जन्म लेता है। वह अपने भोगे अनुभवों की सत्यता भगवान् महावीर के मुख से सुनकर दीक्षा ले लेता है। लोभदेव का जीव देवलोक से च्युत होकर ऋषभपुर नगर के राजा चन्द्रगुप्त का पुत्र वज्रगुप्त होता है। प्राभातिक के शब्दों से प्रतिबोध पाकर वह भी भग० महावीर के पास दीक्षा ले लेता है। चण्डसोम का जीव भी देवलोक से च्युत होकर ब्राह्मण यज्ञदेव के पुत्र स्वयम्भूदेव के रूप में जन्म लेता है और गरुड के वृत्तान्त से प्रतिबुद्ध होकर भ० महावीर के पास दीक्षित हो जाता है। मायादित्य का जीव देवलोक से च्युत होकर राजगृह नगरी में राजा श्रेणिक का पुत्र महारथ होता है और अपने स्वप्न का भग० महावीर के मुख से स्पष्टीकरण सुन वैराग्य प्राप्तकर दीक्षा ले लेता है। आयु का अन्त होने पर ये पाँचों अन्तिम सल्लेखना स्वीकारकर अन्तकृत् केवली हो सिद्धलोक जाते हैं।

पाँचों पात्रों में से केवल दो पात्र कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला ही इस कथा के मुख्य पात्र बताये गये हैं। उन्हें ही कथा के नायक-नायिका बनाकर शेष पात्रों की कथाएँ उनकी कथा से बाँधकर सारी कथा को अत्यन्त रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

यह कथा-ग्रन्थ घटना-वैचित्र्य और उपाख्यानों की प्रचुरता में वसुदेवहिंडी के समान है। अपनी प्रौढ़ शैली और अलकार-समृद्धि में सुबधु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी की तुलना करती है। इस पर हरिभद्र की समराइच्चकहा और त्रिविक्रम के नरुचम्पू का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस कथा-ग्रन्थ में बहुविध सास्कृतिक सामग्री बिखरी पड़ी है। मठों में रहनेवाले विद्यार्थियों और वाणिज्य-व्यापार के लिए दूर-दूर भ्रमण करनेवाले वणिकों की बोलियों का इसमें संग्रह है। इसमें समुद्र-यात्रा का वर्णन है, मठों में दी जानेवाली शिक्षा तथा शास्त्रों का वर्णन है, १८ देशी बोलियों का देशों के साथ समुल्लेख है, उत्सव, विवाह-वर्णन तथा प्रहेलिकाओं आदि का वर्णन दिया गया है।

ग्रन्थ के आदि में रचयिता ने अपने पूर्ववर्ती अनेकों कवियों और आचार्यों का उनकी कृतियों के साथ उल्लेख किया है।

ग्रन्थकार एवं रचनाकाल—इसके रचयिता का नाम दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरि है। कथा के अन्त में लेखक ने एक २७ पद्यों की प्रशस्ति दी है[१] जिसमें गुरुपरम्परा, रचनासमय और स्थान का निर्देश किया गया है। इससे अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता है। तदनुसार उत्तरापथ में चन्द्रभागा नदी के तट पर पव्वइया नामक नगरी में तोरमाण या तोरराय नामक राजा राज्य करता था। इसके गुरु गुप्तवंशीय आचार्य हरिगुप्त के शिष्य महाकवि देवगुप्त थे। उनके शिष्य शिवचन्द्रगणि महत्तर भिल्लमाल के निवासी थे, उनके शिष्य यक्षदत्त थे। इनके णाग, विंद (वृन्द), मम्मड, दुग्ग, अग्निशर्मा, वडेसर (वटेश्वर) आदि अनेक शिष्य थे, जिन्होंने देवमन्दिर का निर्माण कराकर गुर्जर देश को रमणीय बनाया था। इन शिष्यों में से एक का नाम तत्त्वाचार्य था। ये ही तत्त्वाचार्य कुवलयमाला के कर्ता उद्योतनसूरि के गुरु थे। उद्योतनसूरि को वीरभद्रसूरि ने सिद्धान्त और हरिभद्रसूरि ने युक्तिशास्त्र की शिक्षा दी थी।

---

१ कण्डिका ४३०.

इस ग्रन्थ को उन्होंने जावालिपुर (जालोर) के भग० ऋषभदेव के मदिर में रहकर चैत्र कृष्णा चतुर्दशी के अपराह्न में, जब कि शक सं० ७०० के समाप्त होने मे एक ही दिन शेष था, पूर्ण किया था। उस समय नरहस्ति श्रीवत्सराज यहाँ राज्य करता था। यह समय विक्रम सं० ८३५ आता है और ईस्वी सन् ७७९ की मार्च २१ को समाप्त हुआ समझना चाहिए।[1]

कुवलयमालाकथा—परमार नरेशों—मुंज, भोज आदि तथा चौलुक्य नृपों सिद्धराज और कुमारपाल आदि के समय अपभ्रंश और प्राकृत की रचनाओं को संस्कृत में या विशाल संस्कृत की रचनाओं का साररूप देने के प्रयत्न किये गये हैं।[2] कुवलयमालाकथा भी उन्हीं प्रयत्नों में से एक है।[3] इसे कुवलय-

---

१. तस्सुज्जोयणणामो तणओ अह विरइया तेण।
तुङ्गमलंघं जिणभवणमणहरं सावयाउलं विसमं॥
जावालिउरं अट्ठावयं व अह अत्थि पुहईए॥
तुंगं धवलं मणहारिरयणपसरंत - धयवडाडोयं।
उसभ जिणिंदाययणं करावियं वीरभद्देण॥
तत्थ ठिएणं अह चोद्दसीए चेत्तस्स कण्हपक्खम्मि।
णिम्मविया बोहिकरी भव्वाण होउ सव्वाणं॥
परभड-भिउडी-भंगो पणईयणरोहिणीकलाचन्दो।
सिरिवच्छरायणामो रणहत्थी पत्थिवो जइया॥
को किर वच्चइ तीरं जिणवयण-महोयहिस्स दुत्तारं।
थोयमइणा वि बद्धा एसा हिरिदेविवयणेण॥
सगकाले वोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं।
एगदिणेणूणेहिं रइया अवरण्हवेलाए॥
ण कइत्तणाहिमाणो ण कव्वबुद्धीए विरइया एसा।
धम्मकह त्ति णिबद्धा मा दोसे काहिह इमीए॥

२. अमितगति ने अपनी पूर्ववर्ती धर्मपरीक्षा (अपभ्रंश) का तथा पंचसग्रह और आराधना (प्राकृत) का संक्षिप्त रूपान्तर संस्कृत में दिया है, समराइच्चकहा का संक्षेप प्रद्युम्नसूरि ने समरादित्यसंक्षेप (सं० १३२५) तथा देवचन्द्र के प्राकृत शान्तिनाथचरित्र का मुनिदेव ने संस्कृत (सं० १३२२) रूपान्तर किया है और देवेन्द्रसूरि ने सिद्धर्षि की उपमितिभवप्रपचाकथा का सारोद्धार (सं० १२९८) प्रस्तुत किया है।

३. सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित, सन् १९७०

मालाकथासंक्षेप भी कहा गया है। यह उद्योतनसूरि की विशाल प्राकृत रचना कुवलयमाला का शैलीपूर्ण संस्कृत में संक्षिप्त रूपान्तर है। कुवलयमाला को जबकि १३००० या १०००० ग्रन्थाग्र प्रमाण बतलाया है तो यह उस परिमाण में ३८०४, ३८९४ या ३९९५ ग्रन्थाग्र मानी गई है। कुवलयमाला में जब कि कुछ विभाग नहीं है तो यह चार प्रस्तावों में विभाजित है। दूसरे और चौथे प्रायः समान विस्तार के हैं जबकि प्रथम उनसे आधा जैसा है और तृतीय उनसे दुगुने से थोड़ा कम है। कुवलयमाला के मूल और संस्कृत दोनों रूपों में गद्य और पद्य स्पष्टतः मिले हुए हैं। यह प्रांजल तथा विद्वत्तापूर्ण शैली में लिखा हुआ एक संस्कृत चम्पू ही है। इसमें प्राकृत रचना के नगर, प्राकृतिक दृश्य, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि के लम्बे विवरणों को कम कर दिया गया है और कथा की बात एक भी नहीं छोड़ी गई है। पद्यों का सुन्दर संस्कृत रूपान्तर मनोहर है। यह रचना भाव, भाषा-प्रवाह आदि की दृष्टि से प्रसादपूर्ण रचना है। यद्यपि इसमें गौण पात्रों के नामों और पदों में थोड़ा-बहुत अन्तर है पर प्रस्तुत संक्षेप के लेखक ने मूल कुवलयमाला में भ्रम पैदा करनेवाले कई स्थलों को स्पष्ट किया है। शत्रुंजय तीर्थ के विषय में कुछ पद्य जोड़े हैं, आदि।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता परमानन्दसूरि के शिष्य रत्नप्रभाचार्य हैं। इसका संशोधन उस काल के प्रसिद्ध संशोधक प्रद्युम्नसूरि ने किया था।[2] इसलिए रत्नप्रभ प्रद्युम्नसूरि के समकालीन (१३वीं सदी का मध्य) हैं।

निर्वाणलीलावतीकथा—यह कथा भी स्त्रीपात्र-प्रधान नहीं है फिर भी आकर्षण के लिए यह नाम चुना गया है। कुवलयमाला के समान ही इसमें भी संसार-परिभ्रमण के कारणों को प्रदर्शित करनेवाली कथाएँ दी गई हैं। कुवलयमाला में जिस तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से प्रभावित व्यक्ति कथा के पात्र बनाये गये हैं उसी तरह निर्वाणलीलावती में पाँच दोष-युगलों अर्थात् (१) हिंसा-क्रोध, (२) मृषा-मान, (३) स्तेय माया, (४) मैथुन-मोह और (५) परिग्रह-लोभ को तथा स्पर्शन आदि पंच-इन्द्रियों के वशीभूत होने को संसार का कारण बताते हुए उनका फल भोगनेवाले व्यक्तियों की कथाएँ

---

१ कुवलयमाला, अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ९४.

२. वही, पृ० ९६

दी गई हैं। कुवलयमाला के समान ही इसका नाम इन कथाओं के एक नायिका-पात्र के नाम से रखा गया है और कथाओं को एक साथ पूर्वभवों के दृष्टान्त द्वारा जोड़ा गया है।

कथानक संक्षेप में इस प्रकार है: राजगृह मे सिंह नाम का राजपुत्र था, उसका विवाह एक सामन्त की पुत्री लीलावती से हुआ। राजा-रानी की मृत्यु के बाद सिंह ने राज्यपद पाया और अपने एक मित्र जिनदत्त के सम्पर्क से जिनधर्मी हो गया। एक समय जिनदत्त के धर्मगुरु समरसेन राजगृह में आते हैं और वे सब उनका उपदेश सुनने के लिए जाते हैं। राजा सिंह ने मुनि के अनुपम व्यक्तित्व से प्रभावित हो उनका परिचय पूछा। मुनि ने अपने तथा अपने पूर्व-जन्म के साथियों की कथाएँ बतलाते हुए कहा कि कौशाम्बी में विजयसेन नरेश, जयसेन मन्त्री, शूर पुरोहित पुरन्दर कोषाध्यक्ष तथा सार्थपति धन अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए रहते थे। उस नगर मे सुधर्म मुनि के आने पर विजयसेन आदि पाँचों उनसे सांसारिक दुःखों का कारण पूछने गये। मुनि उक्त पञ्चदोष युगलों को संसार का कारण बतलाते हैं और उनका फल भोगनेवाले क्रमशः राजपुत्र रामदेव, राजपुत्र सुलक्षण, वणिक्पुत्र वसुदेव, राजकुमार वज्रसिंह तथा राजपुत्र कनकरथ की दृष्टान्त-कथाएँ कहते हैं। इसके बाद स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियों के वश में होने से उनके कुफल की सूचक पाँच कथाओं के प्रसंग मे श्रोतारूप से उपस्थित विजयसेन नरेश आदि पाँचों व्यक्तियों के पूर्वभव की कथाएँ कहते हैं, जिन्हें सुन वे सब विरक्त हो गये और तपस्याकर स्वर्ग गये। वहाँ उन लोगों ने अगले भवसुधार के लिए परस्पर प्रतिबोध करने की प्रतिज्ञा की। स्वर्ग से च्युत होकर वे सब विभिन्न स्थानों में मनुष्यभव में जन्मे। जयसेन मन्त्री का जीव समरसेन नामक राजपुत्र हुआ पर वह कुसंस्कारों के कारण शिकारी बन गया। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उसे पुरोहित शूर के जीव एक देव ने हिंसा त्यागने के लिए सम्बोधित किया इससे वह राजपुत्र मुनि हो गया। तपस्या के प्रभाव से मुनि समरसेन अपने पूर्वभव के मित्रों को जान लेता है और उन्हें धर्ममार्ग में लाने के लिए प्रतिबोध हेतु भ्रमण करता है।

मुनि बतलाता है कि जयसेन का जीव समरसेन मैं ही हूँ और विजयसेन नृप के जीव राजा सिंह और सार्थवाह धन के जीव लीलावती को, जो तुम दोनों मेरे सम्मुख बैठे हो, प्रतिबुद्ध करने आया हूँ। यह सुन लीलावती और सिंह को जातिस्मरण हो गया और जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण द्वारा मोक्ष-पद पाया।

इस कथानक को लेकर प्राकृत भाषा में निव्वाणलीलावई नामक कथा ग्रन्थ स० १०८२ और १०९५ के मध्य आशापल्ली में जिनेश्वरसूरि ने रचा।[1] समस्त ग्रन्थ प्राकृत पद्यों में है पर मूल रचना अभी तक अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में किया गया है और उसके पदलालित्य आदि गुणों की प्रशसा की गई है। जिनेश्वरसूरि का परिचय उनकी अन्य रचना कथाकोषप्रकरण के साथ दिया गया है।

उक्त प्राकृत रचना के कथानक को आधार बना सस्कृत में निर्वाणलीलावती-काव्य की रचना इक्कीस उत्साहों में की गई है।[2] इसकी रचना ५३५० श्लोक-प्रमाण है।[3] प्रत्येक उत्साह के अन्त में एक पुष्पिका दी गई है जिसमें कवि ने जिनेश्वरसूरि का आभार स्वीकार किया है। यह जिनाङ्क महाकाव्य है और महाकाव्योचित लक्षणों से भूषित करने के प्रयत्न भी दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य की शैली को अलकारों से भी सुसज्जित किया गया है। वैसे इसमें अधि-कता से अनुष्टुभ् छन्दों में ही कथा वर्णित है पर पाँचवें और बारहवें में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

काव्य के अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति दी गई है जिससे इसके रचयिता जिनरत्नसूरि की गुरुपरम्परा पर प्रकाश पड़ता है। वे सुधर्मागच्छ के थे। इसी गच्छ मे निव्वाणलीलावई प्राकृत महाकाव्य के रचयिता जिनेश्वर-सूरि हुए। उनकी शिष्यपरम्परा में क्रमशः जिनचन्द्रसूरि—नवागी टीकाकार अभयदेवसूरि—जिनवल्लभसूरि—जिनदत्तसूरि— जिनचन्द्रसूरि—जिनपतिसूरि—जिनेश्वरसूरि हुए। इन जिनेश्वरसूरि के शिष्य जिनरत्नसूरि हुए।

खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावलि में बताया गया है कि जिनरत्नसूरि का पूर्वनाम विजयवर्द्धनगणि था। जिनेश्वरसूरि ने उन्हें वाग्भटमेरु (वाड़मेर) में स० १२८३ की माघ कृष्ण ६ को दीक्षा दी थी। सं० १३०४ में वैशाख सुदी १४ के दिन जिनेश्वरसूरि ने विजयवर्धनगणि को आचार्यपद पर स्थापित किया और उन्हें जिनरत्नसूरि नाम प्रदान किया। स० १३२६ में जिनेश्वरसूरि के नतृत्व मे तथा स० १३३९ में जिनप्रबोधसूरि के नायकत्व में निकाली सघयात्राओं में

१, जिनरत्नकोश, पृ० ३१८.

२. वही, पृ० ३३८.

३ निर्वाणलीलावती, प्रशस्ति, श्लोक १२-१६.

जिनरत्नसूरि साथ थे।[1] जिनरत्नसूरि ने स० १३४१ में लीलावतीकथासार की रचना की। इसकी रचना जावालिपत्तन (जालौर) नगर में हुई थी। इसकी रचना में भी कवि ने अपने सहयोगी लक्ष्मीतिलकगणि की सहायता ली है। इसमें प्रत्येकबुद्धचरित से भी बहुत सामग्री ली गई है।[2] इसका संशोधन सौम्यमूर्तिगणि तथा जिनप्रबोधयति ने किया था।[3]

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि कुञ्जरकृत लीलावतीकाव्य और एक अज्ञातकर्तृक लीलावतीकथा का उल्लेख हुआ है।[4]

ऋषिदत्ताचरित—इसमें ऋषि-अवस्था में हरिषेण-प्रीतिमती से उत्पन्न पुत्री ऋषिदत्ता और राजकुमार कनकरथ का कौतुकतापूर्ण चरित्र वर्णित है। कनकरथ एक अन्य राजकुमारी रुक्मिणी से विवाह करने जाता है पर मार्ग मे एक वन मे ऋषिदत्ता से विवाहकर लौट आता है। रुक्मिणी ऋषिदत्ता को एक योगिनी के द्वारा राक्षसी के रूप में कलंकित करती है। उसे फाँसी की भी सजा होती है। पर ऋषिदत्ता अपने शील के प्रभाव से सब विपत्तियों को पार कर जाती है और अपने प्रिय से समागम करती है।

इस आकर्षक कथानक को लेकर सस्कृत-प्राकृत मे कई कथाकाव्य उपलब्ध होते हैं।

इस कथा पर सबसे प्राचीन रचना प्राकृत में है जो परिमाण में १५५० ग्रन्थाग्र है।[5] इसकी रचना नाइलकुल के गुणपाल मुनि ने की है। लेखक की अन्य रचना 'जम्बूचरिय' भी मिलती है। इसिदत्ताचरिय (ऋषिदत्ता-चरित्र) की प्राचीन प्रति स० १२६४ या १२८८ की मिलती है। इससे यह उक्त काल के पूर्व की रचना है। गुणपाल मुनि का समय भी ९–१०वीं शताब्दी के बीच अनुमान किया गया है।

दूसरी रचना[6] ११९४ संस्कृत श्लोकों में है जो चार सर्गों में क्रमश इस

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि, पृ० ४९, ५२, ५६.

२ प्रत्येकबुद्धचरित, सर्ग ३, श्लो० १८२-१९६, लीलावतीकथासार, १. ७२–८७.

३. लीलावतीकथासार, प्रशस्ति.

४. जिनरत्नकोश, पृ. ३३८.

५-६. वही, पृ० ५९.

प्रकार विभक्त हैं : प्रथम में २५८, दूसरे में २७८, तीसरे में ५४० और चतुर्थ में ११८ श्लोक। कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

अन्य अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[1] विभिन्न परिमाण की मिलती हैं यथा २८२७ ग्रन्थाग्र, ४४२ ग्रन्थाग्र (संस्कृत) और ४५१ सस्कृत श्लोकों में।

इस चरित्र पर अज्ञातकर्तृक एक ऋषिदत्तापुराण और ऋषिदत्तासती-आख्यान के उल्लेख मिलते हैं।[2]

भुवनसुन्दरीकथा—महासती भुवनसुन्दरी की चमत्कारपूर्ण कथा को लेकर प्राकृत में एक विशाल रचना की गई जिसमें ८९११ गाथाएँ हैं। इन गाथाओं का परिमाण बृहट्टिप्पनिका में १०३५० ग्रन्थाग्र बतलाया गया है। इसकी रचना सं० ९७५ में नाइलकुल के समुद्रसूरि के शिष्य विजयसिंह ने की है। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १३६५ की मिली है।[3]

सुरसुन्दरीचरिय—प्राकृत भाषा में निबद्ध यह राजकुमार मकरकेतु और सुरसुन्दरी का एक प्रेमाख्यान है। इसमे १६ परिच्छेद हैं, प्रत्येक में २५० गाथाएँ हैं और कुल मिलाकर ४००१ गाथाओं में समाप्त हुआ है।[4]

कथावस्तु—सुरसुन्दरी कुशाग्रपुर के राजा नरवाहनदत्त की पुत्री थी। वह नाना विद्याओं में निष्णात थी। चित्र देखने से उसे हस्तिनापुर के मकरकेतु नामक राजकुमार से आसक्ति हो गई थी। उसकी सखी प्रियवदा मकरकेतु की तलाश में निकलती है। उसे बुहिला नामक एक परिव्राजिका ने कपट से नास्तिकता का पाठ पढ़ाना चाहा किन्तु सुरसुन्दरी ने उसे तर्कों से पराजित कर दिया। उसने रुष्ट होकर उसका चित्रपट उज्जैननरेश शत्रुंजय को दिखाकर विवाह के लिए उभाड़ा। शत्रुंजय ने उसके पिता से सुरसुन्दरी की माँग की पर वह ठुकरा दी गई जिससे दोनों राजाओं में युद्ध छिड़ गया। इसी बीच वैताढ्य पर्वत के एक विद्याधर ने सुरसुन्दरी का अपहरण

१–२. जिनरत्नकोश, पृ० ५९.

३. वही, पृ० २९९; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८७.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ६७, ४४७; मुनि राजविजय द्वारा सपादित एव जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला द्वारा प्रकाशित, बनारस, सं० १९७२; अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर से भी प्रकाशित; इसका गुजराती अनुवाद जैनधर्म प्र० सभा, भावनगर से १९१५ में प्रकाशित

कर लिया और उसे ले जाकर रत्नद्वीप में बाँसों के जाल में छिपाकर रखा। वहाँ वह आत्मघात की इच्छा से विषफल खा लेती है। दैवयोग से इसी बीच उसके सच्चे प्रेमी मकरकेतु ने वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा की, तथा वहाँ से जाकर उसने शत्रुंजय नृप का विनाश किया। पर यहाँ सुरसुन्दरी को किसी पूर्व वैरी वेताल ने हरणकर आकाशमार्ग से हस्तिनापुर के उद्यान में गिरा दिया। वहाँ के राजा ने उसे सुरक्षा दे दासी से सब वृत्तान्त जान लिया। उधर शत्रुंजय के वध के अनन्तर मकरकेतु का भी अपहरण कर लिया गया।

बड़ी कठिनाइयों और नाना घटनाओं के पश्चात् सुरसुन्दरी और मकरकेतु का पुनर्मिलन और विवाह हुआ। पश्चात् ससारसुख भोग दोनों ने दीक्षा ले तपस्याकर मोक्षपद पाया।

इस कथा की नायिका सुरसुन्दरी का नाम व वृत्तान्त वास्तव में ११वें परिच्छेद से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व मकरकेतु के माता पिता अमरकेतु और कमलावती का तथा उस नगर के सेठ धनदत्त का घटनापूर्ण वृत्तान्त और कुशाग्र-पुर के सेठ की पुत्री श्रीदत्ता से विवाह, उसी घटनाचक्र के बीच विद्याधर चित्र-वेग और कनकमाला तथा चित्रगति और प्रियंसुन्दरी के प्रेमाख्यान वर्णित हैं।

इस कथा मे प्रारम्भ मे सज्जन-दुर्जन-वर्णन तथा प्रसग-प्रसग पर मन्त्र, दूत, रणप्रयाण, पर्वत, नगर, आश्रम, सध्या, रात्रि, सूर्योदय, विवाह, वनविहार आदि के वर्णन दिये गये हैं। अनेक अलकारों का प्रयोग भी हुआ है। समस्त ग्रन्थ में आर्याछन्द का व्यवहार हुआ है पर कहीं-कहीं वर्णन विशेष मे भिन्न-भिन्न छन्दों का भी व्यवहार हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके प्रणेता धनेश्वरसूरि हैं जो जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थान्त में १३ गाथाओं की एक प्रशस्ति मे ग्रन्थकार का परिचय, रचना का स्थान तथा काल का निर्देश किया गया है। तदनुसार यह कथाकाव्य चड्डावल्लिपुरी (चन्द्रावती) मे स० १०९५ की भाद्रपद कृष्ण द्वितीया गुरुवार धनिष्ठा नक्षत्र में बनाया गया।[1] सभवतः इनके ही गुरु जिनेश्वरसूरि खरतरगच्छ

---

1. तेसिं सीसवरो धणेसर मुनी एय कहं पायड।
चड्डावल्लि पुरी ठिओ स गुरुणो आणाए पाढंतरा॥
कासी विक्कम वच्छरम्मि य गए बाणक सुन्नोड्डुपे।
मासे भद्दवए गुरुम्मि कसिणे बीया धणिट्ठा दिने॥

के संस्थापक थे। इसी कथा पर नयसुन्दरकृत संस्कृत सुरसुन्दरीचरित्र का उल्लेख मिलता है।[1]

नर्मदासुन्दरीकथा—इस कथा में नर्मदासुन्दरी द्वारा अनेक विचित्र परिस्थितियों में पड़कर अपने सतीत्व की रक्षा करने की अद्भुत कथा का वर्णन है।[2]

कथावस्तु—नर्मदासुन्दरी का विवाह एक अजैन पर विवाह के पूर्व जैनधर्म स्वीकार करनेवाले महेश्वरदत्त वणिक् से होता है। वह उसे ले धन कमाने के लिए यवनद्वीप जाता है पर उसे नर्मदासुन्दरी के चरित्र पर शङ्का होने से धोखे से मार्ग में सोयी छोड़ देता है। बाद में वह कई कष्ट झेलने के बाद अपने चाचा वीरदास को मिल जाती है और उसके साथ बब्बर देश जाती है। यहीं से उसका जीवन-संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता है। वहाँ हरिणी नामक वेश्या की दासियाँ उसे फुसलाकर ले भागती हैं। वेश्या उसे अपने जैसा जीवन जीने को बाध्य करती है पर वह अपने शीलव्रत में दृढ़ रहती है। फिर वह दूसरी वेश्या करिणी के चक्कर में फँसती है और वहाँ से राजा द्वारा पकड़कर बुलाई जाती है पर रास्ते में उसने पगली बनने का अभिनय किया इससे वह बच सकी। फिर जिनदास श्रावक की सहायता से अपने चाचा वीरदास के पास पहुँच सकी। अन्त में संसार से विरक्त होकर उसने सुहस्तसूरि से दीक्षा ले ली।

नर्मदासुन्दरी के कथानक को लेकर कई कवियों ने प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती में काव्य लिखे। उनमें देवचन्द्रसूरि और महेन्द्रसूरि कृत प्राकृत रचना प्रकाशित हुई है। अपभ्रंश में जिनप्रभसूरि की और गुजराती मे मेरुसुन्दर की रचना भी प्रकाश में आई है।

पहली देवचन्द्रसूरिकृत रचना २५० गाथा-प्रमाण है। उन्होंने अपने पूर्व-गुरु आचार्य प्रद्युम्नसूरिरचित 'मूलशुद्धिप्रकरण' नामक प्राकृत ग्रन्थ के ऊपर विस्तृत टीका की रचना की थी। उसी टीका में उदाहरणरूप अनेक प्राचीन कथाओं का संकलन किया था। उसमें प्रस्तुत नर्मदासुन्दरी की कथा, प्रसंगवश संक्षेप मे लिखी है। यह रचना कथागत मूलवस्तु के परिज्ञान में बहुत उपयोगी है। देवचन्द्रसूरि ने अन्त में उल्लेख किया है कि यह कथा मूलरूप मे वसुदेव-हिण्डी नामक प्राचीन कथाग्रन्थ मे ग्रथित है। उसी के आधार से उन्होंने अपनी

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० ४४७.

२. वही, पृ० २०५

रचना बनाई थी। ये देवचन्द्रसूरि सुप्रसिद्ध कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के गुरु थे।

दूसरी रचना के रचयिता महेन्द्रसूरि हैं।[1] इसमें १११७ गाथाएँ हैं। बीच-बीच में कितना ही गद्यभाग है इससे इसका ग्रन्थाग्र १७५० श्लोक-प्रमाण है। महेन्द्रसूरि ने लिखा है कि उन्होंने यह मूलकथा शान्तिसूरि नामक आचार्य के मुख से सुनी थी। साहित्यिक कृति के रूप मे महेन्द्रसूरिवाली कथा का मूलाधार देवचन्द्रसूरिकृत उपर्युक्त रचना होना सम्भव है। इसकी रचना सं० ११८७ मे हुई थी। महेन्द्रसूरि की गुरुपरम्परा एव अन्य रचनाओं के सम्बन्ध मे विशेष मालूम नहीं है।

महेन्द्रसूरि की रचना बहुत सरल, प्रासादिक और सुबोधात्मक है। कथा की घटना बच्चे से बूढे तक हृदयगम कर सकते हैं, ऐसी सरलरीति मे वह कही गई है। बीच-बीच मे लोकोक्ति और सुभाषितों की छटा भी देखते बनती है। प्राकृत भाषा के अभ्यासियों के लिए यह सुन्दर रचना है। महेन्द्रसूरि ने यह रचना अपने शिष्य की अभ्यर्थना से ही बनाई थी। इसकी प्रथम प्रति उनके शिष्य शीलचन्द्रगणि ने तैयार की थी।

कुछ अज्ञातकर्तृक नर्मदासुन्दरीकथाएँ भी मिली हैं। एक में २४९ गाथाएँ हैं। एक अज्ञातकर्तृक रचना प्रकाशित भी हुई है।[2]

मनोरमाचरित—मनोरमा की कथा जिनेश्वरसूरिकृत कहाणयकोस (स० ११०८) में दी गई है। इसमें बतलाया गया है कि श्रावस्ती का राजा किसी नगर के व्यापारी की पत्नी को अपनी रानी बनाना चाहता है। वह सफल भी हो जाता है किन्तु अन्त मे देवताओं द्वारा मनोरमा के शील की रक्षा की जाती है।

इस कथा को स्वतंत्र विशाल प्राकृत रचना के रूप मे बनाया गया है जिसका परिमाण १५००० गाथाएँ हैं। इसकी रचना नवांगी टीकाकार अभयदेव के शिष्य वर्धमानाचार्य ने स० ११४० में की है।[3] वर्धमानाचार्य की अन्य रचनाओं मे आदिनाहचरिय (स० ११६०) और धर्मरत्नकरण्डकवृत्ति (स० ११७२) मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई, सं० २०१६.
२. वही; हंसविजय फ्री लाइब्रेरी, अहमदाबाद, १९१९.
३. वही, पृ० ३०१; जैन ग्रन्थावलि (श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्स, बम्बई), पृ० २२९.

मलयसुन्दरीकथा—इसमें महाबल और मलयसुन्दरी की प्रणयकथा का वर्णन है। इस नाम की अनेक रचनाएँ विविधकर्तृक मिलती हैं।[1]

प्रथम प्राकृत १२५६ गाथाओं में अज्ञातकर्तृक है। इसमें एक पौराणिक कथा का परीकथा से संमिश्रण किया गया है। इसमें प्रचुर कल्पनापूर्ण अनोखे और जादूभरे चमत्कारी कार्यों की बाढ मे पाठक बहता है। इस उपन्यास मे परीकथा साहित्य में सुज्ञात कल्पनाबन्धों (motifs) का ताना-बाना फैला हुआ है जिसमे राजकुमार महाबल और राजकुमारी मलयसुन्दरी का आकस्मिक मिलन, फिर एक दूसरे से वियोग और फिर सदा के लिए मिलन चित्रित है। यह सब उनके पूर्वोपार्जित कर्मों के फल का ही आश्चर्यकारी रूप था। पीछे महाबल जैन मुनि हो जाता है और मलयसुन्दरी साध्वी। इस तरह जैन पौराणिक कथा को परीकथा से संमिश्रितकर प्रस्तुत किया गया है।

यह कथानक जैन समाज में बहुत प्रचलित रहा है।

इस पर १५वीं शताब्दी मे संस्कृत गद्य मे अचलगच्छ के माणिक्यसूरि ने 'महाबलमलयसुन्दरी' नामक कथा लिखी है।[2] प्राकृत चरित्र को आधार बना कर संस्कृत पद्यों में आगमगच्छ के जयतिलकसूरि ने भी मलयसुन्दरीचरित्र[3] की रचना की है। यह चार प्रस्तावों मे विभक्त है जिनमें २३९० श्लोक हैं। जयतिलकसूरि ने इसे ज्ञान का माहात्म्य प्रकट करनेवाला ज्ञानरत्न-उपाख्यान कहा है।[4] इसमें मलयसुन्दरी को भग० पार्श्वनाथ के निर्वाण से १०० वर्ष बाद उत्पन्न होना बतलाया गया है।[5] इसी शताब्दी में पल्लीगच्छ के शान्तिसूरि ने ५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण मलयसुन्दरीचरित्र को सं० १४५६ मे बनाया है[6] और पिप्पलगच्छ

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; बम्बई से १९१८ में प्रकाशित.

३. वही; देवचन्द्र लालभाई पु० ग्रन्थमाला, बम्बई; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; विजयदानसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, वरतेज, सं० २००९

४. ज्ञानादुद्ध्रियते जन्तुः पतितोऽपि महापदि।
एकश्लोकार्थबोधेन यथा मलयसुन्दरी ॥ १.१९ ॥

५. मलयसुन्दरीचरित्र, प्रस्ताव ४.८२४.

६ वही; इसका जर्मन अनुवाद हर्टेल ने 'इण्डिश मार्सेन' (१९१९) में किया है; विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३३ पर टिप्पण.

के धर्मदेवगणि के शिष्य धर्मचन्द्र ने मलयसुन्दरीकथोद्धार की रचना की है। एक अज्ञातकर्तृक संस्कृत मलयसुन्दरीचरित्र भी उपलब्ध है।

मदनरेखाचरित—इसमें मिथिला के नृप नमि (प्रत्येकबुद्ध) की माता मदनरेखा का चरित्र दिया गया है। मदनरेखा सुदर्शनपुर के नृप मणिरथ के अनुज युगबाहु की पत्नी है। मणिरथ उस पर आसक्त हो जाता है और उसे पाने के लिए अपने अनुज को मार डालता है पर मणिरथ भी सर्पदंश से मारा जाता है। मदनरेखा अपने शील की रक्षा के लिए तथा गर्भस्थ बालक की रक्षा के लिए भाग निकलती है। रम्भागृह में नमि का जन्म होता है परन्तु सरोवर में वस्त्र-प्रक्षालन के लिए जाते समय बालक का अपहरण हो जाता है। उस दुःख की हालत मे एक विद्याधर उसके शील का अपहरण करने का प्रयास करता है पर चतुराई से वह बच निकलती है और सुव्रता नामक साध्वी हो जाती है। बालक मिथिलानरेश पद्मरथ द्वारा पाला-पोसा जाता है और शिक्षा पाकर राज्यपद पाता है। मदनरेखा के ज्येष्ठ पुत्र एव सुदर्शनपुर के अधीश चन्द्रयश और मिथिलानरेश नमि के बीच एक बार होनेवाले युद्ध का सुव्रता ने उनके सहोदर होने की याद दिलाकर निवारण किया था।

यह चरित्र प्रत्येकबुद्धकथाओं में नमिचरित्र के साथ भी वर्णित है पर पीछे इसकी रोचकता के कारण अनेक स्वतन्त्र रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत गद्य में एक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[1] इस पर जिनभद्र-सूरि (१२वीं शताब्दी) ने मदनरेखाआख्यायिकाचम्पू नामक उच्चकोटि का काव्य लिखा है।[2] उसका वर्णन हम चम्पू-काव्यों में दे रहे हैं। शुभशीलगणि के भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में यह चरित्र विस्तार से दिया गया है। गुजराती में सं० १५३७ मे मतिशेखर (उकेशगच्छीय) ने इस चरित्र की रचना की है।[3]

मदिरावतीकथानक—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में शील के माहात्म्य पर मदिरावती की रोचक कथा दी गई है। उसी पर अज्ञातकर्तृक एक रचना मिलती है।[4]

---

1 जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३००; जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ४६९.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

गुणावलीकथा—इसमे गुणावली के शीलरक्षा के प्रयत्नों का वर्णन है।[1] इसकी रचना जिनचन्द्रसूरि ने की है जो नागपुरीय तपागच्छ के सागरचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनका अन्य ग्रन्थ सिद्धान्तरत्निकाव्याकरण (स० १८५०) भी मिलता है।

शीलवतीकथा—कुमारपालप्रतिबोध-समागत अजितसेन-शीलवती के रोचक चरित को लेकर शीलवतीकथा और शीलवतीचरित्र नामक कई रचनाएँ मिलती हैं।

कथावस्तु—शीलवती का पति श्रेष्ठिपुत्र अजितसेन राजा के साथ परदेश जाने लगा तो उसे अपनी पत्नी के प्रति बड़ी चिन्ता हुई। शीलवती ने प्रतिज्ञा कर विश्वास दिलाया कि उसका शील त्रिकाल में भी भग न होगा। पर घर में उसके श्वसुर को उस पर शङ्का हुई और वह उसे रथ पर बैठाकर पीहर के लिए रवाना हो गया। रास्ते में शीलवती ने अपनी चातुरी से कई अद्भुत कार्य किये। इससे उसका श्वसुर प्रसन्न हो गया और उसने उसे सारे घर की मालकिन बना दिया।

एक बार राजा ने भी क्रमशः अशोक, रतिकेलि, ललिताग, कामाकुर आदि को भेज शीलवती की परीक्षा की पर शीलवती ने चतुराई से उन्हें एक गड्ढे में कैद कर दिया। एक बार राजा उसके पति अजितसेन के साथ उसके यहाँ भोजन करने आया। शीलवती ने उन कैद किये गये व्यक्तियों द्वारा शीघ्र ही भोजन तैयार करा दिया। पीछे सारा रहस्य खुला कि राजा के भेजे लोगों की क्या दुर्दशा हुई थी आदि।

इस कथानक को लेकर सोमतिलकसूरि ने शीलवतीकथा लिखी।[2] चन्द्रगच्छ के उदयप्रभसूरि ने ९८८ ग्रन्थाग्र परिमाण एक सस्कृत रचना[3] बनाई जिसकी प्राचीन प्रति स० १४०० की मिलती है। इसी तरह रुद्रपल्लीय-गच्छ के आनन्दसुन्दर के शिष्य आज्ञासुन्दर ने स० १५६२ में शीलवतीकथा[4] की सस्कृत में रचना की।

विनयमण्डनगणि और नेमिविजय ने उक्त कथानक पर शीलवतीचरित्र[5] नामक ग्रन्थ लिखे।

शीलवतीकथा पर अज्ञातकर्तृक दो प्राकृत रचनाएँ भी उपलब्ध हुई हैं।[6]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०६.

२–६. जिनरत्नकोश, पृ० ३८४-८५ में उपर्युक्त सभी ग्रन्थ अंकित हैं। उनमें से एक प्रकाशित हो गया है।

चित्रसेन-पद्मावतीचरित—इसे पद्मावतीचरित्र तथा शीलालकारकथा भी कहते हैं। इसमें स्वदार-सन्तोषव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए चित्रसेन और पद्मावती की कथा कही गई है।

कथावस्तु—राजपुत्र चित्रसेन और मन्त्रीपुत्र रत्नसार मित्र थे। दोनों की सुन्दरता से नगर की युवतियाँ आकर्षित होने लगीं। लोगों ने शिकायत की। राजा ने झक मे आकर सात रत्न देकर राजकुमार से राज्य छोड़ देने को कहा। राजकुमार मित्र के साथ चल देता है। भटकते हुए जङ्गल मे वहें एक युवतो का चित्र देख मूर्च्छित हो जाता है। होश आने पर वह और उसका मित्र एक केवली से पूछते हैं और मालूम करते हैं कि यह चित्र पद्मावती का है। पूर्व जन्म में चित्रसेन और पद्मावती हंसयुगल थे और दोनों इस भव में जन्मे हैं। चित्रसेन और उसका मित्र पद्मावती की खोज में रत्नपुर जाते हैं। वहाँ चित्रसेन ने पूर्वजन्म का चित्र बनाकर प्रदर्शित किया। पद्मावती उस चित्र को देख मूर्च्छित हो गई। स्वयंवर द्वारा उनका विवाह हुआ। लौटते समय एक वटवृक्ष पर बैठे यक्ष-यक्षी की बात सुनकर रत्नसार ने चित्रसेन-पद्मावती को अनेक दुर्घटनाओं से बचाया और अन्तिम घटना में रत्नसार को पाषाण के रूप में परिवर्तित हो जाना पड़ा। चित्रसेन बड़ा दुःखी हुआ और यक्ष से उसके त्राण का उपाय पूछा। पद्मावती ने अपने पुत्र होने पर उसे गोद में लेकर अपने हाथ से रत्नसार की पाषाण प्रतिमा को ज्यों स्पर्श किया कि वह सजीव हो गया। इसके बाद चित्रसेन के साहसिक कार्यों का वर्णन है। पीछे चित्रसेन और पद्मावती ने श्रावक के १२ व्रत ले लिये और यात्राएँ कीं।

इस कथा को लेकर अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं। सर्वप्रथम धर्मघोष-गच्छ के महीचन्द्रसूरि के शिष्य पाठक राजवल्लभ ने ५११ सस्कृत श्लोकों में इसकी रचना सं० १५२४ में की है।[१] यह कथा उन्होंने अपनी षडावश्यक-वृत्ति में भी सक्षेप में २०० श्लोकों में दी है और लिखा है कि यह कथा शीलतरङ्गिणी से ली गई है।

दूसरी रचना स० १६४९ में देवचन्द्र के शिष्य कल्याणचन्द्र ने की थी।[२]

तीसरी रचना स० १६६० में बुद्धिविजय ने देशी भाषा से मिश्रित

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० १२३ और २३५; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.

२. वही, पृ० १२३.

जैन संस्कृत में की है।[1] बुद्धिविजय हीरविजयसूरि-सन्तानीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य एवं पं० जगन्मल्ल के शिष्य थे। इसकी रचना तब की गई थी जब विजयसेनसूरि पट्टधर थे।

अन्य रचनाओं में हेमचन्द्र, पद्मसेन, शीलविजय, रत्नशेखर और पूर्णमल्ल कृत संस्कृत में निबद्ध कृतियाँ मिलती हैं।[2]

गुजराती में नयविजय और भक्तिविजय की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[3]

मानतुङ्ग-मानवतीचरित—इस लोककथा को मृषावाद-परिहार के साथ जोड़ा गया है। यह मूल में पंडित मोहनविजय द्वारा सं० १७६० में विरचित मानतुङ्ग-मानवतीरास के आधार पर विरचित संस्कृत रचना है। यह कथानक छोटे-छोटे आठ सर्गों में विभक्त है।[4] कथावस्तु इतनी मनोहर है कि इसका आधुनिक चित्रपट पर भी अच्छी तरह अभिनय किया जा सकता है।

कथावस्तु—अवन्ती के एक सेठ की पुत्री मानवती अपनी सखियों के आगे विनोदवश अपने अभिमानी स्वभाव का वर्णन करती है और कहती है कि वह अपने पति को हर तरह से अपने अधीन रखेगी। यह बात अवन्ती का राजा मानतुङ्ग सुन लेता है। उसके गर्व को खर्व करने के लिए वह उससे विवाह करता है और प्रथम मिलन के समय से ही उसे दण्ड देने के हेतु एक अलग प्रासाद में बन्द करके रखता है और अपनी गर्वोक्ति सिद्ध करने को कहता है। वह गुपचुप अपने पिता से कह एक सुरङ्ग बनवाकर योगिनी का वेश बनाकर बाहर निकल जाती है। उसने उस वेश में राजा पर एक जादू-सा किया। उसने एक प्रसंग में राजा से अपने चरण धुलवाये और उसे चरणोदक पिलाया। उस योगिनी ने अप्सरा का रूप धारणकर राजा से अपने अभिमान की अन्य शर्तें पूरी कराईं। एक समय राजा के एक अन्य विवाह के प्रसंग में उसने उसे छलकर गर्भधारण किया और चिह्नस्वरूप अंगूठी, मोती का हार आदि ले लिये और अपने एकान्त महल में आकर रहने लगी। जब राजा को

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२३, जैन विद्याभवन, कृष्णनगर, लाहौर, १९४२, अंग्रेजी अनुवादसहित, सम्पादक—मूलराज जैन.

२. वही, पृ० १२३ और २२५.

३. वही, पृ० १२३.

४. गुर्जर जैन कविओ, भाग २, पृ० ४३६; ग्रन्थ मेसर्स ए० ए० एण्ड कम्पनी पालीताना से प्रकाशित है।

गर्भ रहने का पता चलता है तो वह और उसकी दूसरी रानियाँ बड़ी खेदखिन्न होती हैं। पीछे राजा को उसके पुत्र होने का समाचार मिलता है। राजा उसे दण्ड देने के लिए जाता है पर पीछे उसे सारा भेद मालूम होने से वह बड़ा लज्जित होता है और अपनी पत्नी-पुत्र को बड़े उत्सव के साथ घर ले आता है।

इस लोककथा को धार्मिक कथा के रूप में इस प्रकार परिवर्तित किया गया है कि मानवती ने पूर्व जन्म में झूठ बोलने का त्याग किया था इसलिए इस जन्म में उसे वह शक्ति मिली कि उसने विनोदवश बोले गये अपने गर्वित वचनों को भी पूरा किया।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना पंन्यास तिलकविजयगणि ने सं० १९३९ में की है।[1] इनकी अन्य रचनाएँ और विशेष परिचय ज्ञात नहीं हो सका है।

आरामशोभाकथा—आरामशोभाकथा लौकिक कथा-साहित्य की रोचक कथा है पर यह सम्यक्त्व की महिमा प्रकट करने के लिए एक धर्मकथा के रूप में दी गई है।

जैन कथाओं में इसे हरिभद्रसूरिकृत सम्यक्त्वसप्ततिका पर संघतिलकसूरि-विरचित तत्त्वकौमुदी नामक विवरण (वि० सं० १४२२) में पाते हैं।

स्वतंत्र रचनाओं के रूप में सं० १५३७ में जिनहर्षसूरि ने संस्कृत छन्दों में ५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण आरामशोभाकथा[2] की रचना की। जिनहर्षसूरि खरतर-गच्छीय पिप्पलकशाखा के जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे।

दूसरी रचना[3] ४२० ग्रन्थाग्र प्रमाण उन्हीं जिनचन्द्रसूरि के शिष्य मलय-हंसगणि (१६वीं शती) ने लिखी। इस पर कुछ अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[4] भी मिलती हैं।

अनंगसुन्दरीकथा—इसमें उज्जैननरेश जयसेन की रानी अनंगसुन्दरी जो कि कुमार श्रमणकेशी की माता थी, की कथा ३०० श्लोकों में वर्णित है।[5] रचयिता का नाम अज्ञात है।

---

१. त्रिनन्दग्रहभूसंख्ये वैक्रमीये सुवत्सरे (१९३९)।
रचयामास पंन्यासो गणीन्द्रस्तिलकाभिधः॥

२-४. जिनरत्नकोश, पृ० ३२.

५. वही, पृ० ७.

गुणसुन्दरीचरित—इसमें पुण्यपाल राजा की रानी गुणसुन्दरी के शील का अद्भुत वर्णन है। इसे पुण्यपालराजकथा भी कहते हैं।[१] इसकी प्राचीन प्रतियाँ स० १६५८ और १६७६ की मिलती हैं। कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इस पर गुजराती में जिनकुशलसूरि ने स० १६६५ में गुणसुन्दरीचतुष्पदी की रचना की है।[२] गुजराती में अन्य रचनाएँ भी हैं।

पद्मश्रीकथा—यह प्राकृत में ३१८ ग्रन्थाग्र-प्रमाण[३] लघु कथा है। इसमें नायिका पद्मश्री अपने पूर्वजन्म में एक सेठ की पुत्री थी, जो बालविधवा होकर अपना जीवन अपने दो भाइयों और उनकी पत्नियों के बीच एक ओर ईर्ष्या और सन्ताप तथा दूसरी ओर धर्म-साधना में बिताती रही। दूसरे जन्म में पूर्व पुण्य के फल से राजकुमारी हुई। किन्तु जो पापकर्म शेष रहा था उसके फलस्वरूप उसे पति-परित्याग का दुःख भोगना पड़ा तथापि सयम और तपस्या के बल से अन्त में उसने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद पाया।

इसके कर्ता एवं रचना का समय अज्ञात है। इस कथा पर अपभ्रंश में कवि धाहिलकृत पउमसिरिचरिउ मिलता है।[४]

रोहिणीकथा—नारी पात्रों में रोहिणी की कथा विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की गई है। उपदेशप्रासाद में तीन विभिन्न रोहिणी नारियों की कथा दी गई है। एक विकथा पर, दूसरी रोहिणी व्रत का प्रवर्तन करनेवाली तथा तीसरी सती की कथा। शुभशीलगणिकृत भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में रोहिणी सती की कथा दी गई है।

स्वतंत्र रचनाओं के रूप में प्राकृत में एक[५] कृति १३४ गाथाओं में रूपविजयगणिकृत, दूसरी[६] अज्ञातकर्तृक चार प्रस्तावों में तथा तीसरी[७] का उल्लेख नन्दिताढ्य के गाहालक्खण मे रोहिणीचरित्र के रूप में मिलता है। सस्कृत में भानुकीर्ति[८] और नरेन्द्रदेव[९] की रचनाओं का उल्लेख किया गया है। अज्ञात-कर्तृक[१०] कुछ रोहिणीकथाएँ और रोहिणीचरित्र भी उपलब्ध हुए हैं। कनक-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०५, २५१.
२. वही, पृ० १०५.
३. वही, पृ० २३४.
४. सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित.
५–१०. जिनरत्नकोश, पृ० ३३३.

कुशलरचित रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा[1] तथा रोहिणेयकथा का परिचय व्रत-कथाओं के प्रसङ्ग में दिया गया है।

चम्पकमालाकथा—सुपासनाहचरिय में सम्यक्त्व-प्रशंसा में चम्पकमाला का उदाहरण आया है। उक्त कथानक को लेकर स्वतन्त्र कथाग्रन्थ की रचना की गई है। चम्पकमाला चूडामणिशास्त्र की पण्डिता थी और इस शास्त्र की सहायता से जानती थी कि उसका कौन पति होगा तथा उसके कितनी सन्तान होंगी।

इसकी रचना तपागच्छीय मुनिविमल के शिष्य भावविजयगणि ने सं० १७०८ में की थी।[2] भावविजय की अन्य रचनाओं में उत्तराध्ययनटीका (सं० १६८१) तथा षट्त्रिंशज्जल्पविचार मिलते हैं।

दूसरी रचना २०वीं शती के तपागच्छाचार्य यतीन्द्रसूरि ने संस्कृत गद्य में चम्पकमालाचरित्र लिखा है। इसका रचनाकाल सं० १९९० है।[3]

कलावतीचरित—शील के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए कलावती के चरित्र संस्कृत-प्राकृत दोनों प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं। अज्ञात-कर्तृक प्राकृत कलावतीचरित्र[4] की एक हस्तलिखित प्रति में सं० १२९१ दिया गया है। संस्कृत श्लोकों में निबद्ध अज्ञातकर्तृक कलावतीकथा[5] भी मिलती है।

कमलावतीचरित—इसमें मेघरथ नृप और रानी कमलावती का चरित्र दिया गया है। राजा-रानी संसार से विरक्त हो जाते हैं पर रानी कमलावती अपने दुधमुँहे बच्चे के कारण २० वर्ष घर में शील पालनकर पुत्र को गद्दी पर बैठा दीक्षा ले लेती है। इस पर संस्कृत में एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[6] गुजराती में विजयभद्र (१५वीं शती) कृत कमलावतीरास मिलता है।[7]

कनकावतीचरित—इसे रूपसेनचरित्र भी कहते हैं। इसमें रूपसेन नृप और रानी कनकावती का आख्यान वर्णित है। संस्कृत में जिनसूरिरचित

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४.
२. वही, पृ० १२१; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९७०.
३. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४२.
४–५. जिनरत्नकोश, पृ० ७४.
६. वही, पृ० ६७.
७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १४.

(अज्ञातकाल) तथा अज्ञातकर्तृक (सं० १६०४) रचनाएँ मिलती हैं।[1] गुजराती मे साध्वी हेमश्री द्वारा रचित कनकावतीआख्यान (स० १६४४) मिलता है।[2]

शीलचम्पकमाला—इसमें धनहीन को दान देने के माहात्म्य पर चम्पकमाला की कथा दी गई है।[3] कर्ता का नाम अज्ञात है।

कुन्तलदेवीकथा—गर्वरहित दान देने के प्रसग मे कुन्त देवी का कथानक दानप्रदीप (स० १४९९) में आया है। इसी को किसी लेखक ने स्वतत्र रचना के रूप में संस्कृत श्लोकों मे लिखा है पर रचनासवत् ज्ञात नहीं है।[4]

अच्चंकारिभट्टिकाकथा—उपदेशप्रासाद में उक्त कौतुकपूर्ण कथा आई है। उसी पर एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[5]

मृगसुन्दरीकथा—श्रावकधर्म की दशविध क्रियाओं को यत्नपूर्वक पालने के लिए मृगसुन्दरी की कथा दृष्टान्तरूप में कही गई है। इस पर अनेक ग्रन्थों के लेखक कनककुशलगणि ने स० १६६७ में एक कृति लिखी है।[6] एक दूसरी अज्ञातकर्तृक रचना का भी उल्लेख मिलता है। गुजराती में भी इस कथा पर रचनाएँ हैं।

शीलसुन्दरीशीलपताका—इसमे शीलतरंगिणी ग्रन्थ मे वर्णित शीलसुन्दरी की कथा दी गई है जिसमें चतुर्विध आहार का त्यागकर सयमपालन से अपने जन्म का उद्धार करनेवाली शीलसुन्दरी नायिका है।[7] गुजराती में शीलसुन्दरी-रास भी मिलता है।

सुभद्राचरित—इसमे सागरदत्त द्वारा जैनधर्म स्वीकार कर लेने पर सुभद्रा के माता पिता ने उसका विवाह उसमें कर दिया। यहाँ सास-बहू तथा जैन बौद्ध

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६७
२. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ. २८६.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०.
४. वही, पृ० ९१.
५. वही, पृ० २.
६. वही, पृ० ३१३.
७ वही, पृ० ३८५.

भिक्षुओं के पारस्परिक कलह का आभास मिलता है। इसमें सुभद्रा के शीलधर्म का अच्छा निरूपण है। यह कथानक कथाकोशप्रकरण (जिनेश्वरसूरि) में भी आया है। अज्ञातकर्तृक प्रस्तुत रचना १५०० ग्रन्थाग्र प्रमाण है।[1] अभयदेव की सं० ११६१ में रची अपभ्रंश रचना का भी उल्लेख मिलता है।[2]

अन्य नारी पात्रों पर जो कथाएँ मिलती हैं वे इस प्रकार हैं—अभयश्रीकथा[3], जयसुन्दरीकथा[4], जिनसुन्दरीकथा[5] (शील पर), धन्यसुन्दरीकथा[6] (प्राकृत), नागश्रीकथा[7], पुण्यवतीकथा[8], पुष्पवतीकथा[9], मगलमालाकथा[10], मधुमालतीकथा[11], रतिसुन्दरीकथा[12], रत्नमंजरीकथा[13], रसमंजरीचरित्र[14], शान्तिमतीकथा[15], सूर्ययशाकथा[16], सोमश्रीकथा[17], सौभाग्यसुन्दरीकथा[18], हंसावलीकथा[19], हरिश्चन्द्रतारालोचनीचरित[20], पद्मिनीचरित्र[21], मगधसेनाकथा[22], मदनावलिकथा[23], मदनधनदेवीचरित[24]।

तीर्थमाहात्म्य-विषयक कथाएँ :

तीर्थों के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए अनेक कथाकोश और स्वतन्त्र काव्यों का भी निर्माण किया गया है। इनमें सबसे प्राचीन धनेश्वरसूरि का शत्रुंजयमाहात्म्य है। इसे रैवताचलमाहात्म्य[25] भी कहते हैं।

शत्रुंजयमाहात्म्य—यह हिन्दू पुराणों में मिलनेवाले माहात्म्य-शैली पर लिखा गया है। यह एक महाकाव्य है जिसमें १४ सर्ग हैं जो प्रायः श्लोकों में हैं। इसका प्रारम्भ संसार के वर्णन से होता है, फिर राजा महीपाल के अद्भुत कार्य और फिर प्रथम जिन ऋषभ की कथा दी गई है। इसमें भरत-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५.

२. वही.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १२. ४. वही, पृ० १३४. ५. वही, १३८. ६. वही, पृ० १९७. ७. वही, पृ० २१०. ८. वही, पृ० २५१. ९. वही, पृ० २५४. १०. वही, पृ० २९२. ११. वही, पृ० ३००. १२. वही, पृ० ३२६. १३. वही, पृ० ३२७. १४. वही, पृ० ३२९. १५. वही, पृ० ३८१. १६-१७. वही, पृ० ४५२. १८. वही, पृ० ४५३. १९. वही, पृ० ४५९. २०. वही, पृ० ४६०. २१. वही, पृ० ३३६. २२. वही, पृ० २९९. २३-२४. वही, पृ० ३००.

२५. वही, पृ० ३३३, ३७२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.

बाहुबलि का युद्ध, यात्राएँ और भरत द्वारा धर्मक्षेत्रों की स्थापना, विशेषकर शत्रुजय पर्वत पर बनाए मन्दिरों का वर्णन है। ९वें सर्ग में राम की कथा तथा १०-१२ तक कृष्ण और अरिष्टनेमि की कथा से सम्बद्ध पाण्डवों की कथा दी गई है। १०वें अध्याय में भीमसेन के सम्बन्ध में जो कथा कही गई है वह महाभारत के भीम से एकदम भिन्न है। यहाँ वह तस्कर एव व्यर्थ पर बढ़ा साहसी दिखाया गया है:

एक समय वह एक व्यापारी जहाज द्वारा समुद्र पार कर रहा था पर जहाज मध्य समुद्र में एक मूंगों की चट्टान के चारों ओर भटक गया। एक तोते ने बचाव का रास्ता दिखाया। उनमें से एक को मरने के लिए तैयार होना था, पर्वत की ओर तैर कर जाना था और वहाँ भारण्ड पक्षियों को विस्मित करना था। भीम ने यह काम अपने जिम्मे लिया, जहाज की रक्षा की पर पर्वत पर वह अकेला रह गया। सहायक तोते ने उसे भागने का रास्ता बताया। उसने स्वयं को समुद्र मे डाल दिया, एक मछली ने उसे निगल लिया और किनारे पर निकल आया। यह लकाद्वीप था। अनेक साहसिक कार्यों के बाद उसने एक राज्य पाया पर कुछ समय बाद उसका परित्याग कर दिया ताकि शत्रुजय के एक शिखर रैवत पर मुनि बन रह सके।

चौदहवें सर्ग में पार्श्वनाथ की कथा है और अन्त में महावीर की एक लम्बी भविष्यवाणी है जिसमे कई प्रकार के ऐतिहासिक अवतरण हैं जिनका अर्थ अबतक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता एक धनेश्वरसूरि हैं जिनके संबध में कहा जाता है कि उन्होंने इसे सौराष्ट्रनरेश शीलादित्य (वलभी स० ४७७ = ७-८ वीं शती) के अनुरोध पर प्रस्तुत रचना लिखी थी। पर शत्रुजयमाहात्म्य में स० ११९९ से १२३० के बीच राज्य करनेवाले कुमारपाल का वृत्तान्त भी आया है। इससे यह उतनी प्राचीन रचना नहीं है। वास्तव में वलभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हो गये हैं पर जैन लेखक एक ही शीलादित्य का उल्लेख करते हैं। धनेश्वरसूरि भी कई हो गये हैं। सम्भवतः ये धनेश्वरसूरि १३वीं या उसके बाद की शताब्दी मे हुए लेखक हैं।[1]

---

1. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १४५-१४६ पर टिप्पण १३८.

शत्रुञ्जयमाहात्म्य पर एक अज्ञातकर्तृक व्याख्या तथा रविकुशल के शिष्य देवकुशलकृत बालावबोध टीका सं० १६६७ में लिखी मिलती है।[1]

इसी माहात्म्य का संक्षिप्त रूप सं० १६६७ में खम्भात के महीराज के पुत्र ऋषभदास ने शत्रुञ्जयोद्धार[2] नाम से लिखा था और धनेश्वरसूरि की कृति को ही आधार बनाकर शत्रुञ्जयमाहात्म्योल्लेख[3] काव्य १५ अध्यायों में सरल संस्कृत गद्य में सं० १७८२ में हंसरत्न ने लिखा। हंसरत्न तपागच्छ की नागपुरीय शाखा के न्यायरत्न के शिष्य थे।

शत्रुञ्जयतीर्थ के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि के पट्टधर शिष्य कक्कसूरि ने सं० १३९२ में शत्रुञ्जयमहातीर्थोद्धारप्रबन्ध[4] की रचना की है। इसका अपरनाम नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध भी है। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। इसका परिचय हम पहले दे चुके हैं।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में जिनहर्षसूरिकृत शत्रुञ्जयमाहात्म्य[5], नयसुन्दर का सं० १६३८ में निर्मित शत्रुञ्जयोद्धार[6] तथा तपागच्छ के विनयन्धर के शिष्य विवेकधीरगणि द्वारा सं० १५८७ में रचित शत्रुञ्जयोद्धार अपरनाम इष्टार्थ-साधक[7] उल्लेखनीय हैं।

शत्रुञ्जयतीर्थ सम्बन्धी अनेक कथाओं का संग्रह शत्रुञ्जयकथाकोश[8] है जो धर्मघोषसूरिकृत शत्रुञ्जयकल्प पर १२५०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिरूप में शुभशीलगणि ने सं० १५१८ में बनाया है।

शुकराजकथा—शत्रुञ्जयतीर्थ के माहात्म्य को एक और रीति से प्रकट करने

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३७२.

२ वही, पृ० ३७३.

३. वही, पृ० ३७२.

४. वही.

५. वही.

६. वही, पृ० ३७३.

७. वही; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९७३.

८. वही, पृ० ३७२.

के लिए शुकराजकथा[1] की रचना भी कुछ आचार्यों ने की है। इसमें क्षिति-प्रतिष्ठितपुर के राजकुमार शुकराज की कथा है जो विमलगिरि पर जाकर मन्त्र-साधनकर शत्रु को जीतनेवाला—शत्रुञ्जय हो गया था तभी से उक्त तीर्थ का नाम शत्रुञ्जय पड़ गया : शुकस्तत्र गत्वाऽत्र मंत्रसाधनेन शत्रुञ्जयोऽभूदिति महोत्सवं कृत्वा विमलगिरे. शत्रुञ्जय इति नाम प्रख्यापयामास।

कर्ता एवं रचनाकाल—इसकी रचना अञ्चलगच्छीय मेरुतुग के शिष्य माणिक्यसुन्दर ने ५०० श्लोको मे की है। माणिक्यसुन्दर बड़े अच्छे कवि थे। इनकी अन्य रचनाएँ चतुःपर्वीचम्पू, श्रीधरचरित्र (स० १४६३), धर्मदत्त-कथानक, महाबलमलयसुन्दरीचरित्र, अजापुत्रकथा, आवश्यकटीका, पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (प्राचीन गुजराती, सं० १४७८) और गुणवर्मचरित्र (स० १४८४) हैं।

शुकराजकथा-विषयक अन्य कृतियाँ शुभशीलगणि (१६वीं शती का पूर्वार्ध) कृत तथा कुछ अज्ञातकर्तृक[2] भी मिलती हैं।

सुदर्शनाचरित—भड़ौच (भृगुकच्छ) के शकुनिकाविहार-जिनालय के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए सुदर्शना की कथा पर ज्ञातकर्तृक दो प्राकृत रचनाएँ, एक सस्कृत रचना तथा एक अज्ञातकर्तृक प्राकृत रचना मिली हैं।[3]

अज्ञातकर्तृक प्राकृत रचना की हस्तलिखित प्रति स० १२४४ की मिली है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यही पश्चाद्वर्ती कृतियों का आधार रही है।

द्वितीय रचना भी प्राकृत मे है। इसके रचयिता मलधारी देवप्रभसूरि (तेरहवीं शती का उत्तरार्ध) हैं। यह १८८७ श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है। तृतीय रचना का परिचय कथा के साथ दे रहे हैं। चतुर्थ रचना सस्कृत में किन्हीं माणिक्य-सूरिकृत सुदर्शनाकथानक है।

सुदंसणाचरिय—इसका दूसरा नाम शकुनिकाविहार भी है। यह एक प्राकृत ग्रन्थ है जिसमें कुल मिलाकर ४००२ गाथाएँ हैं। बीच-बीच में शार्दूलविक्री-डित आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें धनपाल, सुदर्शन, विजयकुमार,

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८६, हसविजय जैन फ्री लाइब्रेरी, ग्रन्थांक २०, सं० १९८०

२. वही.

३. वही, पृ० ४३४.

शीलवती, अश्वावबोध, भ्राता, धात्रीसुत और धात्री ये आठ अधिकार हैं जो १६ उद्देशों में विभक्त हैं।[1]

सुदर्शना सिंहलद्वीप में श्रीपुरनगर के राजा चन्द्रगुप्त और रानी चन्द्रलेखा की पुत्री थी। पढ़-लिखकर वह बड़ी विदुषी और कलावती हो गई। एक बार उसने राजसभा मे ज्ञाननिधि पुरोहित के मत का खण्डन किया। धर्म-भावना से प्रेरित हो वह भृगुकच्छ की यात्रा पर गई और वहाँ उसने मुनिसुव्रत तीर्थंकर का मन्दिर तथा शकुनिकाविहार नामक जिनालय का निर्माण कराया।

सुदर्शना का यह चरित्र हिरण्यपुर के सेठ धनपाल ने अपनी पत्नी धनश्री को सुनाया। कथा मे प्रसगवश अनेक स्त्री-पुरुषों के तथा नाना अन्य घटनाओं के रोचक वृत्तान्त शामिल हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि हैं। कर्ता ने अपने विषय में कहा है कि वे चित्रापालकगच्छीय भुवनचन्द्र गुरु, उनके शिष्य देवभद्र मुनि और उनके शिष्य जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य थे। उनके एक गुरुभ्राता विजयचन्द्रसूरि ने इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायता दी थी। कहा जाता है कि देवेन्द्रसूरि को गुर्जर राजा की अनुमति-पूर्वक वस्तुपाल मत्री के समक्ष आबू पर सूरिपद प्रदान किया गया था। देवेन्द्र-सूरि ने वि० सं० १३२३ में विद्यानन्द को सूरिपद प्रदान किया था तथा स० १३२७ मे स्वर्गवासी हुए थे अतः इस कथाग्रन्थ की रचना इस समय से पूर्व हुई है। इनके अन्य ग्रन्थों मे पञ्चनव्यकर्मग्रन्थ सटीक, तीन आगमों पर भाष्य, श्राद्धदिनकृत्य सवृत्ति तथा दानादिकुलक मिलते हैं।

अन्य तीर्थों में दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोल के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए गोमटेश्वरचरित्र[2] नामक एक सस्कृत रचना का उल्लेख मिलता है। इसी तरह मध्य प्रदेश के एक अन्य तीर्थ सुवर्णाचल 'सोनागिर' के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए देवदत्त दीक्षित ने स० १८४५ में स्वर्णाचलमाहात्म्य[3] की रचना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; आत्मवल्लभ ग्रन्थ सिरीज, वलाद (अहमदाबाद) से सन् १९३२ मे प्रकाशित; कथाग्रन्थ की अन्य विशेषताओं के लिए देखें—प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५६१-५६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १११.

३. बाबू छोटेलाल जैन स्मृतिग्रन्थ, पृ० ११५.

की है। इसके अन्तिम अध्याय मे भट्टारक परम्परा का इतिहास दिया गया है। गिरिनारोद्धार[1] नामक एक अन्य रचना में गिरिनार का माहात्म्य वर्णित है।

बहुत से तीर्थों का संक्षिप्त परिचय देने के लिए जिनप्रभसूरिकृत विविध-तीर्थकल्प (स० १३६४-८९) प्रकाशित है। इसका परिचय इस इतिहास के चतुर्थ भाग में दिया गया है।

तिथि-पर्व-पूजा-स्तोत्रविषयक कथाएँ :

जैन विद्वानों ने तप, शील, ज्ञान और भावना के समान तथा तीर्थों के माहात्म्यों के समान अपने धर्म या सम्प्रदाय के मान्य पर्वों तथा पुण्य-तिथियों के माहात्म्य को बतलानेवाले अनेक कथाग्रन्थ लिखे हैं। इस प्रवृत्ति का सूत्रपात १४-१५वीं शती से विशेष हुआ है पर १६–१७वीं शताब्दी में एतद्विषयक विशाल साहित्य की सृष्टि हुई है। यहाँ कुछ रचनाओं का परिचय, अन्य कृतियों का विस्तारभय से उल्लेख मात्र करेंगे। पाश्चात्य देशों में इन कथाओं पर भी अच्छा समीक्षात्मक अध्ययन प्रारम्भ हो गया है। अतः ये मननीय हैं, न कि उपेक्षीय।

ज्ञानपंचमीकथा—कार्तिक शुक्ल पंचमी को ज्ञानपंचमी और सौभाग्य-पञ्चमी नाम से भी कहा जाता है। इस दिन ग्रन्थ को पट्टे पर रखकर पूजा, समार्जन, लेखन आदि करना चाहिये और 'नमो नाणस्स' का १००० जाप करना चाहिये। इसके माहात्म्य को प्रकट करने के लिए ज्ञानपञ्चमीकथा,[2] श्रुतपञ्चमीकथा, कार्तिकशुक्लपञ्चमीकथा[3], सौभाग्यपञ्चमीकथा[4] या पञ्चमीकथा, वरदत्तगुणमञ्जरीकथा[5] तथा भविष्यदत्तचरित्र[6] नाम से अनेकों कथाग्रन्थ लिखे गये हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०५.

२. वही, पृ० १४८.

३. वही, पृ० ८५.

४. वही, पृ० २२६, ४५३.

५. वही, पृ० ३४१.

६. वही, पृ० २९३.

इनमे सबसे प्राचीन नाणपञ्चमीकहाओ[1] नामक ग्रन्थ है जिसमें दस कथाएँ संकलित की गई हैं, वे हैं : जयसेणकहा, नन्दकहा, भद्दाकहा, वीरकहा, कमलाकहा, गुणाणुरागकहा, विमलकहा, धरणकहा, देवीकहा और भविस्सयत्तकहा। समस्त रचना मे २८०४ गाथाएँ हैं। इसकी भविस्सयत्तकहा के कथा बीज को लेकर धनपाल ने अपभ्रश मे भविस्सयत्तकहा या सूयपञ्चमीकहा नामक महत्त्वपूर्ण काव्य लिखा है, और उसका संस्कृत रूपान्तर मेघविजयगणि ने भविष्यदत्त चरित्र नाम से प्रस्तुत किया है। इसके रचयिता सज्जन उपाध्याय के शिष्य महेश्वरसूरि हैं। इनके विषय में विशेष कुछ नहीं मालूम है। इस कृति की सबसे पुरानी ताडपत्रीय प्रति वि० स० ११०९ की पाटन के सघवी भण्डार से मिली है। इससे अनुमान है कि यह इससे पूर्व की रचना है। महेश्वरसूरि को ही भूल से महेन्द्रसूरि लिखकर उक्तकर्तृक भविष्यदत्तकथा की भविष्यदत्ताख्यान नाम से कुछ प्रतियाँ भी मिलती हैं।

तेरहवीं-चौदहवीं सदी में इस कथा के विषय मे सस्कृत-प्राकृत मे सम्भवतः कोई रचना नहीं की गई।

पन्द्रहवीं सदी में श्रीधर नामक दिगम्बर विद्वान् ने सस्कृत में भविष्यदत्तचरित्र[2] की रचना की जिसकी हस्तलिखित प्रति स० १४८६ की मिली है, इससे यह रचना अवश्य इस काल से पूर्व हुई है। सत्तरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उपाध्याय पद्मसुन्दर ने भी एक भविष्यदत्तचरित[3] की रचना कार्तिक सुदी ५ सं० १६१४ में की थी। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में तपागच्छीय कनककुशल ने कार्तिक शुक्ल पञ्चमी के दिन ज्ञानश्रुत का माहात्म्य सूचित करने के लिए एक कोढ़ी वरदत्त और गूगी गुणमजरी की कथा बड़े रोचक रूप में निबद्ध की है जिसे वरदत्तगुणमजरीकथा, गुणमंजरीकथा, सौभाग्यपचमीकथा, ज्ञानपंचमीकथा और कार्तिकशुक्लपचमीमाहात्म्यकथा नाम से कहा गया है। कुछ विद्वान् इन विभिन्न नामों से विभिन्न कृतियाँ मान बैठे हैं पर यह भ्रम है। कनककुशल की यह कृति १५२ श्लोकों मे है और सं० १६५५ मे

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २५, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, सं० २००५.

२. अनेकान्त, जून १९४१, पृ० ३५०.

३. ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सं० १६११ की हस्तलिखित प्रति, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९६

रची गई थी। कनककुशल अनेक लघुकाय ग्रन्थों के लेखक थे जिनका उल्लेख कर चुके हैं।

इस कथा को लेकर माणिक्यचन्द्र के शिष्य दानचन्द्र ने भी सं० १७०० में ज्ञानपंचमीकथा[1] (वरदत्त-गुणमंजरीकथा) का निर्माण किया। अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रथकार एवं कवि उपाध्याय मेघविजय (वि० सं० १७०९-१७६०) ने श्रुतपंचमी-माहात्म्य पर २०४२ पद्यों का भविष्यदत्तचरित[2] लिखा जो २१ अधिकारों मे विभक्त है। इसमें पद्यों के बीच-बीच में हितोपदेश, पंचतंत्र आदि ग्रन्थों से सुभाषित उद्धृत किये गये हैं। इसे अनुप्रास, यमकादि शब्दालंकारों से विभूषित किया गया है। मेघविजय उपाध्याय का परिचय और उनकी कृतियों का उल्लेख कई प्रसङ्गों में किया जा चुका है। कुछ विद्वानों ने इसे धनपालकृत २००० गाथा-प्रमाण अपभ्रंश भविसत्तकहा (२२ संधियाँ) का संस्कृत रूपान्तर माना है।[3]

उन्नीसवीं सदी में खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण उपाध्याय (सं० १८२९–६५) ने ज्ञानपंचमी के माहात्म्य पर संस्कृत गद्यपद्यमय सौभाग्यपंचमी कथा रची। इसका पद्यभाग तो कनककुशलकृत एतद्विषयक रचना से लिया है और गद्य स्वयं रचा है। क्षमाकल्याण द्वारा रचित अन्य व्रतकथाएँ भी मिलती हैं : अक्षयतृतीयाकथा, मेरुत्रयोदशीकथा, मौनएकादशीकथा, रोहिणीकथा आदि।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं[4] में जिनहर्षकृत (अज्ञातसमय), पार्श्वचन्द्रकृत, सुन्दरगणिकृत, मंजुसूरिकृत, मुक्तिविमलकृत[5] (वि० सं० १९६९ में १०२ संस्कृत पद्यों में) तथा कई अज्ञातकर्तृक कृतियाँ मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १४८.

२. हिम्मत ग्रन्थमाला, अंक १ में पं० मफतलाल झवेरचन्द्र गांधी द्वारा सम्पादित; गुजराती अनुवाद—अहमदाबाद से प्रकाशित.

३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४४१ पर टिप्पण.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ८५, १४८, २२६, ३४१.

५. दयाविमल ग्रन्थमाला, अहमदाबाद.

रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा—इसके अपर नाम हैं : रोहिणेयकथानक, रोहिणीव्रतकथा या रोहिणीतपमाहात्म्य।[1] इसमे रोहिणीव्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध मे कथा दी गई है। रोहिणी नक्षत्रों में चौथा है और प्रत्येक माह में जब यह चन्द्रमा से सपृक्त होता है उस दिन महिलाएँ उपवासकर सुबह-शाम प्रतिक्रमण करती हैं। यह व्रत १४ वर्ष और १४ माह चलता है। इस व्रत को गुजरात मे स्त्रियाँ ही करती हैं पर इस कथा में स्त्री-पुरुष दोनों के पालने का विधान है तथा उसे ७ वर्ष ७ माह तक पालने को कहा है। इसकी रचना तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य सोमकुशलगणि के शिष्य कनककुशलगणि ने स० १६५६ में की थी। कनककुशल अन्य अनेक लघुकाय कृतियों के रचयिता हैं।

पौषदशमीकथा—पौष महीने की कृष्ण दशमी के दिन भ० पार्श्वनाथ का जन्मकल्याण है। उस दिन के व्रत का माहात्म्य सूचन करने के लिए सेठ सूरदत्त की कथा कही गई है। वह अन्य मतावलम्बी था और दुर्भाग्यवश उसकी सारी निधि खो जाने से वह दरिद्र हो गया था। उसने पौष कृष्ण दशमी के दिन पार्श्वनाथ का आराधन कर पुनः सारी निधि पा ली थी।

इस कथानक[2] पर किसी जिनेन्द्रसागरकृत[3], दयाविमल के शिष्य मुक्तिविमलकृत[4] (स० १९७१) और एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती हैं। मुक्तिविमल की रचना सस्कृत गद्य मे लिखी गई है। बीच-बीच मे उसमें अनेक संस्कृत पद्य उद्धृत हैं।

मेरुत्रयोदशीकथा—माघकृष्ण त्रयोदशी को मेरुत्रयोदशी कहते हैं। इस दिन पच मेरु पर्वतों की छोटी आकृति बनाकर पूजने मे जो फल होता है उसका माहात्म्य राजा अनन्तवीर्य और रानी प्रीतिमती के पुत्र पांगुल की पगुता हट जाने द्वारा बतलाया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४; जैन आत्मानन्द सभा (ग्रन्थांक ३६), भावनगर, सं० १९७१; हीरालाल हसराज, जामनगर, १९१२; इस कथा का पूरा अनुवाद और विवरण हेलेन एम० जोनसन ने अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी की पत्रिका के भाग ६८, पृ० १६८-१७५ पर प्रकाशित किया है।
२. जिनरत्नकोश, पृ० २५७.
३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस से प्रकाशित—पर्वकथासंग्रह, भाग १, वीर सं० २४३६.
४. दयाविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९१८–१९.

इस कथानक को लेकर एक रचना खरतरगच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने सं० १८६० में[1], दूसरी लब्धिविजय[2] तथा तीसरी मुक्तिविमल[3] (वि० सं० १९७१ माघ शुक्ल पंचमी) ने बनाई है। दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी मिलती हैं। मुक्तिविमल की रचना में प्रशस्तिपद्यसहित ३२२ पद्य हैं।

सुगन्धदशमीकथा—भाद्रपद शुक्ल १०वीं को सुगन्धदशमी कहते हैं। उस दिन व्रत रखने, धूप आदि से पूजा करने से शारीरिक कुष्ठव्याधि, दुर्गन्धि आदि रोग दूर भाग जाते हैं। इस व्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए संस्कृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं में अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

उनमें से एक संस्कृत में १६१ श्लोकों में निबद्ध है।[4] इसमें तिलकमती नामक वणिक्पुत्री की कथा है जो अपने पूर्वजन्म में मुनि को कड़वी तुम्बी का आहार देकर अनेक दुर्गतियों में गई और इस व्रत के प्रभाव से सुगति पाई। तिलकमती की विमाता के कपटप्रबन्ध की योजना ने इस कहानी को बड़ा कौतुक-वर्धक बना दिया है।

इसके रचयिता अनेक व्रतकथाओं और तत्त्वार्थवृत्ति आदि ग्रन्थों के लेखक श्रुतसागर हैं जो विद्यानन्दि भट्टारक के शिष्य थे। इनका परिचय अन्यत्र दे चुके हैं। इनका समय स० १५१३–३० के बीच अनुमान किया जाता है।

सुगन्धदशमीकथा पर एक अज्ञातकर्तृक रचना भी मिलती है।[5]

होलिकाव्याख्यान—यह गद्यात्मक सस्कृत में है।[6] इसके रचयिता अभिधान-राजेन्द्र के सकलयिता आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि हैं। इसमें फाल्गुन सुदी पक्ष में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५; हीरालाल हसराज, जामनगर, १९१९.
२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१७.
३. दयाविमल ग्रन्थमाला, जमनाभाई भगुभाई, अहमदाबाद, १९१९.
४. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से वि० सं० २०२१ में प्रकाशित एवं डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित सुगन्धदशमी (अपभ्रंश) कथा के साथ पृ०३०–४८ में हिन्दी अनुवाद सहित.
५. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४.
६. राजेन्द्रसूरि स्मृति-ग्रन्थ, पृ० ९२–९४, राजेन्द्रप्रवचन कार्यालय, खुडाला से प्रकाशित.

अश्लीलतापूर्ण ढङ्ग से मनाये जानेवाले होली पर्व की उत्पत्ति जैनमान्यता के अनुसार किस प्रकार और कैसे हुई है, दी गई है। उक्त आचार्य की कथात्मक रचनाओं में दीपमालिकाकथा (संस्कृत गद्य) और पचाख्यानकथासार भी मिलते हैं। इनकी अन्य ६० के लगभग रचनाएँ भी मिलती हैं।

होली के पर्व पर अन्य रचनाओं में रजःपर्वकथा[1] (होलिरजःपर्वकथा) तथा जिनसुन्दर, शुभकरण, क्षमाकल्याण, मालदेव, माणिक्यविजय, पुण्यसागर एवं फत्तेन्द्रसागर आदि कृत हुताशिनीकथा[2] एवं होलिकापर्वकथाएँ[3] मिलती हैं।

स्तोत्रकथाएँ—व्रतों, तीर्थों, पर्वों एवं पूजा के माहात्म्य-वर्णन की भाँति ही अनेक प्रमुख स्तोत्रों के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए स्तोत्रकथाएँ भी लिखी गई हैं।

भक्तामरकथा—इस नाम की कृतियाँ कई लेखकों की मिली हैं। उनमें सर्वप्रथम रुद्रपल्लीयगच्छ के गुणाकर अपरनाम गुणसुन्दरसूरिकृत कथा[4] है जिसका रचनासमय सं० १४२६ है। इसमें ४४ पद्यों में से कुछ पद्यों के माहात्म्य पर २६ कथाएँ दी गई हैं।

दूसरी कथाकृति ब्रह्म रायमल्लकृत है जिसे उन्होंने सं० १६६७ में लिखा था।[5]

एक अन्य भक्तामरस्तोत्रचरित्र विश्वभूषणकृत उपलब्ध है। विश्वभूषण अनन्तभूषण के शिष्य थे।

एक अज्ञातकर्तृक भक्तामरस्तोत्रमंत्रकथा का उल्लेख भी मिलता है।[6]

उवसग्गहरप्रभावकथा—इसमें प्रसिद्ध स्तोत्र उवसग्गहर के माहात्म्य का वर्णन करने के लिए तपागच्छीय सुधाभूषण के शिष्य जिनहर्षसूरि ने कथाएँ लिखी

१ जिनरत्नकोश, पृ० ३२९.
२. वही, पृ० ४६२.
३. वही, पृ० ४६३.
४. वही, पृ० २९०; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ७०, बम्बई, सं० १९८८.
५. वही, पृ० २८८-२८९.
६. वही, पृ. २८९.

हैं। इसकी प्राचीनतम[१] प्रति का लेखनसं० १५३९ दिया गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्रियकर नृप की कथा का उल्लेख किया है।

ऋषिमण्डलस्तोत्रगतकथा—इसका उल्लेख मात्र मिलता है।[२]

नमस्कारकथा—पंच णमोकार मन्त्र पर संस्कृत श्लोकों में नमस्कारकथा, नमस्कारफलदृष्टान्त[३] आदि रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

तिथिव्रत, पर्व एवं पूजाविषयक अन्य कथाएँ :

ग्रन्थनाम		लेखक का नाम
अक्षयतृतीयाकथा[४]		कनककुशल (१७वीं का उत्तरार्ध), क्षमाकल्याण (१९वीं शती) एवं अज्ञातकर्तृक
अक्षयविधानकथा[५]		श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध)
अनन्तव्रतकथा[६]		,, ,,
अनन्तचतुर्दशीपूजाकथा[७]		अज्ञात
अनन्तव्रतविधानकथा[८]		अज्ञात
अष्टप्रकारपूजाकथा[९]	(पूजाष्टक)	चन्द्रप्रभ महत्तर (सं० १४८१)
,, [१०]	(पूजाष्टक)	अज्ञात
,, [११]	(पूजाष्टक)	अज्ञात (प्राकृत, १००० ग्रन्थाग्र)
अष्टाह्निकाकथा[१२]		अनन्तहंस (१६वीं का उत्तरार्ध), सुरेन्द्रकीर्ति, हरिषेण, क्षमाकल्याण (१९वीं शती)
आकाशपञ्चमीकथा[१३]		श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध), अज्ञात

१. जिनरत्नकोश, पृ० ५४-५५.

२. वही, पृ० ६१.

३. वही, पृ० २०१ २०२.

४. वही, पृ० १, क्षमाकल्याणकृत—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७ में प्रकाशित.

५. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ४६२.

६-८. जिनरत्नकोश, पृ० ७.

९-११. वही, पृ० १८.

१२-१३. वही, पृ० १०.

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
आदित्यव्रतकथा[1] (रविव्रतकथा)	श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध), भानुकीर्ति, अज्ञात
उद्योतपंचमीकथा[2]	अज्ञात, टीकाकार कनककुशल (१७वीं का उत्तरार्ध)
एकादशीव्रतकथा[3]	अज्ञात (१३७ प्राकृत गाथाएँ)
चतुःपर्वकथा[4]	माणिक्यसुन्दर एव अज्ञातकर्तृक
चतुर्मासपर्वकथा[5]	अज्ञातकर्तृक
चातुर्मासिकपर्वकथा[6]	भावप्रभसूरि (सं० १७८२)
चातुर्मासिकपर्वव्याख्यान[7]	क्षमाकल्याण (१९वीं शती), समयसुन्दर (स० १६६५)
चातुर्मासिकव्याख्यान[8]	धर्ममन्दिरगणि (स० १७४९), ५०० ग्रन्थाग्र
चन्दनषष्ठी[9]	ब्र० श्रुतसागर
जिनपूजाष्टकविषयकथा[10]	अज्ञात (प्राकृत)
जिनमुखावलोकनव्रतकथा[11]	(अज्ञात)
चैत्रपूर्णिमाकथा[12]	अमरचन्द्र, टीका जीवराज, सं० १८६९
दशपर्वकथा[13] (दशपर्वकथासंग्रह)	क्षमाकल्याण
दीपमालिकाकथा[14]	,,
दीपोत्सवकथा[15]	त्रिभुवनकीर्ति
द्वादशपर्वकथा[16]	अज्ञात
नन्दीश्वरकथा[17] (अष्टाह्निका या सिद्धचक्रकथा)	ब्र० नेमिचन्द्र, शुभचन्द्र
निःदुःखसप्तमी[18] (निर्दोषसप्तमी)	श्रुतसागर

१. वही, पृ० २८; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १६३, २९०, ४४२.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ४६. ३. वही, पृ० ६१.
४ ५. वही, पृ० ११३. ६-८. वही, पृ० १२२.
९. वही, पृ० ११८. १०. वही, पृ० १३५.
११. वही, पृ० १३५. १२. वही, पृ० १६८. १३-१५. वही, पृ० १७५.
१६. वही, पृ० १८४. १७. वही, पृ० २००, २१०; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ०. २७४. १८. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४.

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
पर्वकथा[1]	अज्ञात (प्राकृत)
पर्वकथा[2] (चैत्रीव्याख्यान)	अज्ञात (संस्कृत)
पर्वकथासग्रह	विजयलक्ष्मीकृत उपदेशप्रासाद का एक अंश, ८ पर्वों की कथा
पल्यविधानव्रतोपाख्यानकथा[3]	श्रुतसागर (१६वीं शती)
पुष्पाजलीकथा[4]	श्रुतसागर (१६वीं शती)
भानुसप्तमीकथा[5]	अज्ञात
मुक्तावलिकथा[6]	मतिसागर
मेघमाला[7]	अज्ञात, श्रुतसागर
मेघमालाव्रताख्यान[8]	अज्ञात
मेरुपक्तिकथा[9]	श्रुतसागर
मेरुत्रयोदशीव्याख्यान[10]	क्षमाकल्याण (सं० १८६०)
मार्गशीर्षएकादशी[11]	
मौनएकादशीकथा[12]	रविसागर, सौभाग्यनन्दि, धीरविजयगणि, धनचन्द्र, क्षमाकल्याण
मौनव्रतकथा[13]	गुणचन्द्राचार्य
रत्नत्रयविधानकथा[14]	
रत्नत्रयव्रतकथा[15]	
रक्षाबन्धनकथा[16] (विष्णुकुमार-कथा)	सकलकीर्ति
रात्रिभोजनत्यागकथा[17]	ब्र० नेमिदत्त, हेमसेन, ब्र० जिनदास
लक्षणपक्तिकथा[18]	
व्रतकथाकोश[19]	देवेन्द्रकीर्ति, धर्मचन्द्र, मल्लिषेण, श्रुतसागर

१-३. जिनरत्नकोश, पृ० २४०. ४. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४. ५. जिनरत्नकोश, पृ० २९४. ६. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ४५१. ७-८. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५. ९. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७५. १०. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५. ११. वही, पृ० ३०७. १२-१३. वही, पृ० ३१६. १४-१५. वही, पृ० ३२७. १६. वही, पृ० ३२९. १७. वही, पृ० ३३१. १८. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७५. १९. जिनरत्नकोश, पृ. ३६८.

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
शरदुत्सवकथा[1]	भट्टारक सिंहनन्दि
श्रवणद्वादशीकथा[2]	श्रुतसागर
षोडशकारणकथा[3]	श्रुतसागर
सप्तदशप्रकारकथा[4]	माणिक्यसुन्दर
सिद्धचक्रकथा[5]	शुभचन्द्र, अज्ञात

परीकथाएँ :

विक्रमादित्यविषयक कथानक—वि० सं० १२०० से १५०० के बीच तीन सौ वर्षों में विक्रमादित्य की परम्परा को लेकर जैन कवियों ने बहुविध साहित्य का सृजन किया है। वि० सं० १२०० से पूर्व जैन साहित्य में विक्रम के उल्लेख बहुत ही थोड़े मिले हैं। यद्यपि उसके नगर उज्जयिनी का प्राचीन जैन साहित्य में प्रचुर प्रमाण में वर्णन किया गया है। विक्रम सम्बन्धी जैन परम्परा का उद्गमसूत्र सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित मानी गई एक गाथा है जिसमें सिद्धसेन विक्रमादित्य से कह रहे हैं कि '११९९ वर्ष बीतने पर तुम्हारे जैसा ही एक राजा (कुमारपाल) होगा'।[6] यह गाथा अवश्य ही किसी ने कुमारपाल की दानशीलता और असीम दया विषयक कीर्ति फैलने के बाद ही रची होगी। प्रतीत होता है कि इससे पूर्ववर्ती काल में अतीत जैन राजाओं में विक्रम को नहीं सम्मिलित किया गया क्योंकि वह एक अविवेकी नृप था, ऐसे साहसिक कार्य करता था जिसमें उसके शत्रुओं का निर्मम वध चित्रित है। इसलिए वह उदार एवं धार्मिक राजाओं की पंक्ति में न आ सका। परन्तु विक्रम के स्वभाव का एक पक्ष और था और वह था अपने साहसिक कार्यों द्वारा निःस्पृह भाव से जनसेवा करना। यह उद्देश्य सच्चे जैन नरेश के आदर्शों से पूर्ण संगति खाता है। विक्रम साधारण व्यक्ति के लिए भी, चाहे वह उसका घोर शत्रु ही क्यों न हो, अपना सर्वस्व यहाँ तक कि जीवन बलिदान देने के लिए तैयार रहता था। इसके अतिरिक्त वह उदात्तचित्तवाला नरेश था जिसमें असीम करुणा भरी थी।

---

१. वही, पृ० ३७८. २. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४. ३. जिनरत्नकोश, पृ० ४०५. ४. वही, पृ० ४१५. ५. वही, पृ० ४२६.

६. पुन्ने वाससहस्से सयम्मि वरिसाण नवनवइ अहिए।
होहि कुमरनरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो ॥—प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ८, पद्य ८.

कुमारपाल के उदय के बाद उसके जैसे नरेश विक्रमादित्य के उक्त पक्ष ने जैन कवियों को आकर्षित किया और उसे परम दानी तथा अनेकविध अलौकिक शक्तियों का पुञ्ज मान लिया। दान के लिए उसे सुवर्णपुरुष की प्राप्ति तथा अलौकिक कार्यों के लिए अग्निवेताल की सिद्धि की कल्पना की गई है। कुमारपाल की मृत्यु के सौ वर्ष बाद तो उसे एक आदर्श जैन नरेश ही मान लिया गया।

सं० १२०० के बाद विक्रम को दृष्टान्तरूप उपस्थित करनेवाला ग्रन्थ है सोमप्रभाचार्य का कुमारपालप्रतिबोध (सं० १२४१) जिसमें विक्रम के परपुरप्रवेश की निन्दा तथा उसके परोपकार-दयाभावों की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि उसने सुवर्णपुरुष के कारण याचकों को सुखी तथा भिन्न ऋद्धियों द्वारा प्रजा की उन्नति की थी।

इसके बाद प्रभाचन्द्र के 'प्रभावकचरित' (सं० १३३४) में अनेक बातें कही गई हैं जैसे भृगुपुर (भड़ौच) तीर्थ का उद्धार, वायट में महावीर जिनालय का निर्माण, सिद्धसेन को धर्मलाभ कहने पर एक करोड़ रुपये देना आदि। मेरुतुंग ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' (सं० १३६१) में विक्रम के लिए सर्वप्रथम एक स्वतंत्र प्रबन्ध लिखा है। जिसमें उसे जन्म से दरिद्र तथा बाल्यकाल में राज्य से निष्कासित तथा पीछे उसकी राज्यप्राप्ति, चमत्कार आदि की बातें दी गई हैं। जिनप्रभसूरि के विविधतीर्थकल्प (सं० १३६५-१३९०) में यद्यपि विक्रम का जीवनवृत्त नहीं दिया गया पर विविध प्रसङ्गों में उसे जैनधर्म प्रसारक बतलाया गया है। इसी तरह राजशेखर के 'प्रबन्धकोश' (सं० १४०५) में विक्रमादित्य का स्वतन्त्ररूप से जीवनवृत्त तो नहीं दिया गया पर उसके अनेक जीवन प्रसङ्गों को संकलित किया गया है। इसमें विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमसेन की कथा के प्रसंग में चार पुत्तलिकाओं की कथा दी गई है जिनमें तीन तो कथासरित्सागर में वर्णित 'वेतालपञ्चविंशति' की कथा से मेल खाती हैं। प्रबन्धसाहित्य में विक्रमादित्य के लघुचरित्र के साथ विशेषरूप से अनेक लोककथाएँ गूँथी गई हैं।[1]

---

1. विशेष विवरण के लिए देखें—विक्रम वोल्यूम, सिंधिया प्राच्य परिषद्, उज्जैन से सन् १९४८ में प्रकाशित, पृ० ४३७-६७० में हरि दामोदर वेलंकर का लेख 'विक्रमादित्य इन जैन ट्रेडिशन'। उक्त ग्रन्थ में विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता पर अनेक महत्त्वपूर्ण लेख हैं।

१. विक्रमचरित—विक्रमादित्य के चरित का स्वतंत्र एवं सर्वांगीण जैन रूपान्तर सर्वप्रथम देवमूर्ति उपाध्यायकृत विक्रमचरित्र (संस्कृत) में दिखाई पड़ता है।[1] इसमें १४ सर्ग हैं जिनमें विभिन्न छन्दों में ४८२० पद्य हैं। इन सर्गों में क्रमशः ९४, १३२, २००, ६८५, २४४, २९०, २२३, २४९, १५९, ३२९, ६८२, १४०, २४२ और ११४० पद्य हैं। प्रथम सर्ग में विक्रम का जन्म और बाल्यकाल; दूसरे में विक्रम की रोहणगिरि की यात्रा और अग्निवैताल की प्राप्ति तथा अवन्ति का राज्य पाना; तीसरे में स्वर्णपुरुष की प्राप्ति; चतुर्थ में पञ्चदण्ड छत्र की प्राप्ति; पाँचवें में द्वादशावर्त वन्दन की जैन कथाएँ; छठे में विक्रम का उस राजकुमारी के पास जाना जो उस पुरुष से विवाह करना चाहती है जो रात्रि में उसे चार कहानियाँ सुनाकर जगायगा; सातवें में विक्रम और सिद्धसेन की कथा, आठवें में राजकुमारी हंसावली से विवाह, नवम में विक्रम द्वारा परपुरप्रवेश विद्या; दशम में रत्नचूड की कथा; ग्यारहवें में विक्रम की विभिन्न शक्तियों सम्बन्धी कथाएँ; बारहवें में कीर्तिस्तम्भ बनाने सम्बन्धी विभिन्न कहानियाँ; तेरहवें में विक्रम और शालिवाहन तथा चौदहवें में विक्रमसेन और सिंहासन सम्बन्धी बत्तीस कथाएँ वर्णित हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि देवमूर्ति ने विक्रम सम्बन्धी उन सभी लोककथाओं का संग्रह किया है जो उसके पहले जैन परम्परा को ज्ञात थीं। साथ ही उसने विक्रम के जीवन वृत्तचित्र को पूर्ण करने के लिए पाँच के लगभग अध्याय और भी जोड़ दिये हैं। इस काव्य में विक्रम को पक्के भक्त जैन नरेश के रूप में चित्रित किया गया है और श्रावक के लिए बतलाये गये सभी व्रतों का पालन करनेवाला तथा अपने प्रत्येक साहसिक कार्य पर जैन तीर्थंकर या देवी-देवताओं की पूजा करनेवाला दिखलाया गया है। इस तरह धार्मिक जैन नरेशों के बीच विक्रम का स्थान देवमूर्ति ने अन्तिम रूप से सुरक्षित कर दिया है और प्रायः जैन पाठान्तरवाली सिंहासन सम्बन्धी ३२ कथाओं को भी उसके जीवन के साथ जोड़ दिया है पर उन्हें सिंहासनद्वात्रिंशिका के रूप में नहीं कहा है। इन कथाओं में उसने यत्र तत्र कुछ परिवर्तन भी किया है।

विक्रमादित्यसम्बन्धी जैन कथाओं में एक अद्भुत कथा पञ्चदण्डच्छत्र की कथा है। यद्यपि जैन प्रबन्धों (प्रबन्धचिन्तामणि आदि) में इसका उल्लेख नहीं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४९; इसकी हस्तलिखित प्रति हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटन में उपलब्ध है।

किया गया परन्तु कई जैन लेखकों ने इस पर स्वतंत्र रचनाएँ लिखी हैं।[1] देवमूर्ति ने इस कथा को अपने काव्य के चौथे सर्ग में दिया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवमूर्ति हैं जो कासद्रहगच्छ के देवचन्द्रसूरि के शिष्य हैं। इसकी रचना सं० १४७१ या १४७५ के लगभग की गई है। इनकी अन्य रचना रोहिणेयकथा भी मिलती है।

२. विक्रमचरित—विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे प्रचलित लोककथाओं के संग्रहरूप में शुभशीलगणिकृत द्वितीय रचना मिलती है।[2] यह १२ अध्यायों में विभक्त रचना है जिसमें कुल मिलाकर ५८९७ श्लोक हैं। यह सरल वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। इसमें देवमूर्ति की पूर्व रचना के अनुसार ही विक्रम का पूर्ण जीवनवृत्त देने का प्रयत्न किया गया है। दोनों कृतियों में अनेक प्राकृत और अपभ्रंश पद्य प्रक्षिप्त हैं।

इस काव्य की विशेषता यह है कि इसमें देवमूर्ति की रचना के समान सिंहासन सम्बन्धी बत्तीस कथाएँ नहीं दी गई है परन्तु प्रबन्धकोश के समान केवल चार कथाएँ दी गई हैं। इसमें विक्रमादित्य के पुत्र का नाम देवकुमार अपर नाम विक्रमसेन दिया गया है। इसके नवम सर्ग में पचदण्डच्छत्र की कथा दी गई है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं। ये अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। इनका परिचय हम पहले दे चुके हैं। प्रस्तुत विक्रमचरित्र की रचना सं० १४९९ में की गई थी।[3]

---

१. इस पर किसी जैनेतर लेखक की रचना प्राप्त नहीं है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०; हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, सं० १९८१, दो भागों में प्रकाशित.

३. इन ग्रन्थों की तीन हस्तलिखित प्रतियों में रचनासंवत् १४९९ दिया गया है :

निधाननिधिसिन्ध्विन्दुवत्सरात् विक्रमार्कतः।
शुभशीलयतिश्चक्रे चरित्रं विक्रमोष्णगोः॥

पर वीर उपाश्रय के ज्ञानभण्डारवाली प्रति में सं० १४९० दिया गया है :

श्रीमद्विक्रमकालाच्च खंनिधि रत्नसंज्ञके (१४९०)।
वर्षे माघे सिते पक्षे शुक्लचातुर्दशीदिने॥
पुष्ये रवौ स्तम्भतीर्थे शुभशीलेन पण्डिता।
विदधे रचितं ह्येतत् विक्रमार्कस्य भूपतेः॥

अन्य विक्रमचरित्रों में प० सोमसूरिकृत (ग्रन्थाग्र ६०००) तथा संस्कृत गद्य में साधुरत्न के शिष्य राजमेरुकृत का और श्रुतसागरकृत विक्रमप्रबन्धकथा का उल्लेख मिलता है।[1]

विक्रमादित्य की पञ्चदण्डच्छत्र की कथा पश्चिम भारत के जैन लेखकों को अति रोचक लगी है और इस प्रसंग को लेकर उन्होंने कई कृतियाँ लिखी हैं। इस प्रसंग पर जैनेतर लेखकों की कोई भी कृति नहीं मिली है।[2] इसी तरह विक्रम सम्बन्धी सिंहासन की बत्तीस कथाओं और वेतालपचविंशतिकथा पर भी जैनों ने स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं।

पंचदण्डच्छत्रकथा—कथा इस प्रकार है: एक समय राजा विक्रम उज्जैनी के बाजार से जा रहा था कि उसके नौकरों ने दामिनी जादूगरनी की दासी को पीटा, इससे नाराज होकर दामिनी ने अपनी जादू की छड़ी (अभेद्य दण्ड) से भूमि पर तीन रेखाएँ खींच दीं जो रास्ते को रोककर तीन दीवालों के रूप में परिणत हो गईं। राजा की सेना भी उन्हें गिरा न सकती। तब राजा दूसरे मार्ग से महल में गया। राजा ने दामिनी को बुलाया तो उसने बतलाया कि इन दीवालों को राजा तभी हटा सकता है जब वह उसके पाँच आदेशों को पूरा कर पाँच जादू की छड़ियाँ (दण्ड) पा ले। राजा ने स्वीकार कर लिया। इस तरह उसके अलग-अलग पाँच आदेशों से उसे पाँच जादू के दण्ड मिल गये जिनसे वह उन दीवालों को तोड़ सका। यह जान इन्द्र ने एक सिंहासन भेजा जिसमें पंचदण्डों पर एक छत्र लगा था। राजा उस पर एक शुभ दिन में बैठा।

इस कथा पर स्वतंत्र प्रथम रचना पञ्चदण्डात्मकविक्रमचरित्र है जिसकी रचना सं० १२९० या १२९४ बतलायी[3] जाती है पर इसके कर्ता का नाम अज्ञात है।

दूसरी रचना पूर्णचन्द्रसूरि की है जो संस्कृत गद्य में है।[4] इसका रचना-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०.

२. ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फरेंस के सन् १९५९ के विवरण पृ० १२१ प्रभृति में प्रकाशित सोमाभाई पारेख का लेख Some Works on the Folk-tale of पंचदण्डच्छत्र by Jain Authors.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २२४; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६११ पर टिप्पण.

४ जिनरत्नकोश, पृ० २२४, ३५०.

काल १५वीं शती का प्रारम्भ माना जाता है। इसका विक्रमपञ्चदण्डप्रबध या विक्रमादित्यपञ्चदण्डच्छत्रप्रबध नाम से भी उल्लेख किया गया है। इसका ग्रन्थाग्र ४०० है।

तीसरी रचना साधुपूर्णिमागच्छ के अभयचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने ५५० श्लोकों में स० १४९० में लिखी है।[1] यह अनुष्टुप् छन्द में बनायी गई है और पॉच सर्गों मे विभक्त है। इसे यद्यपि विक्रमचरित्र नाम से भी कहा गया है पर इसमें विक्रम द्वारा प्राप्त केवल पञ्चदण्डच्छत्र (सिंहासन पर पाँच दण्डों पर लगे) की घटना का वर्णन है। इसमे नगरों, आभूषणों, खाद्य सामग्री आदि के लम्बे वर्णन हैं। यह परवर्ती अनेक प्राचीन गुजराती और राजस्थानी में रचित कृतियों का आदर्श रही है।

पञ्चदण्डच्छत्रकथा देवमूर्तिकृत विक्रमचरित्र के चतुर्थ सर्ग में तथा शुभशीलकृत विक्रमचरित्र के नवम सर्ग में भी वर्णित है।

पञ्चदण्डच्छत्रप्रबध नाम की दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी लगभग १५वीं शती की मिली हैं। दोनों सस्कृत गद्य में हैं। एक रचना दामिनी जादूगरनी के आदेश के स्थान में पाँच कार्यों में विभक्त है।[2] दूसरी मे प्रारम्भ में ही विक्रमादित्य-उत्पत्तिप्रबन्ध नाम से एक छोटा प्रबन्ध दिया गया है जो सम्भवतः कालकाचार्यकथा से लिया गया है।[3]

प्राकृत में एक पञ्चदण्डपुराण का उल्लेख मिलता है।[4] एक अज्ञातकर्तृक पञ्चदण्डकथा की भी सूचना दी गई है।[5]

विक्रमादित्य के चरित्र से सम्बद्ध वेताल के कथारूप पच्चीस प्रश्नों की घटना तथा विक्रमादित्य के सिंहासन पर उसके पुत्र के बैठने के पूर्व ३२ पुत्तलिकाओं द्वारा प्रश्नात्मकरूप से कही गई कहानियों के प्रसग को लेकर भी

---

१. वही; हीरालाल हसराज, जामनगर, १९१२, शीर्षक 'पंचदण्डात्मकं विक्रमचरित्रम्'; प्रो० ए० वेबर ने इसे जर्मन भाषा में प्रस्तावना के साथ रोमनलिपि में बर्लिन से १८७७ में प्रकाशित किया है।

२. हस्तलिखित प्रति—हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटन, संख्या १७८२.

३. वही, संख्या १७८०.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २२४.

५. वही.

जैन कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। ये दोनों प्रसग एक प्रकार की परी-कथाएँ हैं।

वेतालपञ्चविंशिका—विक्रमादित्य के चमत्कारी जीवनवृत्त के साथ वेताल की पच्चीस कथाएँ बहुत प्राचीन काल से जुड़ी आ रही हैं। उक्त कथाओं पर एक जैन रचना भी मिली है जिसके रचयिता तपागच्छीय कुशलप्रमोद के प्रशिष्य एवं विवेकप्रमोद के शिष्य सिंहप्रमोद हैं।[1] इसकी रचना सं० १६०२ में हुई थी। इसकी प्राचीनतम प्रति स० १६२० की मिली है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका—ग्रन्थाग्र ११०० प्रमाण इस संस्कृत काव्य की रचना तपागच्छीय देवसुन्दरसूरि के शिष्य क्षेमंकरगणि ने की थी।[2] इसका रचनासंवत् तो ज्ञात नहीं पर कोई प्राचीनतम प्रति स० १४७८ की तथा दूसरी सं० १५१४ की मिली है।

दूसरी रचना संस्कृत गद्य में है। इसके रचयिता समयसुन्दर हैं। इसकी प्राचीन प्रति स० १७२४ की मिली है।[3]

सिद्धसेन दिवाकर नाम से कल्पित एक उक्त नाम की कृति का उल्लेख मिलता है और इसी तरह एक अज्ञातकर्तृक का भी।[4]

देवमूर्तिकृत विक्रमचरित्र के चौदहवें सर्ग में ११४० पद्यों मे सिंहासन-द्वात्रिंशिका की कथा दी गई है।[5] इसका ग्रन्थाग्र जिनरत्नकोश में ६२६६ दिया गया है जो ठीक नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण विक्रमचरित का ही ग्रन्थाग्र ५३०० बतलाया गया है।

विक्रमादित्य के समान ही प्रत्येकबुद्ध अम्बड के साथ भी अनेक चमत्कारी कथाओं के जाल जैन कवियों ने बनाकर कई अम्बडचरितों की रचना की है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३६५.
२. वही, पृ० ४३६.
३. वही.
४. वही.
५. सिंहासनद्वात्रिंशिका के जैन रूपान्तरो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए और जैनेतर रूपों से अन्तर बतलाते हुए अमेरिकन विद्वान् फ्रेंकलिन एडगरटन ने 'विक्रम्स एडवेंचर्स' नामक बृहद् ग्रन्थ का प्रणयन किया है—हारवर्ड ओ० सिरीज, २६.

अम्बडकथा—तेरहवीं शताब्दी में मुनिरत्नसूरिकृत संस्कृत गद्य-पद्यमय रचना[1] में अम्बड के साथ दी गई कथाओं में हम विक्रम की पञ्चदण्डच्छत्र, सिंहासनबत्तीसी तथा वेतालपंचविंशिका की कथाएँ जुड़ी पाते हैं। सम्भवतः १४-१५वीं शताब्दी में रचित विक्रमादित्य सम्बन्धी उक्त कथा-रचनाओं में मुनिरत्नसूरिकृत अम्बडचरित का बड़ा प्रभाव हो।[2]

इस कथाग्रन्थ में अम्बड को गोरखयोगिनी के सात आदेश पाल कर धन, विद्या, ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करते देखते हैं, जैसे विक्रमादित्य दामिनी जादूगरिन के पाँच आदेशों के पालन से चमत्कारी पञ्चदण्डच्छत्र पाता है। मुनिरत्नसूरि ने दो पद्यों में इस बात को व्यक्त भी किया है।[3]

भोज-मुंजकथा—विक्रमादित्य के जनाख्यान के समान ही जैन कवियों ने राजा मुंज और भोज को भी अपनी जनाख्यानप्रियता का विषय बनाया है। विक्रमादित्य सम्बन्धी सिंहासनद्वात्रिंशिका कथाओं को भोज की कथा से ही

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १५; सत्यविजय ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ११, सन् १९२८; इसका गुजराती अनुवाद 'अम्बड विद्याधर रास' नाम से वाचक मंगलमाणिक्य ने सं० १६३९ में तथा इसका सम्पादन प्रो० बलवन्तराव ठाकोर ने सन् १९५३ में किया।

२. महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ (१९६८ ई०) में पृ० ११७-१२३ में प्रकाशित सोमाभाई पारेख का गुजराती लेख 'आम्बडकथाना आन्तर प्रवाहो'। इस लेख में कथा का तुलनात्मक विवरण है।

३. यत्पुर्यामुज्जयिन्यां सुचरितविजयी विक्रमादित्यराजा
वैतालो यस्य तुष्टः कनकनरमदाद्विष्टरं पुत्रिकाभिः।
अस्मिन्नारूढ एवं निजशिरसि दधौ पञ्चदण्डातपत्रम्
चक्रे वीराधिवीरः क्षितितलमनृणां सोऽस्मि सवत्सरङ्क.॥ ३६॥

इत्थं गोरखयोगिनीवचनवः सिद्धोऽम्बडः क्षत्रियः
सप्तादेशवरा सकौतुकभरा भूता न वा भाविन.।
द्वात्रिंशन्मितपुत्रिकादिचरितं यद् गद्यपद्येन तत्
चक्रे श्रीमुनिरत्नसूरिविजयस्तद्वाच्यमानं बुधैः॥ ३७॥

इत्याचार्यश्रीमुनिरत्नसूरिविरचिते अम्बडचरिते गोरखयोगिनीदत्तसप्तादेशकर-अम्बडकथानकं सम्पूर्णम्॥

सम्बद्ध किया गया है और बतलाया गया है कि विक्रम की मृत्यु के बाद उसका सिंहासन एक खेत में छिपा दिया गया था। उस खेत का मालिक एक ब्राह्मण था जो छिपे सिंहासन के चबूतरे पर बैठकर अपने खेत की देख-भाल करता था। वह खेत बड़ा ही उपजाऊ था। राजा भोज को यह पता चला तो उसने उस खेत को खरीद लिया और उस चबूतरे को तुड़वाकर राजा विक्रम के चमत्कारी सिंहासन को पाया। भोज को उस सिंहासन पर बैठने के पहले उसकी रक्षा करनेवाली बत्तीस देवियों की प्रश्नात्मक कथाओं द्वारा अपनी परीक्षा देनी पड़ी तब कहीं वह उस पर बैठ सका। इस कथा द्वारा विक्रमादित्य के माहात्म्य के समान भोज का माहात्म्य प्रकट किया गया है।[१]

भोज के चरित्र को दूसरे प्रकार के जनाख्यानों से ग्रथितकर कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रचे गये हैं। उनमें जैनेतर रचनाओं में बल्लालकृत 'भोजप्रबन्ध' प्रसिद्ध है।

भोजचरित—राजवल्लभरचित एतद्विषयक जैन कृतियों मे सबसे प्राचीन है।[२] यह पाँच प्रस्तावों में विभक्त है जिनमे कुछ मिलाकर १५७५ पद्य हैं। उनमे ३५ अपभ्रंश मे और शेष संस्कृत मे हैं। सस्कृत पद्यों में भी प्राकृत शब्द यत्र-तत्र पाये जाते हैं। पद्य अधिकांश मे अनुष्टुप् छन्द मे हैं पर यत्र-तत्र इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित आदि पद्य दूसरी कृतियो से उद्धरणरूप मे पाये जाते हैं।

इसमें वर्णित लोककथाओं का आधार प्रबन्धचिन्तामणि और कथा-सरित्सागर है। साहित्यिक दृष्टि से यह साधारण कोटि की रचना है। इसमे अनेक भाषाविषयक तथा भौगोलिक त्रुटियाँ भरी हुई हैं। फिर भी भोज के सम्बन्ध में तीन शीर्षों (कपालों) तथा दो राक्षसों द्वारा चमत्कारिकता दिखाई गई है। उसके परकायप्रवेश की कथा चौथे प्रस्ताव में दी गई है। पाँचवें प्रस्ताव में भोज के पुत्रों देवराज और वत्सराज के साहसिक कार्यों का वर्णन दिया गया है।

---

१. एडगरटन, विक्रम्स एडवेंचर्स, हारवर्ड ओ० सिरीज, २६, सन् १९२६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९२; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से डा० बहादुरचन्द्र छाबड़ा और शंकरनारायणन् द्वारा सम्पादित, अंग्रेजी में विवरणात्मक टिप्पण, प्रस्तावना, सं० २०२०.

इसे जैन कथाओं में अन्नदान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए जोड़ा गया है (चरित्रमन्नदानस्य कुर्वे कौतूहलप्रियम्)। इस दृष्टि से कवि की यह कृति शताब्दियों तक लगातार जैन सम्प्रदाय में प्रिय रही है।

फिर भी कवि ने भोज सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण मे मौलिकता प्रदर्शित की है।[१]

रचयिता और रचनाकाल—भोजचरित्र के प्रत्येक प्रस्ताव के अन्त में रचयिता का नाम राजवल्लभ पाठक दिया गया है जो धर्मघोषगच्छ के महीतिलकसूरि के शिष्य थे। रचना के कालनिर्णय के सम्बन्ध में दो बातों से सहायता मिलती है : एक तो महीतिलकसूरि का उल्लेख करनेवाले स० १४८६ से १५१३ तक के शिलालेख मिले हैं;[२] दूसरी इसकी प्राचीनतम हस्त० प्रति स० १४९८ की मिली है। इससे यह स्पष्ट है कि राजवल्लभ ने सं० १४९८ के पहले इसे अवश्य लिख डाला होगा।

राजवल्लभ की अन्य रचनाओं में चित्रसेन-पद्मावती (स० १५२४) और षडावश्यकवृत्ति (सं० १५३०) मिलती हैं।

भोजप्रबध—उक्त राजवल्लभ के समकालीन शुभशीलगणि ने एक अन्य भोजप्रबंध[३] की रचना की है जिसका ग्रन्थाग्र ३७०० बतलाया गया है। शुभशीलगणि तपागच्छीय सोमसुन्दर के प्रशिष्य और मुनिसुन्दर के शिष्य थे। इनको विक्रमचरित्र, भरतेश्वर-बाहुबलिवृत्ति आदि अनेकों कथात्मक रचनाएँ मिलती हैं।

एक दूसरे भोजप्रबध[४] की रचना सं० १५१७ में रत्नमण्डनगणि ने की है। इस प्रबध में भोज के माने गये दो पुत्रों की कथाएँ प्रमुख होने से इसे देवराज-प्रबंध या देवराज-वत्सराजप्रबध भी कहते हैं।[५] इनकी अन्य रचनाओं मे उपदेशतरंगिणी, सुकृतसागर तथा पृथ्वीधरप्रबध मिलते हैं। इनका परिचय पृथ्वीधर-प्रबंध के प्रसग में दिया गया है।

---

१. भोजचरित की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ११–२२.

२. वही, प्रस्तावना, पृ० ५; जैन लेखसंग्रह, सख्या ११८०, २३११, ११४४, १४९२ और १५२४; बीकानेर जैन लेखसग्रह, संख्या ९०१, १९३५.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २९९,

४. वही.

५. वही, पृ० १७८.

एतद्विषयक अन्य रचना—भोजप्रबंध—सत्यराजगणिकृत भी मिलती है।[1] सत्यराज की अन्य रचना पृथ्वीचन्द्रचरित्र (स० १५३५) भी मिलती है।

मेरुतुगकृत प्रबंधचिन्तामणि[2] (स० १३६१) में वर्णित भोज-भीमप्रबध से उक्त रचनाओं में बड़ी सहायता ली गई है। यह प्रबंध भी भोज के सम्बन्ध की अनेक लोककथाओं से भरा हुआ है पर इसमें ऐतिहासिकता की अधिक रक्षा की गई है।

भोज के चाचा मुज पर परीकथा लिखी गई है। प्रबधचिन्तामणि में मुज-राजप्रबध में मुजराज से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ दी गई हैं। स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में कृष्णर्षिगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि (स० १४२२ के लगभग) द्वारा रचित मुजनरेन्द्रकथा[3] तथा सं० १४७५ में एक अज्ञातकर्तृक मुंजभोजनृपकथा[4] मिलती है।

महीपालकथा या महीपालचरित—इस कथा का नायक वास्तव में परीकथा का एक राजपुत्र है। इस कथा मे परीकथा और पौराणिककथा का अच्छा सम्मिश्रण किया गया है। इस पर प्राकृत-संस्कृत मे कई रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[5]

कथावस्तु—महीपाल किसी देश का राजा न था पर उज्जयिनी के राजा नरसिंह के पास रहनेवाला कलाविचक्षण राजपुत्र था। राजा ने उसे अपने मनो-विनोद के लिए रख छोड़ा था पर वह कलाओं को सीखने के लिए यहाँ-वहाँ घूमता-फिरता था। इससे राजा ने नाराज होकर उसे निकाल दिया। महीपाल अपनी पत्नी के साथ घूमता-फिरता भड़ौच में आया और वहाँ से जहाज द्वारा कटाहद्वीप पहुँचने के लिए चल पड़ा पर दुर्भाग्य से समुद्र में ही जहाज फट जाने से किसी तरह किनारे लगा और उस कटाहद्वीप के रत्नपुर नगर मे रहने लगा। वहाँ रत्नपरीक्षा में अपनी कला दिखाकर उसने राजपुत्री से विवाह किया और उसके साथ जहाज में बैठ अपनी पूर्वपत्नी सोमश्री की खोज में निकला। राजा ने अपनी पुत्री और जामाता की देखरेख के लिए अथर्वण नामक मंत्री को साथ

---

१ वही, पृ० २९९.

२. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १, पृ० २५-५२.

३-४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१०.

५. वही, पृ० ३०८; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३६-३७.

भेजा पर उसने राजपुत्री और धन के लोभ से उसे कपट से समुद्र में गिरा दिया। इसके बाद राजपुत्री से प्रेम करना चाहा पर वह भी उसे झूठा आश्वासन दे अपनी शील की रक्षा करने के लिए चक्रेश्वरी देवी की उपासना में लग गई। उधर महीपाल समुद्र में गिरकर एक बड़ी मछली के सहारे किनारे आ लगा और वहाँ उसने रत्नसञ्चयपुर के नरेश की पुत्री शशिप्रभा के साथ विवाह किया और उससे उसे तीन चमत्कारी वस्तुएँ मिलीं: पहली जादू की शय्या जिस पर बैठकर वह कहीं भी जा सकता था, दूसरी जादू की लकड़ी जिससे वह अजेय बन सका और तीसरी एक सर्वकामित मन्त्र जिससे वह मन चाहे रूप धारण कर सकता था। महीपाल को उसी नगर में अपनी दोनों पूर्व पत्नियाँ भी मिल गईं। उन विद्याओं के सहारे उसने कई चमत्कार दिखाये। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के राजा ने उसे अपना मन्त्री बना लिया तथा अपनी पुत्री चन्द्रश्री से विवाह कर दिया। इसके बाद वह चारों पत्नियों को लेकर अपनी पूर्व नगरी उज्जयिनी के राजा के पास लौट आया और राजा ने उसके चमत्कारों से उसका सम्मान किया। पीछे महीपाल ने जैनी दीक्षा ले मोक्षपद प्राप्त किया।

महिवालकहा—उक्त कथानक पर यह सर्वप्रथम रचना है[1] जो प्राकृत की १८२६ गाथाओं में है। इसमे अध्याय आदि का विभाजन नहीं है। इसकी भाषा सरस एवं सरल है। बीच-बीच में अनेक उपदेश और अवान्तर कथाएँ दी गई हैं। वर्णन-प्रसग मे नवकार-मन्त्र का प्रभाव, चण्डीपूजा, शासनदेवता, यक्ष-कुलदेवतादि की पूजा, बलि आदि प्रथाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके रचयिता वीरदेवगणि हैं। ग्रन्थ के अन्त में चार गाथाओं द्वारा उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा मात्र दी है। तदनुसार चन्द्रगच्छ में क्रमशः देवभद्र–सिद्धसेन–मुनिचन्द्रसूरि हुए। उन्हीं के शिष्य प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक हैं। इस रचना का कालसवत् कहीं नहीं दिया गया पर रचयिता के दादा गुरु और परदादा गुरु की कई रचनाएँ मिलती हैं। चन्द्रगच्छ से सम्बन्धित देवभद्र ने प्राकृत श्रेयासचरित्र की रचना (वि० स० १२४८ से पहले) की थी और सिद्धसेन ने स० १२४८ से पहले पद्मप्रभचरित्र की तथा उक्त संवत् में प्रवचनोद्धार पर तत्त्वविकाशिनी टीका और स्तुतियाँ लिखी थीं।[2] सभवतः इन्हीं सिद्धसेन

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०१; हीरालाल देवचन्द शाह, शारदा मुद्रणालय, पानकोर नाका, अहमदाबाद, स० १९९८.

२ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३२८.

(सिंहसेन) ने सं० १२१३ में प्रतिष्ठा कराई थी ।[1] इस आधार पर सिद्धसेन के प्रशिष्य वीरदेवगणि का समय तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध आता है।

दूसरी दो रचनाएँ संस्कृत के काव्यरूप में मिली हैं। एक के रचयिता चारित्रसुन्दरगणि हैं[2] जो बृहत्तपागच्छ में रत्नाकरसूरि की परम्परा में अभयसिंह-सूरि–जयतिलक–रत्नसिंह के शिष्य थे। विण्टरनित्स ने इसमें १४ सर्ग होने लिखे हैं। जिनरत्नकोश में इसका ग्रन्थाग्र ८९५ श्लोक-प्रमाण बतलाया गया है। चारित्रसुन्दर ने इस काव्य की रचना कब की यह निश्चित नहीं मालूम होता परन्तु वे १५वीं के अन्त तथा १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान थे। उन्होंने शुभचन्द्रगणि के अनुरोध पर दशसर्गात्मक कुमारपालचरित काव्य की रचना २०३२ श्लोकों में सं० १४८७ में की थी और सं० १४८४ वा ८७ में शीलदूत-काव्य और पीछे आचारोपदेश की रचना की थी। उन्होंने कुछ प्रतिष्ठाएँ सं० १५२३ तक कराई थीं।

दूसरी संस्कृत कृति में पाँच सर्ग हैं और उसे तपागच्छ के रत्ननन्दि के शिष्य चारित्रभूषण ने रचा है।[3] अपनी गुरुपरम्परा को विजयचन्द्र से प्रारम्भ कर रत्नाकरसूरि की परम्परा में अभयनन्दि—जयकीर्ति—रत्ननन्दि के नाम दिये हैं। पर अभयनन्दि आदि नाम उक्त गच्छ की परम्परा में नहीं मिलते हैं। उनके स्थान में अभयसिंह, जयतिलक और रत्नसिंह मिलते हैं। चारित्रभूषण की जगह चारित्रसुन्दर की कुछ कृतियाँ मिलती हैं। संभवतः चारित्रभूषण और उनकी गुरुपरम्परा नाम भिन्न होने से पृथक् रही हों। यह भी संभावना है कि चारित्र-भूषण और चारित्रसुन्दर एक ही हों।

मुग्धकथाएँ :

भरटकद्वात्रिंशिका—इसमें ३२ कथाओं का संग्रह है।[4] यह मुग्ध (मूर्ख,

---

१ पट्टावलीसमुच्चय, पृ० २०५

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३०८; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९ और १९१७.

३. वही, इस काव्य की पाण्डुलिपि जैन सिद्धान्त भवन आरा में (झ। १२२) २४ पत्रों में है; विशेष परिचय के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४६७-४७१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २९२; जे० हर्टेल द्वारा सम्पादित, लाइप्जिग, १९२१; हर्टेल का मत है कि इस द्वात्रिंशिका का लेखक गुजरातनिवासी कोई जैन विद्वान् होना चाहिए। ऐसी कथाएँ ४९२ ई० पूर्व में भी मौजूद थीं।

प्रारम्भ मे लोकव्यवहार मे प्राणियो के भी दृष्टान्त दिये जाते थे। प्राणियो के दृष्टान्त सुनने में हर एक के लिए सुगम एव ग्राह्य होते हैं। प्राणी भी मानववत् व्यवहार कर सकते हैं, कभी किसी समय में प्राणियों एव मानव मे इस दृष्टि से कोई अन्तर न था आदि विश्वास अशिक्षित जनसाधारण मे रहा था।

पचतंत्र, हितोपदेश की कहानियों को 'नीतिकथा' कहा गया है। पर दुर्भाग्य से मूल पचतत्र अप्राप्य है। इसके केवल उत्तरकालीन सस्करण ही मिलते हैं।

जैन कथाकारों ने पंचतत्र की शैली और विषय से प्रभावित होकर कई कथाकोश लिखे हैं। मलधारी राजशेखरकृत 'कथासग्रह' मे पंचतत्र के समान ही कहानियों के दर्शन होते हैं। हेमविजयकृत 'कथारत्नाकर' मे भर्तृहरि के शतकों और पंचतंत्र आदि से अनेक सूक्तियाँ ली गई हैं।

इतना ही नहीं, पंचतत्र के जैन सस्करण भी प्राप्त होते हैं। पचतत्र के विशिष्ट अध्येता जर्मन विद्वान् हर्टल के अनुसार पचतत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय संस्करण जैन विद्वानों द्वारा ही तैयार किये गये हैं। एक ऐसा सस्करण है जिसे उसके सम्पादक श्री कोसे गार्टन ने Textus Simplicior नाम से कहा है। हर्टल और अमेरिकन विद्वान् एजर्टन के अनुसार इसके लेखक कोई अज्ञातनामा जैन विद्वान् थे। उनका समय ९०० से ११९९ तक माना गया है। इसमें पंचतत्र की अनेक कथाओं का रूपान्तर हो गया है।

पंचाख्यान या पंचाख्यानक—श्री एजर्टन के अनुसार इसकी रचना तंत्राख्यायिक एव Textus Simplicior के आधार से की गई है। इसके रचयिता जैन मुनि पूर्णभद्र हैं। इस संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे पंचतत्र की कथाओं के लौकिक पक्ष को कोई हानि नहीं पहुँचाई गई। इसमे पचतत्र का नीतिकथात्मक रूप सुरक्षित रखा गया है।[१]

इस ग्रन्थ के अन्त में ८ पद्यों की एक प्रशस्ति दी गई है जिसमें लिखा है कि विष्णुशर्मा ने सूक्तियों से भरे कथाओं से युक्त नृपनीतिशास्त्र पचतंत्र की रचना की थी जो कालान्तर मे विशीर्णवर्ण हो गया था। इसे मंत्री सोमशर्मा के अनुरोध से नृपतिनीति-विवेचन के लिए श्री पूर्णभद्रसूरि ने संशोधित किया।

---

१. डा० हर्टल, दि पंचतत्र, भाग २, १९०८.

इस कार्य मे प्रत्येक अक्षर, पद, वाक्य, कथा और श्लोक का सशोधन किया गया है।[1]

अन्त में इस ग्रन्थ का परिमाण ४६०० श्लोक बतलाया गया है और रचना-सवत् १२५५, फाल्गुन वदि तृतीया रविवार बतलाते हुए कहा गया है कि मानो यह जीर्णोद्धार-सा हो।[2]

पुरानी रचना का जीर्णोद्धार अर्थात् नया रूप देने के महनीय कार्य को प्रकट करते हुए कवि ने अपनी नम्रता ही प्रकट की है। इसमे जो स्मृतिशास्त्रों से उद्धरण दिये गये हैं वे लौकिक नीतिवाक्यों से भिन्न नहीं हैं। आवश्यकतावश जहाँ जिसका उपयोग हो सका उस कार्य में पूर्णभद्र ने अपना कौशल दिखाया है।

हर्टल महोदय ने पंचाख्यानक के महत्त्व को इन शब्दों मे प्रकट किया है: अपने सिद्धान्तों का उपदेश करने के लिए बौद्धों ने नीतिकथाओं को भी तोड़-मरोडकर अपनाया है। पचतंत्र का बौद्ध सस्करण नहीं मिलता, यह कोई संयोग की बात नहीं है। जैन सस्करण पचाख्यानक में जैनियों ने पुरानी नीतिकथाओं को ही सारे भारतवर्ष में, यहाँ तक कि इण्डोचीन और इण्डोनेशिया तक में, लोकप्रिय बनाया है। संस्कृत तथा अन्य विविध देशी भाषाओं मे लिखा हुआ

---

१ कथान्वितं सूक्तविसूक्तं श्रीविष्णुशर्मा नृपनीतिशास्त्रम् ॥ १ ॥
श्रीसोममन्त्रिवचनेन विशीर्णवर्णम्,
आलोक्य शास्त्रमखिल खलु पचतंत्रम्।
श्रीपूर्णभद्रगुरुणा गुरुणादरेण,
संशोधित्त नृपतिनीतिविवेचनाय ॥ २ ॥
प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्रीपूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम् ॥ ३ ॥
विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३२१-२४.

२. चत्वारीह सहस्राणि तत्परं षट्शतानि च।
ग्रन्थस्यास्य मया मान गणितं श्लोकसंख्यया ॥ ७ ॥
शरबाणतरणिवर्षे रविकरवदिफाल्गुने तृतीयायाम्।
जीर्णोद्धारश्चासौ प्रतिष्ठितोऽधिष्ठितो विबुधैः ॥ ८ ॥

यह पचतंत्र इन सब देशों मे इतना अधिक लोकप्रिय हो गया कि जैनों तक ने इस बात को भुला दिया कि मूल मे यह जैन विद्वान् का लिखा हुआ था।'

प्राचीन जैन कथाग्रन्थ वसुदेवहिण्डी, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि आदि मे पचतंत्र की शैली मे लिखे हुए नीति और लोकाचार सम्बन्धी अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। इनमे से कितने ही आख्यानों का विकसित रूप पचाख्यानक मे विद्यमान प्रतीत होता है। हर्टल महोदय ने समीक्षा करते हुए यह भी कहा है कि पूर्णभद्रसूरि ने अपने पचतत्र मे कतिपय अज्ञात स्रोतों से कितनी ही नई कहानियो एव सूक्तियों का समावेश किया है। इस ग्रन्थ की भाषाशास्त्रीय विशेषताओ पर से हर्टल की मान्यता है कि अन्य बातों के साथ-साथ ग्रन्थकर्ता ने अपनी रचना मे प्राकृत रचनाओ अथवा कथाओं का लौकिक भाषा में उपयोग किया है।[2]

पचाख्यानसारोद्धार—अन्य जैन पचतत्रो मे धनरत्नगणिकृत पचाख्यान या पचाख्यानसारोद्धार मिलता है जिसका रचनाकाल स० १५४५ से पहले का है क्योंकि उक्त सवत् की इसकी एक हस्तलिखित प्रति मिली है।[3]

---

१. हर्टल, आन दि लिटरेचर आफ दि श्वेताम्बर्स आफ गुजरात, लाइप्जिग, १९२२, पृ० ७-८.

२. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथासाहित्य, पृ० ७८-९२ मे नीति-कथा की अनेक कहानियाँ देकर उनके स्रोतो को दिखाया गया है। कोटा (आदिवासी जाति) लोककथा के कल्पनाबन्ध (Motif) की तुलना कुछ जैन कथाओं से की गई है। देखिये—M B Emenean का जरनल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी (६७) मे लेख 'स्टडीज इन दि फोकटेल्स आफ इण्डिया'; स्त्री-शुद्धिपरीक्षा के कल्पनाबन्ध के लिए देखें—(१) स्टेण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड, भाग १, मारिया लीच, न्यूयार्क, १९४९ मे 'चेस्टिटी टेस्ट' और 'एक्ट आफ ट्रूथ' नामक लेख.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २३०.

पंचाख्यानोद्धार—दूसरी रचना तपागच्छीय कृपाविजय के शिष्य मेघविजय-कृत 'पंचाख्यानोद्धार'[1] है जो स० १७१६ में रचा गया था। यह बालकों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिए लिखा गया था। अनेक नूतन कहानियों का इसमें समावेश है। अन्तिम रत्नपाल की कथा पचतंत्र के अन्य किसी सस्करण में उपलब्ध नहीं है। यह सस्करण वडगच्छ के रत्नचन्द्रगणि के शिष्य वत्सराज-गणिकृत गुजराती पचाख्यानचौपई पर आधारित है।

पचाख्यानवार्तिक—इसकी रचना कीर्तिविजयगणि के चरण-सेवक जिन-विजयगणि ने की है।[2] वि० स० १७३० मे फलौधी नगरी में इसकी रचना की गई थी। यह पुरानी गुजराती में है, श्लोक सस्कृत मे हैं। १९वीं कथा में बया और बन्दर की और ३०वीं में खरगोश और मदोन्मत्त सिंह की कहानी है। इसमें सोमदेव के नीतिवाक्यामृत और हेमचन्द्राचार्य के लघ्वर्हन्नीति-शास्त्र नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है।

शुकद्वासप्ततिका—नीतिकथा पर पचतत्र के समान दूसरे ग्रन्थ शुकसप्ततिका का जैन पाठान्तर भी मिलता है। स० १६३८ में गुणमेरुसूरि के शिष्य रत्न-सुन्दरसूरि ने शुकद्वासप्ततिका[3] की रचना की है। इसे रसमञ्जरी तथा शुक-सप्ततिका[4] भी कहते हैं। एक अज्ञातकर्तृक शुकद्वासप्ततिका[5] कथा का भी उल्लेख मिलता है।

इस कथा सग्रह मे शुक द्वारा ७० या ७२ कहानियाँ शीलरक्षा के लिए कही गई हैं।

---

१. वही; सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित देवानन्दकाव्य की भूमिका; कीथ, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० २६०; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग ३, पृ० ३२५.

२. इसका प्रकाशन जे० हर्टल ने लाइप्जिग से १९२२ में किया है।

३-५. जिनरत्नकोश, पृ० ३८६.

प्रकरण ४

ऐतिहासिक साहित्य

किसी भी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के इतिहास-ज्ञान के अभाव मे आँका नहीं जा सकता। इसलिए प्रत्येक वस्तु या विषय के मूल्याकन के लिए इतिहास-ज्ञान आवश्यक हो गया है। इतिहास-ज्ञान से हमे अनेक समस्याओं को सुलझाने मे बड़ी सहायता मिलती है। प्रत्येक देश, धर्म, सस्कृति, जाति आदि के इतिहास ने मानव-मस्तिष्क की अनेक समस्याओं को सुलझाया है। इतिहास जानने की अनेकविध सामग्री होती है। वह कथा-कहानी जैसा कहीं लिखा नहीं मिलता। किसी भी देश या धर्म का इतिहास उस देश के राजा-रानियों या धर्माधिकारियों की वशावलियों का ज्ञान कर लेना मात्र नहीं है बल्कि उन सभी परिस्थितियों का अध्ययन करना है जिन्होंने उस देश को गौरव प्रदान किया है। इस दृष्टिकोण से भारतवर्ष के इतिहास को देखें तो वह एक प्रकार से नाना जातियो के समिश्रण और अनेकों सस्कृतियों के आदान-प्रदान का इतिहास ही है। सर्वाङ्गीण भारतीय इतिहास जानने के लिए अन्य सामग्रियों के साथ ब्राह्मण, जैन, बौद्ध साहित्य का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक है। इसके अध्ययन के बिना जो भी इतिहास लिखा गया है वह एकागी तथा अपरिपूर्ण है। इस साहित्यत्रयी के अध्ययन के अभाव में इतिहास प्रस्तुत करने वाली अन्य सामग्रियों—अभिलेखों, प्राचीन मुद्राओं, चित्रों तथा स्थापत्यों—की बड़ी भ्रामक व्याख्याएँ हुई है तथा जिस वर्ग की जब प्रभुता हुई उसने तब अपने वर्ग की छाप लगा दी है। भावी इतिहासज्ञों का काम उन भूलों को सुधारना है तथा उक्त अध्ययन से भारतीय इतिहास के लिए निष्पक्ष एव स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत करना है।

जैन ऐतिहासिक सामग्री के विविध अग हैं। विशाल आगम साहित्य और जैन पुराणों एव कथाओं मे अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ[1] पड़ी हैं जिनका

---

१. डा० मोतीचन्द्र, कुछ जैन अनुश्रुतियाँ और पुरातत्त्व, प० नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २२९ प्रभृति.

३. इनमे नायक की वीरता या माहात्म्य-प्रदर्शन करने के लिए दिग्विजय, ससघ यात्राओं आदि के काल्पनिक विवरण प्रदर्शित किये गये हैं। कहीं-कहीं नायक का उत्कर्ष प्रकट करने के लिए प्रतिनायक की कल्पना भी की गई है।

४. अधिकाश काव्यों मे घटनाओं की तिथियों के विवरण इतिहाससम्मत ही हैं, कुछ मे नहीं।

५. इनमे नायक की वशपरपरा और कुलोत्पत्ति के विवरण पौराणिक ढंग पर दिये गये हैं।

जैनों के ऐतिहासिक काव्य हरिषेण की समुद्रगुप्त-सम्बधी इलाहाबाद-प्रशस्ति, बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षवर्धन-प्रशस्ति के रूप मे हर्षचरित, बिल्हणकृत विक्रमाक-देवचरित व कल्हण की राजतरगिणी के समान ही बड़े उपयोगी हैं। यहाँ उनका परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

गुणवचनद्वात्रिंशिका :

सिद्धसेन दिवाकर के विषय मे माना जाता है कि उन्होंने बत्तीस द्वात्रिंशिकाओं (३२ पद्यों का काव्य) की रचना की थी। इनमे से २१ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से पाँच मे कर्ता का नाम अश या पूर्ण रूप मे मिलता है। १, २ और १६वीं द्वात्रिं० के अन्तिम पद्य मे 'सिद्ध' शब्द मिलता है जब कि ५वीं और २१वीं में पूरा नाम सिद्धसेन। शेष मे नाम का सकेत या चिह्न भी नहीं दिया गया है परन्तु परम्परा और शैली को देखते हुए उनके कर्ता सिद्धसेन के होने मे गम्भीर आपत्ति नहीं हो सकती।

इनमे से ११वीं द्वात्रिंशिका प्रशस्ति के अनुसार 'गुणवचन-द्वात्रिंशिका' है।[1] यह एक राजा की प्रशस्ति है जो उसे त्वया, भवान्, त्वत्, तव, भवता और त्वा सर्वनामों द्वारा एव मध्यम पुरुष मे क्रियाओं—सन्तुष्यसे, वहसि, सुरायसे, हरसि, करोसि और असि—द्वारा तथा नृपते, नरपते, नरेन्द्र, नृप, राजन् और क्षितिपते सम्बोधनों द्वारा लक्षित किया गया है। इस विरुद मे केवल २८ पद्य हैं। यह सम्भव है कि हमारे लिए महत्त्व के चार पद्य खो गये हों या कुछ

१. मध्यभारती पत्रिका, १, जुलाई १९६२, में मूल सस्कृत पाठ तथा अग्रेजी अनुवाद डा० हीरालाल जैन द्वारा दिया गया है। इसके तुलनात्मक टिप्पण महत्त्वपूर्ण है।

वैयक्तिक कारणों से अलग कर दिये गये हों। यह भी सम्भव है कि मूलतः यह इतना ही हो क्योंकि दूसरी द्वात्रिंशिकाओं मे भी पद्यों की सख्या अनियमित है। उदाहरणतः जबकि २१वीं में ३३, १०वीं मे ३४ पद्य हैं तो ८वीं में २६ और १५वीं और १९वीं मे ३१ पद्य है।

जबकि अन्य द्वात्रिंशिकाओं का विषय या तो तीर्थंकरों की स्तुति या जैन-सिद्धान्त के विवेचन के रूप में है, तो इसका विषय निम्नप्रकार है :

उस राजा के सम्बन्ध मे कवि उच्चकोटि की विरुदावली के रूप मे कहता है कि तुम कीर्ति में अपने पूर्वजों से बहुत आगे हो (१)। तुम जगत् भर मे महिमाशाली हो (२)। तुम्हारी कीर्ति दसों दिशाओं मे फैल रही है (३)। तुम्हारे गुणों ने तुम्हारी कीर्ति को वनप्रदेशों मे भी फैला दिया है (४)। तुमने दूसरों के प्रताप को ढक दिया है (५)। तुम्हारे अनुग्रह-स्वभाव ने तुम्हारी कीर्ति बढ़ा दी है (६)। तुम्हारे गुण दिव्य हैं (७)। ससार में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ तुम्हारी कीर्ति न पहुँची हो (८)। राज्यश्री तुम्हारे वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करती है (९)। तुम बुद्धयादि गुणो से दिव्य हो (१०)। तुम अपने दान (अनुग्रह) प्रकृति से प्रवीर शत्रुओ को वश मे कर लेते हो (११)। वसुधा बहुत काल बाद तुम्हारे एकच्छत्र राज्य में आई है, शेष नृप तुम्हारे आज्ञापालक है (१२)। तुम क्रोध से शत्रुओं को उखाड़ फेंकते हो और पराजित शत्रुओं पर कृपाकर शतगुणी राज्यलक्ष्मी देते हो (१३-१४)। तुम मान के सिवाय दूसरे गुण को पसन्द नहीं करते अर्थात् मान पर तुम्हारा एकाधिकार है और यदि वह गुण दूसरों में चला गया तो वे निर्मूल कर दिये जाते हैं (१५)। तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर ही शत्रु यश पा सकते हैं पर उनमे हिम्मत कहाँ (१६)। शरद् ऋतु तुम्हारे शत्रुओं को अरोचक है क्योंकि वह तुम्हारी दिग्विजय का समय है (१७)। एक समय सयोग से तुम्हारी तलवार ने तुम्हारे वक्षःस्थल पर क्षतकर राज्यलक्ष्मी को स्थिर कर दिया था (१८)। तुम्हारे अधीन चचला लक्ष्मी और पृथ्वी परस्पर स्पर्धा से बढ रही हैं (१९)। तुम्हारे साथ वृद्धा (बहुत काल से रहनेवाली) लक्ष्मी का यौवनगुण बदला नहीं (२०)। तुम्हारे मनुष्यरूप मे हरि (देवराज) होने का विषय तब तक रहस्य बना रहा जब तक प्रान्तपतिरूपी मेघों ने जनकल्याणकारिणी योजनाओं द्वारा उसे प्रकट नहीं किया (२१)। तुम यथार्थ मे महीपाल हो जो खिन्न पृथ्वी को वक्षःस्थल से धारण करते हो। जब तुम गर्भ मे थे तभी पृथ्वी ने नूतन युग आने के संकेत कर दिये थे (२२)। विरुद्ध गुण भी तुममें ही निर्विरोध

रहते है (२३)। सूर्य की दीप्ति से भी तुम्हारी दीप्ति उत्तम है (२४)। तुम विद्वानों की सभा में वक्तृत्व के लिए प्रसिद्ध हो (२५)। तुम्हारी विवादशक्ति, साहस, पत्ररचना, मन्त्रिपरिषद् तुम्हारे विरोधियों के लिए ईर्ष्या के विषय हैं (२६)। तुम्हारा जन्म कलि के क्रम को व्यतिक्रम (विक्रम) कर हुआ है (२७)। तुम्हारी सर्वव्यापी प्रभुता अवर्णनीय है (२८)।

इन पद्यों के सङ्केतों को डा० हीरालाल जैन ने गुप्तवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शिलालेखों, मुद्राओं और कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य के पद्यों से मिलाकर इस बात को सन्देहरहित सिद्ध किया है कि यह उक्त नाम वाले गुप्तवंशी नरेश की ही प्रशस्ति है।[1] इसके रचयिता कवि सिद्धसेन हैं जो जैन और जैनेतर उल्लेखों से विक्रमादित्य के समकालीन सिद्ध होते हैं। इस तरह यह समकालीन कवि द्वारा प्रस्तुत प्रशस्ति उसी तरह महत्त्व की है जिस तरह इलाहाबाद में उत्कीर्ण कवि हरिषेणकृत समुद्रगुप्त-प्रशस्ति।

गुजरात के कवियों ने चौलुक्य वंश और उसके प्रसिद्ध नृप जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल के राज्यकाल का विवरण देने के लिए अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे। उनमें प्रथम है द्वयाश्रयमहाकाव्य।

द्वयाश्रयमहाकाव्य :

इस काव्य[2] की रचना हेमचन्द्रसूरि ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ 'सिद्धहेम-शब्दानुशासन' या 'हैमव्याकरण' के नियमों को भाषागत प्रयोग में समझाने एवं उदाहृत करने के लिए की है। जिस तरह हैमव्याकरण संस्कृत और प्राकृत

---

१. A Contemporary Ode to Chandra Gupta Vikramaditya, मध्यभारती पत्रिका, १, जबलपुर विश्वविद्यालय, जुलाई १९६२.

२. सपा०—ए० वी० कथवटे, सर्ग १–२० (संस्कृत), २ भाग, बम्बई संस्कृत सिरीज, १८८५, १९१५ और स० पा० पण्डित, सर्ग २१-२८ (प्राकृत), उसी सिरीज में, १९००, द्वितीय संस्करण · सपा०—प० ल० वैद्य, परिशिष्ट के साथ में हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण, उसी ग्रन्थमाला से १९३६ में प्रकाशित, प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदीकृत संस्कृत द्वयाश्रय का भाषान्तर (गुजराती) १८९३ में प्रकाशित, प्रो० केशवलाल हिम्मतलाल कामदारकृत हेमचन्द्रनु द्वयाश्रयकाव्य १९२६ में प्रकाशित आदि.

भाषाओं में विभक्त है उसी तरह यह काव्य भी। इस काव्य के २८ सर्गों मे से प्रथम २० सर्ग सस्कृत में हैं जो सस्कृत व्याकरण के नियमों को उदाहृत करते हैं और अन्तिम ८ सर्ग प्राकृत भाषा मे प्राकृत व्याकरण के नियमों को उदाहृत करने के लिए रचे गये हैं। इन आठ सर्गों के अन्तिम भाग को कुमारपालचरित (कुमरवालचरिय) नाम से भी कहते हैं। सस्कृत द्व्याश्रय का परिमाण २८२८ श्लोक प्रमाण और प्राकृत द्व्याश्रय का १५०० श्लोक-प्रमाण है।[1]

सस्कृत-प्राकृतमय इस काव्य का वही महत्त्व एव स्थान है जो संस्कृत मे भट्टिकाव्य का है।

यद्यपि यह ग्रन्थ सस्कृत-प्राकृत व्याकरण के नियमों के साहित्यिक उदाहरणो को प्रस्तुत करने के लिए निर्मित हुआ था फिर भी इसमे इन मर्यादाओं के भीतर कुछ अपवादों को छोड़ कामचलाऊ ढग से गुजरात के चौलुक्य वंश का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र का अभिप्राय इस दो आश्रय-वाले काव्य से एक ओर व्याकरण के नियमों को समझाने का तो दूसरी ओर ऐतिहासिक काव्य लिखने अर्थात् चौलुक्य वश का गुणवर्णन करने का था और विशेषकर उस वश के नृप सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल का।

विषयवस्तु—सस्कृत भाग के प्रथम सर्ग में अणहिलपुर मे चौलुक्य वश की उत्पत्ति और उसके प्रथम नरेश मूलराज के गुणों का वर्णन दिया गया है। द्वितीय से पचम सर्ग तक मूलराज के राज्यकाल का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। छठे सर्ग में मूलराज के उत्तराधिकारी चामुण्डराज तथा सातवें में दुर्लभराज और उसके बड़े भाई वल्लभराज का वर्णन है। अष्टम सर्ग में दुर्लभराज के उत्तराधिकारी भतीजे भीम के राज्यकाल का वर्णन है। नवम में भीम, भोज तथा चेदिराज के बीच युद्ध का वर्णन है। इसी सर्ग में भीम के पुत्र क्षेमराज और कर्ण का वर्णन और कर्ण की राज्यप्राप्ति तथा मयणल्ल देवी से विवाह का वर्णन है। दसवें सर्ग मे कर्ण द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए लक्ष्मी की उपासना और पुत्रोत्पत्ति का वरदान पाना वर्णित है। ग्यारहवें मे जयसिंह की उत्पत्ति, राज्यारोहण, कर्ण का स्वर्गवास तथा जयसिंह की विजय का वर्णन है।

---

1. संस्कृत द्व्याश्रय पर अभयतिलकगणि ने वि० स० १३१२ मे टीका लिखी है जिसका सशोधन लक्ष्मीतिलकगणि ने किया है। प्राकृत द्व्याश्रय पर पूर्णकलशगणि ने वि० सं० १३०७ मे टीका लिखी है।

बारहवे से पन्द्रहवें सर्ग तक जयसिंह की दैवी चमत्कारों से पूर्ण विविध विजयों, धार्मिक कार्यों तथा स्वर्गप्राप्ति का वर्णन है। सोलहवे सर्ग मे कुमारपाल की राज्य-प्राप्ति तथा अनेक नरेशो के विद्रोह-शमन का वर्णन है। विजयप्रसग में उसके आबू पर्वत पर आने तथा आबू के माहात्म्य का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग मे रात्रि, चन्द्रोदय, सुरत आदि का वर्णन है। अठारहवे मे कुमारपाल का प्रस्थान, उन्नीसवें मे अर्णोराज से युद्ध का वर्णन है। बीसवें सर्ग मे कुमारपाल द्वारा अमारि-घोषणा, मृतक धन अग्रहण, मन्दिरनिर्माण आदि लोकोपकारी कार्यों का वर्णन दिया है। इसी सर्ग मे कुमारपाल सवत् चलने का उल्लेख है।

प्राकृत द्व्याश्रय के प्रथम सर्ग में अणहिलपुर मे वन्दीजनों द्वारा कुमारपाल की कीर्ति का वर्णन तथा शयनोत्थान से लेकर श्रम-गृहगमन तक दिनचर्या का वर्णन दिया गया है। द्वितीय में मल्लश्रम, कुजरयात्रा, जिनमन्दिरयात्रा, जिन-पूजा आदि का वर्णन दिया गया है। तृतीय में उपवन, वसन्तशोभा आदि का वर्णन है। चौथे में ग्रीष्म और पॉचवें मे अन्य ऋतुओ के विहार आदि का सालकार वर्णन है। छठे मे चन्द्रोदय का वर्णन तथा राज्यदरबार मे सान्धि-विग्रहिक की विज्ञप्ति द्वारा कोकणाधीश मल्लिकार्जुन पर विजय होने से कुमार-पाल के दक्षिणाधीश बनने की तथा पश्चिम दिशा के अनेक नृपों द्वारा अधीनता स्वीकार करने की एव काशी, मगध, गौड, कान्यकुब्ज, दशार्ण, चेदि, जंगलदेश आदि देशों के राजाओं द्वारा अधीनता ग्रहण करने की सूचना दी गई है। इसके बाद कुमारपाल का शयन वर्णित है। सातवें सर्ग में आरम्भ मे राजा द्वारा परमार्थचिन्ता वर्णित है। पहले आचार्यों की स्तुति और पीछे श्रुतदेवता की स्तुति दी गई है। आठवें सर्ग मे श्रुतदेवी का उपदेश दिया गया है।

इस वर्णन में कवि ने विषय के चुनाव और त्याग में विचारपूर्वक काम लिया है। यहॉ द्व्याश्रयकाव्य की ऐतिहासिकता विचारने के प्रसग मे यह आवश्यक है कि हेमचन्द्र ने अपने द्व्याश्रयकाव्य के कुछ खास पद्यों द्वारा व्याकरण के उदाहरणों मे इतिहास गर्भित करने के प्रयत्न में कहॉ तक सफलता या असफलता प्राप्त की है।

यहॉ हम तद्धित प्रत्ययों के उदाहरणो के लिए प्रस्तुत एक पद्य को लेते हैं :

तत्तद्धितं कर्तृभिरात्मभर्तुः, समेत्य वृद्धैर्युवभिः क्षणाद्वा।
दुष्टैरथावन्तिभटैः स वप्रोऽध्यारोह्य भीतैः रणतूर्यवाद्यात्॥

१४. ३७.

इस पद्य मे इतिहास के रूप मे अवन्तिभटों की हालत का वर्णन है। वे वृद्ध-युवा सभी अपने दुर्ग के परकोटे की रक्षा में लग गये और चौलुक्य सेना के सामरिक नगाड़ों की आवाज से नहीं डरे। इसमें हेमचन्द्र दीर्घकाल तक चलने वाले युद्ध के एक दृश्य का वर्णन करते दिखाई पड़ते हैं जिसके विवरणों को उन्होंने निःसन्देह रूप मे सुना है। परन्तु इस पद्य मे हेमव्याकरण के चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद के १–६ तथा ११ सूत्र के उदाहरण दिये गये हैं। सम्भव है यह पद्य इतिहास व्याकरण दोनों उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है। इस प्रकार के अनेकों पद्य है।

यहाँ दूसरा नमूना प्रस्तुत है :

सुप्रेयसी करुणया बहु विष्णुमित्र-
ग्रामेऽप्यभूत् ससुत एव जनो नृपेऽस्मिन्।
सुभ्रातृपुत्रसहिते क्षतनाडिकृत्त,
तंत्री - गला - जवलिमाय न देवतापि ॥

इस पद्य में कुमारपाल की अमारि-घोषणा के प्रभाव का पर्णन है, साथ मे हेमव्याकरण के पाँच सूत्रों ७. ३. १७६-१८० के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। 'सुभ्रातृपुत्रसहिते' पद की टीकाकार अभयतिलकगणि[1] ने व्याख्या कर अर्थ निकाला है कि अजयपाल कुमारपाल का भतीजा था परन्तु एक समकालीन स्रोत से ज्ञात होता है कि अजयपाल कुमारपाल का बेटा था।[2] इससे यह मालूम होता है कि हेमचन्द्र द्वारा शब्दों के विचित्र प्रयोग से टीकाकार ने पुत्र को भतीजे के रूप मे समझ लिया है परन्तु इसके द्वारा कुमारपाल के अमारि-घोषणा के प्रभाव के वर्णन मे हेमचन्द्र सफल रहे हैं।

यहाँ अब ऐसे एक पद्य को बतलाते है जिसमे हेमचन्द्र ने इतिहास और व्याकरण दोनों के उद्देश्य पूर्ण किये हैं पर उसके अगले पद्य मे वे असफल रहे हैं। उन्होंने १४वें सर्ग के ७२वें पद्य मे वर्णन किया है कि सिद्धराज ने राजा यशो-वर्मा को, जो एक गौरेया चिड़िया के समान था, पराजित कर दिया, परन्तु

---

१. शोभनो भ्राता कुमारपालो यस्य स सुभ्राता महीपालदेवस्तस्य पुत्रोऽजयपाल-देवस्तेन सहिते।

२. सुरथोत्सव, १५. ३१.

आगे एक पद्य मे हेमचन्द्र ने कहा है कि यशोवर्मा को हरा देने के बाद सिद्धराज जयसिंह ने अनेक सीमावर्ती राजाओं को हरा दिया। उनमें से एक-एक की तुलना भिन्न-भिन्न प्राणियों से की गई है और कहा गया है कि सिद्धराज ने उन्हें वैसे ही बाँधा जैसे उन पशु-पक्षियों को बाँधा जाता था। यद्यपि इस पद्य में, जैसा कि हम दूसरे उपादानों से जानते हैं, सस्कृत काव्य के अनुकूल वेश में ठीक सूचना दी गई है परन्तु अगला पद्य तो ६. १. ८१–९६ के केवल उदाहरणों के रूप मे है। उससे कुछ ऐतिहासिक तथ्य निकालना सचमुच मे भ्रान्ति है। इस प्रकार के अनेक पद्य हैं। उदाहरण के लिए हेमचन्द्र कहते हैं कि ग्राहरिपु की पत्नी का नाम नीली था (४. ४८)। यहाँ सहसा सन्देह होता है, क्योंकि हेमचन्द्र से यह आशा करना कठिन है कि वे उस रानी का नाम जानें जिसका पति मूलराज के द्वारा १०वीं शती ई० मे पराजित किया गया हो। उनकी सूचना के स्रोतों की हम सुगमता से तलाश कर सकते हैं। हेमचन्द्र ने अपने एक सूत्र २. ४. २४ के उदाहरण मे अपनी लघुवृत्ति में भी नीली शब्द दिया है। लघुवृत्ति द्वयाश्रयकाव्य से पहले रची गई थी। यह स्पष्ट है कि नीली की कोई यथार्थ सत्ता नहीं, वह केवल व्याकरण के सूत्र का उदाहरण प्रस्तुत करने की सुविधा एव आवश्यकता के लिए निष्पन्न किया गया है।

पुनः एक दूसरे प्रसग में हेमचन्द्र ने निर्देश किया है कि मूलराज के तीन मित्र नृप थे—रेवतीमित्र, गगमह और गगामह (४. १-२), पर लघुवृत्ति को देखने पर हम पाते हैं कि वे एक सूत्र २. ४. ९९ के उदाहरणरूप हैं। चूँकि ऐसे सयोग और नाम दुर्लभ हैं इसलिए बहुत सम्भव है कि ऐसे नामधारी मूलराज के मित्र नृप नहीं थे। यह सभावना और भी दृढ़ हो जाती है जब हम देखते हैं कि लक्ष्मीकर्ण के दरबार मे भीम का दूत डींग मारता है कि भीम के मित्र नृप बहुत थे जिनके विचित्र नाम यन्ति, रन्ति, नन्ति, गन्ति, हन्ति आदि थे (९.३६)। यथार्थतः ये शब्द अपनी लघुवृत्ति में हेमचन्द्र ने 'न ति कि दीर्घश्च' सूत्र के उदाहरणरूप मे प्रस्तुत किये हैं जिनमें 'इ' को दीर्घ न करने का निर्देश है। स्पष्ट है कि इस पद्य का कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है।

हेमचन्द्र के समकाल में आने पर हम देखते हैं कि कुमारपाल के विरुद्ध लड़नेवाले अर्णोराज के मित्र नृपों के नाम लघुवृत्ति मे अनेकों सूत्रों (६. ३. ६-२५) के उदाहरणरूप मे दिये गये हैं परन्तु चाहड का नाम, जिसने हेमचन्द्र के अनुसार भी कुमारपाल के विरुद्ध अर्णोराज का पक्ष लिया था, व्याकरण के किसी सूत्र के उदाहरण के रूप में नहीं दिया गया। अनेक इतिहास-ग्रन्थों का

कथन है कि इस अवसर पर चाहड कुमारपाल के विरुद्ध उठा था। इससे यह मालूम होता है कि चाहड वास्तविक व्यक्ति था। यह कहना जरूरी है कि मूलराज, भीम और अर्णोराज के मित्र राजाओं के नाम जो द्वयाश्रयकाव्य मे मिलते हैं वे अन्य स्रोत से बिल्कुल नहीं मालूम होते हैं।

द्वयाश्रयकाव्य का दूसरा रूप उसका महाकाव्यत्व है जिसे हेमचन्द्र ने महाकाव्योचित सारभूत तत्त्वों से सजाया भी है। इनसे इतिहास का कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु उस काल के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों को जानने की प्रचुर सामग्री मिलती है।'

यहाँ हम हेमचन्द्र द्वारा उपेक्षित ऐतिहासिक बातों पर सक्षेप मे विचार करते हैं। हम यहाँ उन राजाओं के राज्यकाल पर विचार न करेंगे जिनका हेमचन्द्र को साक्षात् ज्ञान न था। हेमचन्द्र सिद्धराज और कुमारपाल के राज्य में रहते थे इसलिए हम आशा करते हैं कि उन्हें इन दोनों नृपों की गतिविधियों का साक्षात् ज्ञान था। अगर हम उनके द्वारा दिये विवरणों का विचार न करे तो कुछ कमोवेश रूप मे कुमारपाल के राज्य का वर्णन ठीक ही किया गया है परन्तु कुमारपाल के प्रारभिक जीवन का वर्णन नहीं दिया गया। सभवतः हेमचन्द्र उसके प्रारभिक जीवन के विषय मे इसलिए मौन रहे कि सिद्धराज जयसिंह द्वारा वह बहुत समय तक आतकित रहा। पर किसी इतिहासलेखक के लिए सारभूत बातो की उपेक्षा करना उचित बहाना नहीं हो सकता। सम्भवतः ऐसा लगता है कि हेमचन्द्र ने जानकर उन बातो को छोड़ा है जो कि उन चौलुक्य राजाओं की कीर्ति के लिए अपमानजनक हैं। उसने जयसिंह सिद्धराज के पूर्वज नृप भीम और धारानरेश भोज के बीच के सम्बन्ध को भी मौन रखकर टाल दिया है जिसे मेरुतुग, सोमेश्वर आदि इतिहासलेखकों ने विस्तार से लिखा है। भोज के ऊपर भीम की विजय चौलुक्य इतिहास के लिए विशेष घटना थी। हेमचन्द्र सर्वप्रथम विद्वान् है जिसने भोज का 'उल्लेख किया है और वह परमारनरेश के दुःखान्त से निश्चित रूप से परिचित था। इस तथ्य का उसने एक आवृत सकेत मात्र कर दिया जब वह कहता है कि लक्ष्मीकर्ण ने भीम को भोज की स्वर्णमण्डपिका दी थी। इस आवृत सकेत के पीछे हेमचन्द्र का भाव

---

१. विशेष के लिए देखें—र० चु० मोदी, सस्कृत द्वयाश्रयकाव्यमा मध्यकालीन गुजरातनी सामाजिक स्थिति.

भोज में अपनी जैसी पाण्डित्यपूर्ण आत्मा देखना था और उनके मन में परमार मनीषी के प्रति इतना बड़ा सम्मान था कि उसका पतन-वर्णन करने में वे अपने को असमर्थ पाते थे।

विस्मय है कि द्वयाश्रय का सबसे अधिक अनैतिहासिक भाग सिद्धराज के राज्यकाल का वर्णन है। उसकी मालवा-विजय और धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं जिसमे दैवी चमत्कारों की बातें न हों। १०वें सर्ग मे हेमचन्द्र ने कर्ण द्वारा देवी पूजा, देवी का प्रकट होकर पुत्र-प्राप्ति का वरदान, फलस्वरूप जयसिंह का पुत्ररूप में उत्पन्न होना आदि चामत्कारिक बातों का अगले चार सर्गों तक वर्णन किया है। १३वें सर्ग में बर्बरक की पराजय और १४वें मे परमार यशोवर्मा के साथ युद्ध और १५वें में जयसिंह को पुत्र-प्राप्ति न होने और कुमारपाल के उत्तराधिकारी होने आदि की घटनाएँ वास्तविक होते हुए भी अतिमानवीय तत्त्वों के विशेष पुट के कारण अयथार्थ जैसी लगती हैं। आश्चर्य है कि हेमचन्द्र ने यह सब उस जयसिंह सिद्धराज के विषय मे लिखा है जिसके दरबार में उन्होंने अपने जीवन के उत्तम वर्ष बिताये थे और कीर्ति प्राप्त की था। यह मानना ठीक नहीं कि उन्होंने इतिहास लिखना चाहा था। यह बहुत सम्भव है कि व्याकरण के नियमों के उदाहरणों ने इसके बदले उन्हें दैवतकथा (Myth) लिखने के लिए बाध्य किया था। फिर भी इन मर्यादाओं के भीतर द्वयाश्रय मे हेमचन्द्र ने कामचलाऊ ढंग से एक अच्छा इतिहास प्रस्तुत किया है और यह स्पष्ट है कि हेमचन्द्र ने विषय का चुनाव और त्याग विचारपूर्वक किया है।

द्वयाश्रय को हलायुध के कविरहस्य जैसी अन्य कृतियों से भिन्न ही मानना चाहिए। कविरहस्य में धातुरूपों का छन्दात्मक निदर्शन और साथ ही राष्ट्रकूट नृप कृष्ण तृतीय का गुणवर्णन प्रस्तुत है पर उसमें शासक नृप की किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं है। इसके विपरीत द्वयाश्रय मे निश्चित रूप से अनेक ऐतिहासिक विवरण मिल जाते हैं।

द्वयाश्रय की हम बिना पक्षपात के इतिहास के रूप में कल्हण की राजतरंगिणी से तुलना कर सकते हैं। इतिहास के रूप में यह विल्हण के विक्रमांकदेवचरित के समकक्ष भी बैठता है।

द्वयाश्रयकाव्य वर्तमान अर्थ में समझा जानेवाला इतिहास भले न हो पर अपनी मर्यादा के भीतर अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देकर वह आधुनिक वैज्ञानिक इतिहासलेखक का श्रद्धापात्र बन सका है।

वस्तुपाल-तेजपाल का कीर्तिकथा-साहित्य :

चौलुक्य वश के परवर्ती नरेश द्वितीय भीम के समय का गुजरात का इतिहास प्रमाण मे सबसे अधिक विगतवाला और अधिक विश्वसनीय सामग्री (साहित्यिक, पुरातत्त्वीय) वाला है। इसका कारण उस समय मे हुए चाणक्य के अवतार के समान गुजरात के दो महान् और अद्वितीय बन्धुमन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल थे। इन दोनों भाइयों के शौर्य, चातुर्य और औदार्य आदि अनेक अद्भुत गुणों को लेकर इनके समकालीन गुजरात के प्रतिभावान् पण्डितों और कवियों ने इनकी कीर्ति को अमर करने के लिए जितने काव्य, प्रबध और प्रशस्तियों आदि की रचना की है उतने भारत मे दूसरे किसी राजपुरुष के लिए नहीं लिखे गये हैं।

समकालिक काव्यो मे जैन रचनाएँ सुकृतसंकीर्तन और वसन्तनिवास हैं।

सुकृतसंकीर्तन :

इस काव्य[1] मे ११ सर्ग और ५५३ पद्य हैं। इसमें महामात्य वस्तुपाल के जीवन और कार्यकलापों का, विशेषकर उसके धार्मिक और लोकप्रिय कार्यों का अधिक वर्णन है।

इसके प्रथम सर्ग में अणहिलवाड़ मे राज्य करनेवाले प्रथम राजवश चापोत्कट या चावड़ा राजाओं की वशावली और उक्त नगर का वर्णन दिया गया है। यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि यह पहला ऐतिहासिक काव्य है जिसमें चावड़ा-वश[2] का वर्णन है। इसके बाद उदयप्रभकृत सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी में ही उक्त

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, ग्रन्थाङ्क ५१, स० १९७४; इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३१, पृ० ४७७ प्रभृति, जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; इस काव्य का मूल, जर्मन अनुवाद एवं भूमिका जी० बुहलर ने जर्मन पत्रिका सित्सुंगस्वेरिख्ते (भाग ११९, सन् १८९९) में निकाले थे। जर्मन अनुवाद और भूमिका का अग्रेजी अनुवाद इ० एच० बर्जेस ने १९०३ मे इण्डियन एण्टीक्वेरी पत्रिका मे प्रकाशित किये, पीछे अलग पुस्तिका के रूप में जर्मन और अग्रेजी पाठ प्रकाशित हुए; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक ३२.

२ चावडावश का प्राचीनतम शिलालेखीय उल्लेख वि० सं० १२०८ (११५२ ई०) की वडनगर की कुमारपालप्रशस्ति में मिलता है। चावडों की वंशावली के लिए देखें—इण्डियन एण्टीक्वेरी.

वंश का वर्णन मिलता है। हेमचन्द्र इस वंश के विषय में मौन हैं, यद्यपि इस वंश के वनराज ने ही अणहिल्लपाट की स्थापना की थी। चावड़ा शाखा के आठ राजाओं के नाम अरिसिंह ने गिनाये हैं: वनराज, योगराज, रत्नादित्य, वैरसिंह, क्षेमराज, चामुण्ड, राहड और भूभट। इनमें से केवल वनराज के विषय में सूचना है कि उसने अणहिल्लपाट में पञ्चासरा पार्श्वनाथ का मन्दिर निर्माण कराया था जिसका आगे चलकर वस्तुपाल ने जीर्णोद्धार कराया। दूसरे सर्ग में चौलुक्य वंश का वर्णन है जिसमें मूलराज से भीमदेव द्वितीय के राज्यकाल तक का संक्षिप्त विवरण है। भीमदेव द्वितीय के विषय में कहा गया है कि वह चिन्ताओं से बहुत घिरा हुआ था क्योंकि उसके राज्य को सामन्तों और माण्डलिकों ने हड़प लिया था। तीसरे सर्ग में भीम द्वारा वघेला लवणप्रसाद को सर्वेश्वर पद और वीरधवल को युवराज पद तथा मन्त्री पद पर वस्तुपाल और तेजपाल की नियुक्ति की सूचना दी गई है। चौथे से ग्यारहवें तक के सर्ग वस्तुपाल के सुकृत्यों, सत्कार्यों से भरे पड़े हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक रीतिरिवाजों का दिग्दर्शन मिलता है और काव्य का शीर्षक सुकृतों के संकीर्तन द्वारा चरितार्थ किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता ठक्कुर अरिसिंह हैं। प्रबंधकोश के अनुसार यह कवि वायडगच्छ के जिनदत्तसूरि का अनुयायी था। अरिसिंह जैन श्रावक होते हुए भी सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार और कवि मुनि अमरचन्द्र का गुरु था। ये दोनों साहित्यिक एक गृहस्थ और दूसरा साधु परस्पर मिलकर काम करते थे। अरिसिंह वस्तुपाल का प्रिय कवि था तथा वघेलानरेश के राजदरबारियों में एक था।

काव्य के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसकी रचना तब की गई थी जब वस्तुपाल अपनी सत्ता के शिखर पर था।[1] फिर भी वस्तुपाल के जीवनकाल के वि० सं० १२७८ (सन् १२२२ ई०) के बाद ही इसकी रचना होना चाहिए क्योंकि इसमें आबू पर मल्लिनाथ की बनी कुलिका का वर्णन है जो उस वर्ष बनी थी। साथ ही इसे वि० सं० १२८८-८९ पूर्व बनी होना चाहिए क्योंकि इसमें वस्तुपाल द्वारा किये सभी कार्यों का वर्णन नहीं है।

इस काव्य के अतिरिक्त अरिसिंह की अन्य कृतियों का पता नहीं।

---

१. बुहलर, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३१, पृ० ४८०.

वसन्तविलास :

इस काव्य[1] मे प्रसिद्ध अमात्य वस्तुपाल के जीवन-चरित्र का वर्णन है। वस्तुपाल का कविमित्रों द्वारा प्रदत्त द्वितीय नाम वसन्तपाल था। यह एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमे १४ सर्ग हैं। इसमे कुल मिलाकर १०२१ पद्य हैं जो अनुष्टुभ्मान से १५१६ हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह की प्रशसा मे एक वृत्त रचा है, जिसके अनुरोध पर उसने यह काव्य बनाया था।[2]

वस्तुपाल के समकालिक कवि द्वारा रचित होने से इसमें वर्णित घटनाओं की सचाई में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है। गुजरात के इतिहास पर इस काव्य से निम्नलिखित तथ्यों की जानकारी होती है :

१. चौलुक्य वश की ब्रह्मा के चुलुक जल से उत्पत्ति तथा मूलराज से लेकर भीम द्वितीय तक नरेशों का वर्णन। इसमे जयसिंह, कुमारपाल और भीम द्वितीय के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन है।[3]

२ बघेलाशाखा के अर्णोराज, उसके पुत्र लवणप्रसाद तथा उसके पुत्र वीरधवल का वर्णन कर किन परिस्थितियों मे वस्तुपाल-तेजपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति हुई, इसका वर्णन है।[4]

३. वस्तुपाल के प्राग्वाट वश का वर्णन तथा पूर्वज चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम के वर्णन के बाद सोम के पुत्र अश्वराज (वस्तुपाल के पिता) और उसकी पत्नी कुमारदेवी का वर्णन। उनसे मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल ये तीन पुत्र हुए।

४. वस्तुपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति से वीरधवल के राज्य की दिन-प्रतिदिन उन्नति होना। वीरधवल द्वारा लाट देश पर आक्रमणकर और खम्भात को छीनकर वहाँ वस्तुपाल को गवर्नर बनाना। वस्तुपाल द्वारा शासन-व्यवस्था में सुधार तथा सम्पूर्ण धर्मों में समभाव। वस्तुपाल का काव्यप्रेम तथा कवियों के प्रति सम्मान।

---

१. गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, बड़ौदा, १९१७, जिनरत्नकोश, पृ० ३४४.
२. सर्ग १. ७५.
३ इस वर्णन का मिलान कीर्तिकौमुदी और सुकृतसंकीर्तन से कर सकते हैं।
४. यह वर्णन कीर्तिकौमुदी में वर्णित कथा का अनुकरण प्रतीत होता है।

५. मारवाड़ देश के राजाओं और लूणसाक नरेश के बीच युद्ध, वीरधवल का मारवाड़ के राजाओं की सहायता के लिए जाना। भृगुकच्छ के शासक शंख के आक्रमण का वस्तुपाल द्वारा सामना करना और उसे पराजित करना।

६. वस्तुपाल का संघसहित शत्रुंजय और गिरिनार-यात्रा में जाना। वस्तुपाल की मृत्यु माघ कृष्णा पंचमी सं० १२९६ सोमवार को शत्रुंजय में होना।

वैसे वसन्तविलास की कथावस्तु छोटी है पर उसका महाकाव्योचित विधि से विस्तार किया गया है। प्रारंभिक चार सर्ग कथानक की भूमिकामात्र प्रस्तुत करते हैं। पहले में कवि ने काव्य की महत्ता पर प्रकाश डालकर अपना परिचय दिया है। दूसरे सर्ग में अणहिल्लपत्तन नगर का वर्णन तथा तृतीय में मूलराज से लेकर भीम द्वितीय तक चौलुक्यवंशी राजाओं का परिचय तथा बघेला वीरधवल और उसके पूर्वजों का परिचय देकर वीरधवल द्वारा वस्तुपाल-तेजपाल की मन्त्रि-पद पर नियुक्ति का वर्णन किया गया है। चौथे में वस्तुपाल के गुणों का वर्णन करके वीरधवल द्वारा उसको खंभात का शासक नियुक्त किये जाने का विवरण प्रस्तुत किया गया है। पाँचवें सर्ग में कथा को गति मिलती है। इसमें लूणसाक नृपति के साथ मारवाड़नरेश का युद्ध छिड़ने और वीरधवल का ससैन्य जाने का वर्णन है। इसी सर्ग में लाटनरेश शंख के भृगुकच्छ पर आक्रमण करने और वस्तुपाल द्वारा उसे पराजित करके भगाने का वर्णन है। छठे सर्ग में कवि परम्परानुसार ऋतुवर्णन, वैसे ही सातवें में पुष्पावचय, दोलाक्रीड़ा एवं जलक्रीड़ा का वर्णन तथा आठवें में चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है। नवें सूर्योदय नामक सर्ग में रात्रि में निद्रामग्न वस्तुपाल स्वप्न देखता है जिसमें एक पैर का धर्म लंगड़ाता हुआ वस्तुपाल के पास आकर प्रार्थना करता है कि कलियुग के प्रभाव से मैं एक पाद का रह गया हूँ[1] अतः आप तीर्थयात्राएँ करके मेरी व्याकुलता को दूर करें। वस्तुपाल उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। इसी समय प्रातःकाल हो जाता है और वस्तुपाल जाग जाते हैं। इसमें कथानक का टूटा हुआ सूत्र कवि ने फिर पकड़ा है।

दसवें सर्ग से लेकर तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं का विस्तृत वर्णन है। दसवें में शत्रुंजययात्रा, ग्यारहवें में प्रभासतीर्थयात्रा, बारहवें में रैवतक-गिरि वर्णन और तेरहवें में रैवतकयात्रा का वर्णन है। इसी सर्ग में वस्तुपाल

१. यह वर्णन भागवतपुराण (१. १६-१७) के अनुकरण पर है।

का लौटकर धवलक्कक वापिस आने का वर्णन किया गया है। अन्तिम चौदहवें सर्ग में वस्तुपाल द्वारा किये गये अनेक धर्मकार्यों का विवरण दिया गया है तथा माघ कृष्णा पञ्चमी सोमवार सं० १२९६ प्रातः सद्गति जाने का वर्णन किया गया है। इसमे रूपकतत्त्व का आश्रय लिया गया है।

इस काव्य मे कवि ने चरित्र-चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है। इसमे वस्तुपाल, तेजपाल, वीरधवल, शख आदि अनेक पात्र हैं पर वस्तुपाल के उदात्त चरित्र का चित्रण ही इस काव्य का उद्देश्य है। प्राकृतिक चित्रण भी इस काव्य में अच्छी तरह किया गया है। हाँ, इसमे कवि-परम्परा-सम्मत सौन्दर्य-चित्रण नहीं जैसा है। इसी तरह सामाजिक चित्रण करनेवाली विशेष सामग्री इसमें नहीं है। पर तत्कालीन राजनीतिक इतिहास जानने की इसमें प्रचुर सामग्री है। कवि ने धार्मिक सिद्धान्तों का भी कहीं वर्णन नहीं किया परन्तु उसने धर्म की आराधना मे तीर्थयात्रा को विशेष महत्त्व दिया है।

रसों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह वीर-रस-प्रधान काव्य है। पाँचवें सर्ग में वीर-रस की अभिव्यक्ति सुन्दर ढग से हुई है। युद्ध-प्रसग में रौद्ररस और वीभत्स-रस की झाँकी भी दृष्टिगत होती है। दसवे से तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की धर्मवीरता एव दानवीरता का चित्रण किया गया है। छठे, सातवें एव आठवें सर्गों में सयोग-शृगार का परिपाक हुआ है। इस काव्य की भाषा सरल, कोमल एव स्वाभाविक तथा प्रौढ एवं परिमार्जित है। सामान्यतया भाषा भावानुकूल है। यत्र-तत्र सूक्तियों का प्रयोग भी भाषा मे हुआ है।[१] बारहवें सर्ग में कवि ने शब्दक्रीड़ा एव पाण्डित्य प्रदर्शन करते हुए दुरूह पद्यों का प्रयोग किया है। भाषा को सजाने के लिए विविध अलकारों की योजना भी कवि ने प्रचुर मात्रा में की है। शब्दालकारों में अनुप्रास, यमक एव वीप्सा का तथा अर्थालंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अन्य अलंकारो में अपह्नुति, असगति, विरोध, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति का प्रयोग द्रष्टव्य है। छन्दों के प्रयोग में कवि ने महाकाव्य परम्परा को अपनाया है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किये गये हैं। कुछ सर्गों मे विविध छन्दों की योजना भी हुई है। इस तरह इस काव्य में २९ छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

---

१. सर्ग १० ७, १७, २३; ११. ८२.

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता बालचन्द्रसूरि हैं। इस काव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने अपना जैन मुनि होने से पहले के जीवन का परिचय दिया है। तदनुसार कवि मोढेरक ग्रामवासी धरादेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी विद्युत के मुंजाल नाम के पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर मुंजाल ने जैनी दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके गुरु चन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि ने दीक्षा का नाम बालचन्द्र रखा। बालचन्द्र ने अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् पद्मादित्य से शिक्षा ग्रहण की थी तथा वादिदेवगच्छ के उदयप्रभसूरि से सारस्वत मंत्र प्राप्त किया था जिसके फलस्वरूप वह महाकवि बन प्रस्तुत काव्य रच सका।

दीक्षागुरु हरिभद्र ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में बालचन्द्र को अपने पद पर—आचार्य पद पर—प्रतिष्ठित किया। प्रबन्धचिन्तामणि में बतलाया गया है कि वस्तुपाल ने बालचन्द्र की कवित्वशक्ति से प्रसन्न होकर उनके आचार्यपद महोत्सव में एक सहस्र द्रम्म खर्च किये थे। बालचन्द्रसूरि ने 'करुणावज्रायुध' नामक पाँच अंकों का एक नाटक भी लिखा है जो वस्तुपाल की एक संघयात्रा के समय शत्रुंजय में यात्रियों के विनोदार्थ आदिनाथ के मन्दिर में दिखाया गया था। इसके अतिरिक्त बालचन्द्रसूरि ने आसड कविकृत 'विवेकमंजरी' तथा 'उपदेश-कदली' नामक ग्रन्थों पर टीकाएँ भी लिखीं। वसन्तविलास कवि की अन्तिम कृति है और वह वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् लिखी गई थी क्योंकि इसमें वस्तुपाल के स्वर्गगमन का वर्णन है। वस्तुपाल की मृत्यु स० १२९६ में हुई थी। इस काव्य की रचना वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के मनोविनोद के लिए की थी। जैत्रसिंह अपने पिता के जीवनकाल में ही स० १२७९ में खम्भात का गवर्नर बनाया गया था। तब उसकी आयु २५ वर्ष के लगभग रही होगी और वस्तुपाल की मृत्यु के समय उसकी अवस्था ४२-४३ वर्ष की रही होगी। यदि वह ८० वर्ष की पूर्णायु पाकर मरा था तो उसकी मृत्यु स० १३३३-३४ के लगभग हुई होगी। चूँकि इस काव्य की रचना जैत्रसिंह के जीवनकाल में ही हो गई थी अतः इसकी रचना का समय स० १२९६ से स० १३३४ का मध्यवर्ती-काल मानना चाहिए।

वस्तुपाल के जीवन पर आश्रित दूसरा ऐतिहासिक काव्य है संघपतिचरित्र अपरनाम धर्माभ्युदयकाव्य। इसके प्रथम सर्ग में वस्तुपाल की वंशपरम्परा तथा वस्तुपाल के मन्त्री बनने का निर्देश है तथा अन्तिम सर्ग में वस्तुपाल की संघयात्रा का ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। यह काव्य अधिकांश धर्म-

कथाओं से भरा हुआ है। इसका विवेचन हम कथा-साहित्य प्रकरण[1] में कर आये हैं।

वस्तुपाल-तेजपाल मन्त्रिद्वय को निमित्त बनाकर नाटक, प्रशस्तियाँ एव शिला-लेख आदि भी रचे गये हैं जिनमें तत्कालीन गुजरात के इतिहास को जानने के लिए बहुत-सी सामग्री उपलब्ध है।

समकालिक साहित्य में जयसिंहसूरि का लिखा हुआ हम्मीरमदमर्दन नाटक वस्तुपाल के राजनैतिक और फौजी जीवन के निरूपण मे उपयोगी है क्योंकि उसमें मुस्लिम आक्रमण को विफल करनेवाली युद्धनीति का वर्णन नाटकीय शैली में किया गया है। इस नाटक का विशेष परिचय हम पीछे दे रहे हैं। जिनभद्र (१२३४ ई०) की प्रबधावली मे वस्तुपाल के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं की ओर इशारा किया गया है जो मुख्य कालक्रम की समस्याओं को सुलझाने मे परम सहायक हुई हैं। इसी तरह नरेन्द्रप्रभसूरि की वस्तुपालप्रशस्ति, उदयप्रभसूरि की सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी एव वस्तुपालस्तुति तथा जयसिंहसूरिकृत वस्तु-पाल-तेजपालप्रशस्ति भी ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। इनका परिचय प्रशस्ति-काव्यों में दे रहे हैं।

पश्चात्कालिक साहित्यिक सामग्री मे मेरुतुग का प्रबधचिन्तामणि (१३०५ ई०), राजशेखर का प्रबधकोश (१३४९ ई०) और पुरातनप्रबधसंग्रह (जिसमें १३वीं, १४वीं, १५वीं शती के अनेक प्रबध सकलित हैं), जिनप्रभसूरि का विविधतीर्थकल्प तथा जिनहर्षगणि का वस्तुपालचरित हैं। इनका परिचय यथास्थान दे रहे हैं। इसी तरह वस्तुपाल-तेजपाल के जीवन पर अनेक शिला-लेखीय एव ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी प्राप्त हैं। उनका भी यथासभव परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती के अनेक जैन विद्वानों ने ऐतिहासिक महाकाव्यों को प्रस्तुत किया है। चौलुक्य नृप कुमारपाल पर रचे गये कुछ काव्यों का उल्लेख हमने पौराणिक महाकाव्यों के परिचय मे किया है। वहाँ उनका ऐतिहासिक महत्त्व नहीं बतलाया। यहाँ हम उनमें से कुछ का परिचय देते हैं।

---

१. देखें पृ० २५८.

कुमारपालभूपालचरित :

इस काव्य[1] से निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी मिलती है : इसमे मूलराज से लेकर अजयपाल तक गुजरात के नरेशों का क्रमिक विवरण दिया गया है। इसके लिए इस काव्य का प्रथम सर्ग बड़े महत्त्व का है। इसमें मूलराज की उत्पत्ति का एक ऐसा वर्णन मिलता है जो दूसरी जगह नहीं मिलता। यह वर्णन बहुत हद तक एक शिलालेख से भी समर्थित है। जयसिंह सिद्धराज को इस काव्य में शैवधर्मानुयायी तथा सन्तानरहित नरेश कहा गया है। उसने कुमारपाल को उत्तराधिकार न मिलने के लिए तग किया था।

कुमारपाल के विषय मे लिखा है कि प्रारंभ मे वह शैवधर्मानुयायी था, पीछे हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव से वह जैन हो गया था। उदयन उसका महामात्य था और वाग्भट उसका अमात्य। कुमारपाल ने अपने साले कृष्णदेव को अन्धा कर दिया था। उसने जाबालपुर, कुरु तथा मालव के राजाओं को अपने प्रभाव में कर लिया था तथा आभीर, सौराष्ट्र, कच्छ, पंचनद और मूलस्थान के नरेशों को पराजित किया था। कुमारपाल ने अजमेर के शासक अर्णोराज से काफी समय तक युद्ध किया था एव उसे पराजित किया था। उसने मेड़ता और पल्लीकोट के नरेशों को जीता था तथा कोंकणनरेश मल्लिकार्जुन को हराया था एव इस विजय के उपलक्ष्य में आम्रभट को 'राजपितामह' विरुद दिया था। कुमारपाल ने सोमनाथ का जीर्णोद्धार किया था। सोमनाथ की यात्रा में हेमचन्द्र-सूरि उसके साथ थे। कुमारपाल ने सौराष्ट्र के राजा समरस से युद्ध किया था और उस युद्ध मे उदयन की मृत्यु हुई थी।

वाग्भट ने शत्रुंजयतीर्थ का दो बार उद्धार किया था। हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ में आम्रभट द्वारा निर्मित मुनिसुव्रतनाथ चैत्य में स० १२११ में जिन-बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। कुमापाल सघपति बनकर तीर्थयात्रा करने निकला था। स० १२२९ में हेमचन्द्र की मृत्यु हुई थी तथा इसके एक वर्ष बाद सं० १२३० मे कुमारपाल की मृत्यु हुई थी। कुमारपाल के बाद अजयपाल राजगद्दी पर बैठा था।

इस काव्य के अन्य गुणो तथा कविपरिचय पर हम लिख चुके हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१५, गोडीजी जैन उपाश्रय, बम्बई, १९२६.

इस काव्य के रचयिता जयसिंहसूरि के प्रशिष्य ने एक दूसरा ऐतिहासिक काव्य लिखा था जो चौहानवश से सम्बद्ध है। उसका परिचय इस प्रकार है :

हम्मीरमहाकाव्य :

इस काव्य[1] में रणथंभोर के चौहानवशी अन्तिम नरेश हम्मीर और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के बीच हुए ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन है। इसमें १४ सर्ग हैं जिनमें सब मिलाकर १५६४ श्लोक हैं। यह ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों में महत्त्वपूर्ण कृति है।

इस काव्य का कथानक सर्गक्रम से इस प्रकार है : प्रथम सर्ग मे चाहमान कुल की उत्पत्ति तथा वासुदेव से लेकर सिंहराज तक हम्मीर के पूर्वजों का वर्णन है। द्वितीय तथा तृतीय सर्ग में पृथ्वीराज चाहमान और सहाबदीन के बीच सात बार युद्ध और अन्त में पृथ्वीराज की पराजय और बन्दीगृह में मृत्यु होने का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में हम्मीर के जन्म का वर्णन है। हम्मीर पृथ्वीराज के पौत्र गोविन्दराज की शाखा मे उसके पौत्र जैत्रसिंह और रानी हीरादेवी का पुत्र था। पचम सर्ग में वसन्तऋतु आने पर युवक हम्मीर के उद्यान मे जाने और वहाँ पौर-पौराङ्गनाओं की वनक्रीड़ा का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में जैत्रसागर मे उनकी जलक्रीड़ा का वर्णन है। सप्तम में सध्या, चन्द्रोदय तथा रात्रि-वर्णन है। अष्टम में जैत्रसिंह हम्मीर को राजा बनाता है और राजनीति पर बड़े महत्त्व के उपदेश देता है। कुछ समय बाद वह दिवंगत हो जाता है। नवम सर्ग में हम्मीर की दिग्विजय का वर्णन है। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन का एक मुगल सरदार उसका अपमान कर हम्मीर की शरण में भाग जाता है। हम्मीर के उसे वापस न करने पर अलाउद्दीन अपने भाई उल्लूखान को हम्मीर पर आक्रमण करने भेजता है। हम्मीर उस समय कोटियज्ञ कर रहा था अतः निशुद्धिव्रत लेने के कारण स्वय युद्धक्षेत्र में न जाकर अपने सेनापति भीमसिंह और धर्मसिंह को युद्ध करने भेजता है। धर्मसिंह की मूर्खता से चौहान सेना हार जाती

---

१. सपा०—नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८७९; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित, राजस्थान ग्रन्थमाला से प्रकाशित, इसमें डा० दशरथ शर्मा की भूमिका द्रष्टव्य है। विशेष के लिए देखें—डा० श्यामशंकर दीक्षितकृत 'तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य', पृ० १६३-१९२.

है और भीमसिंह मारा जाता है। हम्मीर क्रुद्ध होकर धर्मसिंह की दोनों आँखें निकलवा देता है और उसे देशनिकाला देता है तथा अपने जातीय भोज को दण्ड-नायक बना देता है। पर धर्मसिंह अपनी कूटनीति से पुनः अपना पद प्राप्तकर लेता है और हम्मीर के कान भरकर भोज का सर्वस्व छीनकर उसे भगा देता है। भोज दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से मिल जाता है। भोज के स्थान पर हम्मीर रतिपाल को नियुक्त करता है। दशम सर्ग में उल्लूखान का पराजित होना, भोज के परिवार की दुर्दशा का वर्णन सुनकर अलाउद्दीन का आगबबूला होना और हम्मीर को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना वर्णित है। एकादश सर्ग में निसुरत्तखान और उल्लूखान का विशाल सेना के साथ आना तथा युद्ध मे निसुरत्तखान का मारा जाना दिखाया गया है। द्वादश सर्ग मे अलाउद्दीन का स्वय रणस्तभपुर आना, हम्मीर और उसकी सेना में दो दिन तक भयकर सग्राम होना, युद्ध में अलाउद्दीन की बहुत सी सेना का मारा जाना वर्णित है। त्रयोदश सर्ग मे अलाउद्दीन द्वारा घूस देकर रतिपाल को अपने पक्ष मे मिला लेना, रतिपाल द्वारा अन्य कर्मचारियों को भी अलाउद्दीन के पक्ष में कर लेना, इस विश्वासघात से हम्मीर का जय से निराश होना, फलस्वरूप अन्तःपुर की स्त्रियों का जौहर की आग मे जल मरना और युद्ध मे अपनी हार देखकर हम्मीर द्वारा अपना वध कर लेना वर्णित है। चतुर्दश सर्ग में हम्मीर के गुणों की स्तुति, भोज, रतिपाल आदि की निन्दा दी गई है। अन्त मे ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति के साथ काव्य की समाप्ति होती है।

हम्मीरमहाकाव्य की कथावस्तु के उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इस काव्य के प्रथम चार सर्गों मे इतिवृत्तात्मकता अधिक है। ये सर्ग चौहान-वंश के इतिहास का काम करते हैं। बाद के चार सर्गों (५–८ तक) में कवि ने महाकाव्य की शैली का अनुसरण किया है। फिर इतिहास की बात नवम सर्ग से आगे बढ़कर तेरहवें सर्ग मे समाप्त हो जाती है। चौदहवाँ सर्ग प्रशस्ति-रूप ही है। वस्तुतः 'हम्मीरमहाकाव्य' एक दुःखान्त महाकाव्य है जिसका अन्त नायक की पराजय एव मृत्यु से हुआ है। काव्य मे इस ऐतिहासिक तथ्य की उपेक्षा नहीं की गई है। फिर भी इसके पढने से पाठकों के मन में निराशा की भावना का सचार नहीं होता। उसका मस्तिष्क शरणागत के प्रतिपालन और जाति-गौरव की रक्षा के लिए की गई कुर्बानी से ऊँचा हो उठता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सुस्पष्ट, सुगठित कृति है और अलौकिक तत्त्वों से रहित है। रणथभौर शाखा के चौहानों के इतिहासवर्णन मे साल, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्रादि

के वर्णन के साथ-साथ घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को प्रदर्शित कर कवि ने ऐतिहासिकों के हृदय में बड़ा ही सम्मान का स्थान पा लिया है।

महाकाव्यीय तत्त्वों की दृष्टि से देखा जाय तो यह एक उदात्त काव्य है। इसमे नायक और प्रतिनायक अर्थात् हम्मीर और अलाउद्दीन तथा अन्य सहायक और प्रतिपक्षी पात्रों का अच्छा चरित्र-चित्रण किया गया है। इसी तरह प्रकृति का व्यापक चित्रण भी हुआ है। पचम से लेकर नवम सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में प्रकृति का चित्रण ही कवि का लक्ष्य रहा है। सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने पुरुषपात्रों मे हम्मीर तथा स्त्रीपात्रों में हम्मीर की माता हीरादेवी तथा नर्तकी धारादेवी का सौन्दर्य-वर्णन किया है। समाज-चित्रण की भी यत्र-तत्र झलक दी गई है, जैसे सामान्य जनता तथा राजा-महाराजाओं में मुहूर्त और शुभलग्नों के प्रति अपूर्व विश्वास, हिन्दू राजाओं में यज्ञ की परम्परा, राजनीति में छल-कपट आदि।

कवि ने इस काव्य में धार्मिक भावना न के बराबर व्यक्त की है। केवल मगलाचरण में जिनदेवता और ब्राह्मणदेवता दोनों को नमस्कार किया है तथा दूसरी जगह हम्मीर द्वारा मारिनिवारण और सप्तव्यसन-वर्जन की घोषणा।

रसयोजना की दृष्टि से यह अपने युग का श्रेष्ठ काव्य है। इसमें शृगार और वीर-रस को प्रमुख स्थान मिला है। कवि ने स्वय इसे शृगारवीराद्भुत काव्य कहा है। इसी तरह रौद्र, करुण और वात्सल्य रसों की अभिव्यक्ति भी यथास्थान हुई है। इस काव्य की भाषा मे गरिमा और प्रौढता है। काव्यलेखक नयचन्द्रसूरि की भाषा अपने पदलालित्य के लिए पण्डितों मे प्रसिद्ध रही है। उसकी भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों को यथास्थान दिखलाया गया है। कवि ने भाषा में सूक्तियों और सुभाषितों का यथास्थान प्रयोग कर मोहकता भी ला दी है। विविधालकारो की योजना कर कवि ने काव्यसौन्दर्य की वृद्धि की है। शब्दालकारों में यमक और अनुप्रास का प्रयोग जहाँ-तहाँ किया गया है, वे स्वाभाविकता लिए हुए भी हैं। अर्थालकारों मे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलकारों की योजना अधिक हुई है। नयचन्द्रसूरि की उपमाएँ तो अनूठी हैं। अन्य अलकारों का भी उपयोग यथास्थान हुआ है। छन्दों के प्रयोग में कवि ने महाकाव्य के छन्दोविधान-सम्बन्धी नियमों का प्रायः पालन किया है। काव्य के सर्गान्त में नाना छन्दों का प्रयोग हुआ है। दसवें सर्ग में विविध छन्दों की योजना की गई है। इस काव्य में कुल मिलाकर २६ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में प्रशस्ति द्वारा कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार इसके रचयिता महाकवि नयचन्द्रसूरि हैं[1] जो कुमारपालभूपालचरित के रचयिता कृष्णगच्छीय जयसिंहसूरि के शिष्य प्रसन्नचन्द्रसूरि के शिष्य थे। प्रशस्ति में कवि ने इस काव्य के रचने के दो प्रेरणा-स्रोतों का उल्लेख किया है। पहला यह कि हम्मीर की दिवंगत आत्मा ने उन्हें स्वप्न में हम्मीरचरित ग्रथित करने का आदेश दिया। दूसरा यह कि ग्वालियर के तत्कालीन शासक वीरमदेव तोमर (१४४०-१४७८ ई०) की यह उक्ति कि प्राचीन कवियों के सदृश मनोहर काव्य की रचना अब कौन कर सकता है ? इस चुनौती के फलस्वरूप उसे सरस काव्य रचने की प्रेरणा मिली।

इस महाकाव्य की रचना कब हुई इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता। श्री अगरचन्द नाहटा को कोटा के जैन भण्डार में इस काव्य की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति लि० सं० १४८६ की मिली है अतः इसकी रचना इसके पूर्व तो अवश्य हो चुकी थी। जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास के लेखक श्री मो० द० देसाई ने इस काव्य का रचनाकाल सं० १४४० के लगभग माना है। इसकी पुष्टि इतिहासज्ञ विद्वान् डा० दशरथ शर्मा ने भी की है।[2] उनका कहना है—'हम्मीरमहाकाव्य' में समय नहीं दिया गया किन्तु अनुमान से कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नयचन्द्रसूरि ने अपने दादागुरु जयसिंहसूरि के 'कुमारपाल-भूपालचरित' की टीका सं० १४२२ में लिखी थी। जयसिंहसूरि ने प्रसन्न होकर नयचन्द्रसूरि को 'अवधानसावधान. प्रमाणनिष्ठ. कवित्वनिष्णातः' के विशेषणों से अभिहित किया है। इन विशेषणों को ध्यान में रखते हुए उनकी आयु सम्भवतः ३० वर्ष की रही होगी। 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना के समय कवि लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। इसलिए सं० १४२२ के कुछ समय बाद अर्थात् सं० १४४० के लगभग इस काव्य का रचनाकाल मानना उचित प्रतीत होता है। तोमरनरेश वीरमदेव, जिसके राज्यकाल में यह काव्य लिखा गया था, का समय जयपुर भण्डार के एक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उसने सं० १४७९ तक राज्य किया था। यदि सं० १४४० को, जिस समय के लगभग उक्त काव्य की रचना की गई थी, उक्त नरेश का प्रथम राज्यवर्ष मानें तो उक्त नरेश का राज्यकाल ४० वर्ष के लगभग बैठता है जो कि सम्भव है। सम्भवतः नयचन्द्रसूरि वीरम के दरबार में उसके राज्य के प्रारम्भ में ही पहुँचे थे। नये राजा को उस समय

---

१. सर्ग १४, श्लो० २६ और ४३.

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६४, सं० २०१६, पृ० ६७.

काव्य का शौक था। नयचन्द्र तब ५० वर्ष के रहे होंगे। इस सबसे अनुमान होता है कि उक्त काव्य की रचना सं० के १४४० आस-पास, सभवतः स० १४५० के पूर्व हुई है।

कुमारपालचरित :

यह १५वीं शती का कुमारपाल पर दूसरा काव्य है।[1]

इसमे १० सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर २०३२ श्लोक हैं। इसका ऐतिहासिक अश अत्यल्प है फिर भी इससे कुमारपाल तथा उसके पूर्वजों के विषय में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है इसलिए इसे ऐतिहासिक काव्य कहते हैं। इस काव्य से निम्नलिखित ऐतिहासिक बातें ज्ञात होती हैं :

१. भीमदेव मूलराज का प्रतापी वंशज था। उसकी दो पत्नियों से दो पुत्र कर्णराज और क्षेमराज हुए थे। (प्रथम सर्ग)

२. कर्णराज अपने पुत्र जयसिंहदेव को राज्य देकर आशापल्ली चला गया। वह तत्कालीन मालवनरेश को दण्डित करना चाहता था किन्तु उसका शीघ्र देहान्त हो गया। जयसिंह ने अपने पिता की प्रतिज्ञा पूरी की पर उसने मालवराज को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। उसने कर्णाट, लाट, मगध, कलिंग, वग, कश्मीर, कीर, मरु, सिन्धु आदि देशों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। (द्वितीय सर्ग)

३. क्षेमराज के पुत्र त्रिभुवनपाल के तीन पुत्र थे—कुमारपाल, महीपाल, कीर्तिपाल। जयसिंह ने कुमारपाल के पिता का वध करा दिया जिससे उसे भी जन्मभूमि छोड़कर देशान्तरों में भटकना पड़ा। (द्वितीय सर्ग)

४. जयसिंह के पश्चात् कुमारपाल सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने शाकभरीनरेश अर्णोराज को परास्त किया था। उसके मन्त्रीपुत्र अम्बड ने कोंकणराज मल्लिकार्जुन का प्राणान्त कर बहुत-सा धन प्राप्त किया। गजनी के बादशाह ने कुमारपाल पर आक्रमण किया किन्तु हेमचन्द्र ने मंत्रबल से उसे बाँध दिया। डाहलनरेश कर्ण ने भी उस पर चढाई करने की योजना बनाई थी किन्तु ऐसा करने के पूर्व ही वह मर गया। (३, ६, १० सर्ग)

५. चालुक्यों की कुलदेवी कण्टेश्वरी थी।

६. कुमारपाल को हेमचन्द्र ने जैनधर्म में दीक्षित किया था। (पञ्चम सर्ग)

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, स० १९७३; जिनरत्नकोश, पृ० ९२

७. हेमचन्द्र एवं कुमारपाल तथा जैन मन्त्री वाग्भट, आम्रभट आदि द्वारा जैनधर्म की प्रभावना-विषयक चर्चाएँ जयसिंहसूरि के कुमारपालभूपालचरित के समान ही हैं।

इस काव्य को अन्य महाकाव्योचित लक्षणों द्वारा भी कवि ने सजाया है। इस काव्य में वीररस की प्रधानता है फिर करुण, रौद्र, बीभत्स तथा अद्भुत रसों को भी यथोचित स्थान मिला है। अलंकारों में शब्दालंकार नहीं अधिक अपनाया गया है। अर्थालंकारों का भी प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहायक के रूप में किया गया है, बलात् नहीं। काव्य के अधिकांश सर्गों और सर्गों में कवि ने नाना छन्दों का प्रयोग किया है। यह सब छन्दपरिवर्तन सुसंगति से हुआ है पर ऐतिहासिक काव्य में यह कविकौशल का अपव्यय है। कुल मिलाकर २८ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता चारित्रसुन्दरगणि हैं। इनका अपरनाम चारित्रभूषण भी है। इनके गुरु का नाम भट्टारक रत्नसिंहसूरि है जो बृहत्तपोगच्छ के आचार्य थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है : विजयेन्दुसूरि, क्षेमकीर्ति, रत्नाकरसूरि, अभयनन्दि, जयकीर्ति, रत्ननन्दि या रत्नसिंह। प्रस्तुत काव्य की रचना सं० १४८७ में की गई है। इसकी रचना में प्रेरक शुभचन्द्रगणि थे। चारित्रसुन्दरगणि की अन्य रचनाओं में शीलदूत (वि० सं० १४८७), महीपालचरित तथा आचारोपदेश उपलब्ध हैं।

वस्तुपालचरित :

१५वीं शती में कुमारपालचरित्र की भांति वस्तुपाल के चरित्र पर प्रस्तुत काव्य एक बड़ी रचना है। इसमें आठ प्रस्ताव हैं और ग्रन्थाग्र ४८३९ श्लोक-प्रमाण है।[१]

इस ग्रन्थ में वस्तुपाल का विस्तारपूर्वक जीवन दिया गया है। यह इसलिए सूक्ष्म अध्ययन योग्य है क्योंकि चरित्रनायक की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद रचित होने पर भी उसके जीवन के कितने ही तथ्य प्राप्त होते हैं जो किसी भी समकालिक लेखक ने नहीं दिये हैं। चरित्रकार ने वस्तुपाल के जीवन और कार्यों से

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५, हीरालाल हंसराज, जामनगर, इसका गुजराती अनुवाद जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से सं० १९७४ में प्रकाशित हुआ है।

सम्बन्ध रखनेवाली अपने समय मे उपलब्ध पूर्ववर्ती सभी ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है। मुनि जिनविजय के कथनानुसार कल्हण की राजतरंगिणी का जैसा ऐतिहासिक मूल्य है उसी प्रकार इस काव्य का भी है। इस प्रकार के दूसरे ग्रन्थों में जैसी अतिशयोक्तियाँ मिलती हैं उनसे अपेक्षाकृत यह मुक्त है। परन्तु ग्रन्थकार ने एक महत्त्वपूर्ण बात का जैसा उल्लेख होना चाहिए, नहीं किया। मेरुतुंगाचार्य ने प्रबन्धचिन्तामणि में तथा अन्य पुरातन प्रबन्धों में एवं गुजराती रासों में स्पष्ट लिखा है कि वस्तुपाल-तेजपाल की माता कुमारदेवी का आशराज के साथ पुनर्विवाह हुआ था परन्तु जिनहर्ष ने अपने ग्रन्थ में इसका आभास भी नहीं दिया। लगता है कवि के समय में पुनर्विवाह सामाजिक दृष्टि से हेय समझा जाने लगा था।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जिनहर्षगणि हैं। इनके गुरु जयचन्द्रसूरि थे। इस ग्रन्थ की रचना चित्तौड़ में सं० १४९७ में हुई थी। इनकी अन्य रचनाओं में रत्नशेखरकथा, आरामशोभाचरित्र, विंशतिस्थानकविचारामृतसंग्रह और प्रतिक्रमणविधि आदि मिलती हैं। इनके ग्रन्थ 'हर्षांक' से अंकित हैं।

राजाओं और मन्त्रियों के अतिरिक्त दानी सेठों, महाजनो के चरित पर लिखे गये जैन काव्यों से भी ऐतिहासिक महत्त्व की सूचनाएँ मिलती हैं।

जगडूचरित :

इसका परिचय पहले दे चुके हैं।[1] इससे निम्नलिखित जानकारी मिलती है :

१. सं० १३१२ से १३१५ तक गुजरात में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था जिसमें वीसलदेव जैसे समृद्ध राजाओं के पास भी अन्न नहीं रहा था।

२. सं० १३१२ से १३१५ में गुजरात में वीसलदेव का, मालवा मे मदनवर्मा का, दिल्ली में मोजदीन (नसीरुद्दीन) का तथा काशी में प्रतापसिंह का शासन था।

३. पार प्रदेश का शासक पीठदेव अणहिल्लपुर के शासक लवणप्रसाद का समकालीन था।

४. उस समय गुजरात का समुद्री व्यापार उन्नति पर था। भारतीय जहाज समुद्र पार के देशों में आते-जाते थे।

---

१. परिचय के लिए देखें पृ० २२७.

५. वीसलदेव के दरबार में सोमेश्वर आदि कवि थे।

सुकृतसागर या पेथडचरित :

इसका परिचय पहले दिया गया है।[1] पेथड सेठ मालवा के परमारनरेश जयसिंह द्वितीय द्वारा राजचिह्न से सम्मानित हुआ था। इसका सम्मान देवगिरि और गुजरात के तत्कालीन दरबारों में भी था। देवगिरि के राजा ने उसे मन्दिर-निर्माण के लिए बहुत भूमि दान में दी थी। उसके पुत्र झाझण ने गुजरातनरेश सारंगदेव (१२७४-९६ ई०) के साथ भोजन किया था। पेथड के पिता ने ४५ जैनागमों की अनेक हस्तप्रतियाँ भड़ौंच, देवगिरि आदि के सरस्वती भण्डारों में भेंट की थीं।

प्रबन्ध-साहित्य :

चरित और कथा-साहित्य से सम्बद्ध गुजरात और मालवा के क्षेत्र में जैन प्रतिभा ने एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य का निर्माण किया जो 'प्रबंध' साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह प्रबध-काव्यों से भिन्न है। प्रबध एक प्रकार का ऐतिहासिक या अर्धऐतिहासिक कथानक है जो सरल संस्कृत गद्य और कभी-कभी पद्य में भी लिखा गया है। प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोष, भोजप्रबन्ध, विविधतीर्थकल्प, प्रभावकचरित, पुरातनप्रबन्धसग्रह आदि ग्रन्थ इस साहित्य के उदाहरण हैं। प्रबन्धकोश के रचयिता राजशेखरसूरि ने चरित और प्रबन्ध का अन्तर बतलाते हुए लिखा है कि 'श्रीवृषभवर्धमानपर्यन्तजिनानां, चक्र्यादीनां राज्ञां ऋषीणां चार्यरक्षितान्तानां वृत्तानि चरितानि उच्यन्ते। तत्पश्चात्काल-भाविनां तु नराणां वृत्तानि प्रबंधा इति' पर उनके इस कथन का कोई प्राचीन आधार नहीं और यह विभेद साहित्यकारों ने पालन भी नहीं किया। उदाहरण के लिए कुमारपाल, वस्तुपाल, जगडू आदि के चरितों को चरित कहा गया है और प्रबन्ध भी, यथा जिनमण्डनगणि की रचना कुमारपालप्रबन्ध और जयसिंह-सूरि की रचना कुमारपालभूपालचरित या अन्य ग्रन्थ जावडचरित्र और जावड-प्रबन्ध आदि। प्रबन्धों के विषय को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वे इस प्रकार के निबन्ध हैं जो शासक, विद्वान्, साधु, गृहस्थ एवं तीर्थ तथा किसी घटना सम्बन्धी ऐतिहासिक जानकारी को लेकर लिखे गये हैं। जर्मन विद्वान् बुहलर के शब्दों में प्रबन्ध लिखे जाने का उद्देश या धर्मश्रवण के लिए

---

१. परिचय के लिए देखें पृ० २२८.

एकत्र हुए समाज को धर्मोपदेश देना और जैनधर्म के सामर्थ्य और महत्त्व को प्रकट करने के लिए साधुओं द्वारा दृष्टान्तरूप उचित सामग्री प्रस्तुत करना और लौकिक विषय को लेकर श्रोताओं का रुचिर चित्तविनोद कराना। फिर भी कुछ प्रबन्ध बड़ी विचित्र कल्पनाओं, भद्दी बातों, तिथिविपर्यास और अनेक भूलों और त्रुटियों से भरे हैं। इसलिए प्रबन्धों को वास्तविक इतिहास या जीवन-चरित नहीं समझना चाहिए अपितु ऐसी सामग्री का इतिहास-रचना में विचार-पूर्वक उपयोग करना चाहिए। उनकी एकदम अवहेलना भी ठीक नहीं क्योंकि प्रबन्धों का अधिकाश भाग अभिलेखों एवं विश्वसनीय स्रोतों से समर्थित है।'[1] भारत का मध्यकालीन इतिहास इनमे निहित सामग्री का उपयोग किये बिना पूर्ण भी नहीं समझा जा सकता।

इस प्रकार के साहित्य का सूत्रपात तो हेमचन्द्राचार्य ने कर दिया था और उनके अनुसरण पर प्रभाचन्द्र ने प्रभावकचरित लिखा और पीछे अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इन प्रबन्धों में हमें ऐतिहासिक महत्त्व के राजा, महाराजा, सेठ और मुनियों के सम्बन्ध में प्रचलित कथा-कहानियों का सग्रह मिलता है। इनके वर्णनों की अभिलेखों और अन्य साहित्यिक आधारों से जॉच-पड़ताल करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये बहुधा ऐतिहासिक तथ्य के समीप है। इस विषयक कुछ कृतियों का परिचय यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

प्रबंधावलि :

उपलब्ध प्रबन्धों में सर्वप्रथम हमें जिनभद्रकृत प्रबन्धावलि मिलती है जिसमें ४० गद्य प्रबन्ध हैं जो अधिकाशतः गुजरात, राजस्थान, मालवा और वाराणसी से सम्बन्धित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं पर हैं और कुछ तो लोककथाओं को लेकर लिखे गये हैं। जिस रूप में यह प्राप्त हुई है वह पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह वस्तुपाल महामात्य के जीवनकाल में उसके पुत्र जैत्रसिंह के अनुरोध पर स० १२९० मे रची गई थी परन्तु इसमे कुछ प्रबन्ध ऐसी घटनाओं पर भी हैं जो वस्तुपाल की मृत्यूपरान्त घटी थीं। इसमें एक प्रबन्ध अर्थात् 'वलभीभगप्रबन्ध' प्रबन्धचिन्तामणि से अक्षरशः नकल उतार लिया गया है। इसके दो प्रबन्धों पादलिप्ताचार्यप्रबन्ध एव रत्नश्रावकप्रबन्ध को प्रबन्धकोश से लिया गया है। प्रबन्धावलि की रचना-शैली बड़ी सरल और सीधी है जब कि प्रबन्धकोश की शैली अलकारिक और उन्नत है। इससे यह बात सिद्ध होती

---

1. Life of Hemachandra (Buhler), pp. 3-4.

है कि प्रबन्धकोश के रचयिता ने जिनभद्र की प्रबन्धावलि से ही ये दोनों प्रबध अपने ग्रन्थ में लिये हैं। वैसे देखा जाय तो उत्तरकालीन प्रबन्धग्रन्थ अपने कुछ विषयों के लिए इस प्रबन्धावलि के ऋणी है।[1] इसे मुनि जिनविजयजी ने अपने ग्रन्थ 'पुरातनप्रबन्धसग्रह' के अन्तर्गत प्रकाशित किया है। इसमे उपलब्ध पृथ्वीराजप्रबन्ध में चन्दवरदाई के तथाकथित पृथ्वीराजरासो काव्य के बीज वर्तमान हैं तथा आधुनिक लोकभाषाओं और साहित्य के भी बीज मिलते हैं।

इसकी भाषा[2] वह संस्कृत है जो एक लोकभाषा का रूप लिए हुए है। यह न केवल प्राकृत के प्रयोगों से ही ओत-प्रोत है अपितु तात्कालिक क्षेत्रीय भाषा के शब्दो से भी। जिसे प्राकृत और प्राचीन तथा अर्वाचीन गुजराती भाषा का ज्ञान नहीं वह इसके प्रबन्धों, कितने ही शब्दों, वाक्यों एव भावों को नहीं जान सकता। गुजरात के जैन लेखकों ने इस भाषा को अपने कथा एव प्रबन्ध ग्रन्थों मे खूब व्यवहृत किया है। गुजरात और मध्य भारत के कुछ भागों को छोड़ ऐसी भाषा का प्रयोग अन्यत्र नहीं हुआ है। यह उक्त प्रदेशों के राजकार्यों और राजदरबारों की भाषा भी रही है। यह भाषा गुजरात में मुसलमानों के राजस्थापन के पश्चात् भी कानूनी लेखपत्रों की भाषा रही है जो न्यायालयों में रजिस्ट्री करने के लिए स्वीकृत किये जाते थे। यह उन पण्डितों की भाषा नहीं है जो पाणिनि या हेमचन्द्र प्रणीत व्याकरणों के नियमों से चिपके रहते थे। इस भाषा की तुलना ईसा की प्रथम शताब्दियों में लिखे गये बौद्ध ग्रन्थों महावस्तु और ललितविस्तर आदि की भाषा से की जा सकती है जिसे 'गाथा सस्कृत' कहते हैं। गुजरात के जैन लेखकों की इस भाषा का पृथक् नाम तो नहीं दिया गया पर इसे हम वर्नाक्यूलर संस्कृत या सर्वसाधारण मे समझी जानेवाली सस्कृत कह सकते हैं।

रचयिता—इस प्रबन्धावलि के रचयिता जिनभद्र हैं जो उदयप्रभसूरि के शिष्य थे। इनके विषय मे विशेष जानकारी नहीं मिलती। जिनभद्र ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों के संग्रह स्वरूप यह प्रबन्धावलि वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के पठन-पाठन के लिए तैयार की थी।

---

१. पुरातनप्रबन्धसंग्रह का प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८.

२. इसकी भाषा और शब्दों के लिए देखें: महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० २०३-४.

प्रभावकचरित :

इस ग्रन्थ का परिचय हम पहले दे चुके हैं।[1] उसमें वर्णित २२ आचार्यों में से वीरसूरि, शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, सूराचार्य, अभयदेवाचार्य, वीरदेवगणि, देवसूरि और हेमचन्द्रसूरि ये आठ गुजरात के चौलुक्यों के समय अणहिलपाटन में विद्यमान थे और कितने गुजरात के राजाओं के परिचय में आये थे और कितनों ने गुजरात के उत्कर्ष के लिए महत्त्वपूर्ण योग दिया था। इन आचार्यों के कतिपय कार्य-कलापों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने के लिए बहुत-से राजाओं की प्रसग-कथाएँ दी गई हैं जिनमें प्रमुख हैं · भोज, भीम प्रथम, सिद्धराज और कुमारपाल। भोज और भीम की प्रसग-कथाओं में तो कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है पर हेमचन्द्राचार्य का चरित सिद्धराज और कुमारपाल के राज्यों के विवरण के बिना सम्भव नहीं। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का 'हेमचन्द्रसूरि-चरित' बहुत महत्त्व का है।

वैसे इस कृति में गुजरात से लेकर बंगाल तक पूरे उत्तर भारत का पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया गया है इसलिए यह विविध सूचनाओं की खानि है फिर भी इन सूचनाओं का उपयोग इतिहास में बड़ी शोध और जाँच-पड़ताल के साथ करना चाहिए। यदि इसका लेखक मौलिक कृतियों पर ही निर्भर होता, जैसा कि उसने बहुत हद तक किया है, तो भारतीय इतिहास के उपादानों में इसकी कीमत राजतरंगिणी से कम न होती बल्कि अधिक ही क्योंकि कल्हण की कृति केवल कश्मीर से सम्बन्धित है जब कि यह कृति पूरे उत्तर भारत से। परन्तु दुर्भाग्य से ऐतिहासिक सामग्री में बहुत-सी किंवदन्तियाँ और कहानियाँ मिला दी गई हैं, इससे उन सूचनाओं का बड़ी सावधानी से उपयोग करना चाहिए।

उदाहरण के लिए 'बप्पभट्टिसूरिचरित' को ही ले। इसमें निम्नलिखित राजनीतिक इतिहास की सामग्री मिलती है :

१. आम नागावलोक कन्नौज का राजा था। वह गौडराजा धर्मपाल का प्रतिद्वन्द्वी तथा भोज (मिहिर) का पितामह था। उसकी मृत्यु वि० सं० ८९० में हुई थी। वह बप्पभट्टिसूरि का मित्र एव शिष्य था। इसे हम गुर्जरप्रतिहारवंशी 'नागभट द्वितीय' मान सकते हैं।

---

1. देखें पृ० २०५.

२. धर्म धर्मपाल नाम से गौड देश का पालनरेश था। धर्मपाल के दरबार मे वर्धमानकुंजर नाम का एक बौद्ध पण्डित था। धर्मपाल एक बौद्ध नरेश था यह तो इतिहासप्रसिद्ध है। वर्धमानकुंजर नामक बौद्ध पण्डित का नाम तो ज्ञात नहीं पर कुंजरवर्धन नामक बौद्ध यक्ष का उल्लेख मिलता है।

३. कन्नौजनरेश यशोवर्मा को आम का पिता लिखा है जो इतिहासविरुद्ध लगता है। आम (नागभट्ट) के पिता का नाम वत्सराज था। यशोवर्मा वह हो सकता है जिसने किसी गौडराजा को मारा था तथा जो कश्मीर के मुक्तापीड ललितादित्य द्वारा वि० स० ७९७ मे मारा गया था। वह गौडवहो के रचयिता वाक्पतिराज का समकालीन या पूर्ववर्ती था पर बप्पभट्टि का समकालीन नहीं था क्योंकि बप्पभट्टि उसकी मृत्यु के तीन वर्ष बाद उत्पन्न हुए थे। ग्रन्थकार को किसी पूर्ववर्ती से यह गलत सूचना मिली और यशोवर्मा तथा मुक्तापीड को भ्रान्त रूप मे चित्रित किया।

४. वाक्पतिराज—गौडवहो के लेखक—भी बप्पभट्टि के समकालीन किसी तरह हो सकते हैं यदि यह माना जाय कि यशोवर्मा के यश का वर्णन उसके मरने के बाद उक्त कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया था।

५. गुजरात के नरेश जितशत्रु और राजगृह के नृप समुद्रसेन के विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता है। हो सकता है कि वे कोई जागीरदार रहे हों।

६. दुन्दुक नागावलोक का पुत्र था और भोज का पिता। हो सकता है यह रामभद्र का ही भद्दा नाम हो।

७. दुन्दुक का पुत्र और नागावलोक का पौत्र भोज था जिसे मिहिरभोज माना जा सकता है।

इसी तरह अन्य चरितों का विश्लेषण प्रस्तुत करने से बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। समग्र का विवेचन यहाँ सम्भव नहीं।

प्रबंधचिन्तामणि :

यह[1] प्रबन्ध साहित्य का तीसरा ग्रन्थ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच प्रकाशों में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १; उसी ग्रन्थमाला से हजारीप्रसाद द्विवेदीकृत हिन्दी अनुवाद, '० रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्रीकृत गुजराती अनुवाद बम्बई से सं० १९४५ मे प्रकाशित; सी० आर० टावने कृत अंग्रेजी अनुवाद बिब्लिओथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता से १८९९-१९०१ मे प्रकाशित.

विभक्त है। सभी प्रकाशों में कुल मिलाकर ११ प्रबन्ध हैं जिनमें ६ तो प्रथम प्रकाश में और २ चतुर्थ प्रकाश में तथा शेष में एक-एक प्रबन्ध है। ये प्रबन्ध भी सामान्यतः लघुप्रबन्धों के सग्रहरूप में हैं।

प्रथम प्रकाश के प्रथम तीन प्रबन्धों मे विक्रमादित्य, सातवाहन और भूय-राज (प्रतिहार भोज ?) की प्रसगकथाएँ दी गई हैं। चतुर्थ प्रबन्ध वनराजादि-प्रबन्ध कहलाता है जिसमें चापोत्कट (चावड़ा) वश का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। मूलराजादिप्रबन्ध नामक पाँचवें में चौलुक्यों का इतिहास प्रारम्भ होता है और दुर्लभराज के राज्य तक जाता है। यथार्थतः इसमे मूलराज के तत्काल तीन उत्तराधिकारियों के नाम और तिथियों के अतिरिक्त उनके विषय में अल्प ही कहा गया है। छठे मुजराजप्रबन्ध में परमारनृप वाक्पति मुज विषयक प्रसगकथाएँ दी गई हैं।

द्वितीय प्रकाश भोज-भीमप्रबन्ध कहलाता है। यह भीम और भोज के आपसी सम्बन्धों का प्रबन्ध है जिसमे सेनाध्यक्ष कुलचन्द्र दिगम्बर, माघ पण्डित, धनपाल, शीता पण्डित, मयूर-बाण-मानतुगप्रबन्ध तथा अन्य प्रबन्ध भी हैं। तीसरा प्रकाश सिद्धराजादिप्रबन्ध कहलाता है। इसमे भीम के अन्तिम दिनों तथा कर्ण के राज्य का कुछ पृष्ठों में वर्णन कर अधिकाश में सिद्धराज के राज्य की घटनाओं का वर्णन है। इसमें सम्मिलित कुछ लघुप्रबधों के नाम इस प्रकार हैं: लीलावैद्य, सान्तूमंत्री, मयणल्लदेवी, मालवविजय, सिद्धहेम, रुद्रमाल, सहस्रलिंगताल, नवघणयुद्ध, रैवतकोद्धार, शत्रुञ्जययात्रा, देवसूरि तथा पापघट आदि। चतुर्थ प्रकाश में दो विशाल प्रबन्ध हैं। पहले में कुमारपाल के राज्य का वर्णन है। इसमे उसके जन्म, माता-पिता, पूर्वजीवन, राज्यप्राप्ति और जैनधर्म-स्वीकरण आदि का विस्तार से वर्णन है। इसी में हेमचन्द्र और कुमारपाल सम्बन्धी कई कथाएँ भी हैं। अन्त मे अजयदेव (अजयपाल) के कुकृत्यों का तथा मूलराज द्वितीय एव भीम द्वि० के राज्यों का थोड़ा वर्णन कर वीरधवल की राज्यपदप्राप्ति वर्णित है। इसी प्रकाश के दूसरे प्रबन्ध वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रबन्ध में दोनों भ्राताओं के कार्यकलापों का वर्णन है। इसमे उन दोनों भाइयों के जन्मादिवृत्त, शत्रुञ्जयादि-तीर्थयात्रा, शखसुभट के साथ युद्ध आदि का वर्णन है। पञ्चम प्रकाश प्रकीर्णकप्रबन्ध कहलाता है जिसमें ऐतिहासिक व्यक्तियों की प्रसगकथाएँ दी गई हैं। उनमे नन्दराज, शिलादित्य, वलभीभग, पुञ्जराज, गोवर्धन, लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र, जगद्देव-परमर्द्दि, पृथ्वीचन्द्र-प्रबन्ध, वराहमिहिर, भर्तृहरि, वैद्य वाग्भट, क्षेत्राधिप (क्षेत्रपाल) आदि के सक्षिप्त वर्णन हैं।

इस कृति के निर्माण मे ग्रन्थकार का स्पष्ट उद्देश्य उन बहुधा श्रुत पुरानी कथाओं को, जो कि बुधजनों के चित्त को तब प्रसन्न न कर रही थीं, पुनः स्थापित करना है

भृशं श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः प्रीणन्ति चेतांसि तथा बुधानाम्।
वृत्तैस्तदासन्नसतां प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थमहं तनोमि ॥

इस ग्रन्थ मे अधिकाश रोचक प्रसग-कथाएँ हैं। इन प्रसंग-कथाओं का मूल सदिग्ध है और अनेक तो काल्पनिक हैं। इस ग्रन्थ में कुछ बड़े महत्त्व के ऐतिहासिक उपाख्यान भी हैं जिन्हें हम विक्रम सं० ९४०-१२५० तक का गुजरात का सामान्य इतिहास मान सकते हैं। कर्नल किन्लाक फार्बस ने अपने 'रासमाला' नामक गुजरात के इतिहास के प्रथम बड़े भाग का मुख्य आधार इसी ग्रन्थ को बनाया था। बाम्बे गजेटियर के प्रथम भाग में जो अणहिलपुर का इतिहास दिया गया है उसका मुख्य आधार यही प्रबन्धचिन्तामणि है। गुजरात के इतिहास के लिए प्रबन्धचिन्तामणि जिस सामग्री की पूर्ति करता है वैसी सामग्री दूसरे ग्रन्थ से नहीं मिलती। इस ग्रन्थ को और कश्मीर के इतिहास के लिए राजतरंगिणी को छोड़ भारतवर्ष के अन्य किसी प्रान्त के लिए इतिहास ग्रन्थ नहीं मिलते। अणहिलपुर के सम्बन्ध में जो बातें इसमें दी गई हैं प्रायः वे सभी विश्वसनीय हैं। इसमें अणहिलपुर के राजाओं का जो राज्यकाल बताया गया है वह अन्य ऐतिहासिक एव पुरातत्त्वीय सामग्री से समर्थित होता है। ग्रन्थकार ने गुजरात को इस काल मे विशेष प्रसिद्धि करानेवाले और गुजरात के गौरव की वृद्धि में भाग लेनेवाले पुरुषों के प्रबन्धों को एकत्र करने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थकर्ता स्वय एक जैन आचार्य थे और जैन श्रोताओं का मनोरजन करने के लिए ग्रन्थ-रचना करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जैन तथ्यों की ओर उनका पक्षपात हो। फिर भी गुजरात के समुचित प्रभाव पर उनका अनुराग था। इससे जैनों से थोड़ा भी सम्बन्ध न रखनेवाली अनेकों बाते इसमें सगृहीत हैं। वे केवल इतिहाससंग्रह की दृष्टि से अपने संग्रह में रखी गई हैं।

इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें अपने युग (१३०४ ई०) की, जिसका कि लेखक को प्रत्यक्ष ज्ञान था, उपेक्षा की गई है और इसके बदले उस काल पर लिखा गया है जिसके लिए वह मौखिक परम्परा और पूर्ववर्ती रचनाओं पर निर्भर रहा है। प्रबन्धचिन्तामणि में गुजरात का इतिहास वास्तव मे कुमार-

पाल की मृत्यु वि० स० १२२९ के साथ बन्द हो जाता है। बघेलों के विषय[1] में वह कुछ नहीं लिखता सिवाय इसके कि भीम द्वितीय के बाद वह आया। यही इसका दोष है। यदि उसने अपने समय का इतिहास लिखा होता तो उसका यह ग्रन्थ कल्हण के ग्रन्थ[2] की कोटि का माना जाता।

इस प्रबन्ध के लेखक ने इतिहास लिखने में यह अनुभव अवश्य किया कि राजाओं के वश और उनकी तिथियाँ बडे महत्त्व की हैं। यद्यपि प्रबन्धचिन्तामणि में दी गई अधिकाश तिथियाँ ठीक नहीं हैं फिर भी वे कुछ महीनों या वर्ष से अशुद्ध हैं, विशेष नहीं। सम्भवतः प्राचीन दस्तावेजों को देखकर उसने राजा के राजपद पाने का वर्ष तो जाना परन्तु ठीक तिथि नहीं। यदि उसे इस सूचना के कैसे भी स्रोत नहीं मिल सके तो तिथि के सम्बन्ध मे अनुमान करता हुआ सा मालूम होता है और विश्वास करने लायक एक कथा रच देता है। फिर भी इतना तो मालूम होता है कि वह तिथियों के महत्त्व को समझता था। जबकि दूसरी ओर हम देखते हैं कि द्वयाश्रयकाव्य, कीर्तिकौमुदी (सोमेश्वरकृत) व अन्य कृतियों में तिथिसम्बन्धी एक भी निर्देश नहीं दिया गया।

इस प्रबन्ध के रचयिता ने एक प्रकार से इतिहास लिखने की आवश्यकता समझी थी। उसकी सभी प्रसगकथाओं का ताना-बाना इतिहास को 'अन्तर्भाग बनाकर हुआ, उनके क्रम मे कोई रुकावट नहीं और सभी तथ्य साधारणतः निश्चित कालक्रमरूप में रखे गये हैं। ग्रन्थकार की प्रस्तुत करने की पद्धति भी ठीक है और उसने चौलुक्यों के इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण भाव को भी समझ लिया था कि उनके इतिहास का लेखन मालवा के परमारों के इतिहास को बिना बतलाये असम्भव है।

रचयिता—सस्कृत साहित्य में इस अपूर्व कृति के रचयिता मेरुतुगसूरि हैं जो नागेन्द्रगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य थे। इस ग्रन्थ की रचना वढमाण (वर्धमान-

---

१. यह दूसरे रूप में बतलाता है कि बघेलवश जैनधर्म का दृढ़ समर्थक नहीं था, जैसा कि कुछ काल के लिए वह माना जाता है।

२. यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि कल्हण को राजतरंगिणी के प्रारम्भिक सर्ग सदोष हैं जब कि पिछले सर्ग जिनमें कल्हण उन घटनाओं का वर्णन करता है जिनका उसे या उसके पिता को प्रत्यक्ष ज्ञान था, ठीक इतिहास बतलाते हैं। यह हमें प्रबन्धचिन्तामणि में नहीं मिलता।

पुर) में स० १३६१ मे की गई है। इनकी अन्य कृतियाँ विचारश्रेणी या स्थविरावली तथा महापुरुषचरित[1] हैं।

विविधतीर्थकल्प :

इसका परिचय[2] पहले दिया गया है। इसमें अनेक तीर्थों के प्रसग मे अनेक ऐतिहासिक बाते आ गई हैं जो पश्चात्वर्ती अनेकों प्रबन्धों की उपादानभूत हैं। प्रबन्धकोश मे प्रभावकचरित और प्रबन्धचिन्तामणि से भी अधिक सामग्री विविधतीर्थकल्प से ली गई है, यहाँ तक कि कुछ पूरे प्रकरण या प्रबन्ध ज्यों के त्यों शब्दशः उद्धृत कर लिये गये हैं। सातवाहनप्रबन्ध, वकचूलप्रबन्ध और नागार्जुनप्रबन्ध ये तीनों प्रकरण तीर्थकल्प की पूरी नकल हैं। सातवाहन नृप पर २३वॉ प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, ३३वॉ प्रतिष्ठानपुरकल्प, ३४वॉ प्रतिष्ठानपुराधिपति-सातवाहनचरित ये तीन कल्प हैं। वकचूल का वर्णन ढींपुरीतीर्थकल्प (४३वें) में तथा नागार्जुन का वृत्तान्त स्तंभनककल्प-शिलोञ्छ (५९वें) में है। यह पिछला प्रबन्ध तीर्थकल्प में प्राकृत भाषा मे रचा गया है जिसे प्रबन्धकोशकार ने शब्दशः सस्कृत में अनूदित कर लिया है। विविधतीर्थकल्प के रचयिता ने सम्भवतः प्रबन्धचिन्तामणि से उक्त प्रकरण को सस्कृत से प्राकृत में अनुवाद करके लिख लिया हो ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि दोनों की शब्द-रचना प्रायः एक-सी है।

ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि अपने समय के बहुश्रुत विद्वान् एव प्रभावशाली पुरुष थे। भारत की सस्कृति के महान् सकटकाल में वे विद्यमान थे। उनके समय मे भारतवर्ष के हिन्दू राज्यों का सामूहिक पतन हुआ था और इस्लामी सत्ता का स्थायी शासन जम गया था। गुजरात की प्राचीन सास्कृतिक विभूति का आखिरी पर्दा उनकी नजरों से गुजर रहा था।

विविधतीर्थकल्प के उल्लेखानुसार मन्त्री माधव की प्रेरणा से ही अलाउद्दीन खिलजी ने अपने भाई उलुगखॉ को गुजरात विजय करने के लिए भेजा था। खिलजी वश का शीघ्र विनाश होने के बाद गुजरात का शासन सुलतान मुहम्मद तुगलक ने सम्हाला। जिनप्रभसूरि का इस सुलतान से प्रत्यक्ष परिचय था और

---

१. पृष्ठ ७७ में परिचय दिया गया है।
२. परिचय के लिए देखें : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० ३२१-३२४.

वह इनका बड़ा सम्मान करता था। वह इनकी कितनी ही चमत्कारिक बातों से प्रभावित था। बादशाह ने इन्हें कई फरमान दिये जिससे उन्होंने हस्तिनापुर, मथुरा आदि तीर्थों की ससघ यात्राएँ और अनेक धर्मोत्सव किये और राजसभा में उन्होंने वाद विवाद भी किये। उनके शिष्य जिनदेवसूरि बहुत समय तक सुलतान के साथ रहे और सम्मानित हुए। इनके कहने से सुलतान ने कन्नान नगर की महावीर-प्रतिमा को दिल्ली मे स्थापित करवाया।[1] यह प्रतिमा कुछ दिन तुगलकाबाद के शाही खजाने में भी रही। एक प्रोषधशाला भी उस समय सुलतान की आज्ञा और सहायता से दिल्ली में बनी। सुलतान की माता मखदूमे-जहाँ बेगम भी इन जैन गुरुओं का आदर करती थी।

इस तरह अपने इस ग्रन्थ में यहाँ-वहाँ जिनप्रभसूरि ने कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओं की उपयोगी सूचना दी है। वि० स० ८४५ में म्लेच्छ राजा (अरब शासक) द्वारा वलभी के नाश का उल्लेख इसी मे दिया गया है। स० १०८१[2] में महमूद गजनवी के गुजरात के ऊपर आक्रमण का उल्लेख समग्र साहित्य मे एकमात्र इसी में मिलता है। इसी तरह अन्य अनेक विश्वसनीय ऐतिहासिक बातें इसमें मिलती हैं।

प्रबन्धकोश :

यह २४ प्रबन्धों का सग्रह-ग्रन्थ है इसलिए इसका दूसरा नाम चतुर्विंशति-प्रबन्ध[3] भी है। इसमें १० जैन आचार्यों, ४ कवियों और ७ राजाओं तथा ३ राजमान्य पुरुषों के चरित हैं।

१० आचार्यों में भद्रबाहु से लेकर हेमचन्द्र तक एव ४ कवि पण्डितों मे हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र और मदनकीर्ति सभी ऐतिहासिक पुरुष हैं। ७ राजाओ में सातवाहन, वकचूल, विक्रमादित्य, नागार्जुन, वत्सराज उदयन, लक्ष्मणसेन और मदनवर्मा का चरित ग्रथित है। इनमे से अन्तिम दो—लक्ष्मणसेन और मदन-वर्मा का समय मध्यकाल का उत्तर भाग है और इतिहास ग्रन्थों मे उनके विषय में बहुत लिखा मिलता है। वत्सराज उदयन जैन, बौद्ध और ब्राह्मण स्रोतो से

---

१. कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्प.

२. सत्यपुरतीर्थकल्प.

३ जिनरत्नकोश, पृ० २६४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक ६.

सुज्ञात है। महाकवि भास आदि ने इस पर कई नाटक लिखे हैं। सातवाहन[1] और विक्रमादित्य भारतीय साहित्य और जनश्रुति में बहुत प्रसिद्ध हैं। विक्रमादित्यप्रबन्ध की सामग्री को 'गुणवचनद्वात्रिंशिका' में वर्णित बातों से मिलाकर सिद्ध किया गया है कि वह गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य था।[2] वंकचूल (पुष्पचूल-पुष्पचूला[3]) जैन कथा-कहानियों का राजा ज्ञात होता है। उसकी ऐतिहासिकता ज्ञात नहीं होती। नागार्जुन की कथा ऐतिहासिक राजा के रूप में सन्दिग्ध है, वह योगी या सिद्ध पुरुष ज्ञात होता है। इस तरह ७ तथाकथित राजाओं में ५ के ही जीवन इतिहासोपयोगी हैं। ३ राजमान्य पुरुषों में से आभड और वस्तुपाल सुज्ञात हैं। सत्रपति रत्नश्रावक अज्ञात जैसा लगता है।

प्रबन्धकोश में अपने पूर्ववर्ती प्रबन्धों से बहुत सामग्री ली गई है, यह तथ्य मुनि जिनविजयजी ने उक्त ग्रन्थ के प्रास्ताविक वक्तव्य[4] में दिया है। ग्रन्थकार की मौलिक रचना के रूप में हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र और मदनकीर्ति प्रबन्ध हैं। इनका वर्णन अन्य प्रबन्ध ग्रन्थों मे नहीं मिलता।

प्रबन्धकोश की रचना सरल और सुबोध गद्य मे की गई है। इस प्रकार की गद्य-रचना बहुत कम मिलती है। उसके वाक्य बिल्कुल अलग-अलग और छोटे-छोटे हैं और बोल-चाल की भाषा जैसे लगते हैं। अप्रचलित और देश्य शब्दों का प्रयोग भी इसमें निःसकोच हुआ है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि प्रश्नवाहन कुल, कोटिक गण, हर्षपुरीय गच्छ की मध्यम शाखा में हुए मलधारी अभयदेवसूरि सन्तानीय एव तिलकसूरि के शिष्य राजशेखर ने इस ग्रन्थ की रचना स० १४०५ में दिल्ली में महणसिंह की वसति में रहकर की।

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि के सातवाहनप्रबन्ध और विविधतीर्थकल्प के प्रतिष्ठानपुरकल्प में इसका चरित वर्णित है।

२. मध्य भारती पत्रिका, अक १, जुलाई १९६२ में डा० हीरालाल जैन का लेख: A Contemporary Ode to Chandra Gupta Vikramaditya.

३. वंकचूलचरित का परिचय पहले दिया गया है। इसके पूर्व विविधतीर्थकल्प में ढींपुरीकल्प के अन्तर्गत वंकचूल का चरित वर्णित है।

४. पृ० २-३.

इनकी अन्य रचनाओं में अन्तर्कथासग्रह (कौतुककथा), स्याद्वादकलिका, स्याद्वाददीपिका, रत्नावतारिकापजिका, न्यायकदलीपजिका और षड्दर्शन-समुच्चय मिलते हैं।

पुरातनप्रबन्धसंग्रह :

मुनि जिनविजयजी को पाटन के भण्डार में एक प्रबन्धसग्रह की प्रति मिली थी जिसमें अनेक प्रबन्धों का सग्रह था। दुर्भाग्य से यह प्रति खण्डित थी इससे ग्रन्थकर्ता का नाम ज्ञात न हो सका। इसके अन्तिम पृष्ठ ७६ में प्रबन्ध का क्रमाक ६६ दिया गया है। लगता है इसमें और भी प्रबन्ध थे। उपदेशतरगिणी में चतुर्विंशतिप्रबन्ध (प्रबन्धकोश) के अतिरिक्त द्विसप्ततिप्रबन्ध का भी उल्लेख मिलता है। संभवत. यह वही ग्रन्थ हो। इसमें प्रबन्धचिन्तामणि और प्रबन्धकोश के कई प्रबन्धों की पुनरावृत्ति हुई है। कई नये प्रबन्ध भी हैं, यथा भोजगागेय-प्रबन्ध, धाराध्वसप्रबन्ध, मदनवर्म-जयसिंहदेवप्रीतिप्रबन्ध, पृथ्वीराजप्रबन्ध, नाहड-रायप्रबन्ध, लाडोललाखनप्रबन्ध। यह प्रति १५वीं शता० की लिखी प्रतीत होती है। मुनि जिनविजयजी ने इस प्रति की सामग्री और पूर्वोक्त जिनभद्रकृत प्रबन्धावलि की सामग्री को लेकर 'पुरातनप्रबन्धसग्रह'[1] ग्रन्थ प्रकाशित किया है।

विविध प्रकार के जैन ग्रन्थों में ऐतिहासिक सामग्री :

हमें ऐसे अनेक ग्रन्थ मिले हैं जिनमें यद्यपि नियमित ग्रन्थ-प्रशस्ति तो नहीं है पर वे अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों, उनकी कृतियों विशेषकर अपने विषय, ग्रन्थकार और ग्रन्थ की सूचना के साथ आकस्मिक रूप से अपने समय की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करते हैं। पश्चात्कालीन आचार्यों और कृतियों द्वारा पूर्ववर्ती ग्रन्थकार और ग्रन्थों का उल्लेख, मान्य ग्रन्थकारों के पूर्व दृष्टिकोणों का खण्डन, भाषा और विषयों का स्वरूप, पूर्ववर्ती कृतियों से उद्धरण आदि अनेक बातें हैं जिनसे ग्रन्थकर्ताओं की सापेक्षिक सामयिकता निश्चित की जा सकती है। यह विशेषरूप से सत्य है हमारे तार्किक दार्शनिक साहित्य के विषय में, जिससे हमें न केवल जैन ग्रन्थकारों के कालक्रम का निश्चय करने मे, बल्कि महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण और बौद्ध तार्किकों के विषय में भी अद्भुत रूप से सहायता मिलती है। जैन विद्वानों में यह एक रीति थी कि वे पूर्ववर्ती आचार्यों की कारिकाओं को अपने मत के समर्थन में या दूसरों के मत के खण्डन में उद्धृत

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक २.

करते थे। अनेक वार ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम का भी उल्लेख करते थे। ये उद्धरण बहुधा हमें विभिन्न आचार्यों के सापेक्षिक युग का निश्चय करने मे या विस्तृत पर निश्चित समयावधियों तक पहुँचने मे समर्थ बनाते हैं।

इसके अतिरिक्त जैन विद्वानों ने लाक्षणिक साहित्य की विविध शाखाओं में कई ग्रन्थ लिखे हैं जो हमे भारतीय राजनीतिक इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं। उदाहरण के लिए चौलुक्य सिद्धराज जयसिंह के समय में वर्धमानसूरिकृत 'गणरत्नमहोदधि' नामक व्याकरण ग्रन्थ मे धारानरेश भोज की उपाधि और धर्म का उल्लेख है तथा सिद्धराज विषयक कई उल्लेख हैं। हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासन मे सिद्धराज की मालवा के ऊपर वर्षों तक लड़ाई का उल्लेख है।

मलयसूरिकृत अन्य सस्कृत व्याकरण ग्रन्थ में अर्णोराज के ऊपर कुमारपाल की विजय का उल्लेख है।

इसी तरह नेमिकुमार के पुत्र वाग्भटकवि द्वारा रचित काव्यानुशासन मे और सोम के पुत्र कवि बाहड (वाग्भट) के वाग्भटालकार मे और हेमचन्द्राचार्य के छन्दोनुशासन मे सिद्धराज की प्रशसा मे कई पद्य आये हैं।

१६वीं शती के प्रारम्भ में रत्नमन्दिरगणिकृत उपदेशतरगिणी मे गुजरात के इतिहास से सम्बन्धित अनेक बातें आई हैं। इसी काल के उपदेशसप्तति ग्रन्थ मे भीमदेव प्रथम के साधिविग्रहिक डामरनागर की कथा तथा दूसरी ऐतिहासिक बातें दी गई हैं। आचारोपदेश और श्राद्धविधि मे कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल आदि के सम्बन्ध की कई बातों का उल्लेख है। सत्तरहवीं शती के धर्मसागर उपाध्यायकृत 'प्रवचनपरीक्षा' में चावड़ा, चौलुक्य और बघेलों की वंशावलियाँ दी गई हैं।

पुराण-कथा-साहित्य के ग्रन्थों मे बिखरी सामग्री की ओर हमने उन ग्रन्थों के परिचय में ही ध्यान आकर्षित किया है।

तुगलक वंश के जैन स्रोत :

इस वश का राज्य सन् १३२१ से १४१४ ई० तक रहा। इस वंश मे प्रसिद्ध तीन सुल्तान हुए : १. गयासुद्दीन तुगलक (१३२१-१३२५ ई०), २. मुहम्मद बिन तुगलक (१३२५-५१ ई०), ३. फिरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८ ई०)। इन सुल्तानों के राज्य और प्रान्तीय शासकों के राज्य में जैन-

धर्म, जैनाचार्यों के क्रियाकलाप, जैन साहित्य, मन्दिर, तीर्थ आदि की स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक प्रसग मे यहाँ उनका दिग्दर्शन मात्र करा रहे हैं।

नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध अपरनाम शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारप्रबन्ध :

इसमें[1] प्राचीन स्वतन्त्र गुजरात के अन्तिम महाजन समराशाह के महत्त्वपूर्ण कार्यों का विवरण देते हुए तुगलकवश के सुल्तानों और उनके प्रान्तीय शासकों की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गई हैं जो तत्कालीन भारत के धार्मिक इतिहास के निर्माण मे सहायक सिद्ध हुई हैं। समराशाह तीन भाई थे। बड़ा सहजपाल दक्षिण देश के देवगिरि (दौलताबाद) मे बस गया था। मझला साहण खंभात मे बसकर अपने पूर्वजों की कीर्ति फैला रहा था और समराशाह पाटन रहकर प्रभावशाली बना था। तत्कालीन दिल्ली का सुलतान गयासुद्दीन तुगलक उस पर बड़ा स्नेह करता था और उसने उसे तैलगाने का सूबेदार बनाया था। गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक भी उसे भाई जैसा मानता था और अपने समय में भी उसने उसे उक्त पद पर रहने दिया। उसने अपने प्रभाव से पाण्डुदेश के स्वामी वीरवल्ल को सुल्तान के चगुल से छुडाया और मुसलमानों के अत्याचार से अनेक हिन्दुओं की रक्षा की। उसने उन मुसलमान शासकों के काल में जैनधर्म-प्रभावना के अनेक कार्य किये।

जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प से भी तुगलकवंश के राज्यकाल[2] में जैनधर्म की स्थिति की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं।

मालवा के प्रान्तीय मुस्लिम शासक :

इन शासकों के राज्यकाल में जैनों को अच्छा प्रश्रय मिलता रहा है। माण्डवगढ़ में अनेक धनाढ्य और प्रभावक जैन व्यापारी थे। उनमे से कुछ को समय-समय पर राजमन्त्री या प्रधानमन्त्री व अन्य अनेक विशिष्ट पदों को सम्हालने का अवसर मिला था। माण्डवगढ के सुलतान होशगसाह गोरी (१४०५–१४३२ ई०) का महाप्रधान मण्डन नामक जैन था जो बड़ा शासन-कुशल और महान् साहित्यकार था। उसके द्वारा रचे ग्रन्थों की प्रशस्तियों में

---

1. ग्रन्थ का लघु परिचय पृ० २२९ में दिया गया है।
2. विशेष के लिए देखें ' डा०' ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४११-४१६.

बतलाया गया है कि किस तरह उसके पूर्वज विभिन्न राजदरबारों में विशिष्ट पदों पर थे।[1] मण्डन के पश्चात् भी उसके वंशधर मालवा के शासकों के अच्छे सहायक एवं पदाधिकारी बने रहे।[2]

सुमतिसम्भवकाव्य[3], जावडचरित्र और जावडप्रबन्ध[4] से भी मालवा के सुलतान गयासुद्दीन खिलजी (१४८३-१५०१ ई०) के शासनकाल की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं।

गुरुगुणरत्नाकर[5] (सं० १५४१) मे अनेक प्रान्तीय शासकों के समय जैनधर्म और समाज की स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। मालवा के प्रजाप्रिय, न्यायपालक सुल्तान महमूद खिलजी (१४३६-१४८२ ई०) का मन्त्री माडवगढवासी चन्द्रसाधु (चादासाह) था। गयासुद्दीन खिलजी के राज्यकाल में पोरवाड़ जाति के प्रमुख व्यक्ति सूरा और वीरा नामक जैन थे। उक्त मण्डन कवि का वंशज मेघ नामक व्यक्ति इस सुल्तान का मन्त्री था और उसे 'मफ्फरमलिक' उपाधि दी गई थी। इसी तरह और भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बातें दी गई हैं।

मुगलकाल के जैन स्रोत :

मुगलवंश के मुस्लिम शासकों में से अकबर, जहांगीर और शाहजहां के विषय में कुछ जैन ऐतिहासिक काव्यों से अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ मिलती हैं। तपागच्छीय उपाध्याय पद्मसुन्दरकृत पार्श्वनाथकाव्य, रायमल्लाभ्युदय[6] एवं अकबरशाहिश्रृंगारदर्पण की प्रशस्तियों से मालूम होता है कि पद्मसुन्दर अकबर द्वारा सम्मानित थे, उनके दादागुरु आनन्दमेरु अकबर के पिता हुमायूँ और पितामह बाबर द्वारा सत्कृत थे। वि० स० १६३२ में प० राजमल्ल विरचित

---

१. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ मे प्रकाशित दौलत सिंह लोढ़ा का लेख : मन्त्री मण्डन और उसका गौरवशाली वंश; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४७७-४८०.

२. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४२७.

३. परिचय के लिए देखें पृ० २१६.

४. ,, पृ० २२९.

५. ,, पृ० २१६.

६. इस ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय पहले दिया गया है।

जम्बूस्वामिचरित्र[1] में अकबर की प्रशसा करते हुए कवि ने लिखा है कि सम्राट् ने धर्म के प्रभाव से जजिया नामक कर बन्द करके यश का उपार्जन किया, उसके मुख से हिंसक वचन नहीं निकलते थे, हिंसा से वह सदा दूर रहता था और उसने जुआ और मद्य-पान का निषेध कर दिया था। स० १६५० मे रचे गये कर्मवशोत्कीर्तनकाव्य[2] मे बतलाया गया है कि बीकानेरनरेश का प्रधान कर्मचन्द्र बच्छावत राजा से अनबन होने के कारण अकबर बादशाह की शरण में आ गया था और उसने उसे अपना एक प्रतिष्ठित मन्त्री बना लिया। कर्मचन्द्र ने पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा अपहृत अनेक धातुमयी जिनमूर्तियाँ भी मुसलमानों से प्राप्त कीं और उन्हें बीकानेर के मन्दिरों में भिजवा दिया। सम्राट अकबर ने अपने शाहजादे सलीम पर आये अनिष्ट ग्रहों की शान्ति जैनधर्मानुसार करने के लिए अबुलफजल आदि विद्वान् मन्त्रियों की सलाह से कर्मचन्द्र बच्छावत को आदेश दिया था। उक्त मन्त्री के आग्रह पर बादशाह ने अहमदाबाद के सूबेदार आजम खॉ को फरमान भेजा कि मेरे राज्य में जैनतीर्थों, जैनमन्दिरों और मूर्तियों को कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की क्षति न पहुँचा सके और इस आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला भीषण दण्ड का भागी होगा।

उसी काल के मेड़ता दुर्ग से प्राप्त जैन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अकबर ने जैनमुनियों को युगप्रधान पद दिये थे, प्रति वर्ष आषाढ़ की अष्टाह्निका में अमारि (जीवहिंसा-निषेध) घोषणा की थी, प्रतिवर्ष सब मिलाकर ६ माह पर्यन्त समस्त राज्य में हिंसा बन्द कराई थी, खम्भात की खाड़ी में मछलियों का शिकार बन्द कराया था, शत्रुंजय आदि तीर्थों का करमोचन किया था और सर्वत्र गोरक्षा का प्रचार किया था आदि। १५९५ ई० में पुर्तगाली पादरी पिन्हेरो ने भी इनमें से अनेक बातों का समर्थन किया है। आइनेअकबरी भी इन बातों की पुष्टि करती है।[3]

तपागच्छीय आचार्य हीरविजय आदि के जीवनचरित्रों पर लिखे 'हीर-सौभाग्यमहाकाव्य' आदि ग्रन्थों से भी मुगल बादशाहों की धार्मिक भावनाओं का पता चलता है।

सन् १५८२ के लगभग काबुल से लौटने के बाद अकबर ने गुजरात के शासक शिहाबुद्दीन अहमदखान के पास फरमान भेजकर आचार्य हीरविजय को

१-२. इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय पहले दिया गया है।

३. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४८८.

आगरा दरबार आने का निमन्त्रण दिया। आचार्य गुजरात से पैदल चलकर आगरा आये। सम्राट् ने उनका बहुत सम्मान किया और अनेक भेंटे कीं। उनके अनुरोध पर उसने पर्यूषणपर्व में १२ दिन तक जीव-हत्या रोक दी आदि। जून सन् १५८४ में उसने हीरविजयजी को 'जगद्गुरु' की उपाधि दी और उनके शिष्य शान्तिचन्द्र को उपाध्याय पद। हीरविजय सन् १५८२ से १५८६ तक आगरा रहे। अकबर और हीरविजयजी के सम्बन्धों का वर्णन पद्मसागरकृत 'जगद्गुरुकाव्य' और देवविमलकृत 'हीरसौभाग्यकाव्य' में मिलता है। वैराट (जयपुर—सन् १५८७) तथा शत्रुंजय (सन् १५९३) से प्राप्त शिलालेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है।

उपाध्याय शान्तिचन्द्र ने बादशाह के दयामय कार्यों के वर्णन के लिए 'कृपारसकोश' बनाया। उसके अहिंसा कार्यों का वर्णन अलबदाउनी ने भी किया है। विन्सेण्ट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'अकबर' में भी इन बातों का प्रतिपादन किया है। उपाध्याय शान्तिचन्द्र का अकबर पर बड़ा प्रभाव था। एक वर्ष ईद के समय वे सम्राट् के पास ही थे। ईद से एक दिन पहले उन्होंने सम्राट् से कहा कि अब वे वहाँ नहीं ठहरेंगे क्योंकि अगले दिन ईद के उपलक्ष्य में अनेक पशु मारे जायेंगे। उन्होंने कुरान की आयतों से सिद्ध कर दिखाया कि कुर्बानी का मास और खून खुदा को नहीं पहुँचता, वह इस हिंसा से खुश नहीं होता बल्कि परहेजगारी से खुश होता है। रोटी और शाक खाने से ही रोजे कबूल हो जाते हैं। अन्य अनेक मुसलमान ग्रन्थों से भी उन्होंने बादशाह और उसके दरबारियों के समक्ष यह सिद्ध किया और बादशाह से घोषणा करा दी कि इस ईद पर किसी प्रकार का वध न किया जाय।

शान्तिचन्द्र आवश्यक कार्य से गुजरात चले गये और अपने शिष्य भानुचन्द्र को अकबर के दरबार में छोड़ गये।

भानुचन्द्र का अकबर के शेष जीवन और जहाँगीर के प्रारम्भिक जीवन से बड़ा सम्पर्क था। अकबर ने अपने दो शाहजादे सलीम और दर्रेदानियाल की शिक्षा भानुचन्द्रगणि के अधीन की थी। अबुलफजल को भी भानुचन्द्र ने भारतीय दर्शन पढ़ाया था। भानुचन्द्र ने सम्राट के लिए 'सूर्यसहस्रनाम' की रचना की और इसी कारण वे 'पातशाह अकबर जलालुद्दीन सूर्यसहस्रनामाध्यापक' कहलाते थे। वे फारसी के भी बडे विद्वान् थे। बादशाह ने खुश होकर उन्हें 'खुशफहम' उपाधि प्रदान की थी। अकबर भानुचन्द्रगणि के प्रति अत्यन्त आस्थावान् था। इसके समर्थन में बहुत सामग्री है। उनमे से दो मात्र का

उल्लेख करते हैं। एक समय अकबर को भयानक सिरदर्द था। उसे दूर करने मे किसी चिकित्सक को सफलता नहीं मिली। तब सम्राट ने भानुचन्द्र का स्मरण किया। उन्होंने सम्राट् के सिर पर हाथ रखकर चिन्तामणि पार्श्व की स्तुति की। इससे सिरदर्द सदा के लिए दूर हो गया। राज्य के उमरावों ने इस खुशी में कुर्बानी के लिए पशु एकत्र किये किन्तु खबर पाते ही बादशाह ने वह तुरन्त रुकवा दी। एक बार शिकार करते हुए बादशाह को मृग के सींग से चोट आ गई और दो माह तक पलग पर पड़े रहे। उस समय सभी को न मिलने की आज्ञा थी पर भानुचन्द्र और अबुलफजल को कोई आज्ञा न थी। भानुचन्द्र के शिष्य सिद्धिचन्द्रकृत 'भानुचन्द्रगणिचरित'[१] में उक्त बातों के अतिरिक्त जहांगीर, नूरजहा तथा कई एक दरबारियो का चरित्र-चित्रण किया गया है।

आचार्य हीरविजय के प्रधान शिष्य विजयसेन पर हेमविजयगणिकृत 'विजयप्रशस्तिमहाकाव्य'[२] तथा उनके प्रशिष्य विजयदेव पर श्रीवल्लभ उपाध्यायकृत 'विजयदेवमाहात्म्य'[३] तथा मेघविजयगणिकृत 'विजयदेवमाहात्म्यविवरण' 'दिग्विजयकाव्य', 'देवानन्दमहाकाव्य'[४] आदि में अकबर और जहागीर के विषय मे अनेक ऐतिहासिक बातें दी गई हैं। विजयसेनसूरि को अकबर ने लाहौर बुलाया था। उनके शिष्य नन्दिविजय को अष्ट अवधान पर उसने खुशफहम (a man of sharp intellect) की उपाधि दी थी। विजयसेनगणि ने सम्राट् के दरबार में 'ईश्वर कर्ता हर्ता नहीं है' विषय पर अन्य धर्मों के विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये थे और उन्हें 'सवाई हीरविजयसूरि' की उपाधि मिली थी। उनके अनुरोध से उसने गाय, बैल आदि पशुओं की हिंसा रोक दी थी।[५] सन् १५८२ से लेकर बहुत समय तक अकबर और जहागीर के दरबार मे कोई न कोई विद्वान् आचार्य रहे थे।

प्रशस्तियाँ :

प्रशस्ति का अर्थ होता है गुणकीर्तन। सस्कृत साहित्य की यह एक अत्यन्त रोचक शैली है। आलकारिक शैली के काव्यरूप में लिखे जाने पर भी प्रशस्तियों के विषय इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं और इनसे अतीत के इतिहास के

१-४. इन ग्रन्थों का परिचय पहले दिया गया है।

५ विशेष के लिए 'अकबर आणि जैनधर्म सूरीश्वर आणि सम्राट्' ग्रन्थ देखें, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५३५-५६० विशेषरूप से द्रष्टव्य है।

संयोजन में बहुत-सी सामग्री मिल जाती है। वैदिक साहित्य से सम्बद्ध ब्राह्मणों और उपनिषदों में 'गाथा नाराशंसी' अर्थात् प्रसिद्ध वीर व्यक्तियों की प्रशंसा के गीत का बहुत बार उल्लेख मिलता है। ये गीत ऋग्वेद की दान स्तुतियों और अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में सम्बद्ध हैं और पश्चात्कालीन वीर गाथाओं में वर्णित शौर्य घटनाओं के प्रारूप भी। इनका विषय योद्धाओं और नरेशों के गौरवमय कार्यों का ही वर्णन है। कालान्तर में ये ही गाथाएँ किसी एक व्यक्ति-विशेष अथवा घटनाविशेष को लेकर बहुत बड़े महाकाव्यों में विकसित हुईं।

पश्चात्काल में गुप्तयुग के लगभग ये प्रशस्तियाँ हमें उत्कीर्ण लेखों के रूप में तथा स्वतन्त्र गुणवचन के रूप में भी प्राप्त होती हैं। समुद्रगुप्त के सम्बन्ध की हरिषेण-प्रशस्ति इलाहाबाद के एक स्तम्भ से प्राप्त हुई है। स्कन्दगुप्त का गिरनार-शिलालेख और मन्दसौर के सूर्यमन्दिर की वत्सभट्टि-प्रशस्ति भी इसी प्रकार की है। सिद्धसेन दिवाकरकृत गुणवचनद्वात्रिंशिका उत्कीर्ण लेख न होने पर भी इसी प्रकार की प्रशस्ति है जिसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का गुण-कीर्तन किया गया है। पश्चात्काल में मन्दिरों, मूर्तियों आदि स्थापत्यों के स्मृतिरूप में अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ लिखने की परम्परा चलने लगी। जैन मनीषी इस विषय में पीछे न रहे। दक्षिण भारत, गुजरात, राजस्थान तथा मध्य भारत में जैन विद्वानों ने एक विशिष्ट प्रकार की भी प्रशस्तियाँ लिखीं जिन्हें ग्रन्थ-प्रशस्ति अर्थात् पुस्तक की स्तुतिगाथा कहते हैं। ये सामान्यतः ग्रन्थों के अन्त में और कभी-कभी ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी या पुष्पिका के रूप में ग्रन्थ के किसी अध्याय या सब अध्यायों के अन्त में पाई जाती हैं। ई० छठी शती के पहले लिखे गये ग्रन्थों में हमें ये प्रशस्तियाँ प्रायः नहीं मिलतीं परन्तु ७वीं शती से आगे इनका अधिक और सामान्य प्रयोग होने लगा।

काव्यात्मक आदर्श प्रशस्तियाँ भी जैन विद्वानों ने लिखी हैं। इनका ऐति-हासिक एवं काव्यात्मक महत्त्व विभिन्न प्रकार का होता है। कोई-कोई प्रशस्तियाँ बहुत ही छोटी होती हैं अर्थात् कुछ पंक्तियों की ही, तो कितनी ही सौ-सौ पंक्तियों या श्लोकों जैसी लम्बी होती हैं। कुछ गद्य में होती हैं तो कुछ सारी की सारी पद्य में ही। कोई-कोई गद्य और पद्य मिश्रित भी। ऐतिहासिक दृष्टि से इन प्रशस्तियों में महत्त्व का अंश साधारणतया वंशपरिचय, शौर्य अथवा धर्म-कार्यवर्णन होता है। अनेक प्रशस्तियाँ स्थापत्य से सम्बद्ध हैं जिनमें स्थापत्य निर्माता या दाता का वृत्तान्त दिया जाता है। यदि निर्माता या दाता तत्कालीन राजा नहीं है तो उस प्रशस्ति में तत्कालिक राजा के सम्बन्ध में कुछ न कुछ उल्लेख

कर दिया जाता है। तदनन्तर दान का वर्णन किया जाता है और पीछे किसके लिए और किन शर्तों में दान हुआ था इसका भी उल्लेख किया जाता है। स्थापत्य प्रशस्ति मे निर्माता शिल्पी का, प्रतिष्ठाता गुरु का, प्रशस्ति-रचयिता कवि का, ताम्र या शिला पर लिखनेवाले लेखक और उसे उत्कीर्ण करनेवाले त्वष्टा का नाम दिया जाता है। स्थापत्य-प्रशस्तियों (शिलालेखों और ताम्रपत्रों) के समान ही ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ या स्वतन्त्र काव्यात्मक प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण और विश्वसनीय हैं। अन्तर इतना है कि ये प्रशस्तियाँ अल्पस्थायी कागज या ताड़पत्रों में लिखी मिलती हैं जब कि स्थापत्य-प्रशस्तियाँ दीर्घस्थायी पाषाण और धातुओं पर। जहाँ तक ऐतिहासिक दृष्टि से रचना और विवरण का सम्बन्ध है दोनों एक सी हैं।

स्वतन्त्र काव्यात्मक प्रशस्तियों के परिचयक्रम में हमने पहले ही ऐतिहासिक काव्यों के पहले प्राचीनता की दृष्टि से गुणवचनद्वात्रिंशिका नामक एक प्रशस्ति का परिचय दे दिया है। कुछ अन्य उपलब्ध प्रशस्तियों का परिचय भी प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुपाल और तेजपाल के सुकृतो की स्मारक प्रशस्तियाँ :

वस्तुपाल तेजपाल के सम्बन्ध में छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ मिलती हैं। प्रथम प्रशस्ति है :

सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी :

यह[1] १७९ श्लोको की लम्बी प्रशस्ति है जो वस्तुपाल के सुकृतों की परिचायक स्तुति-कथा ही है। इसमें उन बातों का संक्षिप्त वर्णन है जिनका अरिसिंह के काव्य सुकृतसकीर्तन में है।

परम्परानुसार मगलाचरण के बाद पद्य ९-१८ में चावड़ा वंश के राजाओं के शौर्य का वर्णन है, तदनन्तर १९-६९ तक पद्यों में चौलुक्य नृपों का वर्णन, तत्पश्चात् ७०–९७ पद्यों मे वीरधवल और उसके पूर्वजों की प्रशसा की गई है। वस्तुपाल के वशवृक्ष, मन्त्रित्वकाल और उसके परिवार की प्रशंसा ९८-१३७ पद्यों में है। पद्य १३८–१४० में वस्तुपाल के शौर्य कार्यों का वर्णन है और १४१–१४९ में उसकी सघयात्राएँ वर्णित हैं। पद्य १५०–१५७ में नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों की पट्टावली तथा १५८–६१ में विजयसेनसूरि की प्रशसा की गई है। तत्पश्चात्

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, क्रमांक १० (बडौदा, १९२०) में हम्मीरमदमर्दन नाटक के परिशिष्टरूप में प्रकाशित.

पद्य १६२–७७ में रचयिता ने वस्तुपाल द्वारा निर्मित धार्मिक तथा लौकिक भवनों को गिनाया है और अन्त मे पद्य १७८ मे प्रशस्तिरचयिता का नाम और १७९ मे आशीर्वचन दिया गया है।

इस प्रशस्ति के रचयिता उदयप्रभसूरि हैं जिनका परिचय धर्माभ्युदयकाव्य के प्रसग मे दिया गया है। कवि ने इस प्रशस्ति को शत्रुजय पर्वत के ऊपर आदिनाथ के मन्दिर मे किसी स्थान पर शिलापट्ट पर उत्कीर्ण कराने के लिए रचा था।

उदयप्रभसूरि ने वस्तुपाल द्वारा स्तम्भतीर्थ मे निर्मित उपाश्रय की भी एक प्रशस्ति बनाई थी। इसमे १९ पद्य हैं और कुछ भाग गद्य का भी है। इसमें निर्माता और उसके गुरु के वशवृक्ष एव प्रशसा के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है। इन्हीं आचार्यकृत ३३ पद्यों की संग्रहरूप एक 'वस्तुपालप्रशस्ति' मिलती है। यह किसी घटना विशेष पर या किसी सुकृत की स्मृति मे रची गई प्रतीत नहीं होती, बल्कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर वस्तुपाल की प्रशसा पर लिखे गये पद्यों की सग्रहरूप है। ये पद्य बड़े ही सुन्दर हैं।[1] उदयप्रभसूरिकृत ५ पद्यों का एक अन्य प्रशस्तिलेख भी मिलता है जिसमें नेमिनाथ और आदिनाथ के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए वस्तुपाल की दानशीलता एव धार्मिकता को बतलाकर उसकी दीर्घायु की कामना की गई है।[2]

वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति :

यह ७७ पद्यों का कीर्तिकाव्य है।[3] यह भृगुकच्छ के शकुनिविहार नामक मुनिसुव्रत स्वामी के मन्दिर में छोटी देवकुलिकाओं पर तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वज-दण्ड चढ़ाए जाने की स्मृति में रचा गया है। इसमे अन्य प्रशस्तियो की भाँति ही चौलुक्यनरेशों का वर्णन पद्य ४–३१ मे तथा बघेलों का पद्य ३२-३८ में तथा दाता वस्तुपाल-तेजपाल का पद्य ३९–५१ तक वशवृक्ष दिया गया है और

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १८२.

२ महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ० ३०३-३३० मे प्रकाशित मुनि पुण्यविजय जी के लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तिलेखो' में प्रशस्तिलेखांक २.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५, गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, संख्या १० (बड़ौदा, १९२०) में हम्मीरमदमर्दन नाटक के परिशिष्टरूप में प्रकाशित

पद्य ५२–६२ में उसके सुकृत्यों की सूची दी गई है। पद्य ६३–७१ मे मन्दिर के मुख्य अधिष्ठाता एवं प्रशस्ति के रचयिता जयसिंह के उपदेश से एव अपने अग्रज वस्तुपाल की आज्ञा से तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वजदण्डों के निर्माण का वर्णन है। अन्त मे ध्वजदण्डों, मन्दिर और दोनों मन्त्रियों के लिए आशीर्वचन है।

इस प्रशस्ति के रचयिता वीरसिंहसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि हैं। इन्होंने हम्मीरमदमर्दन नाटक भी रचा है जो एक ऐतिहासिज नाटक ही है और वस्तुपाल की शौर्यकथा बतलाता है।

१. वस्तुपालप्रशस्ति :

यह २६ श्लोकों की प्रशस्ति है।[1] पहले पद्य में मगलाचरण तथा दूसरे में वस्तुपाल और तेजपाल और उनके पूर्वजों का वर्णन है। शेष काव्य में अपने आश्रयदाता की स्तुति ही है।

इसके रचयिता नरचन्द्रसूरि हैं जो हर्षपुरीय या मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे। ये वस्तुपाल के मातृपक्ष से गुरु थे। इन्होंने वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण और साहित्य आदि ग्रन्थ पढ़ाये थे। ये कई ग्रन्थों के रचयिता एव टिप्पणकार थे। इनका फलित ज्योतिष पर ज्योतिःसार याने नारचन्द्र-ज्योतिःसार मिलता है। इन्होंने श्रीधर की न्यायकन्दली पर एवं मुरारि के अनर्घराघव नाटक पर टिप्पण लिखे तथा जैन कथानकों पर कथारत्नसागर तथा चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र रचा था।

२. वस्तुपालप्रशस्ति :

यह १०४ पद्यों की एक प्रशस्ति है।[2] इसे नरचन्द्रसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने बनाया है। यह ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व की है। इसके प्रथम पद्य में जिन और महादेव की श्लेषमय स्तुति है, पद्य २-१२ में चौलुक्य वंश के राजाओं की कीर्तिगाथा तथा १३–१७ में बघेलावश का वर्णन, पद्य १८–२४ में वस्तुपाल के पूर्वजों और उसके निजगुणों के विषय मे पद्य २५–२८ में वर्णन किया गया है। इसके बाद ९८ पद्य तक वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं, जीर्णोद्धार, धर्मशाला-निर्माण आदि कार्यों का वर्णन है। पद्य ९९–१०४ में

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १०१.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५.

नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों का वर्णन तथा प्रशस्तिरचयिता और उसके गुरु का भी वर्णन है।

नरेन्द्रप्रभसूरि की दूसरी वस्तुपालप्रशस्ति[1] ३७ पद्यों की मिलती है। इसमें राजा वीरधवल और दोनों भाइयों की कीर्ति वर्णित है। इसमें किसी भी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है।

उक्त दोनों प्रशस्तियों के रचयिता नरेन्द्रप्रभसूरि वस्तुपाल के समय के विद्वान् मुनियों में एक थे। इन्होंने अपने गुरु नरचन्द्रसूरि की आज्ञा से वस्तुपाल के प्रीत्यर्थ अलंकारमहोदधिकारिका और वृत्ति की रचना सं० १२८२ में की थी। उनकी अन्य कृतियों में 'काकुत्स्थकेलिनाटक' १५०० श्लोक-प्रमाण का उल्लेख मिलता है। इनकी धार्मिक विषयों पर विवेकपादप और विवेककलिका नामक दो रचनाएँ और मिलती हैं। नरेन्द्रप्रभसूरि वस्तुपाल के साथ शत्रुंजययात्रा में गये थे और उन्होंने ३७० पद्यों की प्रशस्ति यात्रा के प्रारम्भ होते ही और दूसरी यात्रा की समाप्ति होने पर शत्रुंजय पर लिखी थी।

३. वस्तुपालप्रशस्ति :

४ पद्यों की एक प्रशस्ति वस्तुपाल के परम मित्र यशोवीर द्वारा रचित भी उपलब्ध हुई है। इसमें वस्तुपाल के गुणों का कीर्तन मात्र है, ऐतिहासिक बात कुछ भी नहीं।

यशोवीर वस्तुपाल का अन्तरंग मित्र था।[2] समकालीन कवि सोमेश्वर ने दोनों मित्रों को सरस्वती के दो पुत्र कहकर प्रशंसा की है। जयसिंहसूरि के हम्मीरमदमर्दन नाटक (अंक ५, श्लोक ४८) में वस्तुपाल द्वारा यशोवीर का अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान आदर करना बताया गया है। प्रबन्धों में यशोवीर-कृत कई पद्यों का उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि वह अच्छा संस्कृत कवि था, यद्यपि उसकी किसी रचना की उपलब्धि अब तक नहीं हुई

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १८४.

१. महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ० ३०३-३२० में प्रकाशित मुनि पुण्यविजयजी का लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तिलेखो' में प्रशस्तिलेखाङ्क ५.

है। वह सण्डेरकगच्छ के आचार्य शान्तिसूरि का अनुयायी था और जालोर का रहनेवाला राज्यमान्य व्यक्ति था।[1]

४. वस्तुपालप्रशस्ति :

१२ पद्यों की यह प्रशस्ति[2] कुछ काल पूर्व प्रकाश में आई है। इसके रचयिता सुकृतसकीर्तनकाव्यकर्ता अरिसिंह ठक्कुर हैं। इसमें वस्तुपाल का नाम वसन्तपाल और वस्तुपाल दोनों दिया गया है और उदात्त काव्यात्मक शैली मे यशोगाथा वर्णित है। इसमे किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है।

ग्रन्थ, दाता तथा लिपिकार-प्रशस्तियाँ :

ग्रन्थ से सम्बद्ध प्रशस्तियाँ दो प्रकार की हैं : प्रथम ग्रन्थकारप्रशस्ति, दूसरी पुस्तकप्रशस्ति। ग्रन्थकारप्रशस्ति मे ग्रन्थरचयिता का अपना परिचय, उसकी गुरुपरम्परा, रचनास्थान एव समय आदि का उल्लेख होता है। पुस्तकप्रशस्ति दो प्रकार की है : एक द्रव्यदान देकर लिखानेवालों की प्रशस्ति और दूसरी लेखन कार्य करनेवाले लिपिकार की प्रशस्ति। ऐसी प्रशस्तियाँ पिटरसन, भाण्डारकर आदि विद्वानों की रिपोर्टों में तथा पाटन, खभात, जैसलमेर, बड़ौदा, अहमदाबाद, लिम्बड़ी, जैसलमेर, जयपुर, आमेर आदि जैनभण्डारों की विवरणात्मक सूचियों तथा जैनपुस्तकप्रशस्तिसग्रह[3] नामक ग्रन्थों में दी गई हैं। ऐसी प्रशस्तियाँ मध्ययुगीन भारत के सम्भ्रान्त जैन परिवारों के इतिहास की भी बहुत उपयोगी सूचनाएँ देती हैं। ये सूचनाएँ गुजरात और मध्य भारत से प्राप्त ग्रन्थों में कर्नाटक और तमिलदेश से प्राप्त ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक हैं। १०वीं शताब्दी

---

१. यशोवीर के विशेष परिचय के लिए देखे : डा० भोगीलाल सांडेसराकृत महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० ८१-८५.

२. महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ, पृ० ३०२-३२०, प्रशस्तिलेखाङ्क ६.

३. अब तक प्रकाशित इस प्रकार के ग्रन्थों मे मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित जैनपुस्तकप्रशस्तिसग्रह, श्री अमृतलाल मगनलाल शाह द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसग्रह (२ भाग), प० के० भुजबली शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह, पं० परमानन्द शास्त्रीकृत जैनग्रन्थप्रशस्तिसग्रह, भाग १ (संस्कृत-प्राकृत) और भाग २ (अपभ्रंश) तथा डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं।

से पूर्व के कुछ ही हस्तलिखित ग्रन्थ मिले हैं जिनमे प्रथम प्रकार की प्रशस्तियाँ (ग्रन्थकारप्रशस्ति) मिलती है। भारतीय इतिहास के विषय मे छुटपुट सूचनाओं को इकट्ठा करने मे जैन ग्रन्थकारों की प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में समझी गई हैं। यदि इनका उचित रूप से एकीकरण किया जाय और प्रतिमालेखों के साथ जो कि बड़ी सख्या मे उत्कीर्ण पाये गये हैं और प्रकाशित भी हुए हैं तथा अन्य अभिलेखों के साथ अध्ययन किया जाय तो न केवल नूतन तथ्य ही प्रकाश मे आएगे बल्कि सुज्ञात तथ्यों के बीच परस्पर सम्बन्ध दिखाये जा सकेंगे और हमारे तिथिक्रम के अध्ययन में बहुत अच्छे फल प्राप्त होंगे। समकालीन रिकार्ड होने से ये प्रशस्तियाँ देश के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास के निर्माण के लिए भी महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनसे तत्कालीन धार्मिक और साहित्यिक गतिविधि का भी परिचय मिलता है। पुस्तकप्रशस्ति हमें दानदाता, उसके परिवार, वशावलि, जाति और गोत्र आदि का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त इनसे भूगोल की भी सामग्री मिलती है। मध्यकालीन जैनाचार्यों के पारस्परिक विद्या-सम्बन्ध, गच्छ के साथ उनके सम्बन्ध, कार्यक्षेत्र का विस्तार, ज्ञानप्रसार के लिए प्रयत्न आदि की पर्याप्त सामग्री भी मिल जाती है। श्रावकों की जातियों के निकास और विकास पर भी रोचक प्रकाश इनसे मिलता है।

ग्रन्थकारप्रशस्ति के महत्त्व को हम पहले ही ग्रन्थों के परिचय के साथ सूचित करते गये हैं। हमने कुवलयमाला, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण, हरिषेणकथाकोश आदि की प्रशस्तियों के महत्त्वों को यथास्थान अंकित किया है। उनका फिर से यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवकाश नहीं। फिर भी यहाँ दो-चार अन्य प्रशस्तियों का विवरण उपस्थित करते हैं।

मुनिसुव्वयसामिचरिय की प्रशस्ति :

सं० ११९३ में रचित उक्त काव्य[1] में हर्षपुरीयगच्छ के श्रीचन्द्रसूरि ने लगभग १०० पद्यों की एक बड़ी प्रशस्ति दी है। इस प्रशस्ति मे ग्रन्थकार ने अपने दादा गुरु और गुरु का गुणवर्णन बहुत विस्तार से किया है। इसमें शाकम्भरीनरेश पृथ्वीराज, ग्वालियरनरेश भुवनपाल, सौराष्ट्र के राजा खेंगार और अणहिलपुर के राजा सिद्धराज जयसिंह आदि का उल्लेख है। उस समय पाटन का एक सघ गिरनारतीर्थ की यात्रा के लिए गया और वनथली में उसने पड़ाव डाला। उस संघ में आर्य लोगों के आभूषण आदि की समृद्धि को देखकर

१. इस ग्रन्थ का परिचय पृ० ८७ में दिया गया है।

सोरठनरेश का मन ललचा गया। उसके लोभी सहचरों ने कहा कि पाटन की बड़ी लक्ष्मी घर बैठे तुम्हारे यहाँ आ गई है और बहुत लोगों ने सघ को लूटकर अपने खजाने भर लिये। राजा को एक तरफ लक्ष्मी का लोभ और दूसरी तरफ जगत् मे फैलनेवाली अपकीर्ति के भय से वह सकपकाया। उसने सघ को बहुत दिन तक वहाँ से जाने ही न दिया। तब ग्रन्थकार के प्रभावक गुरु आचार्य हेमचन्द्र (दूसरे हेमचन्द्र) मौका देखकर खेंगार की सभा में गये और उसे धर्मोपदेश देकर उसके दुष्ट विचार को परिवर्तित किया और सघ को आपत्ति से छुड़ा दिया आदि। इस तरह की कितनी ही ऐतिहासिक बातें ग्रन्थकार ने इस प्रशस्ति में दी हैं। अणहिलवाड, भरुच, आशापल्ली, हर्षपुर, रणथभोर, साचोर, वणथली, धोलका और धधुका आदि स्थानों तथा मंत्री शान्तु, अणहिलपुर का सेठ सीया, भरुच का सेठ धवल और आशापल्ली का श्रीमाली सेठ नागिल आदि कितने ही प्रख्यात नागरिकों का उल्लेख इस प्रशस्ति में है।

सुपासनाहचरिय की प्रशस्ति :

उपर्युक्त श्रीचन्द्रसूरि के गुरुभाई लक्ष्मणगणि ने स० ११९९ की माघ सुदी दशमी गुरुवार के दिन माडल मे रहकर सुपासनाहचरिय नामक बृहत् ग्रन्थ लिखा। उसके अन्त में १७ गाथाओं की एक अच्छी प्रशस्ति है। उस प्रशस्ति में महत्त्व की कई बातें हैं पर सबसे महत्त्व की बात यह है कि जिस समय यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ उस समय अणहिलपुर में राजा कुमारपाल राज्य करता था। कुमारपाल के राज्य का यह समकालीन प्रथम उल्लेख है। प्रबन्धचिन्तामणि आदि मे इस राजा की राजगद्दी पर बैठने का समय स० ११९९ दिया गया है। यह उल्लेख तत्कालीन और असदिग्ध कथन से सत्य बैठता है। डा० देवदत्त भाडारकर ने एक समय गोधरा और मारवाड़ के एक लेख का भ्रान्त अर्थ कर कुमारपाल की स० १२०० के बाद राजगद्दी पर बैठने की सम्भावना की थी और कहा था कि प्रबन्धचिन्तामणि में दिया गया वर्ष ठीक नहीं है पर उक्त समकालीन प्रशस्ति के उल्लेख से भाडारकर का मत निरस्त हो जाता है।

नेमिनाहचरिउ की प्रशस्ति :

स० १२१६ में कुमारपाल के राज्यकाल में हरिभद्रसूरि नामक एक आचार्य ने नेमिनाहचरिउ नामक ग्रन्थ मे २३ पद्यों की एक प्रशस्ति अपभ्रश मे लिखी है। मन्त्री पृथ्वीपाल की प्रेरणा से आचार्य ने यह ग्रन्थ लिखा था। इसलिए ग्रन्थकार ने अपनी गुरुपरम्परा के परिचय के साथ इस मन्त्री के पूर्वजो का भी

थोड़ा-बहुत परिचय दिया है। मन्त्री पृथ्वीपाल, सुप्रसिद्ध दण्डनायक मन्त्री विमलसाह पोरवाड का वंशज था। मूल मे ये लोग श्रीमाल के निवासी थे, पीछे पाटन के पास गाभू नाम के स्थान मे आकर बस गये थे और जब अणहिलपुर की स्थापना हुई उसी समय वे लोग वहाँ आकर बस गये। चावड़ावंश के नरेश वनराज के समय मे इस वश का प्रसिद्ध पुरुष निन्नय था। वह हाथी-घोड़े और धन-समृद्धि से युक्त था। वनराज उसे अपने पिता के समान मानता था और वनराज ने ही आग्रहपूर्वक उसे वहाँ बसाया था। निन्नय के लहर नामक एक बडा पराक्रमी पुत्र था जो विंध्याचल से अनेक हाथियों को पकड़कर लाता था। गुजरात के नवोदित साम्राज्य को बलवान् बनाने मे उसका बड़ा भाग था। वनराज से लेकर दुर्लभराज चौलुक्य तक ११ राजाओं के किसी न किसी प्रधान पद पर इस वश के पुरुष क्रम से चले आ रहे थे। दुर्लभराज के समय मे वीर नामक प्रधान था। उसके दो पुत्र ज्येष्ठ नेढ और लघु विमल थे। ज्येष्ठ तो भीमदेव चौलुक्य का महामात्य और लघु दण्डनायक था। भीम के आदेश से आबू के परमार राजा को जीतने के लिए विमल बड़ी सेना लेकर चन्द्रावती गया और उसे जीतकर गुजरात का एक सामन्त बनाया। पीछे उसी ने अम्बादेवी की कृपा से आबू पर्वत पर सुप्रसिद्ध आदिनाथ के भव्य मन्दिर को बनवाया। नेढ का पुत्र धवल हुआ जो कर्णदेव चौलुक्य का एक अमात्य था। उसका पुत्र आनन्द हुआ जो सिद्धराज और कुमारपाल के समय में भी किसी एक प्रधान पद पर था। उसका पुत्र महामात्य पृथ्वीपाल हुआ। इसने आबू के ऊपर विमलशाह के मन्दिर में अपने पूर्वजों की हाथी के कन्धे पर बैठी ७ मूर्तियाँ बनवाई थीं तथा पाटन के पचासर पार्श्वनाथ मन्दिर मे एक भव्य मण्डप बनवाया था। उसने चन्द्रावती, रोहा, वराही, सावणवाडा आदि ग्रामों मे देव-स्थानों का जीर्णोद्धार कराया, अनेक पुस्तकें लिखाकर भण्डारों को दीं आदि बातें इस प्रशस्ति मे आई हैं। यह एक प्रबन्ध जैसा लगता है।

वनराज चावड़ा के विषय मे सबसे पहला उल्लेख यही माना जाता है। विमल मन्त्री के विषय मे सबसे पहली खोज यही है। गुजरात के राजवश और प्रधानवंश की यह अविच्छिन्न परम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्यवान् है। इस तरह यह प्रशस्ति गुजरात के इतिहास के लिए महत्त्व की है।

अममस्वामिचरित की प्रशस्ति :

अममस्वामिचरित का परिचय पहले दिया है। उसके अन्त मे ३४ पद्यों वाली प्रशस्ति में उस काल के गुजरात के अनेक प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों का

उल्लेख मिलता है। जिस गृहस्थ की प्रेरणा से इस चरित्र की रचना की गई थी वह कुमारपाल के महामात्य यशोधवल का पुत्र जगदेव था। वह वराही का निवासी श्रीमाल वैश्य था। वह अच्छा विद्वान् था और बालपन से कविता करता था। हेमचन्द्राचार्य ने उसे बालकवि की पदवी दी थी। वह बालकवि के नाम से सर्वत्र ख्यात था। उसका एक घनिष्ठ मित्र निर्नय मन्त्री ब्राह्मण था। उसका पिता रुद्रशर्मा कुमारपाल का राजज्योतिषी था। मन्त्री निर्नय और एक अन्य भट्ट सूदन दोनों राजमान्य ब्राह्मण थे और जैनधर्म के प्रति खूब सहानुभूति रखते थे। मुनिरत्न की इस कृति का संशोधन राज्य के वरिष्ठ न्यायाधीश कवि कुमार (कवि सोमेश्वर के पिता) ने किया था और इसकी प्रथम हस्तलिपि गुर्जर मन्त्री उदयराज के विद्वान् पुत्र सागरचन्द्र ने लिखी थी और इस चरित्र का प्रथम श्रवण वैयाकरणाग्रणी पं० पूर्णपाल और यशःपाल तथा स्वय बालकवि (जगदेव) तथा आमण और महानन्द नामक सभ्यों ने किया था। पश्चात् बालकवि ने इस ग्रन्थ की अपने खर्च से अनेक प्रतियाँ बनवाकर विद्वानों को भेंट की थीं।

इस प्रशस्ति में समागत महामात्य यशोधवल का उल्लेख स० १२१८ के कुमारपालसम्बन्धी एक लेख में आता है। गुर्जर राज्यपुरोहित कवि सोमेश्वर का पिता कवि कुमार भीम द्वितीय के समय स० १२५५ में गुजरात का वरिष्ठ न्यायाधीश था, यह प्रशस्ति से नई बात मालूम होती है। जैन विद्वान् और राजा के अग्रगण्य ब्राह्मण विद्वानों में परस्पर बहुत सहानुभूति और मित्रता थी, इस बात का सुन्दर उदाहरण इस प्रशस्ति से मिलता है।

यहाँ प्रशस्तियों का महत्त्व बतलाने के लिए हमने कुछ ही प्रशस्तियों का विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की अनेक प्रशस्तियों का हमने यत्र-तत्र सकेत भी किया है। इनकी सख्या बहुत बड़ी है।

ग्रन्थकारप्रशस्ति के अतिरिक्त पुस्तकप्रशस्ति भी बड़े महत्त्व की है। उस काल में ज्ञानप्रिय गृहस्थों ने ताड़पत्र, कागज आदि पर पुस्तकों को लिखाकर सग्रह करने में हजारों-लाखों रुपया खर्च किया था और बड़े-बड़े सरस्वती भण्डार स्थापित किये थे। उन गृहस्थों के सुकृत्यों की स्मारक प्रशस्तियाँ इन पुस्तकों के साथ दी गई हैं। ये पुस्तकप्रशस्तियाँ १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ से गुजरात मे लिखे गये ग्रन्थों में अधिकतर पाई जाती हैं। इनसे सिद्धराज, कुमारपाल, भीमदेव, वीसलदेव, अर्जुनदेव, सारगदेव आदि के राज्य, उनके राज्याधिकारियों

एवं अनेक जैन श्रावकों के विषय मे जानकारी मिलती है। सामाजिक और भौगोलिक परिस्थिति के ज्ञान के लिए ये प्रशस्तियाँ बड़ी उपयोगी हैं।

उदाहरण के लिए एक प्रशस्ति का परिचय यहाँ दिया जाता है।

सण्डेर ग्राम के रहनेवाले परव्रत और कान्ह नामक दो भाइयों ने सं० १५७१ में सैकडों ग्रन्थ अपने खर्च से लिखाकर एक बड़ा ज्ञानभण्डार स्थापित किया था। उनके इस कार्य को बतलानेवाली ३३ पद्यों की एक प्रशस्ति उनके द्वारा लिखाई गई प्रत्येक पुस्तक के अन्त में दी गई है। पूना, भावनगर, पाटन और पालीताणा के जैन भण्डारों की हस्तप्रतियों में यह मिलती है। इस प्रशस्ति का परिचय यहाँ दिया जाता है।

पूर्वकाल मे संडेर ग्राम में पोरवाड जाति का आभू नामक सेठ था। उसकी चौथी पीढ़ी में चण्डसिह नामक पुरुष हुआ जिसके ७ प्रतापी पुत्र थे। इन पुत्रों में सबसे बड़ा पेथड था। पेथड का उस स्थान के जागीरदार से किसी कारण झगड़ा हुआ और इस कारण उसने वह स्थान छोड़ दिया और बीजा नामक क्षत्रिय वीर की सहायता से उसने एक बीजापुर नामक नया नगर बसाया। उस ग्राम में रहने आनेवाले लोगों से उसने कुछ चन्दा इकट्ठा कर एक जैनमन्दिर बनवाया और वहाँ पीतल की महावीर जिन की बड़ी विशाल मूर्ति स्थापित की। पेथड ने आबू पर वस्तुपाल-तेजपाल के मन्दिरों का भी जीर्णोद्धार कराया। कर्णदेव बघेला के राज्य मे स० १३६० में अपने ६ भाइयों के साथ उसने शत्रुंजय, गिरनार आदि की यात्रा के लिए एक संघ निकाला। इसके बाद उसने दुबारा ६ बार इन तीर्थों की सघ के साथ यात्रा की। स० १३७७ मे गुजरात में बड़ा दुष्काल पड़ा। उस समय उसने लाखों दीनजनों को अन्नदान करके प्राण बचाये। हजारों स्वर्ण मुहर खर्चकर उसने चार ज्ञानभण्डार भी स्थापित किये। इस पेथड से ४थी पीढ़ी मे मंडलिक नामक व्यक्ति ने अनेक मन्दिर, धर्मशाला आदि धर्मस्थान बनवाये। स० १४६८ मे दुष्काल पड़ा तो उसने लोगों को खूब अन्न देकर सुखी किया। स० १४७७ मे बड़ा संघ निकालकर शत्रुंजय आदि तीर्थों की स्थापना की। उसका पुत्र ठाइआ और उसका पुत्र विजिता हुआ। उसके तीन पुत्र परबत, डूगर और नरबद। परबत और डूगर दोनों भाइयों ने मिलकर स० १५५९ मे एक विद्वान् को उपाध्याय पदवी देने में बड़ा महोत्सव किया था। सं० १५६० में जीरावला और आबू आदि स्थानों की यात्रा की थी। गघार बन्दरगाह में जाकर वहाँ के उपाश्रयों के लिए कल्पसूत्र की

लिखित प्रतियाँ भेंट की थीं। डूगर ने अपने भाई परबत के साथ मिलकर १५९१ मे सडेर में एक ज्ञानभण्डार बनाया। डूंगर का पुत्र कान्हा हुआ।

इस तरह इस प्रशस्ति मे एक धनाढ्य कुटुम्ब के ३०० वर्ष तक का सक्षिप्त इतिहास दिया गया है। स० १३७७ मे और १४६८ में गुजरात में बड़ा दुष्काल पड़ा था। इस बात का पता इस प्रशस्ति से लगता है। स० १३६० मे कर्णदेव का राज्यशासन बहुत दूर तक था, इस बात का पता भी इस प्रशस्ति से लगता है। पेथड सेठ द्वारा निकाले गये संघ का वर्णन तत्कालीन रचना पेथड-रास से मालूम होता है और इससे दो वर्ष बाद लिखी प्रशस्ति के वर्णनों की पुष्टि होती है।

इस प्रकार की अन्य प्रशस्तियों से बहुत-सी ऐतिहासिक बातें जानी जा सकती हैं।

इन पुस्तकप्रशस्तियों से श्रीमाल, पोरवाड, ओसवाल, डीसावाल, पल्लीवाल, मोढ, वायडा, धाकड, हूबड, नागर आदि गुजरात, मध्य भारत की प्रधान-प्रधान वैश्य जातियों एवं कुटुम्बों का प्रामाणिक परिचय भी मिल जाता है।

पुस्तकप्रशस्ति का एक प्रकार लिपिकारप्रशस्ति भी बडे महत्त्व की है। पुराने समय में ग्रन्थ ताडपत्र पर लिखा जाता था। ताड़पत्र को वृक्ष से लाकर बहुत श्रम और समय से तैयार किया जाता था। उसकी स्याही बनाने की प्रक्रिया भिन्न होती थी। लिखने और नकल करनेवालों का एक वर्ग होता था। इसमें अनेक विद्वान्, पण्डित और राज्याधिकारी भी होते थे। कायस्थ, नागर और कहीं जैन लेखक भी काम करते थे। पाटन आदि के भण्डारों में ताड़पत्र की पुस्तकें हैं। उनमें से कई मन्त्री या मन्त्री-पुत्र के हाथ की लिखी हैं तो कई दण्डनायक और आक्षपटलिक के हाथ की लिखी। अधिकाश जैन यति लेखन-कला मे प्रवीण थे और अपने उपयोग के लिए बहुत पुस्तकें लिखते थे। बडे-बडे आचार्य नियमित लेखन कार्य चालू रखते थे। लिपिकार अपने हाथ से लिखे ग्रन्थों के अन्त में लिखने का समय, स्थान, अपना नाम आदि का उल्लेख पाँच-दस पक्तियों में कर देते थे। इन लेखों को पुष्पिकालेख भी कहते हैं। इन पुष्पिकालेखों मे अनेक राजा, राजस्थान, समय, पदवी, अमात्य आदि प्रधान राज्याधिकारियों के विषय मे तथा दूसरी ऐतिहासिक बातों का उल्लेख मिलता है।

यहाँ इतिहास निर्माण में पुष्पिकालेखों के प्रयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के नाम के साथ प्रबन्धों तथा लेखों में सिद्ध-चक्रवर्ती, त्रिभुवनगंड, अवन्तीनाथ आदि विरुद लगे मिलते हैं। ये विशेषण क्यों लगे और इनका क्रम क्या है इसकी विगत ग्रन्थों मे मिलती नहीं। शिला-लेख और ताम्रपत्र भी इसे बताने में असमर्थ हैं। परन्तु इनका प्रामाणिक आधार इन पुष्पिका-लेखों मे मिलता है।

स० ११५७ में लिखी निशीथचूर्णि पुस्तक[1] में लिपिकार ने लिपिबद्ध करने का समय निर्देश करते हुए 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' ऐसा सामान्य उल्लेख किया है। इतिहास से हम जानते हैं कि उस समय जयसिंह नाबालिग था और उसका राज्यकार्य उसकी माता मीनलदेवी चलाती थी। उस समय उसके पराक्रम का प्रारम्भ न हुआ था। सं० ११६४ मे लिखी 'जीवसमासवृत्ति'[2] की पुष्पिका मे उक्त नरेश को 'समस्तराजावली विराजित महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जयसिंह देव' विरुदों से युक्त लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय वह राजतंत्र को स्वतन्त्रतापूर्वक चला रहा था। सं० ११६६ में लिखी 'आवश्यकसूत्र'[3] की पुष्पिका मे उस नरेश के महाराजाधिराज के साथ 'त्रैलोक्यगण्ड' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। यह उस राजा के 'बर्बर' नामक नृप को जीतने के पराक्रम का सूचक है। सवत् ११७९ में लिखी 'पञ्चवास्तुक'[4] ग्रन्थ की पुष्पिका से मालूम होता है कि उसका महामात्य शान्तुक था और उसके बाद की उसी वर्ष की 'उत्तराध्ययनसूत्र'[5] की पुष्पिका में जयसिंह का विरुद सिद्धचक्रवर्ती दिया है और महामात्य का नाम आशुक दिया गया है। लगता है उस समय शान्तुक ने अवकाश ग्रहण कर लिया था।

इसी तरह गुजरात के अन्य नृपों के इतिहास-निर्माण में पुष्पिकालेखों का प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है।

---

१. जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक १८), पृ० ९९.
२. वही, पृ० १००.
३. वही.
४. वही, पृ० ६५.
५. वही, पृ० १०१; हमने अपने ग्रन्थ 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नोर्दन इण्डिया' में इस प्रकार की अन्य पुष्पिकाओं का उपयोग कर इतिहास निर्माण किया है।

पट्टावली और गुर्वावलि :

जिस प्रकार ब्राह्मणों और उपनिषदों के समय मे अध्येता लोग ब्रह्मा से लेकर 'अस्माभिरधीतम्' तक के विद्यावंश का स्मरण किया करते थे उसी प्रकार जैन लोग भी श्रमण भग० महावीर से प्रारभ करके उनके गण और गणधरों की परम्परा का स्मरण करते हुए कालान्तर के आचार्यों की गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा अपने विद्यावंश का पूरा ब्यौरा रखते थे। इससे जैन सघ एक जीवित सस्था बना रहा। जिस तरह शासक राजाओं की वंशावली चलती थी उसी तरह धर्मशासक आचार्यों की थी।[1]

जैन सघ के सगठन की मूल रेखा कल्पसूत्र में मिलती है। इसमे प्राप्त होने वाली पट्टावली[2] व स्थविरावली का समर्थन मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त पहली-दूसरी शती के प्रतिमा-लेखों से होता है। वहाँ का शक्तिशाली सघ समस्त उत्तरापथ में प्रख्यात था। कालान्तर में सघ का एक प्रान्तीय सगठन धीरे-धीरे बढ़ता गया।

आगमों में दूसरी पट्टावली नन्दिसूत्रगत स्थविरावली है जिसकी रचना आचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने की थी। यह ४३ गाथाओं की है। इसमें अनुयोगधरों की अर्थात् सुधर्मा से देवर्धिगणि तक की पट्टावली दी गई है।

महावीर के बाद जैन सघ में सम्प्रदाय-भेद के सम्बन्ध में कारणों का सकलन तो विभिन्न ग्रन्थों में किया गया है पर इस सम्बन्ध में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के दिग०-श्वेता० सम्प्रदायभेद के अर्धऐतिहासिक उपाख्यान हमें हरिभद्र और शान्तिसूरि की टीकाओं मे मिलते हैं, इनमे बोटिक मत की उत्पत्ति दी गई है और इसी तरह हरिषेण के बृहत्कथाकोश, देवसेन के दर्शनसार (वि० स० ९९९), द्वितीय देवसेन के भावसग्रह तथा रत्ननन्दि के भद्रबाहुचरित में श्वेताम्बर सघ की उत्पत्ति की कथा दी गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०८-१०९ में गुर्वावलियों की तथा पृ० २२२ में पट्टावलियों की सूची दी गई है।

२. पट्टावली पट्टधरावली का संक्षिप्त रूप है। पट्ट का अर्थ आसन या सम्मान का स्थान है। राजाओं के आसन को सिंहासन कहते हैं और गुरुओं के आसन को पट्ट। इस पट्ट पर आसीन गुरुओं को पट्टधर और उनकी परम्परा को पट्टावली कहते हैं।

दिग० सम्प्रदाय की पट्टावलियों का प्राचीन रूप कुछ प्राचीन शिलालेखों में तथा तिलोयपण्णत्ति, षट्खण्डागम के वेदनाखण्ड की धवला टीका, कसायपाहुड की जयधवला टीका, जिनसेनकृत आदिपुराण, द्वि० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण एवं इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार (लग० १६वीं शती) मे मिलता है।[1] इन सभी में दी हुई आचार्यपरम्पराएँ केवली, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर, एकादशागधर आदि आचार्यों तक की हैं।

मध्यकाल मे पश्चिम और दक्षिण भारत मे जैनाचार्यों के विविध सघ, गण, गच्छ उदय हुए और उनका प्राचीनकाल की पट्टधरपरम्परा से सम्बन्ध बतलाने के लिए अनेक प्रकार की श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय की पट्टावलियाँ और गुर्वावलियाँ रची गईं।[2] वर्तमान काल में इन पट्टावलियों के अच्छे खासे सग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें श्वेताम्बर पट्टावलियों के उल्लेखनीय सग्रह हैं—मुनि दर्शन-विजय द्वारा सम्पादित पट्टावलीसमुच्चय २ भाग; मुनि जिनविजय जी द्वारा सपादित विविधगच्छीय पट्टावलीसंग्रह एव खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि; पं० कल्याण-विजयगणिकृत पट्टावली पराग सग्रह और मुनि हस्तिमल्ल द्वारा सकलित पट्टावली प्रबध सग्रह आदि।[3] दिगम्बर सम्प्रदाय की अनेक पट्टावलियाँ यथा सेनगण पट्टावली, नन्दिसघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ पट्टावली, मूल (नन्दि) सघ की दूसरी पट्टावली, शुभचन्द्राचार्य की पट्टावली एव काष्ठासघ गुर्वावलि आदि जैन

---

१. डा० विद्याधर जोहरापुरकर सम्पादित 'भट्टारक सम्प्रदाय' के प्रारम्भ मे इनमे से कुछ का सक्षिप्त विवरण दिया गया है।

२. पट्टावलियाँ संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती एवं कन्नड भाषाओं में लिखी हुई मिलती हैं।

३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ११, पृ० २४५-२५६ में Extracts from the Historical Records of the Jains के अन्तर्गत खरतरगच्छ पट्टावली (सं० १८७६) में ७० श्वेता० पट्टधरों का तथा तपागच्छ पट्टावली (सं० १७३२) में ६१ पट्टधरों का परिचय दिया गया है, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग २३, पृ० १६९-१८२ में Pattavalis of the Anchala Gaccha and other Gacchas में ७ पट्टावलियाँ और इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग १९, पृ० २३३-२४२ मे Pattavali of Upakesha Gaccha दी गई है।

सिद्धान्त भास्कर के प्रथम भाग में तथा जैनहितैषी, वर्ष ६, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग २०-२१[1] तथा भट्टारक सम्प्रदाय में मिलती हैं।

उक्त स्वतन्त्र रचनाओं के अतिरिक्त शिलालेखों और ताम्रपत्रों के प्रारम्भ या अन्त में बहुधा जैनाचार्यों तथा धर्मगुरुओं की विस्तीर्ण पट्टावलियाँ दी गई हैं : जैसे—जैनशिलालेखसग्रह (डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित), भाग १ के श्रवणबेलगोला से उपलब्ध लेख सख्या १ और १०५ तथा ४२, ४३, ४७ और ५० में दिग० सम्प्रदाय के आचार्यों की, शत्रुंजयतीर्थ के आदिनाथ मन्दिर के शिलालेख (वि० सं० १६५०) में तपागच्छ की पट्टावली और अणहिलपाटन के एक लेख (एपि० इण्डिका, भा० १, पृ० ३१९-३२४) मे खरतरगच्छ के उद्योतनसूरि से लेकर जिनसिंहसूरि तक के ४५ आचार्यों की पट्टावलियाँ दी गई हैं।

प्रत्येक सघ-गण और गच्छ की पट्टावली में भग० महावीर से लेकर आज तक जैन पट्टधर आचार्यों की श्रृखलाबद्ध परम्परा सुरक्षित है और गुरु-शिष्य परम्परा के रूप मे उल्लेख करते हुए जैन सघ के आचार्यों के यशस्वी कार्यों का विवरण गुम्फित किया गया है। यहाँ हम कुछ पट्टावलियों या गुर्वावलियों का परिचय देते हैं।

विचारश्रेणी या स्थविरावली :

इसमें[2] पट्टधर आचार्यों की परम्परा के साथ कुछ प्राचोन नरेशों की परम्परागत तिथियों सहित सूची दी गई है जो इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। यह 'जं रयणिं' से प्रारम्भ होनेवाली कुछ प्राकृत गाथाओं की वृत्ति के रूप में सस्कृत गद्य में लिखी गई रचना है। इसमें भग० महावीर और विक्रमादित्य के बीच ४७० वर्ष का अन्तर बतलाया गया है। इसमें प्रसिद्ध

---

१. भाग २०, पृ० ३४१ में Two Pattavalıs of the Saraswatı Gaccha of Dıgambara Jaıns और भाग २१, पृ० ५७ में Three further Pattavalıs of Dıgambaras

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५२; जैन साहित्य संशोधक, खण्ड २, अंक ३-४, सन् १९२५; इसका संक्षिप्त विवरण जर्नल ऑफ दि बोम्बे ब्रांच ऑफ रोयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ९, पृ० १४७ में दिया गया है। लेखक ने अपने ग्रन्थ Polıtıcal Hıstory of Northern Indıa from Jain Sources में उसका अच्छा उपयोग किया है।

आचार्य कालक तथा जिनभद्र एवं हरिभद्र का भी वर्णन किया गया है। इससे गुजरात के अनेक राजाओं के राज्यकाल की सूचना मिलती है।

इसकी रचना प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रबन्धचिन्तामणि के रचयिता मेरुतुंग ने की है।

गणधरसार्धशतक :

इसमे १५० गाथाएँ हैं जिनमें खरतरगच्छ के आचार्यों का जीवनवृत्त वर्णित है।[1] इसकी रचना जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० १२११ से पूर्व) ने की थी। इसमें लिखा है कि वर्धमानसूरि के शिष्य और पट्टधर जिनेश्वरसूरि को खरतर की उपाधि दी गई थी इसलिए गच्छ का नाम खरतर हो गया।

इस पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने स० १२९५ मे ६००० ग्रन्थाग्र-प्रमाण वृत्ति लिखी है। मूल और वृत्ति दोनों को पट्टावली भी कहा जाता है। इन दोनों पर सर्वराजगणि की टीका और पद्ममन्दिरगणिकृत (स० १६४६) वृत्ति भी मिलती है।

खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावलि :

यह ४००० श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है।[2] इसमे वि० ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होनेवाले आचार्य वर्धमानसूरि से लेकर १४वीं शताब्दी के अन्त में होनेवाले जिनपद्मसूरि तक के खरतरगच्छ के मुख्य आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णित है। *गुर्वावलि अर्थात् गुरुपरम्परा* का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करनेवाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। इसमे प्रत्येक आचार्य का जीवनचरित्र बड़े विस्तार से दिया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस-किस प्रदेश में विहार किया, कहाँ-कहाँ चातुर्मास किये, किस-किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-शिष्याएँ दीक्षित किये, कहाँ पर किस विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किया, किस राजा की सभा में कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया इत्यादि अनेक आवश्यक बातों का

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० १०३ और २३२ (V-VI); हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१६; गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, भाग २७ के परिशिष्ट में भी प्रकाशित.

२ जिनरत्नकोश, पृ० १०१; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४२, बम्बई, वि० सं० २०१३.

इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिंध, बागड, पजाब और बिहार आदि अनेक देशों, अनेक गाँवो में रहनेवाले सैकड़ों धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओं के कुटुम्बों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख मिलता है, साथ ही उन्होंने कहाँ पर कैसे पूजा-प्रतिष्ठा एव सघोत्सव आदि धर्मकार्य किये, इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढग की एक अनोखी कृति है। इसमे राजस्थान के अनेक राजवशों से सम्बद्ध इतिहास-सामग्री, राजकीय हलचलें एव उपद्रव तथा भौगोलिक बातें दी गई हैं।[1]

रचयिता—प्रस्तुत गुर्वावलि में स० १३०५ आषाढ़ शु० १० तक का वृत्तान्त तो श्री जिनपतिसूरि के विद्वान् शिष्य श्री जिनपालोपाध्याय ने दिल्ली निवासी सेठ साहुली के पुत्र हेमचन्द्र की अभ्यर्थना पर सकलित किया था। इसके पश्चात् का वर्णन भी पट्टधर आचार्यों के साथ मे रहनेवाले विद्वान् मुनियों द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है। इसकी एक प्रति ८६ पत्रों की है और १५-१६वीं शती में लिखी हुई बीकानेर के क्षमाकल्याण ज्ञानभण्डार में विद्यमान है। इसमें स० १३९३ तक का इतिहास वर्णित है।[2]

वृद्धाचार्य-प्रबंधावलि :

गुर्वावलि के रूप मे यह कृति प्राकृत भाषा मे ग्रथित है।[3] इसमें वर्धमानसूरि से लेकर जिनप्रभसूरि तक के १० आचार्यों का वर्णन दिया गया है। जिनप्रभसूरि विविधतीर्थकल्प आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता हैं। वे अपने समय में बहुत प्रभावशाली एव प्रतिभासम्पन्न आचार्य हुए थे। इनका सम्मान दिल्ली का बादशाह मुहम्मद तुगलक करता था, यह कई पट्टावलियों एवं प्रबन्धात्मक कृतियों

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित उक्त ग्रन्थ की भूमिका के पृ० ६-१२ में इस गुर्वावलि के ऐतिहासिक महत्त्व को बतलानेवाला श्री अगरचन्द नाहटा का लेख प्रकाशित है।

२. इसके पश्चात् इतिहास जानने के लिए हमें कोई भी इस कोटि की गुर्वावलि उपलब्ध नहीं है परन्तु शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने की प्रथा पीछे बराबर रही है। सं० १८६० की एक सूची के अनुसार जैसलमेर के सुप्रसिद्ध जैन ज्ञानभण्डार में उस समय ३१२ पत्रों की एक गुर्वावलि विद्यमान थी।

३. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४२, पृ० ८९-९६.

से मालूम होता है। पर जिनप्रभसूरि का नाम मात्र भी उपरिनिर्दिष्ट खरतरगच्छ-गुर्वावलि में नहीं दिया गया। इससे ज्ञात होता है कि उक्त गुर्वावलि के संकलन-कर्ता का मुख्य उद्देश्य अपनी गुरुपरम्परा मात्र का महत्त्व अंकित करना था और अन्य गच्छीय या अन्य शाखीय आचार्यों के बारे में उपेक्षा भाव रखना।

इस प्रबन्धावलि का प्रणयन जिनप्रभसूरि की शिष्य-परम्परा के किसी शिष्य ने किया है।

खरतरगच्छ-पट्टावली-संग्रह :

यह चार पट्टावलियों का संग्रह[1] है जिसे मुनि जिनविजय जी ने संग्रह एवं सम्पादित कर प्रकाशित कराया था। इनमें प्रथम एक प्रशस्ति के रूप में है। इसमें कुल संस्कृत पद्य ११० हैं और यह आचार्य जिनहंससूरि के समय में रची गई है पर कर्ता का नाम नहीं दिया गया। जिनहंस का समय वि० १५८२ है और उसी वर्ष इसका निर्माण हुआ है। इसमें खरतरगच्छ के आचार्यों का समय व्यवस्थित दिया गया है।

दूसरी पट्टावली संस्कृत गद्य में है। इसकी रचना सं० १६७४ में की गई थी। इसका तिथिक्रम अव्यवस्थित है।

तीसरी पट्टावली भी अव्यवस्थित है। इसकी पट्टपरम्परा तथा तिथिक्रम सब अव्यवस्थित ही है।

चौथी पट्टावली सं० १८३० में अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याण ने रची थी।[2] यह प्रथम तीन पट्टावलियों से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

खरतरगच्छ की अनेक हस्तलिखित पट्टावलियों का परिचय पं० कल्याण-विजयगणि सम्पादित पट्टावलिपरागसंग्रह[3] में तथा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ[4] में २३ पट्टावलियों और गुर्वावलियों की सूची दी गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०१; पूरणचन्द्रजी नाहर द्वारा कलकत्ता से सन् १९३२ में प्रकाशित

२. जिनरत्नकोश, पृ० १०१.

३. क० वि० शास्त्रसंग्रह समिति, जालौर.

४. द्वितीय खण्ड, पृ० ३१-३२.

गुर्वावलि :

मुनिसुन्दरसूरि ने सं० १४६६ में एक विज्ञप्तिग्रन्थ अपने गुरु देवसुन्दरसूरि की सेवा में समर्पित किया था, उसका नाम त्रिदशतरंगिणी[1] था। इस विज्ञप्ति-पत्र का संस्कृत साहित्य और इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व है। इस जैसा विशाल और प्रौढ़ पत्र किसी ने नहीं लिखा। यह १०८ हाथ लम्बा था और इसमें एक से एक विचित्र और अनुपम सैकड़ों चित्र थे तथा हजारों काव्य (पद्य) दिखाई पड़ते थे। इसमें ३ स्तोत्र और ६१ तरंग थे।[2] वर्तमान में यह समग्र नहीं मिलता। केवल तीसरे स्तोत्र का गुर्वावलि नाम का एक विभाग और प्रासादादि चित्रबंध अनेक स्तोत्र यहाँ-वहाँ फैले मिलते हैं।

इस गुर्वावलि में ४९६ विविध छन्दों के पद्य हैं। इसमें श्रमण भग० महावीर से लेकर लेखक पर्यन्त तपागच्छ के आचार्यों का संक्षिप्त एवं विश्वस्त इतिहास दिया गया है।

गुर्वावलि या तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र :

इसे उक्त दो नामों के अतिरिक्त केवल पट्टावली नाम से भी कहते हैं।[3] यह २१ प्राकृत पद्यों की गुर्वावलि है जो प्राचीन पट्टावलियों के आधार पर बड़ी सावधानी से बनाई गई है। इसमें भग० महावीर से लेकर तपागच्छ के आचार्य हीरविजयजी और उनके शिष्य विजयसेनसूरि तक ५९ आचार्यों की पट्टधर परम्परा दी गई है। इसके रचयिता धर्मसागरगणि हैं। इस पर एक स्वोपज्ञ वृत्ति भी है जिसके अन्त में लिखा है कि यह पट्टावली श्री विजयहीरसूरीश्वर के आदेश से उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि, उपाध्याय कल्याणविजयगणि, सोमविजय-गणि, पं० लब्धिसागरगणि प्रमुख गीतार्थों ने एकत्र होकर सं० १६४८ के चैत्र वदि ६ शुक्रवार को अहमदाबाद नगर में श्री मुनिसुन्दरकृत गुर्वावलि, जीर्ण पट्टा-वली, दुष्षमासंघ स्तोत्रयंत्रक आदि के आधार से संशोधित की है।

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० १०९; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, सं० १९६१.

२. श्रीमहापर्वाधिराजश्रीपर्युषणापर्वविज्ञप्तित्रिदशतरङ्गिण्यां तृतीये श्रीगुरुवर्णन-स्रोतसि गुर्वावलिनाम्नि महाह्रदेऽनभिव्यक्तगणना एकषष्टिस्तरंगाः।

३. जिनरत्नकोश, पृ० १०८; पट्टावलीसमुच्चय (वीरमगाम, १९३३), भा० १, पृ० ४१-७७; पट्टावलीपरागसंग्रह (जालौर, १९६६), पृ० १३३-१५५.

प्रकाश में आई हैं। पहली संस्कृत गद्य मे है।[1] इसमें भट्टारक पद्मनन्दि, सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति, शुभचन्द्र (पाण्डव पुराणादि अनेकों ग्रन्थों के रचयिता), सुमतिकीर्ति, गुणकीर्ति एवं वादिभूषण तक की परम्परा दी गई है तथा उन भट्टारकों की महिमा, ग्रन्थकर्तृत्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। वादिभूषण का समय सं० १६५२ के आस-पास है। उक्त पट्टावली के अनेक भट्टारक अच्छे ग्रन्थकर्ता थे।

ईडर शाखा की दूसरी[2] पट्टावली (गुर्वावलि) संस्कृत छन्दों में है जिनकी संख्या ६३ है। इसमें भट्टारक सकलकीर्ति से लेकर चन्द्रकीर्ति (सं० १८३२) तक की परम्परा दी गई है। यह गुर्वावलि बड़े महत्त्व की है। इसमे गुप्तिगुप्त से लेकर अभयकीर्ति तक लगभग १०० आचार्यों का नाम दिया है जो वनवासी थे और जिन्हें बलात्कारगण की प्राचीन परम्परा से जोड़ा गया है (१-२१ पद्य तक)। तत्पश्चात् उत्तर भारत के भट्टारकपीठों की परम्परा वसन्तकीर्ति से प्रारम्भ की गई है (पद्य २१)। वसन्तकीर्ति के विषय में कहा जाता है कि ये ही दिग० मुनियों के वस्त्रधारण के प्रवर्तक थे।[3] इनकी जाति बघेरवाल और निवासस्थान अजमेर था। ये सं० १२६४ की माघ शु० ५ को पदारूढ़ हुए थे तथा १ वर्ष ४ मास पट्ट पर थे। इनका उल्लेख बिजौलिया के शिलालेख मे भी हुआ है।

वसन्तकीर्ति के बाद क्रमशः विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मचन्द्र, रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र (७४ वर्ष तक पट्टाधीश), पद्मनन्दि हुए।

भट्टा० पद्मनन्दि के तीन प्रमुख शिष्यों द्वारा तीन भट्टारकपरम्पराएँ प्रारम्भ हुईं जिनका आगे अनेक प्रशाखाओं में विस्तार हुआ। इनमें से ईडरशाखा के सकलकीर्ति और उनकी भट्टपरम्परा का वर्णन प्रस्तुत गुर्वावलि के पद्य ३२ से ६२ तक मे विस्तार से दिया गया है। शुभचन्द्र से चलनेवाली दिल्ली-जयपुर-शाखा का वर्णन दूसरी गुर्वावलि में दिया गया है तथा देवेन्द्रकीर्ति से चलनेवाली परम्परा सूरतशाखा की अन्य पट्टावली में द्रष्टव्य है।

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष १, किरण ४, पृ० ४६ प्रभृति, विशेष विवेचन के लिए देखें—भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५३-१५६.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष १, किरण ४, पृ० ५१ प्रभृति; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५३–१५८.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४९०.

बलात्कारगण–दिल्ली जयपुर-शाखा की एक पट्टावली[1] ४२ पद्यों की मिलती है। यह पट्टावली ईडरशाखा की अन्य ६३ पद्यों की गुर्वावलि से कुछ हेर फेर कर बनाई गई है। इसके २६, २७ और २८वाँ पद्य उक्त गुर्वावलि के क्रमशः २७, २९ और ३०वें पद्य हैं। पद्य २९वें में उक्त शाखा के शुभचन्द्र (सं० १४५०–१५०७) भट्टारक का वर्णन है। इसके बाद उक्त शाखा के जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति एवं नरेन्द्रकीर्ति का वर्णन कर यह पट्टावली समाप्त होती है। इनमें भट्टा० जिनचन्द्र अति प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ सबसे अधिक हैं। प्रतिष्ठाकर्ता सेठ जीवराज पापड़ीवाल के प्रयत्नों से ये हजारों मूर्तियाँ भारत के कोने-कोने में पहुँची हैं। इनकी प्रतिष्ठा सं० १५४८ अक्षयतृतीया को हुई थी।

बलात्कारगण–भानुपुर-शाखा तथा सूरत-शाखा की पट्टावलियाँ भी संस्कृत भाषा में रचित मिली हैं। पहली[2] संस्कृत के ५५-५६ पद्यों में है। इस शाखा का प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्ति के प्रशिष्य भट्टा० ज्ञानकीर्ति से होता है। प्रस्तुत पट्टावली के ३४ पद्यों तक प्राचीन परम्परा का वर्णन कर इस शाखा के पट्टधरों का वर्णन पद्य ३५ से किया है। इसमें ज्ञानकीर्ति (सं० १५३४) से लेकर भट्टारक रत्नचन्द्र (सं० १७७४–८६) तक की परम्परा दी गई है।

सूरतशाखा की पट्टावली[3] संस्कृत गद्य में है और इसमें भी पूर्वाचार्यों से सम्बन्ध जोड़ते हुए भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति (सं० १४९३) से चलनेवाली उक्त शाखा का विस्तार से वर्णन है जिसे उक्त शाखा के भट्टा० विद्यानन्दि (सं० १८०५-१८२२) के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति (सं० १८४२) तक लाकर समाप्त किया गया है। इसे नन्दिसंघ-विरुदावली भी कहा गया है। इसकी रचना देवेन्द्रकीर्ति (द्वि०) के शिष्य सुमतिकीर्ति ने की है।

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, किरण ४, पृ० ८१; इस पट्टावली के प्रमाण में कतिपय शिलालेख दिये गये हैं। विशेष विवेचन के लिए देखें— भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ९७–११३.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, पृ० १०८-११९; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५९-१६८.

३. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, पृ० ४६–५३; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १९९-२०१.

बलात्कारगण की एक प्राकृत भाषा मे भी पट्टावली मिलती है जिसे नन्दि-सघ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ की पट्टावली कहा जाता है।

काष्ठासंघ-माथुरगच्छ-पट्टावली :

यह[1] ५३ सस्कृत पद्यों की पट्टावली है जिसके २१ पद्यों में काष्ठासघ के प्राचीन पट्टधरों का नामांकन कर मध्यकालीन माथुरगच्छ की माधवसेन (१३वीं शती का पूर्वार्ध) से प्रारम्भ होनेवाली परम्परा का पद्य सख्या २२ से विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है जो अन्तिम पट्टधर मुनीन्द्रकीर्ति (स० १९५२) तक जाकर समाप्त हुआ है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। यह एक अच्छी काव्यात्मक कृति है।

काष्ठासंघ-लाडबागड-पुन्नाटगच्छ-पट्टावली :

यह सस्कृत गद्यात्मक कृति है।[2] इसमे उल्लिखित आचार्यों मे महेन्द्रसेन (१२ शता० का उत्तरार्ध) पहले ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इन्होंने त्रिषष्टिपुरुषचरित्र लिखा था और मेवाड़ मे क्षेत्रपाल को उपदेश देकर चमत्कार दर्शाया था। इनके पहले अगज्ञानी आचार्यों के बाद क्रम से विनयधर से लेकर केशवसेन तक १६ आचार्यों का उल्लेख है तथा महेन्द्रसेन की परम्परा के त्रिभुवनकीर्ति (१६वीं शती) तक का वर्णन है।

तीर्थमालाएँ :

भारतीय अन्य धर्मों की भाति जैनों के भी अपने तीर्थ हैं जो उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। उनके दर्शन वन्दन के लिए प्राचीन समय से ही जैन सघपति और मुनिगण समारोहपूर्वक लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे और उनकी यात्राओं का विवरण तथा तीर्थों का परिचय लिख डालते थे।[3] इन यात्राओं और तीर्थों का परिचय बड़े-बड़े पुराण एव चरितात्मक

---

१ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, पृ० १०३-१०७; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २१३-२४७.

२. श्री मा० स० महाजन, नागपुर के संग्रह में; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २४८-२६२.

३. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ में 'जैन साहित्य का भौगोलिक महत्त्व' के लेखक श्री अगरचन्द नाहटा ने तीर्थमाला-विषयक प्रकाशित सामग्री का परिचय दिया है।

ग्रन्थों में भी विस्तार से दिया गया है। इस बात का उल्लेख हम विविध प्रसंगों में कर आये हैं। इन पर स्वतन्त्र रचनाएँ भी लिखी गई हैं। इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रन्थ धनेश्वरसूरि का 'शत्रुंजयमाहात्म्य' (१३ वीं शती का पूर्वार्ध) मिला है। इसका परिचय तीर्थ माहात्म्य-विषयक कथाओं में दे आये हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय के लेखकों ने भी १३वीं शती में कुछ तीर्थमालाओं का प्रणयन किया है। उनमें प्रथम उल्लेखनीय छोटी छोटी दो भक्तियाँ हैं : पहली प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड और दूसरी संस्कृत निर्वाणभक्ति।[1]

प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड में चौबीस तीर्थंकर एवं अन्य ऋषि-मुनियों के निर्वाणस्थानों का निर्देश कर वहाँ से मुक्ति पानेवालों को नमस्कार किया गया है। निर्वाणकाण्ड में केवल १९ गाथाएँ मिलती हैं। इसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें गाथाओं की संख्या एक सी नहीं है। कहीं-कहीं गड़बड़ भी है। निर्वाणकाण्ड के अन्त में कहीं-कहीं आठ गाथाएँ और भी लिखी मिलती हैं 'अइसयखेत्तकण्ड' (अतिशयक्षेत्रकाण्ड) नाम से। परन्तु लगता है कि वह जुदा ही है। भाषाकार प० भगवतीदास ने इन आठ गाथाओं का अनुवाद ही नहीं किया है।

दूसरी संस्कृत निर्वाणभक्ति में ३२ पद्य हैं। इसके पहले २० पद्यों में केवल महावीर के पाँचों कल्याणों का वर्णन है और फिर आगे के १२ पद्यों में कैलास, चम्पापुर, गिरनार, पावापुर, सम्मेदशिखर, शत्रुंजय का उल्लेख मात्र करके अन्य निर्वाणस्थानों के नाम मात्र दे दिये हैं। पहले के २० पद्यों को पढ़कर तो मालूम होता है कि वे एक स्वतन्त्र स्तोत्र के पद्य हैं जिनके अन्त में उसके पढ़नेवालों को नरलोक-देवलोक के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त होना बतलाया है।

दोनों भक्तियाँ स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में पश्चिम भारत के कुछ ऐसे तीर्थों के नाम हैं जो संस्कृत निर्वाणभक्ति में नहीं हैं और उसमें वर्णित कुछ तीर्थों के नाम प्राकृत निर्वाणकाण्ड में नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है कि दोनों भक्तियाँ विभिन्न कालों की रचनाएँ हैं और सम्भव है कि इनके कर्ता एक-दूसरे की रचना से अपरिचित रहे हों।

प्राकृत निर्वाणकाण्ड में वर्णित कई तीर्थों से मोक्षगमन करनेवाले महापुरुषों का समर्थन या तो प्राचीन शास्त्रों से नहीं होता या विपरीत बैठता है। यथा—

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२२-४२३.

तारउर (तारापुर) से वरागादि का मोक्ष जाना लिखा है पर वरागचरित के अनुसार वे मुक्त नहीं हुए, सर्वार्थसिद्धि को गये है। गाथा ८ मे तुगीगिरि से राम, हनुमान् आदि का मोक्ष जाना लिखा है पर उत्तरपुराण के अनुसार ये सब सम्मेदशिखर से मोक्ष गये हैं।

प्रभाचन्द्र (१२वीं शती) के क्रियाकलाप मे सस्कृत निर्वाणभक्ति सगृहीत है, प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड का सग्रह नहीं है। प्रभाचन्द्र के कथनानुसार सस्कृत भक्तियॉ पादपूज्य (?) स्वामीकृत है। पर ये पादपूज्य या पूज्यपाद कौन हैं ? लिखा नहीं। अन्य स्रोतों से भी उक्त लेखक द्वारा रचित होने की पुष्टि नहीं होती। प० आशाधर (१३वीं शती) के क्रियाकलाप में प्रभाचन्द्र के क्रियाकलाप की अधिकाश भक्तियाँ सगृहीत हैं पर उन्होने उनके कर्ताओं के सम्बन्ध में कोई बात नहीं लिखी। आशाधर के क्रियाकलाप में प्राकृत निर्वाणभक्ति की केवल पॉच ही गाथाएँ दी गई हैं। शेप गाथाएँ उसमें छूटी हुई सी लगती हैं।

यद्यपि इन दोनों भक्तियों के रचे जाने का ठीक समय अब तक नहीं मालूम फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ये दोनों कवि आशाधर से पहले के अर्थात् लगभग ६-६½ सौ वर्ष पहले के निश्चित हैं।

१३वीं शती में विविध तीर्थों की परिचायिका एक अन्य कृति 'शासनचतुस्त्रिंशिका'[1] मिलती है जिसमें २६ तीर्थस्थानों और उनकी प्रभावशाली जैन प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है। इसमें कुल ३६ पद्य हैं जो अनुष्टुभ् मान से ८४ श्लोक जितने हैं। पहला पद्य अनुष्टुभ् है और अन्तिम प्रशस्तिपद्य मालिनी छन्द में है। शेष पद्य विषयवस्तु के प्रतिपादक शार्दूलविक्रीडित छन्द में हैं। सभी शार्दूलविक्रीडित छन्दों के अन्तिम चरण का द्वितीयार्ध 'दिग्वाससा शासनम्' से समाप्त होता है। इसके रचयिता अपने समय के प्रसिद्ध आचार्य मदनकीर्ति हैं जो दिग० विशालकीर्ति के शिष्य थे। राजशेखरसूरि ने अपने स० १४०५ में रचित प्रबन्धकोश मे इनके जीवन पर 'मदनकीर्तिप्रबन्ध' नामक एक प्रबन्ध लिखा है। मदनकीर्ति की उपाधि 'महाप्रामाणिक-चूड़ामणि' भी थी। इसकी रचना धारानगरी में की गई थी। लेखक कवि प० आशाधर के समकालीन थे। यह कृति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व की है। इसमें परमारनरेश

१. पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित एवं वीर सेवा मन्दिर, सरसावा से सन् १९४९ में प्रकाशित; चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४०३-४०५.

जैतुगिदेव के समय मालवा में हुए मुस्लिम आक्रमण का उल्लेख मिलता है (म्लेच्छैः प्रतापागते.)।

तीर्थमाला-सम्बन्धी अन्य रचनाओं में जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प, अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरि (सं० १४४४) कृत तीर्थमालाप्रकरण, धर्मघोष के शिष्य महेन्द्रसूरिकृत तित्थमालाथवण (तीर्थमालास्तवन) एवं धर्मघोषकृत तीर्थमालास्तवन का संक्षिप्त परिचय इस बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग में दिया गया है।

गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं में तीर्थयात्राओं के विवरण प्रस्तुत करनेवाले कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। विजयधर्मसूरि ने प्राचीनतीर्थमालासंग्रह प्रकाशित कराया है। वि० सं० १७४६ में शीलविजय द्वारा रचित तीर्थमाला और ब्र० ज्ञानसागरकृत तीर्थावली भी उल्लेखनीय है।

भारतीय भूगोल[1] के अनुसन्धान में इन तीर्थमालाओं से पुराणगत तीर्थ-माहात्म्यों की तरह बहुत सहायता मिल सकती है।

विज्ञप्तिपत्र :

वर्षाकाल में श्वेताम्बर जैन पर्यूषण पर्व के अन्तिम दिन सांवत्सरिक पर्व मनाते हैं, उस दिन परस्पर क्षमायाचना एवं क्षमादान किया जाता है। इस अवसर पर दूरवर्ती गुरुजनों को जो क्षमापत्र भेजे जाते थे, उन्हें खमापणा या विज्ञप्ति-पत्र कहते हैं। गुजरात में इसे टीपणा कहते हैं। श्वेता० सम्प्रदाय के एक वर्ग के आचार्य श्रीपूज्य कहलाते हैं। उन्होंने इस प्रकार के पत्रलेखन का विशेष विकास किया। पहले ये पत्र खमापणा के लिए लिखे जाते थे पर पीछे स्थानीय जैन संघ, जिसे धर्मप्रभावना के लिए किसी आचार्य या मुनि को अगले वर्ष चातुर्मास कराने की उत्कण्ठा होती थी, उन्हें आमन्त्रित करने के लिए प्रार्थनापूर्ण निमन्त्रणपत्र या विनन्तिपत्र के रूप में विज्ञप्ति-पत्र का उपयोग करने लगा। ऐसे विज्ञप्ति-पत्रों का उद्‌गमस्थान गुजरात काठियावाड़ था पर धीरे धीरे राजस्थान से बंगाल तक के क्षेत्र में इनका प्रसार हो गया।

पहले ये मोटे कागज पर लिखे जाते थे जो १० या १२ इञ्च चौड़ा होता था पर पीछे तो इतने लम्बे होने लगे कि उनमें से एक वि० सं० १४६६ का १०८ हाथ का मिला है। इसी तरह बीकानेर से सं० १८९६ का

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा का एतद्विषयक लेख देखें।

९७ फुट लम्बा और ११ इञ्च चौड़ा मिला है। इन लम्बे विज्ञप्ति-पत्रों में चित्रकारी को भरपूर स्थान दिया गया है। प्रेषण-स्थान का चित्रमय प्रदर्शन किया गया है। बीकानेर से प्राप्त उक्त पत्र के ५५ फुट में बीकानेर के मुख्य बाजार और दर्शनीय स्थानों का वास्तविक और कलापूर्ण चित्रण है। इन पत्रों मे जैन सघ के सदस्यों का परिचय, क्षेत्रीय भौगोलिक वर्णन एवं कभी-कभी इतिहासविषयक घटनाएँ भी आ गई हैं। आगरा जैन सघ की ओर से युगप्रधान विजयसेनसूरि के पास पाटन में भेजे गये एक विज्ञप्तिपत्र में मुगल सम्राट जहागीर द्वारा स० १६१० में आगरा जैन समाज को फरमान दिये जाने की घटना अकित है। उसमें जहागीर, शाहजादा खुर्रम तथा राजा रामदास के भी चित्र हैं। चित्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन है जो जहागीरी दरबार के कुशल चितेरों में से है। उसमें आगरे की तत्कालीन जनता का भी अकन है। इसी तरह मेड़ता से वीरमपुर भेजे गये ३२ फुट लम्बे विज्ञप्तिपत्र में १७ फुट में नाना प्रकार की चित्रकारी दी गई है।

ये विज्ञप्तिपत्र[1] कुछ तो सस्कृत में और अधिकांश सस्कृतमिश्रित स्थानीय भाषा मे लिखे मिलते हैं। ये गद्य और पद्य दोनों में मिलते हैं। सस्कृत में लिखे गये कई विज्ञप्तिपत्र प्रथम श्रेणी के आलकारिक काव्यो के नमूने हैं। इनमे कई खण्डकाव्य व दूतकाव्य के अच्छे उदाहरण हैं। जैन कवियों ने दूत-काव्य का उपयोग इस प्रकार के पत्रों के लिखने में भी किया है। इस प्रकार

---

१. अनेक विज्ञप्तिपत्रों का परिचय श्री अगरचन्द नाहटा ने दिया है। इस विषय में उनके निम्नांकित लेख पठनीय हैं :

१ पौने छः सौ वर्ष प्राचीन विज्ञप्तिपत्र, विकास, १. १; वीर, २५. १०-१२.
२ बीकानेर का सचित्र विज्ञप्तिपत्र, राजस्थान भारती, १. ४; वीर, २४.४८.
३. बीकानेर का एक प्राचीन सचित्र विज्ञप्तिलेख, राजस्थान भारती, ३ ३-४.
४. जयपुरी कलम का एक विज्ञप्तिलेख, अवन्तिका, १ १०.
५. उदयपुर का सचित्र विज्ञप्तिपत्र, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ५७. २-३; जैन सन्देश, १७. १८.
६. उदयपुर का एक और विज्ञप्तिपत्र, शोधपत्रिका, ४. ३.
७. उपा० मेघविजय के चार विज्ञप्तिलेख, जैन सत्यप्रकाश, १३. १.
८. बीकानेर जैन लेखसंग्रह की भूमिका, पृ० ८७-९४.

की कृतियों में विनयविजयकृत इन्दुदूत[1], विजयामृतसूरिकृत मयूरदूत,[2] मेघविजयकृत मेघदूत—समस्यालेख[3] तथा चेतोदूत[4] हैं।

कतिपय विज्ञप्तियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं :

संस्कृत काव्य के रूप में सबसे प्राचीन विज्ञप्तिपत्र[5] सं० १४६६ का मिला है जो १०८ हाथ लम्बा था। इसका दूसरा नाम 'त्रिदशतरंगिणी' है। यह मुनिसुन्दरसूरि ने अपने गुरु देवसुन्दरसूरि के लिए लिखा था। इसके एक भाग में तपागच्छ की गुर्वावलि भी थी। इसका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

'विज्ञप्तित्रिवेणी'[6] नामक एक विज्ञप्तिपत्र सं० १४८४ में जयसागरगणि ने लिखा। इसमें सिन्धुदेश के मल्लिवाहनपुर से कवि ने अणहिलपुर में रहनेवाले अपने गुरु खरतरगच्छनायक जिनभद्रसूरि के लिए विज्ञप्तिरूप में एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपने तीर्थप्रवासादि का वर्णन किया है। यह सुन्दर काव्य है।

ग्रन्थकर्ता जयसागरगणि[7] पृथ्वीचन्द्रचरित्र (सं० १५०३), पार्श्वजिनालयप्रशस्ति (सं० १४७३), पर्वरत्नावली आदि अनेकों ग्रन्थों के रचयिता हैं। इनके दीक्षागुरु जिनराज, विद्यागुरु जिनवर्धन एवं उपाध्याय जिनभद्रसूरि थे।

सं० १६६० के लगभग तपा० आनन्दविजय के शिष्य मेरुविजयकृत संस्कृत में एक विज्ञप्तिपत्री का उल्लेख मिलता है।[8]

इसके बाद संस्कृत काव्यरूप में विनयविजयकृत तीन विज्ञप्तिपत्र मिलते हैं।[9] पहला इन्दुदूत है जो कालिदास के मेघदूत की शैली पर लिखा गया है। इसे विनयविजय ने जोधपुर से अपने सूरत नगर में विराजमान गुरु विजयप्रभसूरि के

१. काव्यमाला, १४, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.
२. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद, सं० २०००.
३. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, संख्या २४.
४. वही, संख्या २५.
५. मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित विज्ञप्तित्रिवेणी, पृ० ३० आदि.
६. जिनरत्नकोश, पृ०३५५; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१६.
७. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४७४-७५.
८. जिनरत्नकोश, पृ० ६५५.
९. काव्यमाला, १४, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.

लिए लिखा है। इसमे जोधपुर, जालोर, सिरोही, आबू, सिद्धपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा, भड़ौच और सूरत का वर्णन है। इसका विशेष परिचय हम दूतकाव्यों के प्रसग में देंगे।

विनयविजयकृत दूसरा विज्ञप्तिपत्र स० १६९४ में लिखा गया था जिसे अहमदाबाद के समीप बारेजा ग्राम में विराजते हुए उन्होंने खम्भात मे विराजते हुए अपने गुरु विजयानन्दसूरि के लिए लिखा था। तीसरा विज्ञप्तिपत्र विनयविजय द्वारा देवपट्टन (प्रभासपाटन) से अणहिलपुरपाटन मे स्थित विजयदेवसूरि को भेजा गया था। इसकी रचना अद्भुत है। इसके पद्यों का अर्धांश प्राकृत में और अर्धांश सस्कृत में रचा गया है।[1]

विनयविजय हीरविजय के शिष्य कीर्तिविजय के शिष्य थे। इनके विरचित नयकर्णिका, पट्‌त्रिंशत्‌जल्प (सस्कृत गद्य), शान्तिसुधारस आदि अनेक ग्रन्थ हैं।[2]

डा० हीरानन्द शास्त्री द्वारा विरचित ग्रन्थ Ancient Vijnaptipatras[3] में लगभग २४ विज्ञप्तिपत्रों का परिचय दिया गया है। उनमें अनेक राजस्थानी एव गुजराती में हैं। लगभग ६ सस्कृत में हैं : ३. घोघा विज्ञप्तिपत्र स० १७१७, ४. देवास विज्ञप्ति (१८वीं शती), ७-८. दो भग्न विज्ञप्तिपत्र, ९. शिनोर विज्ञप्तिपत्र स० १८२१, १५. शिनोर विज्ञप्तिपत्र स० १८६२ (आशिक संस्कृत और आशिक राजस्थानी)।

अन्य विज्ञप्तिपत्रों में उपाध्याय समयसुन्दर (१८वीं शती) कृत विज्ञप्तिपत्र (महादण्डकस्तुतिगर्भ), ज्ञानतिलक (१८वीं शती) कृत विज्ञप्तिपत्र[4] आदि का उल्लेख मिलता है।

अभिलेख-साहित्य :

किसी भी राष्ट्र, भाषा एवं साहित्य का इतिहास जानने के लिए अभिलेखों का सर्वोपरि स्थान है क्योंकि इनमें प्रकृति की परिवर्तनशील दृष्टि का बहुत कम

१. मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित विज्ञप्तित्रिवेणी.
२. जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ६४८-४९.
३. बड़ौदा स्टेट प्रेस, १९४२, इसके द्वितीय, तृतीय अध्याय (अग्रेजी में) विशेष रूप से पठनीय हैं।
४. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खण्ड २, पृ० २४.

असर हो सका है। इनमें सरलता से किसी प्रकार के संशोधन और परिवर्तन की भी गुंजाइश नहीं और यदि वह हुआ भी है, जैसा कि राष्ट्रकूट के ताम्रपत्रों में बहुधा देखा जाता है, तो शीघ्र ही पकड़ में आ जाता है।

अभिलेखों में प्रायः समकालीन घटनाओं का उल्लेख रहने से उनकी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं होता। भारतीय इतिहास की अनेक समस्याओं को सुलझाने में इन लेखों से बड़ी सहायता मिली है। जहाँ साहित्य चुप है या कम प्रकाश डालता है वहाँ ये लेख हमें निश्चित सूचना देते हैं। यहाँ हम जैन अभिलेख साहित्य की कुछ विशेषताएँ बतलाते हैं।

जैन अभिलेख साहित्य विविध उपादानों पर उत्कीर्ण मिलता है, जैसे शिला, शिलानिर्मित मन्दिर, स्तम्भ, गुफा, पाषाण, धातुप्रतिमा, चरण, देवकी, स्मारक, शय्यापट, ताम्रपट एवं यन्त्र आदि पर उत्कीर्ण तो मिलता ही है पर कतिपय लेख दीवालों एवं काष्ठपट्टिकाओं पर काली स्याही से लिखे हुए भी मिले हैं जो साढ़े पाँच सौ वर्ष जितने प्राचीन हैं। काली स्याही के अक्षरों का पाषाण पर ज्यों के त्यों रह जाना आश्चर्य की बात है। ये लेख आज तक विद्यमान रहकर प्राचीन स्याही के टिकाऊपन की ही साक्षी देते हैं। इसी तरह पुस्तक के परिवेष्टन पर सुई से कढ़ा हुआ भी जैन लेख (बीकानेर से) मिला है। वैसे ही बुहलर को सिल्क पर स्याही से छपा ग्रन्थ और पिटर्सन को कपड़े पर स्याही से छपा ग्रन्थ मिला है पर सुई से अंकित लेख नया ही प्रतीत होता है।

जैन अभिलेखों की प्रकृति समझने के लिए उन्हें हम अनेक दृष्टियों से विभक्त कर सकते हैं, जैसे उत्तर भारत के, दक्षिण भारत या पश्चिम भारत के लेख, सम्प्रदायगत दिगम्बर और श्वेताम्बर लेख, विस्तृत दृष्टिकोण से राजनीतिक एव धार्मिक लेख। पर वास्तव में इनके दो ही भेद करना ठीक है: एक तो राजनीतिक जो शासनपत्रों के रूप में हैं या अधिकारीवर्ग से सम्बद्ध हैं और दूसरे सांस्कृतिक जो जनवर्ग से सम्बद्ध हैं। इनमें से राजनीतिक एव अधिकारी वर्ग से सम्बन्धित लेख प्रायः प्रशस्तियों के रूप में होते हैं। इनमें राजाओं की विरुदावलियाँ, सामरिक विजय, वंशपरिचय आदि के साथ मन्दिर, मूर्ति या मुनि आदि के लिए भूमिदान, ग्रामदानादि का वर्णन होता है। इस प्रकार के लेखों में कलिंग नृप खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख (प्रथम-द्वितीय ई० पूर्व), रविकीर्तिरचित चालुक्य पुलकेशि द्वितीय का शिलालेख (६३४ ई०), कक्कुक का घटियाल प्रस्तर लेख (वि० सं० ९१८), कवि श्रीपालविरचित कुमारपाल की बड़नगरप्रशस्ति (वि० सं० १२०८), हथुंडी के धवल राष्ट्रकूट का बीजापुर

लेख (९९७ ई०), विजयकीर्ति मुनिकृत विक्रमसिंह कछवाहा का दुबकुण्ड लेख (१०८८ ई०), जयमंगलसूरिविरचित चाचिग चाहमान का सुन्धाद्रि लेख आदि अनेक प्रशस्तिलेख ही हैं। इन प्रशस्तियों में कई का महत्त्व तो इतना है कि कतिपय राजशाखाओं का परिचय केवल इन जैन प्रशस्तियों से ही हुआ है, जैसे उड़ीसा के हाथीगुम्फा से प्राप्त शिलालेखों से खारवेल और उसके वंश का, हथुडी के लेख से वहाँ के राष्ट्रकूटों का, ग्वालियर के सासबहू शिलालेख से कच्छवाहों की ग्वालियर शाखा का और दुबकुण्ड लेख से वहाँ के कच्छवाहों की शाखा का।

जनवर्ग से सम्बन्धित लेखों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। ये लेख अपनी धार्मिक मान्यता के लिए भक्त एवं श्रद्धालु पुरुष या स्त्रीवर्ग द्वारा लिखाये गये हैं। ऐसे लेख १-२ पंक्ति के रूप में मूर्ति की चौकियों पर तथा कुटुम्ब एवं व्यक्ति की प्रशंसा में उच्चकोटि के काव्य के रूप में भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के अनेक लेख उत्तर भारत में मथुरा, आबूपर्वत, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थों से तथा दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोला प्रभृति स्थानों से मिले हैं। इनसे अनेक जातियों के सामाजिक इतिहास और जैनाचार्यों के संघ, गण, गच्छ तथा पट्टावली के रूप में धार्मिक इतिहास के अतिरिक्त सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास का परिचय मिलता है। इन लेखों में प्रायः मूर्तियों, धर्मस्थानों और मन्दिरों के निर्माण का काल अंकित रहता है, जिससे कला और धर्म के विकासक्रम को समझने में बड़ी सहायता मिलती है और सामाजिक स्थिति का परिज्ञान, जैसे एक देश से दूसरे देश में जैन कब कैसे फैले और वहाँ जैनधर्म का प्रसार अधिकाधिक कब हुआ, भी हो जाता है। अनेक भक्त पुरुषों और महिलाओं के नाम भी इन लेखों से ज्ञात होते हैं जो कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। ९वीं शताब्दी के बाद के अनेक लेखों में अधिकांश नाम अपभ्रंश और तत्कालीन लोकभाषा के रूप को प्रकट करते हैं।

जैनों का अभिलेख साहित्य प्राचीन समय से अर्वाचीन समय तक किसी एक भाषा की परिधि में नहीं बँधा रहा। उसमें प्राकृत, संस्कृत, मिश्र संस्कृत, कन्नडमिश्र संस्कृत, कन्नड, तमिल, मराठी, गुजराती और हिन्दी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। दक्षिण के कुछ लेख तमिल में और अधिकांश कन्नडमिश्रित संस्कृत में हैं। दक्षिण भारत से संस्कृत भाषा में लिखे ऐसे महत्त्व के लेख मिले हैं जो काव्य के सुन्दर नमूने हैं। उनमें चालुक्य पुलकेशि की एहोले प्रशस्ति, राष्ट्रकूट गोविन्द के मन्ने और कडब से प्राप्त लेख, अमोघवर्ष का कोन्नर

लेख तथा अन्य लेखों में मल्लिषेण प्रशस्ति, सूदी, मदनूर, कुल्चुम्बरू और लक्ष्मेश्वर आदि से प्राप्त लेख सस्कृत पद्य और गद्य काव्यों के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तर भारत के अधिकांश जैन लेख कुछ अपवाद के साथ विशुद्ध सस्कृत मे ही रचे गये हैं।

प्राकृत भाषा में जितने भी अभिलेख मिले हैं उनमें सबसे प्राचीन एक जैन लेख मिला है जो अजमेर से ३२ मील दूर बारली (बड़ली) नामक ग्राम से एक पाषाणस्तंभ पर ४ लघुपंक्तियों मे खुदा मिला है। उसे पढकर स्व० गौरीशकर ही० ओझा ने बतलाया कि उसमे वी० नि० स० ८४ लिखा है।[१] उक्त लेख की लिपि भी अशोक पूर्व की मानी गई है। इसके बाद अशोक के लेखों के पश्चात् हमें उड़ीसा से हाथीगुम्फा का शिलालेख[२] नृप खारवेल और उसके परिवार का मिलता है। इसके बाद मथुरा और पभोसा से प्राप्त जैन लेख प्राकृत मे ही हैं। मथुरा के कुछ लेख[३] संस्कृतमिश्र प्राकृत में और कुछ संस्कृत मे हैं। इसके बहुत समय बाद गुर्जर प्रतिहार की जोधपुर शाखा का एक लेख घटियाल[४] (वि० स० ९१८) से महाराष्ट्री प्राकृत में मिला है। फिर १४-१८वीं

१. चूंकि अनेक प्राचीन जैन ग्रन्थों में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि वीर-निर्वाण के इतने वर्ष बाद अमुक कार्य हुआ और इतने वर्ष बाद अमुक राजा या आचार्य हुए आदि, अतः उक्त लेख में वी० नि० सं० का उल्लेख शंका का विषय नहीं होना चाहिए।

२. यह लेख सन् १८२७ या उसके पूर्व स्टर्लिंग महोदय को मिला था। इसके बाद उसकी पाण्डुलिपि बनाने और उसे पढने में उच्चकोटि के अनेकों विद्वानों ने अथक परिश्रम किया। उनमें जेम्स प्रिन्सेप, जनरल कनिंघम, राजेन्द्र-लाल मित्र, भगवानलाल इन्द्रजी, राखालदास बनर्जी, काशीप्रसाद जायस-वाल, वेणीमाधव बरुआ, शशिकान्त जैन प्रभृति उल्लेखनीय हैं।

३. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग १-२; इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३३; जैन शिलालेख संग्रह, भाग २; जैन हितैषी, भाग १०, १३; जैन सिद्धान्त भास्कर पत्रिका मे अनेक लेख; प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ और वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ मे अनेक लेख.

४. जर्नल ऑफ रोयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९६, पृ० ५१३ प्रभृति; जैन लेखसंग्रह (नाहर), भाग १, संख्या ९४५.

शती तक पश्चिम भारत के अनेक स्थानों से प्राकृत में मिले हैं जिनमें शत्रुंजय से ही ५० के लगभग और शेष आबू, पाटन, सिका और माण्डवी से हैं।

जैन विद्वानों ने ये सभी लेख अपने धर्मानुरागवश ही नहीं लिखे बल्कि इतिहासप्रियता से भी लिखे हैं। उन्होंने इनमे से अनेकों की रचना अपने धर्म-स्थानों और सम्प्रदाय के उपयोग के लिए ही नहीं की प्रत्युत अन्य धर्म और सम्प्रदाय के उपयोग के लिए भी की। हमें ऐसे अनेक लेख मिले हैं जिन्हें जैन विद्वानों ने इतर सम्प्रदाय के मन्दिरों या स्थानों के लिए ही बनाया है। उदाहरण-स्वरूप दिगम्बर रामकीर्ति ने चित्तौड़गढ प्रशस्ति[1] (११५० ई०) वहाँ के मोकलजी मन्दिर के लिए, बृहद्गच्छ के जयमगलसूरिकृत सुन्धाद्रि लेख[2] चामुण्डादेवी के मन्दिर के लिए, यशोदेव दिगम्बर ने ग्वालियर के सासबहू[3] मन्दिर के लिए तथा रत्नप्रभसूरि ने गुहलोतों के घाघसा[4] और चिर्वा के[5] विष्णु मन्दिर के लिए लेख लिखे थे। यहाँ यह न समझना चाहिए कि वे लेख उन स्थानों में जैनों से छीन-कर ले जाये गये हैं, प्रत्युत इसके विपरीत वे लेख विशेषतः उन स्थानों के लिए ही जैनाचार्यों ने लिखे थे क्योंकि उन लेखो के अन्त मे जैनाचार्यों के नाम, गुरुपरम्परा, गण, गच्छ के सिवाय हमें ऐसा कुछ नहीं मिलता जो जैनों से सम्बन्धित हो। यहाँ तक कि मगलाचरण के पद्य भी अजैन देवी-देवताओं के मगलाचरण से प्रारम्भ होते हैं। हाँ, कुछेक में ॐ सर्वज्ञाय नमः, पद्मनाथाय नमः आदि से उनका प्रारम्भ होता है। ये लेख निश्चित रूप से जैनाचार्यों की उदारता और विशाल हृदयता को सूचित करते हैं।

सबसे अधिक जैन शिलालेख दक्षिण भारत में सुरक्षित मिले हैं। पाश्चात्य विद्वानों—ई० हुल्श, जे० एफ० फ्लीट, लुइस राइस आदि ने साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स, इण्डियन एण्टीक्वेरी, एपिग्राफिया कर्णाटिका आदि ग्रन्थों में वहाँ के हजारों लेखों का सग्रह किया है। ये लेख पाषाणपट्टों एव ताम्रपत्रों पर सस्कृत

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० ४२१, हिस्टोरिकल इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ गुजरात, भाग २, संख्या १४६.

२. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० ७०-७७, जैन लेखसंग्रह (नाहर), भाग १, सख्या ९०३.

३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग १५, पृ० ३३-४६.

४. राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, १९२७, पृ० ३

५. वियना ओरियण्टल जर्नल, भाग २१, पृ० १४२.

और पुरानी कन्नड आदि भाषाओं में खुदे हैं। प्राचीन कन्नड के लेखों मे जैनों के लेख बहुत अधिक हैं, क्योंकि उत्तर कर्णाटक और मैसूर राज्य में जैनों का निवास प्राचीन काल से था।

उत्तर भारत के लेखों मे भी जैन लेखों की सख्या बहुत अधिक है। सन् १९०८ में फ्रेन्च विद्वान् डा० ए० गेरिनो ने 'रिपोर्तेर द एपिग्राफी जैन' प्रकाशित की थी जिसमे सन् १९०७ के अन्त तक प्रकाशित ८५० जैन लेखों का सक्षिप्त परिचय दिया गया था। उनमें ८०९ लेख ऐसे हैं जिनका समय उन पर लिखा हुआ है अथवा दूसरी साक्षियों से ज्ञात हुआ है। ये लेख ई० सन् से २४२ वर्ष पूर्व से लेकर ई० सन् १८६६ तक के अर्थात् लगभग २२०० वर्ष के है। इनमें श्वेता० और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के लेख हैं। इसके बाद सन् १९१५, १९२७ और १९२९ मे कलकत्ता से पूरणचन्द्रजी नाहर ने जैन लेखसग्रह के क्रमशः तीन भाग निकाले जिनमे श्वेताम्बर सम्प्रदाय के हजारों मूल लेखों का सग्रह प्रकाशित किया जिनमे अधिकाश बीकानेर एव जैसलमेर के हैं। सन् १९१७ और १९२१ में मुनि जिनविजयजी ने 'प्राचीन जैन लेखसग्रह' नाम से दो भाग[1] निकाले। पहले भाग मे कलिंगनरेश खारवेल के शिलालेख को बडा महत्त्व दिया गया है और दूसरे में शत्रुञ्जय, आबू, गिरनार आदि अनेक स्थानों के ५५७ लेख प्रकाशित किये गये हैं।

दक्षिण के दिगम्बर सम्प्रदाय के जैन लेखों का सग्रह डा० हीरालाल जैन ने जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, सन् १९२८ ई० मे सम्पादित कर प्रकाशित किया। इसमे श्रवणबेलगोला तथा निकटवर्ती स्थानों के ५०० लेख सकलित हुए थे। जैन शिलालेख सग्रह के द्वितीय-तृतीय भाग में गेरिनो की सूची के आधार पर पं० विजयमूर्ति शास्त्री ने ८५० जैन लेखों का सकलन किया उनमे से ५३५ लेखों का पूरा पाठ एव संक्षिप्त हिन्दी विवरण दिया गया है। शेप १४० लेख प्रथम भाग में आ चुके हैं तथा १७५ श्वेता० सम्प्रदाय के लेख है अतः उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है। इस तरह जैन शिलालेख के पहले तीन भागों[2] मे कुल १०३५ लेखों का सग्रह हुआ है। गेरिनो और डा० हीरालाल जैन के संकलनों से शेप बाद मे प्रकाशित लगभग ६५४ लेखों का सग्रह डा० विद्याधर

---

१. अहमदाबाद और भावनगर से प्रकाशित.

२. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित.

जोहरापुरकर ने जैन शिलालेख सग्रह, चतुर्थ भाग[1] के रूप में सन् १९६१ मे प्रकाशित कराया। इस तरह १६८९ दिग० जैन शिलालेख उक्त चार भागों में प्रकाशित हो चुके हैं। इन चारों भागों में से प्रथम भाग में डा० हीरालालजी जैन की लिखी १६२ पृष्ठ की, तृतीय भाग में डा० गुलाबचन्द्र चौधरी द्वारा लिखित १७२ पृष्ठ की और चतुर्थ भाग में डा० विद्याधर जोहरापुरकर द्वारा लिखित ३२ पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ हैं।

श्रवणबेलगोला के शिलालेखों के सग्रह (जैन शि० सं० भाग १) के समान ही आबू के ६६४ लेखों का सग्रह 'अर्बुद प्राचीन लेखसदोह'[2] के नाम से स्व० मुनि जयन्तविजयजी ने स० १९९४ में प्रकाशित कराया। उक्त मुनिजी ने सं० २००५ में आबू प्रदेश के ९९ गावों के ६४५ लेखों के सग्रहरूप में 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेखसग्रह'[3] प्रकाशित किया। अन्य लेखसग्रहों मे आचार्य विजयधर्मसूरि द्वारा सम्पादित 'प्राचीन जैन लेखसग्रह'[4] उल्लेखनीय है जो सन् १९२९ मे प्रकाशित हुआ। इसमें स० ११२३ से १५४७ तक के ५०० श्वेता० सम्प्रदाय के लेखों का सग्रह है।

प्रतिमा या मूर्ति-लेखसंग्रह :

भारत के राजनीतिक और विशेषकर सघीय इतिहास को जानने के लिए प्रतिमालेख महत्त्वपूर्ण साधन है। पुरातत्त्व से सम्बन्ध होने के कारण यह सामग्री अत्यधिक विश्वसनीय मानी जाती है। प्रतिमालेखों की ऐतिहासिकता इसलिए अधिक मानी जाती है कि उन पर किंवदन्तियों व अतिशयोक्तियों का प्रभाव अधिक नहीं हुआ है क्योंकि वहाँ लिखने की जगह कम होने से मुख्य-मुख्य बातें ही उल्लिखित होती हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों में जो स्थान पुष्पिकाओं का है वही मूर्तियों पर प्रतिमालेखों का है।

भारत में प्रतिमालेख जितने जैन समाज में प्राप्त होते हैं उतने शायद ही किसी अन्य समाज मे उपलब्ध होते हों।

सुविधा के लिए हम प्रतिमाओं या मूर्तियों को प्रस्तर अर्थात् पाषाणमूर्ति और धातुमूर्ति इन दो भागों में बाँट सकते हैं। अपेक्षाकृत धातुमूर्तियों की

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित.

२-३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर.

४. भावनगर.

संख्या अधिक है। सलेख प्रस्तरमूर्तियों की संख्या यदि सैकड़ों होगी तो सलेख धातुमूर्तियों की हजारों। १०वीं शती के बाद की बहुत ही कम ऐसी धातु-प्रतिमाएँ होंगी जो सलेख न हों।

अद्यावधि प्राप्त सबसे प्राचीन प्रतिमा लोहानीपुर पटना से है जो पाषाण की है। यद्यपि इस पर कोई लेख नहीं पर विशेष पालिश व चमक के आधार पर इसका समय मौर्यकालीन (३०० ई० पू०) माना गया है। मथुरा से जैनों की अनेक सलेख मूर्तियाँ मिली हैं जो तीन मुख्य भागों मे बाँटी जा सकती हैं : तीर्थंकर-प्रतिमाएँ, देवियों की मूर्तियाँ और आयागपट्ट। इन पर उत्कीर्ण लगभग सौ लेखों से हमें ऐतिहासिक, धार्मिक एव सामाजिक महत्त्व की बहुत सामग्री मिलती है। इनमें उल्लिखित शक एव कुषाण राजाओं के नाम तथा तिथियों से हमे उनके क्रमिक इतिहास तथा राज्यकाल की अवधि का पता चलता है। सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भी ये लेख बड़े महत्त्व के हैं। इनमें गणिका, नर्तकी, लुहार, गन्धिक, सुनार, ग्रामिक, श्रेष्ठी आदि जातियों और वर्ग के लोगों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने मूर्ति आदि का निर्माण, प्रतिष्ठा एव दान कार्य किये थे। इससे विदित होता है कि २ हजार वर्ष पहले जैनसंघ मे सभी व्यवसाय के लोग बराबरी से धर्माराधन करते थे। अधिकांश लेखों मे दातावर्ग के रूप में स्त्रियों की प्रधानता थी जो बड़े गर्व के साथ अपने पुण्य का भागधेय अपने आत्मीयों को बनाती थीं। इन लेखों से एक और महत्त्व की बात सूचित होती है कि उस समय लोग व्यक्तिवाचक नाम के साथ माता का नाम जोड़ते थे, जैसे मोगलिपुत्र, कौशिकिपुत्र आदि।

जैनधर्म के प्राचीन इतिहास की दृष्टि से मथुरा के ये लेख और भी बड़े महत्त्व के हैं। इन लेखों मे मूर्तियों के संस्थापकों ने न केवल अपना ही नाम उत्कीर्ण कराया है बल्कि अपने गुरुओं का भी जिनके कि सम्प्रदाय के वे थे। लेखों में अनेक गणों, कुलों और शाखाओं के नाम भी दिये गये हैं जो जैनागम कल्पसूत्र और नन्दिसूत्र की पट्टावली से मिलते हैं। उस काल में इन गणों आदि के अस्तित्व से उस महान् युग का, उसके जीवन की गतिविधि का तथा साथ ही सम्प्रदायों की परम्परा को रखने में विशेष सावधानी का अनुमान कर सकते हैं।

गुप्तकाल में हमें जैन मूर्तियों के न केवल उच्चतम उदाहरण मिलते हैं बल्कि उनसे उस काल के इतिहास की जटिल समस्याओं का समाधान करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिलता है। इतिहासज्ञों के बीच महाराजाधिराज रामगुप्त के सम्बन्ध में गत ५० वर्षों से काफी वादविवाद चल रहा था। उसके अस्तित्व को बतलाने के

लिए 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक तथा कुछ ताम्बे के सिक्के मिले थे पर उसके अस्तित्व का अन्तिम निर्णय जैन मूर्तियों के लेखों से ही हो सका है। गत वर्ष गुप्तकाल की तीन जैन मूर्तियाँ विदिशा (मध्य प्रदेश) के वेशनगर के समीपस्थ ग्राम दुर्जनपुर में बुलडोजर से जमीन साफ करते समय मिली हैं जिनमें गुप्तकालीन लिपि में स्पष्ट रूप से महाराजाधिराज रामगुप्त लिखा मिला है। गुप्तकाल में पीतल आदि धातुओं द्वारा जैनों ने प्रतिमा निर्माणकला का विकास किया था और मुगलकाल आते-आते इसका प्रचुर मात्रा में प्रसार हो गया था। इसका प्रधान कारण यह था कि मुसलमान मूर्तिभजक थे और पाषाणमूर्तियाँ शीघ्र ही नष्ट की जा सकती थीं जबकि धातुप्रतिमाएँ कम।

प्रतिमा-लेखों के महत्त्व को देखकर अब तक अनेक प्रतिमालेख सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य बुद्धिसागरसूरि ने सन् १९१७ और १९२४ मे श्वेता० जैन धातु प्रतिमालेख सग्रह[1] के दो भागों मे २६८३ प्रतिमालेख प्रकाशित कराये। विजयधर्मसूरि के उपरिनिर्दिष्ट प्राचीन जैन लेख संग्रह में भी अधिकाश प्रतिमालेख ही हैं। स्व० पूरणचन्द्र नाहर के जैन लेख सग्रह ३ भागों मे प्रायः प्रतिमालेख ही अधिक हैं; दूसरे और तीसरे भाग मे तो बीकानेर और जैसलमेर के ही प्रतिमालेखों का सग्रह है जिनकी सख्या १५८० से अधिक है। मुनि जयन्तविजय के आबू के लेखसग्रहों मे भी प्रायः हजारों प्रतिमालेख संकलित हैं। आचार्य विजययतीन्द्रसूरि के 'यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन'[2] के चारों भागों में अनेक प्रतिमालेख सगृहीत हैं। मुनि कान्तिसागर द्वारा सम्पादित 'जैन धातु प्रतिमालेख'[3] में ३६९ प्रतिमालेख सवत्क्रम से सं० १०८० से १९५२ तक के हैं। परिशिष्ट में शत्रुंजय तीर्थसम्बन्धित दैनन्दिनी भी छपी है। सन् १९५३ में उपाध्याय मुनि विनयसागर ने सवत् के अनुक्रम से १२०० लेखों का संग्रह प्रतिष्ठालेख सग्रह नाम से प्रकाशित किया जिसमें स्व० डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी। इसकी प्रधान विशेषता श्रावक-श्राविकाओं के नामों की है। अब तक सबसे बड़ा प्रतिमालेख सग्रह श्री अगरचन्द्रजी नाहटा का 'बीकानेर लेख संग्रह'[4] है जिसमें बीकानेर और

---

१. अध्यात्मप्रसारक मण्डल, पादरा.
२. यतीन्द्र साहित्यसदन, खुडाला.
३. जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत.
४. नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता.

जैसलमेर प्रदेशों के ३००० प्रतिमालेख संगृहीत हैं; इनमें अनेक श्मशान एवं सतीलेख भी आ गये हैं। इसकी भूमिका, प्राक्कथन एवं परिशिष्ट आदि बड़े महत्त्व के हैं। नाहटाजी ने अपने 'वक्तव्य' शीर्षक लेख में अब तक सङ्कलन किये हुए पर अप्रकाशित अनेकों प्रतिमालेखों की सूचना दी है जिससे इसकी विशालता ज्ञात होती है।

दिगम्बर जैन प्रतिमालेखों के भी कुछ संग्रह उल्लेखनीय हैं, यथा श्री छोटेलाल जैन ने सं० १९७९ में जैन प्रतिमा यंत्रसंग्रह प्रकाशित किया। सं० १९९४ में कामताप्रसाद जैन ने प्रतिमा लेखसंग्रह[1] में मैनपुरी की प्रतिमाओं के लेख प्रकाशित किये हैं। इसी तरह शान्तिकुमार ठवली ने नागपुर प्रतिमा लेखसंग्रह में ४९७ प्रतिमाओं का लेखसंग्रह जैन शिलालेख संग्रह, चतुर्थ भाग के परिशिष्ट ३ में प्रकाशित किया है। डा० विद्याधर जोहरापुरकर के भट्टारक सम्प्रदाय में भी अनेक प्रतिमालेखों का संग्रह आ गया है।

---

१. जैन सिद्धान्त भवन, आरा.

प्रकरण ५

ललित वाङ्मय

इस प्रकरण में शास्त्रीय महाकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पू, दूतकाव्य, नाटक आदि (अलकार तथा रस शैली पर लिखा हुआ साहित्य) का समावेश होगा।

शास्त्रीय महाकाव्य की तीन श्रेणियों—रीतिमुक्त, रीतिबद्ध एव शास्त्रकाव्य-बहुर्थककाव्य—का परिचय हम प्रास्ताविक में कर आये हैं। जैन कवियों ने प्राकृत में किसी प्रकार के शास्त्रीय महाकाव्य की रचना नहीं की। सस्कृत में इस प्रकार के काव्यों की सख्या बहुत कम है। ये प्रायः भारवि, माघ आदि के महाकाव्यों के अनुकरण पर रचे गये हैं जो कि रीतिबद्ध श्रेणी मे या भट्टिमहाकाव्य आदि के अनुकरण पर शास्त्रकाव्य और बहुर्थककाव्यों के रूप में ही मिलते हैं। इन महाकाव्यों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं :

१. इनकी रचना में लक्षणग्रन्थों मे प्राप्त अधिकाश महाकाव्य-सम्बन्धी नियमों का पालन हुआ है।

२. भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि के महाकाव्यों के आदर्श पर इनकी कथावस्तु अत्यन्त स्वल्प रखी गई है किन्तु वस्तुव्यापार का अनावश्यक विस्तार किया गया है। प्राकृतिक वर्णनों के बाहुल्य से इनका कथानक उखड़ा-सा लगता है।

३. इनमें स्थल-स्थल पर कवि ने पाण्डित्यप्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पना-वैभव दिखाने की चेष्टा की है।

४. इनकी भाषा किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि का आदर्श मानकर चली है। इससे भाषा-शैली उदात्त, प्रौढ और कहीं कहीं दुर्बोध हो गई है। इनमे रस, अलकार और छन्दोयोजना पर बहुत बल दिया गया है। रसों में शृङ्गार, वीर और शान्त रस को प्रमुखता दी गई है। अन्य रसों का चित्रण गौणरूप मे किया गया है। अलकारों में शब्दालकार तथा चित्रकाव्यों की श्रमसाध्य योजना उल्लेखनीय है।

५. इन महाकाव्यों में कवियों ने धर्म, राजनीति आदि विविध शास्त्रविषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया है।

प्रद्युम्नचरितकाव्य :

इस काव्य की प्रकाशित[1] प्रति में १४ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर १५३२ पद्य हैं। नवम सर्ग सबसे विशाल है जिसमें विविध छन्दों में निर्मित ३४९ पद्य हैं। अष्टम में १९७ तथा पंचम में १५० पद्य हैं। सबसे कम छन्द १३वें सर्ग में हैं—४४।

रचयिता एवं रचनाकाल—प्रकाशित प्रति में ग्रन्थकर्ता की कोई प्रशस्ति नहीं दी गई पर कारंजा के जैन भण्डार की प्रति में ६ पद्यों की एक प्रशस्ति मिलती है जिसके अनुसार इस ग्रन्थ के कर्ता महासेनसूरि हैं। वे लाटवर्गट संघ में सिद्धान्तों के पारगामी जयसेन मुनि के शिष्य गुणाकरसेन के शिष्य थे। वे परमारनरेश मुंज के द्वारा पूजित थे और राजा भोज के पिता सिन्धुराज या सिन्धुल का महत्तम (महामात्य) पर्पट उनके चरणकमलों का अनुरागी था।[2] महासेन ने इस काव्य की रचना की और राजा के अनुचर विवेकवान् मघन ने इसे लिखकर कोविद्जनों को दिया।

इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में महासेन को सिन्धुराज के महामहत्तम पर्पट का गुरु लिखा है जो इस बात का सूचक है कि पर्पट जैनधर्मानुयायी था और उसके लिए इस काव्य की रचना हुई थी। यद्यपि काव्यनिर्माण का समय प्रशस्ति में नहीं दिया गया परन्तु मुंज और सिन्धुल के उल्लेख से इसके समय का अनुमान किया जा सकता है। सिन्धुराज का समय लगभग ९९५-९९८ ई० है।[3] इस ग्रन्थ की रचना भी इन्हीं वर्षों में होनी चाहिए।

---

१. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९ ७; पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४११; जिनरत्नकोश, पृ० २६४; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १०९-१३९.

२. आसीत् श्रीमहसेनसूरिरनघः श्रीमुंजराजार्चितः।
सीमा दर्शनबोधवृत्ततपसां भव्याब्जिनीबान्धवः॥
श्रीसिन्धुराजस्य महत्तमेन श्रीपर्पटेनार्चितपादपद्मः।
चकार तेनाभिहितः प्रबंध स पावनं निष्ठितमंगलस्य॥ प्रशस्ति पद्य ३-४.

३. डा० गुलाबचन्द्र चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० ९५.

प्रद्युम्नचरित पर लिखी रचनाओं की तालिका के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इसे सर्वप्रथम स्वतन्त्र चरित एव काव्य के रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय महासेनाचार्य को है।

कालक्रम से सस्कृत में प्रद्युम्नचरित पर दूसरी रचना सकलकीर्ति भट्टारक (१५वीं शती) रचित का उल्लेख मिलता है।[1]

नेमिनिर्वाणमहाकाव्य :

इस काव्य[2] मे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनवृत्त वर्णित है। इसमें पन्द्रह सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर दिये गये वाक्य मे इसे 'महाकाव्य' कहा गया है। इसमें क्रमशः प्रथम से पन्द्रहवें सर्ग तक ८३ + ६० + ४७ + ६२ + ७२ + ५१ + ५५ + ८० + ५७ + ४६ + ५८ + ७० + ८४ + ४८ + ८५ = कुल ९५८ पद्य हैं। नागौर के शास्त्रभण्डार में इस काव्य की चार हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।[3] इन हस्तलिखित प्रतियों में १३वें सर्ग मे ८५ पद्य और अन्तिम सर्ग में ८८ पद्य दिये गये हैं। इससे महाकाव्य में कुल मिलाकर ९६२ पद्य हो जाते हैं। तेरहवें सर्ग में नेमिनाथ के भवान्तरों का वर्णन है और शेष सर्गों में वर्तमान भव और उससे सम्बन्धित अन्य बातों का।

ग्रन्थ की भाषा सरल होते हुए भी अत्यन्त सरस है। विविध छन्दों का प्रयोग करने मे प्रस्तुत महाकाव्य का रचयिता अति कुशल है। सातवें सर्ग में आर्या, शशिवदना, बन्धूक, विद्युन्माला, शिखरिणी, प्रमाणिका, माद्यद्भृङ्ग, हसरुत, रुक्मवती, मत्ता, मालिनी, मणिरङ्ग, रथोद्धता, हरिणी, इन्द्रवज्रा, पृथ्वी, भुजङ्गप्रयात, स्रग्धरा, रुचिरा, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ, प्रमिताक्षरा, कुसुमविचित्रा, प्रियवदा, शालिनी, मौक्तिकदाम, तामरस, तोटक, चन्द्रिका, मञ्जुभाषिणी, मत्तमयूर, नन्दिनी, अशोकमालिनी, स्रग्विणी, शरमाला, अच्युत, शशिकलिका, सोमराजी, चण्डवृष्टि, द्रुतविलम्बित, प्रहरणकलिका, भ्रमरविलसिता और वसन्ततिलका हैं। इन छन्दों में अनेक ऐसे छन्द हैं जिनका पता 'वृत्तरत्नाकर' के प्रणेता केदारभट्ट को भी नहीं था। इनमें कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग कालिदास, भारवि, माघ तथा पश्चात्वर्ती वीरनन्दि और हरिचन्द्र आदि प्रसिद्ध महाकवियों

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

२. काव्यमाला, ५६, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६.

३. संख्या २१, ९९, १०७ और २५४.

के महाकाव्यों में भी नहीं मिलता। जैसे चण्डवृष्टि। इसका प्रयोग नेमिनिर्वाण के ७वें सर्ग के ४६वें पद्य में हुआ है।

प्रस्तुत महाकाव्य में अनुप्रास और यमक आदि अनेक शब्दालंकारों का तथा उपमा, दीपक, रूपक, श्लेष, परिसंख्या और विरोधाभास आदि अनेक अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।[1] इस काव्य में प्रधान रस शान्त है। महाकाव्यों में नायिका का वर्णन प्रायः नख से शिखा तक मिलता है किन्तु नेमिनिर्वाण में इस प्रकार का वर्णन कहीं भी नहीं है। यह इस काव्य की विशेषता है।

कथावस्तु—प्रथम २५ पद्यों मे मंगलस्तुति के बाद दो पद्यों में सज्जन-खल की चर्चा की गई है। इसके बाद कथा इस प्रकार चलती है :

सुराष्ट्र देश में द्वारवती (द्वारिका) नगरी थी। उसका राजा समुद्रविजय कुशलता से पृथ्वी का शासन कर रहा था। एक समय उसने अपने अनुज वसुदेव के पुत्र गोविन्द (श्रीकृष्ण) को युवराज पद देकर राज्य का बोझ हल्का किया और पुत्रप्राप्ति के लिए बहुत समय तक अनेक प्रकार के व्रत किये [प्रथम सर्ग], एक समय वह सभा मे बैठा था कि आकाश से भूमितल पर उतरती हुई सुराङ्गनाएँ दिखीं। वे राजसभा में उतर कर राजा की जय बोलीं। उन्हें सुवर्णासनों पर बैठाया गया और आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—अब से ६ माह बाद आपकी महारानी शिवा के गर्भ में २२वें तीर्थंकर नेमि का जन्म होगा इसलिए देवराज इन्द्र ने महारानी की सेवा के लिए हमें भेजा है। वे महारानी की सेवा करने लगीं। समय आने पर रात्रि में जिनमाता ने सोलह स्वप्न देखे [द्वितीय सर्ग], जिनमाता ने उन स्वप्नों को राजा से कहा और राजा ने उन स्वप्नों का फल प्रतापी पुत्र होने को कहा। रानी ने गर्भ धारण किया [तृतीय सर्ग], महारानी शिवा ने नव मास के बाद सकल लोकनन्दन नन्दन को जन्म दिया। लोक में बड़ा आनन्द हुआ, देवतागण जन्मकल्याण मनाने आये [चतुर्थ सर्ग], उन लोगों ने बालक जिन को प्रणाम कर पाण्डुक शिला पर ले जाकर उसका अभिषेक किया और उत्सव मनाया। पीछे वे लोग स्वर्ग लौट गये [पचम स्वर्ग]। धीरे-धीरे बालक शैशव अवस्था को पार कर युवा अवस्था मे आया। इसके बाद कवि ने छठे सर्ग के १७वे पद्य से वसन्त वर्णन, रैवतपर्वत वर्णन [सप्तम सर्ग], जलक्रीड़ा वर्णन [अष्टम सर्ग], सायंकाल तथा

---

१. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० २९७ प्रभृति.

चन्द्रोदय वर्णन [नवम सर्ग] तथा मधुपान और सुरत वर्णन [दशम सर्ग] देकर माघ के शिशुपालवध के अनुसार महाकाव्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए ११वें सर्ग से पुनः कथाक्रम को जारी किया है। चैत्र के महीने में राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती रैवतक पर्वत पर क्रीड़ा करने आती है और वहाँ वह नेमिनाथ को देख कामवेदना से पीड़ित हो जाती है। इधर राजा समुद्र-विजय ने युवराज कृष्ण को नेमि के विवाह के लिए रूपवती राजीमती को माँगने के लिए भेजा। कृष्ण ने उग्रसेन से कन्यादान के लिए प्रस्ताव किया जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया। यह सुन राजीमती जो परमानन्द हुआ। स्वीकृति पाकर कृष्ण लौट आये [११वाँ सर्ग], विवाह की तैयारियाँ हुईं। नेमिनाथ ने सजधजकर रथ पर चढ़ विवाह के लिए प्रस्थान किया। राजधानी में खूब उत्सव मनाया गया। उधर राजीमती को भी खूब सजाया गया। दोनों ओर आनन्द-लहर छा गई। नेमि उग्रसेन के नगर पहुँचे [१२वाँ सर्ग]। ज्योंही वे रथ से उतरनेवाले थे कि उन्होंने विवाहयज्ञ में बँधे हुए पशुसमूह के चीत्कार को सुना। उन्होंने नेत्र फाड़कर समीप की वाड़ी को देखा जिसमें पशुगण करुण क्रन्दन कर रहे थे। उन्होंने अपने सारथि से इतने एक साथ बँधे हुए पशुओं का क्या प्रयोजन है, यह पूछा। उसने कहा कि आपके विवा हमें आये हुए अभ्यागतों के निमित्त विशेष पाकविधि के लिए इनकी 'वसा' का प्रयोग होगा। यह सुनते ही उन्हें भवान्तर की स्मृति हो आई और वे समागत बन्धुवर्गों की अभिलाषा के प्रतिकूल बोले कि मैं इस परिग्रह (विवाह) को न करूँगा और परमार्थ-सिद्धि के लिए प्रयत्न करूँगा। उन्होंने हिंसा के भयावह रूप को लोगों के सामने रखकर अपने पिछले जन्मों का वर्णन किया [१३वाँ सर्ग]। उन्होंने समस्त वैभव को छोड़ रैवतक (गिरिनार) पर्वत पर जाकर मुनिव्रत ले लिया और घोर तपस्या की जिसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) हुआ [१४वाँ सर्ग]। इसके बाद भव्य जीवों के कल्याण के लिए समवसरण सभा द्वारा उपदेश देना प्रारम्भ किया। राजीमती ने भी जिनदीक्षा लेकर अपने कर्मबन्धन काटे (१५. ८७)। अनेक व्यक्तियों ने उनसे मुनिव्रत स्वीकार कर लिया और कुछ लोगों ने श्रावकव्रत।

सामान्यतया काव्यों का उद्देश्य अनुराग की शिक्षा देना है पर जैन काव्यों में यह बात पूर्णतया चरितार्थ नहीं होती है। यह काव्य अनुरक्ति से विरक्ति की ओर जाने की शिक्षा देता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की काव्यमाला में प्रकाशित नेमिनिर्वाणकाव्य में सर्गान्त पंक्तियों में इस काव्य के रचयिता का नाम वाग्भट

दिया गया है पर कवि के परिचय के लिए कोई प्रशस्ति नहीं दी गई। किन्तु हस्तलिखित प्रतियों[1] में निम्नलिखित एक श्लोक की प्रशस्ति मिलती है जिससे कवि का बहुत थोड़ा परिचय मिल जाता है :

अहिच्छत्रपुरोत्पन्नप्राग्वाटकुलशालिनः ।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

इससे मालूम होता है कि नेमिनिर्वाण के कर्ता वाग्भट छाहड के पुत्र थे तथा प्राग्वाट या पोरवाड कुल के थे और अहिच्छत्रपुर[2] में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने न तो अपने किसी गुरु आदि का नाम लिखा है और न कोई अन्य परिचय ही दिया है। अपने किसी पूर्ववर्ती कवि या आचार्य का भी कहीं स्मरण नहीं किया है, जिससे इनके समय पर कुछ प्रकाश डाला जा सके। ग्रन्थ के अन्तर्वीक्षण से ज्ञात होता है कि ये वाग्भट दिगम्बर सम्प्रदाय के थे। काव्य के प्रारम्भ के मंगलाचरण में मल्लिनाथ तीर्थंकर को इक्ष्वाकुवंशी राजा का सुत (श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार सुता नहीं) माना है तथा दूसरे सर्ग में दिगम्बर-मान्य १६ स्वप्नों का वर्णन है। इससे उनका दिग० सम्प्रदाय का होना निश्चित है। इस काव्य पर दिग० भट्टारक ज्ञानभूषण की एक पंजिका टीका उपलब्ध है। और कोई टीका प्राप्त नहीं हुई।

इस काव्य पर माघ के शिशुपालवध की स्पष्ट छाया है जो कि छठे सर्ग से १०वें सर्ग तक देखी जा सकती है। काव्य की विषयवस्तु गुणभद्र के उत्तरपुराण से

---

१. आरा के जैन सिद्धान्त भवन में सं० १७२७, पौष कृष्णा अष्टमी शुक्रवार को लिखी प्रति में (जैन हितैषी, भाग १५, अंक ३-४, पृ० ७९), श्रवणबेलगोल के स्व० पं० दौ० जिनदास शास्त्री के पुस्तकालय में प्राप्त प्रति में (जैन हितैषी, भाग ११, अंक ७-८, पृ० ४८२), गुलालवाडी, बम्बई के बीसपंथी जैन मन्दिर के भण्डार में इस काव्य की तीन प्रतियों (नं० २०, ६४, ६५) में जिन्हें स्व० पं० नाथूराम प्रेमी ने देखा था (जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३२७ पर टिप्पण)।

२. अहिच्छत्रपुर उत्तर प्रदेश के जिला बरेली का रामनगर माना जाता है परन्तु गौ० हीराचन्द्र ओझा के अनुसार नागौर (जोधपुर) का पुराना नाम नागपुर या अहिच्छत्रपुर था। कवि वाग्भट प्रथम का जन्म-स्थान नागौर ही होना चाहिए।

गृहीत मालूम होती है। इससे ये अवश्य उनके बाद हुए हैं। चन्द्रप्रभचरित महाकाव्य के रचयिता वीरनन्दि (११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) वाग्भट की शैली से अवश्य प्रभावित थे तथा वाग्भटालकार में नेमिनिर्वाण के अनेक पद्यों को उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया गया है।[1] इससे नेमिनिर्वाण की रचना इन दोनों से बाद की नहीं हो सकती। इससे वाग्भट का समय दसवीं शताब्दी होना चाहिये। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महाकवि हरिचन्द्र ने अपने महाकाव्य धर्मशर्माभ्युदय में अनेक स्थानों मे नेमिनिर्वाण से प्रचुर मात्रा में भाव, भाषा एव शब्द लिये हैं।[2]

चन्द्रप्रभचरितमहाकाव्य :

इसमें अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित को महाकाव्यत्व का रूप दिया गया है। इसमें १८ सर्ग[3] हैं जिनमें पद्यों की कुल सख्या १६९१ है। अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति के ६ पद्य अलग से दिये गये हैं। सभी सर्गों के अन्तिम पद्यों मे 'उदय' शब्द आया है अतः यह काव्य उदयाङ्क है।[4]

चन्द्रप्रभचरित की कथावस्तु का मुख्य आधार उत्तरपुराण है जिसके ५४वे पर्व मे चन्द्रप्रभ के कुल मिलाकर सात भवों का वर्णन है। इसी के अन्त मे केवल एक श्लोक में उन सातों भवों के नाम क्रम से दिये गये हैं :

---

१. जैसे वाग्भटालंकार २८=नेमिनिर्वाण ७-१६, ३०=७-५०; ३२=६-५१; ३३=७-२५, ३४=६-४६, ३९=६-४७; ४०=७-२६; ६३=१०-२५; ६९=१०-३५.

२. जैन सन्देश, शोधाङ्क ८, पृ० २८५-२८६, पं० अमृतलाल जैन का लेख : वाग्भट और हरिचन्द्र मे पूर्ववर्ती कौन। इन्ही प्रमाणो के आधार पर डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने नेमिनिर्वाण महाकाव्य को चन्द्रप्रभचरित और धर्मशर्माभ्युदय के बाद की रचना माना है : देखें—सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान, पृ० २८२-२८३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ११९; काव्यमाला, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२; जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९७०; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ८१ प्रभृति.

४. इति श्रीवीरनन्दिकृतावुदयाङ्के चन्द्रप्रभचरिते महाकाव्ये.....सर्गः।

श्रीवर्मा श्रीधरो देवोऽजितसेनोऽच्युताधिपः ।
पद्मनाभोऽहमिन्द्रोऽस्मान् पातु चन्द्रप्रभः प्रभुः ॥

इसी क्रम के अनुसार इस काव्य मे भी चन्द्रप्रभ का चरित दिया गया है और प्रशस्ति-पद्यों के अन्त मे एक शार्दूलविक्रीडित मे क्रमश. सातों भवों का उल्लेख किया है :

यः श्रीवर्मनृपो बभूव विबुधः सौधर्मकल्पे तत-
स्तस्माच्चाजितसेनचक्रभृदभूद्यश्चाच्युतेन्द्रस्ततः ।
यश्चाजायत पद्मनाभनृपतिर्यो वैजयन्तेश्वरो,
यः स्यात्तीर्थंकरः स सप्तमभवे चन्द्रप्रभः पातु नः ॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ६ पद्यों मे मगलाचरण, दो पद्यों में सज्जन-दुर्जन चर्चा तथा दो में अपनी लघुता के बाद पॉचवें भव के जीव पद्मनाभ की कथा से विषयवस्तु प्रारम्भ होती है (१ सर्ग)। पद्मनाभ श्रीधर मुनि से अपने पूर्व भवों को सुनता है (२ सर्ग)। इसके बाद चन्द्रप्रभ के सातवें भव पूर्व के जीव श्रीवर्मा का वर्णन है जो तपस्या कर श्रीधर देव होता है (३-४ सर्ग)। श्रीधर का जीव अजितजय राजा और अजितसेना से अजितसेन राजकुमार होता है। उसे युवराज पदवी मिलती है। उसका चन्द्ररुचि नामक असुर अपहरण करता है (५वॉ सर्ग)। तत्पश्चात् असुर द्वारा अजितसेन को मनोरमा सरोवर में गिराया जाना, फिर अटवी पर्वत में भटकना, युद्ध-वर्णन, विवाह-वर्णन, फिर अपने नगर मे लौट आना आदि वर्णन (६ सर्ग); अजितसेन को लोकोत्तर ऐश्वर्य-प्राप्ति, राज्याभिषेक, दिग्विजययात्रा आदि का वर्णन (७ सर्ग) दिया गया है। तत्पश्चात् वसन्त, उपवन-विहार, जलकेलि, सायंकाल, चन्द्रोदय, रात्रिक्रीड़ा, निशावसान-वर्णन (८–१० सर्ग), राजा का सभा मे आना, गजक्रीड़ा देखना तथा गज द्वारा एक की मृत्यु देख वैराग्य, तपस्या-वर्णन, मरकर अच्युतेन्द्र होना, उसके बाद पद्मनाभ का जन्म (पाँचवें भव का जीव), पद्मनाभ का अपने पूर्व भवों के प्रति मुनि के उपदेश में सन्देह, वनकेलि गज का आना और उसे वश में करना (११ सर्ग), पृथ्वीपाल राजा के दूत का गज के लिए आना और तर्क प्रस्तुत करना, राजा के इशारे पर युवराज की उक्ति-प्रत्युक्तियॉ तथा मन्त्रविचार-वर्णन (१२ सर्ग), पृथ्वीपाल पर अभियान, रास्ते में प्राप्त नदी (१३ सर्ग), मणिकूट पर्वत एवं सेना सन्निवेश का वर्णन तथा सेनासहित पृथ्वीपाल नरपति का आगमन (१४ सर्ग), संग्राम तथा पृथ्वीपाल राजा का वध, शत्रु के कटे सिर को देखकर पद्मनाभ का वैराग्य और अपने पुत्र को राज्यभार देकर तपस्या,

शरीर छोड़कर अहमिन्द्र होना आदि वर्णन (१५ सर्ग), पूर्व देश की चन्द्रपुरी नगरी मे महाराजा महासेन और महारानी लक्ष्मणा से पुत्ररूप में गर्भग्रहण (१६ सर्ग), चन्द्रप्रभ जिन की उत्पत्ति, जन्मकल्याणक, बालक्रीड़ा, विवाह, साम्राज्यलाभ, ससार की असारता, तपग्रहण आदि (१७ सर्ग) जैन सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन दिया गया है।

काव्य की वर्ण्य-वस्तु को देखने से लगता है कि इसमें महाकाव्योचित सभी गुणों का समावेश किया गया है।[1] इस काव्य मे प्रसङ्गतः अन्य रसों का प्रयोग हुआ है पर शान्तरस को मुख्यता प्रदान की गई है। शेष रस अग बनकर रह गये हैं, अगी नहीं बन सके।

ग्रन्थकार एवं रचनाकाल—प्रस्तुत कृति के रचयिता आचार्य वीरनन्दि हैं जिनकी यही एकमात्र कृति उपलब्ध है। इनकी गुरुपरम्परा ग्रन्थ के पीछे प्रशस्ति में दी है। इससे ज्ञात होता है कि आचारसार के कर्ता वीरनन्दि जिनके गुरु मेघनन्दि थे तथा महेन्द्रकीर्ति के शिष्य एक अन्य वीरनन्दि इनसे भिन्न थे।

इस काव्य की प्रशस्ति में वीरनन्दि के गुरु का नाम अभयनन्दि दिया गया है जिनके गुरु विबुधगुणनन्दि थे। विबुधगुणनन्दि के गुरु का नाम गुणनन्दि था। ये देशीयगण के आचार्य थे।

प्रशस्ति में लिखा है कि वीरनन्दि ने अपने बुद्धिबल से समस्त वाङ्मय को आत्मसात् कर लिया था—वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र थे। सज्जनों की सभाओं में कुतर्कों के लिए अंकुश के समान उनके वचन सदा विजयी थे, इस कारण उनका यश भी खूब था।[2]

---

१. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ८१ प्रभृति.

२. बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः पतिर्मुनीनां गणभृत्समानः।
सदग्रणीर्देशगणाग्रगण्यो गुणाकरः श्रीगुणनन्दिनामा ॥ १ ॥
गुणग्रामाम्भोधेः सुकृतवसतेर्मित्रमहसा-
मसाध्यं यस्यासीन्न किमपि महीशासितुरिव।
स तच्छिष्यो ज्येष्ठः शिशिरकरसौम्यः समभव-
त्प्रविख्यातो नाम्ना विबुधगुणनन्दीति भुवने ॥ २ ॥
मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः।

अभयनन्दि के शिष्य होने के नाते वीरनन्दि और गोम्मटसार के कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती दोनों सतीर्थ्य थे। नेमिचन्द्र सि० च० उनसे बड़े प्रभावित थे। उन्होंने कर्मकाण्ड मे इनका तीन बार ससम्मान उल्लेख किया है।[1] अपने सहाध्यायी द्वारा मंगलाचरण प्रसङ्गों में इस प्रकार का स्मरण वीरनन्दि की प्रतिष्ठा का द्योतक है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध दार्शनिक और विशिष्ट कवि वादिराजसूरि ने अपने काव्य पार्श्वनाथचरित[2] में इनके नाम और कृति की प्रशंसा की है। कवि दामोदर ने अपनी कृति चन्द्रप्रभचरित[3] में इन्हें वन्दन करते हुए कवीश कहा तथा पण्डित गोविन्द[4] ने इनका उल्लेख अपनी रचना के प्रारम्भ मे धनञ्जय, असग और हरिचन्द्र से पहले किया है। कवि आशाधर ने अपनी कृति सागारधर्मामृत[5] में चन्द्रप्रभचरित का एक पद्य उद्धृत किया है। महाकवि हरिचन्द्र ने धर्मशर्माभ्युदय की रूपरेखा प्रायः चन्द्रप्रभचरित को सामने रखकर बनाई थी। वीरनन्दि ने अपने ग्रन्थ मे अपने पूर्ववर्ती किन्हीं कवियों और कृतियों का उल्लेख नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि इनका समकालीन और परवर्ती आचार्यों और कवियों पर बड़ा प्रभाव था। फिर भी नेमिनिर्वाण का उन पर कुछ प्रभाव अवश्य था।

चूँकि वीरनन्दि नेमिचन्द्र सि० च० के सतीर्थ्य थे इसलिए उनका समय वही होना चाहिये जो उनके सहाध्यायी का था। नेमिचन्द्र ने कर्मकाण्ड की रचना

अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी
स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ॥ २ ॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत्।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सताम्
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥
शब्दार्थसुन्दरं तेन रचितं चारुचेतसा।
श्रीजिनेन्दुप्रभस्येदं चरितं रचनोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥

१. कर्मकाण्ड, गाथा ४३६, ७८५, ८९६.
२. पार्श्वनाथचरित, १. ३०.
३. चन्द्रप्रभचरित, १. १९.
४. पुरुषार्थानुशासन, २२.
५. १. ११ की व्याख्या में चन्द्रप्रभचरित का ४.३८.

सेनापति चामुण्डराय की प्रेरणा से की थी। इस चामुण्डराय ने गोम्मटस्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा चैत्र शुक्ल पचमी रविवार अर्थात् २२ मार्च सन् १०२८ में श्रवणबेलगोल नामक स्थान में की थी अतः वीरनन्दि का समय ११वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

वर्धमानचरित :

इसमें[1] भग० महावीर का वर्तमान भव और पूर्वजन्मों में मरीचि, विश्वनन्दी, अश्वग्रीव, त्रिपृष्ठ, सिंह, कपिष्ठ, हरिषेण, सूर्यप्रभ आदि की कथाएँ वर्णित हैं।

इसकी कथावस्तु यद्यपि उत्तरपुराण के ७४वें पर्व से ली गई है पर कवि ने कथावस्तु को महाकाव्योचित बनाने के लिए काट-छाँट भी की है। कवि असग ने पुरुरवा और मरीचि के आख्यान को छोड़ दिया है और श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के आगन मे पुत्र जन्मोत्सव से कथानक प्रारम्भ किया है। यह आरम्भस्थल बहुत ही रमणीय बन पड़ा है। पूर्व भवावलि का प्रारम्भिक अंश घटित रूप में न दिखलाकर मुनिराज के मुख से कहलाया गया है। इस प्रकार उत्तरपुराण की कथावस्तु अक्षुण्ण रह गई है। कवि ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया है कि पौराणिक कथानक महाकाव्य का रूप धारण कर सके। इस महाकाव्य में जीवन के प्रधान तत्त्वों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है यथा—पिता-पुत्र का स्नेह नन्दिवर्धन और नन्दन के जीवन में, भाई का स्नेह विश्वभूति और विशाखभूति के जीवन में, पति पत्नी का स्नेह त्रिपृष्ठ और स्वयम्प्रभा के जीवन में, विविध भोग विलास हरिषेण के जीवन में और शौर्य एव अद्भुत कार्यों का वर्णन त्रिपृष्ठ के जीवन मे।

इस काव्य की महाकाव्योचित गरिमामयी उदात्त शैली है और गम्भीर रसव्यजना[2] भी इसमे विद्यमान है। साथ ही सध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, वन, सूर्य, नदी, पर्वत आदि का सागोपाग वर्णन है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४२; सम्पादन और मराठी अनुवाद—जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्रकाशक—रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर, १९३१; हिन्दी अनुवाद—पं० खूबचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास कापडिया, सूरत, १९१८, इसका सक्षिप्त उल्लेख पहले पृ० १२६ मे कर आये हैं। यहाँ विशेष परिचय प्रस्तुत है।

२. सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियों का योगदान, पृ० १५०-१५२.

महाकवि ने इस काव्य को विविध अलकारों[1] और छंदों[2] से भी सजाया है।

वर्धमानचरित पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसकी शैली प्रायः भारवि के किरातार्जुनीयम् से मिलती-जुलती है। रघुवश, शिशुपाल-वध, चन्द्रप्रभचरित, नेमिनिर्वाण आदि काव्यों का यत्किंचित् सादृश्य भी दिखाई देता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—कवि के एक अन्य काव्यग्रन्थ शान्तिनाथचरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता असग कवि थे। उनके पिता का नाम पट्टमति और माता का नाम वैरेति था। कवि के गुरु का नाम नागनन्दि था। कवि ने श्रीनाथ के राज्यकाल मे चोलराज्य की विभिन्न नगरियों में आठ ग्रंथों की रचना की है। वर्धमानचरित की प्रशस्ति के अनुसार इस काव्य का रचनाकाल शक संवत् ९१० (ई० सन् ९८८) है। कवि के गुरु नागनन्दि संभवतः वे ही नागनन्दि हों जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोल के १०८वें शिलालेख में नन्दिसंघ के आचार्य के रूप मे है। पर नन्दिसघ की पट्टावली से उनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

धर्मशर्माभ्युदय :

इस महाकाव्य[3] मे पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का जीवनचरित वर्णित है। इसमे २१ सर्ग हैं जिनमे कुल मिलाकर १७६५ पद्य हैं। अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति १० पद्यों मे दी गई है। इस काव्य की कथावस्तु का आधार आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराण का ६१वॉ पर्व है जिसमें धर्मनाथ का चरित केवल ५२ पद्यों मे वर्णित है जिनमें धर्मनाथ के केवल दो पूर्व भवों और वर्तमान भव का वर्णन है।[4]

---

१. इस महाकाव्य के अलंकारों के परिशीलन के लिए देखें—सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १५३-१६१.

२ छन्दों के लिए भी—वही, पृ० १६१.

३. काव्यमाला, ८, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३; जिनरत्नकोश, पृ० १९३; हिन्दी अनुवाद—पं० पन्नालाल साहित्याचार्यकृत, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी.

४ उत्तरपुराण, पर्व ६१.५४.

इतनी छोटी कथावस्तु को लेकर सरस, सुन्दर शब्दावली, मनोहर भावों और कल्पना के सहारे एक विशाल काव्य की सृष्टि कवि की विशाल प्रतिभा का ही प्रतिफल है।

कथा प्रारम्भ करने के पहले ९ पद्यों द्वारा मगलाचरण, अपनी लघुता, काव्य का सार-निःसार, सज्जन-दुर्जन निरूपण आदि २२ पद्यों द्वारा करके उत्तर कोशल देश के रत्नपुर नगर का वर्णन है। दूसरे सर्ग मे राजा महासेन और रानी सुव्रता की पुत्राभावजन्य चिन्ता तथा वनपाल द्वारा उद्यान में चारण मुनि के आगमन की सूचना पाने का वर्णन है। तीसरे सर्ग मे पुरजन-परिजन समेत राजा का मुनिदर्शन के लिए जाना और उनसे अपने विषय मे तीर्थंकर के पिता होने की भविष्यवाणी सुनना वर्णित है। चौथे सर्ग में राजा के अनुरोध पर मुनि तीर्थंकर धर्मनाथ के दो पूर्व भवों का वृत्तान्त सुनाते हैं और सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर महारानी सुव्रता के गर्भ में आने की बात कहते हैं। पॉचवें सर्ग में लक्ष्मी आदि देवियों द्वारा सुव्रता की परिचर्या, सुव्रता द्वारा १६ स्वप्नों का दर्शन तथा गर्भधारण होने पर देवताओं द्वारा पूजा-उत्सव का वर्णन है। छठे से आठवें सर्ग तक जन्मकल्याणक, जन्माभिषेक आदि का वर्णन है। नवें सर्ग मे बाल्यकाल से युवावस्था प्राप्त करने तथा स्वयवर के लिए विदर्भ देश के लिए प्रस्थान तथा मार्ग में प्राप्त गगा का वर्णन है। दसवें[1] सर्ग में मार्ग में किन्नरेन्द्र की प्रार्थना पर धर्मनाथ का विन्ध्यगिरि मे विश्राम तथा वहाँ कुवेर नगरी की रचना आदि का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में धर्मनाथ की सेवा के लिए उपस्थित छः ऋतुओं का वर्णन है। बारहवें सर्ग में वनसुषमा एवं पुष्पावचय का वर्णन, तेरहवें सर्ग में नर्मदा नदी में जलक्रीड़ा का वर्णन, चौदहवें में सध्या, रात्रि, चन्द्रोदय आदि का वर्णन, पन्द्रहवें में मद्यपान एव सम्भोग-शृगार का वर्णन, सोलहवें सर्ग मे प्रभात-वर्णन तथा धर्मनाथ का विदर्भ की ओर प्रस्थान, विदर्भ देश का वर्णन तथा विदर्भ नरेश से समागम दिखाया गया है। सत्रहवें सर्ग में स्वयवर का वर्णन, राजकन्या इन्दुमती द्वारा धर्मनाथ का वरण, विवाह-वर्णन तथा पत्नी सहित स्वदेश लौटना वर्णित है। अठारहवें सर्ग में धर्मनाथ का नगर-प्रवेश, पिता महासेन द्वारा दीक्षाग्रहण तथा धर्मनाथ के राज्याभिषेक का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में धर्मनाथ के सेनापति सुषेण का विदर्भ मे अन्य राजाओं के साथ युद्ध और विजय प्राप्त कर लौटने का वर्णन है। बीसवें सर्ग में धर्मनाथ का उल्कापात देखकर

---

१. दसवें से सोलहवें सर्ग तक माघकृत शिशुपालवध की शैली का प्रभाव स्पष्ट द्रष्टव्य है।

विरक्त होना, दीक्षा, तपस्या, केवलज्ञान, समवसरण का वर्णन है और इक्कीसवें मे धर्मदेशना, भ्रमण तथा मोक्षगमन का वर्णन है।

कथानक के उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कितने छोटे कथानक को लेकर कवि ने महाकाव्य का विस्तृत रूप दिया है। इसमे पहले से छठे सर्ग तक परम्परागत कथा की प्रमुखता है, किन्तु बाद के सर्गों मे कथावस्तु को गौण कर अलकृत वर्णन प्रमुख हो गये हैं। दस से सोलह सर्गों में महाकाव्यीय विषयों का वर्णन हुआ है। सत्रह से बीस सर्गों में पुनः कथावस्तु का क्रम लिया गया है।

प्रस्तुत काव्य के कथानक के लघु होने पर भी कवि ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छी तरह किया है। इसमे धर्मनाथ, महासेन, सुव्रता, चरणमुनि और सुषेण ये पाँच ही पात्र प्रमुखरूप से दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह प्राकृतिक वर्णन करने मे कवि बहुत सफल रहा है। उसका क्षेत्र इस विषय मे बहुत व्यापक है।[१] पात्रों का सौन्दर्य-चित्रण भी कवि ने यथास्थान प्रस्तुत किया है। कवि ने यत्र-तत्र तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी चित्रण किया है।[२] उसने इस काव्य के चौथे और इक्कीसवें सर्ग में जैनधर्म और दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

धर्मशर्माभ्युदय रमणीय भावों और कल्पनाओं का विशाल भण्डार है। इसमे विविध रसों विशेषकर शान्त और शृगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नवम सर्ग मे वात्सल्यरस, सत्रहवे मे शृगाररस, उन्नीसवें में वीररस तथा बीसवें मे शान्तरस की मार्मिक अभिव्यजना हुई है।

इस काव्य की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और परिमार्जित है। भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार दिखाई पड़ता है। भाषा में स्वाभाविकता और सजीवता के दर्शन होते हैं। यथास्थान माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों का प्रयोग हुआ है पर माधुर्य सम्पूर्ण काव्य मे छाया हुआ है। काव्य परम्परा के अनुसार इस काव्य मे भी एक सर्ग (१९वाँ) पाण्डित्यप्रदर्शन और शब्दक्रीड़ा के लिए रचा गया है। इसमे विविध चित्रकाव्यों की योजना की गई है यथा—गोमूत्रिक, अर्धभ्रम, मुरजबंध, सर्वतोभद्र, षोडशदलकमल तथा चक्रबध आदि। इसी

---

१. सर्ग २. ७७; ३. २६-२७, ३३-३४; १०. ९; ११. ७२; १४. ८, ३९; १६. १८, ४५-४६ आदि.

२. सर्ग २. १५, १९; ४. २८ आदि.

तरह एकाक्षर, द्व्यक्षर, निरोष्ठ्य, अतालव्य अक्षरों द्वारा पद्यरचना प्रस्तुत की गई है।

उपर्युक्त चित्रालकारों के अतिरिक्त कवि ने विविध अलकारों की योजना की है जिनमें स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। शब्दालकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग प्रचुर हुआ है और अर्थालकारों में सादृश्यमूलक अलकारों, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। छन्दों के प्रयोग में कवि का क्षेत्र व्यापक है। उसने २५ छन्दों का प्रयोग किया है। प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग कर सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। दसवें सर्ग मे विविध छन्दों का प्रयोग किया है। काव्य मे उपजाति, अनुष्टुप् और वशस्थ का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

कवि ने अपने इस काव्य में यद्यपि पूर्ववर्ती किसी कवि, ग्रन्थकार या ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है फिर भी इसके निरीक्षण से ज्ञात होता है कि इस पर माघ के शिशुपालवध, वाग्भट के नेमिनिर्वाण तथा वीरनन्दि के चन्द्रप्रभचरित का प्रभाव प्रचुरमात्रा मे विद्यमान है।

	धर्मशर्माभ्युदय के निम्न पद्य	नेमिनिर्वाण के निम्न पद्यों से तुलनीय हैं :
(१)	४. २९	१. ७०
(२)	५. २	२. २
(३)	५. ५४	२. ३९
(४)	६. ३	४. ५
(५)	६. २०	४ २३
(६)	७. १	५. १
(७)	३. ५२	५. ६८

	धर्मशर्माभ्युदय के निम्न पद्य	चन्द्रप्रभचरित के निम्न पद्यों से तुलनीय हैं :
(१)	२१ ८	१८. २
(२)	२१. ९०	१८. ७८
(३)	२१. ९९	१८. ८८

इसी तरह धर्मशर्माभ्युदय के चतुर्थ सर्ग तथा चन्द्रप्रभचरित की दार्शनिक चर्चा के पद्य तुलनीय हैं।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के १९वें सर्ग के अनेक चित्रबन्धों में तथा २१वें सर्ग के अन्तिम पद्य में इसके रचयिता का नाम हरिचन्द्र दिया गया

है। कवि ने १० पद्यों की प्रशस्ति द्वारा भी ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय दिया है कि श्रीसम्पन्न बड़ी भारी महिमा वाला और सारे जगत् का अवतंस-रूप नोमकों का वंश है जिसके हस्तावलम्बन से राज्यलक्ष्मी वृद्ध होने पर भी दुर्गपथ से स्खलित नहीं हुई। कायस्थ कुल मे आर्द्रदेव नाम के पुरुषरत्न हुए जिनकी पत्नी का नाम रथ्या था तथा उनसे हरिचन्द्र नाम का पुत्र हुआ जो अरहंत भगवान् के चरणकमलों का भ्रमर था और जिसकी वाणी सारस्वत स्रोत में निर्मल हो गई थी। अपने भाई लक्ष्मण की भक्ति और शक्ति से हरिचन्द्र उसी तरह निर्व्याकुल होकर शास्त्रसमुद्र के पार हो गये जिस तरह राम लक्ष्मण के द्वारा सेतु पार हुए थे।[1]

प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि कवि एक राज्यमान्य कुल के थे और यह राज्यमान्यता उनके यहाँ पीढ़ी से चली आ रही थी। कवि ने माता-पिता, अपने नाम और अनुज के नाम के अतिरिक्त अपने वंश का तथा अपने पूर्वज गुरुओं और आचार्यों का कोई परिचय नहीं दिया। वे कहाँ के रहनेवाले थे यह भी उक्त प्रशस्ति से ज्ञात नहीं होता। कवि किस सम्प्रदाय के थे यह भी उनकी प्रशस्ति से नहीं मालूम होता पर ग्रन्थ के अन्तर्वीक्षण से यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर मत के अनुरागी थे। उन्होंने इस काव्य की कथा उत्तरपुराण से ली थी, धर्मदेशना के प्रसग में उन्होंने चन्द्रप्रभचरित की शैली का अनुसरण किया है, नेमिनिर्वाणकाव्य के अनेक पद्यों से भी इस काव्य के अनेक पद्य मिलते हैं, तथा पाँचवे सर्ग में दिगम्बरमान्य १६ स्वप्नों का वर्णन है, तीसरे सर्ग के ८वें श्लोक में दिगम्बर[2] साधु का समागम आदि इनके दिगम्बर मतानुयायी होने के सूचक हैं। पर वे कट्टर दिगम्बर न थे। उन्होंने श्वेताम्बर ग्रन्थों का तथा जैनेतर ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। अन्तिम (२१वें) सर्ग मे जिन खरकर्मों का उल्लेख है वे हेमचन्द्र के योगशास्त्र पर अवलम्बित हैं।[3]

कवि का अध्ययन विशाल था। उसने अपनी कृति के निर्माण में तत्त्वार्थ-सूत्र, आदिपुराण, उत्तरपुराण, यशस्तिलकचम्पू, गद्यचिन्तामणि, चन्द्रप्रभचरित,

---

१. प्रशस्ति, पद्य १-५.

२. दिगम्बरपदप्रान्तं राजापि सहकान्तया.

३. (१) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १३१=यो० शा०, पृ० १६६.
 (२) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १३६=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ४९३.
 (३) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १४५=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ५६७.
 (४) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १४६=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ५६९.

नेमिनिर्वाण, योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित प्रभृति जैन ग्रन्थों का तथा रघुवंश, कुमारसंभव, नागानन्दनाटक, हर्षचरित, कादम्बरी, दशकुमारचरित, गउडवह, शिशुपालवध[1], नलचम्पू, नैषधीयचरित, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश तथा हिन्दूपुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, कामशास्त्र, कोष, व्याकरण एवं अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था और धर्मशर्माभ्युदय की रचना में घोर परिश्रम किया था। इसीलिए वे अपनी ग्रन्थप्रशस्ति के अन्तिम पद में लिखते हैं—'भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कवीनां जनाः'[2] अर्थात् सभी लोग कवियों के परिश्रम को समझें।

हरिचन्द्र ने अलंकारशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था पर रसध्वनि सम्प्रदाय के सार्थवाह—मुखिया थे (रसध्वनेरध्वनि सार्थवाहः[3])। हरिचन्द्र की कीर्ति अपने समय में ही खूब फैल गई थी। वे सरस्वतीपुत्र समझे जाने लगे थे। यद्यपि वे अन्य कवियों से पीछे हुए थे पर उनकी गणना पहले होने लगी थी।[4] ये अपने समय में ही एक अधिकारी विद्वान् हो गये थे। कश्मीर के एक मंत्री कवि जल्हण (१२४७ ई०) ने अपनी 'सुभाषितमुक्तावलि' में धर्मशर्माभ्युदय का एक पद्य[5] उद्धृत कर इनका 'चन्द्रसूरि' नाम से उल्लेख किया है। सभव है 'चन्द्र' इनका उपनाम रहा हो और जैन विद्वान् होने से इनकी 'सूरि' उपाधि हो।[6]

इस काव्य की प्रशस्ति मे या अन्यत्र कहीं धर्मशर्माभ्युदय का रचनाकाल नहीं दिया गया। फिर भी इसका रचनाकाल अन्य साधनों से जाना जा सकता है। इस काव्य की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति पाटन भण्डार से मिली है जिसमें प्रति-

---

१. जर्मन विद्वान् डा० ह० याकोबी ने वियना ओरियण्टल जर्नल, भाग ३, पृ० १३८ प्रभृति में 'माघ और भारवि' लेख मे शिशुपालवध के अनेक पद्यो तथा गउडवह के अनेक पद्यो से धर्मशर्माभ्युदय के पद्यो की भाषा और भावों मे साम्य दिखाया है।

२ पद्य सं० १० की अन्तिम पंक्ति.

३. प्रशस्तिपद्य ७.

४. वाग्देवतायाः समवेदि सम्यैर्य. पश्चिमोऽपि प्रथमस्तनूज. (प्रशस्तिपद्य ६).

५. धर्म० श० के द्वि० सर्ग पद्य ४० से सु० मु० के पृ० १८५ में अंकित पद्य. से तुलना करें—

सुहृत्तमावेकत उन्नतौ स्तनौ गुरुर्नितम्बोऽप्ययमन्यतः स्थितः।
कथं भजे कान्तिमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीव तानवम्॥

लिपि काल सं० १२८७ दिया गया है अतः इस समय से पूर्व इसकी रचना अवश्य हुई होगी। इसकी पूर्वावधि आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र के बाद ही आती है क्योंकि इस काव्य के २१वें सर्ग में जिन सत्कर्मों का उल्लेख है वे हेमचन्द्र के योगशास्त्र पर आधारित हैं, यह पहले कह चुके हैं। हेमचन्द्र का समय १२वीं शताब्दी का उत्तर भाग और तेरहवीं शताब्दी का पूर्वभाग है। इसलिए हरिचन्द्र का समय तेरहवीं शताब्दी (विक्रम) के उत्तर भाग में रखा जा सकता है। अनुमान है कि पाटन भण्डार में उपलब्ध धर्मशर्माभ्युदय की सं० १२८७ की प्रति सर्वप्रथम है अतः विद्वानों का मत है कि उक्त काव्य की रचना सं० १२५७ से १२८७ के बीच कभी हुई है।[1] हरिचन्द्र नाम के अनेक विद्वान् संस्कृत साहित्य में हो गये हैं पर ये उनसे भिन्न और परवर्ती विद्वान् कवि थे।

सनत्कुमारचरित :

यह[2] एक उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है। इसमें सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित मनोहर शैली में वर्णित है। इस महाकाव्य में २४ सर्ग हैं। इस काव्य में घटनाओं का आधिक्य, उनका समुचित विकास तथा पात्रों की कर्मशीलता के कारण नाटक पढ़ने जैसा आनन्द मिलता है।

कथावस्तु इस प्रकार प्रारम्भ होती है : १-३ सर्ग में कांचनपुर का नरेश विक्रमयश अपने नगर के वणिक् नागदत्त की सुन्दर पत्नी विष्णुश्री का अपहरण कर उसके प्रेमवश होकर अपनी अन्य रानियों की उपेक्षा करता है। रानियाँ मान्त्रिक विधि से विष्णुश्री को मरवा डालती हैं। राजा उसके अन्तिम दर्शन करने श्मशान जाता है पर विष्णुश्री के शव से भरकर दुर्गन्ध के कारण विरक्त होकर तपस्या कर स्वर्ग जाता है। ४-६ सर्गों में विक्रमयश और नागदत्त के जीवों में देव और मनुष्य भवों में प्रतिशोध का वर्णन है। ७वें सर्ग में विक्रमयश का जीव हस्तिनापुर के राजा के कुमार के रूप में उत्पन्न होता है। आठवें सर्ग में उसका नामकरण सनत्कुमार और युवक होने पर उसे युवराज बनाने का

---

१. जैन सन्देश, शोधाङ्क ७, पृ० २५१-२५४, पं० अमृतलाल शास्त्री का लेख : महाकवि हरिचन्द्र

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२; विशेष परिचय के लिए देखें—तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य (डा० श्यामशंकर दीक्षित), पृ० २२२-२४१

वर्णन है। ९-११वे सर्ग में सनत्कुमार का अपहरण, उसके मित्र महेन्द्र द्वारा खोज तथा प्राप्ति का वर्णन है। १२-२२वे सर्ग में सनत्कुमार के सकेत पर उसकी पत्नी बकुलमती सनत्कुमार के अश्व द्वारा अपहरण से लेकर सनत्कुमार द्वारा यक्षविजय, भानुवेग की अष्ट कन्याओं से विवाह आदि, अशनिघोष से युद्ध और बकुलमती आदि कन्याओं से विवाह का वर्णन करती है। इसी प्रसग मे चौदहवें और सोलहवे सर्ग में क्रमशः चन्द्रोदय और शरद् ऋतु का वर्णन है। बाईसवें सर्ग के अन्त में सूचना मिलती है कि सनत्कुमार अपने माता-पिता से मिलने चल देता है।

तेईसवें सर्ग में सनत्कुमार का नगर-प्रवेश, कुछ समय बाद एक देव का सनत्कुमार के सौन्दर्य को देखने आना और उसकी कान्ति को अचानक क्षीण होते देख ६ मास मे मृत्यु की सम्भावना कहकर जाना, इसे सुनकर सनत्कुमार का विरक्त होना वर्णित है।

चौबीसवें पर्व में सनत्कुमार का व्रत-उपवास करना, उसके शरीर में सात भयकर व्याधियों का उदित होना, देव द्वारा परीक्षा, अन्त में पचपरमेष्ठि मत्र का स्मरण कर सनत्कुमार का मोक्ष जाना वर्णित है। यहीं काव्य समाप्त होता है।

इस काव्य का कथानक अच्छा सगठित और व्यवस्थित है। सभी घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं जिससे कथानक मे अविच्छिन्नता और धारावाहिकता विद्यमान है। इसमे अन्य पौराणिक महाकाव्यों में मिलनेवाले दोषों अर्थात् अवान्तर कथाओं की योजना या लम्बे वर्णन का अभाव है।

सनत्कुमारचरित्र मे अनेक पात्र हैं पर इनमे सनत्कुमार का चरित्र अच्छी तरह विकसित हुआ है। अन्य पात्रों में अश्वसेन (पिता), महेन्द्र (मित्र), बकुलमती (पत्नी) आदि हैं। प्रकृतिचित्रण भी इस काव्य में विविध रूपों में हुआ है। चौदहवें और सोलहवें सर्ग इस दिशा मे अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अन्य सर्गों मे भी प्रकृति के व्यापक[1] रूप मिलते हैं। सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने नखशिख का वर्णन किया है, उसमें भी निसर्गसौन्दर्य का न कि प्रसाधन-सामग्री से अलकृत सौन्दर्य का। सामाजिक चित्रण में कवि ने वैवाहिक रीति-रिवाजों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक परम्पराओ का वर्णन प्रायः नहीं किया।

---

१. सर्ग १०. ६१, ५९, ६४, ६५; ११ ५, १४; १२. ४१, ६९; १५.१४; १६. ६३.

इसी तरह इस काव्य में जैनधर्म के नियमों या दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी नहीं के बराबर है। तृतीय सर्ग में गुणाढ्यसूरि की देशना का संकेत मात्र दिया गया है। पर परोक्षरूप से जैनधर्म की महत्ता का प्रतिपादन करना इस काव्य का उद्देश्य है।

इस काव्य का प्रधान रस शान्तरस[1] है पर अन्य रसों की भी अभिव्यक्ति इसमें हुई है। अष्टम सर्ग में सनत्कुमार की बाल-क्रीड़ाओं के वर्णन में वात्सल्य-रस[2] का सुन्दर उद्रेक हुआ है। दसवें सर्ग में सनत्कुमार की खोज के समय अटवी के वर्णन में भयानकरस[3] तथा मृत विष्णुश्री के दुर्गन्धित शव के चित्रण में बीभत्सरस[4] द्रष्टव्य है। अशनिघोष और सनत्कुमार के मध्य युद्ध-वर्णन में वीररस[5] देखा जा सकता है।

भाषा, रीति, गुण और अलंकार की दृष्टि से भी यह काव्य महनीय है। भाषा में गरिमा और उदात्तता है। रसों और भावनाओं के अनुकूल भाषा प्रवाहित हुई है। यत्र तत्र मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया गया है।[6] केवल एक सर्ग 'इक्कीसवें' की भाषा में पाण्डित्यप्रदर्शन किया गया है जिसे समझने के लिए बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। इसमें चित्रबंध के नाना उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसी सर्ग में शब्दालंकारों की छटा प्रदर्शित की गई है पर अन्य सर्गों में स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। उनमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। अन्य अलंकारों में सन्देह, उदाहरण, सभावना, विशेषोक्ति, परिसंख्या, एकावली, मुद्रा आदि द्रष्टव्य हैं।

इस महाकाव्य के सर्गों में प्रायः एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। कतिपय सर्गों में विविध छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसमें कुल मिलाकर चौंतीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। सबसे अधिक उपजाति, अनुष्टुप् और वशस्थ का प्रयोग हुआ है। अप्रचलित या अल्प-

---

१. सर्ग २३. ८-११; १६.६; १८. १४-२२.

२. सर्ग ८. ५, २३.

३. सर्ग १०. २७, ३१, ३४.

४. सर्ग ३. ३१-३५.

५. सर्ग २०.

६. सर्ग १. ८४; २. ३, ८८, ९०; ५. ४; १८. २३.

प्रचलित छन्दों में युग्मविमला, मणिगुणनिकरा, चण्डवृष्टिप्रयातोदण्डक, अर्णवाख्यदण्डक, व्यालाख्यदण्डक आदि हैं।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य के रचयिता जिनपालगणि हैं जो चन्द्रकुल की प्रवरवज्रशाखा के मुनि थे। वे खरतरगच्छ के सस्थापक जिनेश्वरसूरि की परम्परा में जिनपतिसूरि के शिष्य थे। खरतरगच्छ की वृहद्गुर्वावलि के अनुसार जिनपाल ने सं० १२२५ मे दीक्षा ग्रहण की थी, स० १२६९ मे जिनपतिसूरि ने उन्हे उपाध्याय पद प्रदान किया था, स० १२७३ में प० मनोजानन्द को हराकर जिनपाल उपाध्याय ने नगरकोट के राजा पृथ्वीचन्द्र से जयपत्र प्राप्त किया था। उनका स्वर्गवास सं० १३११ में हुआ था।[1] अभयकुमारचरित (स० १३१२) के रचयिता चन्द्रतिलकगणि को जिनपाल उपाध्याय ने धार्मिक ग्रन्थों को पढाया था।[2] श्री मो० द० देसाई के अनुसार जिनपाल उपाध्याय ने स० १२६२ मे षट्स्थानकवृत्ति की रचना करने के बाद इस महाकाव्य की रचना की थी।[3] इस काव्य की प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १२७८ वैशाख वदी ५ की मिलती है। इससे सनत्कुमारचरित का रचनाकाल स० १२६२ से १२७८ के मध्य का समय माना जा सकता है। कवि ने उक्त काव्य की रचना भक्तिभावना से प्रेरित होकर की थी।[4]

जयन्तविजय :

इस महाकाव्य[5] में मगधदेश के राजा जयन्त और उनकी विजयों का वर्णन किया गया है। इसमें १९ सर्ग हैं और यह महाकाव्य 'श्री' शब्दाङ्कित है। इसमें पद्य संख्या १५४८ है जो अनुष्टुभ्मान से २२०० श्लोक-प्रमाण है।

---

१. खरतरगच्छ-वृहद्गुर्वावलि (सि० जै० ग्र०), पृ० ४४-५०.

२. अभयकुमारचरित, प्रशस्ति, श्लो० ३८-४०.

३. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९५.

४. सर्ग २४. ११२.

५. काव्यमाला, ७५, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई; जै० ध० प्र० स० भावनगर; जिनरत्नकोश, पृ० १३३; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३०८ प्रभृति.

सर्गों के अनुसार इस काव्य का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है : प्रारम्भ में आठ पद्यों द्वारा मंगलाचरण, ६ पद्यों द्वारा सज्जन-दुर्जनस्वभाव-विवेचन के बाद कथा का आरम्भ होता है। तत्पश्चात् मगधदेश की जयन्ती नगरी के राजा विक्रमसिंह, उनकी पत्नी प्रीतिमती और मन्त्री सुबुद्धि का परिचय दिया गया है (१ सर्ग)। इसके बाद हथिनी और शिशुगज को देखकर रानी को सन्तान-अभाव से उदासीनता, राजा की प्राणों की बाजी लगाकर इच्छापूर्ति करने की प्रतिज्ञा का वर्णन है (२ सर्ग)। मन्त्री सुबुद्धि प्रतिज्ञापूर्ति का साधन पंच-परमेष्ठि मन्त्र को बताता है, उदाहरण के लिए धनावह सेठ की कथा दी गई है जिसने उक्त मन्त्र के प्रभाव से अनेक विपत्तियाँ पार की थीं (३ सर्ग)। तत्पश्चात् राजा द्वारा रात्रि में नगरवीक्षा करना, नारीचीत्कार का अनुगमन करते नमस्कार मन्त्र के बल से एक देवता को परास्त करना और उससे मुक्ताहार प्राप्त करना और आगे बढ़कर एक कन्या की बलि के लिए उद्यत एक योगी को परास्त कर कन्या प्राप्त करना वर्णित है (४ सर्ग)। कन्या के परिचय से यह मालूम करना कि वह उसकी रानी की बहिन है। फिर देवता द्वारा योगी का तथा राजा (विक्रमसिंह) के पूर्वजन्म का परिचय देना वर्णित है (५ सर्ग)। तत्पश्चात् राजा द्वारा कन्या को उसके पिता के पास लेकर जाना, कन्या के पिता विक्रमसिंह (राजा) के साथ उसका विवाह करना, नवविवाहिता पत्नी के साथ राजा का अपनी राजधानी जयन्ती नगरी को लौटना और देवता द्वारा प्रदत्त मौक्तिक आहार को रानी प्रीतिमती को देना, रानी का गर्भधारण करना और समय पर उसे जयन्त नामक पुत्र होना वर्णित है (६ सर्ग)। तत्पश्चात् जयन्त के युवा होने पर युवराज बनने तथा वसन्त ऋतु आने पर वनश्री देखने उपवन जाने का वर्णन है (७ सर्ग)। इसके बाद दोलान्दोलन, पुष्पावचय, जलकेलि, सूर्यास्त एव चन्द्रोदय का वर्णन है तथा युवराज के सध्यासमय राजधानी मे लौटने की सूचना दी गई है (८ सर्ग)।

एक समय सिंहलनरेश के हाथी के जयन्ती नगरी में भाग आने, उस हाथी को राजा द्वारा पकड़वाने, सिंहलनरेश के माँगने पर वापिस करने से अस्वीकार करने तथा सिंहलनृप द्वारा आक्रमण करने और उसका प्रतिरोध करने जयन्त का ससैन्य जाने का वर्णन है (९ सर्ग)। तत्पश्चात् सिंहलनृप की मृत्यु तथा जयन्त की विजय-यात्रा का वर्णन है (१० सर्ग)। इसके बाद जयन्त की दिग्विजय का वर्णन है (११ सर्ग)।

तत्पश्चात् एक देवता द्वारा गगनविलासपुर के नरेश की पुत्री कनकवती के विवाहार्थ जयन्त का अपहरण करना और उसका एक जिनमन्दिर मे पहुँचकर

धर्मसूरि मुनि से देशना सुनना वर्णित है (१२ सर्ग)। तत्पश्चात् जयन्त-कनकवती के विवाह का वर्णन है (१३ सर्ग) और विवाहोपरान्त ईर्ष्यावश आक्रमण करनेवाले नरेश महेन्द्र का युद्ध में वध (१४ सर्ग) का वर्णन है।

इसके बाद जयन्त के पिता विक्रमसिंह को मुनि के उपदेश से सम्यक्त्व की प्राप्ति, एक ब्राह्मण का मुनि द्वारा वाद-विवाद में पराजय और सभा से निष्कासन, उसी समय जयन्त का प्रत्यागमन (१५ सर्ग) और एक स्वयवर में जाकर रतिसुन्दरी का वरण (१६ सर्ग), विद्यादेवी द्वारा जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्व भव का वर्णन (१७ सर्ग), कवि के अनुसार जयन्त के द्वारा रतिसुन्दरी के समक्ष ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद् ऋतु का वर्णन, रतिसुन्दरी के पिता द्वारा जयन्त को हस्तिनापुर का राजा बनाना वर्णित है (१८ सर्ग)। तत्पश्चात् पिता के द्वारा आमन्त्रित होकर जयन्त का हस्तिनापुर से जयन्ती नगरी पहुँचना, पिता से राज्य-भार ग्रहण करना, विक्रमसिंह का दीक्षा ग्रहण करना तथा जयन्त द्वारा नीतिपूर्वक प्रजापालन करना और जिनेन्द्रभक्ति का प्रचार करना एव सौधर्मयति द्वारा सम्मान पाना, अन्त में सत्पात्र दान का महत्त्व दिया गया है (१९ सर्ग)।

इस काव्य की कथावस्तु में कहीं-कहीं पूर्वभवों के वर्णन के कारण प्रवाह में शिथिलता-सी दिखती है पर धारावाहिकता अविच्छिन्न है। नवें, दसवें और चौदहवें सर्ग के युद्ध-प्रसंगों मे पात्रों के कथोपकथन से नाटकीय सजीवता दृष्टि-गोचर होती है। वस्तुतः जयन्तविजय की कथासामग्री सरल, व्यापक एवं सुसम्बद्ध है। इसमे कई पात्र हैं पर विक्रमसिंह और जयन्त के चरित्र का अच्छा विकास हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी इस काव्य मे व्यापक रूप से किया गया है। देशों और ऋतुओं के वर्णन में इसके उदात्त दर्शन होते हैं।[1] प्रकृति-सौन्दर्य की भाति मानव सौन्दर्य के विविध पक्षों का अकन भी कवि ने इस काव्य में किया है।[2]

इस काव्य मे तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं की झलक भी यत्र-तत्र मिल जाती है।[3] इस काव्य का प्रधान लक्ष्य जयन्तकथा द्वारा पचपरमेष्ठि नमस्कार मन्त्र की महिमा बताना है। कवि ने वैसे जैनधर्म के नियमों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किये हैं फिर भी पन्द्रहवें सर्ग मे

1. सर्ग ८. ६०, ६८; १२ ३३; १४. १५, १८-१९, ३६; १८.१९ आदि.
2. सर्ग १. ६७-६९; १२. ३५; १७. ८४.
3. सर्ग ११. १२, ५८; १३. ५१, ८१, ८४, ९४; १६. १४.

धार्मिक तत्वों का निरूपण प्रधान हो गया है। इस निरूपण में कुछ शास्त्रार्थ शैली अपना ली गई है। तर्कों के आधार पर सर्वज्ञसिद्धि भी की गई है।[१]

इस काव्य में विविध रसों का परिपाक हुआ है। इसमे प्रधान रस वीर है। वीर रस के सहायक के रूप में रौद्र और भयकर रस का परिपाक हुआ है। इनके अतिरिक्त अगरूप में वात्सल्य, शृगार और शान्तरस भी विद्यमान हैं।[२]

इस काव्य की भाषा शुद्ध और सरल है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। इसमें क्लिष्टता और अस्वाभाविकता का पूर्ण अभाव है। प्रसग के अनुकूल रूपपरिवर्तन की क्षमता इस काव्य की भाषा की विशेषता है। भाषा में लोकोक्तियों और सूक्तियों का अच्छा प्रयोग किया गया है[३] जिससे भाषा अधिक प्रभावशालिनी हो गई है। इसी तरह इस काव्य की भाषा शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से सुसज्जित है। इसमें श्रुतिमधुर अनुप्रासों और यमक आदि शब्दालंकारों के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। अर्थालकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सहोक्ति आदि अनेक अलकारों की योजना हुई है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में प्रधान रूप से एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन कर दिया गया है। कवि का प्रिय छन्द उपजाति मालूम होता है। उसका प्रयोग प्रथम, छठे, दसवें, चौदहवें, सत्रहवें, उन्नीसवें सर्ग में हुआ है। इस काव्य में कुल मिलाकर १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

अनुष्टुभ् मान से इस काव्य की श्लोकसंख्या २२०० है।[४] प्रकाशित रचना में १५४८ पद्य हैं।

रचयिता और रचनाकाल—कवि ने इस काव्य के अन्त मे एक प्रशस्ति दी है। तदनुसार इसके रचयिता अभयदेवसूरि हैं। उन्होंने उक्त प्रशस्ति में अपनी गुरुपरम्परा देते हुए लिखा है कि चन्द्रगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए, उनके शिष्य नवागीटीकाकार अभयदेवसूरि हुए, उनके शिष्य प्रसिद्ध विद्वान् जिनवल्लभसूरि हुए और उनके शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए जिनके शिष्य का

---

१. सर्ग १५. ८, १०, १२, १७, २२-४२ आदि.

२. सर्ग १०. २७-२९; ९. ३८-३९; ४. ९-१२, १४; १६. २७; ६. ९६-९७; १८ ५०, ५५-५६ आदि.

३. सर्ग ५. २८, ३५, ५६, ५७; १२. १०९; १९. ४६

४ द्वाविंशतिशतमानं शास्त्रमिदं निर्मितं जयतु।

नाम पद्मेन्दु मुनिराज था। इस काव्य के रचयिता इन्हीं पद्मेन्दु मुनिराज के शिष्य थे। उक्त प्रशस्ति से कवि के सम्बन्ध में अन्य बातें नहीं ज्ञात होती हैं। प्रशस्ति में इस काव्य की रचना का समय स० १२७८ लिखा है (दिक्करिकुल-गिरिदिनकर (१२७८) परिमितविक्रमनरेश्वरसमायाम्)।

नरनारायणानन्द :

यह काव्य[1] महाभारत के उस कथा-प्रसग, जिसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन की मैत्री, रैवतक पर उनका विहार तथा अन्त में अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण वर्णित है, को लेकर रचा गया है। इस लघुकथानक को शास्त्रीय महाकाव्य के अनुरूप व्यापकरूप प्रदान किया गया है।

इस काव्य में १६ सर्ग हैं और रचना-परिमाण ७४० श्लोक है। अन्तिम सर्ग प्रशस्तिसर्ग है जिसमें कवि ने अपना, अपनी वंशपरम्परा तथा अपने गुरु का परिचय दिया है। इस सर्ग का मूल कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल १५ सर्ग ही मूल कथानक से सम्बद्ध हैं। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के नाम से दिया गया है। प्रथम सर्ग 'पुरनृपवर्णन' है। इसमें द्वारवती नगरी तथा श्रीकृष्ण का वर्णन है। दूसरे सर्ग 'सभावर्णन' में अर्जुन के प्रभास तीर्थ मे आने की सूचना मिलती है। तीसरे सर्ग 'नरनारायण सगम' में श्रीकृष्ण की अर्जुन से भेंट तथा पूछने पर अर्जुन द्वारा रैवतक पर्वत का वर्णन है। चौथे मे ऋतुवर्णन, पाँचवे में चन्द्रोदय, छठे में सुरापान-सुरत-वर्णन और सातवें में सूर्योदय वर्णन परम्परागत शैली के अनुसार दिये गये हैं। आठवे सर्ग में बलराम का अपने परिवार और सेना सहित रैवतक पर्वत पर आने का वर्णन है, इसे 'सेनानिवेशवर्णन' सर्ग कहा गया है। नवम सर्ग में पुष्पावचयप्रपच अर्थात् श्रीकृष्ण अर्जुन का वनक्रीड़ा के लिए वन में जाना तथा स्त्रियों के झूलों और पुष्पचयनों का वर्णन है। दसवें सर्ग 'सुभद्रादर्शन' में जलक्रीड़ा के समय सुभद्रा और अर्जुन का एक-दूसरे के प्रति मुग्ध होना प्रदर्शित है। ग्यारहवें सर्ग में अर्जुन और सुभद्रा का एक-दूसरे के लिए व्याकुल होना तथा दूती के द्वारा दोनों की रैवतक पर्वत पर मिलने की

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०७; गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९१६; महाकाव्यत्व के लिए देखें—डा० श्यामशंकर दीक्षित, तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० ९७-१२०; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३२९–३५०.

योजना वर्णित है। बारहवें सर्ग में सुभद्रा का कामदेव की पूजा के लिए रैवतक पर्वत पर जाना तथा अर्जुन द्वारा रथ में बैठा कर उसका अपहरण, बलराम की अर्जुन से युद्ध करने की तैयारी, श्रीकृष्ण द्वारा समझाना वर्णित है। तेरहवें सर्ग में सेनापति सात्यकि की सेना से अर्जुन का युद्ध और चौदहवें सर्ग 'अर्जुनावर्जन' में बलराम और श्रीकृष्ण द्वारा युद्ध शान्त करना और पन्द्रहवें सर्ग में बलराम द्वारा अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह वर्णित है।

इस तरह यह काव्य महाभारत के लघुप्रसंग को महाकाव्योचित विधि से विस्तारपूर्वक वर्णित करता है। पर्वत, ऋतु, संध्या आदि वर्णन कथावस्तु के विकास में शिथिलता उत्पन्न करते हैं। कथावस्तु की धारावाहिकता भी इन वर्णनों से विच्छिन्न हुई है। परन्तु कवि ने कुछ प्राचीन काव्यों—शिशुपालवध एवं किरातार्जुनीयम्—को आदर्श बनाकर अपने इस काव्य की रचना की है इसलिए वह इन दोषों का दोषी नहीं है। उन काव्यों में भी ये दोष विद्यमान हैं। उन काव्यों की तरह ही 'नरनारायणानन्द' में भी कथानक गौण और वस्तुव्यापार-वर्णन एवं अलंकृत प्रकृतिचित्रण प्रधान हो गया है।

इस काव्य के सभी पात्र पौराणिक हैं अतः उनके चरित्र के विकास में पौराणिक रूप की रक्षा की गई है। इसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन के चरित्र कुछ विशेष महत्त्व रखते हैं जो आदि से अन्त तक दिखाई देते हैं।

प्रकृतिचित्रण का भव्य रूप इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न सर्ग के सर्ग इस ओर लगे हैं। पात्रों के सौन्दर्य-वर्णन में केवल सुभद्रा का सौन्दर्य-चित्र उपस्थित किया गया है, अन्य पात्रों का नहीं।

रस की दृष्टि से इसमें शृंगाररस की प्रधानता है। उसके अनुकूल सुरापान, सुरत, वनक्रीड़ा, पुष्पावचय, दोला एवं जलक्रीड़ा का वर्णन हुआ है। अन्य रसों में रौद्र, वीर और भयानक भी प्रसंग-प्रसंग पर दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य में हास्य, करुण और शान्तरस का अभाव है।

भावानुकूल भाषा, रीति, गुण, अलंकार और छन्दयोजना की दृष्टि से भी यह एक भव्य एवं प्रौढ काव्य है। इस काव्य की भाषा भाव और परिस्थिति के अनुसार ही कहीं कोमल, कहीं मधुर और कहीं ओजस्विनी है। इस काव्य की भाषागत विशेषताओं में रूपपरिवर्तन की क्षमता, कान्ति और प्रसादगुणता, चित्रात्मकता और प्रभावोत्पादकता सर्वत्र देखने को मिलती है। इस काव्य में एक सर्ग (१४वाँ) ऐसा भी है जहाँ भाषा में अतिदुरूहता और कृत्रिमता है।

इसमें कवि ने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए शब्दों में खिलवाड़ किया है। कहीं एकाक्षर (ल) श्लोक, कहीं द्व्यक्षर (प और र, ल और क), कहीं चतुरक्षर (न, क, त और र), कहीं षडक्षर (श, र, व, य, स, ल) श्लोक और कहीं अंतस्थ अक्षरों का ही प्रयोग किया गया है। इसी तरह किसी श्लोक में दन्त्य, किसी में तालव्य, किसी मे ओष्ठ्य, किसी में मूर्धन्य, तो किसी मे सयुक्ताक्षरों का बहिष्कार किया गया है।[१] महाकवि माघ के शिशुपालवध के समान ही कवि ने इस काव्य के पूरे १४वें सर्ग को चित्रालकार से चित्रित किया है। इसमें सशर-शरासनबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, मुरजबन्ध, षोडशदलकमलबन्ध, खड्गबन्ध, सर्वतोभद्र, कविनामाङ्कशक्तिबन्ध आदि की रचना की गई है।[२] इस तरह १४वें सर्ग में शब्दालङ्कारों की भरमार है। इस सर्ग के अतिरिक्त सर्वत्र अर्थालंकार के प्रयोग में कवि ने स्वाभाविकता का ध्यान रखा है। अर्थालकार में उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, परिसख्या आदि अलंकारों[३] के सुन्दर उदाहरण इस काव्य में विद्यमान हैं।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग मे अलग-अलग छन्दों का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदले गये हैं। कुल मिलाकर २१ छन्दों का प्रयोग हुआ है। छठे सर्ग में एक अज्ञातनामा अर्धसम वर्णिक छन्द (न न र य स भ र य) का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्तिम सर्ग मे कवि ने प्रशस्ति में अपना, अपनी वंशपरम्परा और गुरु का परिचय दिया है। तदनुसार इसके रचयिता वस्तुपाल हैं जो धोलका (गुजरात) के राजा वीरधवल तथा उसके पुत्र वीसलदेव के महामात्य थे। ये जैन धर्म और गुजरात के इतिहास में अद्वितीय व्यक्ति हुए हैं। इनके अनेकविध गुणों की प्रशंसा तत्कालीन लेखको ने खूब की है। ये वीर योद्धा और निपुण राजनीतिज्ञ के साथ-साथ स्वयं बड़े विद्वान् कवि और काव्यमर्मज्ञ थे। नरनारायणानन्द के अतिरिक्त शत्रुंजयमण्डन, आदिनाथस्तोत्र, गिरिनारमण्डन, नेमिनाथस्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र आदि अनेक स्तोत्रों की रचना इन्होंने की थी। इनके द्वारा रचित सुभाषित जल्हण की 'सूक्ति-

---

१. सर्ग १४. ३, ५, १३, २१, २२, २३, २५, २८, २९, ३३, ४२ आदि.

२. सर्ग १४. ९, ११, १६, १७, २७, ३४.

३. सर्ग १. २३, ४२; ३. ४; ८. २९, ३७, ११. ७, १३; १२. ५४, ६६, ७९; १३. २८.

मुक्तावली' और शार्ङ्गधर की 'शार्ङ्गधरपद्धति' मे उद्धृत किये गये हैं। 'प्रबन्धचिंतामणि' (मेरुतुंग), 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' (जयशेखर), 'वस्तुपालचरित्त' (जिनहर्ष) और 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' आदि ग्रन्थों में भी वस्तुपाल की सूक्तियाँ मिलती हैं।

समकालीन अभिलेखों और काव्यों में वस्तुपाल के कई विरुद मिलते हैं, यथा—सरस्वतीधर्मपुत्र, कविकुंजर, कविचक्रवर्ती, वाग्देवतासुत, कूर्चालसरस्वती, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि।[1] वह अनेक कवियों का आश्रयदाता भी था। उसके साहित्यमण्डल में राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाकपण्डित, मदन, सुभट, मन्त्री यशोवीर और अरिसिंह थे। अन्य कवि और विद्वान् यथा—अमरचन्द्रसूरि, विजयसेनसूरि, उदयप्रभसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि, बालचन्द्रसूरि, जयसिंहसूरि, माणिक्यचन्द्रसूरि आदि मुनिगण वस्तुपाल के अति सम्पर्क में थे।[2]

प्रशस्ति के अनुसार वस्तुपाल का दूसरा नाम वसन्तपाल[3] था। वह अणहिल्लपत्तन के एक शिक्षित कुटुम्ब मे उत्पन्न हुआ था। उसके प्रपितामह चण्डप गुर्जरेश की राजसभा के दरबारी थे। उसके पिता का नाम अश्वराज या आशाराज था तथा माता का नाम कुमारदेवी था। उसने माता-पिता के पुण्यार्थ गिरनार आदि कई तीर्थों की यात्रा की थी। उसके गुरु विजयसेनसूरि थे।[4]

प्रस्तुत काव्य का रचनाकाल नहीं दिया गया है। वस्तुपाल ने आदिनाथ के दो मन्दिरों का स० १२८७ (आबू पर्वत पर) और सं० १२८८ (गिरनार पर) में निर्माण कराया था। इनका उल्लेख इस काव्य मे नहीं है। उसने स० १२७७ मे शत्रुञ्जय की यात्रा की थी और आदिनाथस्तोत्र रचा था। उसके बाद ही इस काव्य की रचना की गई है। अतः अनुमान होता है कि स० १२७७ और १२८७ के बीच उसने यह काव्य रचा था। वस्तुपाल का स्वर्गवास माघ कृष्णा ५ स० १२९६ (सन् १२४०) में हुआ था।[5]

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० ५५.

२. वही, पृ० ६०—११६.

३. सर्ग १६. ३८.

४. सर्ग १६. १६.

५. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९८.

मुनिसुव्रतकाव्य :

इस काव्य[1] में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी का जीवनवृत्त लिखा गया है। इसके कथानक का आधार गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' है। इस काव्य का दूसरा नाम काव्यरत्न है।[2] यह १० सर्गों में विभक्त है जिनमे कुल मिलाकर ४०८ पद्य हैं। इस प्रकार इस छोटे काव्य में मुनिसुव्रत स्वामी का गर्भ-जन्म से लेकर मोक्ष तक का जीवनचरित्र बड़े रोचक ढग से वर्णित है।

सर्गों का नाम वर्णित घटना के अनुसार दिया गया है। पहले भगवत्-अभिजन-वर्णन में मगध देश और राजगृह नगर का वर्णन है। द्वितीय में माता-पिता, तृतीय मे गर्भावतरण, चतुर्थ में जन्मोत्सव, पचम में मन्दराचल पर शिशु को लाने का तथा छठे मे जन्माभिषेक एव नामकरण का वर्णन है। सातवें में कुमारावस्था, यौवन, विवाह एवं साम्राज्यपद पाने का वर्णन है। आठवें में परिनिष्क्रमण, नवें में तप का और दसवें मे उपदेश तथा मुक्तिपद पाने का वर्णन है।

इस तरह कथानक में सुनियोजित विकासक्रम दिखाई पड़ता है। कवि ने अन्य काव्यों की भाति पूर्वजन्मों के वर्णन से काव्य को बोझिल नहीं किया है। इसलिए इसमें धारावाहिकता और गतिशीलता अविच्छिन्न है। इस काव्य में सुमित्र (भग० के पिता), पद्मावती (माता) और मुनिसुव्रत ये ही तीन पात्र हैं। इन्हीं के चरित्र का इसमें विकास किया गया है। इस लघुकाय काव्य में विविध प्राकृतिक दृश्यों को स्थान देकर उसे मनोहर बनाने की चेष्टा की गई है।[3] इसी तरह मानवसौन्दर्य का भी चित्रण इस काव्य में किया गया है, माता पद्मावती के वर्णन में इसे भलीभाति देखा जा सकता है।

वैसे यह शास्त्रीय शैली का काव्य है। इसमें उक्त शैली के महाकाव्यो की तरह विस्तृत वस्तुवर्णन तथा काव्यात्मकता अधिक है और कवि का अलकारों की ओर विशेष झुकाव है फिर भी इसमें पौराणिक रूप की रक्षा हुई है और उस ओर भी झुकाव है इसलिए इसमें दोनों शैलियों का मिश्रण देख सकते हैं।

---

१. देवकुमार ग्रन्थमाला, प्रथम पुष्प, जैन सिद्धान्त भवन, आरा, १९२९; जिनरत्नकोश, पृ० ३१२.
२. सर्ग १. २०.
३. सर्ग १. २४, ३०, ३६, ४०; ३. १९; ९. ३, ९, १०, १३, २२, २७, २८; १०. १७.

पर अन्य पौराणिक शैली के महाकाव्यों के विपरीत इसमें अवान्तर और प्रासगिक कथाओं का अभाव है, साथ ही उपदेशात्मकता या देशनाओं का भी अभाव है। केवल दशम सर्ग मे जिनेन्द्रकृत जीवाजीवादि तत्त्वो के निरूपण का सकेत मात्र किया गया है।

इस काव्य में कोमल रसों का ही चित्रण हुआ है इसलिए वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों का नितान्त अभाव है। यह एक वैराग्यमूलक काव्य है इसलिए शान्तरस की प्रधानता है।[1] यत्र-तत्र हास्य और वात्सल्यरस के दर्शन भी होते हैं।[2]

इस काव्य की भाषा प्रौढ़ और सरस है। इसकी भाषा का सबसे बड़ा गुण एकरूपता है। इसमे कहीं भी अधिक क्लिष्टता और अव्यवस्था नहीं है। इस काव्य की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अलंकारों से सजी है। सम्पूर्ण काव्य मे शायद ही कोई पद्य अलकार से रहित हो। पर अलकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है, न कि बलात्। शब्दालंकारों मे अनुप्रास तथा अर्थालकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान् और परिसख्या का प्रयोग काव्य मे बहुत हुआ है। अन्य अलकारों मे रूपक, अर्थान्तर-न्यास, अतिशयोक्ति आदि भी द्रष्टव्य हैं। इस काव्य पर एक अच्छी सस्कृत टीका लिखी गई है जिसमें प्रत्येक पद्य के अलकार सूचित किये गये हैं।

इस काव्य के एक सर्ग मे एक ही छन्द का और सर्गान्त में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पचम मे उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। षष्ठ और दशम मे विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। सब मिलाकर १२ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल—कवि ने प्रस्तुत काव्य के अन्त मे कोई प्रशस्ति नहीं दी है फिर भी दसवें सर्ग के ६३वें पद्य से इस काव्य के रचयिता का नाम अर्हद्दास ज्ञात होता है।[3] इस काव्य के अतिरिक्त अर्हद्दासकृत दो अन्य कृतियाँ मिलती हैं : पुरुदेवचम्पू और भव्यकण्ठाभरण। प्रस्तुत काव्य और उपर्युक्त कृतियों के कुछ पद्यों से ज्ञात होता है कि अर्हद्दास के काव्यगुरु पं०

---

१. सर्ग ८. ३-४; २ ३०.३१.

२. सर्ग ५. ३१; ६. ३१; ७. ७.

३. 'अर्हद्दासः सभक्त्युल्लसितं', 'अर्हद्दासोऽयमित्थं जिनपतिचरितं' इत्यादि ।

आशाधर थे। प० आशाधर का समय उनके ग्रन्थों की प्रशस्तियों से स० १३
के आसपास का है। आशाधर का अन्तिम ग्रन्थ 'अनगारधर्मामृत' है जि
रचना वि० सं० १३०० में समाप्त हुई थी। अर्हद्दास ने १०वे सर्ग के ६
पद्य में आशाधर के 'धर्मामृत' पान का उल्लेख किया है तथा भव्यजनक
भरण के एक पद्य का निर्माण 'सागारधर्मामृत' के एक पद्य के अनुकरण
किया है। इस सबसे ज्ञात होता है कि वे अवश्य ही आशाधर के निकटकाल
कवि रहे होगे। अनुमान से उनका समय स० १३०० के बाद और स० १३
के मध्य कभी रहा होगा।[१] इस काव्य पर एक अच्छी संस्कृत टीका उपलब्ध
अनुमान है कि कवि की यह स्वोपज्ञ टीका है।[२]

श्रेणिकचरित :

इस महाकाव्य[३] का दूसरा नाम दुर्गवृत्तिद्वयाश्रय महाकाव्य है। इस क
में श्रेणिकचरित्र के साथ साथ कातन्त्रव्याकरण पर प्राप्त दुर्गसिंहरचित वृत्ति
अनुसार व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों को भी प्रदर्शित किया गया है। इसलि
इस महाकाव्य के दो नाम दिये गये हैं। इसमे १८ सर्ग हैं। इसमे प्रत्येक
का नाम सर्ग में वर्णित घटना के आधार पर रखा गया है।

इस काव्य के कथानक का क्रमिक विकास लक्षित नहीं होता है। कथानक
प्रारम्भिक ग्यारह सर्गों में जिनेश्वर और उनके उपदेशों की प्रधानता है
सर्ग धार्मिक वातावरण से व्याप्त हैं परन्तु बारहवें सर्ग से कथानक की ध
एकदम मुड़ गई है। इन सर्गों में देव द्वारा दिये गये हार के खो जाने
उसकी तत्परता से खोज का वर्णन किया गया है। इसके अन्तिम सात सर्गों
कथानक में धार्मिक वातावरण का अभाव है और लौकिकता की प्रवृत्ति अधि
है। कथानक के इस सहसा मोड ने कथा को दो भागों में विभक्त कर दि
है। दोनों में बहुत ही शिथिल सूत्र से सम्बन्ध जोड़ा गया है, इससे काव्य मे

---

१. तेरहवी-चौदहवीं शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य, पृ० ३२६.

२. भूमिका, पृ० ३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १८६ और ३९९; जैन धर्मविद्या प्रसारक वर्ग, पालित
से केवल प्रथम सात सर्ग प्रकाशित, शेष ग्यारह सर्ग अब तक अप्रका
हैं। विशेष परिचय के लिए देखें—डा० श्यामशकर दीक्षित, तेरह
चौदहवी शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० १२०-१४३.

सन्धियों की योजना का निर्वाह पूर्णतः नहीं हुआ है। इस त्रुटि के अतिरिक्त इस रचना में महाकाव्य के अन्य सभी शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह किया गया है। इसके साथ साथ उदात्त भाषा-शैली, प्रौढ कवित्व-कल्पना, गम्भीर पाण्डित्य, उच्च आदर्श एवं मानव जीवन की विविधता के दर्शन भी इस काव्य में होते हैं।

श्रेणिकचरित्र मे शास्त्रीय शैली के साथ पौराणिक शैली के भी दर्शन होते हैं। इसमे अन्य पौराणिक महाकाव्यों के समान स्थान-स्थान पर भ० महावीर की देशनाएँ और देशनाओं में भी अवान्तर कथाओं की योजना की गई है। इस काव्य में भवान्तरों के वर्णन द्वारा पूर्वजन्म के पुण्य-पाप का फल उत्तर-भव मे दिखाया है यथा सेडुक ब्राह्मण जैनधर्मविरुद्ध कार्य से मेंढक होता है और मेढक भक्तिभावना से देव हो जाता है। कई अतिमानवीय घटनाओं का भी वर्णन इस काव्य में है। इन सब पौराणिक विशेषताओं के रहने पर भी श्रेणिकचरित को हम पौराणिक महाकाव्य नहीं मान सकते क्योंकि इसके प्रत्येक पद्य में कोई न कोई उक्त व्याकरण का सिद्ध प्रयोग अवश्य दिखाया गया है। अतः शास्त्रीयता की ओर अधिक बल होने से इसे शास्त्रीय काव्य मानना चाहिये।

इस काव्य की कथावस्तु का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—एक से छठे सर्ग तक राजगृह नगर, श्रेणिक नरेश, उसकी रानियाँ, राजकुमार अभय का वर्णन तथा महावीर का आगमन, उनके दर्शनार्थ लोगों का जाना, समवसरण में अर्चना-वन्दना तथा उनको देशना का वर्णन है। सातवें सर्ग में देशना के समय एक कोढ़ी आकर महावीर की अपने पूय रस से पूजा कर उनसे 'मर जाओ' तथा श्रेणिक से 'जीओ' और अभयकुमार से 'जीओ चाहे मरो' और कालशौकरी कसाई से 'न जीओ न मरो' कहता है। इससे क्रुद्ध होकर श्रेणिक उसे पकड़ने का सैनिकों को आदेश देता है पर वह अन्तर्धान हो जाता है। तब आश्चर्य में पड़कर राजा महावीर से उस कोढ़ी के विषय में पूछता है। आठवें-नौवे-दसवें सर्ग में कोढ़ी सुर के पूर्व भव का वर्णन दिया गया है और उसके वक्तव्यों की व्याख्या दी गई है तथा श्रेणिक के राजभवन लौटने का वर्णन है।

ग्यारहवें सर्ग में वही देव श्रेणिक के सम्यक्त्व की परीक्षा करता है और प्रसन्न हो एक गोल्लक और अमूल्य हार का दान करता है। बारहवें सर्ग मे काल-शौकरी कसाई का मरण और उसके पुत्र सुलस के धार्मिक जीवन का वर्णन दिया गया है।

तेरहवें सर्ग में श्रेणिक द्वारा रानी नन्दा को गोल्लक तथा चेल्लणा को हार देने का वर्णन है। चौदहवें सर्ग मे राजा श्रेणिक की दिनचर्या का वर्णन है। पन्द्रहवें सर्ग मे हार के टूटने तथा उसके जोड़ने वाले मणिकार का मर कर बन्दर होना और जोड़ने के लिए राजा द्वारा पूरा धन न देने के कारण अवसर पाकर हार की चोरी कर अपने पुत्रों को हार देना वर्णित है।

सोलहवें सर्ग में हार की खोज के लिए अभयकुमार को आदेश देने का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में वानर द्वारा हार को लेकर सुस्थिताचार्य मुनि की ध्यानस्थ अवस्था में उनके कण्ठ में डालना तथा अभयकुमार का मुनि के दर्शन के लिए पहुँचना वर्णित है। अठारहवें सर्ग में आचार्य सुस्थित से हार प्राप्त कर अभयकुमार द्वारा पिता को सौंपना और कथानक की समाप्ति होना वर्णित है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना भी दी गई है।

इस काव्य में अनेक पात्र हैं पर महावीर, श्रेणिक, अभयकुमार और कुष्ठीदेव के चरित्र का ही अधिक विकास हुआ है।

यद्यपि इस काव्य में व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों की ओर ध्यान विशेष दिया गया है फिर भी यत्र-तत्र कवि ने प्रकृति-चित्रण विविध रूपों मे किया है। पर सौन्दर्य-चित्रण इस काव्य में नहीं के बराबर है क्योंकि कवि का व्याकरण-स्वरूप विशेष प्रबल है। फिर भी धार्मिक आग्रह की प्रबलता के कारण कवि ने धार्मिक नियमों और सिद्धान्तों का विवेचन खूब किया है।[१]

व्याकरण पक्ष को १८ सर्गों में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है : प्रथम सर्ग मे पाँचों सधियाँ तथा कुछ सर्वनाम रूप, द्वितीय सर्ग में शब्द रूप, तृतीय में कुछ सर्वनाम रूप और कारक, चतुर्थ मे समास, पचम में तद्धित, छठे में क्रियाओं के वर्तमानकालिक रूप, सातवें में भूतकालिक रूप, आठ से ग्यारह तक क्रियाओं के विविध सिद्ध रूप और बारहवें से अठारहवें तक कृदन्त के रूप— इस तरह कातन्त्र पर उपलब्ध दुर्गवृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों को प्रदर्शित करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

वैसे इस काव्य का प्रधान रस शान्तरस है फिर भी शृंगार, करुण, रौद्र, वीर आदि अन्य रसों का अच्छा परिपाक दिखाया गया है।

---

१. सर्ग ५. १३, १४, १७, ४२, ६३, ७७, ८८-८९; ६. ६३, ६४, ८५, १६८, १६९ आदि.

इस काव्य की भाषा व्याकरण के प्रयोगो से बोझिल होने से भिन्न प्रकार की है। इसमे भाषा की स्वाभाविकता सुरक्षित नहीं रह सकी है। अनेक स्थलों पर अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। फिर भी इसमें स्थान-स्थान पर भाषासौष्ठव, लालित्य और मनोहर पदविन्यास के दर्शन होते हैं। इस तरह इस काव्य में सरल और कठिन दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

विविध अलकारों की योजना भी इस काव्य में की गई है। शब्दालकारों मे अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालकारों मे उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के अधिक दर्शन होते हैं।

पॉचवें सर्ग को छोडकर कवि ने प्रत्येक सर्ग की रचना अनुष्टुभ् छन्द मे की है परन्तु सर्ग के अन्त मे विविध छन्दों का प्रयोग किया है। पॉचवे सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग दर्शनीय है। कुछ अप्रचलित छन्द जैसे—वैश्वदेवी, निवास, वेगवती आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है।

श्रेणिकचरित की कुल श्लोकसंख्या २२६७ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता जिनप्रभसूरि हैं जो लघुखरतरगच्छ के स्थापक तथा चन्द्रगच्छीय जिनेश्वरसूरि के प्रशिष्य और जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। ये मुस्लिम शासक मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे तथा उसके द्वारा बहुत सम्मानित हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी थीं तथा अनेक स्तोत्रों की रचना की थी। ये प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विविधतीर्थकल्प' के रचयिता हैं। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना दयाकरमुनि की प्रार्थना पर वि० स० १३५६ मे की थी।[1]

शान्तिनाथचरित :

इस महाकाव्य[2] की कथावस्तु का आधार मुनिदेवसूरिकृत 'शान्तिनाथचरित' है। कवि ने अपने काव्य में मुनिदेवसूरि का अनुकरण किया है, फलस्वरूप कथानक में कवि की मौलिक देन कुछ भी नहीं है। मूलकथा के साथ इसमें अवान्तर कथाओं की भरमार है यथा मगलकुभकथानक, धनदपुत्रकथा,

---

१. प्रशस्तिपद्य २.
२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वीर सं० २४३७.

अमरदत्तनृपकथा, वणिकद्वयकथा, परिव्राटकथा, अमृताम्रभूपतिकथा, स्कन्दिल-पुत्रकथा, गुणवर्मकथा, अग्निशर्माद्विजकथा, भानुदत्तकथा, माधवकथा आदि। इनमे से कुछ अवान्तर कथाएँ बहुत लम्बी हैं। धनदत्तकथा ५-६-७ सर्गों को घेरे है। इन अवान्तर कथाओं के चयन मे भी प्रस्तुत काव्य के रचयिता मुनिभद्र ने मुनिदेव का अनुकरण किया है। मुनिदेवसूरि के शान्तिनाथचरित्र मे जो अवान्तर कथाएँ उपलब्ध हैं ठीक वे ही उसी क्रम से प्रस्तुत काव्य में विद्यमान हैं। इसी तरह प्रस्तुत काव्य में जैन धर्म के उन्हीं तत्त्वों का विवेचन हुआ है जिनका विवेचन मुनिदेवसूरि ने किया है। इस तरह इस काव्य मे कथावस्तु पूर्णतया मुनिदेव के 'शान्तिनाथचरित्र' के पदचिह्नों पर चली है। इसमें मुनिभद्र ने मौलिक सृजनशक्ति का परिचय नहीं दिया फिर भी यह काव्य अपनी प्रौढ़ भाषाशैली और उदात्त अभिव्यजनाशक्ति से अपना पृथक् स्थान रखता है। इस दृष्टि से यह मौलिक और नवीन लगता है।

यह काव्य उन्नीस सर्गों मे विभक्त है। अनुष्टुभ्-मान से इसका रचना-परिमाण ६२७२ श्लोक-प्रमाण है।

भवान्तरों और अवान्तर कथानकों के प्राचुर्य के साथ इस काव्य में स्तोत्रों और माहात्म्यों का समावेश भी अधिक मात्रा में हुआ है तथा प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ में कवि द्वारा शान्तिनाथ का स्तवन तथा बीच-बीच में देवताओं और कथानक के पात्रों द्वारा जिनेन्द्र की स्तुतियाँ और मेघरथ आदि सत्पुरुषों की देवताओं द्वारा स्तुतियाँ की गई हैं। शत्रुञ्जयमाहात्म्य आदि एक-दो माहात्म्य भी इस काव्य में हैं।

इस काव्य में अनेक पुरुष एव स्त्री पात्र हैं किन्तु चरित्रचित्रण की दृष्टि से इनमें शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिघोष एव सुतारा ही प्रमुख पात्र हैं, इन्हीं के चरित्र का विकास हुआ है, शेष पात्रों का नहीं। इस काव्य मे प्रकृति-चित्रण कम किया गया है। कहीं-कहीं संक्षेप मे प्रातः, सध्या, सर, उपवन एवं विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया गया है। सौन्दर्य-चित्रण भी कवि ने किया है परन्तु उसे परम्परागत उपमानों द्वारा ही, किन्तु इन प्रयोगों में भी कवि की कल्पनाएँ बहुत कुछ मौलिक एव सुन्दर हैं।

इस काव्य में समसामयिक सामाजिक अवस्था का सुन्दर वर्णन हुआ है। अपने युग में जन्म, विवाह आदि अवसरों पर होनेवाले सामाजिक-धार्मिक

कार्यों के विस्तृत विवरण देकर कवि ने सामाजिक रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश डाला है।[1]

काव्यकला के अन्तरग पक्ष को कवि ने विविध रसों की योजना द्वारा पुष्ट किया है। इसमें प्रधान रस शान्तरस है पर शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक एव वात्सल्यरस की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है।

इस काव्य की भाषा में प्रौढ़ता, लालित्य और अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। कवि ने इसे अलंकारों से सजाने की चेष्टा की है। शब्दालकारों में यमक का प्रयोग तो स्थल-स्थल पर किया गया है पर भाषा की सरलता अक्षत है। इसी तरह अनुप्रास और विशेषकर अन्त्यानुप्रासों की योजना की गई है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलकारों का अर्थात् उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। इस काव्य में अधिकतर अलकार यत्नसाध्य हैं फिर भी यत्र-तत्र स्वाभाविक योजना भी दिखाई पड़ती है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। चौदहवें सर्ग मे विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुल मिलाकर १९ छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है। इनमें उपजाति का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता मुनिभद्रसूरि थे जो बृहद्गच्छ के थे। उक्त गच्छ में मुनिचन्द्रसूरि नामक गच्छपति हुए थे जिनके पट्ट पर कालक्रम से देवसूरि, भद्रेश्वरसूरि, विजयेन्दुसूरि, मानभद्रसूरि तथा गुणभद्रसूरि हुए। गुणभद्रसूरि दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे और उससे सम्मानित थे। इन्हीं गुणभद्र के शिष्य इस काव्य के रचयिता मुनिभद्रसूरि थे। तत्कालीन मुस्लिम नरेश फीरोजशाह तुगलक इनकी बड़ी इज्जत करता था। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है।[2]

इस काव्य की रचना मुनिभद्रसूरि ने भक्तिभावना और विशेषकर पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना से प्रेरित होकर की है। कवि ने काव्यपचक—रघुवश, कुमार-

---

१. सर्ग १. ५४; २. ११२, ११९, १२०-१२८; ४. २६, ५९-६०, १०८-११०, ११५-११८ आदि.

२ प्रशस्तिपद्य ९.

सम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधचरित—के समकक्ष जैन सस्कृत साहित्य में काव्य के अभाव की पूर्ति के लिए उक्त काव्य की रचना की है।[1] इस काव्य का संशोधन राजशेखरसूरि ने किया था।[2] कवि ने इस काव्य की रचना का समय भी उक्त प्रशस्ति में स० १४१० दिया है।[3]

जयोदय-महाकाव्य :

इस काव्य में २८ सर्ग हैं जिनमें जिनसेन प्रथम द्वारा महापुराण मे वर्णित ऋषभदेव-भरतकालीन जयकुमार-सुलोचना के पौराणिक कथानक को महाकाव्य का रूप दिया गया है।[4] इसके ३-५ सर्गों में स्वयवर का वर्णन, ६-८ मे युद्धवर्णन, ९वें में जयकुमार के विवाह का विस्तृत वर्णन आदि, १४वें सर्ग में वन-क्रीडा-वर्णन, १५वें में सध्या-वर्णन, १६वें में पानगोष्ठी, १७वें में रात्रि एवं सभोग-वर्णन, १८वें में प्रभात-वर्णन महाकाव्य के अनुरूप वर्णित हैं।

इस काव्य में कवि ने विविध छन्दों, शब्द और अर्थ अलकारों तथा विविध रसों के सन्निवेश के साथ कथानक को बड़े रोचक ढग से दिया है। अनुप्रास का जगह-जगह अधिक मात्रा में प्रयोग होने से कहीं-कहीं अर्थ की स्पष्टता मे बाधा आती है। प्रस्तुत काव्य मे कविपरम्परा के नियमों के निर्वाह के साथ आधुनिकता का पुट विशेष दिखाई देता है। नये परिवेश मे पुराने छन्दों का प्रयोग देखने लायक है। सामान्यतः प्रत्येक सर्ग के उपान्त्य पद्य में प्रायः एक-न-एक चक्रबन्ध का प्रयोग किया गया है जो शब्दालकार की प्रियता को सूचित करता है।

इस काव्य के उक्तिवैचित्र्य के कुछ नमूने इस प्रकार हैं :

कविताया: कविः कर्ता रसिकः कोविदः पुनः।
रमणी रमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता॥

× × ×

---

१. वही, पद्य १३-१४.

२. वही, पद्य ११.

३. वही, पद्य १२.

४ प्रका०—ब्रह्म० सूरजमल, वी० सं० २४७६.

यदालोकनतः सद्यः सरलं तरलं तराम् ।
रसिकस्य मनोभूयात्कवित्ता वनितेव सा ॥

× × ×

सदुक्तिमपि गृह्णाति प्राज्ञो नाज्ञो जनः पुनः ।
किमकूपारवत्कूपं वर्धयेद्विधुदीधितिः ॥

कर्ता एवं रचनाकाल—यह आधुनिक काल की रचना है। इस काव्य के अन्त मे दी गई प्रशस्ति[1] से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता बाल-ब्रह्मचारी वाणीभूषण पं० भूरामल शास्त्री हैं। ये जयपुर के पास राणाली ग्राम के निवासी दिग० जैन खण्डेलवाल जाति के छावड़ा गोत्र के थे। प्रशस्ति में इन्होंने अपने पिता का नाम श्रेष्ठि चतुर्भुज और माता का नाम घृतवरी देवी सूचित किया है। इसे कवि ने नव्यपद्धति से बनाया काव्य कहा है।[2] इस काव्य की रचना स० १९९४ के लगभग हुई है।

कुछ जैन कवियों ने जैन कथानकों के अतिरिक्त अन्य कथानकों पर भी महाकाव्य लिखे हैं। उनमे अमरचन्द्रसूरि का बालभारत महत्त्व का है।

बालभारत :

यह 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का सार है।[3] मूल महाभारत की तरह ही यह भी १८ पर्वों मे विभाजित है और ये पर्व भी एक या एक से अधिक सर्गों में विभाजित हैं। इन सर्गों की संख्या ४४ है। इसमे कुल मिलाकर ५४८२ पद्य हैं जो कि विविध २३ छन्दों मे हैं। इसका ग्रन्थाग्र ६९५० श्लोक-प्रमाण है।

इस काव्य की कथासामग्री महाभारत से ली गई है। मूल महाभारत को सक्षिप्त करने मे लेखक ने केवल उसके कथाभाग पर ही ध्यान दिया है और नीति तथा धर्मशास्त्र की बाते प्रायः छोड़ दी हैं। इससे शान्ति और अनुशासन पर्व जैसे तथा बडे पर्व एक-एक सर्ग मे ही समाप्त कर दिये गये हैं। जहाँ महाभारत में विविध घटनाओं में महाकाव्योचित धारावाहिकता का अवरोध है वहाँ बालभारत के

---

१. पुरुषपदार्थधरालोकमिते विक्रमोक्तसंवत्सरे हिते ।
श्रावणमासिसिमिति प्रतियाति पूर्णा जिनपरहितैक जाति ॥ २८. ११०.

२. नव्यां पद्धतिमुद्धरत्सुकृतिभिः काव्यं मतं तत्कृतम् । ३. ११७.

३. काव्यमाला (संख्या ४५), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९४.

कथानक मे इसका अच्छा प्रभाव दिखायी पड़ता है। यहाँ विविध घटनाओं में साम-जस्य स्थापित करके सुसगठित कथानक बनाने में कवि अच्छा सफल हुआ है। कवि ने मूल महाभारत के कथानक में कोई परिवर्तन नहीं किया है। इस काव्य मे यत्र-तत्र पात्रों के कथोपकथन मे नाटकीय सजीवता विद्यमान है।

बालभारत मे महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह करने के लिए आदिपर्व के ७वें सर्ग में वसन्त-वर्णन और आठवें से ग्यारहवें तक पुष्पचयन, जलक्रीडा, चन्द्रोदय, मद्यपान और कामकेलियों आदि का वर्णन दिया गया है। बारहवें में खाण्डव वन का वर्णन तथा सभापर्व के चौथे सर्ग में ऋतुवर्णन और द्रोण तथा भीष्मपर्वों में युद्धवर्णन और स्त्रीपर्व मे स्त्रियों के विलाप द्वारा करुण भावों का प्रदर्शन किया गया है। इस तरह विशालकाय महाभारत का सक्षिप्त रूप देने का प्रयास किया गया है।

चरित्रचित्रण में पाण्डवों का चरित्र 'बालभारत' में सबसे अधिक व्यापक है। वे ही प्रधान पात्रों के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इनके साथ भीष्म, कर्ण, दुर्योधन, द्रोण आदि पात्र भी अपनी परम्परागत विशेषताए लिये हुए हैं। स्त्रीपात्रों में कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि का चरित्राकन भी सुन्दरता से हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी प्रायः प्रत्येक पर्व मे हुआ है। अपने युग के बीच फैले हुए नाना प्रकार के अधविश्वासों, शकुन अपशकुनों, शुभ-अशुभ स्वप्नों के वर्णनों द्वारा तत्कालीन समाज की स्थिति के एक अश का चित्रण भी इस काव्य मे हुआ है।

इस काव्य में जैनधर्म के तत्त्वो के प्रतिपादन का प्रयत्न कहीं भी नहीं किया गया है क्योंकि इसकी रचना ब्राह्मणों की प्रार्थना पर की गई है। इसमे भीष्म द्वारा राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म का उपदेश महाभारत के अनुसार ही दिलाया गया है। इसमें कवि मौलिक नहीं है।

इस काव्य की भाषा वैविध्यपूर्ण, परिमार्जित, प्राजल और प्रवाहयुक्त है। माधुर्यगुण अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है। इसमें कर्णकटु शब्दो का नितान्त अभाव है। इसकी भाषाशैली मे गरिमा, भव्यता और उदात्तता विद्यमान है जो अन्य काव्यों में बहुत कम प्राप्त है। स्वय कवि ने बालभारत को 'वाणीवेश्म' तथा 'भाषारूपी पृथ्वी पर खड़ा किया गया श्रेय और शोभा का भवन' कहा है।

कवि ने इस काव्य की भाव और भाषा को अलकारों से उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का अधिक प्रयोग एवं

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अपह्नुति, दीपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। 'बालभारत' मे अधिकाश सर्गों में एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। सर्ग १९,३३,३४, ४३ और ४४ में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कुल मिलाकर २७ छन्दों का प्रयोग हुआ है।[1] इनमें अनुष्टुभ् का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

अन्तिम सर्ग को छोड़ सभी सर्गों के प्रारम्भ में लेखक ने एक-एक पद्य द्वारा व्यासदेव की प्रार्थना की है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में वीर शब्द का प्रयोग कर इसे वीराङ्क काव्य कहा है। इसमें कुल मिलाकर ५४८२ पद्य हैं जिनका ग्रन्थाग्र अनुष्टुभ् प्रमाण से ६९५० है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—काव्य के अन्त मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता प्रसिद्ध कवि अमरचन्द्रसूरि थे जो कि वायटगच्छीय थे। उनसे पूर्व वायटगच्छ में परकायप्रवेश विद्या में निपुण जीवदेवसूरि हुए थे। उनकी शिष्य परम्परा में 'विवेकविलास' के रचयिता श्री जिनदत्तसूरि हुए। इन्हीं जिनदत्तसूरि के शिष्य अमरचन्द्रसूरि हुए। ये अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् थे। गुर्जरनरेश वीसलदेव ने इन्हें कविसार्वभौम की उपाधि दी थी। इनके जीवन का परिचय इनकी अन्य कृति 'पद्मानन्द-महाकाव्य' से तथा रत्नशेखरसूरिकृत 'चतुर्विंशतिप्रबंध' एवं रत्नमन्दिरगणि-कृत 'उपदेशतरंगिणी' से भी मिलता है। इनके कलागुरु अरिसिंह ठक्कुर थे। कवि आशुकवि थे और वायटनिवासी ब्राह्मणों के अनुरोध पर उन्होंने समस्त महाभारत का सक्षेप 'बालभारत' शीघ्र रच दिया। कालान्तर में कोष्ठागारिक पद्म मन्त्री की प्रार्थना पर कवि ने 'पद्मानन्दमहाकाव्य' की रचना की।

कवि की अन्य कृतियों में (१) काव्यकल्पलता या कविशिक्षा, (२) काव्यकल्पलतावृत्ति, (३) चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसक्षिप्तचरितानि, (४) सुकृत-संकीर्तन के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम चार पद्य, (५) स्यादिशब्दसमुच्चय, (६) काव्यकल्पलतापरिमल, (७) काव्यकल्पलतामंजरी, (८) काव्यकलाप, (९) छन्दोरत्नावली, (१०) अलकारप्रबोध और (११) सूक्तावली है।

---

१. इन छन्दों के अध्ययन के लिए देखें—हरि दामोदर वेलकर का लेख : प्रोसोडियल प्रेक्टिस ऑफ संस्कृत पोइट्स, जर्नल ऑफ दी बॉम्बे ब्रांच ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग २४-२५, पृ० ५१.

अमरचन्द्रसूरि ने बालभारत की रचना कब की, इसकी सूचना कहीं नहीं मिलती। 'चतुर्विंशतिप्रबंध' से ज्ञात होता है कि कवि वीसलदेव बघेला के समकालीन थे। इस नृप का राज्यकाल सं० १२९४ से सं० १३२८ माना जाता है। अतः बालभारत की रचना इसी समय के मध्य होनी चाहिए। पाटन के अष्टापद जिनालय में अमरचन्द्रसूरि की प्रतिमा है जिसे सं० १३४९ मे स्थापित किया गया था। इससे पूर्व कवि का स्वर्गवास हो चुका होगा। अन्य अनुमानों से सिद्ध होता है कि 'बालभारत' का रचनाकाल सं० १२७७ से सं० १२९४ तक कभी होना चाहिए।[1]

लघुकाव्य :

जैन कवियों ने महाकाव्यों की संख्या से कहीं बहुत अधिक लघुकाव्यो की रचना की है। इन काव्यों में यद्यपि कथा जीवनव्यापी होती है पर सर्गों की सख्या कम रहती है। पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत एक वस्तुकथा को प्रतिपादित करने वाले ऐसे अनेक लघुकाव्यों का वर्णन हमने किया है, यथा वादीभसिंह का क्षत्रचूड़ामणिकाव्य, वादिराज का यशोधरचरित, जयतिलकसूरि का मलयसुन्दरीचरित, सोमकीर्ति का प्रद्युम्नचरित आदि। १५वीं-१७वीं शती तक भट्टारकों—सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, शुभचन्द्र आदि—ने इस प्रकार के अनेको चरितात्मक लघुकाव्य लिखे थे। इन काव्यों मे शास्त्रीय महाकाव्यों के समान कथात्मक नाना भंगिमाएँ नहीं मिलतीं और न बृहत् पौराणिक महाकाव्यों के समान नाना अवातर कथाओं का जाल। इनमे प्रधान वस्तुकथा सक्षेप में परिमित सर्गों—६-८ या १०-१२—में दी गयी है तथा वस्तुवर्णन व्यापक रूप में उपस्थित नहीं किये गये हैं।

हम यहाँ ऐसी कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

श्रीधरचरितमहाकाव्य :

यह काव्य[2] ९ सर्गों में विभक्त है। इसमें सब मिलाकर १३१३ पद्य हैं जिनका ग्रन्थाग्र १६८९ है। कवि ने अपनी छन्दज्ञता का विशेष परिचय दिया

---

१. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य, पृ० २५५–२५७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३९६; चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४८, वी० सं० २४७८,

है, इसके लिए उसने प्रत्येक सर्ग के छंदों का निर्देश करने के लिए छंदों को पूरे लक्षण के साथ या तो सर्ग के आदि मे या स्थान-स्थान पर सूचित किया है। उसने अनेक अप्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग किया है और सौभाग्य से उनका नाम निर्देश करके पाठकों का बड़ा उपकार किया है। काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य मे कवि ने अपने नाम का माणिक्य शब्द दिया है और समाप्तिसूचक वाक्य मे 'माणिक्याङ्के श्रीश्रीधरचरिते' पद से सूचित किया है कि काव्य 'माणिक्याङ्क' है।

इस काव्य में भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्वभव के जीव विजयचन्द्र और पट्टरानी सुलोचना का रोचक चरित्र-चित्रण किया गया है। यद्यपि काव्य का नाम विजयचन्द्र के सातवें पूर्वभव के जीव श्रीधर के नाम से रखा गया है पर इस कथा का नायक विजयचन्द्र ही है और विजयचन्द्र के साहसिक कार्यों तथा वैराग्य का वर्णन इस काव्य की कथावस्तु है।

प्रस्तुत काव्य में इस कथा को निबद्ध करने मे कवि ने महाकाव्य के सभी लक्षण अपनाये हैं पर सर्गो की सख्या कम होने से इसे लघुकाव्य कह सकते हैं। इसमे शृंगार, हास्य, अद्भुत, शान्त आदि रसों का वर्णन कवि ने बड़े कौशल के साथ किया है। भाषा प्रसादगुणपूर्ण है। कवि कल्पना करने मे बड़ा चतुर है। इस काव्य पर कवि ने स्वयं दुर्गपदव्याख्या लिखी है जिसमे प्रत्येक सर्ग के आदि छन्दों के सूचक लक्षण दिये गये हैं।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता माणिक्यसुन्दर हैं जिन्होंने इसे देवकुल-पाटकपुर मे वि०स० १४६३ मे बनाया और मेरुमण्डल के सत्यपुर में श्री-पूज्य गच्छाधीश से शुद्ध कराया था। उक्त प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि अञ्चलगच्छ के मेरुतुग इनके दीक्षागुरु थे और जयशेखरसूरीश्वर गुरु थे।

इनकी अन्य रचनाओं मे चतुष्पर्वी, शुकराजकथा, पृथ्वीचन्द्रचरित्र (प्राचीन गुजराती), गुणवर्मचरित्र, धर्मदत्तकथा, अजापुत्रकथा एव आवश्यकटीका प्रभृति हैं।

जैनकुमारसंभव :

प्रस्तुत काव्य ११ सर्गों में विभक्त है और इसमें भरतकुमार की कथा

वर्णित है।[1] इसकी रचना महाकवि कालिदास के कुमारसंभव काव्य से प्रेरणा ग्रहण कर की गयी है।

इसकी कथावस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है—अयोध्या के राजा नाभिराय और रानी मरुदेवी के पुत्र ऋषभ का जन्माभिषेक हुआ। वे शैशवावस्था समाप्त कर युवावस्था धारण करते हैं (१ सर्ग)। ऋषभ का यश सर्वत्र व्याप्त था। इन्द्र आदि देवों को ऋषभदेव के विवाह की चिंता हुई। महाराज नाभिराय ने भी ऋषभदेव से विवाह का अनुरोध किया (२ सर्ग)। अन्य प्रजाजनों ने भी अनुरोध किया। इन अनुरोधों का ऋषभदेव ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। 'मौन स्वीकृतिलक्षण' इस नीति से उनके विवाह की तैयारियाँ की गईं (३ सर्ग)। सुमगला और सुनंदा को विवाहमंडप में लाया गया। ऋषभदेव को भी विवाहमडप में उपस्थित किया गया। अप्सराएं नभोमण्डल में नृत्य करने लगीं आदि (४ सर्ग)। ऋषभदेव का सुमगला और सुनन्दा के साथ पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। चारों ओर जय-जय ध्वनि सुनाई पड़ी। इस सर्ग में पति-पत्नी के सबधों एवं कर्त्तव्यों का निरूपण है (५ सर्ग)। अनन्तर रात्रि, चन्द्रोदय, षड्ऋतु आदि वर्णनात्मक प्रसग दिये गये हैं। सर्गान्त में सुमगला के गर्भाधान का सकेत दिया गया है (६ सर्ग)। एक रात्रि के पिछले पहर मे सुमंगला ने चौदह स्वप्न देखे। वह उनका फल जानने के लिए प्रभु के वासगृह में जाती है (७ सर्ग)। ऋषभदेव ने एक एक स्वप्न का फल बतलाकर कहा कि सुमगला को चक्रवर्ती पुत्र होगा (८ सर्ग)। सुमगला अपने वासभवन में आती है और सखियों को समूचे वृत्तान्त से अवगत कराती है (१० सर्ग)। इन्द्र आकर सुमंगला के भाग्य की सराहना करता है और उसे बताता है कि अवधि पूर्ण होने पर उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। उसके पति का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। उसके पुत्र के नाम से यह भूमि भारत तथा वाणी 'भारतीय' कहलाएगी। मध्याह्न वर्णन के साथ काव्य समाप्त होता है (११ सर्ग)।

यद्यपि कवि कालिदासकृत कुमारसंभव की भाँति जैनकुमारसभव का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन करना है किन्तु जिस प्रकार कुमारसंभव के प्रामाणिक अश (प्रथम आठ सर्ग) मे कार्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९४,११४; भीमसी माणेक, बम्बई द्वारा प्रकाशित; जैन पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत, १९४६.

है वैसे ही जैन कवि के महाकाव्य मे भी भरतकुमार के जन्म का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है और इस तरह दोनों काव्यों के शीर्षक उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार चरितार्थ नहीं होते। जैनकुमारसंभव मे ६ठे सर्ग में सुमगला के गर्भाधान का निर्देश करने के पश्चात् भी काव्य को पाँच अतिरिक्त सर्गों मे घसीटा गया है। इससे कथाक्रम विशृंखलित हुआ है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक एव निराशाजनक ढग से हुआ है, भले ही वह कवि की वर्णनात्मक प्रकृति के अनुरूप हो। जो हो पर कालिदास का प्रभाव कवि पर बहुत है और वह उसकी कृति कुमारसभव से विशेष रूप से प्रभावित है। कुमारसंभव और जैनकुमारसभव की परिकल्पना, कथानक के विकास एव घटनाओ के सयोजन मे पर्याप्त साम्य है। इस काव्य की शैली में जो प्रसाद तथा आकर्षण है वह भी कालिदास की शैली की सहजता एवं प्राजलता के प्रभाव के कारण ही है।

यद्यपि इस काव्य की कथा बहुत छोटी है जो ३-४ सर्गों की सामग्री मात्र है परन्तु कवि ने उसे नाना वर्णनों, सवादों, स्तोत्रों तथा प्रशस्तिगानों से भरकर ११ सर्गों की बना दी। इस काव्य की भाषा-शैली उदात्त एव प्रौढ़ है। कवि ने विभिन्न रसों का चित्रण तो किया है पर प्रधान रूप से किसी एक रस का पल्लवन नहीं किया। इस काव्य में अलंकारों की सुरुचिपूर्ण योजना की गई है। काव्य में चित्रबध की योजना कहीं नहीं की गई। छन्दों की योजना मे कवि ने शास्त्रीय नियमों का पालन किया है। प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द का प्रयोग हुआ है, सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। कुल मिलाकर कवि ने १७ छन्दों का प्रयोग किया है। ये सभी सुज्ञात छन्द है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता कवि जयशेखरसूरि हैं जो अचलगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। जैनकुमारसंभव की प्रशस्ति में इस काव्य का रचनाकाल वि० सं० १४८३ दिया गया है। प्रशस्ति में इनकी अन्य रचनाओं[1] का निर्देश भी किया गया है : यथा—उपदेशचिन्तामणि[2] (सं० १४३६), प्रबोधचिन्तामणि[3] (स० १४६४), धम्मिलचरित[4]।

---

१. प्रबोधश्चोपदेशश्च चिन्तामणि कृतोत्तरौ।
   कुमारसंभवं काव्यं चरितं धम्मिलस्य च॥

२ हीरालाल हंसराज, जामनगर.

३. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर.

४. हीरालाल हंसराज, जामनगर.

इस काव्य पर कवि के शिष्य धर्मशेखरगणि ने टीका लिखी है। काव्य का सशोधन माणिक्यसुन्दरसूरि ने किया था।

अन्य लघुकाव्यों में मण्डनकवि के तीन लघुकाव्य उल्लेखनीय हैं। इनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

कादम्बरीमण्डन :

कवि मण्डन की अन्यतम कृतियों में से यह एक है।[1] इसकी रचना मण्डन ने मालवा के बादशाह होशगशाह के अनुरोध पर की थी। होशगशाह को मण्डन जैसे विद्वानों की सगति से संस्कृत साहित्य से बड़ा प्रेम हो गया था। एक समय सायकाल उसने एक विद्वद्गोष्ठी की और मण्डनकवि से कहा कि मैंने कादम्बरी की बड़ी प्रशसा सुनी है, उसकी कथा सुनने की मेरी बड़ी लालसा है परन्तु राज्यकार्य में व्यस्त रहने के कारण इतनी मोटी पुस्तक के सुनने का समय नहीं। तुम तो बड़े विद्वान् हो, उसे सक्षेप करके सुना दो। उसकी इस इच्छा को तृप्त करने के लिए मण्डन ने इस ग्रन्थ को सक्षेप में अनुष्टुभ् छन्दों द्वारा चार परिच्छेदों में रचा है।

चन्द्रविजयप्रबंध :

इस काव्य[2] में चन्द्र और सूर्य के बीच सग्राम होने का वर्णन है और अष्ट प्रहर के भयकर सग्राम के पश्चात् चन्द्रमा की विजय दिखाई गई है।

इस अपूर्व काव्य के रचयिता विद्वान् मंत्री एवं कवि मण्डन हैं। इस ग्रन्थ की रचना का कारण मनोरजक है। एक रात्रि को मण्डन के निवास पर प्रसिद्ध विद्वानों और कवियों का भारी समारोह लगा था। पूर्णिमा की तिथि होने के कारण चन्द्रमा भी पूर्ण कलाओं के साथ था। सभा समस्त रात्रि और दूसरे दिन सध्यापर्यन्त जुड़ी रही। विद्वानों ने चन्द्रमा को अपनी समस्त कलाओं के साथ पूर्व में उदय होते देखा, फिर प्रातः रवि की किरणों से परास्त होकर पश्चिम में निस्तेज होकर विलीन होते देखा और पुनः अपनी समस्त कलाओं सहित पूर्व में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ८४, हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, सख्या ८, पाटन (गुजरात) से प्रकाशित। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५०४ में लिखी मिलती है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२०; हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटन (गुजरात), संख्या १०.

ही उदय होते देखकर उन्हीं भावों को लेकर एक काव्य की रचना करने का प्रस्ताव रखा जिसमें चन्द्र-सूर्य के बीच संग्राम का वर्णन हो और अन्त में चन्द्रमा की विजय दिखायी जाय। मडन ने इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उस काव्य की रचना की।

काव्यमण्डन :

इस काव्य[1] मे १३ सर्ग हैं जिनमें विविध छन्दों में कौरवों और पाण्डवों की कथा वर्णित है। ग्रन्थाग्र १२५० श्लोक-प्रमाण है। इस काव्य में वर्ण्यविषय को अधिक रोचक बनाने के लिए कवि ने रसों, अलकारों तथा अनेक छन्दों की योजना की है। ग्रन्थ में अनेक स्थल ऐसे हैं जो कवि की प्रौढ काव्य सुषमा का आनन्द देते हैं।

कर्ता—इस काव्य का कर्ता महाकवि मण्डन मन्त्री है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे कवि ने अपनी छोटो सी प्रशस्ति दी है।[2] ग्रन्थ की समाप्ति मे स्रग्धरा छन्द में एक प्रशस्ति द्वारा कवि ने अपने स्थान, वश आदि का परिचय दिया है।[3] तदनुसार यह श्रीमाल वश के ब्राह्मण समन्त्री के द्वितीय पुत्र बाहड़ का छोटा पुत्र था। यह बड़ा प्रतिभाशाली, विद्वान् और राजनीतिज्ञ था। इसमे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का अपूर्व मेल था। मालवा मे माण्डवगढ़ के होशगशाह का यह मन्त्री था। यह व्याकरण, अलकार, संगीत तथा अन्य शास्त्रों मे बड़ा विद्वान् था। विद्वानों पर इसकी बड़ी प्रीति थी और सदा कला को उपासना मे रत

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९०, हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, संख्या १७, पाटन से प्रकाशित। इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति सं० १५०४ भाद्रपद शुक्ल पंचमी की लिखी मिलती है।

२. श्रीमद्वन्द्यजिनेन्द्रनिर्भरततेः श्रीमालवंशोन्नतेः।
श्रीमद्बाहडनन्दनस्य दधतः श्रीमण्डनाख्यां कवेः॥
काव्ये कौरवपाण्डवोदयकथारम्ये कृतौ सद्गुणे।
माधुर्यं प्रथु काव्यमण्डन इते सर्गोऽयमाद्योऽभवत्॥

३. अस्त्येतन्मण्डपाख्यं प्रथितमरिचमूदुर्ग्रहं दुर्गमुच्चै-
र्यस्मिन्नालमसाहिर्निवसति बलवान्दुःसहः पार्थिवानाम्।
यच्छौर्यैरंमन्दो प्रबलधरणिभृत्सैन्यवन्याभिपाती,
शत्रुस्त्रीबाष्पवृष्ट्याऽप्यधिकतरमहो दीप्यते सिच्यमानः॥ ५२॥

रहता था। इसकी कविगोष्ठी में अनेक विद्वान्, कलाकार इकट्ठे होते थे और उन्हें यह भूमि, वस्त्र आदि से सन्तुष्ट किया करता था। इसके जीवनचरित पर कवि महेश्वर ने एक मनोहर काव्य लिखा है। मण्डन द्वारा लिखे एव लिखवाये ग्रन्थों की प्रतियों में दी गई प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि वह १५वीं शताब्दी के अन्त तक जीवित था।[१]

मडन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से जो प्रकाश में आये हैं वे निम्नांकित हैं : १. कादम्बरीमण्डन, २. चम्पूमण्डन, ३. चन्द्रविजयप्रबध, ४. अलकारमण्डन, ५. काव्यमण्डन, ६. शृगारमण्डन, ७. संगीतमण्डन, ८. उपसर्गमण्डन, ९. सारस्वतमण्डन, १०. कविकल्पद्रुम।[२] कर्ता ने अपने प्रत्येक ग्रन्थ के साथ अपना नाम जोड़ दिया है। मण्डन का अर्थ भूषण भी लिया जा सकता है। इनमें से अलकारमण्डन और कविकल्पद्रुम काव्यशास्त्र पर, सगीत-मण्डन सगीतशास्त्र पर, उपसर्गमण्डन सस्कृत के प्र, परा आदि उपसर्गों पर और सारस्वतमण्डन सारस्वत व्याकरण पर लिखे गये हैं। शेष काव्य हैं।

संधान या अनेकार्थक काव्य :

सस्कृत भाषा में एक ओर जहाँ एक वस्तु के अनेक पर्यायवाची होते हैं वहाँ कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनके अनेक अर्थ पाये जाते हैं। सस्कृत की इस विशिष्टता का जैन मनीषियों ने काव्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयोग किया। उन्होंने सधान अर्थात् श्लेषमय चित्रकाव्यों की रचना और उसका स्तोत्र साहित्य के रूप मे भी विकास किया है। उन्होंने द्विसधान, चतुस्सधान, पचसधान, सप्तसधान एव चतुर्विंशतिसधान काव्य रचे हैं।

अनेकार्थ काव्यों की ओर जैन कवियों की प्रवृत्ति ५वीं-६ठी सदी ईस्वी से हुई है। वसुदेवहिण्डी की चत्तारि अट्ठगाथा के चौदह अर्थ किये गये हैं। सस्कृत के

---

१. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, खुडाला (राजस्थान), वि० स० २०१५, पृ० १२८-१३४, दौलतसिंह लोढ़ा, मंत्री मण्डन और उसका गौरवशाली वंश.

२. इनमें से प्रथम छ. ग्रन्थ हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटन से प्रकाशित हो चुके हैं।

उपलब्ध सन्धान काव्यों में सबसे प्राचीन और उत्तम धनञ्जय का द्विसन्धान[1] काव्य (८वीं शताब्दी) है। जैन सिद्धान्त भवन, आरा में ११वीं शती के एक पंचसंधान[2] महाकाव्य की खण्डित पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इसके रचयिता शान्तिराजकवि हैं। एतद्विषयक ११वीं शताब्दी की एक रचना सूराचार्यकृत नेमिनाथचरित[3] (नाभेयनेमिद्विसन्धान) (सं० १०९०) है। इसके श्लेषमय पद्यों से नेमिनाथ के साथ ऋषभदेव के जीवनचरित का अर्थ भी घटित होता है। इस प्रकार की एक दूसरी रचना नाभेयनेमिद्विसन्धान[4] (१२वीं शती) है। इस काव्य में भी नेमि और ऋषभ की कथाएँ समानान्तर रूप से वर्णित हैं। कहा जाता है कि इसका संशोधन कविचक्रवर्ती श्रीपाल ने किया है। इस काव्य की पाण्डुलिपियाँ बड़ौदा और पाटन भण्डार में सुरक्षित हैं।

प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य वर्धमानगणि ने कुमारविहारप्रशस्तिकाव्य बनाया। उसमें ८७वाँ पद्य ऐसा अद्भुत अनेकार्थी निर्मित किया[5] कि प्रारंभ में उसके उन्होंने ६ अर्थ निकाले पर पीछे उनके शिष्य ने ११६ अर्थ किये। उनमें ३१ कुमारपाल, ४१ हेमचन्द्राचार्य और १०९ अर्थ वाग्भट मंत्री के सम्बन्ध में निकलते हैं। यह पद्य टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है।[6]

वर्धमानगणि के समकालीन सोमप्रभाचार्य ने शतार्थिक काव्य के रूप में एक पद्य की रचना की और उस पर अपनी टीका लिखी। इससे उन्होंने १०६ अर्थ निकाले हैं जिनमें २४ तीर्थंकर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा चौलुक्य नृप जयसिंह, कुमारपाल, अजयपाल आदि के अर्थ शामिल हैं। यह भी प्रकाश में आ गया है।[7]

---

१. काव्यमाला, ग्रन्थांक ५७, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९२६.

२ जिनरत्नकोश, पृ० २२९.

३. वही, पृ० २१६

४. वही, पृ० २१०

५. अनेकार्थ-साहित्य-संग्रह, प्राचीन साहित्योद्धार ग्रन्थावली, पुष्प २, अहमदाबाद.

६. वही, पृ० १-६८.

७. वही, पृ० ६८-१२४.

पीछे १५वीं से २०वीं शती तक जैन कवियों ने इस दिशा में प्रचुर रचनाएं लिखीं। उनमें महोपाध्याय समयसुन्दररचित 'अष्टलक्षी' (सं० १६४९) भारतीय काव्य साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का अद्वितीय रत्न है। कहा जाता है कि एक बार अकबर की सभा में जैनों के 'एगस्स सुत्तस्स अणतो अत्थो' वाक्य का किसी ने उपहास किया। यह बात उक्त महोपाध्याय को बुरी लगी और उक्त सूत्रवाक्य की सार्थकता बतलाने के लिए 'राजानो ददते सौख्यम्' इस आठ अक्षर वाले वाक्य के दस लाख बाईस हजार चार सौ सात अर्थ किये और विद्वानों के समक्ष अकबर को सुनाये। इससे सब चकित हो गये। पीछे कवि ने उक्त अर्थों में से असम्भव या योजनाविरुद्ध अर्थों को निकाल कर इस ग्रन्थ का 'अष्टलक्षी'[1] नाम रखा।

कवि लाभविजय ने 'नमो दुर्वाररागादि वैरिवार निवारणे। अर्हते योगिनाथाय महावीराय तायिने॥' इस पद्य के पाँच सौ अर्थ किये हैं।[2] इस प्रकार की अन्य रचनाओं में मनोहर और शोभनरचित चतुस्सधानकाव्य का उल्लेख मिलता है। इस प्रसंग में नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य पं० जगन्नाथ (सं० १६९९) की दो रचनाएं 'सप्तसन्धान' और 'चतुर्विंशतिसधान' भी उल्लेखनीय हैं। पिछले ग्रन्थ में श्लेषमय एक ही पद्य से २४ तीर्थंकरों का अर्थबोध होता है। वह पद्य निम्नलिखित है :

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाङ्कोऽथ धर्मो,
हर्यङ्कः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोऽनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शान्तिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्धमानोऽप्यजाङ्को,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्॥

इस काव्य के संस्कृत टीकाकार स्वयं कवि जगन्नाथ ही हैं। कुछ विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ (रसगंगाधरकार) उक्त पद्य के रचयिता को मानते हैं[3]

---

१. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, ग्रन्थांक ८१.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ८, किरण १.

३. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ५, किरण ४, पृ० २२५

पर टीका के अन्त में दी हुई पुष्पिका से स्पष्ट है कि कवि उक्त पण्डितराज से भिन्न ही है।

१८वीं सदी के महोपाध्याय मेघविजय की रचना 'सप्तसन्धान' (सं० १७६०) भी अनुपम है। यह काव्य ९ सर्गों में लिखा गया है। प्रत्येक श्लेष-मय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों एवं राम और कृष्ण इन ७ महापुरुषों के चरित्र का अर्थ निकलता है।

उक्त काव्यों के अतिरिक्त अनेकार्थविषयक कई स्तोत्र भी पाये गये हैं, यथा ज्ञानसागरसूरिरचित नवखण्डपार्श्वस्तव, सोमतिलकसूरिरचित त्रिविधार्थमयसर्वज्ञस्तोत्र, रत्नशेखरसूरिरचित नवग्रहगर्भितपार्श्वस्तवन तथा पार्श्व-स्तव, मेघविजयरचित पञ्चतीर्थीस्तुति, समयसुन्दररचित द्व्यर्थकर्णपार्श्वस्तव आदि।[1]

यहाँ सधान विषयक दो काव्यों का विशेष परिचय दिया जाता है।

द्विसन्धानमहाकाव्य :

इस महाकाव्य[2] में १८ सर्ग हैं। काव्य का यह नाम रचना के साँचे को सूचित करता है जिसका प्रत्येक पद्य दो अर्थ प्रदान करता है। इसका दूसरा नाम राघवपाण्डवीय भी है। यह नाम काव्य की कथावस्तु की सूचना देता है अर्थात् इस काव्य में रामायण और महाभारत की कथा एक साथ बड़ी कुशलता से ग्रथित की गई है। इन दोनों महाकाव्यों से सम्बद्ध कथाचक्र भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का अविभाज्य अंग बन गया है और कोई भी कवि एक काल में एक साथ दोनों की विषयवस्तु को यदि ग्रहण करे तो वह सरलता से ऐसा कर सकता है। विशेषकर इसलिए कि इन कथाओं का वर्णन करने वाले अनेक स्वतन्त्र महाकाव्य उपलब्ध हैं जिनमें किसी एक के चयन और विवेचन के लिए अनेक प्रकार के विचार और सन्दर्भ दिये गये हैं। उस

---

१. वही, भाग ८, किरण १, पृ० २४ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख.

२. काव्यमाला सिरीज, संख्या ४९, बम्बई, १८९५; जिनरत्नकोश, पृ० १८५; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से नेमिचन्द्र की टीका के साथ प्रकाशित, १९७०; इस काव्य के महाकाव्यत्व और अन्य गुणों के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३६३-३८७

समय के साहित्य में 'राघवपाण्डवीय' शीर्षक बड़ा प्रिय था। कवि धनजय की कृति के अतिरिक्त कविराज और श्रुतकीर्ति आदि कवियों ने इस नामवाली कृतियाँ लिखी हैं और इस प्रकार के नामवाली—राघवयादवीय, राघव-पाण्डव-यादवीय आदि कृतियाँ भी हैं। जो हो, धनजय की अपनी कृति का प्रधान नाम 'द्विसधान' है और महाकवि दण्डी के बाद वह इस प्रकार के लेखकों में अग्रणी था। 'राघव-पाण्डवीय' केवल गौण नाम प्रतीत होता है।

कथावस्तु—काव्य के आरंभ मे मगल पद्य में मुनिसुव्रत अथवा नेमि (श्लेष द्वारा) तथा सरस्वती को नमस्कार किया गया है। फिर श्लेपालकार की सहायता से राम और पाण्डवों की कथा का वर्णन किया गया है। प्रथम सर्ग में अयोध्या और हस्तिनापुर का वर्णन है। दूसरे सर्ग में दशरथ और पाण्डुराज का, तीसरे मे राघवकौरवोत्पत्ति, चतुर्थ मे राघव-पाण्डवारण्यगमन, पाचवें मे तुमुल युद्ध, छठे में खरदूषण-वध और गोग्रहनिवर्तन, सातवें मे सीता-हरण, अष्टम में लङ्का-द्वारावतीप्रस्थान, नवम मे माया सुग्रीव-विग्रह तथा जरासध-बलविद्रावण, दसवें में लक्ष्मण-सुग्रीव-विवाद तथा जरासधदूत एव नारायण के बीच विवाद, ग्यारहवें में सुग्रीव-जाम्ब-हनुमान के बीच परामर्श एव नारायण-पाण्डवादि परामर्श, बारहवें में लक्ष्मण द्वारा तथा वासुदेव द्वारा कोटिशिला का उद्धरण, तेरहवें में हनुमन्नारायणदूताभिगमन, चौदहवें मे सैन्यप्रयाण, पन्द्रहवें में कुसुमावचय एव जलक्रीड़ा-वर्णन, सोलहवें में सग्राम-वर्णन, सत्रहवें में रात्रिसभोग-वर्णन और अठारहवें मे रावण एव जरासध का वध तथा यादव-पाण्डवों की निष्कण्टक राज्यप्राप्ति का वर्णन किया गया है।

कवि ने इस कथा को गणधर गौतम के द्वारा श्रेणिक के लिए कही गई बताया है, जैसा कि प्रायः सभी दिगम्बर जैन कवि अपनी कथावस्तुओं के प्रति कहते हैं। कवि ने घटनाओं के कथनों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण वर्णनों पर ही अधिक बल दिया है। अन्य जैन काव्यों की अपेक्षा इस काव्य में कुछ विशेषताएँ ये हैं कि इसके किसी भी सर्ग मे जैन सिद्धान्त या नियमों का विवेचन नहीं है जबकि अन्य काव्यों के किसी एक सर्ग में ऐसा रहता है। सभी जैन काव्य प्रायः मुख्य नायक के निर्वाणगमन पर समाप्त होते हैं परन्तु यह काव्य निर्विघ्न राज्यप्राप्ति पर ही समाप्त हो जाता है।

इस काव्य की भाषा क्लिष्ट सस्कृत है जिसे समझने के लिए श्रम की आवश्यकता है। इस काव्य के अधिकांश पद्य विविध अलकारों से सजाये गये

हैं। टीकाकार नेमिचन्द्र ने इन्हे अपना टीका पदकौमुदी मे भलीभाति दिखाया है। अन्तिम सर्ग मे (विशेषकर पद्य सख्या ४३ प्रभृति मे) शब्दालकारों के अनेक भेदों का प्रयोग किया है। यह प्रवृत्ति भारवि, माघ आदि कवियों मे भी देखी जाती है। पद्य सख्या १४३ सर्वगत प्रत्यागत का उदाहरण है।

इस काव्य के आठवें सर्ग को छाड़ प्रत्येक सर्ग मे एक प्रकार के छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त के कतिपय पद्यों मे अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। कुल मिलाकर ३१ विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इसके अठारह सर्गों मे कुल पद्यसख्या ११०५ है। यह काव्य अपने से पूर्ववर्ती रचनाओं—रघुवश, मेघदूत, किरातार्जुनीय एव शिशुपालवध से अनुप्राणित है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता महाकवि धनजय हैं। कवि ने अपने वश या गुरुवश आदि का कुछ भी उल्लेख किसी भी ग्रन्थ मे नहीं किया और न अपने पूर्ववर्ती किसी कवि या आचार्य का उल्लेख किया है।। टीकाकार नेमिचन्द्र ने इस काव्य के अन्तिम पद्य की व्याख्या मे कवि के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। सभवतः कवि गृहस्थ था।

धनजय की यह कृति अपने ही युग मे बड़ी उत्कृष्ट समझी जाने लगी थी और इस काव्य की रचना के कारण ही कवि 'द्विसधानकवि' नाम से प्रसिद्ध हो गया था। कवि ने अपने उत्कृष्ट काव्य को अकलंक के प्रमाणशास्त्र और पूज्यपाद के व्याकरण के समान उच्च कोटि का कहा है :

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसंधान कवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥ नाममाला,२०१.

कवि और उसके काव्य की ख्याति पश्चात्कालीन कवियों मे बहुत थी। धारानरेश भोज ने अपने 'शृगारप्रकाश' (११वीं शती का मध्य) मे 'दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसंधानप्रबंधौ रामायणमहाभारतार्थावनुबध्नाति'[1] द्वारा उक्त कवि का स्मरण किया है। भोज के समकालीन प्रभाचन्द्राचार्य ने भी अपने ग्रन्थ

१. भोज, शृंगारप्रकाश, मद्रास, १९६२, पृ० ४०६.

प्रमेयकमलमार्तण्ड मे इस काव्य का उल्लेख किया है। वादिराज ने अपने पार्श्वनाथचरित (सन् १०२५) में द्विसधान की प्रशंसा में लिखा है:

अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।
बाणा धनञ्जयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम् ॥

अर्थात् अनेक (दो) प्रकार के सन्धान (निशाना और अर्थ) वाले और हृदय में बारंबार चुभने वाले धनजय (अर्जुन और धनजय कवि) के बाण (और शब्द) कर्ण को (कुन्तीपुत्र कर्ण और कानों को) प्रिय कैसे होगे ?

इसी तरह कन्नड कवि दुर्गसिंह (सन् १०२५ के लगभग) ने अपने ग्रन्थ पचतत्र में धनजय और उनके राघवपाण्डवीय का स्मरण किया है। दूसरे कन्नड कवि नागवर्मा (सन् १०९० के लगभग) ने भी अपने ग्रन्थ 'छन्दोम्बुधि' में धनजय का उल्लेख किया है।

धनजय और द्विसधान को प्रशसा में महाकवि राजशेखर (सन् ९०० के लगभग) ने एक पद्य इस प्रकार लिखा है (इसका सग्रह जल्हण (१२वीं सदी) ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावलि' मे किया है):

द्विसंधाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः ॥

धनजय ने द्विसधान में जो निपुणता प्राप्त की उससे उन्हें सज्जनों के समूह में धन और जयरूप फल प्राप्त हुआ।

यद्यपि धनजय ने अपने किन्हीं ग्रन्थों में अपने समय का कोई उल्लेख नहीं किया परन्तु उपर्युक्त उल्लेखों से उनके समय-निर्णय मे अवश्य सहायता मिलती है।

धनंजय की उत्तरावधि राजशेखर, भोज, प्रभाचन्द्र, वादिराज आदि के द्वारा किये उल्लेखों से १०वीं शताब्दी के पूर्व बैठती है क्योंकि उस शताब्दी तक वह पूर्ण ख्याति प्राप्त कर चुका था। उसकी उत्तरावधि को और सीमित करने के लिए एक और प्रमाण है। उसके अन्यतम ग्रन्थ 'अनेकार्थनाममाला' के एक पद्य का उद्धरण ९वीं शताब्दी के आचार्य वीरसेन (सन् ८१६) ने अपनी धवला टीका मे दिया है। वह पद्य है :

हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति शब्दः प्रकीर्तितः॥

इससे धनंजय का समय ९वीं शताब्दी के बाद नहीं हो सकता।

पूर्वावधि के लिए धनंजय की नाममाला का उपर्युक्त पद्य 'प्रमाणमकलङ्कस्य' उद्धृत किया जा सकता है। इस पद्य के अकलंक का समय ७-८वीं शताब्दी है। अतः धनंजय उससे पूर्व नहीं हो सकते। संक्षेप में हम धनंजय को आठवीं के मध्य और सन् ८१६ के बीच कभी हुआ मान सकते हैं।[1]

कवि की अन्य कृतियों में उपलब्ध नाममाला अनेकार्थनाममाला नामक लघु एवं उपयोगी कोश तथा विषापहार स्तोत्र है। इनकी एक अन्य कृति यशोधरचरित थी। भट्टारक ज्ञानकीर्ति (वि०सं० १६५०) ने अपने यशोधर-चरित में पूर्व के ७ यशोधरचरितों के कर्ताओं के नाम दिये हैं जिनमें धनंजय का भी है। सम्भव है ये धनंजय कोई दूसरे हों क्योंकि वि०सं० १६५० के पूर्व किसी अन्य लेखक ने इस महाकवि के यशोधरचरित का उल्लेख नहीं किया। उनकी अनुपम लेखनी से प्रसूत कृति का इस बीच इतने दिनों तक अज्ञात रहना सम्भव न था।

द्विसंधान अपने प्रकार का सर्वश्रेष्ठ और संभवतः उपलब्ध प्रथम काव्य है। इसके अनुकरण पर पीछे इस प्रकार की काव्य-परम्परा चल पड़ी। श्रुतकीर्ति त्रैविद्य (सन् ११००-११५०) का राघवपाण्डवीय, माधवभट्ट का राघवपाण्डवीय, सन्ध्याकरनन्दि का रामचरित, हरिदत्तसूरि का राघवनैषधीय, चिदम्बरकृत राघवपाण्डवयादवीय आदि इसी परम्परा के काव्य हैं।

द्विसंधान काव्य पर कुछ टीकाएं उपलब्ध हैं। उनमें एक पदकौमुदी है जिसके कर्ता विनयचन्द्र के शिष्य और पद्मनन्दि के प्रशिष्य नेमिचन्द्र हैं। दूसरी राघवपाण्डवीयप्रकाशिका है जिसके कर्ता परवादिघरट्ट रामभट्ट के पुत्र कवि देवर हैं। इन दोनों का समय ज्ञात नहीं है।[2]

---

१. धनंजय और द्विसंधानकाव्य पर एक विस्तृत लेख डा० आ० ने० उपाध्ये ने विश्वेश्वरानन्द इण्डोलॉजिकल जर्नल (मार्च-सित० १९७०, भा० ८, अं० १-२, पृ० १२५-१२४) में लिखा है।
२. जिनरत्नकोश, पृ० १८५ और ३२९; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १०८ प्रभृति.

सप्तसंधान :

मेघविजयगणि के उल्लेखानुसार एक सप्तसंधान महाकाव्य[1] की रचना अनेक ग्रन्थों के लेखक प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र ने की थी जो कि पूर्व में ही लुप्त हो गया था।

उपलब्ध दूसरे सप्तसंधान महाकाव्य की रचना मेघविजयगणि ने की है। इस काव्य के प्रत्येक श्लेषमय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाच तीर्थंकरों एवं राम तथा कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित्र का अर्थ निकलता है। इस काव्य में ९ सर्ग हैं। इसका कथानक पूर्ववर्ती रचनाओं—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि से लिया गया है।

कथावस्तु—भरतक्षेत्र मे कोशल, कुरु, मध्य और मगध देश नाम के जनपदों म क्रमशः अयोध्या, हस्तिनापुरी, शौर्यपुरी, वाराणसी, मथुरा और कुण्डपुर नगरियाँ है। इनमें से अयोध्या में ऋषभदेव और रामचन्द्र का हस्तिनापुरी म शान्तिनाथ का, शौर्यपुरी में नेमिनाथ का, वाराणसी म पार्श्वनाथ का, वैशाली मे महावीर का और मथुरा मे श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इन नगरियों में रहने वाले उक्त महापुरुषों के पितृनामों के उल्लेख के पश्चात् उक्त महापुरुषों की माताओं को गर्भधारण के पूर्व स्वप्नदर्शन तथा स्वप्नफल-श्रवण के वर्णन के साथ प्रथम सर्ग समाप्त हो जाता है। दूसरे सर्ग मे उक्त पाँच तीर्थंकरों के जन्म और जन्माभिषेक का वर्णन है। तृतीय मे उक्त सात महापुरुषों के बाल्यकाल, युवावस्था और राज्यप्राप्ति का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग मे तीर्थंकरो के राजा होते ही देश की सम्पत्ति का विकास, ऋषभादि को पुत्रादि की प्राप्ति के वर्णन के साथ श्रीकृष्णकालीन कौरव-पाण्डवों का निरूपण किया गया है। इस सर्ग के अन्तिम भाग मे कवि ने श्लेष के आधार पर ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व, महावीर और राम की जीवन-घटनाओ का विवेचन किया है। राम अन्तःपुर के षड्यन्त्र के कारण वन जाते हैं, भरत विरक्त होकर राज्यशासन का सचालन करते हैं। तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करने की तैयारी करते हैं।

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ४१६, अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर; विविध साहित्य शास्त्रमाला (सख्या ३), वाराणसी, १९१७; जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, वि० सं० २०००, श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरविरचित 'सरणी' टीकासहित प्रकाशित.

पाँचवें सर्ग मे तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण कर विभिन्न देशों में विहार करते हैं, वे कठोर तपश्चरण करते हैं तथा बाईस परीषह और अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करते हैं। तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता का वनवास-वर्णन, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा को दण्डित किया जाना, रावण द्वारा सीता का अपहरण, हनुमान द्वारा सीता की खोज और रावण की सभा को आतंकित करना वर्णित है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे कहा गया है कि शिशुपाल-जरासन्ध से लड़ने के लिए उन्होंने पाण्डवों से दृढ़ मित्रता की और द्वारका को सुदृढ़ बनाया।

छठे सर्ग में तीर्थंकरों द्वारा कर्मों की निर्जरा कर केवलज्ञान प्राप्त करना तथा देवों द्वारा केवलज्ञान-कल्याण की पूजा करने के वर्णन के बाद राम द्वारा रावण पर सुग्रीव आदि की सहायता से विजय प्राप्त करना और श्रीकृष्ण द्वारा अपने शत्रुओं का उन्मूलन कर अर्धचक्रवर्ती पद प्राप्त करना वर्णित है। सातवें सर्ग में तीर्थंकरों के समवसरण की रचना, भरत आदि राजाओं की उपस्थिति, तीर्थंकरों द्वारा विहार और उससे प्राणियों के कल्याण के वर्णन के बाद षड्ऋतुओं का वर्णन और तीर्थंकरों के उपदेश से अनेक व्यक्तियों द्वारा दीक्षाग्रहण करना आदि वर्णित है। अष्टम सर्ग मे भरत चक्रवर्ती की दिग्विजययात्रा एवं शिलातीर्थ पर जिनप्रतिमाओं का वन्दन तथा भगवान् ऋषभदेव के मोक्षगमन के बाद भरत द्वारा उनकी परिपालित भूमि की रक्षा करने का तथा राम-कृष्ण के पक्ष में अनेक नृपों पर विजय का वर्णन दिया गया है। ७-८वें सर्गों की विशेषता यह है कि इनमे विविध छन्दों के प्रयोग हैं। यमकालंकार के सभी भेदों और अन्तिम भेद महायमक के भी उदाहरण दिये गये हैं।

नवम सर्ग में ऋषभ की ससार में व्याप्त कीर्ति के वर्णन पूर्वकअन्य तीर्थंकरों की निर्वाणप्राप्ति का वर्णन दिया गया है। इसके बाद राम द्वारा अयोध्या के राज्य की प्राप्ति, सीता से दो पुत्रों की प्राप्ति, सीता की अग्निपरीक्षा एव उसके द्वारा ससार से विरक्त हो दीक्षा धारण करना तथा कालान्तर में राम की विरक्ति, तपस्या एवं निर्वाणप्राप्ति का वर्णन दिया गया है। इसी तरह श्रीकृष्ण द्वारा द्वारका की रक्षा, यादवों के उपद्रव से द्वैपायन मुनि द्वारा द्वारका का सर्वनाश तथा बलराम द्वारा विरक्त हो तपस्या करके निर्वाण-प्राप्ति के वर्णन के साथ काव्य की समाप्ति होती है। इस काव्य में कुल मिलाकर ४४२ पद्य हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छ के प्रसिद्ध उपाध्याय मेघविजय हैं। इनके परिचय और इनकी कृतियों के विषय में हम अन्यत्र

इनकी एक कृति लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के प्रसंग मे पर्याप्त कह आये हैं। इस ग्रथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसकी रचना वि० स० १७६० मे हुई थी।[१]

गद्यकाव्य :

सपूर्ण सस्कृत काव्य-साहित्य में गद्यकाव्यों की सख्या गिनी चुनी है। सस्कृत मे गद्यकाव्य लिखना कवियों की कसौटी माना गया है—'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति'।

ईस्वी ६ठी शती से ८वीं शती तक गद्यकाव्य के कुछ नमूने सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाण की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' तथा दण्डी के 'दश-कुमारचरित' के रूप में मिले हैं। फिर दो शताब्दी बाद धनपाल की 'तिलक-मजरी' और वादीभसिंह की 'गद्यचिन्तामणि' के रूप मे दो जैन गद्यकाव्यों के दर्शन होते हैं। इन दोनों का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :

तिलकमंजरी :

यह[२] एक गद्य आख्यायिका है। इस काव्य का नाम नायिका के नाम से रखा गया है और यह पूर्व कवियों की कृतियों, यथा बाण की कादम्बरी और उद्योतनसूरि की कुवलयमाला आदि के अनुकरण पर ही रचित है।

कथावस्तु—कोशल देश के इक्ष्वाकु नृप मेघवाहन और रानी मदिरावती को नि सन्तान होने से दुःख था। पुत्र-प्राप्ति के लिए वन में जाकर देवोपासना करने का विचार हुआ पर एक वैमानिक देव के अनुरोध पर घर पर ही श्री-देवी की उपासना की गई। प्रसन्न देवी ने राजा को पुत्र-प्राप्ति का वरदान और बालारुण नामक अगूठी प्रदान की। पुत्र का नाम हरिवाहन रखा गया। वह धीरे-धीरे वृद्धिंगत होकर सभी विद्याओं का पारगामी हो गया। एक समय एक

---

१. वियद्रसमुनीन्दूनां (१७६० वि० सं०) प्रमाणात् परिवत्सरे। कृतो यमु-घमः . .। सप्तसन्धान-प्रान्तप्रशस्ति.

२. काव्यमाला सिरीज, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८; शान्तिसूरिरचित टिप्पणी तथा विजयलावण्यसूरिरचित टीका (पराग) के साथ, विजय-लावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद, वि० सं० २००८; गुरु गोपालदास बरैया स्मृतिग्रन्थ, पृ० ४८४-९१ में डा० हरीन्द्रभूषण जैन का लेख 'महाकवि धनपाल और उनकी तिलकमंजरी'.

दूत ने उक्त राजा को उसके प्रधान सेनापति वज्रायुध की दक्षिण-विजय का समाचार सुनाया और कहा कि उस विजय मे एक समरकेतु नामक कुमार को, जो घायल पड़ा हुआ था, वज्रायुध उठा लाया है और उसे राजा के समीप भेजा है।

राजा ने उस कुमार को अपने पुत्रवत् रखा और हरिवाहन तथा समरकेतु दोनों मित्रवत् रहने लगे। एक बार एक क्रीड़ामण्डप मे मनोरंजन मे व्यस्त कुमार को एक बन्दीपुत्र ने एक ताडपत्र लाकर दिया जिसमें एक आर्याछन्द लिखा हुआ था। उसका अर्थ समरकेतु के सिवाय कोई न समझ सका। समरकेतु इसके बाद ही बड़ा उदास दिखाई पड़ा। अन्य लोगो के बार-बार पूछने पर उसने दक्षिण दिशा में द्वीपान्तरों मे अपनी सामुद्रिक विजय-यात्रा[1] का विस्तार से वर्णन किया और वहाँ काचीनरेश कुसुमशेखर की रूपवती पुत्री मलयसुन्दरी के प्रति तीव्र आकर्षण की बात कह उसकी स्मृति से व्याकुल हो गया।

इसी बीच एक प्रतीहारी ने राजकुमार हरिवाहन को एक सुन्दरी का चित्र दिखाया जिसे गन्धर्वक नामक युवक लाया था। गन्धर्वक ने बतलाया कि यह विद्याधर नृप चक्रसेन की पुत्री तिलकमजरी का चित्र है जो पुरुषमात्र की आकृति से अरुचि करती है। शायद किसी अपूर्वसुन्दर राजकुमार के दर्शन मे उसकी यह अरुचि हट सके इसलिए वह पृथ्वीतल पर ऐसे राजकुमार के चित्र को उतार कर उसके पास ले जाने के लिए प्रयत्नशील है और अभी वह काची-नरेश कुसुमशेखर के पास अपने राजा का सन्देश लेकर जा रहा है।

यह सुनकर समरकेतु ने काची की राजकुमारी मलयसुन्दरी के पास सन्देश भेजने का अच्छा मौका पाया और उसे लिखकर वह सन्देश दिया भी। गन्धर्वक के चले जाने पर हरिवाहन के चित्त में तिलकमंजरी की धुन लग गई।

एक समय वे दोनों राजकुमार अन्य मित्रों के साथ देशान्तरभ्रमण मे निकले और कामरूप देश पहुँचे। उस देश के राजा ने उनका खूब सत्कार किया। वहाँ हरिवाहन ने एक बिगड़े हाथी को अपने वश मे कर लिया। हाथी थोड़ी देर बाद अपनी पीठ पर बैठने पर हरिवाहन को लेकर न जाने किधर

---

१. डा० मोतीचन्द्र ने जर्नल ऑफ उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी के भाग २०, अंक १-२ में उक्त अंश का अनुवाद प्रकट कर तत्कालीन नाविकतंत्र पर अच्छा प्रकाश डाला है।

गायब हो गया। कुछ काल बाद एक शुक ने हरिवाहन का समाचार एक दूत को दिया जिसे सुनकर समरकेतु उसकी खोज मे निकल पड़ा और धीरे-धीरे वैताढ्य पर्वत के अदृष्टपार नामक सरोवर के पास पहुँच गया।

वहा विश्राम करते हुए उसने एक अति मधुर स्वर सुना और उसका अनुसरण करके उसने एक सुन्दर मठ मे गन्धर्वक को देखा और कदलीवन में कुमार हरिवाहन को देखा, दोनों मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। हरिवाहन ने समरकेतु से तिलकमजरी के दर्शन की बात कही और साथ ही पास में एक वन में एक तापस कन्या को भी देखने की बात कही जो अन्य कोई नहीं बल्कि समरकेतु की प्रेमिका मलयसुन्दरी थी और जो उसके विरह मे वहाँ तपस्या कर रही थी। हरिवाहन उसका अतिथि बन कर रहने लगा। वहीं तिलकमंजरी का हरिवाहन के प्रति आकर्षण बढने लगा और दोनों पत्रादिप्रेषण द्वारा व्याकुल होने लगे। इसी बीच वे लोग एक महर्षि द्वारा चारों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जान सके।

अन्त मे हरिवाहन का विवाह तिलकमजरी से और समरकेतु का मलय-सुन्दरी से हो जाता है और आख्यायिका भी समाप्त होती है।

बाणकृत कादम्बरी और तिलकमजरी की कथावस्तु में बहुत समानता है। जिस तरह कादम्बरी काव्य किन्हीं उपविभागों मे विभक्त नहीं है उसी तरह तिलकमजरी भी विभक्त नहीं है। दोनों कथाओं का प्रारम्भ पद्यों से होता है जिनमें दोनों कवियों ने कथा, गद्य एव चम्पू के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। दोनों कथाओं में गद्य के बीच में यत्र-तत्र पद्यों का प्रयोग हुआ है। जिस तरह कादम्बरी की नायिका गन्धर्वकुलोत्पन्न कादम्बरी विवाह के पहले परकीया एव मुग्धा तथा विवाह के बाद स्वकीया एवं मध्या है उसी प्रकार तिलकमजरी की नायिका विद्याधरी तिलकमजरी पहले परकीया एव मुग्धा तथा पश्चात् स्वकीया एव मध्या है। इसका प्रधान नायक हरिवाहन और सहनायक समरकेतु आपस में कादम्बरी के चन्द्रापीड और वैशम्पायन की ही भाति परम मित्र हैं तथा अनुकूल एवं धीरोदात्त हैं। नायक की नायिका से भेंट भी कादम्बरी के समान ही है। इन दोनों में प्रथम उपनायिका और तद-नन्तर नायिका आती है। उपनायिका मलयवती और उसके तप की विधि का वर्णन महाश्वेता की ही भाति है। दोनों गद्यों के कथानक के अन्य अशों में भी समानता दिखाई पड़ती है, यथा कादम्बरी में उज्जयिनी का नृप तारापीड और रानी विलासवती निःसन्तान होने के कारण दुःखी हैं। तिलकमजरी में

मेघवाहन और रानी मदिरावती भी पुत्र-प्राप्ति न होने से दुःखी हैं। दोनों कथाओं में समान रूप से देवताओं की पूजा आदि पुत्रोत्पत्ति में निमित्त बतलाये गये हैं। तिलकमंजरी में अयोध्या का शक्रावतार सिद्धायतन (जैन मंदिर) कादम्बरी में उज्जयिनी के महाकाल देवायतन की याद दिलाता है। कादम्बरी के समान ही तिलकमंजरी में अनेक लौकिक और अलौकिक (विद्याधरजगत्) पात्रों को कथानक मे अवतरित किया गया है।

शैली की दृष्टि से भी दोनों काव्यों मे समानता है। दोनों ने शब्दालकारों और अर्थालंकारों के प्रयोग द्वारा घटना तथा वर्णन को बोझिल बनाया है। अर्थालकारों में बाण को परिसख्यालकार और विरोधाभास अतिप्रिय हैं उसी तरह तिलकमंजरीकार को भी दोनों अलंकार प्रिय हैं।

कथा और शैली मे सादृश्य होते हुए भी कादम्बरी को तिलकमजरी का उपजीव्य नहीं कहा जा सकता। कादम्बरी का उपजीव्य जिस तरह गुणाढ्य की बृहत्कथा है उसी तरह तिलकमंजरी के उपजीव्य उससे पूर्व की अनेक कृतिया हैं।[1]

तिलकमंजरी मे अन्य गद्यकाव्यों की अपेक्षा कई विशेषताएं हैं :[2] १. इसके गद्य अधिक लम्बे और अनेक पदों से निर्मित समास की बहुलता से रहित हैं, २. इसमें अधिक श्लेषालकार की भरमार नहीं है, ३. इसमें अगणित विशेषणों का आडम्बर नहीं है, इससे कथा के आस्वाद मे चमत्कृति है, ४. इसमे श्रुत्यनुप्रास द्वारा श्रवण-मधुरता उत्पन्न की गई है आदि। कवि ने इसे 'अद्भुतरसा रचिता कथा' कहा है। यह काव्य अपने वर्णनवैविध्य एव वैचित्र्य के कारण बाण से आगे बढ़ गया है। इसमें सास्कृतिक जीवन, राजाओं का वैभव, उनके विनोद के साधन, तत्कालीन गोष्ठियां, अनेक प्रकार के वस्त्रों के नाम, नाविक तंत्र, युद्धास्त्र आदि का जीता-जागता वर्णन मिलता है।

---

१. प्रारंभिक पद्यों में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का उल्लेख किया है।

२. विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद से प्रकाशित तिलकमंजरी की प्रस्तावना, पृ० १४-१६.

यह गद्यकाव्य ऐतिहासिक महत्त्व का भी है। इसके प्रारम्भ में धारा के परमार राजाओं की वैरिसिंह से लेकर भोज तक वंशावली दी गयी है।[1] कवि स्वय परमार राजा मुञ्ज की सभा का सदस्य था तथा उक्त राजा द्वारा सरस्वती पद[2] से विभूषित किया गया था।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता का नाम धनपाल है। कवि के पिता का नाम सर्वदेव और पितामह का नाम देवर्षि था। पितामह मध्यदेश के सांकाश्य नामक ग्राम (वर्तमान फर्रुखाबाद जिले में 'संकिस' नामक ग्राम) के मूल निवासी ब्राह्मण थे और उज्जयिनी मे आ बसे थे। धनपाल का शोभन नामक एक अनुज और सुन्दरी नामक एक बहिन थी। कवि वेद-वेदाग आदि के पण्डित थे। कहा जाता है कि धनपाल के अनुज शोभन जैन मुनि हो गये थे और अपने अनुज से प्रभावित होकर कवि ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया। धनपाल के सम्बन्ध में प्रभावकचरित के 'महेन्द्रसूरिप्रबध', प्रबधचिन्तामणि के 'धनपालप्रबध', रत्नमन्दिरगणि के 'भोजप्रबध' आदि मे कई आख्यान दिये गये हैं। धनपाल का समय मुज और भोज के समकालीन होने से विक्रम की ११वीं शती है।

इनकी अन्य रचनाओं में पाइयलच्छीनाममाला, ऋषभपचाशिका और वीरथुइ मिलती हैं। कवि ने पाइयलच्छीनाममाला की रचना वि० सं० १०२९ में धारा नगरी मे अपनी छोटी बहिन सुन्दरी के लिए की थी।[3] धनपाल ने तिलकमंजरी की रचना राजा भोज के जिनागमोक्त कथा सुनने के कुतूहल को मिटाने के लिए की है।[4]

---

१. पद्य ३८-५१.

२. पद्य ५३ : श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणिभृता व्याहृतः।

३. विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि······
कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नाम धिज्जाए।

४ निःशेष वाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः,
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतोः,
राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम्॥

तिलकमंजरीकथासार :

धनपाल के प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'तिलकमंजरी' के आधार मे अनुष्टुभ् छन्द में 'तिलकमंजरीसार'[1] की रचना हुई है। इसमे १२०० से कुछ अधिक पद्य हैं।

इसके रचयिता एक अन्य धनपाल हैं जो अणहिल्लपुर के पल्लीवाल जैन कुल में उत्पन्न हुए थे। उक्त धनपाल ने इसकी रचना कार्तिक सुदी अष्टमी, गुरुवार वि० स० १२६१ मे समाप्त की थी।

गद्यचिन्तामणि :

यह द्वितीय गद्य काव्य है।[2] इसके लेखक ने जीवन्धर के लौकिक कथानक को लेकर सरल से सरल संस्कृत पद्यों में क्षत्रचूडामणि जैसे लघु काव्य की सृष्टि की तो अलकृत गद्यकाव्य शैली मे कठिन से कठिन सस्कृत मे गद्यचिन्तामणि की।

यह गद्यकाव्य क्षत्रचूडामणि के समान ही ११ लम्भों मे विभक्त है और उसी के अनुसार जीवंधर का चरित इसमें वर्णित है। इसमे विशेषता यह है कि कवि को अपने अप्रतिम कल्पनावैभव, वर्णनपटुता एव मानवीय भावनाओं के मार्मिक चित्रण का खुलकर अवसर मिला है। इस काव्य मे अन्य कलावादी कवियों के समान ही कवि ने शब्दक्रीड़ा-कुतूहल दिखाया है, भावभगिमाओं के रमणीय चित्रण प्रस्तुत किये हैं तथा सानुप्रासिक समासान्त पदावली एवं विरोधाभास और परिसंख्यालंकार के चमत्कार दिखलाये हैं। गद्यलेखक के रूप मे शब्दों की पुनरुक्तता से बचने के लिए कवि ने नये-नये शब्द गढ़े हैं जैसे पृथ्वी के लिए अम्बुधिनेमि, मुनि के लिए यमधन, इन्द्र के लिए बलनिषूदन, सूर्य के लिए नलिनसहचर, चन्द्रमा लिए यामिनीवल्लभ आदि।

इस काव्य की रचना मे पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव तो परिलक्षित होता है पर उस प्रभाव मे वह अन्धानुकरण का दोषी नहीं। सुबन्धु के गद्यकाव्य वास-

---

१. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९७० में प्रकाशित

२. वाणी विलास प्रेस, श्रीरगम्, १९१६; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से हिन्दी अनुवाद और संस्कृत टीका सहित पं० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, वि० सं० २०१५.

वदत्ता में श्लेष तथा अन्य अलकारो की भरमार से उसके सौन्दर्य का घात ही हुआ जबकि गद्यचिन्तामणि मे परिमित और सारगर्भित अलकारों के प्रयोग के कारण इस काव्य की शोभा ही बढ़ी है। बाण की कादम्बरी जिस किसी वर्णन मे विशेषणो की भरमार से इतनी उलझी हुई है कि पाठक उसके रसास्वादन से वचित-सा रह जाता है, वह एक प्रकार से जगल में फस जाता है, पर गद्यचिन्तामणि इस दोष से मुक्त है। इस काव्य में पदलालित्य, श्रवणीय शब्दविन्यास, स्वच्छन्द वचनविस्तार के साथ सुगम रीति से कथाबोध हो जाता है। कवि ने इस काव्य के भाषाप्रवाह को उतना ही प्रवाहित किया है जिसमे रसवृक्ष सींचा तो गया है परन्तु डुबाया नहीं गया है। दण्डी के दशकुमारचरित में आदि मे ही इतनी घटनाओं का अवतारण हुआ है कि पाठक के लिए उनका अवधारण कठिन है। भाषा का प्रवाह एव पदलालित्य भी प्रारम्भ में जितना प्रदर्शित हुआ है वह उत्तरोत्तर क्षीण ही होता गया है और अत में कथानक का अस्थिपजर ही दिखाई देता है परन्तु गद्यचिन्तामणि मे ऐसी बात नहीं है। इसमें भाषा का प्रवाह आदि से अन्त तक अजस्र प्रवाहित है।[१]

इस काव्यग्रन्थ के प्रथम सम्पादक स्वर्गीय प० कुप्पुस्वामी ने इसकी विशिष्टताओं को इन पक्तियो में प्रकट किया है :[२]

"अस्य काव्यपथे पदानां लालित्यं, श्राव्यः शब्दसंनिवेशः, निरर्गला वाग्वैखरी, सुगमः कथासारावगमश्चित्त-विस्मापिका कल्पनाहृच्चेतः प्रसादजनको धर्मोपदेशो, धर्माविरुद्धा नीतयो, दुष्कर्मणो विषयफलावाप्तिरिति विलसन्ति विशिष्टगुणाः।"

अर्थात् इस काव्य मे पदों की सुन्दरता, श्रवणीय शब्दों की रचना, अप्रतिहत वाणी, सरल कथासार, चित्त को आश्चर्य में डालने वाली कल्पनाए, हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला धर्मोपदेश, धर्म से अविरुद्ध नीतियाँ और दुष्कर्म के फल की प्राप्ति आदि विशिष्ट गुण सुशोभित हैं।

इस काव्य में तत्कालीन सास्कृतिक चित्रण, नाना प्रकार के वाद्य, वस्त्र, भोजनगृहवर्णन, आकाश मे उड़ने के यत्र, कन्दुक-क्रीड़ा आदि का बड़ा मनोहारी

---

१. इस काव्य की अन्य विशेषताओं के लिए गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृ० ४७४-४८३ में प्रकाशित प० पन्नालाल साहित्याचार्य का लेख 'गद्यचिन्तामणि परिशीलन' देखें।

२ गद्यचिन्तामणि, श्रीरंगम्, प्रस्तावना, पृ० ९.

वर्णनमिलता है। आचार्य आर्यनन्दि का जीवधर को शिक्षान्त उपदेश कादम्बरी मे शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये उपदेश की याद दिलाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता और क्षत्रचूडामणि के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं—आचार्य वादीभसिंह अपरनाम ओडयदेव। इनका परिचय उक्त काव्य के प्रसंग में दिया गया है।

अन्य गद्यकाव्यों में सिद्धसेनगणिकृत अंशुमती नामक आख्यायिका का भी उल्लेख मिलता है पर वह अद्यावधि उपलब्ध नहीं है।

चम्पूकाव्य :

मध्यकालीन भारतीय जनरुचि ने गद्य-पद्य की मिश्रण शैली मे एक ऐसी साहित्यविधा को जन्म दिया जिसे चम्पू कहते हैं। वैसे पश्चात्कालीन सस्कृत काव्यशास्त्रियों ने इस विधा को स्वीकार कर 'गद्य-पद्यमयी वाणी चम्पू' इस प्रकार लक्षण किया है पर यथार्थ मे चम्पू शब्द सस्कृत का न होकर द्रविड भाषा[1] का है। धारवाड़ निवासी कवि द० रा० वेन्द्रे का मत है कि कन्नड और तुलु भाषाओं में मूल शब्द केन-चेन कंपु और चेम्पु के रूप में निष्पन्न होकर सुन्दर और मनोहर अर्थ का बोध कराते हैं। गद्य-पद्यमिश्रित काव्य विशेष को जनता ने सर्वप्रथम सुन्दर एवं मनोहर अर्थ में चेम्पु के नाम से पुकारा होगा और वही बाद में रूढ़िबल से चेम्पु या चम्पु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उक्त कवि का यह भी मत है कि चम्पू का सीधा सम्बन्ध जैन तीर्थंकरों के पचकल्याणों से है और पच-पंच शब्द ही गम्-गम् गम्पू की तरह चम्पू बन गया। संस्कृत साहित्यक्षेत्र के लिए यह जैनों की अनुपम देन है। कन्नड में चम्पूकाव्य के रचयिता प्रसिद्ध जैन कवि पम्प, पोन्न और रन्न हैं जो सस्कृत में उपलब्ध चम्पुओं से पहले रचे गये थे। कन्नड में इस साहित्य की सृष्टि अवश्य ही ८-९वीं शताब्दी में हो गई थी।

१०वीं शताब्दी में राष्ट्रकूट नरेशों के राज्यकाल में सस्कृत के प्रथम चम्पुओं की—पहले त्रिविक्रमभट्टकृत नलचम्पू (सन् ९१५) और बाद में सोमदेवकृत जैन चम्पू 'यशस्तिलक' (सन् ९५९ ई०) की—रचना हुई थी।

जैन चम्पूकाव्यों में अब तक ३-४ कृतियाँ ही उपलब्ध हो सकी हैं। उनका क्रमशः सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:

---

1. मरुधरकेशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, जोधपुर, वि० सं० २०२५, पृ० २७९-८४ में पं० के० भुजबली शास्त्री का लेख.

कुवलयमाला :

यह महाराष्ट्री प्राकृत का गद्य-पद्यमिश्रित चम्पू है। इसका परिचय हम कथा-साहित्य में दे आये हैं।

यशस्तिलकचम्पू :

यह[1] चम्पूविधा का विकसित और प्रौढ़ रूप है जिसकी कोटि का संस्कृत साहित्य मे कोई दूसरा काव्य नहीं है। यह चम्पू न केवल गद्य-पद्य का श्रेष्ठ नमूना है बल्कि जैन और अजैन धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तों का भण्डार, राजतन्त्र का अनुपम ग्रंथ, विविध छन्दों का निधान, प्राचीन अनेक कहानियों, दृष्टान्तों और उद्धरणों का संग्रहालय और अनेक नवीन शब्दों का कोश है। सोमदेव की यह कृति उनकी साहित्यिक प्रतिभा और कविहृदय से सम्पन्न विशाल पाण्डित्य की द्योतक है।

इस चम्पू में जैन पुराणों में वर्णित एव जैन कवियों के लिए अतिप्रिय यशोधर नृप की कथा को लिया गया है, जो घरेलू दुर्घटना पर आश्रित एक यथार्थ कहानी है। इस दुःखान्त घटना के चारों ओर एक प्रकार से नैतिक एवं धार्मिक उपदेशों का जाल बुना गया है। सोमदेव के कवित्व की यह सबसे बड़ी कसौटी थी कि वे व्यभिचार और हत्या पर आश्रित एक कथा पर सुबन्धु और बाण की शैली पर उपन्यास लिखने का साहस कर उसमें सफल हुए। वास्तव में समस्त संस्कृत साहित्य में यशस्तिलक ही अकेला ऐसा काव्य है जो दाम्पत्य जीवन की घटना को ले, उसके कृत्रिम प्रेम भाग को छोड़, भाग्यचक्र के खेल और जीवन के कठोर सत्यों का निरूपण करता है।

यह काव्य आठ आश्वासों में विभक्त है। घटनास्थल योधेय देश का राजपुर नामक नगर है। वहाँ राजा मारिदत्त वीरवैभव तान्त्रिक के प्रभाव से चण्डमारि देवी के मन्दिर में प्रत्येक वर्ग के प्राणियों के जोड़े बलि देने को

---

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से २ भागों में प्रकाशित, १९०१-३; प० सुन्दरलाल जैन द्वारा संस्कृत-हिन्दी टीका के साथ महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी से १९६० और १९७१ में प्रकाशित; इसके सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन के लिए देखें—जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर से १९४९ में प्रकाशित प्रो० कृष्णकान्त हान्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर' तथा पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी से १९६७ में प्रकाशित डा० गोकुलचन्द्र जैन का 'यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन'.

उद्यत था। नरयुगल के रूप में नवदीक्षित जैन यति अभयरुचि और क्षुल्लिका अभयमति वहाँ लाये जाते हैं। राजा में उनके प्रति स्नेहभाव जागता है (भाग्य से वे दोनों उसकी बहन के पुत्र-पुत्री थे, जिन्हें वह तत्काल पहचान न सका था)। वह उन दोनों बालयतियों को सिंहासन देता है। दोनों एक-एक कर उस राजा की प्रशंसा कर उसे जैनधर्म की ओर झुका लेते हैं (१ आश्वास)। उनमें से बालकयति अभयरुचि मारिदत्त नृप को अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त कहता है और यशोधर नृप की कथा[1] सुनाता है। यह कथा पाँचवें आश्वास में समाप्त होती है। इसके बाद हिंसारत उस राजा में वह अहिंसा-धर्म की ज्ञानज्योति जगाता है और ६-८ तीन आश्वासों में उपदेश के रूप में रोचक शैली से श्रावकाचार का वर्णन किया गया है। उक्त अंश को 'उपासकाध्ययन'[2] नाम से भी कहा जाता है। चम्पू के अन्त में दिखाया गया है कि राजा मारिदत्त और उसकी कुलदेवी चण्डमारि जैनधर्म में दीक्षित हो गये।

उक्त यशोधर की कथा का स्रोत पूर्ववर्ती रचना प्रभंजनकृत यशोधरचरित और हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा के चतुर्थ भव में मिलता है, परन्तु कवि ने उसमें कई परिवर्तन किये हैं। हरिभद्र की रचना में मारिदत्त और युगल मनुष्यों की बलि की कथा नहीं दी तथा दोनों में प्रधान पात्रों के नामों में भी अन्तर है। उक्त चम्पू के लेखक ने कथा को साधन बना कर ब्राह्मणधर्म पर आक्षेप किये हैं जबकि हरिभद्र के कथानक में इनका एकदम अभाव है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता आचार्य सोमदेवसूरि[3] हैं जो देवसंघ के यशोदेव के शिष्य नेमिदेव के शिष्य थे। ये बहुश्रुत विद्वान् थे, यह उनका उक्त ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञात होता है। इन्होंने न्याय और राजनीतिविषयक कई ग्रन्थ लिखे थे पर उक्त चम्पू के अतिरिक्त दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ नीतिवाक्या-

---

१. इस कथा पर लिखे गये विस्तृत साहित्य का हम पूर्व में परिचय दे आये हैं।

२. यह अंश उक्त नाम से पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं अनूदित तथा संस्कृत टीका सहित भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९४४ में प्रकाशित हुआ है। उसकी भूमिका पठनीय है।

३. इनके विशेष परिचय के लिए देखें—पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९० आदि, उपासकाध्ययन (भारतीय ज्ञानपीठ), प्रस्तावना, पृ० १३-२६; यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २७-४१; प्रो० कृष्णकान्त हान्दिकी, यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, प्रथम अध्याय.

मृत ही उपलब्ध है। 'नीतिवाक्यामृत' की प्रशस्ति मे जिस 'यशोधर-चरित' का उल्लेख है वही यह यशस्तिलकचम्पू है। इसमे भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, गुणाढ्य, व्यास, भास, कालिदास, बाण आदि कवियों, गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, पराशर, भीष्म, भारद्वाज आदि राजनीतिशास्त्रप्रणेताओं तथा कई वैयाकरणो का उल्लेख है। यशोधर नृप के चरित्रचित्रण मे कवि ने राजनीति की विस्तृत एव विशद चर्चा की है। यशस्तिलक का तृतीय आश्वास राजनीतिक तत्त्वों से भरा पड़ा है। इस चम्पू की रचना राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण के सामन्त चालुक्य अरिकेशरी तृतीय के राज्यकाल मे हुई थी।

रचनाकाल वि० स० १०१६ (सन् ९५९) दिया गया है। इसमें तत्कालीन सस्कृति एव सभ्यता की अनेको बातों का सुन्दर वर्णन है।

प्रो० हान्दिकी के शब्दों मे—'भारतीय साहित्य के इतिहास में सोमदेव प्रमुख बहुमुखी प्रतिभाओं मे से एक थे और उनका अनुपम ग्रन्थ यशस्तिलक उनकी अनेकविध प्रतिभा का परिचायक है। वे गद्य-पद्य की रचना मे बडे कुशल, बहुस्मृतिसम्पन्न, जैन सिद्धान्त के पारगामी और समकालीन दर्शनों के अच्छे समालोचक थे। वे राजनीति के गम्भीर पण्डित थे तथा इस विषय में उनके दोनों ग्रन्थ यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृत एक दूसरे के पूरक हैं। वे प्राचीन जनकथासाहित्य एव धार्मिक कथाओं के अच्छे सम्पादक के साथ-साथ नाटकीय सवादों को प्रस्तुत करने में बडे ही प्रवीण थे। वे मानव और उसके स्वभाव की विविधता के अच्छे अध्येता थे। इस तरह सस्कृत साहित्य मे सोमदेव की स्थिति सचमुच अतुलनीय है।'

इस चम्पू पर श्रीदेवरचित पजिका उपलब्ध है और पाच आश्वासों पर श्रुतसागर भट्टारककृत सस्कृत टीका तथा ६-८ आश्वासों पर प० जिनदास फडकुले कृत उपासकाध्ययन-टीका प्रकाशित हो चुकी है।

जीवन्धरचम्पू :

इस ग्रन्थ[1] के पुष्पिका-वाक्यों में सर्वत्र ग्रन्थ का नाम 'चम्पुजीवन्धर'

---

[1] टी० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित-प्रकाशित, श्रीरंगम्, १९०५; प० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से सं० २०१५ में प्रकाशित—इसमें संस्कृत में कौमुदी टीका तथा हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इस संस्करण की ४४ पृ० की प्रस्तावना पठनीय है।

मिलता है पर विद्वज्जन इसे उपर्युक्त नाम से कहते हैं। इसमें जीवन्धर के चरित का वर्णन है। यह संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कुछ चम्पूकाव्यो मे से एक है तथा जैन साहित्य के चम्पुओं मे यशस्तिलकचम्पू के बाद इसी का नाम आता है। यह ११ लम्भो मे विभक्त है। इसकी कथा का आधार गद्यचिन्तामणि एव क्षत्रचूडामणि है जिनमे जीवन्धर की कथा गद्य और पद्य मे विस्तार से वर्णित है। इनमे प्रत्येक लम्भ की कथावस्तु तथा पात्रों के नाम आदि उक्त दोनों ग्रन्थो से मिलते-जुलते हैं। इस चम्पू में वह वैशिष्ट्य तो नहीं है जो यशस्तिलकचम्पू में मिलता है परन्तु इसकी रचना सरसता और सरलता की दृष्टि से प्रशसनीय है। इसमें अलकारों की योजना विशेषरूप से हृदय को आकृष्ट करती है। पद्यों की अपेक्षा गद्य की रचना अधिक पाण्डित्यपूर्ण है। कितने ही गद्य इतने कौतुकभरे हैं कि उन्हें पढकर कवि की प्रतिभा का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। नगरीवर्णन, राजवर्णन, रानीवर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, युद्ध आदि वर्णना को कवि ने यथास्थान सजाकर रखा है।

कुछ अलकारों की छटा यहाँ द्रष्टव्य है :

"यश्च किल संक्रन्दन इवानन्दितसुमनोगणः, अन्तक इव महिषीसमधिष्ठितः, वरुण इवाशान्तरक्षणः, पवन इव पद्मामोदरुचिरः, हर इव महासेनानुयातः, ... भद्रगणोऽप्यनागो, विबुधपतिरपि कुलीनः, सुवर्णधरोऽप्यनादित्यागः, सरसार्थपोषकवचनोऽपि नरसार्थपोषकवचनः।"[1]

यहाँ श्लिष्ट पूर्णोपमालकार और विरोधाभासालकार दर्शनीय है।

"यस्य प्रतिपक्षलोलाक्षीणां काननवीथिकादम्बिनीशम्पायमानतनुसम्पदां वदनेषु वारिजभ्रान्त्या पपात हंसमाला, तां कराङ्गुलीभिर्निवारयन्तीनां तासां करपल्लवानि चकर्षुः कीरशावकाः ...... ततश्चलित वेणीनामेणाक्षीणां नागभ्रान्त्या कर्षन्तिस्म वेणीं मयूराः।"[2]

इस गद्याश में भ्रांतिमदलकार है और करुणरस का परिपोष भी दर्शनीय है। इस गद्याश का पूरा भाग उपलब्ध सस्कृत साहित्य में अनूठा है।

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ सस्करण, पृ० ८.
२. वही, पृ० ११

इस चम्पू के पद्यों, गद्य और भावों से सादृश्य रखने वाले अशों का तुलनात्मक अध्ययन स्व० कुप्पुस्वामी शास्त्री ने अपने सम्पादित इस ग्रन्थ के सस्करण मे तथा क्षत्रचूडामणि के सस्करण में अच्छी तरह किया है जो वहीं से द्रष्टव्य है। कुछ उल्लेखों का भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित सस्करण की भूमिका में भी दिग्दर्शन कराया गया है। लगता है कि इस काव्य की रचना गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि को सामने रख कर की गई है। अन्य कृतियों की भाँति इस कृतिमे भी रघुवश, कुमारसभव, शिशुपालवध और नैषध के प्रभाव द्रष्टव्य हैं।

कर्ता एव रचनाकाल—इस चम्पू और धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य के कर्ता एक ही महाकवि हरिचन्द्र माने जाते हैं। दोनो काव्यों के भावों तथा शब्दों मे जो समानता है तथा पद-पद पर सादृश्य, अलकारयोजना और शब्दविन्यास की जो एक-सी शैली है वह पर्याप्त रूप से सिद्ध करती है कि दोनों का कर्ता एक है।[1] जीवन्धरचम्पू की हस्तलिखित प्रति के पुष्पिका-वाक्यों[2] में इसके कर्त्ता हरिचन्द्र का उल्लेख मिलता है। ग्रन्थान्त में ग्रन्थकर्ता ने स्वय अपने नाम का उल्लेख किया है।[3]

पुरुदेवचम्पू :

यह चम्पू[4] दस स्तबकों में विभाजित है। इसमें पुरुदेव अर्थात् भगवान् आदिनाथ का चरित वर्णित है। इसकी रचना में अर्थगाम्भीर्य की अपेक्षा शब्दों के चयन में विशेष ध्यान दिया गया है। सर्वत्र अर्थालंकार की अपेक्षा शब्दालंकार का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। इस ग्रन्थ के अन्तःपरीक्षण से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के पद्य भाग की रचना में जिनसेनाचार्य के

---

१ प्रस्तावना में सादृश्यपरक अनेक अवतरण द्रष्टव्य हैं, पृ० ३७-४०

२. इति महाकविहरिचन्द्रविरचिते······।

३. सिद्धः श्रीहरिचन्द्रवाङ्मय आदि, पद्य ५८, लम्भ ११.

४. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९७२, पं० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित एवं अनूदित; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई (सं० १९८५) से पं० फडकुले शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित; जिनरत्न-कोश, पृ० २५२.

आदिपुराण (महापुराण) का अच्छा उपयोग किया गया है क्योंकि ग्रथ मे उक्त पुराण के कहीं तो पूरे श्लोक और कहीं एक या दो चरण ज्यों के त्यों काव्य के अग के रूप मे ग्रहण कर लिये गये हैं। इसके गद्य सरल हैं। कठिन गद्यों को समझाने के लिए सहायक टीका भी दी गई है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता कवि अर्हद्दास हैं। इनका परिचय इनके अन्य ग्रथ मुनिसुव्रतकाव्य के प्रसग में दिया गया है।[१] अर्हद्दास का समय वि० सं० १३२५ के लगभग माना गया है। इसलिए यह चौदहवीं शताब्दी के पूर्व भाग की रचना है।

चम्पूमण्डन :

यह[२] आठ पटलों मे विभाजित है। इसमे द्रौपदी और पाडवों की कथा वर्णित है। यह गद्य पद्य की सुललित शैली में लिखा गया लघु चम्पूकाव्य है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता मालवा के प्रसिद्ध कवि मण्डन है जिन्होंने कादम्बरीमण्डन आदि ग्रथ लिखे हैं। ये १५वीं शताब्दी के कवि थे।

इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५०४ मे लिखी मिलती है।

अन्य चम्पुओं मे जयशेखरसूरि का नलदमयन्तीचम्पू उल्लेखनीय है।

गीतिकाव्य :

यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने गीतिकाव्य नाम से कोई भी काव्य-विधा नहीं मानी, परन्तु सस्कृत में गीति काव्य हैं। गीतिकाव्य उसे कहते हैं जिसमें गेयरूप से रसपूर्ण एक भाव की अभिव्यक्ति हो। पाश्चात्यशास्त्रियों और हिन्दी के काव्यमर्मज्ञो ने गीतिकाव्यों पर पूर्ण विचार प्रकट किये हैं। उनकी पर्यालोचना करने से कुछ प्रमुख तत्त्व इस प्रकार सामने आते हैं : १. अन्तर्वृत्ति की प्रधानता, २. सगीतात्मकता, ३. निरपेक्षता, ४. रसात्मकता, ५. रागात्मक अनुभूतियो की सघनता, ६. भावसान्द्रता, ७. चित्रात्मकता, ८ समाहित प्रभाव, ९. मार्मिकता, १०. संक्षिप्तता, ११. स्वाभाविक अभिव्यक्ति और १२. सहज अन्तःप्रेरणा।

---

१. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य (डा० श्यामशंकर दीक्षित), पृ० ३२५-३२६ में कविपरिचय द्रष्टव्य है।

२. हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थमाला, पाटन (गुजरात), १९१८; जिनरत्नकोश, पृ० १२१.

संस्कृत में प्रबंधात्मक गीतिकाव्य और मुक्तक गीतिकाव्य ये दो प्रकार मिलते हैं। प्रबंधात्मक गीतिकाव्य मेघदूत या उसके अनुसरण पर लिखे गये अनेक संदेशकाव्य हैं। पर अधिकांश गीतिकाव्य मुक्तक शैली में लिखे गये हैं। मुक्तक काव्य के दो भेद हैं · १. रसमुक्तक और २. रसेतरमुक्तक। रस-मुक्तक में मेघदूत, पार्श्वाभ्युदय, चौरपंचाशिका, गीतगोविन्द, गीतवीतराग काव्य आते हैं। रसेतर गीति-साहित्य में स्तोत्र, शतक आदि साहित्य का स्थान है।

यहाँ हम गीतिकाव्य के क्षेत्र में जैन कवियों के योगदान की चर्चा करेंगे।

रसमुक्तक पाठ्य गीतिकाव्य—दूत या सन्देशकाव्य (खण्डकाव्य):

इस विधा के साहित्य ने संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य (Lyric Poetry) के अभाव की पूर्ति की है। दूतकाव्य विरह या विप्रलंभ शृंगार की पृष्ठभूमि लेकर लिखे गये हैं। इनमें नायक द्वारा नायिका के प्रति या नायिका द्वारा नायक के प्रति किसी दूत के माध्यम से प्रेमसन्देश भेजा जाता है। दूत का कार्य कोई पुरुष, पक्षी, भ्रमर, मेघ, पवन, चन्द्रमा, चरणचिह्न, मन या शील आदि तत्त्वों द्वारा कराया जाता है। इस शैली में दो तत्त्व देखे जाते हैं: एक वियोग और दूसरा प्रकृति या भावना का मानवीकरण। यद्यपि प्रसंगवशात् दूतकाव्यों मे नगर, पर्वत, नदी, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, वसन्त और जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन रहता है पर वह इतना संक्षिप्त होता है कि काव्य बड़े आकार का नहीं बन पाता इसलिए इन्हे हम खण्डकाव्य या गीतिकाव्य कहते हैं।

वैसे तो भावनाक्रान्त मानस द्वारा प्राणिविशेष को दूत बनाकर प्रेयसी[1] के पास सन्देश भेजने की सूझ प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलती है पर महाकवि कालिदास का मेघदूत इसका अनोखा उदाहरण है। संस्कृत के दूतकाव्यों का प्रारम्भ भी इसी से होता है। बाद के दूतकाव्यों की रचना मे उक्त काव्य से सहायता ग्रहण करने के संकेत दिखाई देते हैं।

जैन कवियो ने दूतकाव्य के क्षेत्र और वस्तुकथा को विकसित करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। पहला तो विप्रलंभ शृंगार के स्थान मे शान्तरस

---

१. सरमा-पणिसंवाद, ऋग्वेद, मण्डल १०, अनुवाक ८, सूक्त १०८ मंत्र १-११.

के प्रतिपादन मे, इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय है, दूसरा दूतकाव्यों द्वारा धार्मिक नियमो और तात्त्विक सिद्धान्तों के उपदेश मे, तीसरा काव्यात्मक पत्ररचना के रूप मे, इन पत्रों को विज्ञप्तिपत्र कहते हैं। ये विज्ञप्तिपत्र पर्यूषण पर्व के समय श्वेताम्बर जैन साधुओं द्वारा अपने गुरुओ को लिखे पत्र हैं जो दूतकाव्य के ढग से लिखे गये हैं। इस प्रकार के काव्य १७वीं और बाद की सदियों मे विशेष रूप से लिखे गये हैं।

दूतकाव्य मे जो ये नूतन सस्कार किये गये हैं उनसे प्रकट होता है कि जैनों में दूतकाव्य बहुत प्रिय था। लोकमानस को पहचानने वाले जैन कवियों ने इसीलिए अपने नीरस धर्मसिद्धान्तों और नियमों का प्रचार करने के लिए इस विधा का आश्रय लिया है। इस कार्य में भी उन्होंने साहित्यिक सौन्दर्य और सर-सता की क्षति नहीं होने दी।

जैनों के सभी दूतकाव्य सस्कृत मे मिले हैं, प्राकृत में एक भी नहीं। प्रधान दूतकाव्यो मे पार्श्वनाथ और नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवनवृत्त अकित हैं। कुछ जैन कवियों ने मेघदूत के छन्दों के अन्तिम या प्रथम पाद को लेकर समस्या-पूर्ति की है। इस प्रकार का प्राचीन दूतकाव्य जिनसेनकृत पार्श्वाभ्युदय (सन् ७८३ ई० से पूर्व) है। पीछे १३वीं सदी से अब तक जैन कवियों ने इस दूत परम्परा का पर्याप्त विकास एव पल्लवन किया है। इनमें उल्लेखनीय रचनाएं हैं: विक्रम का नेमिदूत (ई० १३वीं शती का अन्तिम चरण), मेरुतुग का जैन-मेघदूत (१३४६-१४१४ ई०), चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत (१५वीं शती), वादिचन्द्र का पवनदूत (१७वीं शती), विनयविजयगणि का इन्दुदूत (१८वीं शती), मेघविजय का मेघदूतसमस्यालेख (१८वीं शती), अज्ञातकर्तृक चेतो-दूत एव विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत।

जैन दूतकाव्यों का सक्षेप में परिचय प्रस्तुत है:

पार्श्वाभ्युदय:

इस काव्य मे ४ सर्ग हैं।[1] प्रथम में ११८ पद्य, द्वितीय में ११८, तृतीय में ५७ और चतुर्थ मे ७१ इस प्रकार ४ सर्गों मे ३६४ पद्य हैं। इसका प्रत्येक पद्य मेघदूत के क्रम से पद्य के एक चरण या दो चरणों को समस्या के रूप मे लेकर

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९, टीकासहित; बालबोधिनी टीका एवं अंग्रेजी अनुवादसहित, संपा०—मो० गो० कोठारी, प्रकाशक—गुलाबचन्द्र हीराचन्द्र कंस्ट्रक्शन हाउस, बेलार्ड इस्टेट, बम्बई, १९६५.

पूरा किया गया है। मेघदूत के समान ही इसमें मन्दाक्रान्ता छन्द का व्यवहार किया गया है और वैसी ही काव्य की भाषा भी प्रौढ है, पर समस्यापूर्ति के रूप में काव्य की शैली जटिल हो गई है जिसमें पंक्तियों के भाव में यत्र-तत्र विपर्यन्तता आ गई है।

इस काव्य का वर्ण्यविषय २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के ऊपर घोर उपसर्ग से सम्बद्ध है जिसमें उपसर्ग करने वाले शम्बर यक्ष के पूर्वजन्म के कथानकों से जोड़कर कथावस्तु[१] दी गई है। पुराणों में वर्णित पार्श्वनाथ के चरित्र को अनेक स्थलों में कवि ने आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया है फिर भी मेघदूत के उद्धृत अंश के प्रचलित अर्थ को विद्वान् कवि ने अपने स्वतन्त्र कथानक में प्रसंगोचित अर्थ में प्रयुक्त कर बड़ी विलक्षणता का परिचय दिया है। एक-दो या दस-पचास पंक्तियों की समस्या एक बात हो सकती है, पर सम्पूर्ण काव्य को इस तरह आत्मसात् करना सचमुच में विलक्षण ही है।[२]

इस काव्य में समस्यापूर्ति का आवेष्टन तीन रूपों में रखा गया है: १. पादवेष्टित, २. अर्धवेष्टित और ३. अन्तरितावेष्टित। अन्तरितावेष्टित में भी एकान्तरित, द्वयन्तरित आदि कई प्रकार हैं। प्रथम पादवेष्टित में मेघदूत के पद्य का कोई एक चरण लिया गया है, द्वितीय अर्धवेष्टित में कोई दो चरण और तृतीय अन्तरावेष्टित में मेघदूत के पद्य के प्रथम चतुर्थ या द्वितीय-चतुर्थ या प्रथम-तृतीय या द्वितीय-तृतीय चरणों को रखा गया है। तीनों प्रकार के उदाहरण अन्यत्र द्रष्टव्य हैं।[३] विस्तारभय से यहां देना सम्भव नहीं।

वैसे पार्श्वाभ्युदय मेघदूत की समस्यापूर्ति में लिखा गया है, इससे उसे इस श्रेणी में रख सकते हैं पर इसमें दूत या सन्देश शैली के कोई लक्षण नहीं

---

१. विस्तृत कथावस्तु के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७३-४७४.

२ प्रो० काशीनाथ बापूजी पाठक का कहना है :

The first place among Indian poets is allotted to Kalidas by consent of all. Jinasena, however, claims to be considered a higher genius than the author of the Cloud Messenger (मेघदूत)

३. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७१-४७१

हैं। इसे हम एक अच्छा पादपूर्तिकाव्य कह सकते हैं। प्रस्तुत काव्य में जैन धर्मविषयक कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य हैं जिन्होंने महापुराण (आदिपुराण) की रचना की थी। उक्त प्रसंग में उनका विस्तृत परिचय दिया गया है। पार्श्वाभ्युदय का उल्लेख द्वितीय जिनसेन ने हरिवंश-पुराण (शक सं० ७०५, सन् ७८३ ई०) में किया है, अतः यह काव्य उससे पूर्व अवश्य रचा गया था।

इस पर योगिराट् पण्डिताचार्यकृत टीका मिलती है जिसका नाम सुबोधिका है। उसमें उक्त काव्य की बहुत प्रशंसा की गई है।

नेमिदूत :

इसमें[1] १२६ पद्य हैं जिनकी रचना में मेघदूत काव्य के अन्तिम चरण की समस्यापूर्ति की गई है। इसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ और राजीमती या राजुल के विरह-प्रसंग का वर्णन है। वस्तुतः यह मेघदूत पर आधृत एक मौलिक काव्य है। इसके नामकरण का यह अर्थ नहीं कि इसमें नेमिनाथ ने दूत का काम किया है, बल्कि आराधक नायक नेमि के लक्ष्य से दूत (वृद्ध ब्राह्मण) भेजने के कारण इसका नेमिदूत नामकरण हुआ है। मेघदूत में दूत नायक की ओर से भेजा गया है तो नेमिदूत में नायिका की ओर से।

घटना-प्रसंग यह है कि नेमिनाथ अपने विवाह-भोज के लिए बाड़े में एकत्र किये गये पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर विरक्त हो रैवतक पर्वत पर योगी बन जाते हैं। दुलहिन राजीमती एक वृद्ध ब्राह्मण को दूत बनाकर उन्हें मनाने के लिए भेजती है। यहां द्वारिका से रैवतक पर्वत तक का सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्त में राजीमती का विरह शमभाव में परिणत हो जाता है।

सखीसहित राजीमती के नेमिनाथ को गृही बनाने के प्रयत्नों का वर्णन ही संक्षेप में इस काव्य की विषयवस्तु है।

यह काव्य अपनी भाषा, भाव और पद्य रचना में तथा काव्यगुणों से बड़ा ही सुन्दर बन गया है। कवि ने विरही जनों की यथार्थ दुःख-अवस्था का जो वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि वे ऐसे अनुभवों के धनी थे।

---

१ कोटा प्रकाशन वि०सं० २००५, काव्यमाला द्वितीय गुच्छक, पृ० ८५-१०४.

पाठक पद्य-पद्य मे वर्णित राजीमती की दुःखित अवस्था में तन्मय होकर इस दुःख को स्वय अनुभव करने लगता है। शान्तरसप्रधान होने पर भी नेमिदूत सन्देशकाव्य की अपेक्षा विरहकाव्य अधिक है। इसमे काव्यचमत्कार, उक्ति-वैचित्र्य और रागात्मक वृत्ति की गभीरता का मधुर एव करुण परिपाक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके कर्ता खम्भातनिवासी सागण के पुत्र कवि विक्रम हैं। ये किस सम्प्रदाय के थे, यह विवादग्रस्त है।[1] स्व० प० नाथूराम प्रेमी इन्हें हूंवड (दिग०) जाति का मानते हैं तो मुनि विनयसागरजी खरतरगच्छाधीश जिनेश्वरसूरि के शिष्य होने से हूम्बड (श्वेताम्बराम्नायी) बतलाते हैं। नेमिदूत के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह कृति असाम्प्रदायिक है। इसमें श्वेताम्बर या दिगम्बर आम्नाय की कोई बात नहीं कही गई है।

इस काव्य की प्राचीनतम प्रति वि० स० १४७२ की और दूसरी वि० स० १५१९ की मिली है अतः वि० स० १४७२ के पूर्व कवि को मानने मे किसी प्रकार का विरोध नहीं है। प्रेमीजी के मत से कवि १३वीं शती और विनयसागर के मत से १४वीं शती में हुए थे।

जैनमेघदूत :

नेमिनाथ और राजीमती के प्रसग को लेकर यह दूसरा दूतकाव्य है।[2] इसमें कवि ने दूसरे दूतकाव्यों की तरह मेघदूत की समस्यापूर्ति का आश्रय नहीं लिया। यह नामसाम्य के अतिरिक्त शैली, रचना, विभाग आदि अनेक बातों में स्वतत्र है। इसमें ४ सर्ग हैं और प्रत्येक मे क्रमशः ५०, ४९, ५५ और ४२ पद्य हैं।

कथावस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है—नेमिकुमार पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर वैवाहिक वेष-भूषा का त्याग कर मार्ग से ही रैवतक (गिरनार) पर मुनि बन तपस्या करने चले गये। राजीमती, जिसके साथ उनका विवाह हो रहा था, उक्त समाचार से मूर्च्छित हो गई। सखियों द्वारा उपचार करने पर उसे

---

१ विवेचन के लिए देखें—सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७८-४७९.

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२४.

होश आया। उसने अपने समक्ष उपस्थित मेघ को अपने विरक्त पति का परिचय देकर प्रियतम को शान्त करने, रिझाने के लिए दूत के रूप मे चुना और अपनी दुःखित अवस्था का वर्णन कर अपने प्राणनाथ को भेजने वाला सन्देश सुनाया। इस सन्देश को सुनकर सखिया राजीमती को समझाती हैं कि नेमिकुमार मनुष्यभव को सफल बनाने के लिए वीतरागी हुए है, वे अब अनुराग की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते। कहा मेघ, कहाँ तुम्हारा सन्देश और कहा उनकी वीतरागी प्रवृत्ति ! इन सबका मेल नहीं बैठता। अन्त मे राजीमती शोक त्यागकर नेमिनाथ के पास जाकर साध्वी बन जाती है।

पदलालित्य, अलङ्कारबाहुल्य और प्रासादिकता के कारण यह उच्चकोटि का काव्य है पर श्लेषपदों और व्याकरण के क्लिष्ट प्रयोगों के कारण यह काव्य दुरूह हो गया है। इसमे मेघ और नेमिनाथ का परिचय तो दिया गया है पर भौगोलिक स्थानों के निर्देश का अभाव है।

रचयिता और रचनाकाल—इस दूतकाव्य के रचयिता मेरुतुंग आचार्य हैं जो अञ्चलगच्छीय महेन्द्रप्रभसूरि के शिष्य थे। ये प्रबंधचिन्तामणि के रचयिता मेरुतुग से भिन्न हैं। इस काव्य का रचनासमय तो कहीं नहीं दिया गया, पर मेरुतुग का समय वि० स० १४०३ से १४७२ तक सिद्ध होता है। इस समय मे कवि ने जैनमेघदूत, सप्ततिकाभाष्य, लघुशतपदी, धातुपारायण, षड्दर्शनसमुच्चय, बालबोधव्याकरण, सूरिमन्त्रसारोद्धार आदि आठ ग्रन्थ लिखे थे।

इस पर शीलरत्नसूरिविरचित वृत्ति प्रकाशित है।[1]

शीलदूत :

यह[2] कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर बनाया गया है और उसके प्रत्येक पद्य के चौथे चरण को समस्यापूर्ति के रूप मे अपनाया गया है। इसलिए इसका छन्द मन्दाक्रान्ता है। पद्य-सख्या १३१ है। इसमे स्थूलभद्र और कोशा वेश्या के प्रसिद्ध कथानक को लेकर स्थूलभद्र के ब्रह्मचर्य महाव्रत को

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२८.

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९१५.; जिनरत्नकोश, पृ० ३८४; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६९.

आधार बनाकर उनके जगत् विस्मयकारी शील का वर्णन किया गया है। कोशा स्थूलभद्र को नानाभाँति से शील से च्युत करने का प्रयत्न करती है पर इसके बाद स्थूलभद्र के अनुपम उपदेशों से स्वय शीलव्रत धारण कर लेती है।

शील जैसे भावात्मक तत्त्व को दूत का रूप देकर कवि ने अपनी मौलिक कल्पनाशक्ति का अच्छा परिचय दिया है। इसमे दीर्घसमास प्रायः नहीं है। अलकारों मे उत्प्रेक्षा की योजना दर्शनीय है। मेघदूत की शृगारपरक पक्तियों को शान्तरसपरक बनाने मे कवि ने अद्भुत प्रतिभा दिखायी है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना बृहद् तपागच्छ के आचार्य चारित्र-सुन्दरगणि ने स० १४८४ में खम्भात में की थी। चारित्रसुन्दरगणि ने अन्य ग्रन्थों में कुमारपालचरित, महीपालचरित एव आचारोपदेश ग्रन्थ लिखे थे। इनका परिचय उनके अन्य काव्यों के प्रसंग मे दिया गया है।

पवनदूत :

यह मेघदूत की समस्यापूर्ति न होकर एक स्वतंत्र कृति है पर इसे हम मेघ-दूत की छाया कह सकते हैं। इसमें १०१ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं।[१]

इसमें मेघ के स्थान पर पवन को दूत बनाया गया है। इसकी कथावस्तु छोटी है : उज्जयिनी के एक नृप विजय की रानी तारा को अशनिवेग नामक विद्याधर हर ले जाता है। राजा अपनी प्रिया के पास पवन को दूत बनाकर अपने विरह-सन्देशों के साथ भेजता है। पवन भी साम, दाम, दण्ड और भेद के प्रयोग के साथ अन्त में तारा को लेकर विजय को सौप देता है।

पवनदूत एक विरह-काव्य है। इसमें विप्रलम्भ-शृगार का परिपाक खूब हुआ है। रचना में प्रसादगुण और भाषा में प्रवाह लाने में लेखक सफल रहा है। इसमे लेखक ने नैतिक, सामाजिक एव धार्मिक शिक्षा भी दी है।

रचयिता एव रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र (१७वीं शती) हैं। इन्होंने पार्श्वपुराण, पाण्डवपुराण, यशोधरचरित आदि अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। इनका परिचय पूर्व मे दिया गया है।

---

१. हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई से १९१४ में हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित; काव्यमाला, गुच्छक १३, पृ० ९-२४.

१७-२०वीं शती के दूतकाव्य :

१७वीं शती के मुनि विमलकीर्ति ने चन्द्रदूत नामक एक अन्य दूतकाव्य की रचना की जिसमे १६९ पद्य हैं। यह काव्य मेघदूत की पादपूर्ति के रूप मे रचा गया है पर कवि ने कहीं-कहीं भावों के स्पष्टीकरणार्थ अधिक पद्य रचकर स्वतन्त्रता से भी काम लिया है। इसका वर्ण्यविषय यही है कि कवि ने चन्द्र को सम्बोधित कर शत्रुंजयतीर्थस्थ आदिजिन को अपनी वन्दना कहलाई है। पूर्ण काव्य पढ लेने के बाद भी यह ज्ञात नहीं होता कि कवि ने अपना नमस्कार चन्द्रमा को किस स्थान से कहलाया है। फिर भी रचना बड़ी भावपूर्ण और विद्वत्ता की परिचायक है। अनेकार्थ काव्य की दृष्टि से भी इस दूतकाव्य का महत्त्व है। इसके रचयिता विमलकीर्ति साधुसुन्दर[1] के शिष्य थे जो कि साधुकीर्ति पाठक के शिष्य थे। रचनाकाल वि० स० १६८१ है।

१८वीं शती में हमे प्रमुख ३ दूतकाव्य मिलते हैं। प्रथम चेतोदूत, द्वितीय मेघदूतसमस्यालेख तथा तृतीय इन्दुदूत। प्रथम 'चेतोदूत'[2] में अज्ञात कवि अपने गुरु के चरणों की कृपादृष्टि को ही अपनी प्रेयसी के रूप मे मानकर उसके पास अपने चित्र को दूत बनाकर भेजता है। इसमे गुरु के यश, विवेक और वैराग्य आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमे १२९ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं।

द्वितीय 'मेघदूतसमस्यालेख'[3] में उपाध्याय मेघविजय ने औरंगाबाद से अपने गुरु के चिरवियोग से व्यथित होकर उनके पास मेघ को दूत बनाकर भेजा है। मेघ गुरु के पास जिस प्रकार सन्देश लेकर जाता है उसी तरह प्रतिसन्देश लेकर लौट आता है। इसमे १३० मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं और अन्त मे एक अनुष्टुभ्। इस काव्य मे औरंगाबाद से देवपत्तन (गुजरात) तक के मार्ग का वर्णन आता है। विषय, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह काव्य सभी दूतकाव्यों से श्रेष्ठ है।

रचयिता एव रचनाकाल—इसके रचयिता अनेक काव्यग्रन्थों के रचयिता विद्वान् महोपाध्याय मेघविजयजी है। इन्होंने कई समस्यापूर्तिकाव्य भी रचे हैं। इनका परिचय उनके अन्य ग्रन्थों के प्रसग में दिया गया है। यह काव्य सं० १७२७ मे पूर्ण हुआ था।

---

१. चन्द्रदूत, प्रशस्ति-पद्य १६७-१६८, जिनदत्त सूरि ज्ञानभण्डार, सूरत.

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७०.

३. वही.

१८वीं शती का तीसरा दूतकाव्य 'इन्दुदूत' है।[1] इसमें १३१ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं। यह कोई समस्यापूर्तिकाव्य नहीं बल्कि स्वतन्त्र रचना है। इसमे जोधपुर मे चातुर्मास करनेवाले विनयविजयगणि ने अपने सूरत में चातुर्मास करनेवाले गुरु विजयप्रभसूरि के पास चन्द्रमा को दूत बनाकर सांवत्सरिक क्षमापना सन्देश और अभिनन्दन भेजे हैं। इसमे जोधपुर से सूरत तक जैन मन्दिरों और तीर्थों का वर्णन भी खूब आया है, यह एक प्रकार का विज्ञप्तिपत्र है। काव्य की भाषा प्रवाहमय और प्रसादपूर्ण है। इसमे कवि की वर्णनशक्ति और उदात्त भावों के दर्शन प्रचुर मात्रा में होते हैं। दूतकाव्य परम्परा मे इस प्रकार के काव्य का प्रयोग नवीन है।

इन्दुदूत की कोटि का दूसरा काव्य 'मयूरदूत'[2] है जो वि० स० १९९३ में रचा गया था। इसमें १८० पद्य हैं जिनमे अधिकाश शिखरिणी छन्द मे रचे गये हैं। इसके रचयिता मुनि धुरधरविजय हैं। इसमें कपडवणज में चातुर्मास करनेवाले विजयामृतसूरि द्वारा जामनगर मे अवस्थित अपने गुरु विजयनेमिसूरि के पास वन्दना और क्षमापना सन्देश भेजने को कथावस्तु है। इसमे दूत के रूप मे मयूर को चुना गया है। यहाँ मयूर का वर्णन काव्यदृष्टि से बडे महत्त्व का है, साथ मे कपडवणज से लेकर जामनगर तक के स्थानों और तीर्थों का भौगोलिक वर्णन भी दिया गया है।

उक्त दूतकाव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य दूतकाव्यों का भी ग्रन्थभण्डारों की सूचियों से पता लगता है। यथा जम्बूकवि का इन्दुदूत[3] जो २३ मालिनी छन्दों मे है जिसमें अन्त्य यमक को प्रत्येक पद्य मे चित्रित किया गया है, विनयप्रभ द्वारा सकलित चन्द्रदूत[4] एव अज्ञातकर्तृक मनोदूत[5]।

---

१. जैन साहित्यवर्धक सभा, शिरपुर (पश्चिम खानदेश), १९४६, काव्यमाला, गुच्छक १४.

२. जैन ग्रन्थप्रकाशक सभा, ग्रन्थांक ५४, अहमदाबाद, वि० सं० २०००.

३. Notices of Sanskrit Mss., vol. II, p. 153; जिनरत्नकोश, पृ० ४६४.

४. Third Report of Operations in Search of Sanskrit Mss , Bombay Circle, p. 292; जिनरत्नकोश, पृ० ४६४.

५. जैन ग्रन्थावली, पृ० ३३२.

जैन पादपूर्ति-साहित्य :

उक्त दूतकाव्यों के परिशीलन से हमें ज्ञात होता है कि पार्श्वाभ्युदय, शीलदूत, नेमिदूत, चन्द्रदूत एवं मेघदूतसमस्यालेख आदि पादपूर्ति या समस्यापूर्ति काव्यविधा के अन्तर्गत ही आते हैं। इस काव्यविधा को जैन कवियों ने विकसित करने में बड़ा योगदान दिया है, यही कारण है कि जैन काव्यों में अनेकविध एवं बहुसंख्यक पादपूर्तिकाव्य उपलब्ध होते हैं। सम्भवतः जैनेतर साहित्य में ऐसे काव्य बहुत ही कम हैं।

पादपूर्तिकाव्य की रचना करना कोई सामान्य काम नहीं। इस विशिष्ट कार्य में मूलकाव्य के मर्म को हृदयङ्गम करने के साथ-साथ रचयिता में उत्कृष्ट कवित्वशक्ति, असाधारण पाण्डित्य, भाषा पर पूर्ण अधिकार एवं नवीन अर्थों को उद्भावन करने वाली प्रतिभा की परम आवश्यकता होती है। वह इसलिए भी कि दूसरे की पदावलियों को उनके भाव, अर्थ एवं लालित्य के गुणों के साथ अपने ढांचे में ढालना अति दुष्कर एवं उलझनों से भरा कार्य है और उसमें सफलता के लिए उपर्युक्त गुण होना बहुत जरूरी है। जो कवि मूल पदों के भावों के साथ अपने भावों का जितना अधिक सुन्दर सम्मिश्रण कर सकता है और ऐसे कार्य में सहज प्राप्त होने वाली क्लिष्टता और नीरसता से अपने काव्य को बचा सकता है वह कवि उतनी ही अधिक मात्रा में सफल कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकता है। जिस पादपूर्तिकाव्य को पढ़ते समय काव्यमर्मज्ञ भी पादपूर्ति का भान न कर मौलिक उत्कृष्ट काव्य का रसास्वादन करने लगे वहां ही कवि की सफलता है।

जैन कवियों में पादपूर्तिकाव्य के निर्माण की सूझ कब से आई, यह कह नहीं सकते पर इस दिशा में सर्वप्रथम जिनसेनाचार्य का पार्श्वाभ्युदय ई० ९वीं शताब्दी का है। इसका वर्णन हम पहले कर आये हैं। उसके बाद १५वीं शताब्दी के पहले का ऐसा कोई काव्य उपलब्ध नहीं है। १५-१७वीं शताब्दी में इन काव्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और १८वीं शताब्दी में तो इसका पूरा विकास हुआ मालूम होता है। २०वीं शताब्दी में पादपूर्तिकाव्य केवल गुरुस्तुतिपरक रचे गये हैं।

जैन पादपूर्तिकाव्यों को हम सुविधा की दृष्टि से निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते हैं :

१. मेघदूत की पादपूर्ति के काव्य : इनका विवरण हम दूतकाव्यों में प्रस्तुत कर चुके हैं।

२. शिशुपालवध की समस्यापूर्ति : यथा महोपाध्याय मेघविजयकृत देवानन्दाभ्युदय[1], इसका विवरण भी हम दे चुके हैं। इसमें माघकवि के शिशुपालवध के प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण को लेकर शेष तीन पाद स्वय नये बनाकर सतसर्गात्मक रचना की गई है।

३. नैषधकाव्य की समस्यापूर्ति : यथा पूर्वोक्त मेघविजयकृत शान्तिनाथ-चरित्र।[2] इसमे नैषधकाव्य के प्रथम सर्ग के समस्त पद्यो के चरणों (केवल २८वें पद्य के चतुर्थ पाद के अतिरिक्त) की समस्यापूर्ति कर ६ सर्गों के एक काव्य की रचना की गई है। नैषध के प्रथम चरण को प्रथम चरण में, द्वितीय को द्वितीय, तृतीय को तृतीय एव चतुर्थ को चतुर्थ चरण मे नियोजित कर प्रथम सर्ग को पूर्णत. समाविष्ट कर दिया गया है। इतना ही नहीं, इस काव्य मे कहीं-कहीं नैषधीयकाव्य के एक ही चरण का भिन्न भिन्न अर्थों की अपेक्षा से दो-दो, तीन-तीन बार भी पूरित या नियोजित किया गया है।

४. जैन स्तोत्रों की पादपूर्ति : यथा—१. प्रसिद्ध भक्तामरस्तोत्र की समस्या-पूर्ति : इसका विवरण हम स्तोत्र साहित्य में दे रहे है। २. कल्याणमन्दिरस्तोत्र की समस्यापूर्ति : यथा भावप्रभसूरिकृत जैनधर्मवरस्तोत्र, पार्श्वनाथस्तोत्र, विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन, वीरस्तुति आदि।[3] ३. उवसग्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति।[4] ४. प्रसिद्ध विभिन्न जैन स्तुतियों की पादपूर्ति।[5]

५. जैनेतर स्तोत्र-व्याकरणादि की पादपूर्ति : यथा—१. शिवमहिम्नस्तोत्र की पादपूर्ति म रत्नशेखरसूरिकृत ऋषभमहिम्नस्तोत्र।[6] २. कलापव्याकरणसधि-

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७.

२ प० हरगोविन्ददास द्वारा संशोधित और विविध साहित्य शास्त्रमाला द्वारा १९१८ में प्रकाशित.

३. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ८०, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ५, अक १२ में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का लेख

४. जैन स्तोत्र तथा स्तवनसंग्रह अर्थसहित १९०७ में प्रकाशित

५. श्री अगरचन्द नाहटा का लेख—श्री महावीरस्तवन (संसार-दावा पाद-पूर्तिरूप), जैन सत्यप्रकाश, ५ १० तथा नाहटाजीलिखित भावारिवारण पादपूर्त्यादि स्तोत्रसंग्रह—प्रस्तावना.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ५८.

गर्भितस्तव—इसमें 'सिद्धोवर्णसमाम्नाय' आदि कलापव्याकरण के संधिसूत्रों की पादपूर्ति में २३ पद्य रचे गये हैं। ३. शंखेश्वरपार्श्वस्तुति—इसके प्रथम चार पद्यों में अमरकोष के प्रथम श्लोक के चारों चरणों को बड़ी कुशलता के साथ समाविष्ट किया गया है।[1] प्रथम पद्य के प्रथम चरण में अमरकोष के प्रथम श्लोक का प्रथम चरण, द्वितीय पद्य के द्वितीय चरण में उसका दूसरा चरण, तृतीय पद्य के तृतीय चरण में उसका तृतीय चरण तथा चतुर्थ पद्य के चतुर्थ चरण में उसका चतुर्थ चरण है।

इसके अतिरिक्त कई सुभाषितों, फुटकर पद्यों और अप्रसिद्ध काव्यों की पादपूर्ति के रूप में जैन पादपूर्ति-साहित्य मिलता है।[2] सबका परिगणन यहाँ सम्भव नहीं है।

दूतकाव्यों और पादपूर्ति-साहित्य के अतिरिक्त गीतिकाव्य के गेय रस-मुक्तक काव्य का एक सुन्दर जैन उदाहरण गीतवीतराग काव्य है।

गीतवीतरागप्रबन्ध :

इसकी[3] रचना जयदेव के गीतगोविन्द के अनुकरण पर की गई है। इसका जिनाष्टपदी नाम से भी उल्लेख जिनरत्नकोश में किया गया है जो संभवतः इसकी अष्टक या अष्टपदों में रचना के कारण है।[4] इसमें कवि ने तीर्थंकर ऋषभदेव के दस पूर्वभवों की कथा का वर्णन करते हुए स्तुति की है। कथावस्तु को २५ लघु प्रबन्धों में विभक्त किया गया है जिनके नाम इस प्रकार हैं : १. महाबल-सद्धर्मप्रशंसा, २. महाबल-वैराग्योत्पादन, ३. ललिताङ्ग-वनविहार, ४. श्रीमती-जातिस्मरण, ५. वज्रजंघ-पट्टकथा, ६. श्रीमती-सौरूप्यवर्णन, ७. श्रीमती-विरह-

---

१ जैन स्तोत्रसन्दोह, भाग २ में प्रकाशित.

२. श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'जैन पादपूर्ति काव्य-साहित्य', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ३, किरण २–३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १०५, १२९; डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९७२ में प्रकाशित; शिवाजी विश्व-विद्यालय, कोल्हापुर की पत्रिका (१९६९) में डा० उपाध्ये का लेख 'पण्डिताचार्य का गीतवीतराग'.

४. उक्त काव्य पर डा० उपाध्ये की अंग्रेजी भूमिका, पृ० २१.

वर्णन, ८. भोगभूमिवर्णन, ९. आर्य के गुरुगुण का स्मरण, १०. श्रीधर-स्वर्ग-वैभव-वर्णन, ११. सुविधिपुत्र-संबोधन, १२. अच्युतेन्द्र-दिव्यशरीरवर्णन, १३. वज्रनाभि-स्त्रीवर्णन, १४. सर्वार्थसिद्धि विमानवर्णन, १५. मरुदेवी वर्णन, १६. षोडशस्वप्नवर्णन, १७. प्रभातवर्णन, १८. भगवज्जन्माभिषेकवर्णन, १९. भगवत्परमौदारिकदिव्यदेहवर्णन, २०. भगवद्वैराग्यवर्णन, २१. भगवत्तपोऽतिशयवर्णन, २२. भगवत्-समवसरणशालवेदीवर्णन, २३. समवसरणभूमिवर्णन, २४. अष्टप्रतिहार्यवर्णन, २५. भगवान् का मोक्षगमन और ग्रन्थकर्ता का परिचय।

इस गीतिकाव्य में दशावतार के समान राजा जयवर्मा, महाबल विद्याधर, ललिताङ्गदेव, वज्रजघ, आर्य, श्रीधर, सुविधि, वज्रनाभि, सर्वार्थसिद्धिविमान और ऋषभदेव का गीतात्मक निरूपण किया गया है।

उक्त काव्य में प्रेम, ज्ञान, सौन्दर्य और भक्ति का समन्वयात्मक रूप दिखाई पड़ता है तथा काव्यकला का उचित समवाय भी है। यहा प्रबन्धकाव्यों की स्वाभाविक सुन्दरता, गीतिकाव्यों की मधुरता और स्तोत्रकाव्यों की तन्मयता के दर्शन होते हैं। इसमें गीतगोविन्द के समान ही शृगार एव शान्तरस की धारा मिलती है और कवि स्वकल्पना-वैभव से नित्य नवीन सृष्टि करते हुए दिखाई पड़ता है।

इस काव्य में कल्पना-चमत्कार के साथ उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, अनुमान, काव्यलिग आदि अलकारों का समावेश हुआ है। समस्यन्त पदों के प्रयोग से हम इसकी शैली को गौडी शैली कह सकते हैं पर कोमल कान्त पदावली के सद्भाव से इसमे कटुता नहीं आ पाई है।

इस काव्य में गीतगोविन्द के समान ही गीतितत्त्व दिखाई पड़ते हैं: यथा गुर्जरीराग, देशीराग, वसन्तराग, माणवगौडीराग, कन्नडराग, आसावरीराग तथा तालों में अष्टताल, यतिताल, यतियतिताल, एकताल आदि। इस तरह राग और ताल की योजना से यह काव्य पूर्ण गेयरूप है।[1]

इस नूतन काव्य के कुछ नमूने देखें:

---

१. डा. नेमिचन्द्र शास्त्री, सस्कृतगीतिकाव्यानुचिन्तनम्, पृ० १२६-४०, पी० जी० गोपालकृष्ण अय्यर, Gita Govinda A Prosodic Study, जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, १९२८, पृ० ३१०-३६५.

भुवि धृतसुरपतिलीलापात्र वरिष्ठ
भवसि महाबल पुण्यगरिष्ठ ।
भूमिप तव धर्मफलेन जय धरणीशपते
खेचरभूप जय धरणीशपते ।—१.८.
सुरगिरिनन्दनप्रभृतिमनोहरविलसदुद्यानसंघाते
सुरपरिवृतललिताङ्गसुरो दिविजोत्तमविहरणपूते ।
व्यहरदति सुरभिभरित वसन्ते
नर्तनसक्तजनेन सम निजविरहिसुरस्य दुरन्ते ।—३.८.
मंजुलचम्पककुसुमसमायतरञ्जितनासासारं
पुञ्जितनायकमणिगणराजितसिञ्जितवक्षोहारम्
दध्रे वृषभजिनो ललितामलगुणिभरितमनुपमशरीरम् ।—१९.५.

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के अन्त मे २५वें प्रबंध मे दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता श्रवणबेल्गोल जैनमठ के भट्टारक अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य है। इनका जन्म सिंहपुर मे हुआ था। भट्टारक पद पाने के पूर्व इनका क्या नाम था यह हमे मालूम नहीं। भट्टारक पद पाने के बाद इनका नाम चारुकीर्ति पड़ा, वैसे श्रवणबेल्गोल के मठाधीशों का सामान्य नाम चारुकीर्ति ही है। इस काव्य की रचना गंगवंशी राजपुत्र देवराज के अनुरोध पर श्रवणबेल्गोल के बाहुबलि की प्रतिमा के समीप की गई थी।

श्रवणबेल्गोल के शिलालेख न० २५४ (१०५) जो कि सन् १३९८ ई० का है और न० २५८ (१०८) जो सन् १४३२ ई० का है, से अभिनव पण्डिताचार्य के विषय मे हमे कुछ ज्ञात होता है। सन् १३९८ में उक्त आचार्य ने अपने परलोकगत गुरु की स्मृति में एक लेख स्थापित किया था और सन् १४३२ में उन्होंने सल्लेखना धारण की थी और लेख मे उनके शिष्य श्रुतसागर ने पण्डितेन्द्र योगिराट् नाम से उनका उल्लेख किया है।[1]

---

१. उक्त काव्य की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० १६-२०.

यह गीतवीतरागप्रबंध जिस गगवंशी देवराज के लिए लिखा गया था उसके विषय में श्रवणबेलगोल के शिलालेखों (संख्या ३३७ ४१) में सूचना मिलती है। इन शिलालेखों में उक्त कवि को श्रीमद् अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य, श्रीमद् पण्डिताचार्य या श्रीमतु पण्डितदेवरु कहा गया है और उन्हें मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कुन्दकुन्दान्वय का बतलाया गया है। शिलालेख संख्या ३३७ में उनकी शिष्या भीमादेवी का उल्लेख है जो देवराय महाराय की रानी थी। श्री आर० नरसिंहाचार के मतानुसार यह देवराय विजयनगरनृप देवराय प्रथम (सन् १४०६-१६) होना चाहिए और उक्त लेख का समय लगभग १४१० ई० होना चाहिए। गीतवीतरागप्रबंध मे देवराज को राजपुत्र कहा गया है और यदि इसे ठीक अर्थ में ले तो उक्त ग्रथ की रचना १४०० ई० के लगभग होनी चाहिए। तब देवराय राजपुत्र था।

योगिराज पण्डिताचार्यकृत पार्श्वाभ्युदय की टीका भी मिलती है जो सन् १४३२ ई० के लगभग रची गई होगी क्योंकि सन् १४३२ के लेख में ही उन्हें योगिराज शब्द से उल्लिखित किया गया है।

पाठ्य मुक्तक काव्यो मे सुभाषितों का भी प्रमुख स्थान है।

सुभाषित :

सुभाषित और सूक्ति के रूप में जैन मनीषियों की प्राकृत और संस्कृत में अनेक रचनाए मिलती हैं। सुभाषित काव्यों को प्रधान रूप से धर्मोपदेश या धार्मिक सूक्तिकाव्य, नैतिक सूक्तिकाव्य और काम या प्रेमपरक शृगार-सूक्ति-काव्यों के रूप मे देख सकते हैं। जैन विद्वानों ने सदाचार और लोकव्यवहार का उपदेश देने के लिए स्वतंत्र रूप से अनेक सुभाषित पदों का निर्माण किया है जिनमें प्रायः जैनधर्मसम्मत सदाचारों एव विचारों से रंजित उपदेश प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे तो जैन पुराणों और अन्य साहित्यिक रचनाओं में सुभाषित पद भरे पड़े हैं पर केवल उनका ही अध्ययन करने वालों को तथा विविध प्रसंगों पर दूसरों को सुनाने आदि के लिए उनकी स्वतंत्र रूप से रचना भी की गई है।

प्राकृत में धार्मिक सूक्तिकाव्य के रूप में धर्मदासगणिकृत उपदेशमाला, हरिभद्रसूरिकृत उपदेशपद, हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्रप्रकाश, मलधारी हेमचन्द्रकृत उपदेशमाला और आसढमुनिकृत विवेकमंजरी, लक्ष्मीलाभगणि-कृत वैराग्यरसायनप्रकरण, पद्मनन्दिकृत धम्मरसायणप्रकरण आदि विशेष

उल्लेखनीय है। इनका परिचय इस बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग के तृतीय प्रकरण धर्मोपदेश के अन्तर्गत दिया गया है। इसी तरह संस्कृत में गुणभद्र का आत्मानुशासन (९वीं शती), शुभचन्द्र प्रथम का ज्ञानार्णव, हरिभद्रकृत धर्मबिन्दु और धर्मसार, रत्नमण्डनगणिकृत उपदेशतरंगिणी, पद्मानन्द का वैराग्यशतक आदि द्रष्टव्य हैं। इनका संक्षिप्त परिचय भी उक्त भाग के तृतीय प्रकरण में दिया गया है।

नैतिक सूक्तिकाव्य के रूप में संस्कृत में अमितगति का सुभाषितरत्नसन्दोह, अर्हद्दास का भव्यजनकण्ठाभरण, सोमप्रभ का सूक्तिमुक्तावलिकाव्य, नरेन्द्रप्रभ का विवेकपादप, विवेककलिका आदि हैं।[1] इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों में मल्लिषेण का सज्जनचित्तवल्लभ (१२वीं शती), अज्ञातकर्तृक सिन्दूरप्रकर या सोमतिलक-सोमप्रभकृत शृंगारवैराग्यतरंगिणी, राजशेखरकृत उपदेशचिन्तामणि, हरिसेन का कर्पूरप्रकर, दर्शनविजय का अन्योक्तिशतक, हंसविजयगणि का अन्योक्तिमुक्तावली, अज्ञातकर्तृक आभाणशतक, धनदराजकृत धनदशतकत्रय, तेजसिंहकृत दृष्टान्तशतक आदि उल्लेखनीय हैं।

काव्य की दृष्टि से इनमें अनेक (धर्म एवं नीतितत्त्व-प्रधान) रसेतर मुक्तक काव्य हैं और अनेक रस-मुक्तक काव्य हैं।

प्राकृत में हाल के गाथासप्तशती के समान ही वज्जालग्ग नामक एक रसमुक्तक काव्य उपलब्ध हुआ है।

वज्जालग्ग :

इसमें[2] ७९५ गाथाएँ हैं जिनका संकलन श्वेताम्बर मुनि जयवल्लभ ने किया है। इसमें भी अनेक प्राकृत कवियों की सुभाषित गाथाएँ संगृहीत हैं।

वज्जालग्ग का वज्जा शब्द देशी है जिसका अर्थ अधिकार या प्रस्ताव होता है। एक विषय से सम्बद्ध कतिपय गाथाएँ एक वज्जा के अन्तर्गत संकलित की गई हैं, जैसे भर्तृहरि के नीतिशतक में। जयवल्लभ ने प्रारंभ में ही इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है :

---

१ जिनरत्नकोश में इनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४०, पृ० २३६ में इसके पद्यालय, वज्रालय आदि नाम दिये हैं, बिब्लिओथेका इंडिका सिरीज (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल), कलकत्ता, १९१४-१९२३.

विविहकइविरइयाणं गाहाणं वरकुलाणि घेत्तूण ।
रइयं वज्जालग्गं विहिणा जयवल्लहं नाम ॥ ३ ॥
एक्कत्थे पत्थावे जत्थ पढिज्जन्ति पउरगाहाओ ।
तं खलु वज्जालग्गं वज्ज त्ति य पद्धई भणिया ॥ ४ ॥

अर्थात् जयवल्लभ ने विभिन्न कवियों द्वारा विरचित अच्छी गाथाओं को लेकर विधिवत् वज्जालग्ग की रचना की। यहा एक प्रस्ताव या अधिकार में सम्बद्ध प्रचुर गाथाओं का सकलन किया गया है। वज्जा शब्द पद्धति (नीतिशतक की पद्धति) का नामान्तर है इसलिए इसे वज्जालग्ग कहते हैं।

इस काव्य के वर्गों या प्रस्तावों में कवि ने लोकजीवन से सम्बद्ध भावनाओं का सग्रह किया है। कतिपय वज्जाओं के नाम इस प्रकार हैं: श्रोतृ, गाथा, काव्य, सज्जन, दुर्जन, मित्र, स्नेह, नीति, धीर, साहस, दैव, विधि, दीन, दारिद्रय, सुगृहिणी, सती, असती, कुट्टिनी, वेश्या, वसन्त, ग्रीष्म, प्रावृट्, शरत्, हेमन्त, शिशिर, कमल, चन्दन, वट, ताल, पलाश, रत्नाकर, सुवर्ण, दीपक आदि।[1]

सज्जनवज्जा मे कवि ने सज्जन के विषय में जिन उदात्त भावाभिव्यंजक गाथाओं का संकलन किया है या उनमें कुछ अपनी भी रचित गाथाए रखी हैं वैसे भावों का निरूपण अन्य किसी कवि ने संभवतः नहीं किया है। सुघरिणी-वज्जा मे भारतीय ललना का सुन्दर वर्णन किया गया है। दरिद्रवज्जा आदि में भी कवि ने हृदयस्पर्शी भावों की ही अभिव्यक्ति की है। शृगाररसपरक पद्यों में भी कवि ने धार्मिक और वीरभावों को व्यक्त किया है। ग्रन्थकार के जैन होने पर भी इस सग्रह में किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता दृष्टिगोचर नहीं होती है।

अनुमान किया जाता है कि इसका रचनाकाल चौथी शताब्दी है।

इस काव्य पर स० १३९३ मे रत्नदेवगणि[2] ने एक संस्कृत टीका लिखी। इस टीका के लेखन में प्रेरक कोई धर्मचन्द्र थे जो बृहद्गच्छ के मानभद्रसूरि के शिष्य हरिभद्रसूरि के शिष्य थे। इस ग्रन्थ में अनेक गाथाए हेमचन्द्ररचित और सन्देश-रासक के लेखक अब्दुलरहमानरचित सकलित हैं। अनुमान है कि टीकाकार

---

१. इनके विशेष परिचय के लिए देखें—डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७७-२८२.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २३६.

ने इन गाथाओं को पीछे से जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ की विषयवस्तु के अन्तरंग-परीक्षण से यह बात स्पष्ट-सी लगती है कि इस काव्य के कलेवर में बाद-बाद की शताब्दियों में वृद्धि होती रही है।

ग्रन्थकर्ता के विषय में नाम के अतिरिक्त किन्हीं स्रोतों से कुछ भी नहीं मालूम होता है।

संस्कृत में इस प्रकार के ग्रन्थों में आचार्य सोमदेवसूरि का 'नीतिवाक्यामृत' उल्लेखनीय है। इसका परिचय इस इतिहास के पांचवें भाग में राजनीति के ग्रन्थ के रूप में दिया गया है।[1] सूत्रबद्ध शैली में रचे गये इसके ३२ समुद्देशों में से धर्म, अर्थ और काम समुद्देशों में तथा दिवसानुष्ठान, सदाचार, व्यवहार, विवाह और प्रकीर्ण समुद्देशों में कितने ही सूत्र दैनिक व्यवहार में लाने लायक सुभाषित जैसे हैं जिनमें जैनधर्मसम्मत उपदेश अंकित किये गये हैं। इन सूत्रों की प्रधानता के कारण ग्रन्थ का नाम नीतिवाक्यामृत रखा गया है। ग्रन्थकार सोमदेव का परिचय अन्यत्र यशस्तिलकचम्पू काव्य के प्रसंग में दिया गया है।

सुभाषितों का एक प्रमुख ग्रन्थ आचार्य अमितगतिकृत 'सुभाषितरत्नसन्दोह' है।[2] इसमें सांसारिक विषयनिराकरण, ममत्व-अहंकारत्याग, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोष विचार, सदसत्स्वरूपनिरूपण, ज्ञाननिरूपण आदि ३२ प्रकरण हैं और प्रत्येक में बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस पद्य हैं। कर्ता का परिचय उनके अन्य ग्रन्थ धर्मपरीक्षा के प्रसंग में दिया गया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १०५० पौष सुदी पंचमी को समाप्त हुई थी जबकि राजा मुंज पृथ्वी का पालन कर रहे थे। ग्रन्थ में ९२२ पद्य हैं।

सोमप्रभाचार्यकृत 'शृंगारवैराग्यतरंगिणी'[3] में विविध छन्दों के ४६ पद्यों में नैतिक उपदेशों का संकलन है। इसमें कामशास्त्रानुसार स्त्रियों के हाव-भाव व लीलाओं का वर्णन कर उनसे सतर्क रहने का उपदेश दिया गया है। इस पर आगरा के पं० नन्दलाल ने संस्कृत टीका लिखी है।

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ० २३९-४०.

२ जिनरत्नकोश, पृ० ४४१-४४६; काव्यमाला, ८२, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९; जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० २२१-२२, नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७९, नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४९४-९६.

३. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४२.

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में रामचन्द्र का सुभाषितकोश, कीर्तिविजय का सुभाषितग्रन्थ, मुनिदेव आचार्य का सुभाषितरत्नकोश (५८ कारिकाएं), सकलकीर्तिकृत सुभाषितरत्नावली या सुभाषितावली (३९२ श्लोक), तिलकप्रभसूरिकृत सुभाषितावली, ज्ञानसागरकृत सुभाषितषट्त्रिंशिका, लुंकागच्छ के यशस्वीगणिकृत सुभाषितषट्त्रिंशिका, धर्मकुमारकृत सुभाषितसमुद्र, शुभचन्द्रकृत सुभाषितार्णव आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।[1]

स्तोत्र-साहित्य :

जैनों का स्तोत्र-साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा अन्य जनपदीय भाषाओं में विपुल राशि में पाया जाता है। उसमें से संस्कृत-प्राकृत में ही उपलब्ध विपुलराशि को प्रस्तुत करना शक्य नहीं, और की बात ही अलग, फिर भी उसका यहाँ सिंहावलोकन मात्र किया जा रहा है।

भारतीय वाङ्मय में स्तोत्र-स्तवन की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। इन्द्र, वरुण, उषा आदि के ऋग्वेद में सुरक्षित सूक्त स्तवन ही हैं। सामवेद को गेय स्तोत्रों का संकलन कह सकते हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक स्तोत्र द्रष्टव्य हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त एक राष्ट्रीय स्तोत्र है। रामायण, महाभारत, पुराणादि में प्रचुर मात्रा में स्तोत्र अन्तर्निहित हैं। संस्कृत साहित्य के सभी महाकाव्यों में मंगलाचरण के रूप में या बीच में भी स्तुतियां दी गई हैं। स्वतंत्र रूप से भी कवियों ने अष्टकों, कुलकों, चतुर्दशकों, द्वात्रिंशिकाओं, षट्त्रिंशिकाओं, चत्वारिंशकों एवं शतकों[2] के रूप में स्तोत्रों की रचना की है। बाणभट्ट का चण्डीशतक, मुरारि का सूर्यशतक और वल्लभाचार्य के यमुनाष्टक प्रसिद्ध ही हैं।

स्तोत्र-काव्य का स्वतंत्र रूप से प्रारम्भ बौद्धों में हुआ था। कवि मातृचेट का अध्यर्धशतक सबसे प्राचीन मालूम होता है। उसके बाद पुष्पदन्त का शिवमहिम्नस्तोत्र, मयूर का सूर्यशतक आदि अनेक स्तोत्र-गीतिकाव्य आते हैं।

---

१ जिनरत्नकोश, पृ० ४४५-४४६.

२ जैन कवियों ने इन विधाओं में अपने अनेक स्तोत्रों की रचना की है। सिद्धसेन दिवाकर और रामचन्द्रसूरिरचित द्वात्रिंशिकात्मक स्तोत्र प्रसिद्ध ही है।

जैन साहित्य में स्तोत्र को थुइ, थुति, स्तुति या स्तोत्र नाम से कहा गया है। स्तव और स्तवन भी इसके नाम हैं। यद्यपि स्तव और स्तोत्र में कुछ विद्वानों ने अर्थभेद दिखाने का प्रयत्न किया है पर वह पहले कदाचित् रहा है, पीछे तो सब एकार्थक माने जाने लगे।

प्राचीन जैनागमों में आचारांग, सूत्रकृतांग आदि में उपधान-श्रुताध्ययन और वीरस्तव (वीरत्थय) जैसी विरल भावात्मक स्तुतियां देखने को मिलती हैं पर मध्यकाल आते-आते उवसग्गहर, स्वयम्भूस्तोत्र, भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि हृदय के भावों को जगाने वाले अनेक स्तोत्र लिखे गये। इन स्तोत्रों में २४ तीर्थंकरों के गुणकीर्तन पर लिखे गये स्तोत्र प्रमुख हैं। इनमें सबसे अधिक संख्या पार्श्वनाथ से सम्बन्धित स्तोत्रों की है।[१] लगभग इतने ही स्तोत्र २४ तीर्थंकरों की सम्मिलित स्तुतिरूप में लिखे गये हैं।[२] इसके बाद ऋषभदेव[३] और महावीर[४] पर लिखे स्तोत्रों की संख्या आती है, शेष तीर्थंकरों से सम्बन्धित स्तोत्र और भी कम हैं। पंचपरमेष्ठी अर्थात् अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधुओं की भक्ति पर लिखे गये स्तोत्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही है।

जैनधर्म में भक्ति का रूप आराध्य को खुशकर कुछ पा लेने का नहीं इसलिए यहाँ भक्ति का रूप दास्य, सख्य एवं माधुर्यभाव से सर्वथा भिन्न है। उत्तराध्ययन में स्तोत्र के फल के विषय में एक रोचक संवाद[५] मिलता है: थव-थुइमंगलेण भंते! जीवे किं जणयइ? थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्त-बोहिलाभं जणयइ। नाणदंसणचरित्तबोहिलाभसम्पन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ अर्थात् स्तुति करने से जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप बोधिलाभ करता है। बोधिलाभ से उच्च गतियों में जाता

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४७-२४८, ४५३ में पार्श्वनाथ पर लिखे स्तोत्रों की सूची दी गई है।

२. वही, पृ० ११३-११६, १२५-१२८ में इन स्तोत्रों की सूची प्रस्तुत है।

३. वही, पृ० २७-२९, ५७-५९, ३२१ (युगादिदेवस्तुति आदि).

४ वही, पृ० ३०७, ३६२.

५. अध्ययन २९, सू० १४; उत्तराध्ययन, अंग्रेजी प्रस्तावना-टिप्पणी-सहित—जार्ल शार्पेंटियर, उपसला, १९२२.

है, उसके रागादि शान्त होते हैं आदि। आचार्य समन्तभद्र स्तुति को प्रशस्त-परिणाम-उत्पादिका[1] बतलाते हैं। जैनधर्म के अनुसार आराध्य तो वीतरागी होता है, वह न तो कुछ लेता है और न देता है पर भक्त को उसके सान्निध्य से एक ऐसी प्रेरक शक्ति मिलती है जिससे वह सब कुछ पा लेता है।[2]

जैनधर्म के प्राचीनतम स्तोत्र प्राकृत भाषा में मिलते हैं। उनमें कुन्दकुन्दाचार्यकृत[3] 'तित्थयरसुद्धि' तथा 'सिद्धभक्ति' आदि प्राचीन है। भद्रबाहु के नाम से रचित कहा जाने वाला 'उवसग्गहरस्तोत्र' भी प्राचीन है जो ५ प्राकृत गाथाओं में है। यह इतना प्रभावक स्तोत्र समझा गया कि इसके ऊपर एक अच्छा परिकर साहित्य तैयार हो गया है।[4] इस पर अब तक ९ टीकाएं लिखी गई हैं। प्राकृत के अन्य उल्लेखनीय स्तोत्रों में नन्दिषेण का अजियसतिथय,[5] धनपालकृत ऋषभपचाशिका[6] और वीरथुइ[7], देवेन्द्रसूरिकृत अनेक स्तोत्र[8] यथा चत्तारिअट्ठदसथव, सम्यक्त्वस्वरूपस्तव, गणधरस्तव, चतुर्विंशतिजिनस्तव, जिनराजस्तव, तीर्थमालास्तव, नेमिचरित्रस्तव, परमेष्ठिस्तव, पुण्डरीकस्तव, वीरचरित्रस्तव, शाश्वतचैत्यस्तव, सप्ततिशतजिनस्तोत्र और सिद्धचक्रस्तव, धर्मघोषसूरि का इसिमण्डलथोत्त, नन्नसूरि का सत्तरिसयथोत्त, महावीरथव, पूर्णकलशगणि का स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव, जिनचन्द्रसूरि का नमुक्कारफलपगरण

---

१. स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा।
अवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः॥—स्वयंभूस्तोत्र, २१.१.

२ सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत् प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम्॥
—वही १४.१४.

३ जिनरत्नकोश, पृ० १६८; प्रभाचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीकासहित, दशभक्ति, सोलापुर, १९२१.

४ जिनरत्नकोश, पृ० ५४; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, १९३३; जैनस्तोत्रसदोह, द्वितीय भाग, पृ० १-१३, अहमदाबाद.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ३, यहाँ इस स्तोत्र की ६ टीकाओं का उल्लेख है।

६ वही, पृ. ५८, यहाँ इसके कई संस्करणों तथा ७ टीकाओं का उल्लेख है।

७. वही, पृ० ३६३; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, १९३३.

८ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई.

आदि। अभयदेवसूरिकृत जयतिहुअणस्तोत्र[1] अपभ्रंश भाषा मे है और इसमे स्तभनक पार्श्वनाथ की स्तुति है। यह भी प्रभावक स्तोत्रों में से एक है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे प्रचलित प्राकृत का निर्वाणकाण्डस्तोत्र[2] भी प्रिय स्तोत्रों मे से एक है।

संस्कृत भाषा में तो जैन स्तोत्र बहुमुखी धारा मे प्रवाहित हुए हैं। अनेक स्तोत्र विविध छन्दों और अलकारों में रचे गये हैं। कई श्लेषमय भाषा में तो कई पादपूर्ति के रूप में और कितने ही दार्शनिक एव तार्किक शैली में भी लिखे गये हैं।

तार्किक शैली मे लिखे गये आचार्य समन्तभद्रकृत स्वयम्भूस्तोत्र,[3] देवागमस्तोत्र,[4] युक्त्यनुशासन[5] और जिनशतकालकार[6], आचार्य सिद्धसेन की कुछ द्वात्रिंशिकाए[7] तथा आचार्य हेमचन्द्रकृत अयोगव्यवच्छेद-द्वात्रिंशिका[8] और अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका[9] विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पर कई टीकाएं भी लिखी गई हैं जो कि जैनन्याय के ग्रन्थों का काम देती हैं।

आलंकारिक शैली में लिखे गये स्तोत्रों में महाकवि श्रीपाल (प्रज्ञाचक्षु) की सर्वजिनपतिस्तुति (२९ पद्यों में), हेमचन्द्र के प्रधान शिष्य रामचन्द्रसूरि-कृत अनेक द्वात्रिंशिकाएं और स्तोत्र,[10] जयतिलकसूरिकृत चतुर्हारावलीचित्रस्तव[11]

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३३, यहाँ इसकी ६ टीकाओं का उल्लेख है।

२. वही, पृ० २१४.

३-६. वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, १९५०-१९५१.

७. जिनरत्नकोश, पृ० १८३, २४३, ३६९; जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से प्रकाशित.

८. वही, पृ० १५.

९. वही, पृ० ११.

१०. इन स्तोत्रो के परिचय के लिए देखें—नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३५-२३७.

११. स्तोत्ररत्नाकर, द्वि० भाग, वि० सं० १९७०; अनेकान्त, प्रथम वर्ष, किरण ८-१०, पृ० ५२०-५२८.

आदि, श्लेषमय शैली मे विवेकसागररचित वीतरागस्तव (३० अर्थ), नयचन्द्रसूरिकृत स्तम्भपार्श्वस्तव (१४ अर्थ) तथा सोमतिलक[1] एवं रत्नशेखरसूरिरचित अनेकों स्तोत्र है ।

पादपूर्ति या समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये स्तोत्रों की सख्या भी कुछ कम नहीं है । उनमे मानतुंग के भक्तामरस्तोत्र की समस्यापूर्ति में कई स्तोत्र[2] प्रकाश में आये हैं—यथा महोपाध्याय समयसुन्दरकृत ऋषभभक्तामर ४५ पद्यों में (इनमे चतुर्थ पाद की पूर्ति है), कीर्तिविमल के शिष्य लक्ष्मीविमलकृत भक्तामर की चतुर्थपाद की पूर्ति के रूप में शान्तिभक्तामर, धर्मसिंह के शिष्य रत्नसिंहसूरिकृत नेमि-राजीमती की स्तुति के रूप में ४९ पद्यों में नेमि-भक्तामर (इसका दूसरा नाम प्राणप्रियकाव्य है), धर्मवर्धनगणिकृत वीरस्तुति के रूप में वीर भक्तामर, धर्मसिंहसूरि का सरस्वतीभक्तामर, इसी तरह उक्त स्तोत्र की समस्यापूर्ति में जिनभक्तामर, आत्मभक्तामर, श्रीवल्लभभक्तामर एवं कालूभक्तामर आदि उल्लेखनीय हैं । कल्याणमन्दिरस्तोत्र की समस्यापूर्ति में भावप्रभसूरिकृत जैनधर्मवरस्तोत्र, अज्ञातकर्तृक पार्श्वनाथस्तोत्र, वीरस्तुति तथा विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन उपलब्ध हैं ।[3] उवसग्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति[4] में भी अनेक स्तोत्र उपलब्ध हुए हैं । अन्य स्तोत्रों में अज्ञातकर्तृक पार्श्वनाथ-समस्यास्तोत्र[5] उल्लेखनीय है । इस प्रकार के कई स्तोत्रों का उल्लेख हम पादपूर्ति साहित्य में कर आये हैं ।

सस्कृत भाषा की अन्य स्तुतियों में देवनन्दि पूज्यपाद (छठी शती) की सिद्धभक्ति आदि बारह[6] भक्तियाँ और सिद्धिप्रियस्तोत्र, पात्रकेशरी (छठी शती)

---

१. जैनस्तोत्रसमुच्चय, भाग १, पृ० ७६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २८९; हीरालाल र० कापडिया, काव्यसंग्रह, भाग १-२, आगमोदय समिति, बम्बई, स्तोत्ररत्नाकर, प्रथम भाग, मेहसाना, १९१३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८०.

४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ८०, पृ० ४५-४८.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २४७, सिद्धान्तसारादिसंग्रह (मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला, भाग २१), बम्बई, वि० स० १९७९.

६. नित्यपाठसंग्रह, कारजा, १९५६; सिद्धिप्रिय—काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० ३०.

का जिनेन्द्रगुणसस्तुति या पात्रकेशरीस्तोत्र[1], मानतुगाचार्य (७वीं शती) का भक्तामरस्तोत्र[2] (आदिनाथस्तोत्र), बप्पभट्टि[3] (८वीं शती) के सरस्वती-स्तोत्र, शान्तिस्तोत्र, चतुर्विंशतिजिनस्तुति, वीरस्तव, धनजय (८वीं शती) का विषापहार[4], जिनसेन (९वीं शती) का जिनसहस्रनाम[5], विद्यानन्द का श्रीपुरपार्श्वनाथ[6], कुमुदचन्द्र (सिद्धसेन ११वीं शती) का कल्याणमन्दिर[7], शोभनमुनि (११वीं शती) कृत चतुर्विंशतिजिनस्तुति[8], वादिराजसूरिकृत ज्ञानलोचनस्तोत्र[9] एव एकीभावस्तोत्र[10], भूपालकवि (११वीं शती) कृत जिनचतुर्विंशतिका[11], आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शती) कृत वीतरागस्तोत्र, महादेवस्तोत्र[12] और महावीरस्तोत्र[13], जिनवल्लभसूरि (१२वीं शती) रचित[14] भवादिवारण, अजितशान्तिस्तव आदि अनेक स्तोत्र, प० आशाधर (१३वीं शती) कृत सिद्धगुणस्तोत्र, जिनप्रभसूरि[15] (१३वीं शती) के सिद्धातागमस्तव, अजितशान्ति-स्तवन प्रभृति अनेक स्तोत्र, महामात्य

---

१. प्रथम गुच्छक, प्रकाशक—पन्नालाल चोधरी, काशी, वि० स० १९८२.
२. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १
३. आगमोदय समिति, बम्बई, १९२६; जैनस्तोत्रसंदोह, भाग १.
४. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० २२.
५. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४.
६ वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, वि० सं० २००६.
७ काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १०.
८ वही, पृ० १३२-१६०; आगमोदय समिति, बम्बई.
९. सिद्धांतसारादिसग्रह (मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला), पृ० १२४
१०. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १७-२२.
११. वही, पृ० २६.
१२. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक १.
१३. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १०२-१०७.
१४. जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १.
१५. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक पृ० ८६, १०७-११९; जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १; जिनप्रभसूरि ने ऋषभदेव पर ११ पद्यों में एक स्तोत्र फारसी भाषा में भी लिखा (जैनस्तोत्रसमुच्चय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १०वाँ स्तोत्र संस्कृत अवचूरि के साथ)।

वस्तुपाल (१३वीं शती) का अम्बिकास्तवन[1], पद्मनन्दि भट्टारक[2] कृत रावण-पार्श्वनाथस्तोत्र, शान्तिजिनस्तोत्र, वीतरागस्तोत्र आदि, शुभचन्द्र भट्टारककृत शारदास्तवन[3], मुनिसुन्दर (१४वीं शती) कृत स्तोत्ररत्नकोष[4], भानुचन्द्रगणिकृत सूर्यसहस्रनामस्तोत्र[5] आदि स्तोत्र हजारों की सख्या में ज्ञात एव अज्ञातकर्तृक उपलब्ध हुए है जिनका उल्लेख करना दुष्कर है।

जैन समाज मे सबसे प्रिय दो स्तोत्र माने गये हैं : एक तो मानतुगाचार्य का भक्तामरस्तोत्र जो कि प्रथम तीर्थंकर की स्तुति के रूप में (४४ या ४८ पद्यों में) रचा गया है और दूसरा कुमुदचन्द्र का कल्याणमन्दिरस्तोत्र (४४ पद्यों मे) जिसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। ये दोनों स्तोत्र अपने आराध्य के प्रति व्यक्त किये भक्तिभरे उदार एव समन्वयात्मक भावों के कारण उच्च कोटि के माने गये हैं। भक्तामरस्तोत्र के कुछ पद्य[6] ध्यातव्य हैं :

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥ २३ ॥
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ २४ ॥

---

१. महामात्य वस्तुपाल का विद्यामण्डल, पृ० १९३, जैनस्तोत्रसमुच्चय, पृ० १४३.

२. अनेकान्त, वर्ष ९, किरण ७.

३ डा० कैलाशचन्द्र जैन, जैनिज्म इन राजस्थान, सोलापुर, १९६३, पृ० १६७

४ जैनस्तोत्रसग्रह, भाग २, जिनरत्नकोश, पृ० ४५३.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ४५२, जैन युवक मडल, सूरत, वि० स० १९९८.

६. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० ६.

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्
　　　　त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्
　　　　व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।। २५ ।।

आराध्य की उदारता और स्तोता की विनयशीलता को व्यक्त करने वाले कल्याणमन्दिरस्तोत्र के दो पद्य[1] पठनीय हैं :

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
　　　　कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या न ते मयि महेश ! दयां विधाय
　　　　दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ।। ३९ ।।
देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार !
　　　　संसारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि
　　　　सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ।। ४१ ।।

स्तोत्ररचना में हेमचन्द्राचार्य सबसे बड़े समन्वयवादी थे। उनके द्वारा रचित वीतरागस्तोत्र[2], महादेवस्तोत्र[3] के पद्य सदा स्मरणीय हैं :

भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।
यत्र यत्र समये यथा यथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ।।
त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलिं ।
रागद्वेषभयान्तकजरालोलत्वलोभादयो

१. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १७.
२. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ।
३. वही.

नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥
यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलविधेर्भगिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विपन्तं
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥

दक्षिण भारत के जैन शिलालेखों में भी इस तरह के समन्वयवादी मगलाचरण[1] द्रष्टव्य हैं: जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोऽपि शिवाय.... धात्रे सुगताय विष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः।

जैन स्तोत्रों के संग्रह[2] के रूप में अनेक संस्करण निकल चुके हैं। उनमे से काव्यमाला, बम्बई के प्रथम गुच्छक और सप्तम गुच्छक में अनेक स्तोत्र संकलित हैं। मुनि चतुरविजयजी द्वारा सम्पादित जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १-२ में अनेकों प्राकृत-सस्कृत स्तोत्र संकलित हैं। इसके भाग १ के परिशिष्ट में प्रकाशित सभी स्तोत्रों की सूची दी गई है जो बड़ी उपयोगी है। चतुरविजयजी द्वारा सम्पादित एक अन्य संकलन जैनस्तोत्रसमुच्चय के दो भागों में तथा यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित जैनस्तोत्रसग्रह के दो भागों में अनेक स्तोत्रों का सकलन हुआ है। आगमोदय समिति, बम्बई ने प्रो० हीरालाल रसिकदास कापड़िया के सम्पादकत्व में स्तोत्रों के सटीक, सचित्र और समत्र कई भाग निकाले हैं जो स्तोत्र-साहित्य के ज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित महाप्राभाविक नवस्मरण मे गुजराती अनुवाद और माहात्म्यकथाओं के साथ उवसग्गहर, भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि ९ स्तोत्रों का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। जर्मन विदुषी Dr. Charlotte Krause कृत Ancient Jain Hymns[3] में ८ स्तोत्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ स्तोत्र-साहित्य के महत्त्व को बतलाने के लिए ९ पृष्ठों की भूमिका दी गई है जो पठनीय है। मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग ३, पृ० ८५.

२. जैन स्तोत्रों के संग्रह की विधि प्राचीन है। वि० सं० १५०५ में हिमांशुगणिकृत एक संकलन मिलता है—जिनरत्नकोश, पृ० १४५; अन्य स्तोत्रकोशों की सूची जिनरत्नकोश, पृ० ४५३ में दी गई है।

३. सिंधिया ओरियण्टल सिरीज, संख्या २, उज्जैन, १९५२.

सिद्धान्तसारादिसंग्रह भी अनेक ग्रन्थों के परिज्ञान के लिए दर्शनीय है। जैनों के असंख्य अप्रकाशित ग्रन्थों के नाम और नमूने ग्रन्थभण्डारों की प्रकाशित सूचियों में भलीभांति देखे जा सकते हैं।

दृश्यकाव्य—नाटक :

काव्य के दो प्रधान भेदों—श्रव्य और दृश्य—में से नाटक या रूपक दृश्य-काव्य विधा है। इसका विकासक्रम भारतीय परम्परा में ऋग्वेदकाल से ढूंढा जा सकता है। ऋग्वेद के सरमा और पणि, यम और यमी, विश्वामित्र और नदी, पुरूरवा और उर्वशी के संवादों में नाटक साहित्य के प्राचीनतम रूप मिलते हैं। नाटक के प्रधान तत्त्व संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय हैं। अधिकांश विद्वान् इन चारों तत्त्वों को वेद में उपलब्ध होने से नाटक की उत्पत्ति वैदिक सूक्तों से मानते हैं।

रामायण और महाभारत काल में आकर नाटक के कुछ स्पष्ट रूप उल्लिखित पाये जाते हैं। विराटपर्व में रंगशाला का निर्देश है। हरिवंशपुराण में रामायण की कथा पर एक नाटक के अभिनीत होने की चर्चा है। रामायण में रंगमंच, नट, नाटक का विभिन्न स्थलों में निर्देश है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में नटसूत्र और नाट्यशास्त्र का भी उल्लेख है। पातंजल महाभाष्य में कंसवध और बलि-बंधन नामक दो नाटकों का स्पष्ट नाम है।

रायपसेणियसुत्त (द्वितीय उपांग) में सूर्याभदेव अधिकार में उल्लेख है कि देव-देवियों ने महावीर स्वामी से ३२ प्रकार के नाटक खेलने की तीन बार अनुमति मांगी पर उत्तर नहीं मिला तब उन्होंने महावीर के स्वर्ग च्यवन, गर्भ, जन्म, अभिषेक बालक्रीड़ा, यौवन, निष्क्रमण, तपश्चर्या, केवलज्ञान, तीर्थप्रवर्तन, निर्वाण आदि प्रसंगों का बाजे बजाकर, संगीत सुनाकर, नृत्य और अभिनय कर मूक अभिनय जैसा नाटक किया। १०वें उपांग पुष्पिका में इन्द्र ने महावीर के समक्ष सूर्याभदेव के द्वारा नाट्यविधि का प्ररूपण कराया है। वहां सूर्य, शुक्र आदि दस व्यक्तियों की ओर से अभिनीत नाटक का उल्लेख मिलता है। पिण्डनिज्जुत्ति (गा० ४७४-४८०) में 'रट्ठवाल' नाटक का उल्लेख आया है। इसमें भरत चक्रवर्ती का जीवनवृत्त आषाढभूति मुनि ने अभिनीत किया है। इसे देख राजा राजकुमार आदि संसार से उद्विग्न हो गये। कहते हैं कि संसार की हानि होते देख यह नाटक नष्ट कर दिया गया। उत्तराध्ययन की वृत्ति में नेमिचन्द्र ने मधुकरीगीत और सोयामणि इन दो नाटकों

का उल्लेख किया है। प्रबंधकोश में कहा गया है कि बप्पभट्टि के गुरुभाई नन्नसूरि ने वृषभध्वजचरित नाटक आम राजा (कन्नौजनरेश) के राजदरबार मे अभिनीत किया था। प्राचीन जैन नाटक कृतियों में शीलांकाचार्य के चउप्पण्णपुरिसचरिय में विबुधानन्द नाटक दिया गया है। वर्धमानसूरि के मनोरमाचरित्र की प्रशस्ति (वि० स० ११४०) में उल्लेख है कि बुद्धिसागरसूरि ने कोई नाटक लिखा था।

यद्यपि वर्तमान मे उपलब्ध जैन अजैन संस्कृत-प्राकृत नाटक कृतियाँ सैकड़ों हैं परन्तु उनमे उत्कृष्टतम तो २० से कदाचित् अधिक होंगी। प्राचीन कवियों भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भवभूति और हर्ष की रचनाऍ उन उच्चकोटि की कृतियों में से हैं। उत्तरकालीन नाटक कृतियॉ केवल अनुकरण जैसी ही हैं।

मध्ययुग के प्रारंभ काल तक सस्कृत नाटक के इतिहास का युग समाप्त हो चुका था फिर भी विद्या और अध्ययन की परम्परा बड़ी लगन के साथ सुरक्षित रखी गई और नाटक की कला और अभिनय का पोषण राजदरबारों और समाज के सुसम्पन्न वर्ग के आश्रय में होता ही रहा।

मध्ययुग के उत्तरकाल में जैन कवि दृश्यकाव्य के क्षेत्र मे आगे बढ़े। चौलुक्य युग के गुजरात में जैनों द्वारा न केवल नाटक रचे और खेले गये थे बल्कि नाट्यशास्त्र पर भी ग्रन्थ लिखे गये थे। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन का ८ वॉ अध्याय और उनके शिष्य रामचन्द्र, जो स्वय १०-११ नाटकों के लेखक थे, का नाट्यदर्पण उस काल की प्रतिनिधि रचनाऍ हैं। यह परम्परा उत्तरकालीन चौलुक्य युग में भी चलती रही।

उपलब्ध जैन नाटकों को कथावस्तु के आधार पर हम ५ विभागों में बॉट सकते हैं : पौराणिक, ऐतिहासिक, रूपक (allegorical), काल्पनिक एव साम्प्रदायिक। पौराणिक यथा रामचन्द्रकविकृत नलविलास, रघुविलास आदि, हस्तिमल्लकृत मैथिलीकल्याण, विक्रातकौरव आदि, ऐतिहासिक यथा देवचन्द्रकृत चन्द्रलेखविजयप्रकरण, जयसिंहसूरिकृत हम्मीरमदमर्दन एव नयचन्द्रकृत रंभामंजरी; रूपकात्मक यथा मोहराजपराजय, ज्ञानसूर्योदय आदि, काल्पनिक यथा रामचन्द्रकृत मल्लिकामकरन्द, कौमुदीमित्रानन्द आदि, साम्प्रदायिक यथा मुद्रितकुमुदचन्द्र।

सर्वप्रथम यहाँ हम रामचन्द्र कवि की नाटक कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं। पहले कवि का परिचय दिया जा रहा है।

कवि रामचन्द्र :

ये हेमचन्द्राचार्य के शिष्यों में सर्वप्रधान थे।[1] ग्रन्थकार के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं मालूम फिर भी पं० लालचन्द्र गांधी ने नलविलास की भूमिका में लिखा है कि रामचन्द्र वि० सं० ११४५ में उत्पन्न हुए थे। उन्हें सं० ११६६ में सूरिपद मिला था। ये सं० ११२८ में हेमचन्द्र के शिष्य हुए एवं पट्टधर हुए और सं० १२३० में स्वर्गवासी हुए। प्रभावकचरित में हेमचन्द्र का जीवनचरित बतलाते हुए कहा गया है कि रामचन्द्र एक ऐसे शिष्य थे जो हेमचन्द्र की परम्परा को चला सकते थे।

गुजरात के नाट्यकारों में रामचन्द्र सर्वोच्च थे। उन्होंने नाट्यशास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया था। उनकी तद्विषयक कृति नाट्यदर्पण एक मौलिक रचना है। इसमें नाटक के प्रकारों, स्वरूप और रसों का ऐसा वर्णन किया गया है जो भरत के नाट्यशास्त्र से भिन्न है। इसमें संस्कृत के कितने ही उपलब्ध और अनुपलब्ध नाटकों के भी उल्लेख हैं जिनमें कुछ तो स्वयं कवि की रचनाएं हैं। इस ग्रन्थ में विशाखदत्त के लुप्त नाटक 'देवीचन्द्रगुप्त' के अनेक उद्धरण दिये गये हैं जो गुप्त इतिहास की लुप्त कड़ियाँ संकलित करने में बड़े महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं।

उनकी शैली में प्रतिभा और प्रवाह है। वे इस कला में निपुण थे कि साधारण से साधारण कहानी को कैसे सुन्दरतम नाटकीय ढंग में परिवर्तित किया जाय। उन्होंने भावाभिव्यक्ति में पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। इसके अतिरिक्त वे प्रथम श्रेणी के समालोचक, कविता के हार्दिक प्रशंसक और तत्काल समस्यापूर्ति करने वाले थे। इन्होंने अनेक आलंकारिक स्तोत्र भी रचे हैं। रामचन्द्रसूरि चार प्रकार की संस्कृत नाटक कृतियों के लेखक थे : नाटक, प्रकरण, नाटिका और व्यायोग।

उनकी पौराणिक एवं काल्पनिक कथावस्तु पर लिखी कृतियों का परिचय इस प्रकार है :

---

१ भोगीलाल ज० सांडेसरा, हेमचन्द्राचार्य का शिष्यमण्डल, नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २०९-२२१.

१. सत्यहरिश्चन्द्र :

रामचन्द्रसूरि ने इसे[1] अपना आदि रूपक कहा है। इसे नाटक कहा गया है और इसकी कथावस्तु सत्यवादी हरिश्चन्द्र से सम्बद्ध है। इस कथा का आधार महाभारत है पर अभिनय के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। इसमे ६ अक हैं।

महाभारत मे हरिश्चन्द्र स्वप्न मे विश्वामित्र को राज्य दे अपने सत्य की परीक्षा में दुःख उठाता है। यहाँ वह एक आश्रम की हरिणी का शिकार करने से उसके प्रायश्चित्तस्वरूप यातनाओं को मोल लेता है। रानी सुतारा और राजपुत्र रोहिताश्व के साथ राजा के निर्वासित होते समय प्रजा के उद्वेग के रूप में कवि जोश मे आ जाता है। इस कारुणिक घटना को कवि ने इस ढग से वर्णित किया है कि भवभूति के उत्तररामचरित का स्मरण हो आता है। चतुर्थ अक मे मान्त्रिक द्वारा सुतारा की राक्षसीरूप में उपस्थिति से राजशेखर के कर्पूरमंजरीसट्टक की याद हो आती है, जिसमे भैरवानन्द कर्पूरमजरी को स्नानार्द्र वस्त्र मे उपस्थित करता है। पर रामचन्द्र का यह चित्रण रगमच की मर्यादा का उल्लंघन करता है। इसी तरह पचम अङ्क में हरिश्चन्द्र द्वारा मासखण्ड देना नागानन्दनाटक की याद दिलाता है, जिसमें शखचूड को बचाने के लिए जीमूतवाहन गरुड के लिए अपनी बलि देता है।

कवि ने अपने 'नाट्यदर्पण' के सिद्धात 'नाटक जीवन के सुख और दुःख दोनों का प्रतिबिम्ब होता है' को दिखाने का पूरा प्रयत्न किया है। कवि ने समस्त नाटक मे इतने अधिक पद्यों की योजना की है कि नाट्य-व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा पहुँचती है। सभवतः इस विषय मे उनकी यह आदि कृति थी इसलिए ऐसा हुआ हो। यह नाटक सुभाषितों और मुहावरो से भरपूर है। इसका सन् १९१३ मे इटालियन भाषा मे अनुवाद हो चुका है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२, ४६०, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, अत्रे और पुराणिक द्वारा सम्पादित, सत्यविजय जैन ग्रथमाला मे मुनि मान-विजय द्वारा सम्पादित एव सत्य श्री हरिश्चन्द्र नृपति प्रबन्ध के अन्तर्गत विना अङ्क-विभाग के प्रकाशित, अहमदाबाद, १९२४, नाट्य-दर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२४ मे सक्षिप्त परिचय

२. नलविलास :

इस नाटक[1] में ७ अंक हैं। इसकी कथावस्तु का आधार भी महाभारत ही है। यह जैन साहित्य में प्राप्त नल-कथा पर बिल्कुल आश्रित नहीं है और न इसमें साम्प्रदायिकता की थोड़ी भी गन्ध है।

महाभारत में नल कथा के कुछ ऐसे प्रसग हैं, जैसे हस के द्वारा नल का सन्देश, कलि का नल के शरीर मे प्रवेश और पक्षियों द्वारा नल के वस्त्राभूषण ले जाना आदि, जो कि रगमच मे नहीं दिखाये जा सकते, उन्हें इस नाटक मे बदल कर रगमंच के अनुरूप बनाया गया है। लेखक के ये परिवर्तन मौलिक सुन्दरता मे वृद्धि ही करते हैं। प्रत्येक अक में लेखक की प्रतिभा, उक्तिवैचित्र्य झलकता है। इसमें दमयन्ती का चरित्र महाभारत की अपेक्षा अधिक उदात्त है। इसमें कई ऐसे सवाद हैं जो पाठको को द्रवीभूत कर देते हैं। नल और दमयन्ती के बीच वियोग के करुण दृश्य से सवेदनशील पाठक बिना द्रवित हुए नहीं रहेंगे। यह उत्तररामचरित की याद दिलाता है। कवि रामचन्द्र में भाव व्यक्त करने की शक्ति कालिदास और भवभूति के ही समान है। वे अपने वर्णन और सवादों से लोगों के सामने अनोखे दृश्य खड़े कर देते हैं। स्वयंवर का दृश्य बडा ही प्रभावक है और हमें रघुवश के छठे सर्ग की याद दिलाता है।

इस नाटक में अनेको मुहावरे और सुभाषित भरे पड़े हैं। यथा—

> सुस्थे हृदि सुधासिक्तं, दुःस्थे विषमयं जगत्।
> वस्तुरम्यमरम्यं वा मनः संकल्पतस्ततः ॥ (पृ० ५९)
> शतेऽपि शिरसां छिन्ने दुर्जनस्तु न तुष्यति। (पृ० ८५)

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०५; गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, २९, बड़ौदा, १९२६, इसकी प्रस्तावना द्रष्टव्य है। डा० सुशीलकुमार डे ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० ४६५ में इस पर सहानुभूति-पूर्वक नहीं लिखा; नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२३ में इसका सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

३. मल्लिकामकरन्द :

इसकी प्रस्तावना में इसे नाटक कहा गया है पर वास्तव में यह प्रकरण है क्योंकि इसकी कथा काल्पनिक है।[1] यद्यपि प्रकरण मे १० अक रखने का विधान है पर इसमें केवल ६ अक है। रामचन्द्रसूरि ने अपने नाट्यदर्पण में इसे प्रकरण ही कहा है। यह इस कवि की अन्य रचना कौमुदीमित्राणन्द के समान ही सामाजिक नाटक है।

नायिका मल्लिका एक विद्याधर-कन्या थी जिसे नवजात शिशु के रूप में मल्लिका वृक्ष के कुज में पड़ी पाकर एक सेठ ने उसका पालन किया था। उसकी अगुलियों में वैनतेय की मुहर वाली अगूठियाँ थीं और बालों मे एक भूर्जपत्र बधा था जिसमें लिखा था : '१६ वर्ष के बाद चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को मै इसके पति और रक्षक को मारकर इसे बलात् ले जाऊँगा'।

मल्लिका युवती होने पर एक रात्रि मे कामदेव के मन्दिर मे फाँसी लगाती है और नायक मकरन्द उसे बचा लेता है। दोनों मे प्रेम बढ जाता है। मल्लिका उसे अपने दोनों कानों के आभूषण देती है। मकरन्द को एक समय जुआड़ी लोग पकड़ते हैं जिसे मल्लिका का धर्मपिता सेठ रुपया देकर छुड़ाता है। सेठ द्वारा यह मालूम कर कि मल्लिका के अपहरण का समय आ रहा है, मकरन्द उसे बचाने का प्रयत्न करता है पर किसी अदृष्ट शक्ति द्वारा मल्लिका का अपहरण हो जाता है (१-२ अक)। वह विद्याधरों के लोक मे जाती है जहाँ एक राजकुमार चित्राङ्गद से विवाह करना अस्वीकार करती है। मकरन्द वहाँ पहुँच जाता है पर मल्लिका की माता चित्रलेखा उसे देख कर क्रुद्ध होती है (३ अक)। मकरन्द निराश होता है पर उसे एक तोता मिलता है जो उसके स्पर्श से वैश्रवण नामक मनुष्य बन जाता है। वह अपनी विपत्ति की कथा कहता है। इस बीच मकरन्द चित्राङ्गद से मिलता है और उसके आदमियों द्वारा पकड़ा जाता है (४ अक)। मकरन्द के इस काम में वैश्रवण और उसकी पत्नी मनोरमा सहायता करने की प्रतिज्ञा करते हैं। मल्लिका मकरन्द से अपने दृढ़ प्रेम की बात करती है और पीछे अपनी माता और चित्रागद से भी (कपटरूप मे) (५ अंक)।

छठे अक के प्रारंभ मे विष्कम्भक में मल्लिका मकरन्द के बदले अपना प्रेम और अनुराग चित्राङ्गद के प्रति दिखलाती है, जो छलरूप में उसके मन में

---

१. नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३० मे संक्षिप्त परिचय.

विश्वास उत्पन्न करने जैसा था। इस अंक मे आते ही हम देखते हैं कि एक गधमूषिका तापसी की आज्ञा से चित्रागद और मल्लिका के असली विवाह के पूर्व एक दूसरा विवाहोत्सव होता है जिसमें सामान्य प्रथा के अनुसार मल्लिका और यक्षाधिराज से विवाह का अभिनय है। मल्लिका और यक्ष के बीच विवाह सम्पन्न होता है परन्तु यक्षाधिराज में स्वय मकरन्द प्रकट हो जाता है। अन्त में उस विवाह से सब राजी हो जाते हैं और नाटक की समाप्ति आनन्दपूर्वक मेल में होती है। अन्त में मुद्रालकार द्वारा रचयिता का नाम (रामचन्द्र) सूचित किया गया है। यह एक शुद्ध प्रकरण है।

४. कौमुदीमित्राणन्द :

यह एक सामाजिक नाटक[1] है जिसे लेखक ने प्रकरण कहा है। इसमें १० अङ्क हैं। इसमें कौतुकनगरवासी धनी सेठ जिनसेन के पुत्र मित्राणन्द और एक आश्रम के कुलपति की पुत्री कौमुदी के बीच प्रेमकथा का वर्णन है। इसे कौमुदीनाटक भी कहते हैं।

प्रथम अक में मित्राणन्द अपने मित्र मैत्रेय के साथ समुद्रयात्रा में जाता है और उनका जहाज वरुणद्वीप में टूट जाता है। वहा वे एक सुन्दर कन्या को झूला झूलते पाते हैं। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। मित्राणन्द कुलपति के साथ आता है जो उसका बड़े स्नेह के साथ स्वागत करता है और अपनी पुत्री कौमुदी से विवाह करने का प्रस्ताव करता है। इसी समय वरुण आता है और सब चले जाते हैं। दूसरे अङ्क में मित्राणन्द वरुण के द्वारा वृक्ष में कीलित एक व्यक्ति की रक्षा करता है जो कि एक सिद्ध था। वरुण उसे दिव्य हार भेंट में देता है।

तीसरे अङ्क मे मित्राणन्द और कौमुदी मिलते हैं। कौमुदी मित्राणन्द के यौवनरूप और दिव्यहार के कारण उस पर पूर्ण आसक्त है और मित्राणन्द से अपने पिता कुलपति और दूसरों का रहस्य बता देती है कि वे वास्तविक साधु नहीं हैं। प्रत्येक वणिक् जिसने उससे विवाह किया उसे विवाहगृह के नीचे ढके हुए कुएँ में डाल दिया जाता है। इसलिए उसने मित्राणन्द से वहां से अपने

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९६; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० स० १९७२, इसके अङ्कों के सक्षिप्त परिचय के लिए देखें—नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२५-२२७.

पूर्व पतियों से प्राप्त धन को लेकर लका भाग जाने का और अपने पिता से सर्पदश का मत्र सीखने का प्रस्ताव रखा। दोनों का विवाह होता है। मित्राणन्द कुलपति से सर्पदश का मंत्र सीखता है। कवि भावी घटनाओं को द्व्यर्थक पद्यों से सूचित करता है। चतुर्थ अङ्क में दोनों लका की राजधानी रगशाला में आते हैं। नगर में प्रवेश करते ही मित्राणन्द चोर के रूप में पकड़ा जाता है और उसे गदहे पर बैठाकर नगर मे घुमाया जाता है। उसका शरीर रक्तचन्दन से लेपा जाता है। पाचवें से लेकर दसवें अङ्क तक यह पूरा प्रकरण अनेक अलौकिक वातावरणों एव घटनाओं से पूर्ण है जो कि एक दूसरे मे शिथिल रूप मे सम्बद्ध हैं। सातवें अङ्क में एक वणिक्पुत्री सुमित्रा सामने आती है जो कि मकरन्द की प्रेमिका बन जाती है। मित्राणन्द–कौमुदी और मकरन्द-सुमित्रा अनेक घटनाचक्र पार कर अन्त में आनन्दपूर्वक समागम करते हैं। हास्य रस की कमी को कवि ने प्रचुर मात्रा मे प्रदर्शित अद्भुत रस से पूरी की है।

डा० कीथ ने इस प्रकरण की आलोचना में कहा है कि यह कृति पूर्णरूप से अनाटकीय है, इसमें कई कथाप्रसंगों को नाटकरूप में गठित किया गया है, परिणामस्वरूप यह आधुनिक मूकनाटक (Pantomime) जैसा ही है। आगे चलकर उन्होंने कहा है कि इस रचना में दर्शकों में अद्भुत रस जाग्रत करने वाले अनेक चमत्कारों के सिवाय और किसी प्रकार का रस नहीं है।[1] इसी तरह डा० डे ने कहा है कि इसकी कथा दण्डी के दशकुमारचरित जैसी है और लेखक को उसी रूप में लिखने का प्रयत्न करना था। नाटकीय कृति के रूप में इसमे कोई अधिक तत्त्व नहीं और न साहित्यिक दृष्टि से भी कोई उल्लेखनीय कृति है। पश्चात्कालीन इस जैसे प्रकरणों में नाटकीय प्रसगो की अपेक्षा जटिल कथानक ही विशेष देखे जाते हैं।[2]

५. रघुविलास :

यह ८ अकों का नाटक है।[3] इसमें राम के वनवास और सीता-मिलन की

---

१. ए० बी० कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० २५८-५९; गुजराती अनुवाद, भा० २, पृ० ३७६-३७७.

२. सु० कु० डे, हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७५-७६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३२६; इसके अकों के सक्षिप्त परिचय के लिए देखें–के० एच० त्रिवेदी, नाट्यदर्पण · ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२८

घटना जैन रामायण के अनुसार वर्णित है। रामचन्द्रसूरि के नाटकों में यह ऐसा नाटक है जिसे नाट्यदर्पण में बहुत बार उद्धृत किया गया है।

प्रथम अंक में राजा दशरथ के वचन-प्रतिपालनार्थ राम, सीता और लक्ष्मण का वनगमन। दूसरे अंक में रावण द्वारा सीता का हरण, जटायु का सीता के बचाने में जीवन-त्याग। तीसरे अंक में राम का करुण विलाप, हनुमान-सुग्रीव से परिचय। चतुर्थ अंक में रावण की राजधानी का वर्णन, सीता को आकृष्ट करने में रावण का असफल रहना।

पंचम अंक में विभीषण रावण को सत्परामर्श देता है पर कोई फल नहीं होता। राम का सन्देश लेकर दूत का आना और लौट जाना। अन्त में दोनों ओर से युद्ध छिड़ जाता है। छठे अंक में युद्ध का विवरण, रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना और हनुमान आदि का मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करना है। ७वें अंक में मन्दोदरी आदि का रावण को समझाना पर कोई फल न निकलना, रावण का राम से अन्त तक लड़ने का निश्चय करना है। ८वें अंक में राम और रावण में युद्ध का वर्णन है। रावण छल से सीता को उसके पिता जनक द्वारा राम के मरने की सूचना देता है, सीता अग्नि में कूदने की तैयारी करती है, हनुमान से सूचना पा राम सीता को बचाने के लिए दौड़ते हैं। रावण के मरने की सूचना नेपथ्य से दी जाती है। नाटक का अन्त राम सीता के सानन्द सम्मिलन से होता है। जाम्बवन्त अन्तिम शुभाशंसा पढता है।

यहाँ सीता के अपहरण की घटना दूसरे ढंग से निरूपित है।। रावण का वेश बदलकर राम के पास आना—यह कवि का नूतन निर्माण है और बड़ा रोचक तथा नाटकीय है परन्तु लम्बे-लम्बे पद्यों की भरमार से वातावरण का सौन्दर्य नष्ट हुआ है और कथा के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा हुई है। राम का सीता के खो जाने पर करुण विलाप कालिदास के विक्रमोर्वशीय की याद दिलाता है जो बड़ा हृदयद्रावक है। नाटक में दिव्यतत्त्व—राक्षसों की दिव्य-शक्ति—की भरमार है जो कौतूहल बढाने में आवश्यक समझा गया है।

इस नाटक का संक्षिप्त रूप 'रघुविलासनाटकोद्धार' मिलता है जिसमें गद्य भाग को हटाकर केवल पद्य रखे गये हैं और इस तरह वह नाटक का आधा रह गया है।

६. निर्भयभीमव्यायोग :

यह एक अंक का रूपक[1] है जिसे 'व्यायोग' कहते हैं। इसमें महाभारत में वर्णित बकासुर के वध को कथावस्तु बनाया गया है। इसमें भीम एक ब्राह्मण युवक को राक्षस बक के चंगुल से छुड़ाता है और स्वयं अपने को बलिरूप में प्रस्तुत कर बकासुर का वध कर देता है।

यह व्यायोग भास के मध्यम व्यायोग जैसा है। यद्यपि दोनों के घटनाप्रसंग भिन्न हैं पर नायक भीम दोनों में एक है। वध्य ब्राह्मण की माता और पत्नी का करुण क्रन्दन श्रीहर्ष के नागानन्द की याद दिलाता है।

यह रचना बड़ी सरल और प्रसादपूर्ण है। इसमें जिज्ञासा तथा कौतूहल क्रमशः बढ़कर चरम बिन्दु पर पहुँचे हैं। इसमें अरस्तू के सिद्धांत संकलन-त्रय स्थान की एकता, समय की एकता और घटना की एकता-का पूरी तरह पालन हुआ है।

७. रोहिणीमृगांक :

यह रामचन्द्रसूरि का अन्यतम प्रकरण[2] है जो अनुपलब्ध है। इसे 'नाट्यदर्पण' में दो स्थलों पर उद्धृत किया गया है। प्रकरण होने से इसकी कथा-वस्तु कल्पित ही है। इसका विषय रोहिणी और मृगांक के प्रणय का वर्णन मालूम होता है।

८. राघवाभ्युदय :

राम की कथा पर आधारित यह एक नाटक[3] है जो अनुपलब्ध है। रामचन्द्रसूरि ने इसका अपने नाट्यदर्पण में १० बार उल्लेख किया है। बृहट्टि-प्पणिका में कहा गया है कि इस नाटक में १० अंक हैं। राम की कथा पर आधारित इस कवि का दूसरा नाटक रघुविलास भी है पर दोनों का घटना-प्रसंग भिन्न है। रघुविलास में राम के वनवास और सीता-मिलन की घटना है तो राघवाभ्युदय में सीता के स्वयंवर की घटना है। ज्ञात होता है कि रघुविलास से पहले राघवाभ्युदय की रचना हुई थी क्योंकि रघुविलास की प्रस्तावना में रामचन्द्रसूरि की पाँच उत्तम कृतियों में इसका भी उल्लेख है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१४; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, संख्या १९, वाराणसी, वी०सं० २४३७.

२-३ नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३२-२३३.

९. यादवाभ्युदय :

रामचन्द्रसूरि का यह नाटक[1] भी अनुपलब्ध है पर 'नाट्यदर्पण' में इसका आठ बार उल्लेख है। इसमें मुख्य रूप से कृष्ण के जीवन की घटना दी है जिसमें कंस और जरासंध के वध के बाद कृष्ण के राज्याभिषेक का अभिनय है। रघुविलास में रामचन्द्रसूरि की पाच उत्तम कृतियों में राघवाभ्युदय के साथ इसका भी उल्लेख है। इसमे भी १० अक मालूम होते हैं। नाटककार ने अन्तिम पद्य में मुद्रालकार द्वारा अपना नाम सूचित किया है।

१०. वनमाला :

रामचन्द्रसूरिकृत यह एक नाटिका[2] है। यह रचना भी अनुपलब्ध है। नाट्यदर्पण मे यह एक बार उद्धृत है। इसमे राजा (सभवतः नल) और दमयन्ती का सवाद है जिसमें दमयन्ती उस पर अन्य नारीरक्त होने से क्रुद्ध है।

सभवतः इसमें नल और नायिका वनमाला के बीच प्रेमव्यापार का वर्णन है। इसका नायक नल है। इसमें नाटिका की प्रकृति के अनुसार नायक गुप्त रूप से नायिका से प्रेम करता है। ज्येष्ठ रानी रोष प्रकट करती है और बाधाएँ उपस्थित करती है पर अन्त में नायक-नायिका के विवाह की स्वीकृति दे देती है।

चन्द्रलेखाविजयप्रकरण :

यह[3] हेमचन्द्राचार्य के अन्यतम शिष्य देवचन्द्र की रचना है। इसमे पाच अक हैं।

यह कुमारविहार के मूलनायक पार्श्वजिन के समीप मे स्थापित अजितनाथ के मन्दिर में वसन्तोत्सव पर कुमारपाल की परिषद् के सन्तोष के लिए खेला

---

१. वही, पृ० २३३.
२. नाट्यदर्पण, पृ० ११५; जिनरत्नकोश, पृ० ३४१; नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३३.
३. जिनरत्नकोश, पृ० १२०; यहाँ इसके कर्ता देवचन्द्र को हेमचन्द्राचार्य का गुरु लिखा गया है जो गलत है। ये देवचन्द्र हेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे। हेमचन्द्र के गुरु का नाम भी देवचन्द्रसूरि था।

गया था । इस नाटक में सपादलक्ष या शाकम्भरी (आधुनिक साभर–राजस्थान) के नृप अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय और अर्णोराज की भगिनी से उसके विवाह का वर्णन है ।

इसकी नायिका चन्द्रलेखा एक विद्याधरी है ।

रचयिता एव रचनाकाल—इसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य के शिष्य देवचन्द्र हैं ।[1] इसकी रचना में उन्होंने शेष भट्टारक से सहायता ली थी । इनकी दूसरी रचना मानमुद्राभञ्जन नाटक[2] है जो सनत्कुमार चक्रवर्ती और विलासवती को लेकर रचा गया है परन्तु वह उपलब्ध नहीं है ।

प्रबुद्धरौहिणेय :

यह ६ अंकों का नाटक है ।[3] इसमें भगवान् महावीर के समकालिक राजगृह-नरेश श्रेणिक के राज्यकाल के प्रसिद्ध चोर रौहिणेय के प्रबुद्ध होने का वर्णन किया गया है ।[4] इसकी रचना पार्श्वचन्द्र के पुत्र व्यापारशिरोमणि दो भ्राता यशोवीर और अजयपाल के अनुरोध से की गई थी और लगभग वि० स० १२५७ में यह उनके द्वारा बनवाये जालौर के आदीश्वर जिनालय के यात्रोत्सव पर खेला गया था ।

हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र में रौहिणेय की कहानी दृष्टान्तरूप में दी है ।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध तार्किक देवसूरि (वि० सं० १२२६ में स्वर्गवासी) सन्तानीय जयप्रभसूरि के शिष्य रामभद्र हैं । इनके सम्बध मे विशेष कुछ ज्ञात नहीं है ।

---

१. जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० २८०.

२. वही; जिनरत्नकोश, पृ० ३०९

३. जैन आत्मानन्द सभा, सख्या ५०, भावनगर, वि०सं० १९७४; जिनरत्नकोश, पृ० २६५, ए० बी० कीथ, संस्कृत ड्रामा, लन्दन, १९५४, पृ० २५९-६०, इसका गुजराती अनुवाद सस्कृत नाटक, भाग २, पृ० ३७७ ७८ में है ।

४. इसका परिचय 'जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास' मे पृ० ३२५ मे दिया गया है ।

द्रौपदीस्वयंवर :

यह दो अंकों का संस्कृत नाटक[1] है जिसे गुजरातनरेश 'अभिनव सिद्धराज' विरुदधारी महाराज भीमदेव द्वितीय (वि० स० १२३५-९८) की आज्ञानुसार त्रिपुरुषदेव के सामने वसन्तोत्सव के समय खेला गया था। इसके अभिनय से राजधानी अणहिलपुर की प्रजा बहुत खुश हुई थी। यह बात नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार के कथन से ज्ञात होती है। इसमें कवि ने ऐसे कई छन्दों का निर्माण किया है जिन्हें पदशः विभक्त कर अनेक पात्रों से कहलाया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता[2] महाकवि श्रीपाल के पौत्र एव सिद्धपाल के पुत्र महाकवि विजयपाल हैं। कवि की अन्य कोई कृति नहीं मिली है। अन्य उल्लेखों से पता चलता है कि कवि का कुल बड़ा प्रतिष्ठित और सरस्वती-भक्त था। कवि के पिता और पितामह राजकवि थे। ये प्राग्वाट (पोरवाड) वैश्य तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन थे। इनके कुटुम्ब की ओर से अणहिलपुर में स्वतन्त्र जैन मन्दिर एव उपाश्रय बनाये गये थे।

नाटक मे कर्ता को महाकवि कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि कवि ने इस कृति के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ बनाये थे जो या तो नष्ट हो गये या किन्हीं ग्रन्थभण्डारों में प्रकाश की प्रतीक्षा मे पड़े हों। इस नाटक में विजयपाल के पिता का नाम सिद्धपाल दिया है। ये भी महाकवि थे। यद्यपि इनका अब तक कोई ग्रन्थ नहीं मिला है पर शतार्थीकाव्य, सूक्तमुक्तावली, सुमतिनाथचरित्र, कुमारपालप्रतिबोध आदि सस्कृत प्राकृत ग्रन्थों के प्रणेता सोमप्रभसूरि ने उक्त अन्तिम दो ग्रन्थों की प्रशस्तियों में सिद्धपाल का उल्लेख किया है। ये दोनों ग्रन्थ उन्होने सिद्धपाल के बनाये उपाश्रय में रह कर लिखे थे।

कुमारपालप्रतिबोध में दो-चार स्थानों में सिद्धपाल का उल्लेख है और एक स्थान पर लिखा है :

कइयावि निवनियुत्तो कहइ कहं सिद्धपालकई।
(कदापि नृपनियुक्तः कथयति कथां सिद्धपालकविः।)

कुमारपालप्रतिबोध में उक्त कवि द्वारा रचित कुछ पद्यो के अतिरिक्त और कोई कृति प्राप्त नहीं हुई है।

सिद्धपाल के पिता श्रीपाल थे जो अपने समय के एक प्रसिद्ध महाकवि थे।

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१८, सम्पादक—मुनि जिनविजयजी.

२. भूमिका, पृ० १-७.

सोमप्रभाचार्य ने इनका यशोगान सुमतिनाथचरित्र तथा कुमारपालप्रतिबोध की अन्तिम प्रशस्तियों में किया है। गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के ये बालमित्र थे।

मोहराजपराजय :

इस नाटक[1] के शीर्षक का अर्थ है मोह याने अज्ञान पर विजय।

यह पाच अङ्कों में विभक्त है।

इसमें गुजरात के चौलुक्य नरेश राजा कुमारपाल द्वारा आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से जैनधर्म स्वीकारना, प्राणिहिंसा को रोकना तथा अदत्त मृतधनापहरण का त्याग करने आदि का चित्रण है। यह नाटक प्राचीन काल के जैन रूपक (Allegory) का अच्छा नमूना है। विषयवस्तु और अभिनय की दृष्टि से यह नाटक मध्ययुगीन यूरोप के ईसाई नाटको के सदृश लगता है। सस्कृत साहित्य मे ऐसे और भी नाटक हैं जिनमे उल्लेखनीय चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के राज्य (१०६५ ई०) में कृष्णमिश्र द्वारा रचा गया 'प्रबोधचन्द्रोदय' है जो कि इस नाटक से सौ वर्ष पहले रचा गया था।

ऐसा ज्ञात होता है कि यह नाटक अजयपाल के राज्यकाल मे (सन् ११७४–७७) में लिखा गया था और थारापद्र (आधुनिक थराद, बनासकाठा जिला) मे बनाये कुमारपाल के मन्दिर कुमारविहार में महावीर की रथयात्रा के महोत्सव के समय खेला गया था जहा कि नाटककार या तो शासक था या वहा का केवल निवासी।

इस नाटक में राजा, विदूषक और आचार्य हेमचन्द्र को छोड़कर शेष सभी पात्र भावात्मक—पुण्यात्मक और पापात्मक वस्तुओं के रूपक हैं।

पक्ष-विपक्ष के पात्रों के नाम इस प्रकार हैं :

पक्ष—राजा–विवेकचन्द्र, दूत–ज्ञानदर्पण, ज्योतिषी–गुरूपदेश, मत्री–पुण्यकेतु, सिपाही–धर्मकुञ्जर, रानी–शान्ति और पुत्री–कृपासुन्दरी, मौसी–शान्तिसुन्दरी, रूप–सदागम, नदी–धर्मचिन्ता, उद्यान–धर्म, वृक्ष–दम, घट–ध्यान, सखी–सोमता, कवच–योगशास्त्र, गुटिका–वीतरागस्तुति।

---

1 गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, सख्या ९, बडौदा १९१८; विस्तारभय से यहां इसका सार देना सम्भव नही है।

विपक्ष—राजा–मोहराज, रानी–राज्यश्री, सहेली–रौद्रता, कुमारपाल की रानी–कीर्तिमंजरी और साला–प्रताप।

इस नाटक में अनेक गुण हैं। सर्वप्रथम यह सरल संस्कृत में लिखा गया है। इसमें इस प्रकार की कृत्रिमता नहीं है जो कि आडम्बरपूर्ण अन्य नाटकों को दूषित कर देती है। इस ग्रन्थ से हमे कुमारपालकालीन जैनधर्म की विविध गतिविधियों के विशद चित्रण मिल जाते हैं जिनका समर्थन गुजरात के शिलालेखों एव अन्य उपादानों से होता है। जिनमण्डनगणि ने अपने 'कुमारपाल-प्रबंध' (सं० १४९२) में इस रूपक का वस्तुसंक्षेप दिया है और बताया है कि कृपासुन्दरी से कुमारपाल का विवाह स० १२१६ मे हुआ[1] था अर्थात् उस दिन कुमारपाल ने प्रकट रूप मे जैनधर्म स्वीकारा था। इस नाटक में जुए के अनेक प्रकार तथा प्राणिवध पर जोर देने वाले अनेक मतों का उल्लेख मिलता है। इसकी प्राकृतें हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण के नियमों से प्रभावित हैं। इसमे मागधी तथा जैन महाराष्ट्री का प्रयोग हुआ है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस नाटक के रचयिता ने अपना परिचय सूत्रधार के मुख से दिलाया है। तदनुसार उसका नाम यशःपाल कवि है। वह मोढवंश (मोढवणिक्) के मत्री धनदेव और माता रुक्मिणी का पुत्र था। वह चक्रवर्ती अजयदेव के चरणसरोज का हंस था। चक्रवर्ती अजयदेव चौलुक्य अजयपाल ही है जो कुमारपाल का उत्तराधिकारी था। इस अजयदेव ने सन् १२२९-१२३२ तक राज्य किया था।

नाटक के अन्त में 'मन्त्रियश.पालविरचितं मोहराजपराजयो नाम नाटकं' लिखा है।[2] सभव है कि यशःपाल उक्त राजा का मत्री या शासक रहा हो। इस नाटक की रचना का काल उक्त नृप का राज्यकाल माना जा सकता है।

---

१. कृपासुन्दर्याः स० १२१६ मार्गसुदि द्वितीया दिने पाणि जग्राह श्रीकुमारपालमहीपालः श्रीमर्हद्देवतासमक्षम्।

२. श्रीमोढवंशावतंसेन श्रीअजयदेवचक्रवर्तिचरणराजीवराजहंसेन मंत्रिधनदेवतनुजन्मना रुक्मिणीकुक्षिलालितेन परमार्हतेन यश.पालकविना विनिर्मित मोहराजपराजयो नाम नाटकम्।

मुद्रितकुमुदचन्द्र :

इस नाटक में पाँच अंक हैं ।[1] कथावस्तु बहुत छोटी है जो कि पाचवें अंक की समाप्ति के कुछ पहले सूचित की गई है । तदनुसार इसमे तार्किक देवसूरि द्वारा किन्हीं दिग० मुनि कुमुदचन्द्र की सिद्धराज जयसिंह के दरबार में स्त्री-मुक्ति-सिद्धि विषय पर पराजय दिखाना है ।

स्त्री-मुक्ति की बात तो ११-१२वीं शता० के जैन न्यायग्रन्थो मे खण्डन-मडनरूप में दी गई है । दिग० प्रभाचन्द्राचार्य ने अपने दो ग्रन्थों—न्याय-कुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड——में स्त्रीमुक्ति का खण्डन किया है और उसका मण्डन वादिदेवसूरि ने स्याद्वादरत्नाकर नामक ग्रन्थ में किया है । स्याद्वादरत्नाकर और प्रभाचन्द्र के ग्रन्थों की विषयवस्तु में तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि प्रकरणों के क्रम और पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष के स्थापन की पद्धति में स्याद्वादरत्नाकर न्यायकुमुदचन्द्र के बहुत समीप है और कहीं-कहीं तो दोनों ग्रन्थों में इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि दोनों ग्रन्थों की पाठशुद्धि में एक-दूसरे का मूल प्रति की तरह उपयोग किया जा सकता है ।[2]

प्रस्तुत नाटक में स्त्रीमुक्ति के पक्ष-विपक्ष मे कुछ भी न कह केवल दर्शकों के आगे १०-१५ मिनट का शाब्दिक अभिनय मात्र कराया गया है । इसके पूर्व के अंक उक्त विवाद-अभिनय की भूमिका मात्र हैं जिनमें दिखाया गया है कि दो सम्प्रदायों के लोग एक-दूसरे को लाञ्छित करने में कैसा रस लेते थे और राजवर्ग किस तरह एक-दूसरे के पक्ष-समर्थन में आनन्द लेता था । इस कार्य में लाच घूस की भी आशंका की गई है तथा दैवी प्रयोग भी किये गये हैं, यथा अन्त में वज्रार्गला योगिनी का आविष्कार ।

---

१. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सख्या ८, काशी, वी० स० २४३२.

२. स्मरण रहे कि न्यायकुमुदचन्द्र के इतने महत्त्वपूर्ण होने पर भी उसकी प्राचीन प्रतियां कम मिली है । अनुमान है कि उक्त विषय को रोचक एवं आलंकारिक शैली मे प्रतिपादन करने वाले नूतन ग्रन्थ स्याद्वादरत्नाकर के प्रभाव के कारण उसका वाचन पाठन-प्रसार रुद्ध हो गया हो । इस रुके प्रचार-प्रसार को साम्प्रदायिक द्वेषवश व्यक्तिविशेष की पराजय के रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से मुद्रितकुमुदचन्द्र नामकरण समझा जा सकता है ।

इस नाटक में जयसिंह को निर्णायक की भूमिका अदा करते दिखाया गया है।

इस नाटक की घटना को कुछ विद्वानों ने प्रभावकचरित और प्रबन्धचिन्तामणि में दिये वर्णनों के अनुसार ऐतिहासिक माना है पर इसकी ऐतिहासिकता में सबसे बड़ी बाधक बात यह है कि इसमें वादीरूप से चित्रित दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र की पहचान अब तक नहीं हो सकी है। वादिदेवसूरि के समय वि० सं० ११४३-१२२६ के बीच दिगम्बर सम्प्रदाय में इस नाम के तथाकथित चतुराशीति-विवादविजयी, वादीन्द्र कुमुदचन्द्र का नाम नहीं मिलता है।

नाटक की कथावस्तु—घटना भले ही वास्तविक न हो पर यह नाटक तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजकीय स्थिति की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने मे सफल है। इसमे उस समय की धार्मिक स्पर्धा, धर्माचार्यों की पारस्परिक असहिष्णुता, राजा का स्वदेशज के प्रति पक्षपात और उसकी विजय देखने की उत्कण्ठा आदि मानव-स्वभाव पर आश्रित बातें हैं।

इस नाटक का अभिनय किस प्रसंग मे हुआ है, यह सूचित नहीं किया गया है पर यह कुतूहलवर्धक अच्छी साहित्यिक कृति है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस नाटक के लेखक धर्कटकुल के सेठ धनदेव के पौत्र तथा पद्मचन्द्र के पुत्र कवि यशश्चन्द्र हैं। उन्होंने सपादलक्ष देश मे किसी शाकम्भरी (वर्तमान साभर) राजा मे अभ्युन्नति प्राप्त की थी। उनके पितामह शाकभरी-नरेश के राजसेठ थे।

यशश्चन्द्र ने अनेक प्रबंधों की रचना की थी, ऐसा निम्न पद्य से ज्ञात होता है :

> कर्ताऽनेकप्रबंधानामत्र प्रकरणे कविः।
> आनन्दकाव्यमुद्रासु यशश्चन्द्र इति श्रुतः॥

इनका 'राजीमतीप्रबोध' नामक एक अन्य नाटक मिलता है।[1] शेष रचनाओं का पता नहीं है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३१.

धर्माभ्युदय :

यह एकाकी नाटक है।[1] इसमें राजर्षि दशार्णभद्र के जीवन का घटना-प्रसग वर्णित है। इसका अभिनय, जैसा कि प्रस्तावना मे सूचित किया गया है, पार्श्वनाथ के मन्दिर मे किया गया था। इसके रचयिता एक जैन साधु मेघप्रभाचार्य हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। बहुतकर ये गुजरात के थे क्योंकि इसकी प्रतिया गुजरात में ही मिली हैं। इसका रचनाकाल यद्यपि मालूम नहीं है पर पाटन के सघभण्डार में इसकी एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति है जिसका लेखन-समय वि० स० १२७३ है इसलिए यह उसके पहले की रचना अवश्य है।

इसे 'छायानाट्यप्रबध' कहा गया है और इसका रगमच पर अभिनय किये जाने के स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं, जैसे कि जब राजा साधु हो जाने का विचार व्यक्त करे तो यवनिका के भीतर की ओर साधु के वेश मे एक पुतला बैठा दिया जाय (यवनिकान्तरात् यतिवेशधारी पुत्रकस्तत्र स्थापनीय , पृ० १५)।

सस्कृत रूपकों और उपरूपकों की सूची में छायानाटक का कोई उल्लेख नहीं है, इससे उसका स्वरूप क्या होना चाहिए, हम नहीं जानते। अग्रेजी मे छायानाटक को 'शेडो प्ले' कहा जाता है। यहा उक्त प्रकार के नाटकों से कवि का क्या अभिप्राय है, ज्ञात नहीं होता। गुजराती में इस प्रकार का एक नाटक सुभटकृत दूताङ्गद और एक अज्ञात कवि कृत 'शमामृत' है।

शमामृत :

नेमिनाथ के जीवन पर आधारित एक दूसरा एकाकी छायानाटक है।[2]

इसकी प्रस्तावना मे कहा गया है—भगवत. श्रीनेमिनाथस्य यात्रामहोत्सवे विद्वद्भिः सभासद्भिरादिष्टोऽस्मि। यथा-श्रीनेमिनाथस्य शमामृत नाम छाया-नाटकमभिनयस्वेति (पृ० १)।

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, सख्या ६१, भावनगर, वि० स० १९७५; इसका जर्मन अनुवाद जेड० डी० एम० जी०, भाग ७१, पृ० ६९ प्रभृति और Indische Shatten-theater में पृ० ४८ प्रभृति में हुआ है; जिनरत्नकोश, पृ० १९५; कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० ५५ और २६९.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३७८; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७९ में प्रकाशित.

इसके रचयिता का नाम रत्नसिंह दिया है। यद्यपि कर्ता ने अपना समय और अन्य परिचय नहीं दिया है पर संभव है कि ये नेमिनाथचरित पर आधारित ४८ पद्यों के समस्यापूर्तिकाव्य 'प्राणप्रिय' के कर्ता हों।

छायानाटकों की इन कुछ रचनाओं को देखकर हम इतना कह सकते हैं कि संस्कृत के छायानाटक संक्षिप्त और सरल प्रकार की रचनाएं होती थीं। दोनों रचनाओं में गद्य-पद्य का प्रयोग है पर धर्माभ्युदय में पद्य से कहीं अधिक गद्य है। इनमें कुछ पात्रों से प्राकृत में भी संवाद कराये गये हैं। साहित्य में छायानाटक कही जाने वाली शैली और सम्भवतः पीछे की है क्योंकि नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। फिर भी इन नाटकों में पुत्तलिका का प्रयोग इस बात का संकेत कर रहा है कि संस्कृत नाटक के विकास में कठपुतली के छायानाटकों का भी हाथ है।[1]

हम्मीरमदमर्दन :

इस नाटक[2] का संस्कृत साहित्य में अपना एक स्थान है। पौराणिक घटनाओं पर लिखे संस्कृत नाटक तो बहुत मिले हैं पर उनमें ऐतिहासिक नाटक तो गिने-चुने हैं और उनमें भी समकालिक घटनाओं का चित्रण करने वाले तो नहीं ही हैं। पर सौभाग्य से हम्मीरमदमर्दन की रचना समकालिक ऐतिहासिक घटना पर हुई है।

इसमें गुजरात के बघेलवंशी नरेश वीरधवल और उसके मंत्री वस्तुपाल द्वारा मुसलमानों के आक्रमण के रोकथाम का चित्रण है।

इसके नाम का हम्मीर अरबी शब्द अमीर का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ उस भाषा में 'एक सरदार' होता है। यहाँ यह दिल्ली के सुल्तान के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस सुल्तान को नाटक में कहीं-कहीं मिलच्छीकार भी कहा गया है।

---

१ महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० १६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९; गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, संख्या १०, बड़ौदा, १९२०.

इस नाटक के हम्मीर और नयचन्द्रसूरिरचित पश्चात्कालीन हम्मीर-महाकाव्य के हम्मीर में भ्रान्ति न होना चाहिए क्योंकि वह महाकाव्य मेवाड़ के चौहान राजा हम्मीर के इतिहास से सम्बधित है और इस नाटक से २०० वर्ष बाद की कृति है।

इस नाटक में ५ अक हैं। इसका अभिनय वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के अनुरोध पर खम्भात में भीमेश्वर के यात्रोत्सव[1] में हुआ था।

इस नाटक का घटनास्थल खम्भात के आस-पास का है। तुरुष्क हम्मीर तथा यादवनृप सिंहण और लाट-देश के कुछ सरदार खम्भात पर आक्रमण करना चाहते हैं। वीरधवल का मत्री वस्तुपाल मारवाड़ के राजा, सुराष्ट्र के सरदार तथा महीतट और लाट के कुछ सरदारों के साथ सामना करता है। चरों द्वारा शत्रुदल में फूट डाली जाती है। युद्धस्थल का वर्णन रगमच पर दूतों के सवाद द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। दूतप्रयोग द्वारा स्थानीय शत्रुओं को मिलाकर वस्तुपाल दूतों द्वारा ही तुरुष्क सेना में हगामा, भगदड़ मचवाता है। अन्त में अपनी रणनीति के कारण वह शत्रु को भगा देता है। नृप वीर-धवल को इससे इसलिए निराशा होती है कि वह अपने शत्रुओं को कैद न कर सका पर वह अपने मत्री की रणनीति का उल्लघन करने में लाचार था। नाटक के अन्त में मिलच्छीकार को बाध्य होकर वीरधवल से सधि करते हुए दिखाया गया है।

इसमे दिये हुए पात्रों के नाम तत्कालीन इतिहास से पहचाने गये हैं।

यह नाटक उत्तरमध्ययुगीन सस्कृत रचना होने से अत्यन्त अलकारबहुल है और कृत्रिम शैली में लिखा गया है। फिर भी सवाद जोरदार हैं, कविताए मनोहारिणी एव उपमाओं से भरी हैं। वस्तुपाल, तेजपाल और वीरधवल का चरित्रचित्रण बहुत अच्छा किया गया है तथा वह जीवन्त है। पाचवें अङ्क में वीरधवल के नरविमान में चढकर अनेक स्थानों को देखते हुए लौटने के वर्णन द्वारा कवि ने काल्पनिक युग में विचरण करने का प्रयास किया है। समस्त नाटक में केवल एक स्त्रीपात्र है और वह है रानी जयतलदेवी (वीरधवल की

---

१. 'श्रीभीमेश्वरस्य यात्रायां श्रीमता जयन्तसिंहेन समादिष्टोऽस्मि कमपि प्रबंधमभिनेतु'' आदि।—पृ० १.

रानी)। कवि का दावा है कि प्रस्तुत नाटक मे नवरसों का समावेश किया गया है। संभव है कि स्त्रीपात्र के बिना शृंगारिक भाव की कमी थी इसलिए उसकी पूर्ति के लिए उसे उपस्थित किया गया है। यदि हम उसे नाटक की नायिका समझें तो वीरधवल को नाटक का मुख्य नायक मानना होगा और नाटककार ने सभवतः ऐसा मानकर ही अन्त मे उसी से भरतवाक्य कहलाया भी है। दूसरे रूप में नाटक का मुख्य पात्र वस्तुपाल लगता है क्योंकि उसके महान् व्यक्तित्व से सब घटनाए आच्छादित हैं। मुद्राराक्षस मे चाणक्य की भाति वस्तुपाल को भी इस नाटक मे चित्रित करने जैसा प्रयत्न दिखायी पड़ता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस नाटक के लेखक जयसिंहसूरि है जो वीरसिंहसूरि के शिष्य तथा भड़ौच मे मुनिसुव्रतनाथ चैत्य के अधिष्ठाता थे। इस नाटक के कर्ता और द्वितीय जयसिंहसूरि मे भ्रान्ति न होना चाहिए क्योंकि द्वितीय जयसिंहसूरि कृष्णर्षिगच्छ के आचार्य तथा महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने स० १३०८ मे कुमारपालचरित की रचना की थी।

नाटककार इस कृति मे वस्तुपाल तेजपाल के दान से प्रभावित दिखायी पड़ते हैं। उन्होंने वस्तुपाल के पुत्र के अनुरोध पर इस नाटक की रचना की थी।

इसकी रचना वि० स० १२७९ अर्थात् जयन्तसिंह के राज्यपालत्व को प्रारंभ-तिथि और जैसलमेर के भण्डार मे प्राप्त ताड़पत्रीय प्रति की लेखनतिथि वि० स० १२८६ के बीच की अवधि मे किसी समय हुई होगी।[1]

जयसिंहसूरि की दूसरी कृति ७७ पद्यो में रचित वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति है।

करुणावज्रायुध :

यह एक एकाकी नाटक है।[2] इसकी कथावस्तु में वज्रायुध चक्रवर्ती द्वारा बाज पक्षी को अपना मास देकर कबूतर की रक्षा करना दिखाया गया है।

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल और सस्कृत साहित्य में उसकी देन, पृ० १०९.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६८; जैन आत्मानन्द सभा, संख्या ५६, भावनगर, वि० सं० १९७३; इसका गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से वि० सं० १९४२ में प्रकाशित.

इसकी रचना वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल के अनुरोध से शत्रुंजय तीर्थ पर ऋषभदेव के उत्सव में खेलने के लिए की गई थी।

इस नाटक की कथा का नायक वज्रायुध चक्रवर्ती पूर्वभव में तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीव था। उस भव में उसकी दयालुता एव धर्मिष्ठता की परीक्षा दो देवों ने कबूतर और बाज का रूप धारण कर की थी। जैनेतर साहित्य मे भी यह कथा रूपान्तर में मिलती है, जैसे महाभारत के वनपर्व में शिवि और कपोत की कथा और बौद्ध जातक सख्या ४९९ की कथा। यह कथा जैन कथाग्रन्थों में सर्वप्रथम सघदासगणि (लगभग ५०० ई०) की वसुदेवहिण्डी के २१वें लम्भक और पीछे अनेक जैन पुराणों मे मिलती है।

यह नाटक मोहराजपराजय, प्रबुद्धरौहिणेय और धर्माभ्युदय की भाति ही जैनधर्म के प्रचार के लिए जनप्रिय कथानक को लेकर रचा गया था। इसका अधिकाश राजा और उसके मत्री एव राजा और बाज पक्षी के बीच हुए धार्मिक वाद-विवाद के रूप में है। कभी कभी विदूषक की हास्योक्तियों से वातावरण में सजीवता आ जाती है परन्तु सब मिलाकर इसमें अभिनय कम है। सवाद की अपेक्षा कविताएँ अधिक हैं। इस छोटे से नाटक में १३७ पद्य पाये जाते हैं। कुछ पद्य ध्यान देने योग्य हैं। विदूषक परलोक के अस्तित्व में सदेह करता है तो राजा उदाहरण द्वारा समाधान करता है :

करस्थमप्येवममी कृषीवलाः क्षिपन्ति बीजं पृथुपंकसंकटे।
वयस्य केनापि कथं विलोकितः समस्ति नास्तीत्यथवा फलोदयः ॥५०॥

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता महाकवि बालचन्द्रसूरि हैं। इनका विस्तृत परिचय हम इनकी अन्यतम कृति वसन्तविलास' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रसग में दे आये हैं।

दक्षिण भारत के कुछ जैन कवियों ने भी सस्कृत में दृश्यकाव्य लिखे हैं। उनमें से अधिक तो नहीं, केवल ४ ५ ही कृतियाँ प्रकाश में आई हैं जिनमें चार के कर्ता कवि हस्तिमल्ल हैं और एक के हैं इनके ही वंशज ब्रह्मदेवसूरि।

नाटककार हस्तिमल्ल और उनका समय—दाक्षिणात्य जैन कवियों में सस्कृत नाटककार के रूप में कवि हस्तिमल्ल का एक विशेष स्थान है। हस्तिमल्ल वत्सगोत्री दक्षिणी ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम गोविन्दभट्ट था। वे अपने

१. इस भाग के पृ० ४०८ में

पिता के पाचवें पुत्र थे। उनके शेष भाई श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण और वर्धमान भी कवि ही थे पर उनसे हम प्रायः अपरिचित हैं।

हस्तिमल्ल के विरुद थे सरस्वतीस्वयवरवल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्तिरत्नाकर। राजावलीकथा के कर्ता ने कवि को उभयभाषाकविचक्रवर्ती लिखा है।

हस्तिमल्ल स्वयं गृहस्थ थे। उनके वशज ब्रह्मसूरि ने अपने प्रतिष्ठासारोद्धार में कवि के पुत्र-पौत्रादि का वर्णन किया है और उनका निवासस्थान गुडिपत्तन (तजौर का दीपगुडि) बतलाया है।

हस्तिमल्ल का असली नाम क्या था, इसका पता नहीं है। यह विरुद उन्हें पाण्ड्य राजा की ओर से मिला था। पाण्ड्य राजा का उल्लेख कवि ने कई स्थानो पर किया है पर वे पाण्ड्य राजा कौन थे और उनकी राजधानी कहाँ थी, कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

हस्तिमल्ल का समय कर्नाटककविचरित्र के कर्ता आर० नरसिंहाचार्य ने सन् १२९० ई० अर्थात् वि० स० १३४८ निश्चित किया है। स्व० पं० जुगलकिशोर मुख्तार ब्रह्मसूरि को विक्रम की १५वीं शताब्दी का विद्वान् मानते हैं, और हस्तिमल्ल उनके पितामह के पितामह थे, इससे १०० वर्ष पूर्व हस्तिमल्ल का समय चौदहवीं शताब्दी अनुमान किया जा सकता है।

हस्तिमल्ल के अजंनापवनंजय, सुभद्रानाटिका, विक्रान्तकौरव और मैथिलीकल्याण (त्रोटक) ये चार दृश्यकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इनके द्वारा रचित उदयनराज, भरतराज, अर्जुनराज और मेघेश्वर इन चार नाटकों का उल्लेख और मिलता है। अन्य रचना 'प्रतिष्ठातिलक' का भी उल्लेख मिलता है और सम्भवतः यह प्रति आरा के सिद्धान्तभवन में है। इनके कन्नड भाषा मे लिखे आदिपुराण (पुरुचरित) और श्रीपुराण नाम के दो ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं।[1]

यहा उक्त कवि द्वारा रचित ४ दृश्यकाव्यों का परिचय दिया जाता है।

---

१. विशेष परिचय के लिए 'अञ्जनापवनंजय' (माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई) की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ५-१४ तथा हिन्दी प्रस्तावना, पृ० ६३-६८ देखें।

अंजनापवनञ्जय :

इस नाटक[1] में ७ अंक हैं। इसमें विद्याधर राजकुमारी अंजना का स्वयंवर, राजकुमार पवनञ्जय के साथ विवाह और उनके पुत्र हनुमान के जन्म का घटना प्रसंग वर्णित है।

अंजना-पवनंजय का अनेक उतार चढ़ाव से भरा चरित जैन साहित्य-जगत् में सुज्ञात है। विमलसूरि के पउमचरिय के १५-१८ उद्देशक और रविषेण का पद्मपुराण तथा स्वयम्भू के पउमचरिउ की सन्धि १८-१९ इस चरित के आधार हैं पर नाटककार ने इसमें आवश्यक परिवर्तन किये हैं। स्वयंवर की योजना कवि की अपनी कल्पना है। पूर्व चरितों मे विवाह के पूर्व ही पवनंजय अंजना से विरक्त था पर यह वृत्त यहाँ एकदम परिवर्तित है। रंगमंच में न दिखाने लायक अन्य घटनाएं, जैसे शिशु हनुमान का विमान से गिरना और शिला चूर हो जाना आदि इसमें नहीं बतलाई गई।

नाटक में कथोपकथन-शैली अच्छी है पर कहीं-कहीं नायक और विदूषक के कथन लम्बे और समासबहुल हो गये हैं। यह नाटक के रूप में एक महाकाव्य जैसा है। इसका रंगमंच पर अभिनय करना कठिन है।

छन्दों की योजना में, दृश्यावली उपस्थित करने में और मुहावरेदार[2] वाक्यों की रचना में कवि पूर्ण दक्ष है।

कुछ मुहावरे ध्यातव्य हैं।

१. **दुरवगाहा हि भागधेयानां परिपाकाः। (पृ० ९)**
२ **न खलु दुष्करं नाम दैवस्य। (पृ० ८७)**
३. **अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसान्निध्यम्। (पृ० ११५)**
४ **स्वच्छचारिणः खलु प्रभवो भवन्ति। (पृ० ८६)**

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ४३, प्रो० माधव वासुदेव पटवर्धन द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९५०, इसमें सुभद्रा-नाटिका भी सम्मिलित है।

२ अंजनापवनंजय की अंग्रेजी प्रस्तावना मे प्रो० पटवर्धन ने पृ० ४४-४५ में उन सभी मुहावरों का संकलन किया है।

सुभद्रानाटिका :

यह ४ अंकों की नाटिका है।[1] इसमें ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के साथ कच्छराज की पुत्री और विद्याधर नमि की बहन सुभद्रा के परिणय की घटना वर्णित है।

उक्त नाटिका की कथावस्तु जैन-जगत् में सुप्रसिद्ध है। सुभद्रा भरत के विवाह की चर्चा जिनसेन ने आदिपुराण के ३२वें सर्ग के केवल ५ पद्यों मे की है पर कवि हस्तिमल्ल का यह एक नाटकीय विस्तार है और इसे उन्होंने श्रीहर्ष की रत्नावली के अनुसरण पर एक नाटिका का सुन्दर रूप देने का सफल प्रयास किया है। इसमें साहित्यशास्त्रोक्त नाटिका के गुणों का पालन अच्छी तरह हुआ है पर सवादो में कहीं-कहीं विस्तार और समासबहुल पदों का प्रयोग औचित्य की मर्यादा अतिक्रान्त कर देता है। मुहावरे, सुभाषितों से युक्त संवाद इसकी अपनी विशेषता है। कुछ का नमूना इस प्रकार है :

१. वामे विधौ भोः खलु को न वामः। (पृ० ५४)

२. गतं गतं, गन्तव्यमिदानो चिन्त्यताम्। (पृ० ७०)

३. यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां समीहितसिद्धिः। (पृ० ८३)

४. कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम्। (पृ० ८६)

विक्रान्तकौरव :

यह ६ अंकों का नाटक है।[2] इसमे हस्तिनापुरनरेश सोमप्रभ के पुत्र कौरवेश्वर (जयकुमार) और काशी के राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना के विवाह का चित्रण किया गया है। इसे सुलोचनानाटक भी कहते हैं।

---

१. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ४३ में प्रो० मा० वा०पटवर्धन द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९५०, यह अंजनापवनञ्जय के साथ प्रकाशित है। इसकी अंग्रेजी प्रस्तावना में नाटिका के अंकों का सार तथा मुहावरों का संकलन (पृ० ५६-५७) दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ३, बम्बई, १९७२.

इसका कथानक जैन-जगत् में सुप्रसिद्ध है। कथावस्तु का आधार जिनसेन-कृत आदिपुराण है जिसमें ४३ से ४५ पर्वों में जयकुमार-सुलोचना का वर्णन है। हस्तिमल्ल ने आदिपुराण के कथानक का पूरी तरह अनुकरण किया है। केवल नामों में कुछ परिवर्तन है। आदिपुराण में कचुकी राजाओं का वर्णन करता है पर यहा प्रतीहार का नाम दिया है। आदिपुराण मे अकंपन की दूसरी पुत्री का नाम लक्ष्मीमती या अक्षमाला है जबकि यहा रत्नमाला। शेष कथानक प्रायः मिलता-जुलता है। इसे नाटकीय रूप में परिवर्तित करने मे हस्तिमल्ल ने अपूर्व कौशल दिखाया है। इसमें पद्यों की बहुलता के कारण घटनाप्रवाह में बाधा उपस्थित हुई है पर वैसे सभी सवाद अच्छे हैं। वे सुभाषितों और मुहावरों से भरे हुए हैं। प्राकृत मे निर्मित संवाद कहीं-कहीं लम्बे प्रतीत होते हैं। इसमें अनेक नूतन शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है, यथा—निष्कुट (गृहाराम), गोसर्ग (प्रभात), पारी, वीटी (पान का बीड़ा), सहसान (मयूर), आन्दोलिका (डोली या शिविका), निष्टाप (भयानक गर्मी), सपेट (क्रुद्ध), अभिसार (आक्रमण) आदि।

मैथिलीकल्याण :

इस नाटक[१] में पाच अंक हैं तथा सीता और राम के स्वयवर का वर्णन है।

प्रथम चार अकों मे राम-सीता के प्रथम मिलन, आकर्षण, विरह, काम-वेदना आदि का वर्णन है। पाचवें में सीता के स्वयवर की तैयारी होती है। स्वयवर में राम वर्जावर्त नामक दिव्यधनुष को तोड़ते हैं और सीता वरमाला डालती है। दोनों का विवाह उत्सवपूर्वक होता है।

सीता के स्वयवर का वर्णन विमलसूरि के पउमचरिय के उद्देश २८ में और रविषेण के पद्मपुराण, पर्व २८ में तथा स्वयम्भू के पउमचरिउ (सन्धि २१) में दिया गया है। उक्त जैन पुराणों के अनुसार राजा जनक अपने राज्य की रक्षा के उपलक्ष्य मे सीता का विवाह राम से करना चाहता है। नारद सीता के घर में आकर उससे निरादर पा उससे बदला लेने की भावना से इस विवाह में बाधक बनता है। वह जनक का अपहरण कराता है और विद्याधरों द्वारा प्रदत्त धनुष

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ५, बम्बई, १९७३, इसका सार तथा समीक्षा 'अंजनापवनजय' की भूमिका में प्रो० पटवर्धन ने देकर इसमें आये सभी मुहावरों का संकलन किया है।

तोड़ने मे सफल वर के साथ विवाह करने का वचन पालता है। पर कविवर हस्तिमल्ल ने नाटकीय अभिनय के योग्य उक्त घटनाओं को न चुन कर उसे प्रारभ से ही राम-सीता के प्रेम-व्यापार पर आश्रित किया है। वे नायक-नायिका के समागम को कई बार दिखला कर उद्दीपन भावों का चित्रण करते हैं।

हस्तिमल्ल की यह रूपकात्मक अन्तिम कृति है। यह अन्य कृतियो की अपेक्षा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसे त्रोटक कहना चाहिए जो कि साहित्यदर्पण के अनुसार उपरूपकों का एक भेद है। त्रोटक का लक्षण इस प्रकार है :

सप्ताष्टनवपञ्चांकं दिव्यमानुषसंश्रयम्।
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यंकं सविदूषकम्॥ ५.२७३

इसमें यह लक्षण पूर्ण घटित होता है।

इसकी सवाद-शैली सुन्दर तथा मुहावरों एवं सुभाषितों से भरपूर है।

ज्योतिष्प्रभानाटक :

इस नाटक[1] की कथावस्तु १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ के नवम पूर्वभव के जीव अमिततेज विद्याधर और त्रिपृष्ठ नारायण की पुत्री ज्योतिष्प्रभा का रोमाटिक चरित्र है। अमिततेज का पावन चरित्र तो गुणभद्र के उत्तरपुराण के ६२वें पर्व मे वर्णित है पर वहाँ ज्योतिष्प्रभा के चरित्र का कोई विशेष वर्णन नहीं है। सम्भव है कि इस नाटक का आधार कोई शान्तिनाथचरित होगा जिसमे ज्योतिष्प्रभा के रोमाटिक जीवन का विवेचन हो।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता ब्रह्मसूरि[2] हैं जो नाट्याचार्य हस्तिमल्ल के वंशज हैं और उनसे लगभग १०० वर्ष बाद विक्रम की १५वीं शताब्दी मे हुए हैं। इनके त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठातिलक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४१३; यह नाटक बेंगलोर के संस्कृत मासिक पत्र 'काव्याम्बुधि' (सन् १८९३-९४) में प्रकाशित हुआ है, जिनरत्नकोश, पृ० १५१.

२. प्रदोपे जायते प्रातः किं का मंगलवाचकम्।
किं रूपयन्तु तच्चेह ब्रह्मसूरिकृतिश्च का॥

इस नाटक की रचना भग० शान्तिनाथ के जन्मकल्याण के पूजा-महोत्सव के दिन खेलने के लिए की गई थी।

रम्भामंजरी :

यह एक सट्टक[1] है जो कि असम्पूर्ण है। इसकी केवल तीन ही यवनिकाए उपलब्ध हैं। इसे भूल से हस्तलिखित और छपी प्रति में नाटिका कहा गया है—'समाप्ता रम्भामजरी नाटिका'। लेखक ने तो नट और सूत्रधार के माध्यम से इसे सट्टक ही कहा है।

इसका कथानक छोटा है। तदनुसार बनारस का राजा पगु उपनामधारी जैत्रचन्द्र या जयचन्द्र सात रानियों के होने पर भी अपने को चक्रवर्ती सिद्ध करने के लिए लाटनरेश देवराज की पुत्री रम्भा से विवाह करता है।

यह सट्टक विश्वनाथ की यात्रा में एकत्रित लोगों के मनोरजनार्थ राजा की इच्छा से अभिनयार्थ लिखा गया था। इसमे जैत्रसिंह के पिता का नाम मल्लदेव और मा का नाम चन्द्रलेखा लिखा है।

लेखक नयचन्द्र ने इस कथानक को अन्यत्र से लेने का एकाधिक बार सकेत किया है। इसके पूर्व जैत्रचन्द्र का कुछ वर्णन प्रबन्धचिन्तामणि, पुरातनप्रबन्ध-सग्रह एवं प्रबन्धकोश मे मिलता है। उनमें उसे वाराणसी का राजा तो लिखा है पर उसके पिता के नाम के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। उसकी सात रानियों तथा ८वीं रम्भा के विषय में प्रबन्धों में कोई उल्लेख नहीं है। राजा का उपनाम 'पगु' या 'पगुल' था, यह प्रबन्धों में भी पाया जाता है और उसकी जो व्याख्या रम्भामजरी में दी गई है लगभग वैसी ही प्रबन्धों में भी दी गई है। इससे

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ३२९; रामचन्द्र शास्त्री और बी० केवलदास ने निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई से सन् १८८९ में इसे प्रकाशित किया है। इस सट्टक की यवनिकाओं की विषयवस्तु के लिए देखें—डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६३३; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४२६-३१, डा० आ० ने० उपाध्ये, 'नयचन्द्र और उनका ग्रन्थ रम्भामञ्जरी', प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४११.

स्पष्ट हो जाता है कि नयचन्द्र का नायक गहढ़वाल जैत्रचन्द्र (जयचन्द्र) ऐतिहासिक था। उन्होंने कर्पूरमजरी के ढङ्ग का सट्टक बनाने के लिए कथानक में कुछ और जोड़ा है।

यद्यपि लेखक ने प्रस्तुत कृति को एक तरह से कर्पूरमजरी से श्रेष्ठ बताया है पर वास्तव में यह कर्पूरमजरी का अनुकरण है। वसन्तवर्णन, विदूषक और दासी के बीच कलह, विरही राजा का द्वारपाल द्वारा प्रकृति-वर्णन की ओर चित्त ले जाना आदि कर्पूरमञ्जरी के वर्णनों की याद दिलाते हैं। कुछ भाव तो थोड़े अन्तर के साथ दोनों मे समान हैं, यथा विदूषक का स्वप्नदर्शन तथा अशोक, बकुल और कुरबक द्वारा राजा की वासनाओं का उत्तेजित होना और प्रेमपत्र का आशय आदि।

यद्यपि कर्पूरमञ्जरी का कथानक छोटा है पर उसकी थोड़ी भी तुलना रम्भामञ्जरी से नहीं की जा सकती। इस सट्टक का उद्देश्य क्या है, यह अन्त तक नहीं ज्ञात होता और न फल की ही प्राप्ति हो पाती है। कथा का अन्त किस प्रकार हुआ, यह जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है। यह एक खण्डित सट्टक है। रम्भामञ्जरी के प्राकृत पद्य उतने प्रभावयुक्त नहीं जैसे कि कर्पूरमञ्जरी के। नयचन्द्र सस्कृत में भावाभिव्यक्ति करने में बड़े पण्डित थे और उनके कुछ पद्य सचमुच में उनकी कवित्वशक्ति के परिचायक हैं। दृश्यकाव्य के रूप में रम्भामञ्जरी का कोई अच्छा प्रभाव नहीं है। सभ्य दर्शकवृन्द के समक्ष रगस्थल पर एक राजा का एक के बाद दो रानियों से कामविह्लता दिखलाना कैसे अच्छा हो सकता है? इसके शृङ्गारपूर्ण भाव भी गम्भीर और उदात्त नहीं हैं। चित्रण में भी प्रभाव की अपेक्षा दिखावा अधिक है।

कवि ने नट, सूत्रधार, प्रतिहारी के द्वारा राजा की प्रशंसा में संस्कृत, प्राकृत एवं मराठी छन्दों का प्रयोग किया है। यह एक महत्त्वपूर्ण शैली है कि नयचन्द्र ने संस्कृत बोलने वाले कुछ पात्रों के मुख से प्राकृत पद्य भी कहलाये हैं और प्राकृत बोलने वालों से सस्कृत पद्य कहलाये हैं। सट्टक में संस्कृत का प्रयोग शास्त्रसम्मत न होकर कुछ व्यतिक्रमसूचक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके कर्ता नयचन्द्रसूरि हैं। इनका अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ 'हम्मीरमहाकाव्य' है। उक्त काव्य के प्रसंग में इनका विस्तृत

परिचय द्रष्टव्य है। रचना अपूर्ण होने से इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं हो सका।[1]

ज्ञानचन्द्रोदयनाटक :

इसकी[2] विषयवस्तु ज्ञात नहीं हो सकी पर यह श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय के उत्तर में लिखा हुआ नाटक लगता है। इसके रचयिता सम्राट् अकबरकालीन पद्मसुन्दर हैं। इनकी अन्यतम रचना 'रायमल्लाभ्युदयकाव्य' के प्रसग में हम इनका परिचय दे आये हैं। इनका साहित्यिक काल वि०सं० १६२६ से १६३९ है।

ज्ञानसूर्योदयनाटक :

यह एक सस्कृत नाटक है।[3] यह भी श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय के उत्तर में लिखी कृति है। प्रबोधचन्द्रोदय मे क्षपणक (दिग० जैन मुनि) पात्र को बहुत ही निन्दित एव घृणित रूप में चित्रित किया गया है। शायद उसी का बदला चुकाने के लिए इसकी रचना की गई है। दोनों रचनाओं में बहुत-कुछ साम्य है। पात्रों के नामों मे प्रायः साम्य है, इसके साथ एक ही आशय-वाले बीसों पद्य और गद्यवाक्य थोड़े से शब्दों के हेरफेर के साथ मिलते हैं।

ज्ञानसूर्योदय की अष्टशती प्रबोधचन्द्रोदय की उपनिषत् है। काम, क्रोध, लोभ, दभ, अहकार, मन, विवेक आदि एक से हैं। ज्ञानसूर्योदय की दया प्रबोध-चन्द्रोदय की श्रद्धा ही है। दोनों क्रमशः दया और श्रद्धा का गुमना बताते हैं। ज्ञानसूर्योदय में अष्टशती का पति 'प्रबोध' है और प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषत् का पति 'पुरुष' है।

ज्ञानसूर्योदय के कर्ता ने प्रबोधचन्द्रोदय के समान ही बौद्धों का उपहास किया है और क्षपणक के स्थान में सितपट को खड़ा कर श्वेताम्बर-वर्ग का भी। सभव है कि यह 'मुद्रितकुमुदचन्द्र' की प्रतिक्रिया में किया गया हो।

कर्ता एव समय—इसके रचयिता वादिचन्द्र हैं जो मूलसघ के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने उक्त नाटक को माघ

---

१ कुछ विद्वान् उक्त सट्टक को जैन कवि नयचन्द्र की रचना मानने को तैयार नहीं हैं।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १४७.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८५.

सुदी ८ वि० स० १६४८ को मधूक नगर (महुआ--गुजरात) में समाप्त किया था।[1] इनका परिचय पहले दे आये हैं।

अन्य नाटकों में आगमगच्छेश मलयचन्द्रसूरिकृत 'मन्मथमथननाट्य' अपरनाम 'स्थूलभद्रनाटक' उल्लेखनीय है। इसकी रचना आचार्य स्थूलभद्र और कोशा (वेश्या) के उपाख्यान पर की गई है। यह गायकवाड़ प्राच्य-विद्या सस्थान की पत्रिका (१९६६–६७) में प्रकाशित हुआ है।

मेघविजयगणिकृत 'युक्तिप्रबोधनाटक'[2] में वाणारसीय मत (दिग० तेरहपन्थ) का खण्डन किया गया है। इस पर स्वोपज्ञ टीका भी मिलती है।

जिनरत्नकोश में कवि अर्हद्दासरचित 'अंजनापवनंजय'[3] और केशवसेन भट्टारककृत 'ऋषभदेवनिर्वाणानन्द'[4] नाटक का उल्लेख मिलता है।

साहित्यिक टीकाएँ :

जैन विद्वानों ने केवल स्वतन्त्र रूप से काव्य-साहित्य की ही सृष्टि नहीं की अपितु आनेवाली पीढ़ी के लिए उस साहित्य को बोधगम्य बनाने के लिए लघु एवं विशालकाय टीकाएँ (विभिन्न नामों से) भी लिखीं। उन टीकाओं का यथासम्भव उल्लेख हम उन-उन काव्यों के प्रसग में कर आये हैं। फिर भी ग्रन्थ-भण्डारों की प्रकाशित बृहत् सूचियों से अनेक अज्ञात टीकाओं का पता लग रहा है जिन्हे जिज्ञासु लोग कष्ट कर वहा से जान ले।

जैन विद्वानों ने न केवल जैन साहित्य पर ही टीकाए लिखीं हैं बल्कि साम्प्रदायिकता का मोह छोड़ उन्होंने जैनेतर साहित्य के न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि ग्रन्थों पर सस्कृत भाषा मे बहुविध टीकाए लिखने के साथ ही जैनेतर काव्यो, नाटकों, दूतकाव्यों आदि पर विशिष्ट एव समादरणीय टीकाए भी लिखी हैं जिनमें से अनेकों से सस्कृत का अध्येतावर्ग सुपरिचित एवं लाभान्वित है।

---

१ वसुवेदरसाब्जाङ्के (८४६१) वर्षे माघे सिताष्टमीदिवसे।
श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसंरम्भः ॥ २ ॥

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२०.

३. वही, पृ० ४.

४. वही, पृ० ५७.

कादम्बरी पर एक मात्र प्रकाशित प्राचीन टीका[1] के लेखक भानुचन्द्रगणि-सिद्धिचन्द्रगणि का नाम किस संस्कृतज्ञ को ज्ञात नहीं है ? काव्यप्रकाश के मर्मज्ञ माणिक्यचन्द्रसूरि को उस पर लिखी संकेतटीका[2] के लिए कभी नहीं भूल सकते ।

१५-१६वीं शती में जैन विद्वानों में अनेक टीकाकार हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र रचनाओं की अपेक्षा टीकाएं लिखना ही अपने जीवन का व्रत बना लिया था। खरतरगच्छ के चारित्रवर्धनगणि (१५वीं शती) अनेक साहित्यिक कृतियों पर टीकाएं लिखने के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनकी जैन काव्यों में सूक्ति-मुक्तावली आदि अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, नैषध और शिशुपालवध काव्यों पर लिखी टीकाएं[3] भी मिलती हैं। खरतरगच्छ के ही गुणविनयोपाध्याय (१६वीं शती) ने भी अनेक जैन ग्रन्थों पर टीकाएं लिखने के साथ रघुवंश, नल-दमयन्तीचम्पू, खण्डप्रशस्ति आदि पर टीकाएं[4] लिखी हैं। इसी तरह शान्तिसूरि ने घटकर्परकाव्य, वृन्दावनकाव्य, शिवभद्र-काव्य एवं राक्षसकाव्य पर[5] टीकाएं लिखी हैं।

सर्वाधिक टीकाएं जैन कवियों ने महाकवि कालिदास के काव्यग्रन्थों— रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत पर लिखीं।

'रघुवंश'[6] पर निम्नलिखित टीकाएं निम्नोक्त आचार्यों की मिलती हैं :

१. शिष्यहितैषिणी—चारित्रवर्धन (वि० सं० १५०७)

२. टीका—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. विशेषार्थबोधिका—गुणविनय (वि० सं० १६४६)

---

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

२. आनन्दाश्रम सिरीज, पूना, १९२१.

३. जिनरत्नकोश.

४ वही.

५. वही, पृ० ११३, ३२९, ३६४, ३८३.

६ वही, पृ० ३२५, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २४.

४. सुबोधिनी—गुणरत्न (वि० सं० १६६७)

५. अर्थालापनिका—समयसुन्दर (वि० स० १६९२)

६. टीका—जिनसमुद्रसूरि (१६वीं शती)

७. सुबोधिनी—धर्ममेरु (१७वीं शती)

८. सुगमान्वया—सुमतिविजय (वि० स० १६९८)

९. टीका—श्रीविजयगणि

१०. टीका—पुण्यहर्ष (१८वीं शती)

दूसरे काव्य कुमारसम्भव[1] पर निम्नांकित टीकाएं जैन विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं :

१. कुमारतात्पर्य—चारित्रवर्धन (१६वीं शती)

२. टीका—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. अवचूरि—मित्ररत्न (वि० स० १५७४) (सात सर्ग पर्यन्त)

४. टीका—धर्मकीर्ति (दिगम्बर)

५. टीका—जिनसमुद्रसूरि (१६वीं शती)

६. टीका—लक्ष्मीवल्लभ (वि० सं० १७२१)

७. टीका—समयसुन्दर (१७वीं शती)

८. टीका—जिनवल्लभसूरि

९. टीका—कुमारसेन

१०. वृत्ति—कल्याणसागर

११. बालबोधिनी—जिनभद्रसूरि (१५वीं शती)

महाकवि कालिदास के खण्डकाव्य मेघदूत[2] पर भी बहुत-सी जैन टीकाएं मिलती हैं यथा :

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९३; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २२.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३–१४; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २४; समयसुन्दरोपाध्याय ने मेघदूत के प्रथम पद्य के तीन अर्थ किये हैं।

१. टीका—आसढ़ कवि

२. वृत्ति—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. बालवबोध—महीमेरु

४. अवचूरि—कनककीर्ति (१७वीं शती)

५. „ „—सुमतिविनय

६. „ „—विनयचन्द्र (वि० स० १६६४)

७. पंजिका—गुणरत्न (१७वीं शती)

८. टीका—चारित्रवर्धनगणि (१५वीं शती)

९. „ „—जिनहंससूरि

१०. „ „—महिमसिंह (वि० सं० १६९३)

११. „ „—सुमतिविजय (१८वीं शती)

१२. „ „—समयसुन्दरोपाध्याय (१७वीं शती)

१३. „ „—श्रीविजयगणि

१४. „ „—विजयसूरि (वि० सं० १७०९)

१५. „ „—मेघराजगणि

१६. मेघलता—अज्ञातकर्तृक

महाकवि कालिदास के काव्यों के पश्चात् महाकवि भारवि के प्रसिद्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीय'[१] पर भी दो जैन टीकाए मिलती हैं : वि० सं० १६०३ या १६१३ में रचित विनयसुन्दरकृत टीका और तपागच्छ के धर्मविजयगणिकृत दीपिका टीका।

प्राचीन गद्यकाव्यों में सुबन्धु की वासवदत्ता[२] पर सिद्धिचन्द्रगणिकृत वृत्ति मिलती है तथा सर्वचन्द्रकृत वृत्ति और नरसिंहसेनकृत टीका का उल्लेख मिलता है। इसी तरह महाकवि बाणकृत गद्यकाव्य कादम्बरी के पूर्व खण्ड पर भानुचन्द्रगणिकृत तथा उत्तर खण्ड पर सिद्धिचन्द्रगणिकृत टीका[३] प्रकाशित

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९१.

२. वही, पृ० ३४८; जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण १.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८५

है। इस पर सूरचन्द्र (१७वीं शती) कृत एक अन्य टीका का भी उल्लेख मिलता है।

अन्य महाकाव्यों में भट्टिकाव्य पर कुमुदानन्दकृत सुबोधिनी एवं शिशुपालवध[1] महाकाव्य पर चारित्रवर्धन (१५वीं शता०) एवं धर्मरुचि (१७वीं शती) कृत टीकाएं तथा ललितकीर्ति (१७वीं शती) कृत सन्देहध्वान्तदीपिका[2] टीका मिलती है। समयसुन्दरोपाध्याय ने भी इस काव्य के तृतीय सर्ग पर टीका[3] लिखी है। इसी तरह श्रीहर्ष के नैषधीयचरित काव्य पर ४ टीकाएं[4] मिलती हैं। इनमें सबसे प्राचीन वि० सं० ११७० में लिखी गई मुनिचन्द्रसूरिकृत टीका है। दूसरी टीका वि० सं० १५११ में चारित्रवर्धन (खरतरगच्छ) ने तथा तीसरी जिनराजसूरि (खरतरगच्छ, १७वीं शती) ने लिखी। तपागच्छीय रत्नचन्द्रगणि (१७वीं शती) कृत सुबोधिका नामक टीका भी उक्त काव्य पर मिलती है।

अन्य जैनेतर काव्यों में से 'नलोदय' पर आदित्यसूरिकृत टीका, राघवपाण्डवीय[5] पर पद्मनन्दि, पुष्पदन्त और चारित्रवर्धनकृत टीकाएं, खण्डप्रशस्ति[6] (हनुमत्कृता) पर धर्मशेखरसूरि (वि० सं० १५०१) कृत वृत्ति, गुणविनयकृत सुबोधिका (वि० सं० १६४१) एवं अज्ञातकर्तृक वृत्ति, घटकर्परकाव्य[7] पर शान्तिसूरि एवं पूर्णचन्द्रकृत टीकाएं, वृन्दावनकाव्य, शिवभद्रकाव्य और राक्षसकाव्य पर शान्तिसूरिकृत[8] टीकाएं, दुर्घटकाव्य[9] पर पुण्यशीलमुनिकृत टीका और जगदाभरणकाव्य पर ज्ञानप्रमोदकृत टीका मिलती है।

चम्पूकाव्यों में दमयन्तीचम्पू पर प्रबोधमाणिक्यकृत टिप्पणी तथा चण्डपालकृत टीका एवं नलचम्पू पर गुणविनयगणि कृत टीका मिलती है।

---

१. वही, पृ० ३३४, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २५
२ मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २५.
३ जिनरत्नकोश, पृ० २१९.
४. वही, पृ० ३२१.
५. वही, पृ० ३०१.
६-७. वही, पृ० ११३, ३२९, ३६४, ३८३.
८. वही, पृ० ४६५.
९ वही, पृ० १६६.

सुभाषितों में भर्तृहरि के शतकत्रय[1] पर धनदराज (वि० सं० १४९०), धनसार-सूरि एव अभयकुशल (वि०सं० १७५५) तथा रामविजयोपाध्याय (वि०स० १७८८) कृत टीकाएं मिलती हैं। उनके केवल वैराग्यशतक[2] पर गुणविनयोपाध्याय (वि०स० १६४७), सहजकीर्ति (१७वीं शती), जिनसमुद्र (वि०सं० १७४०) एव ज्ञान-सागर (१८वीं शती) कृत टीकाएं लिखी गई हैं। उनके केवल शृंगारशतक पर जिनवल्लभसूरि (१२वीं शती) कृत टीका मिलती है। १८वीं शती के राम-विजय (रूपचन्द्र) ने भर्तृहरिशतक एव अमरुशतक[3] पर टवार्थ लिखे हैं।

जैनेतर नाटकों मे कवि मुरारि के अनर्घराघव[4] पर तपागच्छीय जिनहर्षगणि-कृत वृत्ति, नरचन्द्रसूरि (१३वीं शती) कृत टिप्पण और देवप्रभसूरिकृत रहस्यादर्श टीका मिलती है। इसी तरह श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय[5] नाटकपर रत्नशेखरसूरि, जिनहर्ष तथा कामदासकृत वृत्तिया मिलती हैं। प्राकृत के प्रसिद्ध सट्टक[6] कर्पूरमञ्जरी पर भी प्रेमराजकृत लघुटीका एव धर्मचन्द्र (१६वीं शती) कृत टीका मिलती है।

प्राचीन जैन ग्रन्थभण्डारों की समय-समय पर प्रकाशित होनेवाली सूचियों में हमें ऐसे अन्य काव्यग्रन्थों पर टीकाए लिखे जाने की सूचनाए मिलती हैं जिन सबका सकलन यहा सम्भव नहीं है। ये सब टीकाए जैन मनीषियों की साम्प्र-दायिक भावना-रहित साहित्यिक सेवा[7] को बतलाती हैं।

---

१ वही, पृ० २७०.

२. वही, पृ० ३६६; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खण्ड २, पृ० २५.

३. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २१.

४ जिनरत्नकोश, पृ० ७

५ वही, पृ० २६५; जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण १.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ६८.

७. साम्प्रदायिकता की भावना से ऊपर उठकर साहित्य-सेवा के उदाहरण और भी मिलते है। इसके लिए देखें—श्री अगरचन्द नाहटा के लेख : दिगम्बर ग्रन्थों पर श्वेताम्बर विद्वानों की टीकाएं एवं अनुवाद (वीरवाणी, .२३) तथा जैन ग्रन्थो पर जैनेतर टीकाए (भारतीय विद्या, २ ३-४)

अनुक्रमणिका

सहायक ग्रन्थों की सूची

अकबर आणि जैनधर्म, सूरीश्वर आणि सम्राट्.

अनगारधर्मामृत-टीका.

अनेकान्त.

अनेकार्थक साहित्य संग्रह, अहमदाबाद, १९३५.

अर्ली चौहान डाइनेस्टीज : दशरथ शर्मा, देहली, १९५९.

ऑन दी लिटरेचर ऑफ दी श्वेतांबर्स : जे० हर्टल, लाइपजिग, १९२२.

आवश्यकचूर्णि.

आवश्यकनिर्युक्ति.

आवश्यक-हारिभद्रीयवृत्ति.

इण्डियन एण्टिक्यूरी

उपासकाध्ययन : संपा०—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९४४.

ऋषिभाषितसूत्र : अनु०–मनोहर मुनि, बम्बई, १९६३.

एपिग्राफिया इण्डिका.

काव्यानुशासन : हेमचन्द्र.

काव्यालंकार : भामह.

काव्याम्बुधि.

केटेलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, भा० ४, अहमदाबाद, १९६८.

क्रिटिकल स्टडी ऑफ पउमचरियं : के० आर० चन्द्र.

गुरु गोपालदास बरैया स्मृतिग्रन्थ, सागर, १९६७.

चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, सरसावा, १९४९.

जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी.

जर्नल ऑफ ओरियण्टल इंस्टिट्यूट.

जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च.

जर्नल ऑफ बॉम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी.

जर्नल ऑफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी.

जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी.

जिनरत्नकोश : हरि दामोदर वेलणकर, पूना, १९४४.

जैन गुर्जर कविओ : मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भाग १-३, बम्बई, १९२६-१९३१.

जैन पुस्तकप्रशस्तिसंग्रह : सपा०—मुनि जिनविजय, बम्बई, १९४३

जैन प्रतिमालेखसंग्रह : बुद्धिसागरसूरि, भाग १.

जैन लेखसंग्रह : पूरणचंद नाहर, भाग १, कलकत्ता.

जैन शिलालेखसंग्रह, भाग २-३, बम्बई, १९५७.

जैन संदेश

जैन सत्यप्रकाश.

जैन साहित्य और इतिहास : प० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९५६.

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १-५, वाराणसी, १९६६-६९.

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास : मो० द० देसाई, बम्बई, १९३३.

जैन साहित्य संशोधक.

जैन सिद्धान्त भास्कर.

जैन हितैषी.

जैनिज्म इन गुजरात : सी० बी० शेठ, बम्बई, १९५३.

डिस्क्रिप्टिव केटेलॉग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स : सी० डी० दलाल, भा० १, बडौदा, १९५९.

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य : डा० श्यामशकर दीक्षित, जयपुर, १९६९.

थर्ड रिपोर्ट ऑफ ऑपरेशन्स इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स : बॉम्बे सर्कल.

द्विवेदी अभिनंदन ग्रन्थ.

धर्मविधिप्रशस्ति.

नागरी प्रचारिणी पत्रिका.

नाट्यदर्पण-ए क्रिटिकल स्टडी : के० एच० त्रिवेदी, अहमदाबाद, १९६६.

नोटिसेज ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, भाग २.

न्यू इण्डियन एण्टिक्यूरी.

पट्टावली-परागसंग्रह : पं० कल्याणविजयगणि, जालोर, १९६६.

पट्टावली-समुच्चय : सपा०—मुनि दर्शनविजय, भाग १, वीरमगाम, १९३३.

पाइय भाषाओ अने साहित्य : प्रो० ही० र० कापड़िया.

पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया फ्रॉम जैन सोर्सेज : जी० सी० चौधरी, अमृतसर, १९६३.

पुरातनप्रबन्धसंग्रह : सपा०—मुनि जिनविजय, कलकत्ता, १९३६.

प्रशस्तिसंग्रह : प० परमानन्द शास्त्री.

प्राकृत जैन कथा-साहित्य : डा० जगदीशचन्द्र जैन, अहमदाबाद, १९७१.

प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९६६.

प्राकृत साहित्य का इतिहास : डा० जगदीशचन्द्र जैन, वाराणसी, १९६१.

प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, टीकमगढ़, १९४६.

प्रोसीडिंग्स ऑफ ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फरेंस.

बाबू छोटेलाल जैन स्मृतिग्रन्थ.

बीकानेर जैन लेखसंग्रह : सपा०—अगरचन्द नाहटा, कलकत्ता, वी० सं० २४८२.

बुलेटिन ऑफ दी स्कूल ऑफ ओरियण्टल स्टडीज.

भट्टारक सम्प्रदाय : डा० विद्याधर जोहरापुरकर, सोलापुर, १९५८.

भारतीय इतिहास—एक दृष्टि : डा० ज्योतिप्रसाद जैन, वाराणसी, १९६१.

भारतीय विद्या.

भारतीय संस्कृति मे जैनधर्म का योगदान : डा० हीरालाल जैन, भोपाल, १९६२.

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, दिल्ली, १९७१.
मध्यभारती पत्रिका.
मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, जोधपुर, वि० स० २०२५.
महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन : डा० भोगीलाल साडेसरा, वाराणसी, १९५९.
महावग्ग.
महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ, खण्ड १-२, बम्बई, १९६८.
मूलाराधना-टीका.
यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, खुड़ाला (राज०), वि० स० २०१५.
यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर : के० के० हांदिकी, सोलापुर, १९४९.
यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन : डा० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी, १९६७.
रसगंगाधर : प० जगन्नाथ, बम्बई, १९३९.
राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, १९२७.
राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की सूची, भाग २, जयपुर, १९५४.
राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर, १९६१.
राजस्थान भारती.
राजेन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ, खुड़ाला, १९५७.
लाइफ ऑफ हेमचन्द्र : जॉर्ज बुहलर, कलकत्ता, १९३१.
वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ.
वाग्भटालंकार : वाग्भट
विकास.
विक्रम वॉल्यूम, उज्जैन, १९४८.
विक्रम्स एडवेंचर्स : एफ० हारवर्ड, १९२६.
विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६.

वीयना ओरियण्टल जर्नल.

वीर.

वीरवाणी.

वेलणकर कम्मेमोरेशन वॉल्यूम, बम्बई, १९६५.

शोधपत्रिका.

श्रमण.

संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९७१,

संस्कृत ड्रामा : ए० बी० कीथ, लदन, १९५४.

संस्कृत द्व्याश्रयकाव्यमां मध्यकालीन गुजरातनी सामाजिक स्थिति : रा० चु० मोदी, अहमदाबाद, १९४२.

स्टेण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड, भा० १, न्यूयॉर्क, १९४९.

सुवर्णभूमि मे कालकाचार्य : डा० उमाकान्त शाह, वाराणसी, १९५६.

हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, मुजफ्फरपुर, १९६५.

हिस्टॉरिकल इंस्क्रिपशन्स ऑफ गुजरात : जी० वी० आचार्य, भा० २, बम्बई, १९३५.

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : एम० विण्टरनित्स, भा० २, कलकत्ता, १९३३.

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : एम० विण्टरनित्स, भा० ३, खं० १, वाराणसी, १९६३.

हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर : एम० कृष्णमाचारी, मद्रास, १९३७.

हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : एस० के० डे, कलकत्ता, १९४७

हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए० बी० कीथ.

हेमचन्द्राचार्य—जीवन-चरित्र : कस्तूरमल बांठिया, वाराणसी, १९६७.
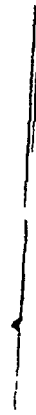
शुद्धि-वृद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१९	८	दिगम्बर ने	दिगम्बर से
२३	१७	सर्गबद्ध	वह सर्गबद्ध
२६	६	नरसहसाङ्क	नवसहसाङ्क
३१	१२	कथारस	काव्यरस
३४	४	वसुहिण्डी	वसुदेवहिण्डी
५१	१७	१४५०....	१४५०–१५१०
५६	४	वीसहवें	बीसवें
६४	५	ञङ्गाल्व	चङ्गाल्व
६४	७	शान्तिश्वर	शान्तीश्वर
६४	८	वसदि	वसदि में
६४	२४	आप ज्ञानतिलक	आयज्ञानतिलक
७३	२९	उदायन-शतानीक	उदयन शतानीक
७९	२१	तीर्थंकरों	अन्य तीर्थंकरों
८९	३	गुणचन्द्र	गुणभद्र
८९	२०	सुमतिपात्रक	सुमतिवाचक
९६	१९	पद्मप्रभ	पद्मनाभ (भावी प्रथम तीर्थंकर)
९६	१९–२३		भावी प्रथम तीर्थंकर के चरित हैं, न कि छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ के।
९८	२३	कोई रचना ज्ञात नहीं है	एक रचना ज्ञात है
१०४	५		इन्द्रहंसगणिकृत रचना विमल मंत्री से सम्बद्ध है, न कि विमलनाथ तीर्थंकर से।

१०९	१६		इसके रचयिता भट्टा० सकलकीर्ति हैं जिनका परिचय पहले दिया गया है।
११०	१७	अथवा विबुधप्रभसूरि	शिष्य विबुधप्रभसूरि
११५	२१		उदयप्रभकृत नेमिनाथचरित धर्माभ्युदय काव्य का ही अश है, कोई स्वतत्र काव्य नहीं।
११६	१५	कीर्तिराज उपाध्याय	यही आगे कीर्तिरत्नसूरि हुए और स० १४९५ ही ग्रन्थरचनाकाल है।
११८	२६	असंगल	अर्गल
१२०	१८	भवान्तरों	इसमें भवान्तरों
१२०	१८	तथा	तथा यह
१२६	२३		भट्टारक युग मे प्रथम भावी तीर्थकर पद्मनाभ पर कई रचनाएँ लिखी गई।
१२७	४	नाम से तीर्थंकर	नाम से १२वें तीर्थंकर
१२८	७		इनकी अन्य रचना मुनिसुव्रतचरित है।
१४०	३०		स्वीडिश भाषा में भी इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ है।
१४५	२९	एव सत्यभामा	एव उसकी माता सत्यभामा
१९१	८	अशोकचन्द्र	(यह रोहिणी-अशोकचन्द्रनृपकथा का पात्र है।)
२०२	१४	मुजाल	मुंजाल
२७५	१६	अज्ञातकृत	अज्ञातकर्तृक
२८४	१६	महादत्त	महाव्रत
२९७	४	रहे ये	रहा था
३२०	१८	अजापुत्र	(अष्टम तीर्थंकर के प्रथम गणधर)
३३८	२१	कथा का नाम	लेखक द्वारा कथा का नाम
३३९	१४	देवच्युत	देवलोक से च्युत

३३९	३०	डपट्ठहेय्य	उपट्ठहेय्य
३४०	३	वशकर	वश में कर
३४३	५	कुछ	कोई
३४४	३०	और जिनदीक्षा	और उसने जिनदीक्षा
३४५	११	महाकाव्योचित	इसे महाकाव्योचित
३५२	१७	कारण अनेक	कारण इस पर अनेक
३६१	४	बह	वह
३६१	५	बढ़ा	बड़ा
३६१	१३	और किनारे	जिसे मारकर वह किनारे
३६५	१२	परिचय अन्य	परिचय तथा अन्य
३६५	१५	उपेक्षीय	उपेक्षणीय
३८१	८	मुनिरत्नसूरि	मुनिरत्नसूरि
३८२	१३	में सबसे	में यह सबसे
४१०	२३	कुमापाल	कुमारपाल
४२९	१३	लाडोल लाखन	नाडोल लाखन
४३१	१५	वीर वल्ल	वीर वल्लाल
४३६	१०	स्कन्धगुप्त	स्कन्दगुप्त
४४२	२९	आर्य	आये
५१६	१८	आदि	आदि में
५३८	७	अध्यावधि	अद्यावधि
५४३	१६		पुरुदेवचम्पू के पहले १२वीं शती में जिनभद्रसूरि ने एक मदनरेखा-ख्यायिकाचम्पू लिखा था। यह प्रकाशित हो चुका है। भूल से परिचय नहीं दिया। पृ० ३५२ में

			इसका उल्लेख अन्य प्रसंग में किया गया है।
५४८	८	टीका	टीका (सन् १४३२)
५४८	१७	आर	और
५७०	९	न ते	नते
५७३	९	भवमूति	भवभूति
५८५	२५	रूप	कूप
५९५	२२	स्वच्छचारिणः	स्वच्छन्दचारिणः
५९७	१९	वर्जावर्त	वज्रावर्त

भारतीय [illegible] प्रेस
जयपुर

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

परिचय

बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी द्वारा मान्य पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान देश का प्रथम एवं अपने ढंग का एक ही जैन शोध-केन्द्र है। यह गत ३६ वर्षों से जैनविद्या की निरन्तर सेवा करता आ रहा है। इसके तत्त्वावधान में अनेक छात्रों ने जैन विषयों का अध्ययन किया है व युनिवर्सिटी से विविध उपाधियां प्राप्त की हैं। अब तक २७ विद्वानों ने पी-एच. डी. एवं डी. लिट्. के लिए प्रयत्न किया है जिनमें से अधिकांश को सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान में इस संस्थान में ६ शोधछात्र पी-एच. डी. के लिए प्रबन्ध लिखने में संलग्न हैं। प्रत्येक शोधछात्र को २५० रु० मासिक शोधवृत्ति दी जाती है। एम. ए. में जैन-दर्शन का विशेष अध्ययन करनेवाले प्रत्येक छात्र को ५० रु० मासिक छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था है। संस्थान से अब तक २० महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जैनविद्या का मासिक 'श्रमण' नियमित प्रकाशित होता है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना सन् १९३७ में हुई थी। इसका सचालन अमृतसरस्थित सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा होता है। यह समिति एक्ट २१, सन् १८६० के अनुसार रजिस्टर्ड है तथा इसे इन्कमटेक्स एक्ट, सन् १९६१ के सेक्शन ८८ व १०० के अनुसार आयकर मुक्ति प्रमाणपत्र प्राप्त है। पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान का निजी विशाल भवन है जिसमें पुस्तकालय, कार्यालय, अध्यक्षकक्ष, सहायककक्ष, छात्रकक्ष आदि हैं। अध्यक्ष एवं अन्य कर्मचारियों के निवास के लिए उपयुक्त आवास हैं। शोधछात्रों के लिए सर्व सुविधाओं से युक्त आधुनिक ढंग का छात्रावास है। जल की आपूर्ति के लिए सस्थान का निजी नलकूप है।